❀ ओ३म् ❀

# ऋग्वेद विषय सूची

——>o<——

## तृतीयोऽष्टकः । तृतीये मण्डले

( सप्तमसूक्ताद् आरभ्य )

### प्रथमोऽध्यायः ( पृ० १–११७ )

सू० [ ७ ]—( १ ) माता पिता गुरुजनों का कर्त्तव्य । पक्षान्तर में अग्नि, प्रभु शितिपृष्ठ हैं । (२) किरणों वाले सूर्य के चारों ओर पृथ्वी की परिक्रमा, प्रकाश ग्रहगवत् शिष्यों की उपासना और ज्ञान ग्रहण । राजा प्रजा का व्यवहार । (३) सूर्यवत् राजा के कर्त्तव्य । गृहपति के कर्त्तव्य । (४) चालक शक्ति और यन्त्र, किरणों और सूर्य और स्त्री पुरुष के दृष्टान्त से राजा प्रजा का व्यवहार । (५) राजा प्रजावत् गुरु शिष्य । (६) सूर्य, मेघ से जलान्नवत् गुरु जनों से ज्ञानोपार्जन । गृहस्थ स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । (७) यज्ञकर्त्ताओं, सूर्य की किरणों के समान देह में प्राणों के कर्म । (८) मेघों के तुल्य आदर योग्य गुरुजन । ( ९ ) अश्व की रासों वा सूर्य की किरणों के समान शिष्यों प्रजाओं का नियन्त्रण । (१०) उषाओं के समान प्रजाओं के कर्त्तव्य । ( पृ० १–११ )

सू० [ ८ ]—वृक्षवत् विद्वान् का कर्त्तव्य । पक्षान्तर में राजा का कर्त्तव्य । (४) आचार्य के गर्भ से उत्पन्न विद्वान् को उपदेश । (६) कुठारवत् विद्वान् का कर्त्तव्य । कृपक, वा क्षत्रियवत् विद्वान् । ( ८ ) लोकों में सूर्यवत् प्रधान विद्वान् की स्थिति । ( ९ ) हंसों के तुल्य वीर और विद्वान् जन । (१०) यज्ञ में यूपों के समान विद्वान् वीरजन । ( ११ ) वटवत्

राजा या आचार्य का शाखा-प्रशाखाओं में बढ़ना। पक्षान्तर में सूक्त की यज्ञ-यूपों में योजना। श्लेष से किरणों, विद्वानों प्राणों वीर सैनिकों की और योजना का निर्देश। ( पृ० ११–१८ )

सू० [ ९ ]—अपांनपात् आत्मा के समान विद्वान् नायक ( २ ) जलों में विद्युत्, काष्ठों में अग्निवत् विद्वान् वीर नायक की स्थिति। (३) नौकावत् आचार्य और प्रभु। ( ४ ) प्रजाओं का सिंहवत् शूर नायक का स्वीकार। ( ५ ) अग्नि वायुवत् गुरु शिष्य का व्यवहार ( ७ ) अन्धकार में दीपवत् विद्वान्। यज्ञाग्निवत् विद्वान् और वीर नायक। पक्षान्तर में प्रभु का स्वरूप। ( पृ० १८–२४ )

सू० [ १० ]—सम्राट्-अग्नि, परमेश्वर, राजा के कर्त्तव्य। परमेश्वर की भक्ति, उपासना। (४) परमेश्वर का स्वात्म ज्ञान-दर्शन। अध्यात्म में अग्नि जीव। ( ५-९ ) परमेश्वर की स्तुति-प्रार्थना। पक्षान्तर में विद्वान् नेता के कर्त्तव्य। ( पृ० २४–२९ )

सू० [ ११ ]—अग्नि, अग्रणी नायक के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन। ( पृ० २९–३३ )

सू० [ १२ ] –इन्द्र, अग्नि, मेघ और सूर्य वा वायु और विद्युत् के समान, प्रधान पुरुषों के कर्त्तव्य। गुरु आचार्य के कर्त्तव्य ( ४ ) वायु-सूर्यवत् विद्वानों और वीरों के कर्त्तव्य। सेनाध्यक्ष सभाध्यक्षों का कर्त्तव्य। ( पृ० ३३–३७ )

सू० [ १३ ]—अग्निवत् आचार्य और राजा के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन। ( पृ० ३७–४१ )

सू० [ १४ ]—विद्वान् गुरु और परमेश्वर का वर्णन। (३) यज्ञाग्निवत् उसकी उपासना। पक्षान्तर में विद्युत् के दो प्रकारों का वर्णन। नायक सेनापति की दो सेनाएं। ( ४ ) 'सहसः पुत्र' अग्नि और नायक। (५) दान-प्रतिदान, विद्वत्सेवा और ज्ञानार्जन, ( ६-७ ) आराधना, आत्म-समर्पण विद्वान् नायक के प्रति कर्त्तव्य। ( पृ० ४१–४६ )

सू० [ १५ ]—विद्वान् उत्तम नायक की शरण में रहने का उपदेश। ( २ ) राजा वा गुरु का प्रजा से पिता-पुत्रवत् सम्बन्ध। ( ३ ) मेघवत् राजा के कर्त्तव्य। ( ३-४ ) प्रजा वर्ग की उत्तम कामना। ( ५ ) रथवत् नायक। विजिगीषु के कर्त्तव्य। ( पृ० ४६–५१ )

सू० [ १६ ]—स्वामी, ईश्वर, परमेश्वर का वर्णन। ( २ ) वायुवत् वीरों के कर्त्तव्य। ( ३ ) अग्रणी के अनुयायियों के प्रति कर्त्तव्य। ( ५ ) उत्तम राजा से प्रार्थना। पक्षान्तर में प्रभु से प्रार्थना। ( पृ० ५१–५४ )

सू० [ १७ ]—यज्ञाग्निवत् वीर विद्वान् के कर्त्तव्य। परमेश्वर का वर्णन ( २ ) सूर्यवत् विद्वान् का आदान, प्रतिदान। ( ३ ) तीन आयु, तीन उषाओं की व्याख्या। ( ४ ) उत्तम रक्षक, ज्ञानप्रद का आदर। (पृ० ५४–५९ )

सू० [ १८ ]—मित्र और मातृ पितृवत् ज्ञानी और प्रभु का वर्णन। ( २ ) दुष्ट संतापक प्रभु। ( ३ ) अपने बल वृद्धि के लिये ज्ञानी, तेजस्वी प्रतापी का पालन करना प्रजा का कर्त्तव्य है। ( ४ ) उत्तम राजा का कर्त्तव्य। सर्वस्नेही उत्तम पुरुषों में शक्ति स्थापन करके उपद्रवों को शान्त करने का उपदेश (५) राजा को सदा सहायतार्थ उद्यत होने का उपदेश। ( पृ० ५९–६२ )

सू० [ १९ ]—यज्ञ में होता के समान नायक का वर्णन। ( २ ) गृहाश्रम के समान राज्याश्रम का निर्वाह। पक्षान्तर में आचार्यकुल का वर्णन। ( ३ ) प्रजा को शिक्षित करने का कर्त्तव्य। ( पृ० ६२–६६ )

सू० [ २० ]—गृहस्थ के तुल्य राजा का कर्त्तव्य। ( २ ) राजा के तीन बल, तीन स्थान, तीन जिह्वा, तीन तनु। परमेश्वर की तीन शक्तियां। ( ३ ) विद्वान् ज्ञानाश्रय गुरु, प्रभु। ( ४ ) तेजस्वी राजा का कर्त्तव्य। (५) दधिक्रा अग्नि, उषा, बृहस्पति, सविता, अश्वी, मित्र-वरुण, आदित्यों का आह्वान। इनका रहस्य। ( पृ० ६६–७० )

इति प्रथमोऽध्यायः ॥

---

अथ द्वितीयोऽध्यायः ( पृ० ११७–२०९ )

शील के कोशों का वर्णन। (१८) शत्रु का महास्त्रों से नाश करने का उपदेश। (१९) ऐश्वर्यवान् दानी सर्वप्रिय, सबके वंशों को बढ़ाने वाला हो। (२०) सर्वश्रेष्ठ, वीर स्तुत्य पुरुष इन्द्र कहाने योग्य है। (पृ० ११७–१२४)

सू० [ ३१ ]—(१) पुत्रपुत्रिका-विधान, कन्या का अपुत्र पिता कन्या में जामाता द्वारा उत्पन्न पुत्र को अपना पुत्र बनावे। (२) कन्या के पिता का वही दायभागी पुत्र हो। कन्या परगोत्र के पुरुष को दी जाती है। अग्नियों के दृष्टान्त से पुत्र-पुत्री का विचार (३) अग्निवत् पुत्र शिष्य और वीर बड़े होकर उन्नत हों। (४) सूर्य के दाहक किरणों के तुल्य वीर को सेनाएं और प्रजाएं अपनावें। (५) देह में सातों प्राणवत् राष्ट्र में सात प्रकृतियों का वर्णन। (६) विद्युत्वत् सेना का कर्त्तव्य। (७) मेघ और रत्नगर्भ पाषाणवत् विद्वान् का कर्त्तव्य। (८) वीर और विद्वान् ज्ञान संग्रह करे, दुखदायक, प्रजाशोषक कारणों का नाश करें। प्रजा को पाप से मुक्त करे। (९) विद्वानों का नियमानुसार व्रताचरण, और आराधना। (१०) गौओं से दुग्धवत् आत्म ज्ञान का उपार्जन, इसी प्रकार राजा का दुग्धवत् भूमि-दोहन। (११) शत्रुहन्ता का आदर और पोषण। (१२) उसके लिये विशाल भवन निर्माण। अध्यात्म में प्राणों का देह-साधन। (१३) सर्वथा स्तुत्य प्रभु। (१४) प्रभु की सहस्रों सनातन शक्तियें। (१५) उत्तम राजा का कर्त्तव्य। (१६) विद्या वृद्धि और प्रजा को उन्नत करने का उपदेश। (१७) दिन रात्रिवत् राजा प्रजा का व्यवहार। (१८) सूर्य वा मेघवत् राजा उदार हो। (१९) वह प्रजा को शिक्षित करे। (२०) प्रजा का पालन करे। (२१) सूर्यवत् भूमि पर राजा का शासन और दुष्टदमन का वर्णन। (पृ० १२४–१४९)

सू० [ ३२ ]—मध्यान्ह में भोजन अन्न, खाने का उत्तम उपदेश। पक्षान्तर में तीव्र बलवान् होकर राजा का प्रजैश्वर्य भोग और आचार्य का विद्यादान। अध्यात्म में माध्यन्दिन सवन। (२) सूर्य के जलपानवत् प्रजा से कर–

संग्रह और उसके पालन का उपदेश। पक्षान्तर में वीर्य रक्षा और ब्रह्मचर्य का उपदेश। ( ३ ) मध्यान्ह के सूर्यवत् तेजस्वी राजा की दशा। (४) तेजस्वी राजा के वायुवत् बलवर्धक जन। ( ५ ) सूर्य विद्युत्वत् तेजस्वी को व्यवहार करने का उपदेश। पक्षान्तर में सन्तानवत् आचार्य का पालन। ( ६ ) विद्युत् के मेघ को आघात करने के समान दुष्टजन का नाश। पक्षान्तर में—परमेश्वर का प्रकृति में स्पन्द और नीहारिका सञ्चालन। ( ७ ) अपार शक्तिशाली इन्द्र का आदर। ( ८ ) जगद्-धारक वायुवत् राजा का कर्त्तव्य। ( १० ) राजा जीव और ईश्वर का वर्णन। ( ११ ) विद्युत् वत् शत्रु पर आघात, (१२) यज्ञ से इन्द्र राजा की वृद्धि। यज्ञ का स्वरूप ( १४ ) रक्षक सर्वतारक प्रभु। ( १५ ) कुशलवत् राष्ट्र को पूर्ण समृद्ध करने का उपदेश। (१६) निर्बाध इन्द्र का सामर्थ्य। (पृ० १४९—१६०)

सू० [ ३३ ]—गो-वृषभ, वा नदियों के समान प्रेम से संगत स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। सेना-सेनापति का वर्णन। विपाट् शुतुद्री का रहस्य। ( ३ ) विपाट् माता, का वर्णन। विपाट् माता परमेश्वर। ( ४ ) नदी जल के दृष्टान्त से प्रजोत्पत्त्यर्थ स्त्री का पाणिग्रहण। ( ५ ) रक्षा की इच्छा से वरवर्णिनी का वरवरण। नदियों और कुशिकसूनु का रहस्य। पक्षान्तर में सेनानायक का सेनाओं द्वारा वरण। सूर्य, मेघ, जलधारावत् राजा का दुष्टदमन, प्रजापालन और गृहपति का कर्त्तव्य, एवं शिल्पी इंजनीयर का नहरें बनाना। (७) मेघ के छेदक-भेदक सूर्य, वायुवत् राजा और आचार्य का शत्रु और अज्ञान का नाश। ( ८ ) उपदेष्टा और शासक को उपदेश। ( ९ ) नदियोंवत् विनीत महिलाओं को उपदेश। ( १० ) कन्या वा स्त्रीवत् प्रजा का राजा के प्रति विनय। ( ११ ) स्त्रियों के प्रति आदर भाव। ( १२ ) योग्य भूमिवत् स्त्री प्राप्त कर संसार पार करने का उपदेश। ( १३ ) ब्रह्मचारिणियों को मेखलादि मोचन और शुद्ध हो कर गृहस्थ में प्रवेश। ( पृ० १६०—१७२ )

सू० [ ३४ ]—वीर राजा के कर्त्तव्य। शत्रु नाश, स्वपक्षपोषण, प्रजा पालन। ( २ ) प्रजा का राजा की शरण में जाना, ( ३ ) मायावियों का नाश। सूर्य अग्नि वत् राजा के कर्त्तव्य। ध्वजा के नीचे प्रजा को लाना, ( ५ ) उत्तम अध्यक्षों को नियुक्ति। राजा का गुरुवत् व्यवहार। ( ६ ) पुण्यकर्मा, दुष्टदलक को कीर्त्ति लाभ। (७) राजा को विद्वान् का उपदेश। ( ८ ) सैन्यादि का श्रेणी विभाग, चिकित्सा, छाया वाले वृक्षों और जल, सैन्यादि का प्रबन्ध। पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन। (पृ० १७२–१७८)

सू० [ ३५ ]—वीर राजा की युद्ध यात्रा। ( २ ) युद्ध रथ। अश्व पालन ( ४ ) रथ में दो अश्वों के समान राष्ट्र में दो प्रमुखों की नियुक्ति। ( ५ ) प्रलोभन में पड़ने का उपदेश। ( ६ ) स्थायी राजा की नियुक्ति पक्षान्तर में आचार्य का शिष्य पालन। ( ७ ) सूर्य वत् राष्ट्र के प्रबन्धक अधीन शासकों के कर्त्तव्य। ( १० ) राजा की तीक्ष्ण वाणी, पक्षान्तर में आत्मा और परमेश्वर आचार्य, का वर्णन। ( पृ० १७८–१८४ )

सू० [ ३६ ]— राजा के प्रजा के प्रति कर्त्तव्य। पक्षान्तर में आचार्य के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में आत्मा परमात्मा का वर्णन। ( ३ ) गुरु शिष्य और राजा प्रजा का पुत्र पितावत् सम्बन्ध। ( ४ ) महान् का अपार सामर्थ्य। सूर्यवत् राजा का वर्णन और प्रजा का पालन और समर्थन। (७) नदियों वत् प्रजाओं का कर्त्तव्य। ( ८ ) जलाशयवत् जनों और कोषों का वर्णन। पक्षान्तर में शिष्यों के कर्त्तव्य। इन्द्र की सोमधाना कुक्षियों और उसके सोम-भक्षण का रहस्य। ( ९ ) वसुओं का वसुपति। उसके कर्त्तव्य। ( पृ० १८४–१९२ )

सू० [ ३७ ]—शत्रु दलन और विजयार्थ सेनापति का स्थापन। उसके प्रति प्रजाओं के कर्त्तव्य। सेनापति का प्रस्ताव, स्तुति और उत्साहवर्धापन। सेनापति के कर्त्तव्य, शत्रु पराजय। पञ्चजन का स्पष्टीकरण ( १० ) राजा की राष्ट्र के धनैश्वर्य की आशंसा। पक्षान्तर में अध्यात्म वर्णन। ( पृ० १९२–१९५ )

सू० [ ३८ ]—उत्तम शिल्पी और अश्व के समान विद्वान् के कर्त्तव्य ( २ ) ज्ञान प्राप्त्यर्थ विद्वानों की उपासना का उपदेश। पक्षान्तर में प्रभु शक्तियों का वर्णन। ( ३ ) ज्ञान प्रकाश करना विद्वानों का कर्त्तव्य। संयम और परस्पर पोषण। (४) किरणों और सूर्यवत् अध्यक्ष और अधीनों का सम्बन्ध। स्वरोचि, असुर, वृषा परमेश्वर। (५) 'मेघवत् राजा का शासन। परमेश्वर और आत्मा के शासन का उत्तम नमूना। ( ६ ) शासन कार्य में तीन सभाएं। वायुकेश गन्धर्वों का रहस्य। ( ७ ) मेघमाला वत् वाणी के अद्भुत कर्म। पक्षान्तर में प्रभु की वेद वाणी की शिक्षा से समस्त विद्वानों को ज्ञान की प्राप्ति। ( ८ ) राजा प्रजा का परस्परवरण। परमेश्वर सर्व तेजोमय। (९) ईश्वरीय सनातन धर्म की साधना। (पृ०१९६–२०३)

सू० [ ३९ ]—पति को स्त्रीवत् ईश्वर को सर्व स्तुति की प्राप्ति। (२) उत्तम पत्नीवत् वेदवाणी का वर्णन। ( ३ ) यमसू के दृष्टान्त से, सयंमी को विद्या प्राप्ति, स्त्री पुरुषों को उपदेश। राष्ट्र के यम, यमसू, और प्रभु यम। ( ४ ) विद्वान् वीर योद्धा पालक पितरों का वर्णन। (५) गुरुओं का शिष्यानुगमन और सूर्य-व्रतपालन। ( ६ ) राजा की पशु-सम्पत् प्राप्ति। धन दान और रक्षा। ( ८ ) असत्य से सत्य के और अन्धकार से प्रकाश के विवेक का उपदेश। ( ८ ) सूर्यवत् ज्ञान-प्रकाश की स्तुति। ( पृ० २०३–२०९ )

---

## तृतीयोऽध्यायः ( पृ० २०९–२९९ )

सू० [ ४० ]—राजा का राष्ट्रोपभोग। ( २ ) प्रशस्त पुरुषों के लिये अन्न भोजन का उपदेश। (३) यज्ञ, सत्संग की वृद्धि का उपदेश। ( ४ ) गुरु गृह में शिष्योंवत् अभिषिक्त अध्यक्षों का राजा के अधीन कार्य करना। ( ५ ) पेट में अन्न को जैसे वैसे कोश में ऐश्वर्य को और विद्यागर्भ में शिष्य का रखने का उपदेश। (६) ऐश्वर्यों का पालक इन्द्र, प्रभु, उसकी उपासना। ( पृ० २०९–२१२ )

सू० [ ४१ ]—सूर्यवत् राजा वा प्रभु का आह्वान। ( २ ) राजा राष्ट्र की वृद्धि करे। ( ३ ) विवेक से राष्ट्र का पालन और उपभोग करे। ( ६ ) उत्तम पुरुष को नीच कार्य में लगाने का निषेध। ( ९ ) सर्व-प्रिय राजा। सोम और इन्द्र का रहस्य। ( पृ० २१२–२१५ )

सू० [ ४२ ]—सोम इन्द्र के सम्बन्ध और उनके नाना रहस्य। राजा प्रजा, शिष्य आचार्य के कर्त्तव्य। ( ५ ) शतक्रतु, वाजिनीवसु इन्द्र। ( ६ ) धनञ्जय और इन्द्र। ( ७ ) गवाशिर यवाशिर सुतका रहस्य। कुशिकों का इन्द्राह्वान। ( पृ० २१५–२१९ )

सू० [ ४३ ]—राजा का दो मित्र ब्रह्म, क्षत्र से मिलकर राज्य संचालन। प्रजा के साथ उत्तम व्यवहार। ( ७ ) सूर्य मेघवत् राजा के नाना कर्त्तव्य। ( पृ० २१९–२२३ )

सू० [ ४४ ]—अध्यक्ष राजा के कर्त्तव्य। ( २ ) गृहवत् राज्य में परस्पर आदर सत्कार और प्रेम का उपदेश। (३) सूर्य-आकाश का सस्य-श्यामला भूमि का पालन। राजा तेजस्वी हो, सूर्य वायु की शक्तिवत् इन्द्र, और अर्जुन वज्र की व्याख्या। सैन्य दलों से ऐश्वर्य प्राप्ति का उपदेश। ( पृ० २२३-२२६ )

सू० [ ४५ ]—राजा का अश्व सैन्यों सहित प्रयाण और आगमन। ( २ ) सूर्य विद्युत् वायुवत् राजा का शत्रु-उच्छेदन कार्य। ( ३ ) किरणों, समुद्र, गो-गोपाल आदिवत् राजा प्रजा के सम्बन्ध। ( ४ ) पिता का पुत्रवत् राजा का प्रजा को सम्पत्ति देना। ( ५ ) स्वराट् शासक सर्वोच्च, बहुश्रुत, कीर्त्तिमान् हो। सूक्त की अध्यात्म योजना। (पृ० २२६-२३०)

सू० [ ४६ ]—राजा के वीरोचित कर्त्तव्य। ( ५ ) शासकों और शास्यों का राजा के प्रति कर्त्तव्य। ( पृ० २३०–२३३ )

सू० [ ४७ ]—मरुत्वान् इन्द्र का जठर में सोम-सेचन का रहस्य। राष्ट्र में जल सेचन का उपदेश। ( २ ) समरुत्, सूर्यवत् सगण इन्द्र को विजय का आदेश। ( ३ ) ऋतुपालक, सूर्यवत् राजसभा के सभ्यों सहित

( ५ ) ऐश्वर्य के वृद्धयर्थ देश-देशान्तर में यातायात करने का उपदेश। ( ६ ) ऐश्वर्य कमा कर दुनियां के सुख उत्तम स्त्री, जाया, रथ, भवन आदि को प्राप्त करने का उपदेश। ( ७ ) समृद्धों को दान का उपदेश। ( ८ ) सूर्य के जल पानवत् ज्ञानोपार्जन का उपदेश। ( ९ ) सर्व प्रिय होने का उपाय। ( १० ) परमहंस विद्वानों का कर्त्तव्य। हंस का रहस्य। ( ११ ) वीरों के कर्त्तव्य। ( १२ ) उत्तम राजा। ( १४ ) राजा का निकृष्ट असभ्य देशों के प्रति कर्त्तव्य। 'कीकट', 'प्रमगन्द', 'नैचाशाख' के रहस्य। ( १५ ) उषावत् वाणी और भूमि का रूप। ( १६ ) वृद्धों की वाणी, और भूमि। ( १७ ) रथवत् राष्ट्र, गृहाश्रम, और बैलोंवत् शास्य-शासन और स्त्री पुरुषों का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। ( १८ ) बलप्रद स्वामी सबको पुष्ट करे। ( १९ ) वीरोचित उपदेश। (२०) रथवत् और तरुवत् स्वामी के कर्त्तव्य। उबलती हांडी के दृष्टान्त से सेना के कर्त्तव्य का उपदेश। ( २३ ) मूर्ख और विवेकी का भेद। ( २४ ) राज पुरुषों, सैनिकों के कर्त्तव्य। ( पृ० २५६-२७० )

सू० [ ५४ ]—प्रधान नायक के कर्त्तव्य। उत्तम शासक की प्रशंसा और आदर। (३) स्त्री पुरुषों के परस्पर कर्त्तव्य। ( उत्तम ) ज्ञान के वक्ता दुर्लभ हैं। ( ६ ) सूर्य भूमिवत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। स्त्री पुरुषों के स्वभाव कैसे होने चाहियें। ( ८ ) स्त्री का अधिकार। ( ९ ) पवित्र दाम्पत्य। ( १० ) दम्पति के कर्त्तव्य। ( ११ ) उत्तम पिता के कर्त्तव्य। ( १२ ) विद्वानों के कर्त्तव्य। वीरों के कार्य। (१४) उत्तम मुख्य पुरुष का स्थापन। उसके कर्त्तव्य। (१८) व्यवस्थापक न्यायाध्यक्ष के कर्त्तव्य। ( २१ ) उत्तम अन्न जलों के उपभोग का उपदेश। ( पृ० २७० २८३ )

सू० [ ५५ ]—परब्रह्म परमेश्वर का वर्णन। महान् असुर। सूर्यवत् उसके ज्ञानमय प्रकाश। पक्षान्तर में विद्वान् का वर्णन, उसके कर्त्तव्य। ( ४ ) तेजस्वी पुरुष का वर्णन। माता-पुत्रवत् राजा-प्रजा का व्यवहार।

---

## अथ चतुर्थोऽध्यायः ( पृ० २९९–३८२ )

सू० [ ६१ ]—उषावत् युवति वधू के कर्त्तव्य । पक्षान्तर में सेना के कर्त्तव्य । ( ४ ) चर्खे की तकली के समान स्त्री के कर्त्तव्य । उषावत् स्त्री के उत्तम गुण और कर्त्तव्य । ( पृ० ३२४—३२९ )

सू० [ ६२ ]—सूर्य मेघवत् राजा सेनापति के कर्त्तव्यों का उपदेश इन्द्र, वरुण, बृहस्पति, पूषा आदि नाना विद्वानों के कर्त्तव्य । ( ५ ) बृहस्पति परमेश्वर । (८) वाणी का स्त्रीवत् स्वीकार ( २ ) सम्यग्दृष्टि वाला विद्वान् वा सर्व द्रष्टा प्रभु । (१०) गुरु मन्त्र, सावित्री गायत्री । सर्वोत्पादक प्रभु सविता की उपासना, ( १३ ) सोम विद्वान के कर्त्तव्य । (१६) मित्र वरुण अर्थात् स्त्री पुरुषों को उपदेश । ( पृ० ३२९—३३६ )

॥ इति तृतीय मण्डलम् ॥

---

# अथ चतुर्थं मण्डलम्

सू० [ १ ]—उत्तम मार्गदर्शी और अग्रणी पुरुष के आदर का उपदेश । आचार्य और राजा का वरण । उनके कर्त्तव्य । पक्षान्तर में परमेश्वर से प्रार्थना । ( ६ ) राजा की गौवत् अघ्न्या प्रजा का पालन । ( ७ ) अग्नि विद्युत्, सूर्यवत् राजा के तीन रूप । ( ८ ) दीपकवत् मार्गदर्शी, और भवनवत् सर्वरक्षक राजा का स्वरूप । ( ९ ) लगाम से अश्ववत् उत्तम नीति से राष्ट्र का संचालन और ऐश्वर्य पद प्राप्ति । ( १० ) अग्नि, अग्रणी का यथार्थ कर्त्तव्य । ( ११ ) राजा का अपात् अशीर्षा रूप । मेघवत् दयालु हो । ( १२ ) मेघवत् आचार्य और राजा, पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन । उनकी ७ प्रकृति । ( १३ ) जिज्ञासु जनों का कर्त्तव्य । मार्गदर्शी जनों का गोपालकवत् कर्त्तव्य । ( १४ ) शिक्षकों और संचालकों के कर्त्तव्य । उनका वरण । ( १६ ) वेद वाणी का त्रिधा मनन । उसके २७

रूप। उस द्वारा प्रभु की स्तुति। ( १७ ) प्रकाश से तिमिरवत् ज्ञान से अज्ञान का नाश। दुष्टों का नाश और न्याय का कर्त्तव्य। ( १८ ) ज्ञान की प्रकाश से तुलना। ( १९ ) प्रभु, स्वामी का उत्तम रूप। नित्य परमेश्वर का वर्णन। ( पृ० ३३८–३५१ )

सू० [ २ ]—अविनाशी अमृत परमेश्वर का वर्णन। जगत् के राजा के तुल्य प्रभु का वर्णन। ( ४ ) राजा के कर्त्तव्य। उसके लिये उपदेश। ( ६ ) सूर्यवत् उसका पद। ( ७ ) प्रभु के कृपापात्र कौन। प्रातः उपासक उसके कृपापात्र हैं। उपासकों के कर्त्तव्य। ( ११ ) दाता राजा, स्वामी के कर्त्तव्य। (१४) शिल्पियों के तुल्य वीरों के कर्त्तव्य। ( १५ ) किरणों के तुल्य विद्वानों का कर्त्तव्य। ( १७ ) पुण्यकर्मा जनों का सुवर्णवत् आत्म शोधन। ( १८ ) स्वामी का आदर्श रूप। ( १९ ) अधीन के कर्त्तव्य। ( पृ० ३५२–३६४ )

सू० [ ३ ]—न्यायवान् राजा की प्रथम स्थापना। ( २-८ ) उसके लिये उत्तम भवन। ( ३ ) शास्ता के कर्त्तव्य। उसको क्या २ जानना चाहिये? ( ९ ) शास्य या शिष्य के कर्त्तव्य। गुरु शिष्यों के कर्त्तव्य। ( १२ ) उत्तम देवियों और गृहपतियों के कर्त्तव्य। ( १३-१६ ) उत्तम मनुष्य के कर्त्तव्य। नायक के कर्त्तव्य और नीतियुक्त वचनों के उपदेश। ( पृ० ३६४–३७४ )

सू० [ ४ ]—रक्षोघ्न अग्नि। राजा को बल सम्पादन का उपदेश, दुष्ट सन्तापक राजा वा सेना नायक के कर्त्तव्य। उसके अग्निवत् तीव्र तेजस्वी रूप का वर्णन। ( ६-१० ) उसके अनुग्रहपात्र। पक्षान्तर में प्रभु की स्तुति, प्रार्थना, अर्चना। ( ११ ) स्वामी और प्रजा का उत्तम सम्बन्ध। ( १२ ) भृत्य वा अधीन शासक कैसे हों। ( पृ० ३७४–३८२ )

## अथ पञ्चमोऽध्यायः

सू० [ ५ ]—वैश्वानर अग्नि। सर्वनायक की उपासना। ( २ ) उसका स्वरूप। अग्रणी परमेश्वर से प्रार्थना। ( ५ ) नीचे गिरने वाले

लोगों की दशा । ( ६ ) गुरु, महान् ज्ञान शिष्य को देवे । ( ७ ) शिष्य का कर्त्तव्य । ( ८ ) माता पितावत् आचार्य का स्वरूप । ( ९ ) सूर्यवत् प्रमुख पद । ( १० ) वाणी द्वारा शिष्य गुरु के ज्ञान को कैसे जाने । ( १२ ) गुरु का कर्त्तव्य और उसकी उत्तम अभिलाषा । ( १६-१४ ) जिज्ञासुओं के कर्त्तव्य । उनके प्रति गुरु के कर्त्तव्य । (१५) तेजस्वी राजा । ( पृ० २८२–२९१ )

सू० [ ६ ]—अध्वर का होता अग्नि, ज्ञानप्रद गुरु और राजा । ( २ ) तेजस्वी सेनानायक के कर्त्तव्य । ( ३ ) ब्रह्मचारिणी के तेजस्वी पुत्रवत् सेना के तेजस्वी नायक का वर्णन ( ४ ) अग्नि, सूर्यवत् तेजस्वी नायक । ( ७ ) सर्वोपरि आदरणीय प्रभु । ( ८ ) अग्रणी का उज्वल पद । (९) कैसे को नायक बनावें । उसकी गुणस्तुति । (पृ०२९१–२९७)

सू० [ ७ ]—प्रभु की उपासना । वह अग्निवत् स्वप्रकाश । स्तुत्य । दीपक वा अग्निवत् उसका ग्रहण । ( ४ ) पापनाशक प्रभु । ( ५ ) परम पावन । ( ६ ) सत्-चित् प्रभु । ( ७ ) आनन्द मय प्रभु, प्रकृति का स्वामी । (८-११) अग्नि, विद्वान्, दूतवत् प्रभु । अग्निवत् तेजस्वी का वर्णन । ( पृ० ३९७–४०४ )

सू० [ ८ ]—बहुज्ञ पुरुष का आदर सत्कार । ज्ञानमय सर्वज्ञ प्रभु की उपासना । अग्निहोत्र, और प्रभु की उपासना । ( ६ ) विद्युत्-साधना और ऐश्वर्य प्राप्ति । गुरु प्रभु-शुश्रूषा । ( ७-८ ) धन, बल की याचना । ( पृ० ४०४–४०७ )

सू० [ ९ ]—राजा, विद्वान् अग्रणी नायक, और ज्ञानमय प्रभु की उपासना और स्तुति । ( पृ० ४०७–४१० )

सू० [ १० ]—उत्तम नायक, विद्वान् आदि की समृद्धि की आशंसा । उससे रक्षा, ऐश्वर्य आदि की प्रार्थना । ( पृ० ४१०–४१३ )

सू० [ ११ ]—विद्वान् नायक को तेजस्वी होने का उपदेश । ( २ )

विद्वानों, शिष्यों के कर्त्तव्य । (३) ज्ञानवान् विद्वान् पुरुष । वह ज्ञान और ऐश्वर्य का अग्नि, विद्युत् के समान उत्पादक हो । दोषों, पापों से सबको पार करे । उत्तम बुद्धि दे । ( पृ० ४१२–४१६ )

सू० [ १२ ] यज्ञाग्निवत् विद्वान् की सेवा शुश्रूषा । उसको श्रद्धापूर्वक दान । ( २ ) प्रातः सायं अग्निहोत्र । अग्नि का स्वरूप, अग्निवत् तेजस्वी अग्र नायक । उसके कर्त्तव्य । प्रजा को अपराध रहित करना । पैर में बद्ध गौवत् पदों में बद्ध वाणी का दान । पाप मोचन । (पृ० ४१६–४२०)

सू० [ १३ ]—प्राभातिक सूर्यवत् विद्वान् का वर्णन । ( २ ) महावृषभवत् बलवान् तेजस्वी को सबको कंपाने का कर्त्तव्य । ( ३ ) रक्षार्थ तेजस्वी का आश्रय ( ४ ) अन्धकार को सूर्यवत् अज्ञान वा शत्रु का नाश । ( ४ ) सूर्य की अनवलम्ब स्थिति का कारण । तद्वत् नायक की सर्वोच्च स्थिति । ( पृ० ४२०–४२४ )

सू० [ १४ ]—सूर्य को उषाओं की तरह तेजस्वी पुरुष को प्रजाओं की चाह । सूर्यवत् ज्ञानप्रकाशक विस्तार करना । ( ३ ) उषावत् विदुषी स्त्री के कर्त्तव्य । स्त्री पुरुषों का परस्पर बन्धन । ( पृ० ४२४–४२६ )

सू० [ १५ ]—तेजस्वी पुरुष के योग्य पद । (६) उसका संस्कार । ( ८-१० ) वीरों में से दो प्रधानों का चुनाव । 'साहदेव्य कुमार' की व्याख्या । ( पृ० ४२६–४३० )

सू० [ १६ ]—ऐश्वर्यवान् सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के गुरुवत् कर्त्तव्य । ( २ ) विद्वान् आचार्य के कर्त्तव्य । मार्गावसान में अश्वों के तुल्य शिष्यों को आवकाश प्रदान । ( ३ ) मेघ के दृष्टान्त से ब्रह्मचर्य पालन का उपदेश । अध्यात्म में ईश्वरार्चन का उपदेश । ( ४ ) सूर्यवत् अज्ञान नाश । ( ५ ) राजा का विनय धारण, भरण, रक्षणादि से पिता तुल्य होना । ( ६ ) मेघवत् शत्रु दल में भेद के प्रयोग का उपदेश । शत्रु को पराजय करने का उपदेश । ( १० ) भूपति सैन्यपति दोनों की स्थापना । नारी-

-वत् सेना का वर्णन। ( ११ ) प्रयाण का उपदेश। ( १२ ) दुष्टों का दमन और दलन। ( १३ ) सैकड़ों सहस्रों परसैन्यों का उच्छेद। ( १४ ) विद्युत्वान् मेघ और सिंह के तुल्य वीर का स्वरूप। ( १५ ) प्रजाओं का राजा को, गुरु को शिष्य और पति को स्त्रीवत् वरण द्वारा प्राप्त होना। (१६) 'इन्द्र' किसे कहें। उसके कर्त्तव्य। ( १८-२१ ) सर्वोपरि राजा और प्रभु। प्रजाओं का उत्साह और कर्त्तव्य। (पृ० ४३१—४४४)

सू० [ १७ ]—शत्रुहन्ता इन्द्र ( २ ) प्रतापी का प्रभाव और आतंक कैसा हो। ( ३ ) वज्रधर का शत्रु मर्दन। (४) प्रचुर बलशाली ही प्रचुर सम्पदा का स्वामी हो। (५) प्रजा के वास्तविक अधिकार निरूपण। (७) शत्रुदलन की प्रार्थना। शत्रुहन्ता का आतंक, और उत्तम फल। प्रजा के पालन पोषण की प्रार्थना। ( १२ ) विजेता का अंश निर्णय। उसके उदार कर्त्तव्य। ( १४ ) राजचक्रवत् सैन्यचक्र का चालन, राष्ट्र की वृद्धि, और उसमें अभय का स्थापन। ( १६ ) गृहस्थों का रक्षक राजा हो। ( १७-२७ ) आचार्य इन्द्र। ( पृ० ४४४—४५५ )

सू० [ १८ ]—उन्नति का पुराण मार्ग। प्रत्येक राष्ट्र प्रजा और पुत्रादि के पालन योग्य व्रत। (२) जन्म मरण के जीवन रूप संकट मार्ग से निकलने की जिज्ञासा। ( ३ ) मुग्ध पुरुष के समान, आत्मा की गति। और विवेक की प्राप्ति। ( ४ ) आत्मा की सर्वोपरि शक्ति। ( ५ ) प्रकृति परमेश्वर से जगत् की उत्पत्ति। जलधारावत् प्रवाह रूप से प्रकट होने वाली प्रकृति की विकृतियों से उनके विकर्त्ता के विषय में विवेकपूर्ण प्रश्न। ( ७ ) प्रभु का जगत् सर्जन। ( ८ ) स्त्रीवत् प्रकृति का वर्णन। प्रकृति परमेश्वर का परस्पर व्याप्य व्यापकभाव। ( ९-१० ) सर्वेश्वर कर्म फलप्रद, परमेश्वर। विवेक। पक्षान्तर में—राजा प्रजा के कर्त्तव्यों का वर्णन। ( पृ० ४५५—४६५ )

## अथ षष्ठोऽध्यायः ( पृ० ४६५—५४२ )

सू० [ १९ ]—वीर पुरुषों के कर्त्तव्य। राजा का शत्रुनाशार्थ

वरण। पक्षान्तर में अज्ञान नाशार्थ प्रभु का वरण। ( २ ) सूर्य मेघ के दृष्टान्त से विद्वानों, वीरों का प्रयाण और राजा का शासन। विघ्नकारी शत्रु का विनाश। ( ३ ) शत्रु पर आक्रमण का आदेश ( ४ ) वायु और सूर्यवत् पराक्रमी वीर शत्रु को चूर्ण करे। ( ५ ) राका प्रजा, सैन्यादि के कर्त्तव्य। ( ६ ) भूमि माता की सेवा ( ७ ) नदियों को मेघवत् प्रजाओं को समृद्ध करने का उपदेश। (८) सूर्यवत्, मेघवत् शत्रु से घोर संग्राम। ( ९ ) शत्रुओं को करप्रद बनावे। 'उखच्छित् पर्व' का रहस्य। विस्फोटक पदार्थों का उपयोग। आग्नेयास्त्र। ( ९ ) सनातन वेद-धर्मों का प्रवर्त्तन करे। राजा विद्वानों का पालन करे। ( पृ० ४६५—४७२ )

सू० [ २० ]—राजा के प्रजा पालन के धर्मों का उपदेश। ( ५ ) पति पत्नी, राजा प्रजा का प्रेम व्यवहार। पति इन्द्रपद वाच्य। ( ६ ) इन्द्र का लक्षण। ( ७ ) सेनापति इन्द्र। ( ८ ) दण्ड नायक पालक। (९) प्रभु का महान् सामर्थ्य। ( १० ) उससे रक्षा, समृद्धि की याचना। ( पृ० ४७२-४७६ )

सू० [ २१ ]—अति प्रबल सैन्यबल के स्वामी राजा का रक्षार्थ आह्वान। (२) राजा कृषक वर्ग का उपकारक हो। ( ३ ) सूर्य, विद्युत्, सुवर्णवत् राजा की प्राप्ति। ( ४ ) राजा विजयी, स्तुत्य। ( ५ ) शत्रु विजयी ऐश्वर्य का स्वामी बने। ( ६ ) नायक का दीपवत् कर्त्तव्य। ( ७ ) राजा के सब प्रयत्न राष्ट्रहित हों। ( ८ ) कृषि के लिये नहरों का आयोजन और कृषि के साधनों का वर्णन। ( ९ ) बाहु कल्याण कर्म करें, दान दें। ( १० ) राजा कर्मानुसार वेतन दे। ( पृ० ४७६—४८२ )

सू० [ २२ ]—बलशाली राजा का कर्त्तव्य, ऐश्वर्य वृद्धि। ( २ ) राजा की ऊर्णा, परूष्णी सेना। ( ३ ) बल पराक्रम का यश। ( ४ ) ईश्वर के जगत् सञ्चालकवत् राजा का राष्ट्र-सञ्चालन का कार्य ( ६ ) राजा के सब कार्य न्यायानुसार होने चाहियें। प्रजाएं भी राजा की वृद्धि करें।

( ७-११ ) वह राष्ट्र का नियन्ता और उत्तम कर्मशील हो। प्रजा को ज्ञान और धन से सम्पन्न करे। ( पृ० ४८२–४८७ )

सू० [ २३ ]—राजा और आचार्य के सम्बन्ध में नाना ज्ञातव्य बातें प्रजा वा शिष्य को उपदेश। ( ५ ) प्रश्नोत्तर से नाना उपदेश। ( ७ ) शत्रु का निःशेषकरण। ( ८ ) वेद वाणी का महत्व। राजा की आज्ञा, न्याय व्यवस्था का वर्णन। ( ९ ) सत्याचरण की महिमा। ( १० ) ऋत का महत्व। ( पृ० २८७–४९४ )

सू० [ २४ ]—राजा की उत्तम गुण स्तुति और प्रभु की अपार कीर्त्ति। स्तुत्य प्रभु। सर्व शर काम्य प्राप्य, प्रभु। ( ५ ) राष्ट्र समृद्धि और आत्म समृद्धि का वर्णन। ( ६ ) प्रभु सेना और प्रभु सख्य। ( ७ ) प्रभु शक्ति और बल प्राप्ति ( ८ ) प्रजा का सम्पन्न, बली राजा के प्रति प्रेम। ( ९ ) राजा की राष्ट्र के प्रत्येक अंग से देहांगवत् प्रीति। कर संग्रह और कर्त्तव्य-परायणता। ( १० ) राष्ट्र का क्रम—प्रति क्रम। ( पृ० ४९४–५०० )

सू० [ २५ ]—सर्व हितकारी नायक। उसके कर्त्तव्य। उसके प्रिय सहयोगी। ( ३ ) तत्सम्बन्धी प्रश्नोत्तर। (४) सूर्यवत् राजा की स्थिति। ( ५ ) सर्वोपरि शक्ति राजा। ( ६ ) वह दुष्टों का कुछ नहीं लगता। अदाता कंजूस कदर्य को राजा प्रेम नहीं करता। ( ७ ) उस इन्द्र राजा के लिये सब की पुकार। ( पृ० ५००–५०४ )

सू० [ २६ ]—स्वतः परमेश्वर का आत्म वर्णन। पक्षान्तर में यजमान के आत्मा की उदात्तता। ( ४। ५ ) श्येन, विद्वानूवत् आत्मतत्व का वर्णन। धर्मात्माओं का उन्नति पथ। ( पृ० ५०४–५१० )

सू० [ २७ ] - जीव का वर्णन। आवागमन का सिद्धान्त। ( २ ) सर्व बन्धनमोचक, मोक्षदायक प्रभु। ( ३ ) ज्ञान दाता गुरु प्रभु ही जीव को मुक्त करता है ( ४ ) मोक्ष मार्ग की ओर गमन। पक्षान्तर में राष्ट्र में राजा प्रजा के कर्त्तव्य। ( पृ० ५१०–५१४ )

सू० [ २८ ]—सूर्यवत् उपकारक और देह में आत्मा के तुल्य राजा के कर्त्तव्य। ( २ ) राजा का प्रबल सहायक। ( ६ ) शत्रु नाश का कर्त्तव्य। दुर्ग का प्रयोग। राष्ट्र में कृषि और खानें खोदने के कार्य को प्रवृत्त करना। ( पृ० ५१४–५१७ )

सू० [ २९ ]—उत्तम राजा के कर्त्तव्य। (३) विद्वान् आचार्य, उपदेशक और राजा का कर्त्तव्य। ( ४ ) बलवान् राजा प्रजा से अभय करे। राजा का हितैषी हों। ( पृ० ५१७–५१९ )

सू० [ ३० ]—राजा की सर्वोत्तम स्थिति। सर्वोपरि परमेश्वर का वर्णन। ( २ ) सेना और प्रजा दो राज्यरथ के दो पहियों के तुल्य हैं। ( ३ ) शत्रु नाशन आदि राजा के कर्त्तव्य। ( ९ ) प्रजा 'दिवः दुहिता'। उषा, सेना, और नववधू का समान वर्णन। शत्रुसेना का दमन। प्रजा पर आधिपत्य। धनैश्वर्य का विजय। ( १३ ) शुष्ण के नाश का रहस्य। ( १४ ) शम्बर हनन का रहस्य। ( १५ ) राष्ट्र के पांच जनों की रक्षा ( १६ ) क्षत्रिय, वैश्यों की रक्षा का उपदेश। तुर्वश यदु का रहस्य। पक्षान्तर में आचार्य के कर्त्तव्य। ( १९ ) विकलाङ्ग दीनों पर दया (२१) राजा का महान् विक्रम। ( २४ ) राजा के करसंग्रही समृद्धिकारक हों। ( पृ० ५१९–५२६ )

सू० [ ३१ ]—परमेश्वर और राजा से प्रार्थना। और राजा के कर्त्तव्य। ( पृ० ५२९–५३३ )

सू० [ ३२ ]—राजा सेनापति के प्रति प्रजा की नाना प्रार्थनाएं और और आकाङ्क्षाएं। और राजा के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में आचार्य के कर्त्तव्य। राजा से रक्षा, धन, ज्ञान, न्याय आदि की प्रार्थना। ( २२,२३ ) दो आंखों के तुल्य सस्नेह रहने का राजा प्रजा वर्गों को उपदेश। ( पृ० ५३३–५४२ )

## सप्तमोऽध्यायः ।

सू० [ ३३ ]—सूक्ष्म जल के परमाणुओं के तुल्य ज्ञानी पुरुषों का वर्णन उनके कर्त्तव्य। वाज, विभ्वा ऋभु, इन का रहस्य। ( ४ ) ऋतुओं का वर्णन ( ५ ) ऋभुओं के बनाये चमसों का रहस्य। चतुर्वर्ग साधना की विवेचना।(७) सूर्य की किरणों के तुल्य विद्वानों के कर्त्तव्य। ( ८ ) उत्तम शिष्यों के कर्त्तव्य। ( पृ० ५४२–५४९ )

सू० [ ३४ ]—ऋभुओं का वर्णन। विद्वानों और शिल्पज्ञों के कर्त्तव्य (९–११) ऋभु नाम से कहाने योग्य जनों का वर्णन। (पृ० ५४९–५५५)

सू० [ ३५ ]—ऋभुओं का वर्णन। किरणों वत् सौधन्वन, वीर। (२) चतुर्धा पुरुषार्थ, चतुर्धा आश्रम, चतुरंग सैन्य और चतुर्धा अन्न का निर्माण। ( ४ ) ऋभुओं के चमस का रूप। ( ५ ) कृत्रिम अश्वादि यन्त्र निर्माण। ( ७ ) हर्यश्व और ऋभु कौन हैं। ( ८ ) सौधन्वन, साधकों का वर्णन ( ९ ) सौधन्वन वीरों का वर्णन। (पृ० ५५५–५६१)

सू० [ ३६ ] विना अश्व, बिना लगाम के त्रिचक्र आकाश, जल, भूमि गामी रथ के दृष्टान्त से आत्मा के देहरथ का वर्णन। ( ३ ) ऋभु विद्वानों का कार्य युवकों को तैयार करना है। (४) राष्ट्र का चतुर्धा विभाग। अन्तः करण चतुष्टय। आयु के चार भागों का वर्णन। चर्ममयी गौ जिह्वा, वाणी का वर्णन। ऋभु प्राण। ( ५ ) वेद नामक ज्ञान का वर्णन। उसके रक्षा का कर्त्तव्य। (६) ऋभु, विभ्वा वाज, आदि विद्वानों वीरों के कर्त्तव्य उनमें वेदोपदेश के स्थिर करने का उपदेश। ( ९ ) ज्ञानपूर्वक कर्म करने का उपदेश। ( पृ० ५६१–५६६ )

सू० [ ३७ ]—ऋभु विद्वानों के कर्त्तव्य। (४) उत्तम सुवर्ण रत्नादि के आभूषण धारण करने का उपदेश। ( पृ० ५६६–५७० )

सू० [ ३८ ]—द्यावा पृथिवी रूप से राजा प्रजा और उनके कर्त्तव्यों का वर्णन। ( २ ) अश्ववत् रथधारक राजा का वर्णन। ( ५ ) चोरवत्

दुष्ट राजा की निन्दा, उत्तम राजा की प्रशंसा। ( ६ ) सूर्यवत् अश्ववत् और वरवत् वीर सेनापति का वर्णन। ( ८ ) विजुली वत् सेनापति। (९) रथवत् महारथी का वर्णन। 'दधिक्रा' सेनापति राजा का वर्णन। भयहेतु। ( पृ० ५७०–५७६ )

सू० [ ३९ ]—'दधिक्रा' परमेश्वर। राष्ट्र का संचालक, धारक राजा 'दधिक्रा' उसका अभिषेक। ( ३ ) दधिक्रा गुरु। (६) उनकी उपासना। ( पृ० ५७६–५७९ )

सू० [ ४० ]—दधिक्रा राजा, परमेश्वर। परस्पर स्नेही राजा प्रजा के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में परमेश्वर के गुण स्तवन। ( ३ ) वेगवान् बाणवत् और बाज़ पक्षी के तुल्य सेनापति। (४) वेग से बढ़ते अश्ववत् अभ्युदय-शील पुरुष का वर्णन। आत्मा का वर्णन। ( पृ० ५७९–५८३ )

सू० [ ४१ ]—इन्द्र वरुण गुरु जन। विनीत शिष्य के कर्त्तव्य। इन्द्र वरुण, स्त्री पुरुष, दिन रात्रि, प्राणापान। ( ४ ) राज्य के प्रधान दो पुरुषों के कर्त्तव्य। ( ५ ) गाड़ी के तुल्य वाणी और उसके अभ्यागत गुरु शिष्य, इन्द्र वरुण। ( ६ ) मेघ विद्युत्वत् राजा अमात्य इन्द्र वरुण। ( ७ ) माता पितावत् उनके कर्त्तव्य। ( ९ ) अर्थपति ज्ञानपति, इन्द्र वरुण। ( पृ० ५८३–५९१ )

सू० [ ४२ ]—राजा के कर्त्तव्य। आत्मा का वर्णन। ( २ ) राजा वरुण, परमेश्वर का वर्णन, उसका वैभव। ( ७ ) उसकी उपासना। (८) त्रसदस्यु का रहस्य। अध्यात्म व्याख्या। ( पृ० ५९१–५९७ )

सू० [ ४३ ]—स्त्री पुरुषों के उत्तम गुणों का वर्णन। ( पृ० ५९७–६०१ )

सू० [ ४४ ]—जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष के कर्त्तव्य। (पृ० ६०१–६०४)

सू० [ ४५ ]—गृहस्थ रथ का वर्णन। उसमें विद्वान् की जल अन्ना-दि से पूर्ण पात्रवत् स्थिति। किरणों वत् विद्वानों का अभ्युदय। ( ३ )

## अष्टमोऽध्यायः । ( पृ० ६२७—७१९ )

सू० [ ५४ ]—सविता, प्रभु, राजा, आचार्य। प्रभु की उपासना स्तुति प्रार्थना, ( ४ ) प्रभु का अविनाशी सत्य सामर्थ्य, (५) सब महान् शक्तियों, पञ्च भूतों के भी सामर्थ्य उसी उत्पादक के हैं। ( ६ ) सब उसी की विभूति हैं। ( पृ० ६४५—६४९ )

सू० [ ५५ ]—सर्वोपरि शासक की विवेचना। ( २ ) सर्वप्रिय विद्वान् जन। ( ३ ) स्त्री माननीया है, वह सब सुखों की जननी है। (४) उत्तम विद्वान् और स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य उत्तम भूमि और गृह आदि प्राप्त करें। (५) स्त्री को सब पापों से बचाने वाला उसका पति है। स्त्री उसके शरण की सदा प्रार्थना करे। ( ६ ) स्त्रियें कैसे पुरुष को वरें। और लोग वर वधू की प्रशंसा करें। (७) अदिति माता रूप स्त्री के कर्त्तव्य (८—९) अग्नि पुरुष, उषा स्त्री का कर्त्तव्य। सर्व देवमय पति। प्रभु। ( पृ० ६४९—६५४ )

सू० [ ५६ ]—सूर्य पृथिवीवत् वर वधू, स्त्री पुरुष और गुरु शिष्य, राजा प्रजा के कर्त्तव्यों का वर्णन। ( २ ) दोनों का उत्पादक विश्वकर्मा प्रभु। सुज्ञानी गुरु है। ( पृ० ६५४—६५८ )

सू० [ ५७ ]—खेतपाल के समान गृहस्थ में क्षेत्रपति पुरुष और संसार में क्षेत्रपति परमेश्वर और राष्ट्र में राजा के कर्त्तव्य। ( २—३ ) अन्न, फल, मूल आदि खाद्य सामग्री की समृद्धि की याचना (४—५) उत्तम रीति से कृषि का उपदेश। ( पृ० ६५८—६६२ )

सू० [ ५८ ]—समुद्र से उत्पन्न मधुमान् ऊर्मि का वर्णन। नाना पक्षों में स्पष्टीकरण। (२) वेदमय परम ज्ञान को धारण करने का आदेश। चतुःश्रृङ्ग गौर का रहस्य। ( ३ ) मर्त्य मात्र में प्रविष्ट चतुः श्रृंग, त्रिपाद्, द्विशिरा, सप्तहस्त महादेव वृषभ का आलंकारिक वर्णन। (८-१०) उत्तम स्त्रियों के समान घृतधारा और वाणियों का वर्णन। (पृ० ६६२—६७० )

इति चतुर्थं मण्डलम्

## अथ पञ्चमं मण्डलम् ( पृ० ६७१—        )

सू० [ १ ]—प्रातः यज्ञ। तरु की शाखाओं के समान विद्वानों को शाखा प्रशाखाओं में फैलने का आदेश। सूर्यवत् ज्ञानी पुरुष का वर्णन। उसके कर्त्तव्य। सूर्यवत् गुरु का शिष्यों के प्रति कर्त्तव्य। वाणियों द्वारा ज्ञानबीजारोपण, ज्ञानयज्ञ का वर्णन। शिष्यों का भूमिवत् और अग्निवत् ज्ञानाहुतियों का ग्रहण। ( ४ ) माता पितावत् गुरुजनों से शिष्य पुत्र की उत्पत्ति। (५) जीवन के पूर्व भाग में वनस्थों के बीच ज्ञानग्रहण का उपदेश। उसका अग्नि वा सूर्यवत् व्यवहार ( ७ ) ज्ञानी की यज्ञाग्निवत् स्थिति। ज्ञानी, गुरु, परम पावन, दान्त चित्त, पूज्य है, वही 'सहस्रशृङ्ग वृषभ' सूर्यवत् है। सहस्रशृङ्ग वृषभ का रहस्य। उसके कर्त्तव्य। ( पृ० ६७१—६७९ )

सू० [ २ ]—माता पुत्र के दृष्टान्त से आचार्य शिष्य और राजा और पृथिवी का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। ( ७ ) राजा के नाना कर्त्तव्य। शुनःशेप के बन्धन मोचन का रहस्य। ( पृ० ६८०—६८७ )

सू० [ ३ ]—अग्रणी नायक के ही वरुण, मित्र, इन्द्रादि नाना रूप और उनकी विशेषताएं। ( २ ) कन्या के पितावत् राजा के कर्त्तव्य। ( ७ ) राजा का रुद्ररूप। ( ७ ) पापी को कठोर दण्ड देने का विधान। ( ८ ) यज्ञाग्निवत् नायक पुरुष का रूप। ( ९ ) राजा का पुत्र और पितृ भाव। राजा पिता वसु। पक्षान्तर में परमेश्वर। ( पृ० ६८७—६९७ )

सू० [ ४ ]—वसुपति अग्नि राजा आचार्य प्रभु की स्तुति। ( २ ) हव्यवाड् यज्ञाग्निवत् विद्वान् का वर्णन। ( ३ ) परमपावनाग्नि विश्पति। ( ४ ) जातवेदा का समिदाधान। ( ५ ) दमूना अग्नि अतिथि का वर्णन। ( ६ ) दुष्टों का दमन और नाश। ( ९ ) नौकावत् प्रभु। ( १० ) उससे अमृतत्व की यज्ञ का रहस्य। ( पृ० ३९५—७०० )

सू० [ ५ ]—अग्निहोत्र, देवयज्ञ का वर्णन। विद्वान् अग्नि और

---

## अथ चतुर्थोऽष्टकः

### प्रथमोऽध्यायः ( पृ० ७२०- )

सू० [ १२ ]—वृष्ट्यर्थ यज्ञाहुति के तुल्य नायक पुरुष के प्रजा का करादि त्याग, सत्य ज्ञान और सत्याचरण का उपदेश। ( ३ ) विना भूमि के जैसे बीज नहीं फलता इसी प्रकार विना प्रजा वा पृथिवी के राष्ट्र नहीं समृद्ध होता। राजा को उसी को प्राप्त करने का उपदेश। उसके लिये कुछ आवश्यक ज्ञातव्य बातें। (५) दुष्टों का स्वयं नाश। (पृ० ७२०–७२२)

सू० [ १३ ]—विद्वान् तेजस्वी पुरुष की सेवा-शुश्रूषा, उसका समर्थन। अपने ऐश्वर्य के निमित्त प्रजा का राजा का आश्रय ग्रहण। ( पृ० ७२२–७२५ )

सू० [ १४ ]—परमेश्वर की स्तुति। विद्वान् शिष्यादि का ज्ञानवान् करने का आदेश। यज्ञाग्निवत् उसकी उपचर्या। ( ४ ) उसके दस्युनाशक सामर्थ्य की उत्पत्ति। ( पृ० ७२५–७२७ )

सू० [ १५ ]—उत्तम विद्यावान् श्रेष्ठ जन का अभिषेक। उसके गुणों की स्तुति। ( ३ ) उसके प्रति अधीनों के कर्त्तव्य। उसके मातृवत् कर्त्तव्य। विद्युत्वत् उसका उग्र सामर्थ्य। चौरवत् उसका धनान्वेषण का कर्त्तव्य। ( पृ० ७२७–७४० )

सू० [ १६ ]—मित्रवत् अग्नि का स्थापन, उस अग्निवत् विद्वान् अग्रणी नायक का कर्त्तव्य। (३) सम्पन्न जनों के नायक के प्रति कर्त्तव्य। ( पृ० ७४०–७४२ )

सू० [ १७ ]—यज्ञाग्निवत् उत्तम अध्यक्ष की स्तुति। उसके कर्त्तव्य। ( पृ० ७४२–७४४ )

सू० [ १८ ]—प्रातः स्मरणीय प्रभु की उपासना। उत्तम विद्वान् अधिनायक वृद्ध का आदर सत्कार। ( ४ ) नायक जन कैसे बनें। ( पृ० ७४४–७४६ )

सू० [ १९ ]—जीव बालकवत् अग्नि की उत्पत्ति। ( २ ) जीवों का पुरियों में प्रवेश। ( ३ ) जीवों को अन्न द्वारा पोषण ( ४ ) न्याय से

शासन कर्त्ता की स्वस्थ शरीरवत् वृद्धि। वायु से धौंके हुए अग्नि के तुल्य नायक की बलवान् सहयोगी से वृद्धि। ( पृ० ७४६—७४९ )

सू० [ २० ]—विद्वान् का उपदेश करने का कर्त्तव्य। उसका आदर सत्कार करने का उपदेश। ( पृ० ७४९—७५१ )

सू० [ २१ ]—मनुष्यवत् अग्नि, विद्युत् आदि का स्थापन। विद्वान् सन्देशहर अग्नि। उसका आदर सत्कार। ( पृ० ७५१—७५२ )

सू० [ २२ ]—अग्रणी पुरुष का आदर सत्कार। (पृ० ७५२—७५४)

सू० [ २३ ]—अग्रणी नायक के कर्त्तव्य। ( पृ० ७५४—७५६ )

सू० [ २४ ]—अग्रणी प्रमुख अध्यक्ष के प्रति प्रजा के निवेदन। (पृ० ७५६—७५७ )

सू० [ २५ ]—प्रभु परमेश्वर और राजा वा नायक से प्रजाओं की प्रार्थना। ( ४ ) यन्त्रचालक। अग्निवत् अध्यक्ष के कर्त्तव्य। ( ५ ) पक्षान्तर में आचार्य के कर्त्तव्य। (७) जिम्मेवारी का 'अग्नि' पद। (८-९) विद्युत् के तुल्य उसके कर्त्तव्य। ( पृ० ७५७—७६१ )

सू० [ २६ ]—ज्ञानवान् गुरु के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में विद्युत् का वर्णन। उत्तम पुरुष का उच्च पद पर स्थापन। ( पृ० ७६१—७६४ )

सू० [ २७ ]—इन्द्र पद। उस पद के अधिकारी का कर्त्तव्य। पक्षान्तर में विद्वान् के कर्त्तव्य। त्रसदस्यु की व्याख्या। ( ४-६ ) शिष्य गुरु के कर्त्तव्य। अश्वमेध की व्याख्या। ( पृ० ७६४—७६८ )

सू० [ २८ ]—प्रातःकालिक सूर्य, यज्ञाग्निवत् राजा के कर्त्तव्य। उषा के दृष्टान्त से विदुषी के कर्त्तव्यों का वर्णन। ( २ ) सूर्यवत् वृष्टि हेतु होकर प्रजा की समृद्धि का कारण हो। ( ४ ) यज्ञाग्निवत् राजा की दीप्ति, तेज। ( ५ ) उसको अधीनों को भृति देने का उपदेश। ( ६ ) उसका आदर करने का उपदेश। ( पृ० ७६८—७७१ )

सू० [ २९ ]—तीन प्रधान बल। तीन सभाओं द्वारा राजा का

स्थापन। (२) उसका राजदण्ड ग्रहण। दुष्टों के दमन का कर्त्तव्य। (३) राष्ट्रैश्वर्य पालन, शत्रु नाशक। (४) सेनाओं का प्रवन्ध और सिंहवत् पराक्रम। (५) राष्ट्र से करादान, नवभूमि विजय, और उस पर अध्यक्ष स्थापन। शिल्पी के तुल्य वलवान् राजा के कर्त्तव्य। (७) २०० बड़े अध्यक्षों का स्थापन। सभाओं वा त्रिविध सैन्यों का स्थापन। (८-९) युद्धार्थ प्रयाण। शत्रु नाश। (१२) विद्वान् आचार्य की गोरस से पूर्ण पात्र से तुलना। उसी प्रकार सम्पन्न राजा का वर्णन। पक्षान्तर में परमात्मा की उपासना और आत्म समर्पण। (१३) उसकी स्तुति-अर्चा। (पृ० ७७१—७८० )

सू० [ २० ]—बीज निधाता प्रभु और कोशसञ्चयी राजा का वर्णन। विद्यादाता गुरु का वर्णन। (५) विद्युत् के दृष्टान्त से राजा का वर्णन। (६) प्रजा समृद्ध्यर्थ दुष्टों का दमन। (७) गोदुग्धवत् कर संग्रह का उपदेश। अवश्य दण्डनीय का शिरच्छेद। पुरस्कार योग्य कामना। (८) शत्रु नाशार्थ सैन्य सञ्चालन। (१०) शत्रु की छानवीन, स्वशक्ति वर्धन। (१२) भूमियों का अध्यक्षों में विभाग और प्रबन्ध। (१३) अधीन-जनों का राजा से पुत्र पिता का सा सम्वन्ध। (१४) सूर्यवत् राजा का राष्ट्र भोग। (पृ० ७८०— )

सू० [ २१ ]—सूर्यवत् सेनापति राजा का वर्णन। (२) राजा अधर्म में पैर न रखे, समवाय बनावे, और राष्ट्र में अविवाहितों को विवा-हित करके राष्ट्र की प्रजा-वृद्धि का प्रवन्ध करे। (३) राजा शत्रु से भूमि की रक्षा करे। (४) प्रजा राजा की शक्ति बढ़ावे। (५) शत्रु पर आक्रमण का उपाय। (६) नये २ साहस कार्यों का उपदेश। (७) राजा वा प्रधान का कर्त्तव्य। राष्ट्रवृद्धि, वा शत्रुनाश, शक्तिसंचय। (८) ज्ञान, पालन का प्रवन्ध। सैन्य का धारण। (९) सेनापति और सैन्य के कर्त्तव्य। (१०-११) नाना योग्य पुरुषों की नियुक्ति, यन्त्र के

मुख्य चक्रवत् सैन्य चक्र का संचालन। ( १२ ) राष्ट्र का प्रेम से भरण पोषण। ( पृ० ७८९–७९६ )

सू० [ ३२ ] सूर्यवत् वीर राजा के नाना कर्त्तव्य। ( २ ) कृषक के समान राजा के कर्त्तव्य। ( ३ ) सिंहवत् राजा के कर्त्तव्य। ( ४ ) वर्षते मेघ वा विद्युत्वत् राजा के कर्त्तव्य। (५) शत्रु को बन्दी कर लेने का उपदेश। ( ६ ) शत्रु को नाश करने का उपदेश। ( १० ) स्त्रीवत् भूमि का पालन। ( ११ ) पञ्चजनों का स्वामिवरण। ( १२ ) दानशील राजा और त्यागी विद्वान्। इति प्रथमोऽध्यायः। ( पृ० ७९६–८०३ )

## अथ द्वितीयोऽध्यायः

सू० [ ३३ ]—उत्तम नायक के अधीन निर्वलों का प्रबल संघ। अध्यक्ष के कार्य। ( ४ ) उर्वरा भूमियों का विजय। राजा के शासन की विशेषता। (६) राज पुरुष की विशेषता वसुपति राजा। (७) सेना और प्रजा के लिये अन्न-जल का प्रबन्ध करना राज्य का कर्त्तव्य। ( ८ ) विद्वानों वीरों के सहयोग से उत्तम प्रबन्ध। ( ९ ) राष्ट्र शरीर को सुशोभित करने का प्रकार। (१०) मुद्रांकित राजशासनों का प्रचार। (पृ०८०४–८०८)

सू० [ ३४ ]—प्रजा का पतीवत् राजा को वरण, राजा का अजातशत्रु रूप। तदनुरूप पदों के कर्त्तव्य। ( २ ) अन्न-भोजन वत् राष्ट्रैश्वर्य भोग। ( ३ ) आरोग्य-सम्पादन। ( ४ ) वैरी का पूर्ण दमन। ( ५ ) मित्रता के अयोग्य और योग्य का विवेक। राजचक्र में सूर्यवत् राजा के कर्त्तव्य। (७) राजा योग्य अयोग्य को पारितोषिक और दण्ड दे। पात्रानुरूप धन का विभाग करे। ( ८ ) समृद्धों और बलवानों में भी व्यवस्था करे। उनको लड़ने न दे। राजा प्रजा के परस्पर कर्त्तव्य। ( पृ०८०९–८१४ )

सू० [३५]—राजा वा आचार्य प्रजार्थ ही शक्तियों, ज्ञानों और सभादि को धारण करें और उनको भी सम्पन्न करे। उसके अन्यान्य कर्त्तव्य। (५) प्रयाण का आदेश। (७) प्रयाण और युद्धकालिक कर्त्तव्य। (पृ०८१४–८१७)

सू० [ ३६ ]—समृद्धिकाम राजा की करसंग्रह की नीति। ( २ )

राष्ट्रपालन में स्थान २ पर सैन्य-संस्थापन। मुख के जबड़ों के समान सेनाओं की स्थिति। ( ३ ) अशक्त प्रजा की स्थिति और उसका कर्त्तव्य। ( ४ ) ब्रह्म क्षत्र वर्ग का राजा के साथ सम्बन्ध ( ५ ) बलशाली, समृद्ध उत्तम राजा का कर्त्तव्य। ( ६ ) अधीन दो प्रमुख। और प्रजा द्वारा उसका आदर। ( पृ० ८१७–८२० )

सू० [ ३७ ]—विद्युत्वत् विजयशील बलवान् नेता का कर्त्तव्य। ( ३ ) प्रजारक्षार्थ शासन। ( ४ ) पतीवत् पालक प्रभु का वरण। ( ४ ) समृद्ध सम्पन्न राजा। ( पृ० ८२१–८२३ )

सू० [ ३८ ]—उत्तम राजा के कर्त्तव्य। ( पृ० ८२३–८२५ )

सू० [ ३९ ]—राजा के प्रजा को समृद्ध करने के कर्त्तव्य। दानशील को उपदेश। सर्वदाता प्रभु। उसकी स्तुति। ( पृ० ८२५–८२८ )

सू० [ ४० ]—सोमपति इन्द्र राजा के कर्त्तव्य। ( २ ) उसका बल और बलका उपयोग। ( ३ ) तेजस्वी होने का उपदेश। ( ५ ) चक्र-द्वारा उत्पन्न सूर्यग्रहण के दृष्टान्त से राजा के कर्त्तव्य का वर्णन। (८) शत्रु-नाश के उपाय। ( पृ० ८२८–८३३ )

सू० [ ४१ ]—मित्र और वरुण। उनके कर्त्तव्य। ( ३ ) अश्वी, स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य। ( ४ ) कार्यकर्त्ताओं की अविलम्बकारी होने का उपदेश। ( ५ ) सामान्य विद्वान् जनों के कर्त्तव्य ( ६ ) वायु तीव्रगामी साधन का रथ में उपयोग। प्रजाओं के कर्त्तव्य। ( ७ ) उषासानक्ता, दिन रात्रिवत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (८) पोष्य वर्ग का आदर। पालन-कर्त्ताओं के कर्त्तव्य। ( १० ) वैद्युतिक अग्नि, तद्वत् तेजस्वी नायक के कर्त्तव्य। ( ११ ) वृद्ध गुरु जनों के कर्त्तव्य। ( १२ ) प्रजा और शासक के परस्पर के कर्त्तव्य। (१४) उत्तम विद्वान् के कर्त्तव्य। सेना के कर्त्तव्य। विद्वानों के कर्त्तव्य। ( ११ ) सर्वमाता वाणी। ( पृ० ८३३–८४४ )

सू० [ ४२ ]—वाणी का वर्णन। पक्षान्तर में पञ्चजन की वाणी का आदर ( २ ) अखण्ड शासक परिषत् अदिति। उसके मातृवत् कर्त्तव्य,

(३) विद्वानों में उत्तम का अभिषेक। राजा विद्वान् के कर्त्तव्य, ज्ञान वितरण। उत्तम नाना शासकों को अप्रमादी होने का उपदेश। ( ७ ) प्रधान पद योग्य जन। दुष्टों और कदर्यों को दण्ड। (११) वीर पुरुष का आदर। रुद्र का रहस्य। वैद्यवत् वीर जन स्त्रियोंवत् उत्तम नदियों नहरों का उपयोग। (१३) गृहस्थ वत् राज्य-व्यवहार। पक्षान्तर में 'आहना' प्रकृति का वर्णन ( १४ ) मेघवत् गुरु का कर्त्तव्य। ( १५ ) सैन्य बल का कर्त्तव्य। राजाज्ञा की व्यापकता और मान्यता हो। शासन में अपीड़ित प्रजा का रहना। स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। ( पृ० ८४४–८५३ )

सू० [ ४३ ]—नदीवत् वाणी का वर्णन। ( २ ) माता पिता के प्रति कर्त्तव्य। ( ३ ) किरणों वत् विद्वानों का कर्त्तव्य। उत्तम अन्न जल से सत्कार करने का उपदेश। वायुवत् और सूर्यवत् क्षत्रियों का कर्त्तव्य। ( ६ ) अन्नवत् ज्ञानोपार्जन। ( ७ ) किरणोंवत् और गुरुओं का शिष्यों को तप करने का उपदेश। ( ८ ) उत्तम शान्तिदायक वाणी का प्रयोग हो। स्त्री पुरुष समान रूप से उन्नति पथ पर बढ़ें ( ९ ) ज्ञानवान् बलवानों का आदर ( १० ) शिष्यों, वीरों के कर्त्तव्य, वायु मरुत शिष्य, प्रजा वैश्य जन हैं। (११) नदीवत् वाणी और स्त्री का वर्णन। अधिकार, न्याय-शासन योग्य पुरुष। (१२) शस्त्र-सज्जित राजा के कर्त्तव्य। (१४) जलवत् राजा का अभिषेक संस्कार। (१५) मातृवत् राजा वा गुरु का कर्त्तव्य। प्रजा पीड़ारहित राज्य में रहे। सुखदायक नीति से रहें। ( पृ० ८५३–८६२ )

सू० [ ४४ )—राजा को राष्ट्र-दोहन का उपदेश। ( २ ) राष्ट्र की रक्षा और समृद्धि का उपाय। ( ३ ) राजा की उन्नति का मार्ग। ( ४ ) करादान की विधि। ( ५ ) प्रजा को बढ़ाने का उपदेश। ( ६ ) वृक्षों के तुल्य शासक जनों को दयालु होने का उपदेश। (७) उत्तम राजा प्रजा के कर्त्तव्य। (९) उत्तम वाणी, उत्तम गति उन्नति का मूल है। ( १० ) नायक होने योग्य पुरुष। ( ११ ) उत्तम सेनानायक। ( १२ ) उदार

इति चतुर्थेऽष्टके द्वितीयोऽध्यायः ॥

---

## शुद्धाशुद्ध-पत्रम्

| पृष्ठ | पं० | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ७८ | ६,७ | सत्यमा स्थायी | सत्य या स्थायी |
| ९२ | २२ | प्रकाशमान् | प्रकाशमान |
| १४७ | ४ | प्रकाश युक्त से | प्रकाश से युक्त |
| १७० | १८ | उपदेय | उपादेय |
| २३८ | १२ | विद्यमान् | विद्यमान |
| २५४ | ११ | सर्वने | सर्वने |
| २७२ | १८ | अद्धात् | अद्धा |
| ४१९ | २२ | (त्वां) | (तां) |
| ४२९ | २५ | पुरुष····संग | पुरुष से····संगत |
| ४५९ | २२ | विकृति में | विकृतियें |
| ४७६ | १८ | [ २० ] | [ २१ ] |
| ४८६ | ९ | मच्छति | यच्छति |
| ५१० | १४ | राजा को | राजा की |
| ५९१ | ६ | ( प्रकीळान् ) | ( प्रक्रीडान् ) |
| ६८१ | १९ | कुमार अतिज्ञान | अतिज्ञान |

❀ ओ३म् ❀

# ऋग्वेद-संहिता

---

## अथ तृतीयोऽष्टकः

### ( तृतीये मण्डले )

### [ ७ ]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ६, ९, १० त्रिष्टुप् । २, ३, ४, ५, ७ निचृत् त्रिष्टुप् । ८ स्वराट् पङ्क्तिः । ११ भुरिक् पङ्क्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

**प्र य आरुः शितिपृष्ठस्य धासेरा मातरा विविशुः सप्त वाणीः । परिक्षिता पितरा सं चरेते प्र सर्स्राते दीर्घमायुः प्रयक्षे ॥ १ ॥**

भा०—( धासेः ) दुग्धपान करने वाले बालक के ( मातरा ) माता और पिता दोनों ( परिक्षिता ) उसके ऊपर और उसके साथ रहने वाले ( पितरा ) पालक होकर ( प्रयक्षे ) उत्तम मैत्रीभाव और संगति लाभ करने तथा उत्तम दान प्रतिदान करने के लिये ( संचरेते ) साथ मिलकर धर्म का आचरण करें । ( दीर्घम् आयुः ) वे दीर्घ आयु ( प्रसर्स्राते ) प्राप्त करते हैं । परन्तु जो लोग ( शितिपृष्ठस्य ) सूक्ष्म विषयों पर भी प्रश्न-शील और ( धासेः ) ज्ञान धारण करने या ज्ञान-रस का पान करने वाले विद्वान् शिष्य ब्रह्मचारी के ( मातरा ) माता और ( पितरा ) पिताओं के

समान उत्पादक और पालक गुरुजनों को ( प्र आरुः ) उत्तम रीति से प्राप्त होते हैं वे ( सप्त वाणीः ) सातों प्रकार की छन्दोमयी वाणी को ( विविशुः ) प्रविष्ट होते हैं । उनका ज्ञान विस्तृत होता है और वे दोनों (परिक्षिता पितरा) शिष्य और गुरु साथ रहने वाले, वा दोषों को सब प्रकार से दूर करने वाले पालकजनों का मां बाप के समान ही ( प्र यक्षे ) आदर करता हूं। वे ज्ञान प्रदान करने के लिये उसके ( सं चरते ) साथ रहते और उसके ( दीर्घम् आयुः ) दीर्घ जीवन और ज्ञान को ( प्रसर्साते ) फैलाते हैं। ( २ ) तीक्ष्ण स्पर्श होने से अग्नि 'शितिपृष्ठ' है नीलपृष्ठ होने से सूर्य 'शितिपृष्ठ' है । किरणों द्वारा जल पान करने से 'धासि' है । (३) इसी प्रकार ज्ञानमय स्वरूप होने से परमेश्वर 'शितिपृष्ठ' और जगत् के धारण करने से 'धासि' है ।

**दिवक्षसो धेनवो वृष्णो अश्वा देवीरा तस्थौ मधुमद्वहन्तीः ।**
**ऋतस्य त्वा सदसि क्षेमयन्तं पर्येका चरति वर्तनिं गौः ॥ २ ॥**

भा०—( वृष्णः ) जल वर्षण करने वाले सूर्य की ( अश्वाः ) व्यापनशील किरणें जो ( दिवक्षसः ) प्रकाश और आकाश में व्यापती हैं वे ही ( धेनवः ) स्वयं रस-पान करने वाली और संसार भर को रस-पान कराने वाली गौओं के समान हैं । उन ( देवीः ) प्रकाशमयी और ( मधुम् उद्वहन्तीः ) जल को ऊपर उठा लेने वाली किरणों को वह सूर्य ही (आतस्थौ) धारण करता है । और ( ऋतस्य सदसि ) जल के या इस गतिशील संसार की स्थिति के एकमात्र स्थान आकाश देश में ( क्षेमयन्तं ) रक्षा करने और सुख शान्ति देने वाले सूर्य के ( परि ) चारों ओर ( एका गौः ) एक यह पृथिवी ( वर्तनिं ) वार २ लौटकर आने वाला मार्ग ( चरति ) चलती है । उसी प्रकार ( वृष्णः ) बलवान् पुरुष, राजा की ही (अश्वाः) शीघ्रगामिनी अश्व सेनाएं और ( दिवक्षसः ) विजय कामना में लगी और व्यवहार तथा विज्ञानोपार्जन में लगी प्रजाएं ही ( धेनवः ) उसकी रस

पिलाने वाली गौओं के समान हैं। वह बलवान् पुरुष ( देवीः ) कर आदि देने और ऐश्वर्यादि की कामना करने वाली ( मधुम् उद्वहन्तीः ) अन्न और बल को उत्तम रीति से धारण करने वाली प्रजाओं पर गृहपति के समान ( आ तस्थौ ) अध्यक्षवत् विराजता है। हे राजन्! (ऋतस्य) सत्य व्यवहार वा अन्न से पूर्ण ( सदसि ) राजसभा में और महलों में ( क्षेमयन्तं ) सबका कल्याण और प्रजा का रक्षण कार्य करते हुए ( त्वा परि ) तेरे ही आश्रय करके ( एका गौः ) यह समस्त पृथिवी ( वर्त्तनिं ) सन्मार्ग और लोक व्यवहार पर ( चरति ) चलती है।

**आ सीमरोहत्सुयमा भवन्तीः पतिश्चिकित्वान्रयिविद्रयीणाम्।**
**प्र नीलपृष्ठो अतसस्य धासेस्ता अवासयत्पुरुधप्रतीकः॥ ३॥**

भा०—जिस प्रकार ( सीम् ) सूर्य ( पतिः ) पालक ( रयिविद् ) भूमि को प्राप्त कर ( भवन्तीः ) उत्पन्न या प्रकट हुई ( सुयमाः ) उत्तम नियमों में व्यवस्थित रश्मियों या दीप्तियों को ( अरोहत् ) उत्पन्न करता है और वही ( नीलपृष्ठः ) नील वर्ण होकर भी ( पुरुधप्रतीकः ) बहुत प्रकार के स्थावर जंगमों को धारण करने वाले सामर्थ्य से युक्त होकर ( धासेः ) विशेष नील वर्ण को धारण करने में समर्थ (अतसस्य) अलसी नामक पौदे के भीतर ही ( ताः प्र अवासयत् ) उन २ विशेष वर्ण की व्यापक रश्मियों को प्रविष्ट करा देता है उसी प्रकार ( चिकित्वान् ) ज्ञानवान् विद्वान् ( रयीणाम् ) ऐश्वर्यों का ( रयिवित् ) स्वामी ( पतिः ) सर्वपालक ( सुयमाः ) उत्तम सुखपूर्वक नियम में आने वाली ( भवन्तीः ) प्रजाओं को वश कर उन पर ( सीम् ) सब प्रकार से ( आ अरोहत् ) अधिष्ठित रहता है। और वही ( नीलपृष्ठः ) नील वर्ण का पीठ पर लवादा पहनकर अथवा ( नील-पृष्ठः ) नील मेघ के समान सौम्य और (पुरुधप्रतीकः) बहुतों को धारण करने में समर्थ ज्ञान और बल से सुस्वरूप होकर ( अतसस्य ) निरन्तर गमन करने में समर्थ, आक्रमण आदि करने

में तैयार ( धासेः ) धारण पोषण नरने में तत्पर पुरुष के समान ( ताः ) अपनी उन प्रजाओं को ( प्र अवासयत् ) उत्तम रीति से बसा देता है। ( २ ) गृहस्थपक्षमें—( सुयमाः ) शुभ रीति से विवाह करने वाली, उत्तम गृह प्रबन्ध करने में या उपरति करने में समर्थ ( भवन्तीः ) होती हुई दारा को ज्ञानी धनी पति प्राप्तकर सन्तान उत्पन्न करता है। सौम्य स्वरूप होकर अपने व्यापक धारक पोषक कार्य द्वारा उनको 'वासित' गर्भित करता है।

**महि त्वाष्ट्रमूर्जयन्तीरजुर्यं स्तभूयमानं वहतो वहन्ति।**
**व्यङ्गेभिर्दिद्युतानः सधस्थ एकामिव रोदसी आ विवेश ॥ ४ ॥**

भा०—जिस प्रकार ( स्तभूयमानं ) स्तम्भन करने या थाम रखने वाले ( त्वाष्ट्रम् ) शिल्पी द्वारा बनाये यन्त्र-प्रबन्ध को ( ऊर्जयन्तीः ) अधिक बल देने वाली शक्तियों को ( वहतः ) रथादि पदार्थ ( वि अङ्गेभिः वहन्ति ) विविध अंगों, अवयवों, कल पुर्जों से धारण करते हैं, ( सधस्थे ) अपने ही साथ के स्थान में ( दिद्युतानः ) दीप्तिमान् अग्नि, विद्युत् ( रोदसी ) शब्द करने या बल को रोकने वाले दो स्थानों में ( एकाम् ) एक के समान ही प्रवेश करता है और जिस प्रकार सबको ( स्तभूयमानं ) स्तम्भन और धारण करने वाले ( अजुर्यम् ) न जीर्ण होने वाले स्थायी ( त्वाष्ट्रं ) सूर्य के तेज को (ऊर्जयन्तीः) बल रूप में बदलने वाली दीप्तियों को ( वहतः ) दूर तक ले जाने वाले तरङ्ग रूप किरण ( वि अङ्गेभिः ) विविध अंगों या प्रकाश के कणों के रूप में ( वहन्ति ) दूर तक पहुंचाने में समर्थ होते हैं और ( दिद्युतानः ) प्रकाशमान सूर्य या विद्युत् ( सधस्थे एकाम्-इव ) शयन स्थान में एक स्त्री को एक पुरुष के समान (रोदसी) आकाश और पृथिवी के बीच के भाग को भी ( आविवेश ) व्याप लेता है। उसी प्रकार ( स्तभूयमानं ) स्तम्भन करने वाले ( त्वाष्ट्रम् ) सूर्य के समान तीक्ष्ण प्रकाशवान् ( अजुर्यं ) अक्षय (महि) महान् ( ऊर्जयन्तीः )

और बल और ऐश्वर्य करने वाली प्रजाओं को (वहतः) अपने अधीन और अपने ऊपर ले चलने वाले नायकगण (वि अंगेभिः) अश्व, रथ, पदाति आदि विविध सेनाओं तथा विविध राज्यांगों द्वारा (वहन्ति) धारण करते हैं। इसी प्रकार विविध अंगों से (दिद्युतानः) प्रकाशित होने वाला मुख्य नायक भी (रोदसी) शब्दकारिणी अपनी और परायी या अपने अगल बगल की शत्रु रोकने में समर्थ सेना को (सधस्थे एकामिव) गृह में एक स्त्री को एक पति के समान प्रेम से (आविवेश) व्याप ले, उसे वश में किये रहे।

जानन्ति वृष्णो अरुषस्य शेवमुत ब्रध्नस्य शासने रणन्ति।
दिवो रुचः सुरुचो रोचमाना इळा येषां गण्या माहिना गीः॥५॥१॥

भा०—(येषां) जिनकी (इळा) इच्छा और स्तुति योग्य वाणी और भूमि (गण्या) गणना करने योग्य, पूज्य एवं गण अर्थात् सैन्य दलों और जनों की हितकारिणी और (गाः) उत्तम वाणी, उपदेश (माहिना) बड़ी महत्वपूर्ण सत्कार करने योग्य होती है वे (दिवः-रुचः) प्रकाश से कान्तिमान् सूर्यों के समान तेजस्वी, विद्या प्रकाश में रुचि रखने वाले (सुरुचः) उत्तम कान्तियुक्त, सुखप्रद, उत्तम रुचियों वाले (रोचमानाः) स्वयं चमकते हुए, सबको अच्छे लगते हुए, सर्वप्रिय होते हैं। वे (अरुषस्य) अहिंसक, रोषरहित, तेजस्वी (वृष्णः) बलवान् आचार्य, राजा या सेनापति के (शासने) शासन या उपदेश में (शेवं जानन्ति) सुख अनुभव करते हैं। (उत) और वे ही (ब्रध्नस्य) सबको नियम व्यवस्था में बांधने वाले, सर्वाश्रय, सूर्यवत् तेजस्वी आचार्य राजा के (शासने) शासन में (रणन्ति) उत्तम ज्ञान का अभ्यास करते और अति प्रसन्न होते हैं। इति प्रथमो वर्गः॥

उतो पितृभ्यां प्रविदानु घोषं महो महद्भ्यामनयन्त शूषम्।
उक्षा ह यत्र परि धानमक्तोरनु स्वं धाम जरितुर्ववक्ष॥६॥

भा०—जिस प्रकार ( उक्षा ) सेचन में समर्थ बलवान् सूर्य ( जरितुः अक्तोः ) शब्द करने और जल सेचन करने वाले मेघ को ( परिधानं ) सब प्रकार से धारण करने में समर्थ ( स्वं धाम ) अपने तेज को अनुकूलता से धारण करता है और उस समय (महद्भ्याम् पितृभ्याम् ) बड़े पालक सूर्य और पृथिवी या आकाश और भूमि दोनों से लोग ( घोषम् अनु प्रविदा ) गर्जन के अनन्तर उत्तम जल लाभ से ( महः शूषम् अनयन्त ) बड़े भारी सुख और अन्न को प्राप्त करते हैं और जिस प्रकार सूर्य जब ( अक्तोः परिधानं ) रात्रि के अनन्तर उसको दूर करने वाले ( जरितुः स्वं धाम ) और रात्रि को जीर्ण करने वाले अपने तेज को ( ववक्ष ) पहुंचाता है तब ब्रह्मचारी लोग ( महद्भ्यां पितृभ्याम् अनु ) बड़े पूजनीय पालक या माता पिता और आचार्य इनसे ( घोषम् अनु ) वेद के अनुकूल ( प्रविदा ) उत्तम ज्ञान प्राप्त करके ( महः शूषम् ) बड़ा बल, ज्ञान और सुख प्राप्त करते हैं ( २ ) गृहस्थपक्ष में—( उक्षा ) वीर्य सेचन में समर्थ और गृहस्थ भार को वहन करने में समर्थ दृढ़ युवा पुरुष ( यत्र ) जब ( अक्तोः ) विशेष कान्तिमती या अपना अभिप्राय या कामना प्रकट करने वाली स्त्री के लिये ( परि-धानं ) पहनने के वस्त्र या सब प्रकार से धारण पोषण के पदार्थ और ( जरितुः अनु ) आयु को जरावस्था को पहुंचाने वाली स्त्री के ( अनु ) मनोनुकूल ( स्वं-धाम ) अपना गृह ( ववक्ष ) धारण करता है ( उत उ ) तब ( पितृभ्यां महद्भ्यां ) पूजनीय दोनों पिताओं अर्थात् स्वपिता और श्वशुर दोनों से ( घोषम् अनु प्रविदा ) वेदोपदेश के अनुसार उत्तम स्त्री लाभ करने के अनन्तर ( महः शूषम् अनयन्त ) सभी बड़ा सुख लाभ करते हैं। अथवा ( जरितुः अक्तोः ) अपनी आयु को जीर्ण कर देने वाली और अपने गुणों को पुरुषों में अभिव्यक्त करने में समर्थ स्त्री ( उक्षा ) वीर्य सेचक पति ( परिधानं ) सब प्रकार से धारण करने योग्य ( स्वं धाम ) अपना वीर्य-

मय तेज या पुत्रादि रूप से उत्पत्ति को ( अनु वचक्षे ) अनुरूपता से प्राप्त कराता है तब बड़े पालक पिता और आचार्य से वेदाध्ययन के अनन्तर उत्तम ज्ञान प्राप्त करके वे पुत्रादि ही बड़ा ज्ञान और बल एवं सुख प्राप्त करें ।

**अध्वर्युभिः पञ्चभिः सप्त विप्राः प्रियं रक्षन्ते निहितं पदं वेः ।**
**प्राञ्चो मदन्त्युक्षणो अजुर्या देवा देवानामनु हि व्रता गुः ॥ ७ ॥**

भा०—जिस प्रकार यज्ञ में ( सप्त विप्राः ) उद्गाताओं को छोड़कर शेष १२ ऋत्विजों में सात होता का कार्य करने वाले ( पञ्चभिः अध्वर्युभिः ) पांच यज्ञकर्त्ताओं के साथ मिलकर अथवा पांच अध्वर्युओं सहित पत्नी और यजमान सब सात विद्वान् होकर ( वेः प्रियं पदं ) कान्तिमान् अग्नि के स्थान, यज्ञ की ( रक्षन्ते ) रक्षा करते हैं और ( अजुर्या उक्षणः देवाः) अविनाशी, जलादि सेचन समर्थ कान्तिमान् सूर्य की किरणें (प्राञ्चः) पूर्व दिशाओं में प्रकट होकर ( देवानाम् व्रता अनु गुः ) जल देने वाले मेघों के कार्यों का अनुगमन करते हैं । उसी प्रकार अध्यात्म में—(सप्त विप्राः) सात या सर्पणशील निरन्तर गति करने हारे और शरीर को विविध प्रकार से पूर्ण करने वाले सात प्राण या देहस्थ सात धातुगण ( पञ्चभिः ) पांच ( अध्वर्युभिः ) देह को न मरने देने वाले, उसको जीवित रखने वाले पांच इन्द्रियों सहित अथवा पांच इन्द्रियों सहित मन और बुद्धि मिलकर सातों ( निहितं ) भीतर स्थित ( वेः ) व्यापक या कान्तिमान् प्रकाशस्वरूप ज्योतिर्मय आत्मा के ( प्रियं ) अति प्रिय, मनोहर ( पदं ) स्वरूप की ( रक्षन्ते ) रक्षा करते हैं, उसको अपने भीतर धारण करते हैं । वे प्राण गण ( प्राञ्चः ) आगे की ओर को प्रकट होने वाले ( उक्षणः ) सुख के सेचन और देह को धारण करने हारे ( अजुर्याः ) कभी जीर्ण न होने वाले ( देवाः ) कान्तिमय और कामनाशील होकर ( देवानाम् व्रता ) सूर्य की किरणों के कर्त्तव्यों का ( अनु गुः हि ) अनुसरण करते हैं । अर्थात् जिस

प्रकार ( पञ्चभिः ) वचन या परिपाक करने में समर्थ अहिंसक किरणों से मिलकर ( सप्त ) वेगवान् किरण सूर्य के प्रिय स्वरूप को रखते हैं और वे सेचन समर्थ होते और प्रकाश करते हैं उसी प्रकार ये इन्द्रियगण भी भीतर रस-सुख सेचन करते और सब पदार्थों का ज्ञान प्रकाशित करते हैं। और वे ही ( मदन्ति ) सबको हर्षित और सुखी भी करते हैं।

**दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।**
**ऋतं शंसन्त ऋतमित्त आहुरनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः ॥ ८ ॥**

भा०—जिस प्रकार दो ( दैव्या ) देने और लेने वाले ( होतारा ) जल देने और जलाकर्षण करने वाले (प्रथमा )सबसे श्रेष्ठ सूर्य और पृथ्वी दोनों मुख्य करके जाने जाते हैं, जिनके आश्रय पर ( सप्त पृक्षासः ) गतिशील जलसेचक मेघ ( स्वधया ) अन्न और जल से सबको ( मदन्ति ) हर्षित करते हैं वे ( ऋतं शंसन्तः ) जल की ही सूचना गर्जना द्वारा देते हुए ( दीध्यानाः ) प्रजाओं का धारण पोषण करते हुए (व्रतपाः) अपने नियमों का पालन करते हुए ( व्रतम् अनु ) नियम के अनुसार या जल के अनुपात में या वरणकारी व्यापक जल के पालक ( ऋतम् इत् आहुः ) अन्न की सूचना देते हैं। उसी प्रकार मैं ( दैव्या ) विद्वानों और ज्ञान ऐश्वर्य के देने वालों में उत्तम ज्ञानैश्वर्य की कामना करने वालों के हितकारी ( होतारा ) ज्ञान अन्नादि देने वाले (प्रथमा ) उत्तम पिता और आचार्य दोनों को मैं ( नि ऋञ्जे ) अच्छी प्रकार पूजित करूं। वे ( सप्त ) सातों प्रकार के ( पृक्षासः ) सम्बन्धों से सम्बद्ध वा ( सप्त ) उपसर्पण या सत्संग करने योग्य ( पृक्षासः ) ज्ञान जलों की मेघों के समान वर्षा करने वाले ( स्वधया ) अमृत, अन्न और आत्मज्ञान से स्वयं प्रसन्न रहते हैं। ( ऋतं शंसन्तः ) सत्योपदेश करते हुए ( ते ) वे ( व्रतपाः ) व्रतों के पालक ( दीध्यानाः ) उत्तम गुणों से प्रकाशमान और निरन्तर ध्यान धारणा का अभ्यास करते हुए ( ऋतम् ) सत्य ज्ञान, वेदाभ्यास को

( व्रतं ) व्रत, आचरणीय कर्त्तव्य का ( अनु आहुः ) निरन्तर उपदेश करते हैं। (२) अध्यात्म में—प्राण, अपान वा बुद्धि और आत्मा दो दैव्य अर्थात् प्राणों के आश्रय और कामनाशील इन्द्रियों का हितकारी होता है। उनको मैं अपने वश करूं वे सातों अर्थात् अपने आत्म सामर्थ्य धारण करने वाली चिति शक्ति से सम्पर्क करके सुखी होते हैं। वे ज्ञान को बतलाते ज्ञान को ही अपने व्रत कहकर उसका पालन करते हैं। नियम को उल्लंघन नहीं करने से 'व्रतपा' हैं। वे शरीर को धारण करते एवं अपने (व्रतम् अनु दीध्यानाः ) कर्मानुसार ही प्रकाशित होते हैं।

**वृषायन्ते महे अत्याय पूर्वीर्वृष्णे चित्राय रश्मयः सुयामाः।**
**देव होतर्मन्द्रतरश्चिकित्वान्महो देवान्रोदसी एह वक्षि ॥ ९ ॥**

भा०—(रश्मयः महे अत्याय यथा सुयामाः वृषायन्ते) जिस प्रकार रासें ऐसे बड़े बलवान् वेगवान्, अश्व को उत्तम रीति से वश में करने वाली होकर उसके लिये बन्धन के समान हो जाती हैं और जिस प्रकार ( रश्मयः महे अत्याय चित्राय वृष्णे ) उत्तम प्रहरों तक बड़े भारी अद्भुत वर्षणकारी दीप्तिमान् सूर्य की किरणें ( सुयामाः ) चमकने वाली होकर ( वृषायन्ते ) वर्षणशील मेघ के समान आचरण करती हैं अर्थात् वृष्टि लाती हैं उसी प्रकार ( रश्मयः ) सूर्य की किरणों के समान ज्ञान का प्रकाश करने वाली व्यापक ( सुयामाः ) उत्तम नियम व्यवस्था करने वाली ( पूर्वीः ) पहले के विद्वानों की बनाई व्यवस्थाएं वा पूर्णसमृद्ध, पूर्व से विद्यमान प्रजाएं ( महे ) महान् ( अत्याय ) सबको अतिक्रमण करके रहनेवाले, ( वृष्णे ) प्रजा को नियमों में बांधने वाले ( चित्राय ) सबके पूजनीय एवं अद्भुत पराक्रमी पुरुष के लिये भी ( वृषायन्ते ) उसको नियम में बांधने के लिये बलवती एवं सुखों की वृष्टि करने के लिये मेघ-तुल्य हो जाती हैं। ( देवः देवान् रोदसी वहति ) जिस प्रकार प्रकाशमान सूर्य किरणों को और आकाश और पृथिवी को धारण करता है उसी प्रकार

हे ( देव ) विजय की कामना करनेहारे विद्वन् ! राजन् ! हे ( होतः ) प्रजाओं को सुख एवं अधीनों को वेतनादि देनेहारे ! तू ( मन्द्रतरः ) अत्यधिक हर्षित करनेवाला एवं ( चिकित्वान् ) ज्ञानवान् होकर ( महः ) बड़े २ ( देवान् ) दानशील एवं विजयेच्छुक, नाना कामनाओं से युक्त वीर पुरुषों को और ( रोदसी ) स्वकीय प्रजावर्ग और शासकवर्ग या स्व और पर चक्र दोनों को ( वक्षि ) धारण कर। उनका कार्य भार वहन कर।

**पृक्षप्रयजो द्रविणः सुवाचः सुकेतव उषसो रेवदूषुः।**
**उतो चिदग्ने महिना पृथिव्याः कृतं चिदेनः सं महे दशस्य ॥१०॥**

**भा०**—जिस प्रकार ( उषसः ऊषुः ) कान्ति से युक्त प्रभात वेलाएं प्रकट होती हैं और सर्वत्र फैल जाती हैं उसी प्रकार हे ( द्रविणः ) ज्ञानवान् एवं द्रव्यवान् पुरुष ! राजन् ! ( पृक्षप्रयजः ) अन्नों को अच्छी प्रकार देनेवाले ( सुवाचः ) उत्तम वाणी बोलने वाले और ( सुकेतवः ) उत्तम ज्ञान से युक्त और विद्याओं द्वारा ज्ञान कराने वाले, ( उषसः ) कान्तियुक्त, तेजस्वी सर्वप्रिय, प्रजागण ( रेवत् ) ऐश्वर्य से पूर्ण राष्ट्र में बसें। ( उतो चित् ) और हे (अग्ने) तेजस्विन् ! ( चित् ) सूर्य या अग्नि जिस प्रकार ( पृथिव्याः एनः दशस्यति ) पृथिवी के दोष को नाश करती है उसी प्रकार तू भी ( महिना ) अपने महान् सामर्थ्य से ( पृथिव्याः ) पृथिवी पर विस्तृत प्रजा के ( कृतं एनः ) किये हुए अपराधों को ( महे ) बड़े सौभाग्य के लिये ( सं दशस्य ) अच्छी प्रकार नाश कर। ( २ ) अध्यात्म में—( पृक्षप्रयजः ) सर्वरससेचक परमेश्वर की उत्तम पूजा करने वाली उत्तम वाणियां शुभ ज्ञान देनेहारी होकर प्रभात-वेलाओं के समान तेजोमय आत्म रूप सूर्य को प्रकट करें, हे आत्मन् तू अपने महान् सामर्थ्य से चित्त भूमि के मल को बड़े ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये अच्छी प्रकार नाश कर।

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥११॥२॥

भा०—व्याख्या देखो (मं० ३। सू० १। मं० २३) इति द्वितीयो वर्गः॥

[ ८ ]

विश्वामित्र ऋषिः॥ विश्वेदेवा देवता॥ छन्दः—१, ८, ९, १० निचृत् त्रिष्टुप् । २, ५, ६, ११ त्रिष्टुप् । ४ स्वराट् त्रिष्टुप् । ३, ७ स्वराडनुष्टुप् ॥
एकादशर्चं सूक्तम् ॥

अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो वनस्पते मधुना दैव्येन ।
यदूर्ध्वस्तिष्ठा द्रविणेह धत्ताद्यद्वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे ॥१॥

भा०—हे ( वनस्पते ) किरणों के पालक सूर्य के समान राष्ट्रैश्वर्य के विभागों के भोक्ता, प्रजाजनों के पालक, विद्या की याचना करनेवाले शिष्यजनों के पालक विद्वन् ! तू ( यत् ) जब ( ऊर्ध्वः ) गुणों और अधिकारों में सबसे उत्कृष्ट होकर ( तिष्ठ ) रह । और ( इह ) इस राष्ट्र में और शिष्य में ( द्रविणा ) नाना ऐश्वर्य ( धत्तात् ) धारण करा ( यत् वा ) और जब ( अस्याः मातुः ) इस सर्वोत्पादक माता पृथिवी के ( उपस्थे ) गोद में बालक के समान ( क्षयः ) तेरा निवास हो तब जिस प्रकार ( देवयन्तः दैव्येन मधुना अञ्जन्ति ) सूर्य की किरणें जल देनेवाले मेघ के समान होकर मेघस्थ जल से भूमि को सींचते हैं और वे स्वयं प्रकाशमान होकर सूर्य के प्रकाश से समस्त भूमि को प्रकाशित करते हैं उसी प्रकार (अध्वरे) हिंसा रहित, प्रजाओं को नाश न करनेवाले राष्ट्रपालन रूप व्यवहार में ( त्वाम् ) तुझको ( देवयन्तः ) चाहते हुए ( दैव्येन ) देव, विद्वानों के योग्य ( मधुना ) अन्न और ज्ञान से ( त्वाम् अञ्जन्ति ) तुझे प्रकाशित करते और तुझे ही चाहते हैं । ( २ ) शिष्य के पक्ष में—(देवयन्तः) विद्वान् जन मुझे चाहते हुए ज्ञान से तुझे चमकावें

तू ऊंचा, उन्नत हो, माता के समान पालक ज्ञान-जन्म के दाता, ज्ञानवान् आचार्य के समीप तेरा निवास हो ।

**समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्ताद् ब्रह्म वन्वानो अजरं सुवीरम् ।**
**आरे अस्मदमतिं बाधमान उच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥ २ ॥**

भा०—हे वनस्पते ! राजन् ! विद्वन् ! सूर्य के समान तेजस्विन् ! तू ( समिद्धस्य ) खूब अच्छी प्रकार प्रज्वलित, ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष के ( पुरस्तात् ) आगे ( श्रयमाणः ) स्थिर होकर ( अजरं ) अविनाशी ( सुवीरम् ) उत्तम वीर्य-बल के देनेवाले ( ब्रह्म ) वेदज्ञान और ऐश्वर्य को ( वन्वानः ) सेवन और अभ्यास करता हुआ ( अस्मद् आरे ) हमारे समीप और दूर के ( अमतिं ) अधर्म युक्त, जड़ बुद्धि को और अदस्य शत्रु सेना को भी ( बाधमानः ) दूर करता हुआ ( महते सौभगाय ) बड़े भारी उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये ( उत् श्रयस्व ) उन्नत पद पर स्थिर हो । गुरु तेजस्वी शिष्य के समक्ष ब्रह्म ज्ञान का वितरण करता हुआ अज्ञान का नाश करे और शिष्य तेजस्वी ज्ञानी आचार्य के समक्ष ब्रह्मज्ञान की ( वन्वानः ) याचना करता हुआ गुरुओं के समीप अज्ञान को दूर करे, दोनों ही बड़े सौभाग्य प्राप्ति के लिये उन्नत होकर विराजें ।

**उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्ष्मन्पृथिव्या अधि ।**
**सुमिती मीयमानो वर्चोधा यज्ञवाहसे ॥ ३ ॥**

भा०—हे ( वनस्पते ) सूर्य के समान तेजस्वी शिष्यों और वीरों के पालक ! हे वट आदि के समान आश्रित धनादि के याचकजनों के पालक ! ( पृथिव्याः वर्ष्मन् ) वृष्टि जलादि युक्त स्थान पर बड़े वृक्ष के समान तू भी ( पृथिव्याः वर्ष्मन् ) पृथिवी के सुप्रबन्ध से युक्त राष्ट्र शासन के कार्य में ( उत् श्रयस्व ) उन्नत पद पर विराज । और ( सुमिती ) जिस प्रकार बड़ा भारी वृक्ष बड़े परिमाण से ( मीयमानः ) मापे जाने योग्य होता है उसी प्रकार तू भी ( सुमिती ) शुभ, उत्तम माप या पैमाने से मापा जाकर

( वर्चोधाः ) तेज और बल को धारण करता हुआ ( यज्ञवाहसे ) राज्य-रूप यज्ञ को वहन करने के लिये ( पृथिव्याः अधि ) इस पृथिवी पर हे विद्वन् ! तू उन्नत हो । ( सुमती मीयमानः ) उत्तम ज्ञान से ज्ञान प्राप्त करता हुआ तेजस्वी, ब्रह्मवर्चस्वी होकर दान दिये जाने योग्य अध्यापनीय ज्ञान को धारण करने और कराने के लिये उन्नत पद पर विराज, ऊपर उठ ।

**युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः ।**
**तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो३ मनसा देवयन्तः ॥ ४ ॥**

भा०—( युवा ) जवान, बलवान् ( सुवासाः ) उत्तम वस्त्रों को धारण करता हुआ ( परिवीतः ) सब प्रकार से विद्याओं को प्राप्त कर, एवं तेजस्वी होकर, उपवीतधारी ब्रह्मचारी के समान ( आ अगात् ) प्राप्त हो । ( सः उ ) वह ही ( जायमानः ) माता के गर्भ के समान विद्या के गर्भ में से उत्पन्न होता हुआ (श्रेयान् भवति) सबसे श्रेष्ठ हो । (धीरासः) धीर, बुद्धिमान् ( कवयः ) विद्वान् ( स्वाध्यः ) उत्तम विद्या को धारण और प्रदान करने वाले जन उसको ( मनसा ) चित्त से ( देवयन्तः ) चाहते हुए और ( मनसा देवयन्तः ) ज्ञान के प्रकाश से दानशील सूर्य के समान तेजस्वी बनाते हुए ( तम् उन्नयन्ति ) उसको ऊंचे पद पर लेजावें ।

**जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां समर्य आ विदथे वर्धमानः ।**
**पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा देवया विप्र उदियर्ति वाचम् ॥५॥३॥**

भा०—जिस प्रकार सूर्य ( अह्नां सुदिनत्वे जायते ) प्रादुर्भाव होकर दिनों को उत्तम दिन बनाने में समर्थ होता है उसी प्रकार ( समर्ये ) मनुष्यों के एकत्र होने के स्थान संग्राम या सभास्थल और ( विदथे ) यज्ञ में भी ( वर्धमानः ) बढ़ता हुआ ( जातः ) प्रसिद्ध विद्वान् और वीर पुरुष ( अह्नां ) आगे आने वाले विपक्षियों और मित्रों के दिनों को उत्तम बनाने में समर्थ होता है या उनके उत्तम समय में प्रकट होता है । ( धीराः ) धीर, बुद्धिमान् पुरुष ( मनीषा ) विचारपूर्वक ही

( अपसः ) अपने कर्मों को पवित्र करते हैं और ( देवयाः ) विद्वानों का सत्कार करने हारा ( विप्रः ) विद्वान् ब्राह्मण भी ( मनीषा ) उत्तम मननशील मति से ही ( वाचम् ) वेद वाणी को ( उत् इयर्त्ति ) उच्चारण करता है। इति तृतीयो वर्गः ॥

**यान्वो नरो देवयन्तो निमिम्युर्वनस्पते स्वधितिर्वा ततक्ष ।**
**ते देवासः स्वरवस्तस्थिवांसः प्रजावदस्मे दिधिषन्तु रत्नम् ॥६॥**

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! ( यान् वः ) जिन आप लोगों को ( देवयन्तः ) देव, अर्थात् कामनाशील, प्रिय पुरुषों के समान आचरण करने वाले या विजयेच्छुक पुरुषों को चाहने वाले ( नरः ) नायकजन और विद्याभिलाषी शिष्यों के इच्छुक गुरुजन ( नि मिम्युः ) अच्छी प्रकार से उपदेश करते और ( स्वधितिः वा ) मेघों को वज्र के समान, काष्ठों को कुठार के समान, हे ( वनस्पते ) सर्वाश्रय ! तेजस्विन् सैन्यदलपते ! तू जिनको (ततक्ष) गढ़ता, बनाता और तैयार करता है (ते) वे (देवासः) विद्वान् और वीर पुरुष ( स्वरवः ) सूर्य के समान तेजस्वी और स्वयं विद्योपदेशों से युक्त और ( तस्थिवांसः ) स्थिर बुद्धि होकर ( अस्मे ) हमारे कल्याण के लिये ( प्रजावत् ) प्रजा के समान या प्रजा से युक्त ( रत्नम् ) रमणीय उत्तम धन ( दिधिषन्तु ) धारण करें और दें।

**ये वृक्णासो अधि क्षमि निमितासो यतस्रुचः ।**
**ते नो व्यन्तु वार्यं देवत्रा क्षेत्रसाधसः ॥ ७ ॥**

भा०— ( ये ) जो ( वृक्णासः) अविद्या से उत्पन्न समस्त बन्धनों को काट देनेहारे, ( यत-स्रुचः ) प्राणों और इन्द्रियों का संयम करने वाले, ( अधि क्षमि ) क्षमा, सहनशीलता में रहकर ( निमितासः ) स्थिर रूप से ज्ञानवान् या खूब परिमित भाषण करने वाले ( क्षेत्र-साधसः ) देह पर वश करने में कुशल हैं ( देवत्रा ) ज्ञानी और दानशील पुरुषों के बीच में वे ( नः ) हमारे ( वार्यं ) वरण करने योग्य ज्ञान और ऐश्वर्य को

( व्यन्तु ) प्राप्त करें, प्रदान करें । (२) इसी प्रकार हमारे बीच में (क्षेत्र-साधसः ) क्षेत्र अर्थात् युद्धक्षेत्र और अन्नक्षेत्रों के साधन उत्पन्न करने वाले वीर और वैश्य कृषक ( वृक्णासः ) शत्रुओं और कण्टकों का छेदन करने हारे ( अधि क्षमि यतस्रुचः ) भूमि पर रक्त बहाने वाले नदियों, सेनाओं और जल बहाने वाली धाराओं को नियम में रखने वाले (निमिताः ) अपने राज्यों और क्षेत्रों को मापने वाले होकर ( नः वार्यं ) हमारे उत्तम ऐश्वर्य और अन्न को ( व्यन्तु ) प्राप्त करें ।

आदित्या रुद्रा वसवः सुनीथा द्यावाक्षामा पृथिवी अन्तरिक्षम् ।
सजोषसो यज्ञमवन्तु देवा ऊर्ध्वं कृण्वन्त्वध्वरस्य केतुम् ॥ ८ ॥

भा०—( आदित्याः ) सूर्यगण, सूर्य की किरणों और बारहों मास ( रुद्राः ) और प्राणगण और आकाश के वायु ( वसवः ) पृथिव्यादि लोक और जीवगण जिस प्रकार ( सुनीथाः ) उत्तम रीति से संगत होकर ( द्यावा क्षामा ) सूर्य पृथिवी और अन्तरिक्ष तीनों स्थानों को व्यापकर ( सजोषसः ) एक समान रूप से सेवने योग्य ( यज्ञम् अवन्ति ) सुव्यवस्थित संसार-प्रबन्ध और परस्पर के जल प्रकाश आदि के लेने देने के व्यवहार को चला रहे हैं और ( अध्वरस्य ) अविनाशी महान् यज्ञ के ( केतुम् ) प्रवर्त्तक और ज्ञापक सूर्य और परमेश्वर को ( ऊर्ध्वं कृणवन्ति ) सबसे ऊपर रखते हैं उसी प्रकार ( आदित्याः ) सूर्य के समान तेजस्वी आदित्य ब्रह्मचारी गण, परस्पर आदान प्रतिदान करने वाले वैश्य जन, (रुद्राः) नैष्ठिक ब्रह्मचारीगण एवं दुष्टों को रुलाने वाले क्षत्रियगण (वसवः) २४ वर्ष के ब्रह्मचारी एवं राष्ट्र में बसने वाले प्रजाजन ( द्यावा क्षामा ) आकाश और भूमि ( पृथिवी अन्तरिक्षम् ) पृथिवी और अन्तरिक्ष इन सबको वशकर ( सजोषसः ) समान प्रीति भाव से युक्त होकर ( देवाः ) दानशील और परस्पर के चाहने वाले तेजस्वी होकर ( यज्ञम् ) परस्पर के सत्संग की रक्षा करें और ( अध्वरस्य ) इस हिंसारहित राष्ट्र यज्ञ के

( केतुम् ) ज्ञापक और ध्वजा के समान उन्नत और मान आदर के योग्य पुरुष को ( ऊर्ध्वं ) सबसे ऊपर ( कृण्वन्तु ) रक्खें ।

हंसा इव श्रेणिशो यतानाः शुक्रा वसानाः स्वरवो न आगुः ॥
उन्नीयमाना कविभिः पुरस्ताद्देवा देवानामपि यन्ति पाथः ॥९॥

भा०—( हंसा इव श्रेणिशः ) पंक्ति बांधकर जिस प्रकार हंस शब्द करते हुए आते जाते हैं उसी प्रकार ( शुक्रा वसानाः ) शुद्ध, कान्तियुक्त वस्त्रों को धारण करने वाले (श्रेणिशः यतानाः) अपने २ वर्ग या पंक्ति में बद्ध होकर यत्न करते हुए (स्वरवः) शत्रुओं को पीड़ा देने वाले या उत्तम ध्वनि या शब्द करते हुए उत्तम उपदेश वचन कहते हुए ( नः ) हमें ( आगुः ) प्राप्त हों । वे ( पुरस्तात् ) सबके समक्ष ( कविभिः ) विद्वान् दीर्घदर्शी पुरुषों द्वारा ( उत् नीयमाना ) उत्तम पद पर पहुंचाये हुए ( देवाः ) दानशील विद्वान् और विजयी पुरुष ( देवानाम् ) सूर्य के प्रकाशक किरणों के ( पाथः ) जल को जलप्रद मेघों के समान उनके ( पाथः ) अनुकरणीय मार्ग को ( यन्ति ) प्राप्त होते हैं । प्रसङ्गवश किरणों और मेघगण ( शुक्रा वसानाः ) 'शुक्र' अर्थात् सूक्ष्म जलों को धारण करने वाले ( स्वरवः ) उपताप देने वाले, इसी प्रकार मेघ गर्जनशील, ( कविभिः उत् नीयमानाः ) वायुओं द्वारा उठाकर देशान्तर ले जाये गये वे ( देवाः ) जलप्रद मेघ ( देवानां पाथः ) प्रकाशक किरणों के जल को प्राप्त होते हैं । ( २ ) वीर पुरुष पंक्तिबद्ध होकर चमचमाते वर्दी शास्त्रादि धारते हुए क्रान्तदर्शी सेना नायकों द्वारा आगे उत्तम रीति से ले जाये जाकर विजयेच्छुकों के मार्ग पर चलें । ( ३ ) विद्वान् पुरुष ( शुक्रा वसानाः ) शुक्र, पुण्य कर्मों को धारण करते हुए या वीर्य को धारण करते हुए, ब्रह्मचारी रहकर हंस पक्षियों के समान स्वच्छ होकर पंक्तिबद्ध होकर आगे २ क्रान्तदर्शी गुरुजनों द्वारा उत्तम मार्ग से लेजाये जाकर हम ( देवानाम् ) इच्छुकों के दिये ( पाथः ) जलादि सत्कार को प्राप्त हों ।

शृङ्गाणीवेच्छृङ्गिणां सं ददृश्रे चषालवन्तः स्वरवः पृथिव्याम् ।
वाघद्भिर्वा विहवे श्रोषमाणा अस्माँ अवन्तु पृतनाज्येषु ॥१०॥

भा०—विद्वान् और वीरजन ( पृथिव्याम् ) इस पृथ्वी पर ( चषालवन्तः ) भोग करने योग्य नाना प्रकार के ऐश्वर्यों से सम्पन्न और ( स्वरवः ) शत्रुओं को तपाने वाले और उत्तम वचन कहने वाले हों और वे ( चषालवन्तः स्वरवः ) सुन्दर छल्लों से युक्त यज्ञ के यूपों के समान ( शृङ्गिणां ) सींग वाले बैल आदि पशुओं के या उच्च पर्वतों के ( शृङ्गाणि-इव ) ऊंचे सींगों या शिखरों के समान ऊंचे स्थान पर स्थित होकर या आगे बढ़कर विपक्षियों का नाश करने वाले होकर ( संददृश्रे ) अच्छी प्रकार दीखें। वे ( वाघद्भिः ) अपने पूज्य विद्वानों द्वारा (विहवे) विविध उपदेश प्रदान से युक्त स्वाध्यायकाल में वा विशेष रूप से आह्वान करने के संग्रामकाल में ( श्रोषमाणाः) उत्तम उपदेश और आज्ञा व ज्ञान श्रवण करते हुए ( अस्मान् ) हमें ( पृतनाज्येषु ) संग्रामों में ( अवन्तु ) रक्षा करें।

वनस्पते शतवल्शो वि रोह सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम ।
यं त्वामयं स्वधितिस्तेजमानः प्रणिनाय महते सौभगाय ॥११॥४॥

भा०—हे ( वनस्पते ) महावृक्ष के समान याचनाशील और ऐश्वर्यों के सेवन करने वाले जनो और भोग्य ऐश्वर्यों के पालक राजन्! शिष्यों के पालक विद्वन्! सैन्य दलों के पालक सेनापते! तुझको ( स्वधितिः ) अपने वल से धारण करने योग्य उत्तम शस्त्रवल और शास्त्रबल ( तेजमानः ) तीक्ष्ण करता हुआ ( महते सौभगाय ) बड़े भारी सौभाग्य ऐश्वर्य के प्राप्त करने के लिये ( प्र-निनाय ) उत्कर्ष युक्त पद पर पहुंचाता है। शस्त्र से काटा जा कर पुनः सहस्रों शाखाओं से फूटने वाला वट आदि वनस्पति जिस प्रकार ( शतवल्शः सहस्रवल्शः ) सैकड़ों और सहस्रों शाखाओं और अंकुरों से युक्त होकर वृद्धि को प्राप्त होता है उसी प्रकार तू

( शतवल्शः ) सैकड़ों शाखाओं और ( सहस्रवल्शः ) हज़ारों अंग प्रत्यंग, एवं पुत्र पौत्रादि रूप शाखाओं और अंकुरों से युक्त होकर ( वि-रोह ) विविध प्रकार से उन्नत हो। और ( वयम् ) हम भी ( वि रुहेम ) विविध प्रकार से वनस्पतियों के समान ही उत्पन्न होकर वृद्धि को प्राप्त हों।

यज्ञ में यह सूक्त उपचार से यज्ञवेदी में स्थित यूपों के वर्णन में लगाया जाता है। (१) वृक्ष के काष्ठ से बना हुआ यूप वनस्पति है, उसको ऋत्विज् लोग घृत से चुपड़ते हैं। वेदी पर स्थित होता है। ( २ ) माप २ कर बनाया जाता है ( ४ ) वस्त्र से सजाया जाता है। ( ६ ) शस्त्र से काटा जाता है, ( ९ ) बहुत से यूप एक पंक्ति में खड़े किये जाते हैं, ( १० ) शिर पर सुवर्ण का छल्ला लगाया जाता है वह छल्ला 'चपाल' और यूप का कटा भाग 'स्वरु' कहाता है। यूप जड़ पदार्थ हैं उनमें (ऋ० २) मन्त्रों में कहे अज्ञान नाश करने वाली वाणी का बोलना (ऋ० ५) रत्नादि धारण करना ( ६ ) श्रवण करना ( १० ) सैकड़ों अंकुरों से फूटना आदि सम्भव नहीं है। इसलिये वह योजना गौण है। श्लेषवृत्ति से क्रियाकाण्ड की योजना समझनी चाहिये। श्लेष वृत्ति से यह सूक्त सूर्य की किरणों विद्वानों, प्राणों, वीर सैनिकों तथा वनस्पति नाम से आश्रयभूत राजा, सेनापति और गृहस्थ पुरुष का व र्न करता है। इति चतुर्थो वर्गः ॥

## [ ६ ]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४ बृहती। २, ५, ६, ७ निचृद्बृहती। ३, ८ विराड् बृहती। ९ स्वराट् पङ्क्तिः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

**सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये।**
**अपां नपातं सुभगं सुदीदितिं सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ १ ॥**

**भा०**—हम सब ( सखायः ) परस्पर मित्र, एक समान नाम, ख्याति वाले ( मर्त्तासः ) मरणधर्मा मनुष्य ( ऊतये ) अपनी रक्षा और ज्ञान,

और मनोकामना पूर्ण करने के लिये ( अपां नपातम् ) प्राणों के बीच आत्मा के समान स्वयं नाश न होने वाले, प्राणों को बांधने वाले आत्मा के समान ही सब आप्त प्रजाजनों के प्रबन्धक ( सुभगं ) उत्तम ऐश्वर्यवान् ( सुदीदितिम् ) उत्तम ज्ञान-प्रकाश से युक्त, तेजस्वी, ( सुप्रतूर्त्तिम् ) सुखपूर्वक उत्तम रीति से पार पहुंचा देने और खूब शीघ्रता, वेग फुर्त्ती वाले, अनालसी, क्रियावान्, (अनेहसम्) अहिंसक, एवं निष्पाप, उपद्रवादि से रहित ( त्वा ) तुझको हे विद्वन् ! हे नायक ! हम लोग गुरु, नेता व रक्षक रूप से ( ववृमहे ) वरण करते हैं। ( २ ) परमेश्वर भी, समस्त लोकों और प्रकृति के परमाणुओं तक का प्रबन्धक होने से 'अपां नपात्' है। वह उत्तम ऐश्वर्यवान्, ज्योतिर्मय, उत्तम तारक, निष्पाप है। उसको हम रक्षा, ज्ञान, तेज, हर्षादि के लिये वरण करें।

कायमानो वना त्वं यन्मातृरजगन्नपः ।
न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनं यद्दूरे सन्निहाभवः ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि ( कायमानः ) मानो चाहता हुआ, कान्तिमान् होकर ( वना अजगन् ) वनों में लगता और विद्युत् रूप से ( अपः अजगन् ) जलों को भी प्राप्त है। और उसका जिस प्रकार ( निवर्त्तनं ) बुझ जाना असह्य हो जाता है, अग्नि स्वयं (दूरे सन् इह अभवः) दूर रहकर भी प्रकाश रूप से समीप हो जाता है उसी प्रकार हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! ( त्वं ) तू ( वना ) सेवन करने योग्य ज्ञानों को ( कायमानः ) चाहता हुआ, देता हुआ ( यः ) जो तू ( मातृः अपः ) माता के समान स्नेहवान् वा उत्तम ज्ञानी आप्त पुरुषों को ( अजगन् ) प्राप्त हो, हे अग्ने ! विद्वन् ! एवं विनयशील ! ( ते ) तेरे ( तत् ) उस ( निवर्त्तनम् ) विद्याभ्यास के पथ से 'निवर्त्तन' लौट आने को मैं ( न प्र मृषे ) कभी सहन न करूं। ( यत् ) जो तू ( दूरे सन् ) दूर रहकर (इह अभवः) फिर यहां रहता अर्थात् विद्याभिलाषी, विद्यार्थी उत्तम ज्ञानों को चाहता

हुआ मातृतुल्य विद्वान् गुरुओं को जाए, वह अधबीच में न लौटे, दूर रहकर बाद घर में आवे। (२) आचार्य के पक्ष में—वह ( वना कायमानः ) सेव्य ज्ञानों का उपदेश करता हुआ उत्तम ज्ञाता आप्त शिष्यों को, प्राणों को आत्मा के समान प्राप्त हो। गुरु का (निवर्त्तनं) शिष्यों को अधर्म कार्यों से हटाना यह भी ( तत् प्रमृषे ) उत्तम तितिक्षा के लिये ही है। वह ( दूरे सन् ) दूर रहकर भी, देशान्तर में भी हो तो ( इह अभवः ) प्रेमवश हमारे पास ही रहे। ( ३ ) राष्ट्रनायक ( वना ) सेवनीय ऐश्वर्यों को चाहता हुआ अपने राजनिर्माता आप्त प्रजाजनों को प्राप्त करे। उसका प्रजा को कुपथ से हटाये रखना ही उत्तम तितिक्षा है। वह दूर रहकर प्रजा में दण्ड रूप से रहे।

**अति॑ तृ॒ष्टं व॑वक्षि॒थाथै॒व सु॒मना॑ असि।**
**प्रप्रा॒न्ये यन्ति॒ पर्य॒न्य आ॑सते॒ येषां॑ स॒ख्ये असि॑ श्रि॒तः ॥ ३ ॥**

भा०—हे विद्वन्! आचार्य! हे प्रभो! तू ( तृष्टं ) प्यारे, विद्या के तीव्र अभिलाषी शिष्य को ( अति ववक्षिथ ) अज्ञान से पार नौका के समान लेजा वा अति उत्तम उपदेश कर। अथवा—( तृष्टं अति ववक्षिथ ) चाहे तू अति 'तृष्ट' तीखा कटु कठोर वचन ही कहता है ( अथैव ) तो भी तू ( सुमनाः असि ) शुभ चित्त वाला, हृदय में शुभ कामना से युक्त ( असि ) हो। हे विद्वन् आचार्य! तू जिनके ( सख्ये ) मित्रभाव में ( श्रितः ) स्थित हो, जिनके प्रति तेरा अति स्नेह है उन शिष्यजनों में से भी (अन्ये) कुछ विद्यार्थी (प्र प्रयन्ति) विद्या समाप्त करके चले जाते हैं और ( अन्ये ) दूसरे जिनकी विद्या समाप्त नहीं हुई वे ( परि आसते ) तेरे समीप ही बैठते हैं। इसी प्रकार नायक शुभ चित्त होकर धन सुख के अभिलाषी प्रजाजन का भार अपने ऊपर ले। उसके कुछ सैनिक प्रयाण करें, कुछ उसको घेरे रहें या 'आसन' गुण का पालन करें।

ईयिवांसमति स्रिधः शश्वतीरति सश्चतः।
अन्वीमविन्दन्निचिरासो अद्रुहो अप्सु सिंहमिव श्रितम् ॥ ४ ॥

भा०—विद्वन् लोग जिस प्रकार ( अप्सु श्रितम् ) जलों में स्थित विद्युत् अग्नि को भी ( अद्रुहः ) उससे द्रोह न करते हुए अनुकूल रूप से सिंह के समान वश कर लेते हैं उसी प्रकार ( निचिरासः ) अति काल से विद्यमान ( अद्रुहः ) द्रोहरहित प्रजाएं भी ( स्रिधः ) हिंसाकारिणी शत्रु-सेनाओं और सहनशील सेनाओं को ( अति ईयिवांसम् ) अतिक्रमण करने वाले, उनसे अधिक शक्तिशाली और ( शश्वतीः ) अपने राष्ट्र की पूर्व से ही विद्यमान और ( सश्चतः ) साथ में सहयोग करने वाली प्रजा को भी ( अति ) अतिक्रमण करने वाले ( ईम् ) इस नायक पुरुष को ( अप्सु श्रितं ) आप्त प्रजाओं के बीच स्थित ( सिंहम् इव ) सिंह के समान पराक्रमी पुरुष को ( अनु अविन्दन् ) अनुकूल रूप से प्राप्त करें उसको विरोधी न बनावें। ( २ ) आचार्य पक्ष में—जो पुरुष (शश्वतीः) सनातन से विद्यमान अक्षय वेद-वाणियों को खूब जानने हारा हो उसकी चिरकाल तक द्रोहरहित शुश्रूषु रहकर सेवा करें।

ससृवांसमिव त्मनाग्निमित्था तिरोहितम्।
एनं नयन्मातरिश्वा परावतो देवेभ्यो मथितं परि ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार (त्मना) अपने स्वरूप से ( ससृवांसम् ) व्यापक और ( तिरः हितम् ) छुपे हुए ( अग्निम् ) अग्नि को ( मथितं परि ) मथे जाने के उपरान्त ( मातरिश्वा परावतः परि आ अनयत् ) वायु दूर २ तक ले जाता वा फैला देता है उसी प्रकार ( इत्था ) सत्य के बल से और ( त्मना ) अपने बल से ( ससृवांसम् ) आगे बढ़ने वाले ( तिरः-हितम् ) सबसे ऊपर विराजमान ( एवं ) इस ( मथितम् ) मंथन करके निकाले सारवान् भाग से युक्त एवं मथ कर निकाले गये ( अग्निम् इव ) अग्नि के समान प्रकाशमान, तेजस्वी ( एनम् ) इस विद्वान् पुरुष को ( मातरिश्वा )

ज्ञानी पुरुष के आश्रय से आगे बढ़ने वाला शिष्यगण ( देवेभ्यः ) उत्तम कमनीय गुणों को प्राप्त करने के लिये ( परावतः ) दूसरे देशों से भी ( परि आ अनयन् ) आ २ कर प्राप्त करते हैं। ( २ ) इसी प्रकार अग्रणी तेजस्वी पुरुष को ( मातरिश्वा ) वायु के समान बलवान् सैन्यगण भी ( देवेभ्यः ) कामनायोग्य ऐश्वर्यों के लिये या विद्वानों के लाभार्थ प्राप्त करते हैं या उसको सर्वत्र विजय के लिये ले जाते हैं। इति पञ्चमो वर्गः॥

**तं त्वा मर्ता अगृभ्णत देवेभ्यो हव्यवाहन।**
**विश्वान्यद्यज्ञाँ अभिपासि मानुष तव क्रत्वा यविष्ठ्य ॥ ६ ॥**

भा०—हे ( हव्यवाहन ) ग्रहण करने योग्य ज्ञानों और ऐश्वर्यों को धारण करने और प्राप्त कराने हारे विद्वन्! ( मर्त्ताः ) मनुष्य लोग ( देवेभ्यः ) विद्वान् पुरुषों और तुझे या विद्यादि चाहने वालों के हितार्थ शुभ गुणों को प्राप्त करने के लिये ( तं त्वा ) उस तुझ श्रेष्ठ पुरुष को ( अगृभ्णत ) स्वीकार करते हैं। हे ( मानुष ) मननशील! मनुष्यों के हितकारक! हे ( यविष्ठय ) युवा पुरुषों में सबसे उत्तम, बलवन्! तू ( तव ) अपने ( क्रत्वा ) ज्ञान और कर्म के सामर्थ्य से ( विश्वान् ) सब ( यज्ञान् ) श्रेष्ठ कर्मों, उत्तम दानयोग्य ज्ञानों और दानयोग्य धनों तथा सत्संग करने योग्य विद्वानों को भी ( अभि पासि ) सब प्रकार से पालन करता है। ( २ ) अग्नि हव्य चरु को सूक्ष्म करके अन्य तत्वों तक पहुंचा देने से 'हव्यवाहन' है। उसको दीप्तियुक्त किरणों के और काम्य यज्ञों के लिये लोग ग्रहण करते हैं। वह समस्त अग्निष्टोमादि यज्ञों का पालन करता है।

**तद्भद्रं तव दंसना पाकाय चिच्छदयति।**
**त्वां यदग्ने पशवः समासते समिद्धमपिशर्वरे ॥ ७ ॥**

भा०—( यत् ) जिस प्रकार ( पशवः अपिशर्वरे समिद्धम् ) रात्रि के अन्धकार में प्रदीप्त अग्नि के समीप ही समस्त गवादि पशु और मनुष्यादि

आश्रय पाते हैं। उसी प्रकार हे ( अग्ने ) तेजस्विन्! ज्ञानवन्! ( यत् ) जब ( अपिशर्वरे ) रात्रि के समान घोर अज्ञानान्धकार के काल में और चारों ओर से हिंसाकारी शस्त्रादि के द्वारा प्रवृत्त संग्राम-काल में (पशवः) सब मनुष्य पशुओं के समान अज्ञानी और अधीनता स्वीकार करने वाले या तुझको ही तेजस्वी देखने वाले (समिद्धम्) खूब ज्ञान-प्रकाश से प्रकाशित और खूब तेजस्वी ( त्वाम् ) तुझको ही ( सम्-आसते ) आश्रय लेते हैं। ( तव ) तेरा ( तद् ) वह ( भद्रम् ) कल्याण और सुख-जनक ( दंसना ) उत्तम कर्म और ज्ञान दर्शन ही ( पाकाय ) परिपाक के लिये अग्नि के तेज के समान अपने ज्ञान-अनुभव और बल वीर्य को परिपक्क करने के लिये या उत्तम उपदेश देने के लिये ( चित् ) ही ( छदयति ) उनको आप वस्त्रों और कवचों से आच्छादित, सत्कृत, सुशोभित या अलंकृत करता है।

आ जुहोता स्वध्वरं शीरं पावकशोचिषम्।
आशुं दूतमजिरं प्रत्नमीड्यं श्रुष्टी देवं सपर्यत ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग (सु-अध्वरम्) उत्तम यज्ञ करने वाले, एवं अहिंसक और स्वयं हिंसादि से पीड़ा न देने योग्य ( शीरम् ) सुप्त के समान अति शान्त, ( पावक शोचिषम् ) पवित्र करने वाली दीप्ति और तेज से युक्त, ( आशुम् ) विद्याओं में व्यापक, ( दूतम् ) सेवा करने योग्य ( प्रत्नम् ) वृद्ध ( ईड्यं ) स्तुति योग्य ( देवं ) दानशील, ज्ञानों के प्रकाशक विद्वान् को ( आजुहोत ) अच्छी प्रकार स्वीकार करो, आदर से बुलाओ और उसका ( सपर्यत ) आदर से सेवा सत्कार करो। ( २ ) परमेश्वर अविनाशी, सर्वपालक होने से 'सु-अध्वर' है, वह व्यापक होने से 'शीर' है। दुष्टों का संतापक होने से 'दूत' और अविनाशी और सर्व संञ्चालक होने से 'अजिर' है। उस सनातन स्तुत्य देव को आत्मसमर्पण करो, उसी की पूजा करो। (२) वीरनायक उत्तम पालक, स्वयं अहिंसक, अग्नि

के समान तेजस्वी, शीघ्रगामी, शत्रु-संतापक, शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले, सर्वश्रेष्ठ, स्तुत्य विजिगीषु को उत्तम पद पर स्वीकार करो, उसकी सेवा करो।

'दूरमजिरं' इति क्वचित् पाठः।

**त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्।**
**औक्षन्घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥९॥६॥**

भा०—( अग्निं देवाः असपर्यन् ) जिस प्रकार अग्नि को दिव्य किरण आश्रित हैं वे उसे ( घृतैः औक्षन् ) तेजों से बढ़ाते और ( अस्मा बर्हिः अस्तृणन् ) उसके वृद्धिशील रूप या प्रकाश को फैलाते हैं उसी प्रकार ( त्रीणि शता त्री सहस्रा, त्रिंशत् च नव च ) तीन हज़ार, तीनसौ, तीस और ९ अर्थात् ३३३९ (देवाः) वीर पुरुष ( अग्निम् असपर्यन् ) अग्रणी तेजस्वी नायक की सेवा करें, उसके अधीन रहकर आज्ञा पालन करें। वे उसको ( घृतैः ) तेजों से ( औक्षन् ) घी से अग्नि के समान ही बढ़ावें। और ( अस्मा ) उसके ( बर्हिः ) वृद्धिशील राष्ट्र को ( अस्तृणन् ) खूब विस्तृत करें और ( आत् ) अनन्तर उसी ( होतारं ) सर्वैश्वर्य के देने वाले राजा को ( नि असादयन्त ) अच्छी प्रकार से स्थापित करें। इति षष्ठो वर्गः ॥

## [ १० ]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ५, ८ विराडुष्णिक्। ३ उष्णिक्। ४, ६, ७, ९ निचृदुष्णिक्। २ भुरिग् गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

**त्वामग्ने मनीषिणः सम्राजं चर्षणीनाम्।**
**देवं मर्तास इन्धते समध्वरे ॥ १ ॥**

भा०—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान अपने ही तेज से चमकने वाले ! हे ज्ञानवन् ! विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! ( मनीषिणः ) मन को वश करके

सन्मार्ग पर चलाने हारे योगीजन एवं बुद्धिमान् ( मर्त्तासः ) पुरुष ( चर्षणीनां ) दर्शन करने वाले ज्ञानी पुरुषों और मनुष्य प्रजाओं के बीच ( सम्राजं ) अच्छी प्रकार चमकने वाले एवं सम्राट् के समान सबके ऊपर शासक ( देवं) दानशील, तेजस्वी, विजिगीषु ( त्वाम् ) तुझको ( अध्वरे ) शत्रुओं द्वारा न नाश होने वाले दृढ़ राज्य पालन के कार्य एवं श्रेष्ठ यज्ञ-कर्म में ( सम् इन्धते ) अच्छी प्रकार प्रदीप्त वा प्रकाशित करते हैं ।

त्वां यज्ञेष्वृत्विजमग्ने होतारमीळते ।
गोपा ऋतस्य दीदिहि स्वे दमे ॥ २ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! ( यज्ञेषु ) उपासना आदि पूजनीय कार्य व्यवहारों में ( ऋत्विजम् ) ज्ञानवान् पुरुषों में ज्ञान के देने वाले, ( होतारम् ) समस्त संसार को अपने में धारण करने हारे ( त्वाम् ) तेरी ( ऋतस्य गोपाः ) सत्य धर्माचरण के पालन करने वाले जन ( ईळते ) स्तुति करते हैं और तू भी ( ऋतस्य गोपाः ) परम सत्य ज्ञान का रक्षक होकर ( स्वे दमे ) अपने जगत् के दमन कार्य और अन्तःकरणों में प्रकट हर्ष रूप में ( दीदिहि ) प्रकाशित हो । ( २ ) राजापक्ष में—( यज्ञेषु ) संग्रामों और सभाओं में ( ऋत्विजम् ) सदस्यों के साथ संगत होने वाले दानशील और राज्य को स्वीकारने वाले (ऋतस्य गोपाः) सत्य न्याय और ऐश्वर्य के पालक लोग तुझको चाहते हैं। तू धनैश्वर्य का स्वामी होकर अपने ( दमे ) गृह के बीच गृहपति के समान शत्रुदमन कार्य में खूब प्रकाशित हो, अपने गुणों का प्रकाश कर । ( ३ ) इसी प्रकार गृहस्थ विद्वान् के पक्ष में—वह प्रतिऋतु यज्ञ और दान देने से 'ऋत्विग्' हवन करने से 'होता' है । वह सत्य धर्म का पालक होकर अपने घर में दीपक या यज्ञाग्नि के समान चमके ।

स घा यस्ते ददाशति समिधा जातवेदसे ।
सो अग्ने धत्ते सुवीर्यं स पुष्यति ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) सबके प्रकाशक प्रभो! (यः) जो पुरुष (जातवेदसे) उत्पन्न हुए प्रत्येक पदार्थ के भीतर विद्यमान (ते) तुझको (समिधा) अच्छी प्रकार हृदय प्रकाशित करने वाले विज्ञान द्वारा (ददाशति) अपना आत्मा सौंप देता है (सः) वह (सुवीर्यम्) उत्तम बल, पराक्रम को (धत्ते) धारण करता है और (सः) वही (पुष्यति) धनधान्य, गौ पशु, सुवर्णादि से पुष्ट और समृद्ध होता है। (२) राजा पक्षमें—(जातवेदसे) धनैश्वर्य के द्वारा प्रसिद्ध उसे जो करादि देता है वह उत्तम बल रखता और समृद्ध होता है। (३) इसी प्रकार विद्वान् आचार्य के अधीन अपने को 'समिधा' सहित सौंपता है वह उत्तम ब्रह्मचर्यपालक होकर वीर्यवान् और विद्यादि से पुष्ट होता है।

स के॒तुर॑ध्व॒राणा॑म॒ग्निर्दे॒वेभि॒रा ग॑मत्।

अ॒ञ्जा॒नः स॒प्त होतृ॑भिर्ह॒विष्म॑ते ॥ ४ ॥

भा०—(अग्निः अध्वराणां केतुः) जिस प्रकार अग्नि यज्ञों का ज्ञान कराने वाला और (सप्तहोतृभिः अञ्जानः) सात होताओं द्वारा प्रकाशित होता है। उसी प्रकार (सः) वह (अध्वराणां) कभी नाश को प्राप्त न होने वाले जीवात्माओं और सत्कर्मों का (केतुः) ज्ञान देने और प्रकाशित करने वाला (अग्निः) तेजोमय परमेश्वर (देवेभिः) दिव्य गुणों, दिव्य पदार्थों और ज्ञानप्रकाशक विद्वानों द्वारा (आगमत्) हमें प्राप्त हो। वही (सप्तहोतृभिः) प्रकाश देने वाली सात रश्मियों से सूर्य के समान और सात प्राणों से आत्मा के समान (सप्त) सात वा सर्पणशील (होतृभिः) संसार के धारण करने वाले प्रवहण आदि सात तत्वों से, ज्ञान प्रदान करने वाले सात छन्दों से (हविष्मते) 'हवि' अर्थात् ज्ञान ग्रहण करने में समर्थ बुद्धि बल से युक्त पुरुष के लिये (अञ्जानः) अपने गुणों और ज्ञानों का प्रकाश करने हारा है। (२) अध्यात्ममें—अग्नि आत्मा है। सब जीवनादि यज्ञों का चेताने वाला, देव अर्थात् विषयेच्छुक प्राणों

या कामनाओं से प्रकट होता है। शिरोगत सात ग्राहक द्वारों से अन्नवान् देह को चेतन करने के लिये अपने को प्रकट या अभिव्यक्त करता है। ( ३ ) राजा सात विद्वान् शासकों द्वारा अपना शासन प्रकट करे और विद्वानों सहित अन्नादि सम्पन्न प्रजा के पालन के लिये आवे।

प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत्।
विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो! आप लोग ( विपां ) विद्वान् पुरुषों के बीच में ( ज्योतींपि ) ज्ञानमय ज्योतियों को ( बिभ्रते ) धारण करने वाले ( वेधसे न ) परम श्रेष्ठ विद्वान् के समान ( अग्नये ) ज्ञान प्रकाशक और ( बृहत् पूर्व्यम् ) बहुत बड़े पूर्वों द्वारा उपासित और अभ्यस्त (वचः) वेदवाणी को ( होत्रे ) देने और धारण करने वाले परम विद्वान् और परमेश्वर के लिये ( बृहत् ) बहुत अन्नादि (प्र भरत) लाओ एवं परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये ( बृहत् ) बड़ा ज्ञान स्वयं ( प्र भरत ) प्राप्त करो। ( २ ) राजा के पक्षमें—विद्वानों के बीच तेजों को धारण करने वाले, विधाता, कार्यकर्त्ता एवं विधाननिर्माता नायक पुरुष के प्रति बड़े उत्तम, पूर्व विद्वानों द्वारा अभ्यस्त ( वचः ) वाङ्मय का उपदेश करो। इति सप्तमो वर्गः ॥

अग्निं वर्धन्तु नो गिरो यतो जायत उक्थ्यः।
महे वाजाय द्रविणाय दर्शतः ॥ ६ ॥

भा०—( अग्निम् ) अंग में विनयशील तेजस्वी पुरुष को (नः गिरः) हमारी ज्ञानोपदेश-वाणियें ( वर्धन्तु ) बढ़ावें ( यतः ) जिनसे वह ( उक्थ्यः ) उक्थ अर्थात् वेद और वेदोपदिष्ट ब्रह्म ज्ञान में निपुण और स्वयं भी प्रशंसनीय ( जायते ) हो और ( महे ) बड़े भारी ( वाजाय ) ज्ञान और बल प्राप्त करने और ( द्रविणाय ) ऐश्वर्य लाभ करने के लिये भी ( दर्शतः ) दर्शनीय हो। ( २ ) परमेश्वर क्योंकि ( उक्थ्यः ) वेद

द्वारा स्तुत्य है अतः उस सर्वप्रकाशक को हमारी स्तुतियां बढ़ावें, उसके गुणों को प्रकाशित करें। वह बड़े ज्ञान, बल और ऐश्वर्य के प्राप्त करा देने के लिये दर्शनीय, अद्भुत है।

अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान्देवयते यज।
होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः ॥ ७ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान तेजस्विन् परमेश्वर ! तू ( यजिष्ठः ) सब दान देने, सत्संग करने और मैत्रीभाव रखने वालों में सर्वश्रेष्ठ है। तू ( देवयते ) उत्तम गुणों और विद्वानों की (यज) संगति करा कर। तू ( होता ) सबका दाता और धर्त्ता ( मन्द्रः ) सबको हर्षित करने वाला आनन्दमय होकर ( स्रिधः ) विद्या आदि गुणों के नाश करने वाली दुर्वासनाओं को ( अति विराजसि ) लांघकर, उनसे कहीं परे विशेष दीप्ति से प्रकाशित होता है। (२) राजा सबसे अधिक दानशील होकर कामनावान् प्रजाजन की वृद्धि के लिये विद्वानों का सत्संग करे। वह सब हिंसाकारी सेनाओं वा धर्मविरोधियों के ऊपर विराजे।

स नः पावक दीदिहि द्युमदस्मे सुवीर्यम्।
भवा स्तोतृभ्यो अन्तमः स्वस्तये ॥ ८ ॥

भा०—हे ( पावक ) पवित्र करने हारे, परम पावन प्रभो ! ( सः ) वह परम तू ( नः ) हमें ( दीदिहि ) प्रकाशित कर और ( अस्मे ) हमें ( द्युमत् ) कान्ति से युक्त ( सु-वीर्यम् ) उत्तम वीर्य, बल ( दीदिहि ) प्रदान कर। तू ( स्वस्तये ) सुख कल्याण की वृद्धि के लिये ( स्तोतृभ्यः ) स्तुतिकर्त्ता पुरुषों के ( अन्तमः ) भीतर अन्तःकरण में स्थित ( भव ) हो, सदा उनके समीप रह। ( २ ) अग्नि के समान सबको पवित्र करने वाला विद्वान् हमें विद्या प्रकाश से चमकावे, उत्तम वीर्य धारण करावे, विद्याभ्यास करने वाले शिष्यजनों के सदा समीप रहे।

तं त्वा विप्रा विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
हव्यवाहममर्त्यं सहोवृधम् ॥ ९ ॥ ८ ॥

भा०—हे परमात्मन् ! ( विपन्यवः ) विविध प्रकार से स्तुति करने हारे ( विप्राः ) मेधावी, ज्ञानी पुरुष ( जागृवांसः ) जागरणशील, ब्राह्म-मुहूर्त्त में ही सबसे पूर्व जागने वाले, सदा जागृत, प्रबुद्ध, सावधान लोग ( हव्यवाहम् ) देने योग्य ज्ञान के देने वाले, ( सहोवृधम् ) सहन करने, शत्रुओं को परास्त करने वाले, बल को बढ़ाने वाले, (अमर्त्य) अमरणशील, नित्य ( तं ) उस प्रसिद्ध ( त्वा ) तुझको ( सम् इन्धते ) अच्छी प्रकार यज्ञाग्नि के समान ही प्रकाशित करते हैं । अपने हृदय में जागृत करते हैं । ( २ ) राजा को ( विपन्यवः ) विविध व्यवहारकुशल विद्वान् जन सदा सावधान रहकर उसे चेतावें । इत्यष्टमो वर्गः ॥

## [ ११ ]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, ७, ८ निचृद्गायत्री । ३, ९ विराड् गायत्री । ४, ६ गायत्री ॥

अग्निर्होता पुरोहितोऽध्वरस्य विचर्षणिः ।
स वेद यज्ञमानुषक् ॥ १ ॥

भा०—जो ( अग्निः ) अग्रणी, नायक, विद्वान् पुरुष ( होता ) दानशील, (पुरोहितः) दीपक के समान सबके समक्ष अध्यक्षरूप में स्थापित किया जाता है वह ( अध्वरस्य ) जिस कार्य में प्रजाओं का नाश और जो कार्य परिणाम में नाशकारक और स्वतः भी नाशवान् न हो, उसका ( विचर्षणिः ) विविध रूप से देखने हारा हो ( सः ) वही ( यज्ञम् ) परस्पर के सत्संग, दान-प्रतिदान, पूजा सत्कार आदि के ( आनुषक् ) अनुकूलता से और आनुपूर्वी क्रम से किये जाने योग्य विधि-विधान को ( वेद ) भली प्रकार जाने ।

**स हव्यवाळमर्त्य उशिग्दूतश्चनोहितः ।**
**अग्निर्धिया समृण्वति ॥ २ ॥**

भा०—( सः ) वह विद्वान् पुरुष ( हव्यवाड् ) दान देने और लेने योग्य पदार्थों को प्राप्त करने और अन्यों को प्राप्त कराने हारा ( अमर्त्यः ) साधारण पुरुषों से विशेष ( उशिक् ) अग्नि के समान तेजस्वी, सर्वप्रिय, उत्तम पदार्थों की कामना करने वाला ( दूतः ) दुष्टों को संतापदायक और सेवा करने योग्य, ( चनोहितः ) पचन योग्य अन्न और उत्तम वचन योग्य ज्ञानादि का हितकारी, उसको धारण करने वाला ( अग्निः ) अग्रणी हो वह ( धिया ) बुद्धि और उत्तम कर्म से ( सम् ऋण्वति ) अच्छी प्रकार समस्त कार्यों को जाने और उत्तम मार्ग पर चले । परमेश्वर स्तुतियोग्य और ऐश्वर्य को प्राप्त कराने से 'हव्यवाड्', ( उशिग् ) तेजोमय, अन्नादि से हितकारी है । वह अपनी धारण शक्ति से सर्वत्र ( सम् ऋण्वति ) समानभाव से व्यापक हो रहा है ।

**अग्निर्धिया स चेतति केतुर्यज्ञस्य पूर्व्यः ।**
**अर्थं ह्यस्य तरणि ॥ ३ ॥**

भा०—( अग्निः ) अग्नि के समान तेजस्वी, ज्ञानवान् , ज्ञानों का प्रकाशक विद्वान् और नायक पुरुष ( धिया ) अपनी उत्तम बुद्धि से ( चेतति ) विचार करे वह ( यज्ञस्य ) सत्कार, दान मान आदि कार्यों में ( पूर्व्यः ) पूर्व विद्यमान, वृद्धजनों में कुशल और ( केतुः ) सब कर्त्तव्यों का बतलाने वाला एवं ध्वजा के समान सर्वोपरि अग्रगण्य हो । ( अस्य ) इसका ( अर्थं हि ) गमन, चेष्टा और प्रयोजन भी ( तरणि ) प्रजा को दुःखों से तारने वाला, लोकोपकारक हो । ( २ ) परमेश्वर ज्ञान और विश्व के धारण सामर्थ्य से सब कुछ जानता है वह इस व्यवस्थित जगत् के ( पूर्व्यः ) पूर्व विद्यमान और उसका प्रकाशक है । उसका सर्वत्र

व्यापन और प्रेरण ही समस्त संसार को चलाने और उसका ( अर्थ ) ज्ञान ही ( तरणि ) इस जीव को तराने, दुःखों से पार उतारने वाला है।

अ॒ग्निं सू॒नुं सन॑श्रुतं॒ सह॑सो जा॒तवे॑दसम्।
वह्निं॑ दे॒वा अ॑कृण्वत ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार ( देवाः ) व्यवहार और शिल्पकुशल विद्वान् लोग ( सहसः सूनुं ) बल के सञ्चालक और उत्पादक ( अग्निं ) अग्नि, तत्व, विद्युत् को ( वह्निं ) रथादि को देश से देशान्तर में उठाकर लेजाने में समर्थ (अकृण्वत) बना लेते हैं। उसी प्रकार ( अग्निम् ) अग्रणी और ज्ञानवान् ( सन-श्रुतम् ) सनातन शास्त्रों को श्रवण करने हारे ( जात-वेदसम् ) प्राप्त करके विद्वान् हुए एवं ऐश्वर्यवान् ( सहसः सूनुं ) बल के उत्पादक, सैन्यबल के सञ्चालक पुरुष को ( देवाः ) व्यवहारकुशल पुरुष ( वह्निं ) राष्ट्र कार्य को वहन करने में समर्थ ( अकृण्वत ) बनावें, उसे प्रधान सञ्चालक बनावें। ( २ ) सनातन से प्रसिद्ध एवं श्रवण मनन किये गये ज्ञानमय, सर्वप्रेरक, उत्पादक, सर्वज्ञ सर्वपालक परमेश्वर को लक्ष्य कर विद्वान् जन सब कार्य करते हैं।

अदा॑भ्यः पुरए॒ता वि॒शाम॒ग्निर्मानु॑षीणाम्।
तूर्णी॒ रथः॒ सदा॒ नवः॑ ॥ ५ ॥ ९ ॥

भा०—( तूर्णीरथः ) अति वेगवान् रथ जिस प्रकार ( मानुषीणाम् विशाम् पुरः एता ) मनुष्य प्रजाओं के बीच सबसे आगे चलता है उसी प्रकार ( मानुषीणाम् ) मननशील, मनुष्य ( विशाम् ) प्रजाओं के बीच ( अग्निः ) अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी, ज्ञानवान् पुरुष ( अदाभ्यः ) किसी से भी मारा न जा सकने योग्य, बलवान् और रक्षा करने योग्य, ( तूर्णी ) कार्य करने में क्षिप्रकारी (रथः) वेगवान्, बलवान् और ( सदा-नवः ) सदा नवीन, अति प्रसन्न, सर्वप्रिय सर्वस्तुत्य होकर ( पुरः एता )

आगे २ चलने हारा हो। ( २ ) परमेश्वर नित्य, अहिंसक सर्व से पूर्व विद्यमान, सबका तारक, रसस्वरूप एवं सदा स्तुत्य है। इति नवमो वर्गः॥

**साह्वान्विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः।**

**अग्निस्तुविश्रवस्तमः॥ ६॥**

भा०—( अग्निः ) अग्रणी नायक अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (तुविश्रवस्तमः) बहुत ज्ञानवान्, बहुत से ऐश्वर्यों से सम्पन्न, ( देवानाम् ) प्राणों के बीच (अमृक्तः) अमृतः, [ ककारोपजनः ] अमर आत्मा के समान वा ( देवनाम् ) विजयेच्छुक वीर पुरुषों के बीच (अमृक्तः) शत्रुजनों से न मारा जा सकने योग्य, ( क्रतुः ) कर्मकुशल और ( विश्वान् अभियुजः ) समस्त अभियोक्ता, आक्रमणकारी प्रतिस्पर्द्धी शत्रुओं को ( साह्वान् ) पराजित करने वाला और सम्मुख आई सहयोगिनी प्रजाओं को भी वश करने वाला हो। परमेश्वर सब पृथ्वी तेज आदि तत्वों में अमृत, नित्य, सबका वशकर्त्ता महान् 'क्रतु' कर्त्ता एवं ज्ञाता है।

**अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः।**

**क्षयं पावकशोचिषः॥ ७॥**

भा०—( दाश्वान् मर्त्यः ) दानशील, करप्रद, प्रजाजन ( वाहसा ) उत्तम उद्देश्य तक पहुंचा देने वाले नायक एवं विद्वान् पुरुष के द्वारा ही (प्रयांसि) अन्न ज्ञान, बल आदि तृप्तिकर प्रिय पदार्थों को (अभि—अश्नोति) प्राप्त करता है। और वही ( पावकशोचिषः ) अग्नि के तेज के समान पवित्र तेज वाले उस नायक के ( क्षयं ) निवास योग्य गृह को भी ( अभि अश्नोति ) प्राप्त करता है। ( २ ) परमेश्वर पक्षमें—( दाश्वान् ) आत्मसमर्पक उपासक सर्वधारक परमेश्वर से ही सब प्रिय ऐश्वर्य प्राप्त करता है। वही पवित्र तेजोमय प्रभु के समीप स्थिति पाता वा उसके द्वारा अपने दुःखों का विनाश कर पाता है।

परि विश्वानि सुधिताग्नेरश्याम मन्मभिः ।
विप्रासो जातवेदसः ॥ ८ ॥

भा०—हम ( विप्रासः ) बुद्धिमान् ( जातवेदसः ) उत्तम ज्ञान और ऐश्वर्य से सम्पन्न होकर भी ( अग्नेः ) ज्ञानी, तेजस्वी और अग्रणी पुरुष के ( मन्मभिः ) मनन करने योग्य वचनों, विचारों और बल सामर्थ्यों से ( विश्वानि ) सब प्रकार के ( सुधितानि ) सुख से धारण करने योग्य, उत्तम हितकारी ज्ञानों और पदार्थों का ( परि अश्याम ) सब प्रकार से भोग करें । ( २ ) हम परमेश्वर की स्तुतियों द्वारा सब ऐश्वर्य प्राप्त करें ।

अग्ने विश्वानि वार्या वाजेषु सनिषामहे ।
त्वे देवास एरिरे ॥ ९ ॥ १० ॥

भा०—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! हे नायक ! हम लोग ( देवासः ) धनादि ऐश्वर्यों और ज्ञानों की कामना करते हुए ( त्वे ) तेरे प्रति ( ऐरिरे ) शरण आते और प्रार्थना करते हैं और तेरे ही अधीन रह कर हम सब ( वाजेषु ) संग्रामों के अवसर पर वा ज्ञानों और ऐश्वर्यों के प्राप्त होने पर ( विश्वानि ) सब प्रकार के ( वार्या ) वरण करने योग्य उत्तम ऐश्वर्यों को ( सनिषामहे ) एक दूसरे को दान करें एवं परस्पर विभाग करके उपभोग करें । (२) परमेश्वर पक्षमें—विद्वान् जन तेरी स्तुति करते हैं, हम भी यज्ञों में समस्त वरणीय पदार्थ तेरे ही आश्रय होकर प्राप्त करें । इति दशमो वर्गः ॥

## [ १२ ]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ३, ५, ८, ९ निचृद्-गायत्री । २, ४, ६ गायत्री । ७ यवमध्या विराड्गायत्री च ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् ।
अस्य पातं धियेषिता ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और हे अग्ने! हे ऐश्वर्यवन् हे ज्ञानवन्! मेघ और सूर्य या वायु विद्युत् के समान जीवन, प्राण और अन्न और ज्ञान प्रकाश देने वाले गुरु जनो! आप दोनों ( आ गतम् ) आइये। जिस प्रकार मेघ और सूर्य दोनों मिलकर ( नभः ) आकाश को (गीर्भिः) गर्जनादि मध्यम वाणियों से व्यापते हैं उसी प्रकार आप दोनों भी ( गीर्भिः ) उत्तम उपदेशों से ( वरेण्यम् ) स्वीकार करने योग्य ( नभः ) विद्या और योनि सम्बन्धों से बंधे ( सुतम् ) उत्पन्न हुए पुत्र वा शिष्य को ( आ गतम् ) प्राप्त होओ। और आप दोनों (धिया इषिता) ज्ञान और कर्म द्वारा उसको सन्मार्ग में प्रेरित करते हुए ( अस्य ) इसको ( पातम् ) पालन करो। ( २ ) ( सुतं ) अभिषेकादि से स्नात राजा को इन्द्र और अग्नि, वायु और आग के समान बलवान् तेजस्वी पुरुषवर्ग प्राप्त हों। वे उत्तम वाणियों से उस वरण करने योग्य ( नभः ) राज्य प्रबन्ध में कुशल या व्यवस्थाओं से बद्ध, एवं एकाश के समान सर्वोपरि विराजमान उसको अपने ज्ञान और उद्योग से प्रेरते हुए उसका पालन करें।

इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः।
अया पातमिमं सुतम् ॥ २ ॥

भा०—हे ( इन्द्राग्नी ) पूर्वोक्त वायु और सूर्य के समान बल और ज्ञान प्रकाश से युक्त आप दोनों के समीप ही ( यज्ञः ) सत्संग करने वाला एवं विद्योपदेशादि देने योग्य ( चेतनः ) चेतन, ज्ञान से प्रबुद्ध पुत्र वा शिष्य ( जिगाति ) प्राप्त होता है। आप दोनों ( जरितुः सचा ) उपदेश देने वाले के सहायक होकर ( इमं सुतम् ) इस पुत्रादि को (अया पातम् ) इस वाणी से पालन करो।

इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे।
ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्रम् ) वायु के समान बलवान् और ( अग्निम् ) अग्नि के

समान तेजस्वी दोनों कविच्छद्रा विद्वान् पुरुषों को अन्नवस्त्रादि से आच्छादित करने वाले हैं उन दोनों को मैं ( यज्ञस्य ) परस्पर के सत्संग और मैत्री भाव की (जूत्या) प्रेरणा या बलसे (वृणे) वरण कररता हूं। (ता) वे दोनों (इह) इस समय ( सोमस्य ) सौम्य स्वभाव वाले शिष्य के उत्तम गुणों और सेवा शुश्रूषादि द्वारा ( तृम्पताम् ) स्वयं सुखी हों और ( सोमस्य तृम्पताम् ) शिष्य को भी ज्ञान से तृप्त, पूर्ण करें। ( २ ) बलवान् तेजस्वी पुरुषों को परस्पर के संगति के बल से वरण करें और वे दोनों राष्ट्र-ऐश्वर्य से तृप्त हों और प्रजा को तृप्त करें।

तो॒शा वृ॑त्र॒हणा॑ हुवे स॒जित्वा॒नाप॑राजिता।
इ॒न्द्रा॒ग्नी वा॑ज॒सात॑मा ॥ ४ ॥

भा०—मैं शिष्य वा पुत्रजन ( तोशा ) बढ़ाने और ज्ञानोपदेश करने वाले ( वृत्रहणा ) अवरणकारी विघ्न और अज्ञान को नाश करने वाले ( सजित्वाना ) समान रूप से जितेन्द्रिय ( अपराजितौ ) कभी न पराजित, सदा पराक्रमशील, ( वाजसातमा ) ज्ञानैश्वर्य के उत्तम देने वाले, ( इन्द्राग्नी ) वायु सूर्य के समान विद्वानों को ( हुवे ) प्राप्त करूं। ( २ ) ( तोशा ) शत्रुओं के नाशक, ( वृत्रहणा ) दुष्टों को मारने वाले, ( सजित्वाना ) विजयशील वीरों से युक्त ( अपराजिता ) कभी पराजित न होने वाले ( वाजसातमा ) अन्नैश्वर्यादि के देने वाले वीर तेजस्वी पुरुषों को उत्तम पद के लिये स्वीकार करूं।

प्र वा॑मर्चन्त्यु॒क्थिनो॑ नीथा॒विदो॑ जरि॒तारः॑।
इन्द्रा॑ग्नी इ॒ष आ वृ॑णे ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—हे ( इन्द्राग्नी ) विद्युत् सूर्य के समान तेजस्वी पुरुषो ! ( उक्थिनः ) उत्तम ज्ञान और गुणों वाले, ( नीथाविदः ) विनयाचारों और उत्तम मार्गों को जानने वाले, ( जरितारः ) विद्वान् पुरुष ( वाम् अर्चन्ति ) आप दोनों का सन्मान करते हैं। मैं भी ( इषे ) अन्नादि ऐश्वर्य,

उत्तम प्रेरणा और अभिलाषा की पूर्त्ति के लिये ( आवृणे ) आप दोनों को वरण करता हूं ।

इन्द्राग्नी न॒वतिं पुरो॑ दा॒सप॑त्नीरधूनुतम् ।
सा॒कमेके॑न॒ कर्म॑णा ॥ ६ ॥

भा०—( इन्द्राग्नी ) वायु और सूर्य के समान बलवान् और तेजस्वी पुरुष ( पुरः ) अपने सामने स्थित ( नवतिम् ) ९० ( नवे ) ( दास-पत्नीः ) शत्रुनाशक सैनिकों को अपने भीतर पालन करने वाली सेनाओं को ( एकेन कर्मणा ) एक ही समान कर्म के ( साकम् ) साथ ( अधूनु-तम् ) सञ्चालन करें । इसी प्रकार वे अपने आगे आई ९० शत्रु-सेनाओं को भी एक ही पराक्रम से भय से कम्पित करें ।

इन्द्रा॑ग्नी अप॑स॒स्पर्युप॒ प्र य॑न्ति धी॒तय॑ः ।
ऋ॒तस्य॑ प॒थ्या॒३॒॑ अनु॑ ॥ ७ ॥

भा०—हे ( इन्द्राग्नी ) सूर्य और अग्नि या वायु और अग्नि के समान तेजस्वी बलवान् पुरुषो ! जिस प्रकार (धीतयः अपसः परि उप प्र यन्ति) हाथ की अंगुलियां कार्य करने के लिये आगे बढ़ती हैं, वा लोग ( ऋतस्य पथ्याः अनु ) ऐश्वर्य प्राप्ति के मार्ग का अनुसरण करते हैं उसी प्रकार आप दोनों का ( धीतयः ) सब गतियें, धारण शक्तियें वा कर्म, ( अपसः परि उप प्र यन्तु ) कर्त्तव्य-कर्म पर आश्रित, उसके ही ऊपर निर्भर हों । और वे सब ( ऋतस्यपथ्याः अनु ) सत्याचरण और ऐश्वर्य के प्राप्त करने के उत्तम मार्गों के अनुकूल हों ।

इन्द्रा॑ग्नी तवि॒षाणि॑ वां स॒धस्था॑नि॒ प्रयां॑सि च ।
यु॒वोर॒प्तूर्यं॑ हि॒तम् ॥ ८ ॥

भा०—हे वायु और सूर्य के समान तेजस्वी बलवान् पुरुषो ! जिस प्रकार वायु और सूर्य दोनों के (तविषाणि) बल वा शक्तियां और (प्रयांसि) प्रजाओं को तृप्त करने वाले अन्न जलादि ( सधस्थानि ) एक ही स्थान पर

परस्पर सम्बद्ध रहते हैं और उन दोनों पर ही ( असूर्यम् ) वृष्टि जलों का लाना निर्भर होता है। उसी प्रकार ( वां ) तुम दोनों के (तविषाणि) सब बल, कर्म और ( प्रयांसि च ) प्रजाओं को प्रिय और हृष्ट पुष्ट करने वाले कार्य ( सधस्थानि ) एक स्थान पर ही हों अर्थात् वे परस्पर अनुकूल रहें। ( युवोः ) तुम दोनों पर ही ( असूर्यम् ) कार्यों को शीघ्र सम्पादन करने और प्रजाओं के सञ्चालन का कार्य भी स्थित है।

इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः।
तद्वां चेति प्र वीर्यम् ॥ ९ ॥ १२ ॥ १ ॥

भा०—( इन्द्राग्नी ) सूर्य और वायु के समान तेजस्वी बलवान् सेनाध्यक्ष और सभाध्यक्षो ! आप दोनों ( दिवः ) ज्ञान, प्रकाश, तेजस्विता और उत्तम कामनायुक्त व्यवहारों में ( रोचना ) कान्ति और तेज से युक्त सब प्रजाजन को अच्छे लगने हारे होकर ( वाजेषु ) संग्रामों और ऐश्वर्यों के बीच ( परि भूषथः ) विद्यमान रहो या पदों को सुशोभित करो। (वां) आप दोनों का ( तत् ) वह अद्भुत ( वीर्यं ) बल पराक्रम (प्र चेति) सबसे उत्तम जाना जाए और अन्यों को ज्ञान देने वाला हो। इति द्वादशो वर्गः॥ इति तृतीये मण्डले प्रथमोऽनुवाकः ॥

## [ १३ ]

ऋषभो वैश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ भुरिगुष्णिक् । २, ३, ५, ६, ७ निचृदनुष्टुप् । ४ विराडनुष्टुप् ॥ सप्तदशर्चं सूक्तम् ॥

प्र वो देवायाग्नये बर्हिष्ठमर्चास्मै।
गमद्देवेभिरा स नो यजिष्ठो बर्हिरा सदत् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! ( वः ) आपके ( देवाय ) विद्या आदि शुभ गुणों की कामना करने वाले ( अग्नये ) अग्नि के समान तेजस्वी एवं अंगों में विनयशील शिष्य को विद्याभ्यास करने के लिये ( देवेभिः ) अन्य विद्याभिलाषी शिष्यों वा उत्तम दिव्य गुणों सहित ( आगमत् ) हमें प्राप्त

हो ( सः ) वह ( नः ) हमारा (यजिष्ठः) सबसे अधिक पूज्य और उत्तम विद्यादाता होकर ( बर्हिः ) उत्तम आसन पर, आकाश में सूर्य के समान ( आ सदत् ) विराजे। उस ( बर्हिष्ठम् ) उत्तम आसन पर स्थित पुरुष को ( अस्मै ) इसके हित के लिये ( अर्च ) आदर सत्कार करो। ( २ ) राजा पक्ष में—मार्ग प्रकाशक अग्रणी पद के लिये जो अन्य विद्वानों सहित हमें प्राप्त हो, वह सबसे अधिक दानशील, ( बर्हिः ) वृद्धिशील प्रजाओं पर विराजे, उस पद के लिये उसका आदर करो।

ऋतावा यस्य रोदसी दक्षं सचन्त ऊतयः।
हविष्मन्तस्तमीळते तं सनिष्यन्तोऽवसे ॥ २ ॥

भा०—( यस्य ) जिसके ( दक्षं ) बल और ज्ञान का ( रोदसी ) आकाश और भूमि के समान स्वपक्ष और परपक्ष दोनों ( सचेते ) आश्रय लेते हैं और ( ऊतयः ) सब रक्षाकार्य और रक्षकजन भी ( यस्य दक्षं सचन्ते ) जिसके बल का आश्रय लेते हैं। ( तं ) उसको ( हविष्मन्तः ) अन्नादि ऐश्वर्यों के स्वामी लोग भी ( अवसे ) अपनी रक्षा के लिये (ईडते) चाहते हैं और उसकी स्तुति करते हैं। और ( सनिष्यन्तः ) भविष्यत् में दान देने और ऐश्वर्य का सेवन करने के अभिलाषी भी ( अवसे ) अपनी रक्षा के लिये ( तं सचन्ते, तम् ईळते ) उसकी शरण जाते हैं और उसको ही चाहते और सराहते हैं।

स यन्ता विप्र एषां स यज्ञानामथा हि षः।
अग्निं तं वो दुवस्यत दाता यो वनिता मघम् ॥ ३ ॥

भा०—( यः ) जो ( वः ) तुम लोगों को ( मघम् वनिता ) ऐश्वर्य का विभाग करता और ( दाता ) देता है तुम लोग ( तम् अग्निम् ) उस अग्रणी, ज्ञानी विद्वान् तेजस्वी पुरुष की ( दुवस्यत ) सेवा करो। ( सः ) वह ( विप्रः ) विविध बलों से पूर्ण करने हारा है। ( सः ) वही (एषां) इन प्रजाओं का ( यन्ता ) नियम में बांधनेवाला, नियन्ता ( अथ ) और

( सः ) वही ( यज्ञानां ) यज्ञों, उत्तम सत्संग और मैत्री भावों का ( यन्ता ) बांधने वाला है ।

स नः शर्माणि वीतयेऽग्निर्यच्छतु शन्तमा ।
यतो नः प्रुष्णवद्वसु दिवि क्षितिभ्यो अप्स्वा ॥ ४ ॥

भा०—( सः ) वह ( अग्निः ) तेजस्वी, ज्ञानी, अग्रणी पुरुष ( नः ) हमें ( शंतमा ) अति अधिक शान्ति देने वाले ( शर्माणि ) गृह, शरण, सुख आदि ( वीतये ) उपभोग और रक्षा के लिये ( यच्छतु ) प्रदान करे । यतः जिनसे ( नः ) हमें ( दिवि ) आकाश में और (अप्सु) अन्तरिक्ष में विद्यमान ( वसुः ) जीवन वसाने योग्य प्रकाश, वृष्टि, वायु आदि और ( क्षितिभ्यः ) भूमियों और उनमें रहने वाली प्रजाओं से प्राप्त होने वाला ( वसु ) रत्न, सुवर्ण, इन्धन, अन्न आदि खूब ( प्रुष्ण-वत् ) स्नेहन, सेचन और पुष्टि करने वाले प्रकाश, जल और अन्न से समृद्ध ऐश्वर्य ( आ ) सब प्रकार से प्राप्त हों । ( २ ) इसी प्रकार परमेश्वर हमें शान्ति कर ( शर्म ) गृह रूप देह दे, जिन से ( दिवि ) कामना और (अप्सु) प्राणों के बल पर और ( क्षितिभ्यः ) पृथ्वी आदि पञ्चभूतों से ( प्रुष्णवत् ) इच्छा पूरक, स्नेहयुक्त और पोषक ( वसु ) जीवनोपयोगी बल प्राप्त हो ।

दीदिवांसमपूर्व्यं वस्वीभिरस्य धीतिभिः ।
ऋक्वाणो अग्निमिन्धते होतारं विश्पतिं विशाम् ॥ ५ ॥

भा०—( वस्वीभिः ) ऐश्वर्य या तेज से युक्त ( धीतिभिः ) दीप्तियों, किरणों से ( दीदिवांसं यथा ऋक्वाणः अग्निम् इन्धते ) प्रकाशमान अग्नि को जिस प्रकार वेदज्ञ विद्वान् प्रकाशित करते हैं उसी प्रकार ( ऋक्वाणः ) स्तुतिकर्त्ता विद्वान् लोग ( अस्य ) इस अग्रणी नायक की अपनी निजी ( वस्वीभिः ) वसने वाली ऐश्वर्य युक्त प्रजाओं, सेनाओं तथा ( धीतिभिः ) धारण पोषण करने वाली समृद्धियों वाणियों और नीतियों में से ( दीदि-

वांसं ) राष्ट्र की रक्षा करने वाले, ( अपूर्व्यं ) अपूर्व, गुणों और कार्यों के करने में कुशल, (अग्निम् ) अग्रणी, तेजस्वी, (विशाम् विश्पतिम् ) प्रजाओं के बीच रहकर प्रजाओं का पालन करने हारे, (होतारं ) सबको सब प्रकार के सुखों के देने, राष्ट्र को अपने अधीन रखने और शत्रु के ललकारने वाले वीर पुरुष को ( इन्धते ) प्रकाशित करें। और अधिक उज्ज्वल और वीर प्रतापी बनावें। ( २ ) परमेश्वर पक्ष में—( वस्वीभिः धीतिभिः ) संसार को बसाने और उसमें व्यापने वाली धारक शक्तियों, देदीप्यमान अद्वितीय एवं जीवों के स्वामी, सर्व सुखदाता तेजोमय प्रभु को स्तुति कर्त्ता-जन प्रकाशित करते हैं, उसके गुणों को प्रकट करते हैं। (३) विद्वान् (वस्वीभिः धीतिभिः ) ज्ञान से युक्त वाणियों से प्रकाशित है उस ज्ञानदाता ( ऋक्वाणः ) वेदाभ्यासी जन, अन्ते वासीजनों के पालक आचार्य को प्रकाशित करते हैं।

उत नो ब्रह्मन्नविष उक्थेषु देवहूतमः।
शं नः शोचा मरुद्वृधोऽग्ने सहस्रसातमः॥ ६॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक ! एवं ज्ञानवन् विद्वन् ! तू ( मरुद् वृधः ) स्वयं भी विद्वान् मनुष्यों, व्यापारी जनों और प्रजाओं और शत्रु को मारने वाले वीर सैनिकों के बल पर बढ़ने वाला और ( सहस्र सातमः ) सहस्रों ऐश्वर्यों को देने और स्वयं उपभोग करने में सर्वश्रेष्ठ और ( उक्थेषु ) प्रशंसा योग्य कार्यों और पदों पर भी ( देवहूतमः ) विद्वानों द्वारा अति प्रशंसित, एवं कामनावान् प्रिय पुरुषों द्वारा प्रेम से बुलाये जाने योग्य, विद्वानों को अपनी शरण में लेने हारा है। ऐसा तू ( नः ) हमें ( ब्रह्मन् ) बड़े भारी धनैश्वर्य के प्राप्त करने के लिये ( अविषः ) व्याप, एवं रक्षा कर और ( नः ) हम ( मरुद्-वृधः ) सामान्य व्यापारी प्रजाओं के बल पर बढ़ने वाले प्रजाजनों को भी ( शं ) शान्ति सुख (शोच) प्रदान कर। (२) विद्वान् जन ( उक्थेषु ) सूक्तों में ( देवहूतमः )

विद्याभिलाषी जनों का उत्तम उपदेष्टा है ( वह मरुद्-वृधः ) शिष्य गणों से बढ़ने वाला, सहस्रों ज्ञानों का दाता होकर ब्रह्मज्ञान के निमित्त हमें ज्ञानवान् करे और हमें शान्ति प्रदान करे ।

नू नो रास्व सहस्रवत्तोकवत्पुष्टिमद्वसु ।
द्युमदग्ने सुवीर्यं वर्षिष्ठमनुपक्षितम् ॥ ७ ॥ १२ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! नायक ! परमेश्वर ! ( नः ) हमें तू ( सहस्रवत् ) हज़ारों की संख्या वाले, ( तोकवत् ) उत्तम पुत्र पौत्रादि से युक्त, ( पुष्टिमत् ) धन धान्य, पशु आदि समृद्धि से सम्पन्न, ( द्युमत् ) दीप्तियुक्त, ज्ञानयुक्त, ( सुवीर्यम् ) उत्तम वीर्य, बल से युक्त ( वर्षिष्ठम् ) खूब बढ़े हुए ( अनुपक्षितम् ) बहुत अधिक व्यय करने पर भी न क्षीण होने वाले, अक्षय ऐश्वर्य का (नः) हमें (रास्व) प्रदान कर ।

## [ १४ ]

ऋषभो वैश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ७ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ५ त्रिष्टुप् । ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् । ६ पङ्क्तिः ॥

आ होता मन्द्रो विदथान्यस्थात्सत्यो यज्वा कवितमः स वेधाः ।
विद्युद्रथः सहसस्पुत्रो अग्निः शोचिष्केशः पृथिव्यां पाजो अश्रेत्॥१॥

भा०—(होता) विद्वानों को आदर पूर्वक बुलाने, विद्यार्थियों को सब विद्याओं का दान करने हारा, ( मन्द्रः ) स्वयं कमनीय गुणों से युक्त, अन्यों को प्रसन्न करने हारा (सत्यः) सत्य धर्माचरण से युक्त, सज्जनों का हितकारी, ( यज्वा ) दानशील, सत्संगी एवं मित्रभावसे रहने हारा, ( कवितमः ) बहुत दूरदर्शी, ( सः ) वह ( वेधाः ) सब कार्य करने में कुशल, मेधावी होकर ( विदथानि ) यज्ञों, लाभ करने योग्य विज्ञानों को ( आ अस्थात् ) अभ्यास करे । वह (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी अग्रणी नायक ( विद्युत् रथः) विद्युत् से चलने वाले रथ का स्वामी, वा विद्युत् के समान रमणीय-

स्वरूप, कान्तिमान (सहसस्पुत्रः) बलवान् पुरुष का पुत्र (शोचिष्केशः) तेजों को सिंह के वालों के समान धारण करने वाला होकर ( पृथिव्यां ) अन्तरिक्ष में सूर्य के समान पृथिवी पर ( पाजः ) बल, ऐश्वर्य ( अश्रेत् ) धारण करे । (२) परमेश्वर भी ( वेधाः ) समस्त जगत् का कर्त्ता, सर्व-सुखैश्वर्य का दाता, अनन्दघन, सत्य, सर्व मित्र, सबसे बड़ा कवि है । वह विद्युत् के समान तेजोमय, रसमय, बल का पुतला, ज्ञानी, दीप्तिमय होकर ( पृथिव्यां ) विस्तृत महती प्रकृति में अपना बल आधान करता है ।

**अ यामि ते नमंउक्तिं जुषस्व ऋतावस्तुभ्यं चेतते सहस्वः ।**
**विद्वाँ आ वक्षि विदुषो नि षत्सि मध्य आ बर्हिरूतये यजत्र ॥२॥**

भा०—हे ( ऋतवः ) सत्यज्ञान वेद और धर्म-व्यवस्था के जानने हारे ! मैं ( ते अयामि ) तेरे समीप तेरी शरण आता हूं । और ( ते ) तेरे सत्कार के लिये हे ( सहस्वः ) भीतरी और बाह्य शत्रुओं को पराजित करने वाले, 'सहः' शक्ति के स्वामिन् ! मैं ( चेतते ते ) स्वयं ज्ञानवान् और अन्यों को सद्विद्या और सन्मार्ग का ज्ञान कराने हारे तेरे आदर के लिये ( नमः उक्तिम् अयामि ) आदरसूचक 'नमः' ऐसा वचन प्रस्तुत करता हूं । (जुषस्व) तू उसको प्रेमपूर्वक स्वीकार कर । तू स्वयं (विद्वान्) विद्यावान् होकर ( विदुषः ) अन्य विद्वानों को भी ( आ वक्षि ) धारण करता वा उनके अभिमुख ज्ञान का प्रवचन करता है । हे ( यजत्र ) पूजनीय ! हे विद्या के देने हारे ! हे दानशील ! तू (ऊतये) ज्ञान प्रदान करने के लिये ( मध्ये ) हमारे बीच में ( बर्हिः ) वृद्धियुक्त उत्तम आसन पर ( आ निषत्सि ) सबके समक्ष आदरपूर्वक विराज । (२) इसी प्रकार राजा भी ( ऊतये ) रक्षा के लिये ( बर्हिः ) बृहत् राष्ट्र के प्रजाजन पर सब के बीच में विराजे (३) परमात्मा को हम नमस्कार करें । वह भी मूल प्रधान प्रकृति 'ऋत' का स्वामी, ज्ञानी, सर्वशक्तिमान् है । वह सब के बीच में व्यापक होकर विराजता और रक्षा करता है ।

द्र॒व॒तां त॑ उ॒षसा॑ वा॒जय॑न्ती॒ अग्ने॒ वात॑स्य प॒थ्या॑भि॒रच्छ॑ ।
यत्सी॑म॒ञ्जन्ति॑ पू॒र्व्यं ह॒विर्भि॒रा व॒न्धुरे॑व तस्थतुर्दुरो॒णे ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (उषसा) दिन रात्रि की दोनों सन्ध्याएं (वातस्य पथ्याभिः) वायु के मार्गों अर्थात् आकाश भागों से (वाजयन्ती) प्रकाश करती हुई (अच्छ द्रवताम्) सब के सन्मुख आती रहती हैं वे (दुरोणे) उच्च आकाश के बीच में (बन्धुरा इव) एक जुए में लगे दो काष्ठों के समान परस्पर सम्बद्ध, या परस्पर बन्धुता से युक्त होकर (आ तस्थतुः) विराजती हैं। उस समय विद्वान् लोग (हविर्भिः पूर्व्यं अञ्जन्ति) हविष्य चरुओं द्वारा पूर्वसाधित अग्नि के समान ही (हविर्भिः ज्ञानदायक वचनों से पूर्वतन चिरंतन प्रभु को ही (अञ्जन्ति) प्रकाशित करते हैं। उसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञानवन् विद्वन् पुरुष! (उषसा) उत्तम कान्ति से युक्त वा तुझे या परस्पर की कामना करते हुए परस्पर प्रेम से युक्त स्त्री और पुरुष दोनों वर्ग (ते वाजयन्ती) तेरे लिये अन्न प्रदान करते हुए वा तेरे ज्ञान की कामना करते हुए (वातस्य) वायु के समान जीवन देने वाले वा बलवान् तुझ पुरुष के पास (पथ्याभिः) उत्तम मार्गों से (अच्छ द्रवताम्) तेरे सन्मुख आवें और वे दोनों (दुरोणे) गृह में (बन्धुरा इव) रथ के युग में जुड़े ईषा नाम दो बांसों के समान परस्पर बंधकर (आतस्थतुः) रहें। और सभी वे लोग (सीम्) सब प्रकार से (पूर्व्यम्) विद्याओं से पूर्ण विद्वान् पुरुष को (हविर्भिः) उत्तम अन्नों से (अञ्जन्ति) आदरपूर्वक बढ़ावें। (२) शिल्पपक्ष में विद्युत की दोनों प्रकार की शक्तियां दाहकारी तापवान् होने से 'उषस्' हैं। वे वेग पैदा करती हुई अतिगमनशील विद्युत् को गुजरने देने के मार्ग अर्थात् 'तार' आदि से एक दूसरे के प्रति दौड़ती हैं। वे दोनों (दुरोणे-द्रोणे) एक घर, कोष्ठ या पात्र में ही सम्बद्ध रहती हैं। (हविर्भिः) उत्तम उपायों से इस प्रकार विद्वान् लोग (पूर्व्यं) पूर्व जनों से ज्ञात था पूर्व से

ही विद्यमान् उस विद्युत् तत्व को प्रकट कर लेते हैं। ( ३ ) नायक सेनापति के पक्ष में—( उषसा ) शत्रु को भस्म कर देने वाली दो सेनाएं संग्राम, बल या ऐश्वर्य उत्पन्न करती हुई वायु के वेगों से आगे बढ़ें। वे घर में दम्पती के समान, रथ के युग में दो काष्ठों के समान ( दुरोणे दुर्-रोहणे ) दुराक्रम्य, सर्वोच्च प्रधान नायक के आधीन ही सम्बद्ध होकर रहें। जब कि सब लोग शक्ति से पूर्ण उस प्रधान नायक को ( हविर्भिः ) प्रदान करने योग्य उत्तम पदों या हथियारों से ( अञ्जन्ति, म्रक्षन्ति, सिञ्चन्ति ) अभिषेक कर दें।

**मित्रश्च तुभ्यं वरुणः सहस्वोऽग्ने विश्वे मरुतः सुम्नमर्चन्।**
**यच्छोचिषा सहसस्पुत्र तिष्ठा अभि क्षितीः प्रथयन्त्सूर्यो नॄन् ॥४॥**

भा०—( अग्ने ) अग्नि के समान तेजस्विन्! अग्रणी नायक! हे ( सहस्वः ) शक्तिशालिन् ( तुभ्यम् ) तेरे ( सुम्नम् ) उत्तम ज्ञान और स्तम्भन बल की ( मित्रः च वरुणः ) स्नेही मित्रजन और श्रेष्ठजन या तुझे वरण करने वाले जन और ( मरुतः ) वायु के समान बलवान् सैनिकजन और प्रजाजन भी ( अर्चन् ) अर्चना करते हैं, उसका आदर करते हैं। ( यत् ) क्योंकि हे ( सहसः पुत्र ) बल के पुत्र! बल के अवतार वा (सहसः) शत्रु पराजयकारी बल, सैन्य के (पुत्र) बहुत से पुरुषों की रक्षा करने हारे! तू ( शोचिषा ) अपने तेज से ( सूर्यः ) सूर्य के समान, उत्तम बल-वान् उत्तम स्वामी और प्रेरक वा आज्ञापक होकर अपने ( नॄन् ) नायक पुरुषों को ( प्रथयन् ) दूर २ तक किरणों के समान फैलाता हुआ (क्षितीः) नाना राष्ट्रों को भी ( अभि तिष्ठाः ) विजय कर इनको अपने अधीन कर। ( २ ) विद्वान् पुरुष के ज्ञान को मित्रजन, उत्तम जन और अन्य विद्वान् जन भी सराहें। वह ज्ञान-दीप्ति से ( क्षितीः ) प्रजाओं को प्राप्त होकर ( नॄन् ) मनुष्यों के ज्ञान का विस्तार करे।

**वयं ते अद्य ररिमा हि काममुत्तानहस्ता नमसोपसद्य।**
**यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवानस्रेधता मन्मना विप्रो अग्ने ॥ ५ ॥**

भा०—हे ( अग्ने ) तेजस्विन् ! ज्ञानवन् ! विद्वन् ! ( अद्य ) आज ( वयम् ) हम ( उत्तान-हस्ताः ) हाथों को ऊपर की ओर बढ़ाये हुए ( नमसा ) नमस्कार आदर भाव और अन्नादि सहित ( उपसद्य ) तेरे समीप आकर, शान्ति से आचार्य के समीप शिष्य के समान बैठकर ( ते कामम् ) तेरे अभिलाषा योग्य पदार्थ को ( ररिम ) प्रदान करें । और तू ( विप्रः ) विविध विद्याओं, ऐश्वर्यों और बलों से पूर्ण है । तू ( अस्रेधता ) कभी न क्षीण होने वाले और दूसरे के प्रति हिंसा के भाव से रहित ( मन्मना ) ज्ञान और विचार से ( यजिष्ठन ) दान भाव और मैत्रीभाव से युक्त ( मनसा ) चित्त से ( देवान् ) अत्यन्त अधिक विद्या और ऐश्वर्य की कामना करने वालों को ( यक्षि ) विद्यादि दान कर, उनसे सत्संग कर, स्नेह कर और ( देवान् यक्षि ) विद्वानों की पूजा कर । सेनापति पक्ष में—देव = विजिगीषु सैनिकगण अन्य राजगण ।

त्वद्धि पुत्र सहसो वि पूर्वीर्देवस्य यन्त्यूतयो वि वाजाः ।
त्वं देहि सहस्रिणं रयिं नोऽद्रोघेण वचसा सत्यमग्ने ॥ ६ ॥

भा०—हे ( सहसः पुत्र ) बल के पवित्र करने हारे, हे शक्ति को उत्तम उपयोग में लाकर उसको पवित्र पुण्य कीर्त्ति युक्त करने हारे ! वा बल के द्वारा सब विजित ऐश्वर्य को पवित्र अर्थात् साधिकार उपयोग योग्य बना लेने हारे ! वीर एवं विद्वान् एवं शक्तिशालिन् ! ( देवस्य ) सूर्य के समान सर्व प्रकाशक, सर्व सुखों के दाता परमेश्वर और उत्तम विजिगीषु राजा के ( वाजाः ) समस्त ज्ञान और ऐश्वर्य और ( पूर्वीः ) पूर्ण एवं सनातन से चली आई (ऊतयः) समस्त रक्षाएं भी ( त्वत् ) तुझ से ही ( वि यन्ति ) विविध प्रकार हमें प्राप्त होती हैं । ( त्वं ) तू ही हमें (सहस्रिणं) सहस्रों सुख, ऐश्वर्यों से युक्त ( रयिं ) धन और ( अद्रोघेण ) द्रोहरहित, प्रेमयुक्त ( वचसा ) वचन या वाणी से वेद के द्वारा ( सत्यम् ) सत्य ज्ञान, सत्य न्याय ( देहि ) प्रदान कर । ( २ ) परमेश्वर पक्षमें—(देवस्य)

देव अर्थात् कामनाशील जीव के अभीष्ट सभी ऐश्वर्य और कामनाएं हे प्रभो! तुझसे ही विविध प्रकार से प्राप्त होती हैं। तू ही प्रेमयुक्त वेद वाणी से सत्य और असंख्य धन देता है।

**तुभ्यं दक्ष कविक्रतो यानीमा देव मर्तासो अध्वरे अकर्म।**
**त्वं विश्वस्य सुरथस्य बोधि सर्वं तदग्ने अमृत स्वदेह ॥७॥१४॥**

भा०—हे (दक्ष) बलवन्! अतिचतुर! विद्वन्! हे (दक्ष) शत्रुओं को भस्म करने हारे अग्नि के समान तेजस्विन्! प्रतापशालिन्! हे (कविक्रतो) क्रान्तदर्शी, मतिमान् पुरुषों के ज्ञान के समान ज्ञानों और कर्मों वाले! हे (देव) दानशील! हे कमनीय! हे प्रकाशक! (अध्वरे) अहिंसारहित राष्ट्रपालन आदि यज्ञ रूप कार्य में (यानि) जो भी (इमा) ये नाना कार्य हम (अकर्म) करते हैं वे सब (तुभ्यम्) तेरे लिये ही करते हैं। तू (विश्वस्य सुरथस्य) समस्त उत्तम रथादि अश्व पदाति अंगों से युक्त सैन्य का अपने को स्वामी जान। हे (अमृत) न मरने हारे! दीर्घायु! आयुष्मन्! तू (इह) इस राष्ट्र में (तत् सर्वम्) वह समस्त ऐश्वर्य (स्वद) भोग कर। (२) ईश्वर और आत्मा के पक्षमें—हे देव प्रभो! यज्ञ में हमारे सब कार्य तेरे ही निमित्त हैं। (सुरथस्य विश्वस्य) उत्तम रमण योग्य विश्व जगत् को जानता। तू (इह) इस जगत् में स्वयं अमृत, अविनाशी होकर सबको (स्वद) खा जाता है अर्थात् प्रलय काल में सब विश्व को कालाग्नि रूप में भस्म कर देता है। इति चतुर्दशो वर्गः॥

## [ १५ ]

उत्कील कात्य ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ४ त्रिष्टुप्। ५ विराट् त्रिष्टुप्। ६ निचृत् त्रिष्टुप्। २ पंक्तिः। ३, ७ भुरिक् पंक्तिः॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

**वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः।**
**सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहं सुहवस्य प्रणीतौ ॥१॥**

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् विद्वन्! हे अग्नि के समान तेजस्विन्! राजन्! तू स्वयं (पृथुना) अति विस्तृत (पाजसा) बल और ज्ञान से (शोशुचानः) अग्नि के समान देदीप्यमान होता हुआ (अमीवाः) रोगों के समान (रक्षसः) विघ्नकारी (द्विषः) द्वेष युक्त, प्रेम से वर्त्ताव न करने वाले शत्रु पुरुषों को (बाधस्व) पीड़ित कर। (बृहतः) महान् (सुशर्मणः) उत्तम घरों के स्वामी, दुष्टों के नाशक एवं सुख साधनों से युक्त (सुहवस्य) उत्तम नाम और ख्याति वाले (अग्नेः) ज्ञानवन् अग्रणी के (शर्मणि) गृह या शरण में और (प्रणीतौ) उत्तम नीति या शासन में (स्याम) रहूं। (२) सब सुखों का धाम परमेश्वर है। उसी का बड़ा भारी बल और ज्ञान है। मैं उसके दिये सुख, शरण और उसके दिखाये उत्तम मार्ग में चलूं।

**त्वं नो॑ अ॒स्या उ॒षसो॒ व्यु॑ष्टौ॒ त्वं सूर॒ उदि॑ते बोधि गो॒पाः।**
**जन्मे॑व॒ नित्यं॒ तन॑यं जुषस्व॒ स्तोमं॑ मे अग्ने त॒न्वा॑ सुजात ॥२॥**

भा०—(अस्याः उषसः) उस उषा के (व्युष्टौ) विशेष कान्ति से चमकने पर और (सूरे उदिते) सूर्य के उदय हो जाने पर (त्वं) तू ही (नः गोपाः) हमारा रक्षक होकर (बोधि) स्वयं जाग, ज्ञानवान् हो और हमें भी ज्ञानवान् कर और जगा। (जन्म इव तनयं) नवीन जन्म अर्थात् देह धारण करना ही जिस प्रकार नव-जात बच्चे को (तन्वा जुषते) नये देह से युक्त करता है उसी प्रकार हे (सु-जात) उत्तम जात अर्थात् बालक के समान शुभ गुणों और कर्मों से प्रख्यात (अग्ने) ज्ञानवन्! अग्रणी विद्वन्! तू भी (तन्वा) अपने शरीर से या विस्तृत राष्ट्र से (नित्यं) सदा से विद्यमान (मे स्तोमं) मुझ प्रजाजन के उत्तम प्रशंसनीय समूह को (जुषस्व) प्रेम से सेवन कर। अथवा—(जन्म इव तनयं) जन्म देने वाला पिता जिस प्रकार पुत्र को स्वीकार करता है उसी प्रकार तू भी पिता के समान मुझ प्रजा के संघों को (स्तोमं) उत्तम वचनों या वीर्ययुक्त दलों, अधिकारों और ऐश्वर्य का सेवन कर, प्राप्त कर।

त्वं नृचक्षा वृषभानु पूर्वीः कृष्णास्वग्ने अरुषो वि भाहि ।
वसो नेषि च पर्षि चात्यंहः कृधी नो राय उशिजो यविष्ठ ॥ ३ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान उत्तम ज्ञान-प्रकाश और तेज से युक्त विद्वन् ! राजन् ! हे ( वृषभ ) मेघ के समान प्रजाओं पर ज्ञानों और सुखों की वर्षा करने हारे ! हे बलवन् ! शक्तिमन् ! हे उत्तम प्रबन्धकारिन् ! ( त्वं ) तू ( नृचक्षाः ) मनुष्यों को उत्तम ज्ञानोपदेश करने और उनके सत् और असत् कर्मों को देखने वाला होकर ( कृष्णासु अरुषः ) अन्धकार से युक्त रात्रियों में या उनके उपरान्त अग्नि या सूर्य के समान ( अरुषः ) देदीप्यमान होकर स्वयं भी ( कृष्णासु ) युद्धादि के कारण कर्षण द्वारा पीड़ित हुई प्रजाओं पर ( अरुषः ) रोष रहित, दयाशील होकर ( पूर्वीः ) पूर्व के राजाओं की बसाई प्रजाओं को या ( पूर्वीः ) धन धान्य से पूर्ण प्रजाओं को (वि भाहि) प्रकाशित कर । (२) इसी प्रकार हे विद्वन् ! तू (कृष्णासु) कृष्ण अर्थात् हीन पापादि कर्मों से कलुषित अज्ञानान्धआर पूर्ण प्रजाओं में स्वयं ज्ञान से देदीप्यमान होकर ( पूर्वीः ) पूर्व पुरुष या पूर्ण पुरुष परमेश्वर की प्रकाशित वाणियों को ( वि भाहि ) विशेष एवं विविध प्रकारों से प्रकाशित कर ।

अषाळ्हो अग्ने वृषभो दिदीहि पुरो विश्वाः सौभगा संजिगीवान् ।
यज्ञस्य नेता प्रथमस्य पायोर्जातवेदो बृहतः सुप्रणीते ॥ ४ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान तेजस्विन् विद्वन् ! राजन् ! हे ( जातवेदः ) समस्त ऐश्वर्यों और ज्ञानों के स्वामिन् ! विवेकशील ! हे (सुप्रणीते ) शुभ और उत्कृष्ट नीति वाले ! तू ( अषाळ्हः ) अन्यों से न पराजित होने वाला, अन्यों के औद्धत्य, अविनय आदि को न सहन करने हारा, ( वृषभः ) मेघ के समान शत्रुओं पर शस्त्रों और प्रजाओं पर सुख समृद्धियों की वर्षा करने हारा या बैल के समान हृष्ट, पुष्ट बलवान् ( विश्वा सौभगा ) समस्त ऐश्वर्यों और ( विश्वाः पुरः ) शत्रु के समस्त गढ़ों को

( संजिगीवान् ) अच्छी प्रकार विजय करने हारा ( प्रथमस्य ) सबसे मुख्य, ( पायोः ) सबके रक्षक, ( बृहतः ) महान् ( यज्ञस्य ) परस्पर मैत्रीभाव और संगति से बने प्रजापालन या संग्राम आदि का ( नेता ) नायक होकर ( दिदीहि ) प्रकाशित हो। ( २ ) अध्यात्म में—( पुरः ) देहों पर विजय पाता हुआ आत्मा। ( ३ ) गृहस्थ या विद्वत् पक्ष में—(प्रथमस्य पायोः) सबसे उत्तम रक्षा करने योग्य ब्रह्मचर्य पालक के अध्ययनाध्यापन रूप यज्ञ का कर्त्ता।

**अच्छि॑द्रा॒ शर्म॑ जरितः पु॒रूणि॑ दे॒वाँ अच्छा॒ दीद्या॑नः सु॒मेधाः॑।**
**रथो॒ न सस्नि॑र॒भि व॑क्षि॒ वाज॒मग्ने॒ त्वं रोद॑सी नः सु॒मेके॑ ॥ ५ ॥**

भा०—( जरितः ) सत्य गुणों और विद्याओं के उपदेश करने हारे विद्वन्! हे शत्रुओं को जीर्ण शीर्ण कर देने हारे प्रतापशालिन्! तू ( सुमेधाः ) उत्तम प्रज्ञावान् ( दीध्यानः ) अग्नियों और सूर्य के समान तेजस्वी होकर ( देवान् ) विद्वानों, दिव्य गुणों और धन और विद्या के अभिलाषी पुरुषों को ( अच्छिद्रा ) त्रुटिरहित, अविच्छिन्न, अटूट ( शर्म ) गृह और ( पुरूणि ) बहुत से ऐश्वर्य ( आवक्षि ) प्राप्त करा। ( रथः न ) जिस प्रकार रथ ( सस्निः अभि वाजं वक्षि ) अच्छी प्रकार वश किया हुआ वीर को युद्ध में पहुंचा देता है और जिस प्रकार रथ अच्छी प्रकार दृढ़ होकर ( वाजं ) अन्न को ढो लाता है उसी प्रकार हे ( अग्ने ) तेजस्वी विद्वन्! नायक! तू भी ( सस्निः ) अपनी इन्द्रियों और मन को अच्छी प्रकार रोक दमन कर, जितेन्द्रिय होकर ( वाजं वक्षि ) ज्ञानैश्वर्य को धारण कर और ( वक्षि ) उपदेश कर। हे वीर तू (सस्निः) ऐश्वर्य को उत्तम रीति से प्राप्त करने में समर्थ होकर ( देवान् वाजं वक्षि ) विजिगीषु सैन्य दलों को युद्ध में लेजा और ( नः ) हमें ( त्वं ) तू ( सुमेके ) उत्तम रूपवान् या उत्तम उपदेश करने वाले दानशील, मेघों के समान ज्ञान अन्न या सुखों को सेचन व वर्षण करने वाले ( रोदसी ) उत्तम उपदेश देने, मर्यादा में

सन्तानों और परस्पर को रोक रखने, दुष्टों को रुलाने वाले स्त्री पुरुष, पति पत्नी, माता आदि प्राप्त करा। हे वीर तू ( सुमेके रोदसी ) मेघों के समान उत्तम शस्त्रवर्षी शत्रुओं को रुलाने और रोक रखने वाली दो सेनाओं को दायें बायें रखकर ( वक्षि ) धारण कर। ( २ ) परमेश्वर पक्षमें—( सु-मेधाः ) सबका सुख और उत्तम ज्ञान शक्ति, रचना शक्तियें धारण करने हारा ( सस्निः ) शुद्धस्वरूप ( रथः ) रसस्वरूप है। वह हमारे लिये उत्तम रसवर्धक आकाश, भूमि को धारण करता है।

**प्र पीपय वृषभ जिन्व वाजानग्ने त्वं रोदसी नः सु दोघे।**
**देवेभिर्देव सुरुचा रुचानो मा नो मर्तस्य दुर्मतिः परि ष्ठात् ॥६॥**

भा०—हे ( वृषभ ) बलशालिन्! हे सर्वश्रेष्ठ! हे ( अग्ने ) ज्ञानवन्! तेजस्विन्! ( त्वं ) तू ( नः ) हमें ( प्र पीपय ) अच्छी प्रकार बढ़ा। ( नः वाजान् प्र पीपय ) हमारे ऐश्वर्यों और बलों की वृद्धि कर ( नः सुदोघे रोदसी प्र पीपय ) जिस प्रकार सूर्य उत्तम जल वृष्टि और अन्न को दोहने या देने वाले भूमि और आकाश दोनों को समृद्ध करता है उसी प्रकार तू हमारे उत्तम उपदेश करने, हमें कुपथ से रोकने और दुष्टों को रुलाने वाले उत्तम ज्ञानों और अन्नों से हमें पूर्ण करने वाले माता पिताओं को ( प्र पीपय ) बढ़ा, पुष्ट कर। हे (देव) विजिगीषो! हे विद्वन्! ( देवेभिः सुरुचा रुचानः ) प्रकाशयुक्त किरणों से उत्तम कान्ति से प्रकाशमान सूर्य के समान तू भी ( देवेभिः ) विद्याभिलाषी शिष्यों और विजयाभिलाषी वीरों से और उत्तम रुचि और कान्ति से ( रुचानः ) प्रकाशित और सर्व-प्रिय होता हुआ हमें ( वाजान् जिन्व ) ज्ञानों, ऐश्वर्यों का प्रदान कर और ( वाजान् जिन्व ) संग्रामों का विजय कर ( नः ) हमारे बीच ( मर्त्त-स्य ) किसी मनुष्य को (दुर्मतिः) दुष्ट बुद्धि ( मा परि स्थात् ) न आ घेरे।

**इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।**
**स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥७॥१५॥**

भा०—व्याख्या देखो (म०३।सू०७।म०११) इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[ १६ ]

उत्कीलः कात्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ५ भुरिगनुष्टुप् । २, ६ निचृत् पंक्तिः । ३ निचृद्बृहती । ४ भुरिग् बृहती ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

**अयमग्निः सुवीर्यस्येशे महः सौभगस्य ।**
**राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥ १ ॥**

भा०—( अयम् ) यह ( अग्निः ) ज्ञानी पुरुष और अग्रणी नायक, राजा ( सुवीर्यस्य ) उत्तम वीर्य, बल का ( ईशे ) स्वामी हो, ( महः सौभगस्य ) बड़े भारी उत्तम कल्याणजनक, सुखप्रद ऐश्वर्य का ( ईशे ) स्वामी हो । वह ( सु-अपत्यस्य ) उत्तम सन्तानों और ( गोमतः ) गौ आदि पशुओं से सम्पन्न ( रायः ) धनैश्वर्य का ( ईशे ) स्वामी हो और वह ( वृत्र-हथानां ) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों के हनन, नाश करने वाले वीर पुरुषों का भी ( ईशे ) स्वामी हो । ( २ ) परमेश्वर उत्तम बल, बड़े सौभाग्य, आवरक अज्ञानों के नाशक ज्ञानों का और ( गोमतः रायः ) वेद वाणी से युक्त पारलौकिक विभूति का भी स्वामी है ।

**इमं नरो मरुतः सश्चता वृधं यस्मिन्रायः शेवृधासः ।**
**अभि ये सन्ति पृतनासु दूढ्यो विश्वाहा शत्रुमादभुः ॥ २ ॥**

भा०—( ये ) जो वीर पुरुष ( पृतनासु ) सेनाओं और संग्रामों में ( दूढ्यः ) दूसरे का बुरा सोचने वाले, एवं दुष्ट बुद्धि से युक्त शत्रुओं को ( अभि सन्ति ) पराजित करते हैं और जो ( विश्वाहा ) सदा, सब दिनों, अपने ( शत्रुम् ) नाशकारी शत्रु को ( आदभुः ) अच्छी प्रकार नाश करें ऐसे हे ( नरः ) वीर नायक लोगो ! हे (मरुतः) वायु के समान बलवान्, वेग से आक्रमण करने और बल से शत्रु को मारने और उखाड़ देने हारो ! आप लोग ( इमम् ) इस ( वृधम् ) सबको बढ़ाने हारे प्रधान पुरुष को

( सश्चत ) प्राप्त होओ, ( यस्मिन् ) जिसके अधीन रहकर आप लोग ( रायः ) धन के ( शेवृधासः ) सुखों को बढ़ाने हारे होओ, वा ( रायः शेवृधासः ) जिसके अधीन रहकर धनैश्वर्य भी सुखों को पुष्टों को करने वाले हों।

**स त्वं नो रायः शिशीहि मीढ्वो अग्ने सुवीर्यस्य।**
**तुविद्युम्न वर्षिष्ठस्य प्रजावतोऽनमीवस्य शुष्मिणः ॥ ३ ॥**

भा०—हे ( अग्ने ) तेजस्विन्! हे राजन्! हे ( मीढ्वः ) सुखों के सेचक! बढ़ाने हारे! बलवन्! ( तुविद्युम्न ) बहुत से ऐश्वर्यों और तेजों, अन्नों के स्वामिन्! ( त्वं ) तू ( नः ) हमें ( रायः ) धन के द्वारा या धन को प्राप्त करने के लिये ( शिशीहि ) तीक्ष्ण अर्थात् तेजस्वि कर। और ( सुवीर्यस्य ) उत्तम, शोभाजनक वीर्य से युक्त, ( वर्षिष्ठस्य ) अति प्रचुर मात्रा में विद्यमान, ( प्रजावतः ) प्रजाओं से युक्त, ( अनमीवस्य ) रोगादि रहित और ( शुष्मिणः ) बल से युक्त अर्थात् प्रजा और बल वीर्य के उत्पादक अन्न के द्वारा या अन्न को प्राप्त करने के लिये ( नः शिशीहि ) हमें तीक्ष्ण, तेजस्वी, अजेय कर। अथवा (नः) हमारे बीच में जो (सुवीर्यस्य वर्षिष्ठस्य प्रजावतः अनमीवस्य शुष्मिणः रायः शिशीहि ) वीर्यवान्, दीर्घायु, प्रजावान्, रोगरहित, बलवान् हो उसके धनों को बढ़ा।

**चक्रिर्यो विश्वा भुवनाभि सासहिश्चक्रिर्देवेष्वा दुवः।**
**आ देवेषु यतत आ सुवीर्य आ शंस उत नृणाम् ॥ ४ ॥**

भा०—( यः ) जो ( चक्रिः ) स्वयं कार्यों को करने में कुशल होकर ( विश्वा भुवना अभि यतते ) समस्त लोकों को लक्ष्य करके उनके उपकार करने में बलवान् रहता है, जो ( सासहिः ) सहनशील पराक्रमी होकर ( देवेषु ) ऐश्वर्य की कामना करने और विद्यादि गुणों में चमकने वाले विद्वानों के बीच ( चक्रिः ) कार्यकुशल होकर उनकी ( दुवः ) सेवा

शुश्रूषा ( आ यतते ) आदरपूर्वक यथायोग्य करता है। जो ( देवेषु ) दानशील, विजयेच्छुक पुरुषों के बीच भी (सुवीर्ये) उत्तम शोभाजनक वीर्य, बल को प्राप्त करने ( उत् ) और ( नृणाम् ) मनुष्यों या नायक पुरुषों के बीच ( शंसे ) उत्तम ख्याति लाभ करने के निमित्त (आ यतते ) पूर्व यत्न करता है वही ( अग्निः ) अग्रणी, नायक, तेजस्वी प्रतापी है। ( २ ) परमात्मा के पक्षमें—परमेश्वर (भुवना विश्वा चक्रिः) सब लोकों के बनाने हारा है। वह (देवेषु दुवः आ चक्रिः) दिव्य तेजस्वी सूर्य, अग्नि, विद्युदादि पदार्थों में ताप, शक्ति, प्रदान करता है। वह ( देवेषु ) विद्वानों में उत्तम बल देने और मनुष्यों के ( शंसे ) उपदेश करने में (आ यतते ) सब प्रकार से यत्न करता है। अर्थात् वही बल और ज्ञान देता है।

**मा नो॑ अग्नेऽम॒तये॒ मा वीर॑तायै रीरधः।**
**मा गोता॑यै सहसस्पुत्र मा नि॒देऽप॒ द्वेषां॒स्या कृ॑धि ॥ ५ ॥**

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! हे तेजस्विन्! तू हमें ( अमतये ) बुद्धिहीनता के कारण ( मा रीरधः ) मत नाश होने दे। ( अवीरतायै मा रीरधः ) वीरता के न होने के कारण मत नष्ट होने दे। ( अगोतायै ) भूमि और इन्द्रियों में बल न होने के कारण ( मा रीरधः ) मत विनष्ट होने दें। हे (सहसस्पुत्र) बल पराक्रम के पालक ! तू (निदे) निंदा, कलह के कारण ( मा रीरधः ) मत विनष्ट होने दे। अर्थात् प्रजा के नायक नेता विद्वान् और ऐश्वर्यवान् पुरुष प्रजा का नाश मूर्खता, भीरुता, इन्द्रिय-दौर्बल्य या भूमिरहितता और पारस्परिक निन्दा के कारण न करें। प्रत्युत प्रजा में से अज्ञान, दुर्बुद्धि, भीरुता, इन्द्रिय-दौर्बल्य और निराश्रयता तथा विद्या और वाणी के अभाव, परस्पर निन्दा, कलह आदि को दूर करें। दुष्ट राजा प्रजा को मूर्ख, भीरु, दुर्बल, विद्या और भूमि सम्पत्ति से हीन रखता और परस्पर निन्दा द्वारा लड़ा लड़ा कर नाश किया करता है। और स्वार्थ साधा करता है। हे ( अग्ने ) अग्रणी पुरुष ! तू (नः) हमारे बीच में से

( द्वेषांसि ) द्वेषों को ( अपाकृधि ) दूर कर जिसे हम प्रजा गण द्वेषरहित और प्रेमयुक्त होकर बढ़ें। ( २ ) परमेश्वर हम में से ये बातें दूर करे।

**शग्धि वाजस्य सुभग प्रजावतोऽग्ने बृहतो अध्वरे।**
**सं राया भूयसा सृज मयोभुना तुविद्युम्न यशस्वता ॥ ६ ॥ १६ ॥**

भा०—हे (अग्ने) नायक राजन् विद्वन्! तू (अध्वरे) हिंसा रहित प्रजा-पालन आदि उत्तम व्यवहार के पालन के कार्य में ( प्रजावतः ) प्रजा से से युक्त ( बृहतः ) बड़े ( वाजस्य ) ज्ञान और ऐश्वर्य को प्राप्त करने में ( शग्धि ) समर्थ हो और उसके द्वारा स्वयं ( शग्धि ) शक्तिशाली बन। हे ( सुभग ) उत्तम ऐश्वर्य के स्वामिन्! हे ( तुविद्युम्न ) बहुत से ऐश्वर्यों के स्वामिन्! तू ( मयोभुना ) सुख को उत्पन्न करने वाले ( यशस्वता ) कीर्त्ति और अन्न से सम्पन्न ( राया ) ऐश्वर्य से (सं सृज) हमें समृद्ध कर। इति षोडशो वर्गः ॥

## [ १७ ]

कतो वैश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप्। ४ विराट् त्रिष्टुप्। ५ त्रिष्टुप्। ३ निचृत् पंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

**समिध्यमानः प्रथमानु धर्मा समक्तुभिरज्यते विश्ववारः।**
**शोचिष्केशो घृतनिर्णिक्पावकः सुयज्ञो अग्निर्यजथाय देवान् ॥१॥**

भा०—जिस प्रकार ( यजथाय ) यज्ञ के लिये ( समिध्यमानः ) प्रदीप्त किया हुआ अग्नि ( प्रथमा धर्मा अनु ) अपने विस्तृत करने वाले या प्रसिद्ध धर्मों के अनुसार ( अक्तुभिः ) रात्रियों द्वारा या ( अक्तुभिः ) अन्य को प्रकट करने वाले साधन घृत आदि या रश्मियों से अच्छी प्रकार चमकाया या सींचा जाता है और वह (विश्ववारः) सब से वरण करने योग्य

* उत्कीलः कात्य इति द०। समिध्यमानः पञ्च कतो वैश्वामित्रः इति सर्वा०॥

सब कष्टों का वारक ( शोचिष्केशः ) दीप्तिमय केशों या किरणों से युक्त, ( घृत-निर्णिक् ) दीप्तिस्वरूप या घृत से अति पवित्र स्वरूपवान् , (पावकः) पवित्रकारक, ( सुयज्ञः ) उत्तम यज्ञ का साधन होकर ( देवान् यजथाय भवति ) जो विद्वानों के सत्संग तथा उत्तम गुणों के प्रदान और प्रकाशों को देने के लिये समर्थ होता है उसी प्रकार (अग्निः) ज्ञानवान् , तेजस्वी, अग्रणी पुरुष भी ( शोचिष्केशः ) दीप्तियों तेजों को केशों के समान मुख या शिर पर धारण करनेहारा ( घृत-निर्णिक् ) दीप्तियुक्त, तेजस्वी स्वरूप से युक्त, ( पावकः ) अग्नि के समान तेजस्वी और सत्संग से अन्यों का पवित्र निष्पाप करने वाला ( सुयज्ञः ) सुखपूर्वक सत्संग, मैत्री, सत्कार, मान आदर करने योग्य, एवं उत्तम दानशील ( विश्ववारः ) सब से वरण करने योग्य (देवान् यजथाय) विद्वान् पुरुषों की परस्पर संगति और प्रेम, मैत्रीभाव उत्पन्न करने के लिये ( समिध्यमानः ) सब से मिलकर उत्ते-जित प्रकाशित या प्रेरित किया जाकर ( प्रथमा धर्मा अनु ) कीर्त्ति प्रसिद्ध करने वाले वा प्रख्यात एवं उत्तम या पूर्व से चले आये ( धर्मा अनु ) धर्मों, नियमों, धार्मिक व्यवस्थाओं या कर्त्तव्यों के अनुकूल ( अक्तु-भिः ) अभिषेकों द्वारा, घृतसेचनों द्वारा अग्नि के समान ( सम् अज्यते ) अच्छी प्रकार अभिषेक किया जावे । ( २ ) परमेश्वर ( प्रथमा धर्मा अनु समिध्यमानः ) सर्वोत्तम धर्मों के धारण करने योग्य कर्मों के अनुसार उत्तम रीति से प्रकाशित किया जाकर ( अक्तुभिः ) उसके लक्षणों के प्रकाशों वा योगाङ्ग साधनों द्वारा हृदय में प्रदीप्त किया जावे वह सबके वरण करने योग्य, सब कष्टों का वारक तेजोमय तेजों से अन्यों को पालन करने वाला होने से ही 'पावक' है वह उत्तम पूजनीय प्रभु ( देवान् यजथाय ) उत्तम गुणों को अपने में प्राप्त करने या देवों, विद्वानों के लिये पूजा करने योग्य है ।

यथाय॑जो हो॒त्रम॑ग्ने पृथि॒व्या यथा॑ दि॒वो जा॑तवेदश्चिकि॒त्वान् ।
ए॒वाने॑न ह॒विषा॑ यक्षि दे॒वान्म॑नु॒ष्वद्य॒ज्ञं प्र ति॑रे॒मम॒द्य ॥ २ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! अग्नि के समान प्रकाश और तेज से युक्त ! विद्वन् ! राजन् ! ( यथा ) जिस प्रकार से तू ( पृथिव्याः ) पृथिवी से ( होत्रम् ) लेने योग्य ज्ञान और अन्नादि ऐश्वर्य के समान ( पृथिव्याः ) पृथिवी पर बसी विस्तृत प्रजा से ऐश्वर्य ( अयजः ) आदर-पूर्वक प्राप्त करता है और हे ( जातवेदः ) ज्ञान ऐश्वर्य को प्राप्त करने हारे तू ( चिकित्वान् ) स्वयं ज्ञानवान् होकर ( यथा ) जिस प्रकार ( दिवः ) सूर्य से प्रकाश के तुल्य, आकाश से वृष्टि के तुल्य ( दिवः ) ज्ञानी पुरुषों से ( होत्रम् अयजः ) ग्रहण करने योग्य उत्तम ज्ञान प्राप्त करता है (एवं) उसी प्रकार ( अनेन ) इस ( हविषा ) ग्रहण करने योग्य अन्न और ज्ञान से तू ( देवान् ) इन पदार्थों की कामना करने वाले विद्वान् जनों को ( यक्षि ) प्रदान कर और तू ( मनुष्वत् ) मननशील, ज्ञानी पुरुष के तुल्य ही ( इमं यज्ञं ) इस परस्पर के सत्संग, आदान-प्रतिदान व्यवहार को ( अद्य ) आज ( प्र तिर ) उत्तम रीति से विस्तृत कर । ( २ ) परमेश्वर पृथिवी और आकाश या सूर्य को अन्न जल प्रकाश आदि देता है उसी प्रकार इस अन्न से अभिलाषियों की अभिलाषा पूर्ण करता है । वह सदा इस दान व्यवहार की वृष्टि करे ।

त्रीण्यायूंषि तव जातवेदस्तिस्त्र आजानीरुषसस्ते अग्ने ।
ताभिर्देवानामवो यक्षि विद्वानथा भव यजमानाय शं योः ॥ ३ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! हे ( जातवेदः ) उत्तम प्रज्ञा से युक्त ( तव ) तेरे ( त्रीणि ) तीन ( आयूंषि ) आयु हों और तदनुसार ( ते ) तेरे ( उषसः ) प्रभात वेला के समान देह के दोषों को दग्ध करने वाली ( तिस्त्रः ) तीन ( आजानीः ) उत्तम या नवीन शक्तियों को उत्पन्न करने वाली, माता के समान उत्पादक दशाएं हों । तू ( विद्वान् ) इन दशाओं को अच्छी प्रकार जानता हुआ ( ताभिः ) उन दशाओं से ही ( देवानाम् ) प्राणों को (अवः) रक्षा और उचित अन्नादि तृप्ति ( यक्षि )

प्रदान कर ( अथ ) और ( यजमानाय ) सत्संग करने वाले के लिये ( शं ) शान्तिकारक और ( योः ) संकटों और संशयों को दूर करने वाला ( भव ) हो। ( २ ) अथवा—हे विद्वन् ! तेरी तीन आयुएं हैं, बाल्य-काल, यौवन काल और वार्धक्य। इनमें तीन ही उषाकाल हैं प्रथम शैशव, द्वितीय कौमार तृतीय नयी बुढ़ौती। तीनों कालों में वह देवों अर्थात् अन्न और जीवन के दाता माता पिताओं, ज्ञानों के दाता गुरुजनों और दीर्घ जीवन के दाता प्राणों का यज्ञ, सत्संग और साधन करे। इन दानशील, सत्संगी जनों को शान्ति सुख प्रदान करे। (३) राष्ट्रनायक पक्ष में–(जातवेदः) हे ऐश्वर्यवन् ! तेरी तीन 'आयु' अर्थात् आय के आधन व्यापार, भूमि, संग्राम। इनमें तीन ही उषाएं उन आयों के उत्पादक हैं शत्रु को दाह तापकारी सेना, ऐश्वर्य से कान्तियुक्त प्रजाएं और अन्नादि के लिये कामना करने योग्य कृषक प्रजा। उनसे ( अवः ) तीन प्रकार के पदार्थ प्रजा के रक्षक हैं अन्न, धन और रक्षा, तू उनका प्राप्त कर। वह करादि देने वाले प्रजाजन के लिये शान्तिकर और दुःख नाशक हों। ( ४ ) परमेश्वर का आयु अर्थात् प्राप्तिसाधन, ज्ञान कर्म उपासना तीन 'आजानी उषा' अर्थात् उत्तम ज्ञानप्रद ज्योतिएं मन, बुद्धि, चित्त। इनसे वह विद्वानों को ज्ञान और हर्ष देता आत्मसमर्पक भक्त को शान्ति और दुःख नाश करता है।

**अ॒ग्निं सु॒दी॒तिं सु॒दृशं॑ गृ॒णन्तो॑ नम॒स्याम॒स्त्वेड्यं॑ जातवेदः।**
**त्वां दू॒तम॑र॒तिं ह॑व्य॒वाहं॑ दे॒वा अ॑कृण्वन्न॒मृत॑स्य॒ नाभि॑म् ॥ ४ ॥**

भा०—हे विद्वन् ! हे राजन् ! हे प्रभो ! हे ( जातवेदः ) समस्त उत्पन्न पदार्थों के जानने हारे और समस्त ऐश्वर्यों और ज्ञानों के स्वामिन् ! हम लोग ( ईड्यम् ) प्रशंसायोग्य, स्तुत्य, सबको प्रिय ( सुदीतिम् ) उत्तम दीप्ति, उत्तम दाता एवं रक्षक, ( सुदृशं ) उत्तम, शुभ दर्शनीय एवं उत्तम द्रष्टा, ( त्वा अग्निम् ) तुझ अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् को ( नमस्यामः ) नमस्कार करते हैं। ( देवाः ) दिव्य पदार्थ, दिव्य गुण

और देव विद्वान् वीर विजयीगण ( त्वाम् ) तुझको ( दूतम् ) सबके सेवा करने योग्य एवं दुष्ट पुरुषों को संतापजनक ( हव्य-वाहं ) ग्राह्य पदार्थों को धारण करने योग्य और ( अमृतस्य ) अन्न, ऐश्वर्य दीर्घ जीवन का ( नाभिम् ) आश्रय ( अकृण्वन् ) करें । ( २ ) परमेश्वर रक्षक दाता, उत्तम द्रष्टा, सर्वज्ञ सर्वैश्वर्यवान् है। हम स्तुति कर्त्ता उसका नमस्कार करें । सूर्यादि देव, एवं विद्वानूजन उसको दुष्टों का संतापकर, सब सुखों का प्रापक, सब स्तुतियों और स्तुत्य गुणों का धारक और अमृत, परमानन्द का आश्रय बतलाते हैं ।

**यस्त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान्द्विता च सत्ता स्वधया च शम्भुः ।**
**तस्यानु धर्म प्र यजा चिकित्वोऽथा नो धा अध्वरं देववीतौ ॥५॥१७॥**

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! हे अग्नि के समान तेजस्विन् ! अग्रनेतः राजन् ! ( यः ) जो पुरुष ( त्वत् ) तुझसे ( होता ) ज्ञान और ऐश्वर्य का ग्रहण करने वाला ( पूर्वः ) पूर्ण ज्ञान और बल से युक्त (यजी-यान् ) अधिक दानशील, सब का सत्संगी होकर ( द्विता ) स्व और पर दोनों पक्षों में ( सत्ता ) उत्तम पद पर विराजने हारा और (स्वधया) अन्न और जल से ( शम्भुः ) सबको शान्ति देने हारा है । हे (चिकित्वः) ज्ञानवन् ! तू ( तस्य धर्म अनु ) उसके धर्मानुसार या धारण सामर्थ्य के अनुकूल ही ( प्र यज ) उत्तम ज्ञान और अधिकार प्रदान कर। ( अथ ) और ( नः ) हमारे ( अध्वरं ) हिंसन या पीड़न से रहित प्रजापालन आदि उत्तम कार्य को ( देववीतौ ) विद्वानों और वीर पुरुषों की रक्षा में ही ( धाः ) स्थापित कर । ( २ ) परमेश्वर से बलादि प्राप्त करने वाला यह आत्मा ( पूर्वः ) पूर्ण ज्ञानी होकर उसी में ( यजीयान् ) आत्म-समर्पण करता है । वह इह और अमुत्र दोनों में नित्य स्थिर रहकर ( स्व-धया ) अपने ही स्वरूप से शान्ति का आश्रय हो जाता है । परमेश्वर उसके ( धर्म अनु ) धारणकर्त्ता आत्मा से उत्तम मैत्रीभाव करता है । वह

परमेश्वर हमारे ( अध्वरे ) अविनाशी आत्मा को ( देववीतौ ) देव, दिव्य गुणों की प्राप्ति वा प्राणों की कान्ति में स्थापित करे। इति सप्तदशो वर्गः॥

## [ १८ ]

कतो वैश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

**भवा नो अग्ने सुमना उपेतौ सखेव सख्ये पितरेव साधुः ।**
**पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानां प्रति प्रतीचीर्दहतादरातीः ॥ १ ॥**

भा०—( सखा इव सख्ये ) मित्र के लिये मित्र जिस प्रकार ( सु-मनाः साधुः ) उत्तम चित्त वाला और हितोपदेशादि से मित्र का कार्य साधक होता है और जिस प्रकार ( पितरा इव ) पुत्र के लिये माता पिता उत्तम चित्त वाले और सन्मार्ग में चलने का उपदेश देकर कार्यसाधक होते हैं, उसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञानवन्! हे तेजस्विन्! तू ( नः ) हमें ( उपेतौ ) प्राप्त होकर हमारे प्रति ( सुमनाः ) शुभ चित्त वाला और ( साधुः भव ) उत्तम कार्यसाधक हो। ( हि ) और ( जनानां ) मनुष्यों के बीच जो ( क्षितयः ) राष्ट्र निवासी लोग ( पुरुद्रुहः ) बहुतों के साथ द्रोह करने वाले हैं उनको और ( प्रतीचीः ) प्रतिकूल मार्ग से जाने वाले और ( अरातीः ) शत्रुओं को ( प्रति दहतात् ) प्रति समय भस्म कर। अथवा—( क्षितयः हि पुरुद्रुहः ) मनुष्य प्रायः पारस्परिक बहुत से द्रोह करने वाले होते हैं अतः ( प्रतीचीः दह ) विपरीत मार्गगामी दुष्ट शत्रुओं को भस्म कर।

**तपो ष्वग्ने अन्तराँ अमित्रान्तपा शंसमररुषः परस्य ।**
**तपो वसो चिकितानो अचित्तान्वि ते तिष्ठन्तामजरा अयासः॥२॥**

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! अग्रणी नायक! तेजस्विन्! हे (तपो), संतापजनक! तू ( अन्तरान् ) भीतरी या परस्पर फूटे हुए ( अमित्रान् ) परस्पर के स्नेहभाव से रहित शत्रुओं को ( तप ) सन्तप्त कर और

( परस्य ) दूसरे ( अररुषः ) अति अधिक हिंसाकारी शत्रु की ( शंसम् ) अभिलाषा या ख्याति को ( तप ) सन्तप्त कर, नष्ट कर। हे ( तपो ) संतापजनक ! हे तपस्विन् ! हे ( वसो ) प्रजा के बसाने हारे ! तू स्वयं ( चिकितानः ) ज्ञानवान् रहता हुआ ( अचित्तान् ) चित्तरहित, तेरी आज्ञा पर अपने चित्त न देने वालों को भी ( तप ) पीड़ित कर। और ( ते ) तेरे ( अयासः ) विज्ञानयुक्त पुरुष या शीघ्रगामी रथी, अश्वारोही आदि भृत्य, दूत आदि ( अजराः ) जरावस्था, आयुहानि से रहित, दीर्घायु होकर ( वि तिष्ठन्ताम् ) विविध दिशाओं में स्थिर रहें और विविध देशों को जावें। सायण के मत में—( तपो = तप-उ ) पदपाठ से विरुद्ध है।

**इ॒ध्मेना॑ग्न इ॒च्छमा॑नो घृ॒तेन॑ जु॒होमि॑ ह॒व्यं तर॑से॒ बला॑य।**
**याव॒दीशे॒ ब्रह्म॑णा॒ वन्द॑मान इ॒मां धियं॑ शत॒सेया॑य दे॒वीम्॥ ३॥**

भा०—( तरसे बलाय ) इस संसार से पार उतरने और बल प्राप्त करने के लिये ( इच्छमानः ) चाहता हुआ जिस प्रकार यज्ञकर्त्ता ( घृतेन इध्मेन ) घृत और काष्ठ के साथ ( हव्यं जुहोति ) आहुतियोग्य पदार्थ अग्नि में देता है उसी प्रकार हे ( अग्ने ) विद्वन् ! अग्रणी एवं अग्नि के समान संतापकारक ! प्रतापिन् ! मैं प्रजाजन भी ( तरसे ) शत्रुओं से पार उतरने का सामर्थ्य प्राप्त करने और ( बलाय ) बल वृद्धि के लिये ( इच्छ-मानः ) कामना करता हुआ ( घृतेन ) उत्तम जल तथा ( इध्मेन ) काष्ठ, ईंधन के सहित ( हव्यं जुहोमि ) तुझे भोजन करने योग्य अन्न सामग्री प्रदान करूं अथवा बल और वेग की अभिलाषा वाला पुरुष जिस प्रकार ( इध्मेन घृतेन ) ईंधन से पकाकर और घी से मिला कर ( हव्यं ) अन्न जाठराग्नि में देता या खाता है उसी प्रकार मैं प्रजाजन भी बल वृद्धि की कामना करता हुआ काष्ठों और जलों सहित अन्नादि तुझे देता हूं। मैं प्रजाजन ( वन्दमानः ) पूज्यों की स्तुति और अभिवादन से आदर करता हुआ ( शतसेयाय ) सौ संख्या से परिमित आयु को पूर्ण करने के लिये

(इमां) इस ( देवीम् ) सबसे चाहने योग्य (धियं) बुद्धि या धारणा शक्ति को ( यावत् ईशे ) जितना हो सके, उतना ( ब्रह्मणा ) बड़े भारी धनैश्वर्य से वेद ज्ञान से सम्पन्न होकर प्राप्त करूं और उसका स्वामी बनूं। अथवा– ( शतसेयाय ) सैकड़ों ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये सबको धारण करने वाली, ऐश्वर्य देने वाली इस भूमि को ( ब्रह्मणा ) अन्न सहित ( यावत् ईशे ) यथा सामर्थ्य प्राप्त कर उसका स्वामी बनूं।

उच्छोचिषा सहसस्पुत्र स्तुतो बृहद्वयः शशमानेषु धेहि।
रेवदग्ने विश्वामित्रेषु शं योर्मर्मृज्मा ते तन्वं१ भूरि कृत्वः ॥ ४ ॥

भा०—हे ( सहसः पुत्र ) शत्रु को पराजित करने योग्य बल के सञ्चालक और उत्पादक ! तू ( स्तुतः ) स्तुतियुक्त, प्रशंसित एवं उच्च पद पर प्रस्तुत होकर ( शोचिषा ) दीप्ति से अग्नि के समान तेजस्वी होकर ( शशमानेषु ) प्रशंसा करने योग्य और ( विश्वामित्रेषु ) सबके स्नेही, सबसे मित्रभाव से रहने वाले पुरुषों में ( रेवत् ) धनैश्वर्य से युक्त राष्ट्र और ( बृहत् वयः ) बड़ा भारी बल, सैन्य ( उत् धेहि ) उत्तम रूप में स्थापित कर। राजा सैन्य आदि का भार उत्तम प्रशंसनीय सर्वस्नेही निष्पक्षपात पुरुषों के कन्धे पर रक्खे, जिससे राष्ट्र में ( शं ) शान्ति और ( योः ) दुःखों और उपद्रवों का नाश हो। हे ( कृत्वः ) क्रियाशील, उत्तम कर्मों के करने वाले कर्मण्य पुरुष ! इसीलिये हम ( ते ) तेरे (तन्वं) शरीर को एवं विस्तृत राष्ट्र को ( भूरि ) बहुत २ ( मर्मृज्म ) शुद्ध करें, अभिषिक्त करते हैं।

कृधि रत्नं सुसनितर्धनानां स घेदग्ने भवसि यत्समिद्धः।
स्तोतुर्दुरोणे सुभगस्य रेवत्सृप्रा करस्ना दधिषे वपूंषि ॥५॥१८॥

भा०—हे ( अग्ने ) तेजस्विन् ! ज्ञानवन् ! हे ( धनानां सनितः ) धनों के दान और संविभाग करने हारे ! तू ( रत्नं कृधि ) रमण करने योग्य

उत्तम ऐश्वर्य उत्पन्न कर। ( यत् समिद्धः ) जब तू अच्छी प्रकार चमकता है तब तू (सः घ इत् भवसि) उसी प्रकार होता है। तू ( सुभगस्य ) उत्तम ऐश्वर्यवान् ( स्तोतुः ) स्तुतिकर्त्ता, विद्वान् पुरुष के ( दुरोणे ) घर में ( रेवत् ) ऐश्वर्य से युक्त (सृप्रा करस्ना) सदा सहायता के लिये आगे बढ़ने वाले बाहुओं को और ( वपूंषि ) उत्तम रूपवान् शरीरों का ( दधिषे ) धारण करता, पालता पोसता है। (२) स्वामी, पिता के समान ही परमेश्वर भी उपासक के घर में ( करस्ना सृप्रा ) आगे बढ़ने वाले, कर्मों को शुद्ध करने वाले मन और वाणी देता और ऐश्वर्यवान् पुरुष के घर में उत्तम २ शरीर या जन्म देता है। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

## [ १९ ]

कुशिकपुत्रो गाथी ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २, ४, ५ विराट् त्रिष्टुप् । ३ स्वराट् पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, २, ४, ५ धैवतः । ३ पञ्चमः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

**अ॒ग्निं होता॑रं॒ प्र वृ॑णे मि॒येधे॒ गृत्सं॑ क॒विं वि॑श्व॒विद॒मसू॑रम् ।**
**स नो॑ यक्षद्दे॒वता॑ता॒ यजी॑यान्रा॒ये वाजा॑य वनते म॒घानि॑ ॥ १ ॥**

भा०—( मियेधे ) मेध्य अर्थात् पवित्र यज्ञ में ( अग्निं होतारं ) ज्ञानवान् आहुतिदाता को जिस प्रकार वरण किया जाता है उसी प्रकार मैं प्रजाजन ( मिमेध्ये ) शत्रुओं को हनन करने के कार्य, संग्राम के निमित्त ( होतारं ) योग्य दान, ऐश्वर्य व अधिकार देने वाले ( गृत्सं ) ऐश्वर्य प्राप्त करने के इच्छुक, लोकैषणा और वित्तैषणा से युक्त और ( गृत्सं ) उत्तम उपदेश देने हारे, (कविं) सबसे उत्तम, बुद्धिमान्, ( विश्वविदम् ) समस्त राज्यकार्यों को जानने वाले, ( अमूरम् ) संकट, विपत्तिकाल में मोह को प्राप्त न होने वाले, ( अग्निं प्रवृणे ) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष को उत्तम पद पर वरण करता हूं। ( सः ) वह ( यजीयान् ) सबसे बड़ा

दानी सबसे अधिक आदर, संगति या परस्पर सख्य, संगठन करने हारा पुरुष ( देवताता ) विद्वानों और वीर पुरुषों को ( यक्षत् ) एकत्र कर संगति करे, उनको व्यवस्थित करे और वह ( राये ) ऐश्वर्य और ( वाजाय ) बल या संग्राम के विजय के लिये ( मघानि ) नाना उत्तम धन ( वनते ) प्रदान करे।

प्र ते अग्ने हविष्मतीमियर्म्यच्छा सुद्युम्नां रातिनीं घृताचीम्।
प्रदक्षिणिद्देवतातिमुराणः सं रातिभिर्वसुभिर्यज्ञमश्रेत् ॥ २ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञान से युक्त! हे तेजस्विन्! ( ते ) तुझे मैं (हविष्मतीम् ) उत्तम उपादेय गुणों अन्नादि समृद्धि से युक्त, (सुद्युम्नाम् ) शुभ ऐश्वर्य से युक्त, ( रातिनीम् ) दिये नाना पदार्थों से युक्त ( घृताचीम् ) तेजस्विनी, विद्वान् तेजस्वी युवा के हाथ उत्तम कन्या के समान उत्तम राष्ट्र प्रजा को ( अच्छ प्र इयर्मि) तेरे सन्मुख प्रस्तुत करता हूं। और (उराणः) जिस प्रकार अधिक प्राणवान्, बलवान् युवा पुरुष अग्नि की प्रदक्षिणा करके ( रातिभिः वसुभिः ) उत्तम दान योग्य ऐश्वर्यों सहित ( देवतातिम् ताम् ) कामनाशील स्त्री को प्राप्त कर ( यज्ञम् सम् अश्रेत् ) उसके साथ संगतिकारक यज्ञ अर्थात् परस्पर दान प्रतिदान के व्यवहार और मैत्रीभाव को सेवता है उसी प्रकार हे अग्ने! तू भी ( प्रदक्षिणित् ) उत्तम बलयुक्त मार्ग से जाता हुआ ( उराणः ) अति बलवान् और बहुत यज्ञवान् होकर ( रातिभिः ) दानशील, एवं बसने वाले प्रजाजनों वा देने योग्य ऐश्वर्यों से हित ( यज्ञं ) परस्पर के लेने देने के व्यवहार को ( सम् अश्रेत् ) चला, स्थापित कर। शिष्य और आचार्य पक्ष में—हे अग्ने विद्वन्! मैं शिष्य तुझे उत्तम धन ऐश्वर्य से युक्त, अन्न से सम्पन्न, जल से युक्त लक्ष्मी प्रस्तुत करता हूं। इस प्रकार प्रदक्षिणा करके ( उराणः ) बहुतसी सेवा करने वाला शिष्यजन ( देवतातिम् ) देवतुल्य, या ज्ञानदाता ( यज्ञं ) पूज्य गुरु को ( रातिभिः वसुभिः ) इसी प्रकार देने वाले अन्ते वासियों के साथ

या दान करने योग्य ऐश्वर्यों के साथ ( सम् अश्नेत् ) सेवन करे उसका आश्रय ले।

**स तेजीयसा मनसा त्वोत उत शिक्ष स्वपत्यस्य शिक्षोः।**
**अग्ने रायो नृतमस्य प्रभूतौ भूयाम ते सुष्टुतयश्च वस्वः ॥ ३ ॥**

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानयुक्त तेजस्विन्! काष्ठ को अग्नि के समान अपने सम्पर्क से ज्ञान प्रकाश से प्रज्वलित करनेहारे! ( सः ) वह विद्यार्थी ( त्वा उतः ) तेरे से सुरक्षित और तेरे से अध्यापित होकर ( तेजीयसा मनसा ) अति अधिक तेज से युक्त ज्ञान और तेजस्वी चित्त से युक्त हो। ( उत ) तू भी ( सु-अपत्यस्य ) उत्तम पुत्र के समान ( शिक्षोः ) शिक्षा प्राप्त करने वाले शिष्य के लिये ( शिक्ष ) ज्ञान की शिक्षा कर। हे ( अग्ने ) विद्वन्! ( रायः ) दान करने योग्य ज्ञान के ( नृतमस्य ) सबसे उत्तम नायक ( ते ) तेरे ( प्रभूतौ ) उत्तम प्रभाव, शासन एवं उत्तम सन्तति रूप में हम तेरे ( सुस्तुतयः ) उत्तम विद्यो-पदेशों से युक्त ( वस्वः च ) तेरे अधीन वास करने वाले शिष्य (भूयाम) होकर रहें। इसी प्रकार हे राजन्! तेजस्वी ज्ञान वा मन से तेरे द्वारा सुरक्षित यह प्रजाजन है। तू उसे ( शिक्ष ) शिक्षित कर। ऐश्वर्य प्रदान कर। ( स्वपत्यस्य शिक्षोः ) उत्तम पुत्रादि के पिता के समान प्रजा के पालक और शिक्षक और ( रायः नृतमस्य प्रभूतौ ) धनैश्वर्य के नायक के प्रभाव या ( रायः प्रभूतौ ) धन की प्रचुर वृद्धि के कार्य में हम ( ते सुस्तुतयः ) तेरे अधीन बसने वाले हैं। अथवा—( ते वस्वः रायः प्रभूतौ भूयाम ) तेरे बसने योग्य ऐश्वर्य की प्रचुर वृद्धि में हम उत्तम कीर्त्तिमान् हों।

**भूरीणि हि त्वे दधिरे अनीकाग्ने देवस्य यज्यवो जनासः।**
**स आ वह देवतातिं यविष्ठ शर्धो यदद्य दिव्यं यजासि ॥ ४ ॥**

भा०—हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक प्रतापवान् पुरुष! ( देवस्य ) परमेश्वर के ( यज्यवः ) उपासकजन वा ( देवस्य ते यज्यवः जनासः )

विजय करने के इच्छुक तेरी संगति करने वाले, तेरे साथी लोग ( ते ) तेरे ही अधीन ( भूरीणि ) बहुत से ( अनीका ) सैन्यों को ( दधिरे ) स्थापित करें, रक्खें। हे ( यविष्ठ ) अति अधिक ज्ञानवान्, बलवान् या सबसे बढ़कर शत्रुओं का नाश करनेहारे ! ( सः ) वह तू जो ( अद्य ) आज ( दिव्यं ) दिव्य, मनोहर कान्तियुक्त, उत्तम ( शर्धः ) बल को ( यजासि ) संग्रह करता है तू उस ( देवतातिम् ) विद्वान् विजयी पुरुषों के योग्य, उनके हितार्थ बल को ( आ वह ) धारण कर। नायक होकर उसका सञ्चालन कर। आचार्य पक्ष में—( देवस्य यज्यवः जनासः ) विद्याकाम शिष्य को ज्ञान देने वाले विद्वान् जन तुझ में ही बहुत से ( अनीका ) ज्ञान और बलों को धारण करावें। जब तू दिव्य बल प्राप्त करले तब तू ( देवतातिं ) अन्य शिष्यों को प्रदान कर।

**यत्त्वा होतारमनजन्मियेधे निषादयन्तो यजथाय देवाः।**
**स त्वं नो अग्नेऽवितेह बोध्यधि श्रवांसि धेहि नस्तनूषु ॥५॥१९॥**

भा०—हे आचार्य ( अग्ने ) विद्वन् ! ( देवाः ) ज्ञानों के अभिलाषी शिष्यजन ( यजथा ) विद्यादान करने एवं तेरी सत्संगति लाभ करने के लिये ही ( मियेधे ) मेध अर्थात् ज्ञानरूप पवित्र यज्ञ में ( निषादयन्तः ) अपने आप तेरे अधीन समीप बसते हुए ( होतारम् ) विद्या के देने वाले ( त्वा ) तुझको ( अनजन् ) प्राप्त होते, तुझको प्रकाशित करते या उत्तम पद पर अभिषिक्त करते हैं। ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! ( सः त्वं ) वह तू ( इह ) इस आश्रम में ( नः ) हमारा ( अविता ) रक्षक, ज्ञानदाता होकर ( बोधि ) हमें ज्ञानोपदेश कर और ( नः तनूषु ) हमारे शरीरों में (श्रवांसि) अन्नों के समान ( तनूषु श्रवांसि ) विस्तृत आत्माओं में या तेरे पुत्र समान शिष्य में श्रवण करने योग्य वेद ज्ञानों को (धेहि) धारण करा। ( २ ) राजा के पक्ष में—(देवाः) विजिगीषु लोग (मियेधे) संग्राम में परस्पर संगति या मैत्रीभाव के लिये तुझ दानशील और वशी-

कर्त्ता को ही आसन पर बिठलाते हुए तेरा अभिषेक करें। तू हम प्रजाजनों का रक्षक होकर सब कर्त्तव्य जान। हमारे पुत्रादि को भी (श्रवांसि) ऐश्वर्य, अन्नादि धारण करा। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

## [ २० ]

गाथी ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप्। २ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ भुरिक् त्रिष्टुप्। ४, ५ त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

**अग्निमुषसमश्विना दधिक्रां व्युष्टिषु हवते वह्निरुक्थैः।**
**सुज्योतिषो नः शृण्वन्तु देवाः सजोषसो अध्वरं वावशानाः ॥१**

भा०—( वह्निः ) विवाह करने वाला युवा पुरुष जिस प्रकार (अग्निम्) आवसथ्य यज्ञाग्नि को और ( दधिक्रां उषसम् ) धारण पोषण करने वाले को प्राप्त होने वाली, कामनाशील, मनोरमा स्त्री को या (दधिक्रां) पोषक पिता से भी बढ़ जाने वाले पुत्र को और ( अश्विना ) सूर्य पृथिवी या सूर्य चन्द्र के समान माता पिता दोनों को ( व्युष्टिषु ) विशेष उषा कालों में या विशेष प्रेम के अवसरों में (उक्थैः) उत्तम वचनों से (हवते) बुलाता है उसी प्रकार ( वह्निः ) राज्य कार्य भार को अपने ऊपर धारण करने वाला पुरुष ( अग्निम् ) अग्रणी नायक को ( उषसम् ) प्रभात बेला के समान अपने पीछे तेजस्वी सूर्यवत् सेनापति को धारण करने वाली ( दधिक्राम् ) अपने धारक पोषक को प्राप्त ( उषसम् ) शत्रु को सन्तप्त और दग्ध करने वाली सेना को, या (दधिक्राम्) पीठ पर सवार को धारण करके वेग से जाने वाले अश्व को और ( अश्विना ) दो अश्ववान् सेनापति या राजा प्रजा वर्ग या राजा रानी दोनों को ( व्युष्टिषु ) दुष्ट शत्रुओं को विविध प्रकार से ताप या पीड़ा देने के संग्राम आदि कार्यों में ( उक्थैः ) उत्तम प्रशंसनीय वचनों, पदों और कर्मों से (हवते) अपनाता और रखता है। ( सुज्योतिषः ) उत्तम चमकते आभूषणों, तेजों और ज्ञानों को

धारण करने वाले (देवाः) विद्वान् और वीर लोग (सजोषसः) परस्पर समान प्रीतिभाव से युक्त होकर (नः अध्वरं) शत्रु तथा दुष्टों द्वारा होने वाले हमारे विनाश को न (वावशानाः) चाहते हुए (नः शृण्वन्तु) हमारे निवेदन तथा व्यवहारों को सुना करें।

**अग्ने॒ त्री ते॒ वाजि॑ना॒ त्री ष॒धस्था॑ ति॒स्रस्ते॑ जि॒ह्वा ऋ॑तजात पू॒र्वीः। ति॒स्र उ॑ ते त॒न्वो॑ दे॒ववा॑ता॒स्ताभि॑र्नः पाहि॒ गिरो॒ अप्र॑युच्छन्॥ २॥**

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् पुरुष! (ते) तेरे (त्री) तीन प्रकार के (वाजिना) ज्ञान, बल और अन्न हैं। तीन प्रकार के शास्त्रकृत, परानुभववेद्य और स्वानुभव वेद्य, और तीन प्रकार का बल आत्मिक, वाचिक, शारीरिक, तीन प्रकार का अन्न खाद्य, लेह्य, चोष्य, अथवा, ओषधियों से उत्पन्न धान्य बीजादि, लता वृक्षादि से प्रसूत कन्द मूल फल पुष्पादि और पशु जीवों से उत्पन्न दूध और दूध से बने पदार्थ और (त्री सधस्था) तेरे तीन एकत्र होकर रहने के स्थान हैं। एक ब्रह्मचर्य, दूसरा गृहस्थ और तीसरा वानप्रस्थ ये तीन आश्रम हैं। चतुर्थ आश्रम में एकान्त विचरता है तब वह किसी के साथ नहीं होता। राजा की तीन 'सधस्थ' अर्थात् सभाभवन राजसभा, धर्मसभा, विद्वत्-सभा। (ते तिस्रः पूर्वीः जिह्वा) तेरी तीन पूर्व आचार्यों द्वारा उपदिष्ट सनातन जीभें अर्थात् वाणियां हैं। स्तुति रूप ऋग्, गान रूप साम और कर्म-निदर्शक गद्यरूप यजुः। राजा की तीन जिह्वाएं तीन वाणियें अपने शासकों के प्रति, प्रजा के प्रति और परपक्ष के प्रति। हे (ऋतजात) वेद, सत्य व्यवहार और न्याय में प्रसिद्ध पुरुष! (ते) तेरे (तिस्रः उ तन्वः) तीन ही तनु अर्थात् देह हैं अपना देह, यश और राष्ट्र। ये तीनों देह (देववाताः) देवों द्वारा सञ्चालित हैं। स्वदेह को देव अर्थात् प्राण चलाते हैं यशःकाय को विजिगीषु सैन्य स्थिर रखते हैं और राष्ट्र देह को ऐश्वर्य के इच्छुक एवं दानशील शासक और प्रजावर्ग

चलाते हैं। ( ताभिः ) उन तीनों देहों द्वारा तू ( अप्रपुच्छन् ) विना प्रमाद के ही ( नः ) हमारी ( गिरः ) वाणियों को ( पाहि ) रक्षा कर। अर्थात् उन द्वारा तू हमारे साथ की हुई वाणियों अर्थात् व्यवस्थाओं और दिये वचनों को पालन कर। 'देववाताः' यह विशेषण वाजिन, जिह्वा, तनु और गिरः सबका समान है। अन्नादि विद्वान् पुरुषों से उपदिष्ट हों, वेद वाणियें विद्वानों से ज्ञान कराई जावें, वाणियों या व्यवस्थाओं को विद्वान् बनावें। (२) परमेश्वर के तीन बल अग्नि, जल, वायु जीवों के एकत्र वास के लिये तीन लोक पृथिवी अन्तरिक्ष, द्यौ, तीन वाणी, ऋक्, साम, यजुः, ज्ञान, गान, कर्म, तीन तनु, सत् चित् आनन्द, उनसे वह (नः गिरः) हम स्तुतिकर्त्ता जनों की रक्षा करे।

**अग्ने भूरीणि तव जातवेदो देव स्वधावोऽमृतस्य नाम।**
**याश्च माया मायिनां विश्वमिन्व त्वे पूर्वीः सन्दधुः पृष्टबन्धो ॥३॥**

भा०—हे ( जातवेदः ) ज्ञानों को प्राप्त करके प्रसिद्ध होने हारे! विद्वन्! हे ( देव ) ज्ञानों के देने वाले आचार्य! गुरो! हे ( स्वधावः ) आत्मा को धारण करने वाली स्नेहमयी शक्ति के स्वामिन् वा अन्नवन्! ( अग्ने ) अग्नि के समान तेजस्विन्! ज्ञान के प्रकाशक! ( अमृतस्य ) कभी न मरने वाले, शिष्य-पुत्रादि परम्परा से सदा जागृत रहने हारे ( तव ) तेरे ( भूरीणि नाम ) बहुत से नाम ( संदधुः ) बतलाते हैं। हे (विश्वमिन्व) समस्त जगत् को जानने वा सबको और सब विद्याओं का उपदेश करने वाले या विश्व अर्थात् आत्मा को जानने जनाने हारे! ( याः च ) जो भी ( मायिनां ) बुद्धिमान् पुरुषों की ( मायाः ) नाना विद्याएं और ज्ञान-बुद्धियां हैं; हे ( पृष्टबन्धो ) प्रश्न करने वाले शिष्य के बन्धु-रूप आचार्य! उन सब (पूर्वीः) पूर्व काल से चली आई, सनातन विद्याओं को ( त्वे ) तेरे में अर्थात् तेरे ही आश्रय रहकर ( संदधुः ) अच्छी प्रकार धारण करें। ( २ ) परमेश्वर सर्वज्ञ देव! ( स्वधावः ) स्वयं ब्रह्माण्ड

की धारक शक्ति, समष्टि चेतन्य के स्वामिन् परमात्मन्! अमृत स्वरूप तेरे बहुत से नाम हैं, और समस्त विद्वान् मनि मानों की सनातन विद्याएं तुम में ही रक्खी हैं लोग तुझ से ही पाते हैं। तू जिज्ञासु जीव का बन्धु एवं पृष्ट अर्थात् कर्म फल देने में बन्धु के समान स्नेहवान् होकर दयालु है।

**अ॒ग्निर्ने॒ता भग॑ इव क्षिती॒नां दैवी॑नां दे॒व ऋ॑तु॒पा ऋ॒तावा॑।**
**स वृ॑त्र॒हा स॒नयो॑ वि॒श्ववे॑दाः पर्ष॒द्विश्वाति॑ दुरि॒ता गृ॒णन्त॑म् ॥४॥**

भा०—( भगः इव ) तेजस्वी सूर्य जिस प्रकार ( ऋतुपाः ) वसन्त आदि ऋतुओं का पालक होकर ( दैवीनां ) देव अर्थात् जल प्रदान करने वाले मेघों से हरी भरी रहने वाली ( क्षितीनां ) भूमियों का ( नेता ) नायक है उनको प्रकाशित करता, उनमें उत्पन्न ओषध्यादि को पालता है और जिस प्रकार ( ऋतुपाः ) ऋतु काल का पालन करने वाला ऋतुगामी ( देवः ) कमनीय, मनचाहा पति ( क्षितीनां दैवीनां ) मनोकामना से युक्त, अपने अधीन रहने वाली, भूमिरूप दारा का ( नेता = परिणेता ) विवाह करने और उसका सुखैश्वर्य प्राप्त कराने वाला, ( ऋतावा ) धन से सम्पन्न ( भगः ) भजन, सेवनीय, सुखकारक कल्याणकारक होता है उसी प्रकार ( अग्निः ) ज्ञानप्रकाश से युक्त तेजस्वी, तपस्वी पुरुष ( भगः ) सबका कल्याणकारी, ऐश्वर्यवान् ( देवीनां ) देव, दानशील राजा के पीछे चलने वाली ( क्षितीनां ) प्रजाओं का (नेता) नायक स्वयं (देवः) दानशील, व्यवहारज्ञ ( ऋतुपाः ) राज-भ्राताओं और राजसभा के सदस्यों का स्वामी और ( ऋतावा ) सत्य, न्यायविधान का पालक हो। ( सः ) वह ( वृत्रहा ) मेघों को सूर्य के समान बढ़ते शत्रुओं को और अज्ञानों का नाश करने हारा, ( सनयः ) नीतिमान् होकर ( विश्ववेदाः ) सब कुछ जानने हारा सब प्रकार के ऐश्वर्यों का स्वामी होकर (गृणन्तम्) दुःख का निवेदन करने वाली प्रजाजन को ( विश्वा दुरिता अति पर्षत् ) सब प्रकार के दुःखदायी मार्गों और बुराइयों से पार करे।

दधिक्रामग्निमुषसं च देवीं बृहस्पतिं सवितारं च देवम् ।
अश्विना मित्रावरुणा भगं च वसून्रुद्राँ आदित्याँ इह हुवे ॥५॥२०

भा०—मैं ( दधिक्राम् ) धारक पोषक पदार्थों में व्यापक विद्युत् ( उषसं च ) दाहकारी (देवीं) तेजस्विनी प्रकाशयुक्त प्रभा, दीप्ति, (बृहस्पतिम् ) महान् आकाश के पालक, वायु और (देवं च सवितारम्) सबके प्रकाशक, सबके प्रेरक और उत्पादक सूर्य ( अश्विना ) सूर्य और चन्द्र से युक्त दिन और रात्रि तथा ( मित्रावरुणा ) मित्र, वायु और वरुण जल, अथवा प्राण और अपान, (भगं च) सबके सेवन करने योग्य सुख-शान्तिकारक ऐश्वर्ययुक्त अन्न, ( वसून् ) पृथिवी आदि वसुओं ( रुद्रान् ) ११ प्राणों को और ( आदित्यान् ) बारहों मासों को ( इह हुवे ) इस जगत् में प्राप्त करूं। (२) राष्ट्र में–धारक पोषक वर्गों को क्रमण करने हारा उनसे अधिक शक्तिशाली अग्रणी नेता, शत्रुदाहक 'उषा' विजियिनी सेना, बड़े राष्ट्र का धारक, सर्वज्ञापक, देव राजा, स्त्री पुरुष, मित्र, न्यायाधीश और वरुण, सर्वश्रेष्ठ दुष्टवारक गणाधिपति, वसु, प्रजाजन 'रुद्र' अध्यक्ष, और आदित्य, व्यापारीजन वा तेजस्वी संन्यासी जन उनको (हुवे) प्राप्त करूं। ( ३ ) अध्यात्म में—दधिक्रा अग्नि प्राण, उषादेवी इच्छा या चिति, सविता बृहस्पति देव आत्मा वाक्पति, अश्वि प्राण और उदान, मित्र वरुण, समान उदान, वसु अन्य उपप्राण चक्षु आदि 'रुद्र' मुख्य एकादश प्राण, 'आदित्य' द्वादश चक्रस्थ ज्ञान केन्द्र उनको मैं धारण करता हूं।

## [ २१ ]

कौशिको गाथी ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४ त्रिष्टुप् । २, ३ अनुष्टुप् । ५ विराट् बृहती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

इमं नो यज्ञममृतेषु धेहीमा हव्या जातवेदो जुषस्व ।
स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्य होतः प्राशान प्रथमो निषद्य ॥१॥

भा०—हे ( जातवेदः ) प्रसिद्ध बुद्धि और ऐश्वर्य वाले विद्वन्! तू ( इमं यज्ञम् ) इस परस्पर दानप्रतिदान, पूजा सत्कार, सत्संग व्यवहार आदि उत्तम कामों को ( नः ) हमारे बीच (अमृतेषु ) न मरने हारे दीर्घजीवी, वृद्ध जनों और युवा पुत्रों में ( धेहि ) स्थापित कर। ( इमा ) ये ( हव्या ) ग्रहण करने योग्य अन्न, ज्ञान, ऐश्वर्य और सद्गुणों को धर्मार्थ काम मोक्षादि के साधक साधनों को ( जुषस्व ) सेवन कर। हे ( अग्ने ) तेजस्विन्! हे ( होतः ) सबके दातः! ( अग्ने ) प्रतापिन्! ज्ञानवन्! ( प्रथमः ) सबसे प्रथम ( घृतस्य मेदसः ) घृत के समान स्नेहयुक्त चीकने पदार्थ द्वारा बने ( स्तोकानां ) थोड़ी २ मात्रा में स्थित पदार्थों का तू ( निषद्य ) आदरपूर्वक बैठकर ( प्र अशान )उत्तम रीति से भोजन कर। ( २ ) इसी प्रकार सबसे श्रेष्ठ राजा ( निषद्य ) सिंहासन पर विराज कर ( स्तोकानां ) अपने से अल्पशक्ति वाले प्रजाओं और सामन्तों के बीच में विराज कर ( मेदसः घृतस्य ) प्रजाओं के स्नेह और तेज का ( प्राशान ) अच्छी प्रकार उत्तम रीति से उपभोग करे। वह इस प्रजा पालन रूप यज्ञ को 'अमृत' अर्थात् उत्साही स्थायी पुरुषों पर स्थापित करे।

घृतवन्तः पावक ते स्तोकाः श्चोतन्ति मेदसः।
स्वधर्मन्देववीतये श्रेष्ठं नो धेहि वार्यम् ॥ २ ॥

भा०—हे ( पावक ) पवित्र करने हारे एवं अग्नि के समान तेजस्विन्! जिस प्रकार ( मेदसः स्तोकाः ) स्निग्ध पदार्थ के बिन्दु अग्नि में पड़ते हैं उसी प्रकार ( ते ) तेरे ( मेदसः ) स्नेह से युक्त ( घृतवन्तः ) ज्ञान और ब्रह्मचर्य के तेज से सम्पन्न ( स्तोकाः ) बिन्दुओं के समान अल्पबल और अल्पज्ञानी वा विद्याभ्यासी शिष्यगण ( श्चोतन्ति ) तुझ से ही निकलते हैं। हे विद्वन्! तू (देव-वीतये) विद्वान् पुरुषों के बीच कान्ति धारण करने के लिये या ज्ञानाभिलाषी शिष्यों के बीच ज्ञान प्रकाशित करने के लिये ( स्वधर्मन् ) अपने धर्म में स्थित होकर ( नः ) हमें

( श्रेष्ठं वार्यम् ) उत्तम, वरण करने योग्य और ज्ञानैश्वर्य ( धेहि ) प्रदान कर। ( २ ) अपने से अल्प, तेजस्वी, हृष्ट पुष्ट अधीन भृत्य उसके अधीन ( श्चोतन्ति ) चलें। वे उनके तेज को बढ़ाने के लिये उनके भोजन के लिये अपने धर्म में स्थित होकर श्रेष्ठ ऐश्वर्य और उत्तम अन्न दें।

तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतोऽग्ने विप्राय सन्त्य।
ऋषिः श्रेष्ठः समिध्यसे यज्ञस्य प्राविता भव ॥ ३ ॥

भा०—हे ( सन्त्य ) सत्यासत्य का विवेक करने में श्रेष्ठ पुरुष! ( अग्ने ) विद्वन्! ( विप्राय ) विविध विद्याओं से पूर्ण एवं नाना धर्म कर्मों में रत ( तुभ्यं ) तेरे अधीन ये ( घृतश्चुतः ) घृत से सिंचे अग्नियों के समान तेज से युक्त ( स्तोकाः ) विद्याभ्यासी शिष्यजन हैं। तू (श्रेष्ठः) उन सब में श्रेष्ठ ( ऋषिः ) ज्ञानों का द्रष्टा होकर ( समिध्यसे ) प्रकाशित हो। और ( यज्ञस्य ) ज्ञानमय श्रेष्ठ दान और सत्संग का ( प्र-अविता ) सबसे उत्तम रक्षक और ज्ञाता ( भव ) हो। ( २ ) राजा के अधीन स्वल्पशक्ति वाले भी तेजस्वी हों। वह उनके संगठन का रक्षक हो।

तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य।
कविशस्तो बृहता भानुनागा हव्या जुषस्व मेधिर ॥ ४ ॥

भा०—हे ( अध्रिगो ) गो अर्थात् वेदवाणी और इन्द्रियगण पर अधिकार रखने हारे विद्वन्! जितेन्द्रिय! हे 'गो' अर्थात् पृथिवी पर शासन करने हारे राजन्! हे ( शचीवः ) हे उत्तम प्रज्ञा और शक्ति वाले! ( अग्ने ) अग्नि के तुल्य प्रकाशक! तेजस्विन्! ( स्तोकासः ) वेदों का स्तवन अर्थात् पठन और अभ्यास कराने वाले विद्वान् जन ( तुभ्यं ) तेरा ही ( मेदसः ) स्नेहयुक्त और ( घृतस्य ) जल और घी के समान प्रवाह युक्त, तेजस्वी या पवित्रकारक ज्ञान जल के द्वारा ( श्चोतन्ति ) सेचन करते, जलों से मेघों के समान तुझे स्नान कराते हैं। हे राजन् (स्तोकासः) शत्रु का हनन करने वाले वीर और उसके स्तुति कर्ता अल्पशक्तिशाली

पुरुष ( तुभ्यं ) तेरा ही ( मेदसः घृतस्य ) स्नेह युक्त जल के द्वारा अभिषेक करते हैं । तू ( कविशस्तः ) विद्वान् पुरुषों से प्रशंसित एवं शिक्षित होकर ( बृहता भानुना ) बड़े भारी तेज से सूर्य के समान ( आ अगाः ) आ, हमें प्राप्त हो । हे ( मेधिर ) विद्वन् ! प्रज्ञावन् ! तू ( हव्या ) ग्रहण करने योग्य अन्न ऐश्वर्यादि ( जुषस्व ) प्रेम से स्वीकार कर । वेदज्ञ पूर्ण ब्रह्मचारी को अध्यापक स्नातक बनावें । वह घर पर आकर उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करे । इसी प्रकार वीर और गुण-स्तुतिकर्त्ता जन पृथ्वी पर अधिकार और शक्तिशाली पुरुष का अभिषेक करें । दोनों ही सूर्य के समान अन्नों और करों को लें । ( २ ) परमेश्वर—सर्व शक्तिमान् 'गौ' पृथिवी सूर्यादि का शासक है । उसी के स्नेह और तेज का उससे अल्प शक्तिशाली पदार्थ सूर्यादि हमें प्रदान करते हैं । वह सर्वस्तुत्य हमें तेजसहित प्राप्त हो, हमारी ग्रहणयोग्य स्तुतियों को स्वीकार करे ।

**ओजि॑ष्ठं ते मध्य॒तो मेद॒ उद्भृ॑तं॒ प्र ते॑ व॒यं द॑दामहे ।**
**श्चोत॑न्ति ते वसो स्तो॒का अधि॑ त्व॒चि प्रति॒ तान्दे॑व॒शो वि॑हि ॥५॥२१॥**

भा०—हे ( वसो ) गुरु के अधीन वास करने हारे विद्वन् ! अथवा हे अपने अधीन शिष्यों को बसाने हारे आचार्य ! ( ते ) तेरे ( मध्यतः ) हृदय के बीच से ( ओजिष्ठं ) अति अधिक ओजस्वी ( मेदः ) स्नेह और वीर्य ( उद्भृतं ) उत्तम रीति से तैने धारण किया है । ( वयं ) हम गुरु जन ( ते ) तुझे ( प्र ददामहे ) अच्छी प्रकार उत्तम २ ज्ञान प्रदान करते हैं । (ते अधि त्वचि) तेरी त्वचा पर ( स्तोकाः ) जल धाराओं के समान ज्ञान-जल प्रवाहित करने वाले विद्वान् जन ( श्चोतन्ति ) तेरा ज्ञान जल से स्नान करावें । तू ( तान् देवशः ) उन विद्वानों या तुझे चाहने वाले बन्धुजनों को ( प्रतिविहि ) प्राप्त हो । ( २ ) हे राजन् ! तेरा जो सबसे अधिक ओजस्वी ( मेदः ) शत्रुहिंसक बल ( मध्यतः ) राष्ट्र के बीच में ( उद्भृतम् ) सर्वोपरि वेतन आदि द्वारा बद्ध है हे राष्ट्र के बसाने हारे

वसो ! वह ( ते ) तुझे हम प्रजाजन ही प्रदान करते हैं तू ( स्तोकाः ) तेरे अल्प शक्तिशाली जन ही तेरे देह पर अभिषेक करते हैं, तू तेरे इच्छुक जन को प्राप्त हो ( ३ ) हे वसो ! परमेश्वर ! तेरा ही स्नेह हमारे बीच सब से उत्कृष्ट रूप से धारण किया है। वही स्नेह तेरे लिये हम प्रकाशित करते हैं। ( स्तोकाः ) स्तुतिकर्त्ता जन मृगछाला पर बैठकर तेरे लिये ही ज्ञान मार्ग की संगति करते हैं। तू उन तेरे इच्छुकों को प्राप्त हो, उनके प्रति प्रकाशित हो। इत्येकविंशो वर्गः ॥

## [ २२ ]

गाथी ऋषिः ॥ पुरीष्या अग्नयो देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २, ३ भुरिक् पंक्तिः । ५ निचृत् पंक्तिः । ४ विराडनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

**अयं सो अग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः ।**
**सहस्रिणं वाजमत्यं न सप्तिं ससवान्त्सन्त्स्तूयसे जातवेदः ॥१॥**

भा०—( अयं ) यह ( सः ) वह ( अग्निः ) अग्नि या विद्युत् है ( यस्मिन् ) जिस में ( इन्द्रः ) सबको प्रदीप्त करने वाला विद्वान् पुरुष ( वावशानः ) इच्छा करता हुआ, ( जठरे ) यन्त्र के मध्य में ( सुतं ) उत्पन्न ( सोमं ) प्रेरक बल को उदर में जल वा अन्न के समान ( दधे ) स्थापित करता है। इस प्रकार वह ( अत्यं न सप्तिम् ) वेगवान् अश्व के तुल्य ( अत्यं ) निरन्तर जाने वाले ( सप्तिम् ) गतिशील ( सहस्रिणं वाजं ) सहस्रगुण वेग या बल को ( दधे ) धारण करता है। हे ( जातवेदः ) ज्ञानवन् ! मतिमन् ! तू उस वेग वा बल को ( ससवान् ) अच्छी प्रकार यन्त्र के अन्य २ भागों में विभक्त करता हुआ ही ( स्तूयसे ) स्तुति करने योग्य है। अथवा वह अग्नि ही इस प्रकार प्रबल वेग धारण करने से ( स्तूयसे ) उपदेश देने योग्य है। ( २ ) ( अयं सः अग्निः ) यह ही वह ज्ञानवान् आचार्य है ( यस्मिन् जठरे ) जठर या उदर के

समान जिसमें वह आचार्य स्वयं ( रुद्रः ) ज्ञान का धारक होकर ( वावशानः ) शिष्य की कामना करता हुआ ( सोमं सुतं ) शिष्य को पुत्र के समान ( दधे ) धारण करता है। आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्त्ति तं जातं द्रष्टुमुपसंयन्ति देवाः ॥ अथर्व० कां० ११। स० ५। १ ॥ हे ( जातवेदः अत्यं न सस्नि ससवान् ) वेगवान् अश्व सैन्य का धारण करने वाले नायक के समान तू भी ( सहस्रिणं वाजं ) सहस्रों प्रकार के ज्ञान को (ससवान् सत्) अन्यों में विभक्त या प्रदान करता हुआ ही ( स्तूयसे ) स्तुति किया जाता है। ( ३ ) यह वही अग्नि प्रभु है जो स्वयं ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् होकर अपने भीतर उत्पन्न संसार को धारण करता है। वह सहस्रों ऐश्वर्यों का देने हारा, व्यापक प्रभु ही स्तुति करने योग्य है।

**अग्ने॒ यत्ते॑ दि॒वि वर्चः॑ पृथि॒व्यां यदोष॑धीष्व॒प्स्वा य॑जत्र।**
**येना॒न्तरि॑क्षमु॒र्वा॑त॒तन्थ॑ त्वे॒षः स भा॒नुर॑र्ण॒वो नृ॒चक्षाः॑ ॥ २ ॥**

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! अग्नि के समान प्रकाशक ! ( ते यद् वर्चः ) तेरा जो तेज ( दिवि ) सबके कामना करने योग्य ज्ञान-प्रकाश में और ( पृथिव्याम् ) अति विस्तृत वेद वाणी में और ( यत् ) जो तेज (ओषधीषु) देह में ताप को धारण करने वाले (अप्सु) प्राणों में है। हे ( यजत्र ) शक्ति और ज्ञान के देने हारे ! ( येन ) जिस तेज से (उरु) तू बहुत बड़े ( अन्तरिक्षं ) अन्तःकरण में विद्यमान ज्ञान को (आ ततन्थ) विस्तारित करता है ( सः ) वह तू ( भानुः ) प्रकाशमान सूर्य के समान ( त्वेषः ) तीक्ष्ण, तेजस्वी ( अर्णवः ) समुद्र के समान गम्भीर ( नृचक्षाः ) मनुष्यों के बीच द्रष्टा और उपदेष्टा है। ( २ ) अग्निपक्षमें—अग्नि तत्व का ही वह तेज है पृथिवी में अग्नि रूप से, ओषधियों में रस या काष्ठरूप से, जलों में और्वा-नल या मेघों में विद्युत् रूप से है जिससे

विशाल अन्तरिक्ष पूर्ण हो जाता है वह सूर्य, कान्तिमान्, जलमय, मेघवान्, सब मनुष्यों का द्रष्टा, दिखाने वाला, चक्षु का जनक भी है।

**अग्ने॑ दि॒वो अर्ण॒मच्छा॑ जिगा॒स्यच्छा॑ दे॒वाँ ऊ॑चिषे॒ धिष्ण्या॒ ये।**
**या रो॑च॒ने प॒रस्ता॒त्सूर्य॑स्य॒ याश्चा॒वस्ता॑दु॒प॒तिष्ठ॑न्त॒ आपः॑ ॥ ३ ॥**

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! (दिवः) सबसे अधिक प्रकाशमान सूर्यवत् तेजस्वी गुरुजन से प्राप्त (अर्णम्) विनय द्वारा प्राप्त करने योग्य ज्ञान को तू (अच्छ) उसके सन्मुख होकर (जिगासि) अभ्यास कर और (ये धिष्ण्याः) जो विशेष धारणावती बुद्धियों, नाना ज्ञानों को चाहने वाले शिष्य जन हैं उन (देवान्) विद्या के अभिलाषी शिष्यों को (अच्छा उचिषे) अभिमुख कर भली प्रकार उपदेश कर। और (याः) जो (आपः) आप्त प्रजाएं (सूर्यस्य रोचने) सूर्य के तुल्य प्रकाशमान गुरु के सर्वप्रिय, तेजोयुक्त प्रकाश या उच्च पद पर (परस्तात्) उत्तम पद पर और जो (अवस्तात्) उससे नीचे शिष्य पद पर (उपतिष्ठन्ते) उपस्थित होते हैं उन के प्रति भी ज्ञान प्राप्त करा और उत्तम उपदेश कर। (२) राजा (दिवः) राज-विद्वत्सभा से उत्तम ज्ञान प्राप्त करे, उत्तम आसनयोग्य, एवं पदाधिकारी, वीर, यशस्काम पुरुषों के प्रति आज्ञावचन कहे। उन्नत और अधीन प्रजा का शासन करे।

**पु॒री॒ष्या॑सो अ॒ग्नयः॑ प्राव॒णेभिः॑ स॒जोष॑सः।**
**जु॒षन्तां॑ य॒ज्ञम॒द्रुहो॑ऽनमी॒वा इषो॑ म॒हीः ॥ ४ ॥**

भा०—(पुरीष्यासः) अन्न, ऐश्वर्य, पृथिवी, इन्द्रादि पद, विद्वान्, प्रजाजन, पशु आदि उनसे सम्पन्न (अग्नयः) अग्रणी, तेजस्वी नेताजन, (प्रवणेभिः) उत्तम सैन्य दलों, प्रजाजनों और अधीनस्थ विनयशील सहायक मार्गों से (सजोषसः) समान प्रीतियुक्त होकर परस्पर (अद्रुहः) द्रोहरहित होकर (यज्ञम्) परस्पर के मैत्रीभाव, सत्संग, दान प्रतिदान, को, (अनमीवाः) रोगरहित (इषः) अन्न जलों और (महीः)

उत्तम वाणियों और भूमियों को ( जुषन्ताम् ) सेवन करें। ( २ ) अध्यात्म में—( अग्नयः ) प्राणगण ( पुरीष्यासः ) पुरीतत् नाड़ी तक पहुंचने हारे वा देह के मांस तक में व्यापक ( प्रावणेभिः ) उत्तम भोग्य पदार्थों से युक्त होकर परस्पर उपघात, पीड़ा, बाधारहित होकर रोगशून्य अन्न और ( महीः ) बड़ी बलवती शक्तियों को और ( यज्ञं ) परस्पर के संगत करने वाले पूज्य आत्मा के बल को ( जुषन्ताम् ) प्राप्त करें। ( ३ ) विद्वान् जन प्रजाहितैषी द्रोहरहित होकर ( यज्ञं ) परमेश्वर और उत्तम २ कामनाओं को प्राप्त करें।

पुरीष्यासः—पुरीष्य इति वै तमाहुर्यः श्रियं गच्छति। श० २।१।१।७॥ अन्नं पुरीषम्। श० ८।१।४।५॥ पुरीषं वा इयम्। श० १२।५।२।५॥ ऐन्द्रं हि पुरीषम्। श० ८।७।३।७।०दक्षिणाः पुरीषम्। ८।७।४।१५॥ देवाः पुरीषम्। नक्षत्राणि पुरीषम्। वयांसि पुरीषम्। प्रजाः पुरीषम्। पशवः पुरीषम्। पुरीतत् पुरीषम्। शत० ८।७।४।१—१८॥ अध्यात्मम्—मांसं पुरीषम्। देवाः पुरीषम्। पुरीतत् पुरीषम्। शत० ८।७।४—१—१८॥

**इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।**
**स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥५॥२२॥**

भा०—व्याख्या देखो मं० ३।सू०१।मं०२३॥ इति द्वाविंशो वर्गः॥

## [ २३ ]

देवश्रवा देववातश्च भारतावृषी॥ अग्निर्देवता॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

**निर्मथितः सुधित आ सधस्थे युवा कविरध्वरस्य प्रणेता।**
**जूर्यत्स्वग्निरजरो वनेष्वत्रा दधे अमृतं जातवेदाः॥१॥**

भा०—( निर्मथितः ) दो अरणियों के बीच में मथन करने से प्रकट

होने वाला अग्नि जिस प्रकार ( सधस्थे ) यजमान के यज्ञ गृह में ( सुधितः सन् अमृतं आदधे ) उत्तम रीति से स्थापित होकर अमृत अर्थात् न नाश होने वाले सदा जागृत रूप को धारण करता है उसी प्रकार (सधस्थे ) एकत्र सभासदों के विराजने के स्थान, सभाभवन में ( निर्मथितः ) विशेष, आलोड़न किये हुए ज्ञान सार को जानने वाला, शास्त्रज्ञ विद्वान् (सुधितः) उत्तम रीति से स्थापित होकर (अमृतम्) अमर, अविनाशी, सत्यमा स्थायी पद को ( आदधे ) धारण करे । वह ( युवा ) बलवान् युवावस्था-सम्पन्न, दानैश्वर्यों का विभाजक, ( कविः ) क्रान्तदर्शी, बुद्धिमान् , ( अध्वरस्य ) नाशरहित एवं अहिंसामय प्रजापालनादि यज्ञ को ( प्रणेता ) उत्तम मार्ग से ले चलने हारा हो । वह ( अग्निः ) अग्रणी नायक, अग्नि के समान तेजस्वी होकर ( जूर्यत्सु ) स्वयं भस्म हो जाने वाले ( वनेषु ) वनों में या काष्ठों में अग्नि के समान, ( जूर्यत्सु ) वेगवान् ( वनेषु ) किरणों में ( अजरः ) अविनश्वर सूर्य के समान, वा ( वनेषु अग्निः ) जलों में विद्युत् के समान स्वयं ( अजरः ) जीवन की हानि न करता हुआ ( अत्र ) इस राष्ट्र में ( जातवेदः ) ज्ञान, ऐश्वर्य से युक्त होकर ( अमृतं ) सन्तति को गृहस्थ के समान ( अमृतं ) अमृत, यश, अन्नादि समृद्धि और राष्ट्र के स्थायी दीर्घ जीवन को ( आदधे ) स्थापित करे ।

**अमन्थिष्टां भारता रेवदग्निं देवश्रवा देववातः सुदक्षम् ।**
**अग्ने वि पश्य बृहताभि रायेषां नो नेता भवतादनु द्यून् ॥ २ ॥**

भा०—( देवश्रवाः ) विद्वानों के ज्ञानों को श्रवण करने वाला, उन द्वारा ज्ञान और यश प्राप्त करने वाला, ( देववातः ) और विद्वानों द्वारा प्रेरित उनकी आज्ञा का वशंवद ऐसे दोनों ( भारता ) प्रजाओं के भरण पोषण करने वाले स्त्री पुरुषों के समान उक्त प्रकार के दोनों पुरुष मिलकर ( सुदक्षम् ) उत्तम बलयुक्त, प्रज्ञायुक्त ( रेवत् ) ऐश्वर्य से समृद्ध ( अग्निं ) तेजस्वी, अग्रणी नायक को ( अमन्थिष्टाम् ) दो अरणियों से

मथकर निकले अग्नि के समान पक्ष प्रतिपक्ष के बीच संघर्ष या वादविवाद द्वारा परस्पर मथकर सार के समान निर्णय करें। हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक ! ज्ञानवन् ! ( बृहता राया ) बड़े भारी ऐश्वर्य से युक्त होकर ( एषां ) इन सब प्रजावर्गों को ( वि पश्य ) विविध प्रकार से देख। उनके व्यवहारों का निर्णय कर। और ( नः ) हमारा ( अनु द्यून् ) सदा दिनों ( नेता भवतात् ) सन्मार्ग में ले चलने हारा हो। गृहस्थ पक्षमें— ( देवश्रवाः ) प्रिय काम्य पति का वचन श्रवण करने वाली स्त्री और 'देव' अर्थात् काम्य गुणों से प्रेरित 'देववात' पुरुष। दोनों प्रजा के भरण पालन करने से 'भारत' हैं। ये दोनों अग्नि को मथन कर यज्ञ का आधान करें। मथित वीर्य से सन्तान रूप अग्नि का आधान करें। वह उनका आगामी सन्ततिका नायक या प्रवर्त्तक हो।

दश क्षिपः पूर्व्यं सीमजीजनन्त्सुजातं मातृषु प्रियम्।
अग्निं स्तुहि दैववातं देवश्रवो यो जनानामसद्वशी ॥ ३ ॥

भा०—( दश क्षिपः ) दशों प्रेरित प्राण जिस प्रकार ( मातृषु प्रियं सुजातं अजीजनन् ) माताओंके गर्भों में उत्तम रीति से उत्पन्न प्रिय बालक को उत्पन्न करते हैं। और जिस प्रकार ( दश क्षिपः ) दशों दिशाएं उत्तम रूप से प्रकट प्रिय सूर्य को प्रकट करती हैं उसी प्रकार ( दश ) दसों ( क्षिपः ) दिशाओं में शत्रु सेनाओं पर शस्त्रास्त्र वर्षण करने वाली या आज्ञाकारिणी सेनाएं और प्रजाएं ( मातृषु ) सर्वोत्पादक भूमियों में ( पूर्व्यम् ) पूर्व वंश से चले आये ( प्रियम् ) सर्व प्रिय ( सुजातम् ) पुरुष को उत्तम रूप से ( सीम् अजीजनत् ) सर्वत्र प्रकट करें। उसे नायक बनावें। हे ( देवश्रवः ) विद्वानों के ज्ञानों को श्रवण कराने वाले विद्वन् ! तू ( देववातं ) देवों के विद्वानों द्वारा सञ्चालित प्रेरित (अग्निम्) अग्रणी नायक की ( स्तुहि ) स्तुति कर उसके उत्तम गुणादि सहित उसे प्रस्ताव द्वारा प्रस्तुत कर ( यः ) जो ( जनानाम् ) मनुष्यों के बीच

सबको ( वशी असत् ) वश करने हारा हो। ( २ ) आत्मा ( मातृषु ) प्रमाता, ज्ञान-साधनों, इन्द्रियों के बीच में प्रकट होता है, दशों प्राण उसे प्रकट करते हैं।

नि त्वा॑ दधे॒ वर॒ आ पृ॑थि॒व्या इळा॑यास्प॒दे सु॑दि॒न॒त्वे अह्ना॑म्।
दृ॒षद्व॑त्यां॒ मानु॑ष आप॒याया॒ं सर॑स्वत्यां रे॒वद॑ग्ने दिदीहि ॥ ४ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान तेजस्विन्! विद्वान्! नायक! मैं प्रजाजन ( त्वा ) तुझको ( पृथिव्याः ) अतिविस्तृत, ( इलायाः ) पृथ्वी और वाणी के ( वरे ) सर्वश्रेष्ठ प्राप्त करने योग्य पद पर, सर्वोच्च आसन पर ( अह्नां सुदिनत्वे ) दिनों के बीच शुभ दिन में ( निदधे ) स्थापित करूं और तू ( दृषद्वत्यां ) प्रस्तरों में युक्त, शिला पर्वतादि वाली, ( आपयायां ) जलों से व्याप्त, नदी ताल आदि वाली और ( सरस्वत्यां ) उत्तम तालों वा सागरों से युक्त नाना भूमियों में ( रेवत् ) ऐश्वर्यवान् होकर ( मानुषे ) मनुष्यों के बीच में ( दिदीहि ) प्रकाशित हो। ( २ ) विद्वान् गुरु, सरस्वती वेद वाणी जो 'दृषद्वती' अज्ञाननाशक निष्ठ पुरुषों में स्थित और ( आपयायां ) आप्त पुरुषों से प्राप्त होने योग्य वाणी में मननशील विद्वत्संघ में प्रकाशित हो। राजपक्षमें—राजा, दृषद्वती आपया, शस्त्रास्त्र से युक्त दूर देश गामिनी और वेगवती सेना में मननशील होकर चमके।

इळा॑मग्ने पुरु॒दंसं॑ स॒निं गोः श॑श्वत्त॒मं हव॑मानाय साध।
स्यान्नः॑ सू॒नुस्तन॑यो वि॒जावाग्ने॒ सा ते॑ सुम॒तिर्भू॑त्व॒स्मे ॥५॥२३॥

भा०—व्याख्या देखो म० ३। १। २३॥ इति त्रयोविंशो वर्गः।

## [ २४ ]

विश्वामित्र ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१ निचृत् त्रिष्टुप्। २ निचृद्गायत्री। ३, ४, ५ गायत्री॥

अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य।
दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धा यज्ञवाहसे॥ १॥

भा०—हे ( अग्ने ) विद्वन्! नायक! तू ( अभिमातीः ) आक्रमण करके हत्या करने वाले और अभिमान से पूर्ण, विघ्नकारी ( पृतनाः ) शत्रु-सेनाओं को ( अप-अस्य ) दूर कर और ( सहस्व ) उनको पराजित कर। तू स्वयं ( दुःस्तरः ) शत्रुओं द्वारा विशाल सागर के समान दुस्तर या अलंघ्य होकर और (अरातीः) कर न देने वाले शत्रुओं को ( तरन् ) साधता, पराजित करता हुआ ( यज्ञ-वाहसे ) तुझ से मित्रभाव, सत्संग, कर आदि देकर राजा प्रजा का सा सम्बन्ध करने वाले प्रजागण के उपकार के लिये तू (वर्चः) तेज, बल (धाः) धारण कर, उसको अन्न समृद्धि प्रदान कर। ( २ ) अध्यात्म में—परमेश्वर या विद्वान् ( अभिमातीः पृतनाः ) मनुष्य की अहंकारवृत्तियां दूर करे और ( अरातीः ) अदानशीलता वा लोभ-वृत्तियों को हटाकर ( यज्ञवाहसे ) उपास्य प्रभु या आत्मा को प्राप्त करने के लिये तेज को धारण करे करावे।

अग्न इळा समिध्यसे वीतिहोत्रो अमर्त्यः।
जुषस्व सू नो अध्वरम्॥ २॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान विद्या, विज्ञान के प्रकाश और ब्रह्मचर्य आदि के तेज से युक्त विद्वन्! प्रतापशालिन्! तू ( इळा ) सबके चाहने योग्य उत्तम वेदवाणी और भूमि से युक्त होकर ( समिध्यसे ) अच्छी प्रकार उत्तेजित वा प्रदीप्त हो। तू ( वीतिहोत्रः ) उत्तम गुणों से व्याप्त विद्याओं, रक्षाओं और कान्तिमय तेजों को स्वयं धारण करने और अन्यों को देने हारा और ( अमर्त्यः ) कभी न मरने हारा, अविनश्वर, दीर्घायु और पुत्र पौत्रादि सन्तति द्वारा चिरस्थायी होकर ( नः ) हमारे ( अध्वरं ) न नाश होने वाले और हिंसन पीड़नादि से रहित पालन आदि यज्ञ कार्य को ( सु जुषस्व ) सुखपूर्वक प्रेम से स्वीकार कर।

(२) अध्यात्म में—यह आत्मा तेजःस्वरूप, अविनाशी, अजर, अमर होकर भी पार्थिव देह में (इळा) अन्न वाणी और इच्छा शक्ति द्वारा प्रकाशित होता है। वही जीवन यज्ञ को सेवन करता है। (३) और परमेश्वर (इळा) वेद वाणी से प्रकाशित होता है। (४) गृहस्थ मनचाही भूमिरूप स्त्री से।

अग्ने द्युम्नेन जागृवे सहसः सूनवाहुत।
एदं बर्हिः सदो मम॥ ३॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! तेजस्विन्! हे (जागृवे) सदा जागरणशील! हे प्रबुद्ध! कभी न असावधान रहने वाले! पहरेदार के समान सदा जागते रहने वाले! यते! हे (सहसः सूनो) अन्तः शत्रु के नाशक बल, सहनशीलता, क्षमता के जनक! बलों, सैन्यों के प्रेरक, नायक और बल के द्वारा शासक! तू (द्युम्नेन) अन्न, ऐश्वर्य और तेज के सहित (मम) मेरे (इदं) इस (बर्हिः) वृद्धिशील, उत्तम आसन, प्रजाजनाधिकार में (आसदः) आ विराज।

अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्देवेभिर्महया गिरः।
यज्ञेषु ये उ चायवः॥ ४॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे प्रतापिन्! तू (यज्ञेषु) यज्ञों, परस्पर मित्रता और सत्संगयुक्त कार्यों में (ये उ चायवः) जो उत्तम सत्कार करने वाले, एवं सत्कार करने योग्य मनुष्य हैं उनकी (गिरः) उत्तम वाणियों का वा (गिरः) उत्तम उपदेश करने वाले उनको ही (विश्वेभिः) समस्त (अग्निभिः) ज्ञानी वा अग्रणी पुरुषों और (देवेभिः) दिव्य कमनीय गुणों वाले व व्यवहारज्ञ विजयेच्छुक पुरुषों द्वारा (महय) आदर सत्कार कर।

अग्ने दा दाशुषे रयिं वीरवन्तं परीणसं।
शिशीहि नः सूनुमतः॥ ५॥ २४॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन्! हे प्रतापशालिन्! तू ( दाशुषे ) दानशील, सबको सुखों के देने वाले वा आत्म-समर्पक वा करादि देने वाले प्रजाजन को ( वीरवन्तं ) उत्तम पुत्रों और बलवान् वीर पुरुषों से युक्त ( परीणसं ) बहुत प्रकार का ( रयिं ) ऐश्वर्य ( दाः ) प्रदान कर। और ( सूनुमतः ) पुत्र पौत्रों से युक्त वा उत्तम शासक से युक्त ( नः ) हमें ( शिशीहि ) शासन कर, और शस्त्र के समान अति तीक्ष्ण कर, बलवान् और तीक्ष्ण बुद्धियुक्त असह्य तेजस्वी बना और उन्नति-पथ पर तीव्र वेग से ले चल। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

## [ २५ ]

विश्वामित्र ऋषिः॥ १, २, ३, ४ अग्निः। ५ इन्द्राग्नी देवते॥ छन्दः—निचृदनुष्टुप्। २ अनुष्टुप्। ३, ४, ५ भुरिक् त्रिष्टुप्॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

**अग्ने॒ दि॒वः सू॒नुर॑सि॒ प्रचे॑ता॒स्तना॑ पृथि॒व्या उ॒त वि॒श्ववे॑दाः।**
**ऋध॑ग्दे॒वाँ इ॒ह य॑जा चिकित्वः॥ १॥**

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन्! तेजस्विन्! तू ( प्रचेताः ) उत्तम ज्ञान और चित्त से युक्त और ( विश्ववेदाः ) सब प्रकार के धनों और ज्ञानों का स्वामी होकर ( दिवः सूनुः असि ) प्रकाश के प्रवर्त्तक सूर्य के समान-ज्ञान-प्रकाश का प्रवर्त्तक और ( दिवः सूनुः ) ज्ञान प्रकाशयुक्त आचार्य के पुत्र के समान ( दिवः सूनुः ) विजय कामना वाली सेना का सञ्चालक है। तू ( पृथिव्याः तनः ) पृथिवी के समान विशाल गुणों वाला, माता का पुत्र वा ( पृथिव्याः तनाः ) पृथिवी राज्य को विस्तार करने वाला हो। हे ( चिकित्वः ) ज्ञानवन्! तू ( इह ) यहां, इस लोक में, (देवाः) सब धनैश्वर्य व सुख की कामना करने वाले पुरुषों को ( यजः ) ज्ञान सत्संग आदि उत्तम गुण ऐश्वर्यादि प्रदान कर।

अ॒ग्निः स॑नोति वी॒र्या॑णि वि॒द्वान्त्स॒नोति॒ वाज॑म॒मृता॑य॒ भूष॑न् ।
स नो॑ दे॒वाँ एह व॑हा पुरुक्षो ॥ २ ॥

भा०—( अग्निः ) ज्ञानवान्, तेजस्वी पुरुष ! (वीर्याणि) नाना बल वीर्यों को (सनोति) प्राप्त वा प्रदान करता है। वही (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर ( भूषन् ) तेज और ज्ञान से सबको सुशोभित करता हुआ ( अमृताय ) अमृत मोक्षसुख, दीर्घायु, उत्तम सन्तति आदि प्राप्त करने के लिये ( वाजं सनोति ) बल वीर्य, वाणी आदि प्रदान करता है। हे अन्नादि (पुरुक्षो) भोज्य सामग्रियों के स्वामिन् ! तू ( नः ) हमें ( इह ) यहां ( देवान् आवह ) विद्वानों को प्राप्त करा। अथवा ( नः देवान् इह आवह ) हम इच्छाशील पुरुषों को धारण कर। हमारे शासन का भार अपने ऊपर ले।

अ॒ग्निर्द्यावा॑पृथि॒वी वि॒श्वज॑न्ये॒ आ भा॑ति दे॒वी अ॒मृते॒ अमू॑रः ।
क्षय॒न्वाजैः॑ पुरुश्च॒न्द्रो नमो॑भिः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार ( अग्निः ) प्रकाशमय सूर्य वा विद्युत् या अग्नि-तत्व ( अमूरः ) कभी नाश न होकर ( विश्वजन्ये ) सबको उत्पन्न करने वाली और (अमृते) नाश न होने वाली, प्रवाह से वा कारण-रूप से नित्य, ( देवी ) दिव्य गुणयुक्त, जल अन्नादि देने वाली ( द्यावापृथिवी ) आकाश और पृथिवी दोनों को ( आभाति ) प्रकाशित करता है और वह ( पुरु-चन्द्रः ) बहुत प्रकार से, बहुतों को सुखी और आह्लादित करने वाला होकर ( नमोभिः ) अन्नों ( वाजैः ) प्रकाश वेगादि से ( क्षयान् ) सर्वत्र व्यापता है। उसी प्रकार ( अग्निः ) ज्ञानवन् प्रतापशाली पुरुष (अमूरः) कभी मूढ़ न होकर ( देवी ) उत्तम गुणों से युक्त, कमनीय, ( अमृते ) दीर्घायु, नाश न होने वाले, ( विश्वजन्ये ) सबको उत्पन्न करने वाले, सब सुखसम्पदा के उत्पादक ( द्यावापृथिवी ) पिता माता व ज्ञानी और अज्ञानी और शासक और प्रजावर्ग दोनों को (आ भाति) चमकावे, उनको

प्रकाशित करे, उनके गुणों को प्रकाशित करे। और ( नमोभिः ) आदर और ( वाजैः ) ज्ञान, अन्न और वेगयुक्त सेवा शुश्रूषादि कर्मों द्वारा और राजा ऐश्वर्य और संग्रामों द्वारा ( पुरुचन्द्रः ) बहुतों को आह्लादित करने हारा होकर ( क्षयन् ) निवास करे और औरों को भी बसावे।

**अग्न इन्द्रश्च दाशुषो दुरोणे सुतावतो यज्ञमिहोप यातम्।**
**अमर्धन्ता सोमपेयाय देवा ॥ ४ ॥**

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! विद्वन्! तू ( इन्द्रः च ) और ऐश्वर्यवान् वा सूर्य के समान अज्ञान का नाशक और शत्रुपक्ष का दलन करने वाला वीर पुरुष दोनों ही ( अमर्धन्ता ) एक दूसरे का परस्पर नाश या घात-उपघात न करते हुए ( देवा ) सत्य के प्रकाशक, कामना और कान्ति से युक्त होकर ( दाशुषः ) दानशील, करप्रद, वा आत्मसमर्पक ( सुतवतः ) ऐश्वर्य युक्त, समृद्ध प्रजाजन के ( दुरोणे ) गृह में ( सोमपेयाय ) ऐश्वर्य के पान अर्थात् उत्तम रीति से प्राप्ति और सेवन के लिये ( इह ) यहां ( यज्ञम् ) परस्पर प्रेमभाव और संगति और परस्पर लेने देने के व्यवहार को (उप यातम्) प्राप्त हों। और ज्ञान, प्रेम और ऐश्वर्य की वृद्धि करें। ( २ ) इसी प्रकार उपदेशक, अध्यापक जन (सुतवतः) दानशील पुत्रवान् गृहस्थों के घर में ( सोमपेयाय ) ज्ञान का पान कर। और ( सोमपेयाय ) उत्तम शिष्य को प्राप्त कर उसको ब्रह्मचर्यादि व्रत पालन कराने के लिये आवें।

**अग्ने अपां समिध्यसे दुरोणे नित्यः सूनो सहसो जातवेदः।**
**सधस्थानि महयमान ऊती ॥ ५ ॥ २५ ॥**

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन्! हे तेजस्विन्! हे ( सहसः सूनो ) बलवान् पुरुष के पुत्र के समान! एवं बल के उत्पादक, सैन्य के प्रेरक! नेतः! हे ( जातवेदः ) प्रज्ञान और ऐश्वर्य के स्वामिन्! ( अपां दुरोणे )

तू जलों के बीच सूर्य या विद्युत् के समान ( अपां दुरोणे ) आप्त प्रजाजनों के गृह वा राष्ट्र के बीच में ( नित्यः ) सदा वर्त्तमान रहकर भी ( सधस्थानि ) एकत्र होकर रहने योग्य गृहों और लोकों को अपनी (ऊती) रक्षा और ज्ञान से ( महयमानः ) अलंकृत करता हुआ ( समिध्यसे ) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता है। सूर्य, विद्युत् दोनों पृथिवी के स्थानों को (ऊती) अन्न से समृद्ध करते हैं। विद्वान् ज्ञान से, वीर पुरुष रक्षा से। ( २ ) अध्यात्म में—( अपां दुरोणे ) प्राणों के गृह इस देह में यह ( नित्यः ) अविनाशी आत्मा नाना देह के स्थानों को, केन्द्रों को विशेष रूप से अधिष्ठित कर विराजता है इसी प्रकार नित्य परमेश्वर प्रकृति के परमाणुओं वा लोकों के बीच में। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

## [ २६ ]

विश्वामित्रः। ७ आत्मा ऋषिः ॥ १—३ वैश्वानरः। ४—६ मरुतः। ७, ८ अग्निरात्मा वा। ९ विश्वामित्रोपाध्यायो देवता ॥ छन्दः—१—६ जगती। ७—९ त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

**वैश्वानरं मनसाग्निं निचाय्यां हविष्मन्तो अनुषत्यं स्वर्विदम् ।**
**सुदानुं देवं रथिरं वसूयवो गीर्भी रण्वं कुशिकासो हवामहे ॥१॥**

भा०—जिस प्रकार ( देवं वैश्वानरं अग्निं हविष्मन्तः गीर्भिः हवन्ते ) प्रकाशमान, सबके हितकारी अग्नि को यज्ञ चरु वाले ऋत्विग् लोग प्राप्त कर उसे आहुति देते हैं उसी प्रकार हम ( कुशिकासः ) सत्य का उपदेश करने हारे विद्वान् जन और शत्रु को ललकारने वाले वीरजन ( वसूयवः ) आचार्य के अधीन निवास करने वाले ब्रह्मचारी होने की इच्छा करते हुए वा ऐश्वर्यों की कामना करते हुए ( वैश्वानरं ) सबको उत्तम मार्ग में चलाने वाले, (अनुसत्यम् ) सदा सत्य व्यवहार का अनुसरण करने वाले ( स्वर्विदम् ) स्वयं सुख, प्रकाश और प्रताप को प्राप्त करने और अन्यों को सुख प्राप्त कराने

हारे, ( सुदानुं ) उत्तम दानशील, शत्रुभञ्जक, ( देवं ) तेजस्वी, ज्ञान-प्रकाशक, विजिगीषु ( रथिरं ) रमणीय ज्ञानवान् वा रथादि के स्वामी, ( रण्वं ) उपदेष्टा और रण में प्रयाण कुशल, ( अग्निम् ) अग्रणी, ज्ञानवान् पुरुष एवं नायक पुरुष को ( मनसा ) चित्त से और उत्तम यन्त्र-बल से ( निचाय्य ) पूजित कर वा अलंकृत करके ( हविष्मन्तः ) बहुत से देने योग्य उपहार पदार्थों को लिये हुए, ( गीर्भिः ) वाणियों द्वारा ( हवामहे ) उसे प्राप्त हों और अपना गुरु व नायक स्वीकार करें। ( २ ) परमेश्वर भी रमणीयस्वरूप वा रसस्वरूप होने से 'रथिर' है। हम प्रेम भक्ति से युक्त होकर वाणियों द्वारा उसकी स्तुति करें।

**तं शुभ्रमग्निमवसे हवामहे वैश्वानरं मातरिश्वानमुक्थ्यम्।**
**बृहस्पतिं मनुषो देवतातये विप्रं श्रोतारमतिथिं रघुष्यदम् ॥२॥**

भा०—हम लोग जिस प्रकार ( अवसे ) गति उत्पन्न करने और पदार्थों के सत्यासत्य रूप का ज्ञान करने और कान्ति या प्रकाश के लिये ( शुभ्रम् ) खूब चमकने वाले ( अग्निम् हवामहे ) अग्नि को उपयोग में लेते हैं उसी प्रकार हम लोग ( अवसे ) रक्षा, ज्ञान और कान्ति आदि कमनीय गुणों के लिये ( शुभ्रम् ) तेजस्वी, शुद्ध कर्मों वाले, ( वैश्वानरं ) सब नायकों के नायक (मातरिश्वानम्) वायु के आश्रय जीवित अग्नि के समान मातृस्वरूप मातृभूमि के निमित्त प्राण धारण करने वाले और माता अर्थात् उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों के आश्रय एवं उनके निमित्त रहने वाले, (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय ( बृहस्पतिम् ) बड़े वेदज्ञान वाणी और बड़े राष्ट्र के पालक ( विप्रं ) विविध ऐश्वर्यों से राष्ट्र को पूरने वाले, और शिष्यों को विविध ज्ञानों से पूर्ण करने वाले, ( श्रोतारम् ) श्रवणशील, बहुश्रुत, एवं सबके सुख दुःख निवेदनों को यथावत् सुनने वाले, ( अतिथिम् ) अतिथि के समान पूज्य, सर्वोपरि उत्तम आसन पर अध्यक्ष रूप से विराजने वाले ( रघुस्यदम् ) अतिशीघ्रगामी, तीव्रबुद्धि, ( अग्निम् ) तेजस्वी विद्वान् और

नायक को (मनुषः) हम मननशील पुरुष मिलकर (देवतातये) उत्तम प्रकाशों और गुणों को पाने और विद्वानों और वीरों के हित के लिये (हवामहे) प्राप्त करें। (२) परमेश्वर शुद्ध होने से 'शुभ्र' है। वह ज्ञानी के हृदय में व्यापक होने से 'मातरिश्वा' है। दया से सबकी सुनने से श्रोता, व्यापक होने से अतिथि, स्वल्पशक्ति जीवों और लोकों को भी वेग से चलाने वाला होने से स्वुस्यद है।

**अश्वो न क्रन्दञ्जनिभिः समिध्यते वैश्वानरः कुशिकेभिर्युगेयुगे। स नो अग्निः सुवीर्यं स्वश्व्यं दधातु रत्नममृतेषु जागृविः ॥ २ ॥**

भा०—(जनिभिः) स्वयं ज्ञान उत्पन्न करने में समर्थ (कुशिकेभिः) उत्तम उपदेष्टा लोगों द्वारा (अश्वः न) बलवान् अश्व के समान हृष्ट पुष्ट (वैश्वानरः) सब मनुष्यों का नायक, सबका सञ्चालक पुरुष भी (युगेयुगे) प्रति दिन और प्रति वर्ष (समिध्यते) ज्ञान, बल और तेज द्वारा प्रदीप्त और उत्तेजित उत्साहित किया जाय। (सः) वह (जागृविः) सदा जागरणशील, सावधान (अग्निः) अग्रणी, नायक वा विद्वान् (अमृतेषु) अमृत अर्थात् दीर्घजीवी गुरुओं के अधीन रहकर या (अमृतेषु) अविनश्वर ऐश्वर्यों के निमित्त (नः) हमारे लिये (सुवीर्यं) उत्तम वीर्य, बल से युक्त (सु-अश्व्यम्) उत्तम अश्व आदि सेनाङ्गों सहित (रत्नं) रमणीय धन (दधातु) रक्खे और प्रदान करे। (२) परमेश्वर स्तुतिशील जनों द्वारा प्रति दिन हृदय में प्रकाशित किया जावे। वह उत्तम बल और इन्द्रियों से युक्त, अमृतमय ज्ञानों और आत्माओं में रमणीय सुख प्रदान करे।

**प्र यन्तु वाजास्तविषीभिरग्नयः शुभे सम्मिश्लाः पृषतीरयुक्षत। बृहदुक्षो मरुतो विश्ववेदसः प्र वेपयन्ति पर्वताँ अदाभ्याः ॥४॥**

भा०—जिस प्रकार (वाजाः अग्नयः) वेग से गति करने वाली

विद्युतें ( तविषीभिः ) बलवान् वायुओं से ( संम्मिश्लाः ) मिलकर (शुभे) जल वृष्टि के निमित्त ( प्र यन्ति ) चलती हैं और ( पृषतीः ) सेचन करने वाली मेघमालाओं को ( अयुक्षत ) सञ्चालित करते हैं और जिस प्रकार ( अग्नयः ) आगे ले चलने वाले सारथि लोग ( तविषीभिः प्र यन्तु ) स्थूल बलवती घोड़ियों से आगे बढ़ें और उन ( पृषतीः ) दृढ़पार्श्व वाली अश्वाओं को ( शुभे ) उत्तम मार्ग में सञ्चालित करें उसी प्रकार ( अग्नयः ) अग्रणी नायक पुरुष ( वाजाः ) बलवान् वेगवान् होकर ( तविषीभिः ) बलवती सेनाओं के साथ ( प्र यन्तु ) युद्ध में आगे बढ़ें और ( शुभे ) शुभ कार्य के निमित्त ( सम्मिश्लाः ) एक साथ मिलकर ( पृषतीः ) शत्रु पर शस्त्रास्त्र वर्षण करने वाली सेनाओं को, दिव्य शक्तियों को अच्छी रीति से ( प्र अयुक्षत ) प्रयोग करें। जिस प्रकार ( मरुतः ) वायुगण ( बृहदुक्षः पर्वतान् ) बहुत २ जल वर्षाने वाले पर्वताकार मेघों को ( प्र वेपयन्ति ) कँपा देते हैं उसी प्रकार ( विश्ववेदसः ) समस्त बातों का ज्ञान कर पता लगाने वाले ( मरुतः ) वायुसमान वेगवान्, बलवान्, शत्रुओं को मारने वाले वीर सैनिक जन ( बृहदुक्षः ) बहुत से शस्त्रास्त्र बरसाने वाले होकर ( अदाभ्याः ) स्वयं परास्त न हो, अजेय होकर ( पर्वतान् ) राष्ट्रों और सैन्य दलों के पालक बड़े २ अचल योद्धा नायकों को ( प्र वेपयन्ति ) खूब कँपा देने में समर्थ हों। अध्यात्म में—समस्त ज्ञान-तन्तुओं से युक्त प्राणगण देह के पोरु २ से युक्त अंगों को सञ्चालित करते हैं। ( शुभे ) शुद्ध श्वेत जल के तुल्य वर्ण के रुधिर में मिले हुए ( अग्नयः ) अग्नि के समान रक्त वर्ण के कण ( तविषीभिः ) बलयुक्त प्राणों से मिलकर देह भर में गति करते हैं और वे मिलकर ( पृषतीभिः ) देह भर में रस सेचन करने वाली नाड़ियों से ( प्र अयुक्षत ) प्रेरित होते हैं।

अ॒ग्नि॒श्रियो॑ म॒रुतो॑ वि॒श्वकृ॑ष्टय॒ आ त्वे॒षमु॒ग्रमव॑ ईमहे व॒यम्।
ते स्वा॒निनो॑ रु॒द्रिया॑ व॒र्षनि॑र्णिजः सिं॒हा न हे॒षक्र॑तवः सु॒दान॑वः॥५॥२६

भा०—जिस प्रकार ( मरुतः ) वायुगण ( अग्निश्रियः ) विद्युत् की विशेष शोभा को धारण करने वाले ( विश्वकृष्टयः ) सब प्रकार की कृषियों को उत्पन्न करने के कारण होते हैं उसी प्रकार ( मरुतः ) विद्वान् और वायु के समान शत्रु-उच्छेदक वीर पुरुष भी ( अग्निश्रियः ) अग्नि के समान तीक्ष्ण प्रतापी होने से उसी के समान विशेष तेजस्वी रूप को धारण करने हारे और ( विश्व-कृष्टयः ) समस्त विश्व को सद्गुणों से अपनी ओर आकर्षण करने हारे हों। ( वयम् ) हम लोग उनके ( उग्रं ) उग्र, शत्रु के लिये भयदायक, तीक्ष्ण ( त्वेषम् ) तेज और ( अवः ) रक्षण का ( ईमहे ) याचना करते हैं। ( ते ) वे ( स्वानिनः ) मेघ के समान गर्जना करने वाले ( रुद्रियाः ) दुष्टों को रुलाने वाले, सेनापति के अधीन रहने वाले ( वर्षनिर्णिजः ) जलवर्षी वायु गण के समान शस्त्रवर्षण द्वारा राष्ट्र के शोधक, ( सिंहाः न ) सिंहों के समान शूरवीर, ( हेषक्रतवः ) उत्तम हर्ष ध्वनियों और उत्तम प्रज्ञा वा कर्म वाले ( सुदानवः ) शुभ ऐश्वर्य देने और उत्तम रीति से रक्षा करने वाले हों। ( २ ) विद्वान् पुरुष अग्नि के समान तेजस्वी, सबके चित्तों के आकर्षक, उत्तम उपदेष्टा, वर्षों में बूढ़े, सिंहों के समान हर्षपूर्ण ध्वनि और ज्ञान वाले उत्तम ज्ञानप्रद हों। उनके तेज और रक्षा, ज्ञान की हम सब कामना करें। इति षड्विंशो वर्गः ॥

**व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिरग्नेर्भामं मरुतामोज ईमहे।**
**पृषदश्वासो अनवभ्रराधसो गन्तारो यज्ञं विदथेषु धीराः॥ ६ ॥**

भा०—हम लोग ( व्रातं-व्रातं ) प्रत्येक सैन्य दल में और ( गणं-गणं ) प्रत्येक गण अर्थात् कटक २ में ( सुशस्तिभिः ) उत्तम स्तुतियों सहित (अग्नेः) अग्रणी नायक पुरुष के ( भामं ) विशेष तेजों और ( मरुताम् ) वीर पुरुषों के (ओजः) पराक्रम की कामना करते हैं। वे (धीराः) धैर्यवान्, बुद्धिमान् पुरुष ( विदथेषु ) यज्ञों और संग्रामों के अवसरों पर ( पृषदश्वासः ) विशेष मृग के समान वेगगामी वा चित्र वर्ण

वा भरे कुक्षि वाले हृष्ट पुष्ट अश्व और ( अनवभ्रराधसः ) अक्षय धनैश्वर्य बल के स्वामी होकर भी ( यज्ञं ) परस्पर मैत्रीभाव को (गन्तारः) प्राप्त हों ।

**अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।**
**अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम ॥७॥**

भा०—जिस प्रकार ( जातवेदाः जन्मना अग्निः ) अपने स्वरूप को प्रकट करने वाला या प्रत्येक पदार्थ में व्यापक अग्नि उत्पन्न होकर ( अग्निः ) आगे २ रह कर सन्मार्ग से चलाने हारा होता है उसी प्रकार ( जातवेदाः ) ज्ञानी और ऐश्वर्यवान् मैं भी ( जन्मना ) स्वभाव से ही ( अग्निः ) प्रकाशमान अग्नि के समान अग्रणी, आगे सन्मार्ग का नायक ( अस्मि ) होऊं। ( मे ) मेरी आंख अग्नि के प्रकाश के समान मार्ग देखने वाली और ( घृतम् ) तेज से युक्त हो। ( मे आसन् ) मेरे मुख में ( अमृतम् ) अमृत, शुद्ध जल और अन्न हो। जिस प्रकार ( अर्कः ) सूर्य ( त्रिधातुः ) तीनों लोकों को धारण करने हारा होता है। और जिस प्रकार ( अर्कः त्रिधातुः ) अर्क अर्थात् अन्न रुधिर, मांस, अस्थि तीनों को धारण करता है और जिस प्रकार ( अर्कः त्रिधातुः ) मन्त्र वाणी, मन और काय तीनों के कर्मों को धारण करता है, उसी प्रकार मैं भी ( अर्कः ) अर्चना या आदर सत्कार योग्य होकर ( त्रिधातुः ) उत्तम, मध्यम, अधम तीनों प्रकार के जनों का धारक पोषक होऊं। ( रजसः विमानः ) जिस प्रकार अन्तरिक्ष का धारक विशेष रूप निर्माण करने वाला वायु वा लोक समूह का विशेष निर्माता है उसी प्रकार मैं भी (रजसः) प्रजा लोकों के बीच (विमानः) विशेष ज्ञान और मान-आदर से युक्त होऊं (घर्मः) घर्म अर्थात् घाम या सूर्य ( अजस्रः ) निन्तर एक सार सर्वत्र एक तेज से चमकता रहता है उसी प्रकार मैं भी ( घर्मः ) दीप्तियुक्त होकर ( अजस्रः ) कभी विनाश न होने वाला होकर रहूं। और (हविः)

अन्न के समान सब के ग्रहण करने योग्य स्तुत्य अन्न के समान तृप्ति-तुष्टिकारक ( नाम ) भी ( अस्मि ) होऊं।

**त्रिभिः प॒वित्रै॒रपु॑पो॒द्ध्य१॒॑र्कं हृ॒दा म॒तिं ज्योति॒रनु॑ प्रजा॒नन्।**
**वर्षि॑ष्ठं॒ रत्न॑मकृत स्व॒धाभि॒रादिद् द्यावा॑पृथि॒वी पर्य॑पश्यत् ॥८॥**

भा०—( त्रिभिः पवित्रैः अर्कं ) जिस प्रकार तीन प्रकार के पवित्र करने के साधन प्रकाश, वायु और छाज से अन्न को पवित्र किया जाता है उसी प्रकार विद्वान् मनुष्य ( अर्कं ) अर्चना वा ज्ञान करने योग्य अपने आत्मा को भी ( त्रिभिः ) तीन ( पवित्रैः ) पवित्र करने वाले साधनों, पवित्र आचरण, पवित्र वचन और पवित्र विचार वा मनन इनसे ( अपुपोत् हि ) अवश्य पवित्र करे। वह ( प्रजानन् ) उत्कृष्ट ज्ञान से युक्त होकर ( ज्योतिः अनु ) परम ज्योतिःस्वरूप अर्थात् प्रकाशस्वरूप आत्मा के अधीन रहने वाली ( मतिं ) मननशील बुद्धि या वाणी को या ( ज्योतिः अनु मतिम् ) ज्ञानप्रकाश के अनुकूल प्रज्ञा को भी ( हृदा ) अन्तःकरण, हृदय के सहित (अपुपोत् हि) पवित्र करले। (स्वधाभिः वर्षिष्ठं रत्नम् अकृत) जिस प्रकार जलों से ही प्रचुर वृष्टि से युक्त रमण करने योग्य रमणीय दृश्य हो जाता है और जिस प्रकार ( स्वधाभिः वर्षिष्ठं रत्नम् अकृत ) अन्नों द्वारा वृद्धियुक्त चिरकालिक रमणणीय जीवन का प्रचुर सुखदायक बल वीर्य उत्पन्न किया जाता है। उसी प्रकार ( स्वधाभिः ) आत्मा की धारण-पोषणकारिणी शक्तियों द्वारा ( रत्नम् ) उस अतिशय रमण करने योग्य ( वर्षिष्ठम् ) चिरकाल में विद्यमान पुराण पुरुष ब्रह्म तत्त्व को (अकृत) साधे, ( आत् इत् ) उसके अनन्तर ही वह (द्यावा पृथिवी) सूर्य पृथिवी के समान परस्पर सम्बद्ध, परमेश्वर और जीव, प्रकाशमान् और प्रकाश रहित, ज्ञानी अज्ञानी और उपकारक और उपकार्य ब्रह्म और प्रकृति इनको ( परि अपश्यत् ) सब प्रकार से पृथक् २ साक्षात् करता है। ( २ ) तीन पवनों से, अन्न को प्रकाश से, हृदय को ज्ञान से

अपने धारक बलों से प्रचुर ऐश्वर्य को पवित्र करे और फिर हृदय से, ज्ञान से आकाश और पृथिवी के सब पदार्थों का ज्ञान करे।

**शतधा॑रमुत्सम॑क्षीयमाणं विपश्चितं॑ पि॒तरं॒ वक्त्वा॑नाम्।**
**मे॒ळिं मद॑न्तं पि॒त्रोरु॒पस्थे॒ तं रो॑दसी पिपृतं सत्य॒वाच॑म् ॥९॥२७॥**

भा०—हे ( रोदसी ) सूर्य और पृथिवी के समान ज्ञानप्रकाश और अन्न के देने वाले माता पिता जनो! हे स्त्री पुरुषो! आप लोग ( शतधारं ) सैकड़ों धाराओं से बरसने वाले मेघ के समान, ( शतधारं ) सैकड़ों वेदवाणियों से सम्पन्न, ( अक्षीयमाणं उत्सम् ) कभी क्षीण न होने वाले कूप या स्रोत के समान अक्षय ज्ञान से युक्त, ( विपश्चितम् ) विद्वान् ( वक्त्वानां पितरम् ) अध्यापन वा प्रवचन करने योग्य उपदेश वाक्यों के पालक एवं पिता के समान ही उपदेश करने योग्य शिष्यों के पालक ( मेळिं मदन्तं ) ज्ञान वाणी को उपदेश करने वाले और (पित्रोः उपस्थे ) माता और पिता के अति समीप पद पर स्थित ( सत्यवाचं ) सत्य वेदवाणी के ज्ञाता पुरुष को (पिपृतं) सब प्रकार से पालन और पूर्ण करो। दान, मान और सत्कारों से पुष्ट करो। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

## [ २७ ]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ १ ऋतवोऽग्निर्वा । २—१५ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ७, १०, १४, १५ निचृद्गायत्री । २, ३, ६, ११, १२ गायत्री । ४, ५, १३ विराड् गायत्री पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

**प्र वो॒ वाजा॑ अ॒भिद्य॑वो ह॒विष्म॑न्तो घृ॒ताच्या॑।**
**दे॒वाञ्जि॑गाति सुम्न॒युः ॥ १ ॥**

भा०—हे ज्ञानवान् विद्वान् पुरुषो! हे सभासदो! सदस्यो! ( वः ) तुम लोगों के ( वाजाः ) वेगवान् रथ आदि पदार्थ ( अभिद्यवः ) सब

प्रकार से चमकने वाले और ( घृताच्या ) दीप्ति से युक्त रात्रि से युक्त ( हविष्मन्तः ) ग्राह्य प्रकाश वाले, दिनों के समान वा कान्ति और स्नेह से सम्पन्न होकर गतिशील शक्ति से ( हविष्मन्तः ) ग्राह्य गुणों, वेगादि से पूर्ण हों। और ( सुम्नयुः ) सुख की अभिलाषा करने वाला पुरुष उन द्वारा ( देवान् ) दानशील, व्यवहारज्ञ, विद्वान् और प्रेम से चाहने वालों को ( जिगाति ) प्राप्त हो। ( २ ) हे मनुष्यो ( वाजाः ) ज्ञानी लोग (हविष्मन्तः ) उत्तम अन्न और शिष्यों को उपदेश देने योग्य शास्त्रज्ञान सहित होकर ( घृताच्या ) दीप्तियुक्त वाणी से विराजते हैं, ( सुम्नयुः ) सुखाभिलाषी पुरुष उन ज्ञानदाता पुरुषों को प्राप्त हों।

ईळे अ॒ग्निं वि॒प॒श्चितं॒ गि॒रा य॒ज्ञस्य॒ साध॑नम्।
श्रु॒ष्टी॒वानं॑ धि॒ताव॑नम् ॥ २ ॥

भा०—( गिरा ) वाणी द्वारा ही ( यज्ञस्य ) ज्ञान प्रदान करने और मैत्री और सत्संग के ( साधनम् ) करने वाले ( विपश्चितम् ) उत्तम कर्मों को स्वयं जानने और अन्यों को जनाने वाले विद्वान् ( श्रुष्टीवानम् ) शीघ्र उद्देश्य तक पहुंचने और पहुंचाने में समर्थ व गुरूपदेशों के श्रवण करने वाले श्रुतिविज्ञ, बहुश्रुत ( धितावानम् ) सेवन और धारने योग्य ज्ञानादि पदार्थों को धारण करने वाले ( अग्निम् ) सर्वाग्रगण्य विद्वान् पुरुष का मैं ( इळे ) स्तुति करूं, उसको हृदय से चाहूं। ( २ ) परमेश्वर वेदवाणी से यज्ञ अर्थात् ज्ञान देने वाला सब ऐश्वर्यों का धारक, सर्वशक्तिमान् है, उसकी मैं स्तुति करूं।

अग्ने॑ श॒केम॑ ते व॒यं यमं॑ दे॒वस्य॑ वा॒जिनः॑।
अति॒ द्वेषां॑सि तरेम ॥ ३ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) विद्वन्! हे अग्रणी! हे प्रभो! ( देवस्य ) ज्ञानद्रष्टा, दाता और विजयेच्छुक ( वाजिनः ) बलवान् और ज्ञानवान्, ऐश्वर्यवान् ( ते ) तेरे अधीन रहकर हम ( यमं ) नियम व्यवस्था,

ब्रह्मचर्य पालन और राष्ट्र और देह का संयम करने में (शकेम) समर्थ हो सकें। और (द्वेषांसि) परस्पर के द्वेषों और द्वेष करने वाले शत्रुओं को (अति तरेम) विजय करें।

समिध्यमानो अध्वरे३ग्निः पावक ईड्यः।
शोचिष्केशस्तमीमहे ॥ ४ ॥

भा०—(अध्वरे समिध्यमानः) यज्ञ में प्रज्वलित होते हुए (अग्निः) अग्नि के समान (अध्वरे) हिंसारहित कार्य, प्रजापालन, अध्यापन आदि कार्य में (समिध्यमानः) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता हुआ (अग्निः) ज्ञानवान् पुरुष (पावकः) अग्नि के समान ही सबके हृदयों को पवित्र करता हुआ (ईड्यः) स्तुति योग्य और सबके चाहने योग्य होता है। वही (शोचिष्केशः) दीप्तियुक्त किरणों को केशों के समान धारण करने वाले अग्नि के समान तेजोमय किरणों से युक्त तेजस्वी होता है। (तम्) उससे ही हम (ईमहे) ज्ञानोपदेश और ऐश्वर्य की याचना करें। (२) परमेश्वर (अध्वरे) अहिंसनीय, अमृत, अविनाशी पद पर विराजता हुआ परमपावन, परमस्तुत्य तेजोमय है उसी की प्रार्थनोपासना करते हैं।

पृथुपाजा अमर्त्यो घृतनिर्णिक्स्वाहुतः।
अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट् ॥ ५ ॥ २८ ॥

भा०—(घृतनिर्णिक् स्वाहुतः अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट्) उत्तम रीति से आहुति पाकर दीप्तस्वरूप अग्नि जिस प्रकार यज्ञ के चरु को ग्रहण करता है उसी प्रकार (पृथुपाजाः) विस्तृत ज्ञान और बलशाली, (अमर्त्यः) साधारण मनुष्यों से विशेष (घृतनिर्णिक्) स्नेहमयस्वरूप, (सु आहुतः) उत्तम दान मानादि से पुरुस्कृत होकर (अग्निः) ज्ञानी विद्वान् और तेजस्वी पुरुष (यज्ञस्य) परस्पर के सत्संग, मैत्रीभाव और दान आदि के योग्य, (हव्यवाट्) ग्राह्य पदार्थों और गुणों को

धारण करने में समर्थ होता है। (२) परमेश्वर महान् शक्तिशाली, अमृत, दीप्तिमय, उत्तम पूजा द्वारा जानने योग्य ज्ञानमय, पूजादि सत्कार के द्वारा स्तुतियों को स्वीकार करता है। इति अष्टाविंशो वर्गः ॥

तं सुबाधो यतस्रुच इत्था धिया यज्ञवन्तः ।
आ चक्रुरग्निमूतये ॥ ६ ॥

भा०—( सबाधः ) दुर्व्यसनों और आक्रमणकारी भीतरी और बाहरी शत्रुओं को बाधा देने और पीड़ित करने में समर्थ (यतस्रुचः) यज्ञ चमसों को हाथ में थामने वाले याज्ञिकों के समान अपने उत्तम साधनों, इन्द्रियों और अधीन जनों को नियम में रखने वाले। ( यज्ञवन्तः ) यज्ञ, दान, सत्संग, परस्पर मैत्री, व्यवस्था के स्वामी पुरुष ( ऊतये ) रक्षा और ज्ञान प्राप्त करने के लिये ( अग्निम् ) विद्वान्, अग्रणी पुरुष को ( इत्था धिया ) इस २ प्रकार की सत्य बुद्धि और कर्म द्वारा ( आचक्रुः ) अध्यक्ष रूप से नियत करें। ( २ ) उपासनाशील निर्व्यसनी, जितेन्द्रियजन रक्षार्थ ही परमेश्वर को सत्य साक्षात्कार करने वाली मति और योग क्रिया द्वारा ( आचक्रुः ) साक्षात् करते हैं।

होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया ।
विदथानि प्रचोदयन् ॥ ७ ॥

भा०—( होता ) दानशील ( देवः ) विजिगीषु राजा, नायक ( विदथानि ) प्राप्त करने योग्य ऐश्वर्यों को ( प्रचोदयन् ) उत्तम रीति से देता हुआ ( मायया ) अपने बुद्धि और आज्ञा के बल से ( पुरस्तात् एति ) सबके आगे चलता है। ( २ ) ( देवः होता ) विद्वान् ज्ञान प्रकाशक ज्ञानदाता गुरु ( विदथानि प्रचोदयन् ) ज्ञानों का उपदेश करता हुआ ( मायया ) बुद्धि के बल से आगे चलता है और पीछे २ शिष्य उसका अनुगमन करते हैं। ( ३ ) परमेश्वर ( विदथानि प्रचोदयन् ) उत्तम ज्ञानों को प्रेरणा करता हुआ ( मायया ) जीव की निजी बुद्धि

शक्ति से ही ( पुरस्तात् एति ) उसके आगे साक्षात् ज्ञान का विषय होता है। वह ( देवः ) सब सुखों का दाता प्रकाशस्वरूप है।

वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्रणीयते।
विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥ ८ ॥

भा०—( यज्ञस्य साधनः वाजी यथा वाजेषु प्रणीयते ) संग्राम करने का साधन और संग्राम का विजय करने वाला जिस प्रकार अश्व और अश्व नाम सेनाङ्ग संग्रामों में आगे २ बढ़ाया जाता है उसी प्रकार ( अध्वरेषु ) हिंसादि दोषों से रहित ( वाजेषु ) ज्ञानों और बलों के कार्यों में ( यज्ञस्य ) परस्पर सत्संग में भी भाव और विद्यादि दान की साधना करने वाला, उत्तम रीति से निभाने वाला ( विप्रः ) विविध विद्याओं से पूर्ण करने वाला पुरुष ही ( अधीयते ) प्रधान पद पर स्थापित किया जाता और ( प्रणीयते ) आगे, अग्रासन पर सब कामों में आगे किया जाता है। ( २ ) इसी प्रकार परमेश्वर सब ऐश्वर्यों के प्राप्त्यर्थ सब यज्ञों में सबसे प्रथम स्तुति किया जाता है।

धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमादधे।
दक्षस्य पितरं तना ॥ ९ ॥

भा०—( वरेण्यः ) वरण करने योग्य, अतिश्रेष्ठ, गुरु जन ( तना धिया ) अपनी विस्तृत श्रेष्ठ बुद्धि और ज्ञान आधान करने वाली शिक्षा से (भूतानां) सभी प्राणियों की ( गर्भम् ) गर्भ के समान रक्षा करने वाले और ( दक्षस्य ) चतुर विद्यार्थी जन के ( पितरं ) पिता के तुल्य पालन करने वाले, ज्ञान, सद्गुण स्थापनादि ग्रहणयोग्य शिक्षण ( आदधे ) प्रदान करे। और ( चक्रे ) तदनुसार आचरण करे। ( २ ) ( वरेण्यः ) सूर्य ( दक्षस्य = क्षदस्य तना ) अन्न को विस्तृत करने वाली भूमि में ( भूतानां ) उत्पन्न होने योग्य प्राणियों के ( गर्भम् ) रक्षक, उत्पादक

और पालक अग्नि को धारण सामर्थ्य से उत्पन्न करता और अन्तरिक्ष को जल से गर्भित करता है।

नि त्वा॑ दधे॒ वरे॑ण्यं॒ दक्ष॒स्येळा स॑हस्कृत।
अग्ने॑ सुदी॒तिमु॒शिज॑म् ॥ १० ॥ २९ ॥

भा०—हे ( सहस्कृत ) बल के द्वारा उत्पन्न अग्नि के समान ( सहःकृत ) शत्रु पराजयकारी बल से सम्पन्न, एवं प्रसिद्ध राजन्! ( अग्ने ) अग्रणी तेजस्विन्! विद्वन्! एवं नायक! ( दक्षस्य इडा ) दक्ष अर्थात् विद्योपार्जन और धनोपार्जन, सेनासञ्चालन में चतुर, एवं शत्रुपक्ष को भस्म करने वाले पुरुष की ( इडा ) वाणी, भूमिवासिनी प्रजा, और सर्वोपरि इच्छा ( वरेण्यम् ) वरण करने योग्य ( सुदीतिम् ) उत्तम दीप्ति से युक्त, ( उशिजम् ) शिष्यों को हृदय से चाहने वाले, तेजस्वी ( त्वा ) तुझको ( निदधे ) स्थापित करूं। ( २ ) पापदहन करने में समर्थ पुरुष दक्ष है। उसकी स्वाभाविक मानसी प्रवृत्ति मनोभूमि इला है वह उस परम वरणीय तेजोमय, कान्तिमय सर्वप्रिय को भीतर धारण करे। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

अ॒ग्निं य॒न्तुर॑म॒प्तुर॑मृ॒तस्य॒ योगे॑ व॒नुषः॑।
विप्रा॒ वाजैः॒ समि॑न्धते ॥ ११ ॥

भा०—( विप्राः ) विविध विद्याओं से पूर्ण शिल्पीजन जिस प्रकार ( वाजैः ) नाना वेगवान् साधनों और चलने वाले चक्र आदि से ( यन्तुरम् ) सबको नियम में रखने वाले ( अप्तुरम् ) जलों को शीघ्रता से चलाने या प्रेरित करने वाले अग्नि को ( ऋतस्य योगे ) जल के सहयोग में ( सम् इन्धते ) अच्छी प्रकार प्रदीप्त करते हैं और यन्त्रादि चलाते हैं उसी प्रकार ( वनुषः ) नाना ऐश्वर्यों की अभिलाषा करने वाले ( विप्राः ) विद्वान् जन ( ऋतस्य योगे ) धनैश्वर्य को प्राप्त करने के लिये ( यन्तुरम् ) उत्तम नियन्ता ( अप्तुरम् ) आप्त प्रजाजनों को सन्मार्ग में चलाने वाले

( अग्निम् ) अग्रणी नायक विद्वान् को ( वाजैः ) नाना ऐश्वर्यों से प्रदीप्त करते, अधिक तेजस्वी और उग्र, बलवान् बनाते हैं ।

ऊर्जो नपातमध्वरे दीदिवांसमुप द्यवि ।
अग्निमीळे कविक्रतुम् ॥ १२ ॥

भा०—( ऊर्जः ) बल, पराक्रम और अन्न-समृद्धि से ( नपातम् ) कभी प्रजा को च्युत न होने देने वाले, प्रत्युत बल-पराक्रमशील सैन्य को नियम प्रबन्ध में अच्छी प्रकार बांधनेवाले (अध्वरे) हिंसारहित, शत्रुओं की सेना को नाश करने योग्य दृष्ट राज्यादि कार्यों में ( उप-द्यवि ) आकाश या अन्तरिक्ष में सूर्य या विद्युत् के समान राजसभा और उत्तम कोटि की जनसभा में ( दीदिवांसम् ) प्रकाशित होने वाले ( कवि-क्रतुम् ) क्रान्तदर्शी विद्वानों की सी प्रज्ञा और कर्म से युक्त, ( अग्निम् ) ज्ञानी, अग्रणी, तेजस्वी विद्वान् को मैं ( ईडे ) स्तुति करूं, उसके गुणानुवाद करूं, उससे सत्संग, प्रार्थनादि करूं, उसका आदर सत्कार करूं। अथवा—( उपद्यवि ) ज्ञानप्रकाश में चमकने वाले वा तृतीयाश्रम वानप्रस्थ में विद्यमान विद्वान् का मैं आदर सत्संगादि करूं ।

ईळेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः ।
समग्निरिध्यते वृषा ॥ १३ ॥

भा०—जिस प्रकार ( अग्निः ) आग ( तमांसि तिरः समिध्यते ) अन्धकारों का नाश करके स्वयं प्रकाशित होता है उसी प्रकार ( वृषा ) बलवान् और राज्य प्रबन्ध करने में चतुर राजा और व्रत-बन्ध करने में चतुर विद्वान् ( ईडेन्यः ) सबके स्तुति करने योग्य, ( नमस्यः ) सबके द्वारा नमस्कार करने योग्य, ( दर्शतः ) सबसे दर्शन करने योग्य हो और वह ( तमांसि तिरः ) सब प्रकार के शोक, दुःखों और शत्रुरूप तिमिरों और अज्ञानान्धाकारों को दूर करता हुआ ( सम् इध्यते ) अच्छी प्रकार ज्ञान और तेज से प्रकाशित होता है । ( २ ) परमेश्वर स्तुत्य,

नमस्य, सबका द्रष्टा है वह हृदय से अज्ञानों को दूर करता हृदय में सुखानन्दों की वर्षा करता हुआ हृदय में प्रकाश करे।

वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः।
तं हविष्मन्त ईळते ॥ १४ ॥

भा०—( देववाहनः अश्वः न ) जिस प्रकार विजय की कामना करने वाले राजा को अपने ऊपर रखने वाला अश्व वा अश्वसैन्य ( वृषद ) बलवान् एवं शत्रु पर शस्त्रास्त्र की वर्षा करता हुआ (सम् इध्यते) अच्छी प्रकार उत्तेजित होता है। उसी प्रकार ( देववाहनः ) वीर विजयी सैनिकों को अपने साथ युद्ध में ले जाने हारा, ( अग्निः ) अग्रणी नायक ( वृषः ) शस्त्रवर्षी, प्रजा पर सुखों की वृद्धि करने वाला वा शत्रुओं का दमन और सैन्य, प्रजा आदि का प्रबन्ध करने हारा होकर ( सम् इध्यते ) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता है। ( तं ) उसको ( हविष्मन्तः ) बहुत से अन्न धनादि के स्वामी प्रजाजन (ईडते) स्तुति करते और चाहते हैं। (२) सब उत्तम गुणों, लोकों, विद्वानों को अपने में धारण करने से परमेश्वर 'देववाहन' है। व्यापक होने से 'अश्व' है। ( ३ ) प्राणों को धारण करने से देववाहन आत्मा है। भोक्ता होने से 'अश्व' है। ज्ञानवान् पुरुष उसकी स्तुति वर्णन करते हैं। देव अर्थात् द्योतक किरणों या प्रकाशों को धारने से अग्नि, सूर्य आदि भी 'देववाहन' हैं। जलादि सेचन करने से सूर्यादि 'वृषा' हैं।

वृषणं त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि।
अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥ १५ ॥ ३० ॥

भा०—हे ( वृषन् ) प्रजा पर सुखों और शत्रु पर बाणों की वृष्टि करने हारे बलवान् पुरुष! हे ( अग्ने ) अग्रणी! विद्वन्! हे सेना नायक! ( वयं ) हम भी ( वृषणः ) बलवान् होकर ( बृहत् ) बड़े भारी ( त्वा वृषणं ) तुझ बलवान् ( दीद्यतं ) प्रकाशमान तेजस्वी को ही ( समिधीमहि ) अच्छी प्रकार प्रकाशित करें। तेरी ख्याति उत्साह बढ़ावें॥ इति त्रिंशो वर्गः ॥

विश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ गायत्री । २, ६ निचृद्गायत्री । ३ स्वराडुष्णिक् । ४ त्रिष्टुप् । ५ निचृज्जगती ॥ षड्‌चं सूक्तम् ॥

अग्ने॑ जु॒षस्व॑ नो ह॒विः पु॑रो॒ळाशं॑ जातवेदः ।
प्रा॒तः॒सा॒वे धि॑यावसो ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे (जातवेदः) उत्तम विज्ञान को प्राप्त करने हारे! हे (धियावसो) ज्ञान और उत्तम कर्म या व्रताचरण का पालन करते हुए, अपने अधीन शिष्यों को बसाने वाले आचार्य एवं आचार्य के अधीन स्वयं बसने वाले शिष्य! (प्रातःसावे) प्रातःकल यज्ञ-काल में जिस प्रकार (नः पुरोडाशं हविः) हमारे पुरोडाश को अग्नि अग्निहोत्र काल में लेता है उसी प्रकार तू भी (प्रातःसावे) प्रभात के तुल्य जीवन के प्रथम काल, ब्रह्मचर्य आश्रम में (नः) हमारे (हविः) ग्रहण करने योग्य अन्न के समान ही उपदेशयोग्य (पुरोडाशम्) आगे सन्मुख बैठे शिष्य को देने योग्य ज्ञान को (जुषस्व) प्रेम से ग्रहण कर अन्यों को ग्रहण करा। (२) कर्म और बुद्धि से वसु धनैश्वर्य का दाता, गृहीता वा कर्मानुसार, प्रज्ञानुसार धन देने वाला स्वामी 'धिया वसु' है। वह आदरपूर्वक दिये गये अन्न, कर आदि को स्वीकार करे।

पु॒रो॒ळा अ॑ग्ने पच॒तस्तुभ्यं॑ वा घा॒ परि॑ष्कृतः ।
तं जु॑षस्व यविष्ठ्य ॥ २ ॥

भा०—हे (यविष्ठ्य) सब युवा जनों में सर्वश्रेष्ठ, सबसे अधिक बलवन्! कार्यकुशल! हे (अग्ने) ज्ञानवन्! जिस प्रकार (पुरोडाः पचतः परिष्कृतः) आगे रक्खा हुआ, परिपाक किया हुआ, सजा सजाया अन्न आगे रक्खा हो, उसको भोक्ता पुरुष प्रेम से सेवन करता है उसी प्रकार (पुरोडाः) समक्ष स्थित होकर अपने को आत्म-समर्पण करने हारा विद्यार्थी (पचतः)

अपने बुद्धि और देह एवं ब्रह्मचर्य द्वारा वीर्यादि को परिपक्क करता हुआ (वा घ) निश्चय से (परिष्कृतः) सब प्रकार से तैयार होकर विराजता है। (तं) उसको (जुषस्व) प्रेम से रख।

अग्ने वीहि पुरोळाशमाहुतं तिरोअह्न्यम्।
सहसः सूनुरस्यध्वरे हितः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् विद्वन्! हे वीर अग्रणी! जिस प्रकार अग्नि (आहुतं पुरोडाशम् तिरः-अह्न्यम्) आहुति किये सायंकाल या सूर्यास्त काल के पुरोडाश को लेता है उसी प्रकार तू भी (तिरः-अह्न्यम्) दिन व्यतीत हो जाने पर (आहुतम्) प्राप्त (पुरोडाशम्) आगे सत्कारपूर्वक दिये हुए अन्न को खा और ज्ञान को प्राप्त कर। इसी प्रकार हे आचार्य! तू तेरे समर्पित शिष्य को सायंकाल होने पर भी (पुरोडाशम्) अपने सदा समक्ष रख कर, (वीहि) रक्षाकर, क्योंकि तू (सहसः सूनुः) बल, वीर्य, ब्रह्मचर्य का उत्तम उत्पादक, प्रेरक उपदेष्टा (असि) है। तुझे ही (अध्वरे हितः) उसके नाश न होने देने के निमित्त स्थापित एवं नियुक्त किया है।

माध्यन्दिने सवने जातवेदः पुरोळाशमिह कवे जुषस्व।
अग्ने यह्वस्य तव भागधेयं न प्र मिनन्ति विदथेषु धीराः ॥ ४ ॥

भा०—हे (कवे) विद्वन्! हे (जातवेदः) विज्ञानवन्! तू (माध्यन्दिने सवने) मध्याह्न काल में होने वाले 'सवन' अर्थात् होमादि कर्म, बलिवैश्वदेव आदि के हो चुकने पर (इह) यहां गृह में पुरोडाश को अग्नि के समान ही (पुरोडाशम्) आदरपूर्वक आगे स्थापित अन्न आदि भोज्य द्रव्य को (जुषस्व) प्रेम से सेवन कर। हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! (धीराः) बुद्धिमान् पुरुष (विदथेषु) विज्ञानों, संग्रामों, यज्ञों और प्राप्त होने वाले ऐश्वर्यों में से भी (तव यह्वस्य) तुझ महान् एवं शत्रु पर प्रयाण करने वाले राजा के समान विद्या मार्ग या देवयान

ज्ञान मार्ग से जाने वाले का ( भागधेयं न प्रमिनन्ति ) भाग नष्ट नहीं करते। विद्वान् पुरुष निःसंकोच होकर मध्याह्न-सवन बलिवैश्व होम के अनन्तर अपना अंश प्रेमपूर्वक स्वीकार करें। ( २ ) आचार्य पक्ष में— 'पुरोडाश' अर्थात् पुरस्थित विद्यादि से अलंकृत शिष्य को माध्यंदिन सवन अर्थात् २४ से २६ वर्ष की आयु तक के काल में भी प्रेम से रक्खें। ज्ञानों के ग्रहण के अवसरों में अपने ( भागं ) प्रेम से सेवा करने वाले को धीर पुरुष विनष्ट नहीं करते। ( ३ ) राजा का मध्यंदिन सवन, सूर्य के समान अति प्रचण्ड ताप से शत्रु से संग्राम करने का अवसर है। उस समय भी वह उपायन, भेंट आदि प्रजा से ले, प्रजाएं राजा के उचित भाग का नाश नहीं करें।

**अग्ने॑ तृ॒तीये॒ सव॑ने॒ हि कानि॑षः पुरो॒ळाशं॑ सहसः सूनवाहु॑तम्।**
**अथा॑ दे॒वेष्व॑ध्व॒रं वि॑प॒न्यया॒ धा रत्न॑वन्तम॒मृते॑षु॒ जागृ॑विम् ॥५॥**

भा०—हे ( सहसः सूनो ) बल के प्रेरक, वीर्य के उत्पादक ! एवं बलवान् पुरुष के पुत्र एवं शिष्य ! ( अग्ने ) विद्वन् ! तेजस्विन् ! तू ( आहुतम् ) आहुति किये अन्न के समान ही आदरपूर्वक प्रदान किये हुए ( पुरोडाशं ) आगे रखे हुए अन्नादि पदार्थ को ( तृतीये सवने हि ) तृतीय, सर्वश्रेष्ठ सवन-काल में भी ( कानिषः ) भली प्रकार चाह। ( अथ ) और ( अमृतेषु ) दीर्घायु चिरंजीव ( देवेषु ) विद्या की कामना करने वाले शिष्य जनों में ( विपन्यया ) विविध प्रकार से उपदेश करने योग्य वाणी द्वारा ( रत्नवन्तम् ) उत्तम ज्ञान से युक्त ( जागृवि ) सदा जागरणशील, सदा सावधान शिष्य को ( अध्वरम् ) यज्ञ के समान कभी नष्ट न होने वाला वा अहिंसादि व्रतनिष्ठ बनाकर ( धाः ) धारण कर। उसको पाल, पुष्ट कर।

**अग्ने॑ वृधा॒न आहु॑तिं पुरो॒ळाशं॑ जातवेदः।**
**जु॒षस्व॑ ति॒रोअ॑ह्न्यम् ॥ ६ ॥ ३१ ॥**

भा०—हे ( जातवेदः ) ज्ञानवन् ! ऐश्वर्यवन् ! ( अग्ने ) विद्वन् ! अग्रणी नायक ! तू ( वृधानः ) स्वयं बढ़ता हुआ, ( आहुतिम् ) आहुति को अग्नि के समान ( पुरोडाशम् ) अन्न को और आगे समर्पित शिष्य को ( तिरःअन्ह्यम् ) अतीत दिनों में कुशल, योग्य शिष्य वा भृत्य को ( जुषस्व ) अपने समीप रख । इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

# [ २६ ]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ १—४, ६—१६ अग्निः । ५ ऋत्विजोग्निर्वा देवता ॥ छन्दः—१ निचृदनुष्टुप् । ४ विराडनुष्टुप् । १०, १२ भुरिगनुष्टुप् । २ भुरिक् पङ्क्तिः । १३ स्वराट् पङ्क्तिः । ३, ५, ६ त्रिष्टुप् । ७, ८, १६ निचृत् त्रिष्टुप् । ११, १४, १५ जगती ॥ षडर्चं सूक्तम् ॥

**अस्तीदमधिमन्थनमस्ति प्रजननं कृतम् ।**
**एतां विश्पत्नीमा भराग्निं मन्थाम पूर्वथा ॥ १ ॥**

भा०—अग्नि की उत्पत्ति के समान प्रजा और आत्मा के शरीर-धारक उत्पन्न होने का वर्णन । ( अधिमन्थनं प्रजननं विश्पत्नीम् ) जिस प्रकार अग्नि को मन्थन द्वारा उत्पन्न करने के लिये 'अधिमन्थन' अर्थात् मन्थन दण्ड के ऊपर रखने का काष्ठ होता है उसी प्रकार ( प्रजननं ) मन्थन दण्ड के नीचे का काष्ठ 'प्रजनन' अर्थात् अग्नि-उत्पादक काष्ठ ( कृतम् ) बनाया जाता है । इसी प्रकार परमेश्वर ने ही ( इदम् ) यह पुरुष-शरीर ( अधिमन्थनम् ) स्त्री के हृदय को मथन कर देने वाले भावों पर अधिकार करने वाला, उनका लक्ष्यरूप ( कृतम् अस्ति ) बनाया है । और ( इदम् ) यह विशेष अङ्ग भी परमेश्वर ने ही (प्रजनने) उत्तम सन्तान उत्पन्न करने का साधन ( कृतम् ) बनाया है । हे मनुष्य तू ( एताम् ) उस, दूर देश में विद्यमान अथवा ( आ-इताम् ) स्वयं इच्छा पूर्वक प्राप्त ( विश्पत्नीम् ) गर्भ में प्रविष्ट प्रजाओं को भलीभांति पालन

करने में समर्थ स्त्री को (आ भर) उत्तम रीति से प्राप्त कर और (आ भर) सब प्रकार से पालन पोषण कर। (पूर्वथा) हम लोग पूर्व पुरुषों के समान ही, जिस प्रकार (अग्निं मन्थाम) मथन, घर्षण द्वारा अग्नि या विद्युत् को उत्पन्न किया जाता है उसी प्रकार (अग्निम्) आगे भविष्य में प्राप्त होने योग्य और अगले वंश के चलाने वाले पुत्र को (मन्थाम) 'मथन' अर्थात् एक दूसरे के हृदयादि को प्रेमपूर्वक स्वीकार कर उत्तम सन्तान उत्पन्न करें। (२) अध्यात्म में 'प्राण' अधिमन्थन है, 'अपान' प्रजनन काष्ठवत् है। भीतर प्रविष्ट आत्मा या प्राणगण की पालिका या उनकी ग्राह्य विषयों तक जाने वाली बुद्धि या चेतना विश्पत्नी काष्ठ के समान है उनसे प्रकाशमय आत्मा का प्राणायामादि साधनों द्वारा प्रादुर्भाव करें (३) राष्ट्रपक्ष में—शत्रु मथनकारी सैन्य 'अधिमन्थन' है। स्वराष्ट्र उत्तम प्रजा को उत्पन्न करने वाला 'प्रजनन' है। प्रजाओं का पालन करने वाली नीति, या राजसभा विश्पत्नी है। इसके आश्रय पर सब राजकर्त्ताजन अपने अग्रणी को परस्पर विचार-संघर्षों के द्वारा प्राप्त करें।

**अ॒रण्यो॒र्निहि॑तो जा॒तवे॑दा॒ गर्भ॑ इव॒ सुधि॑तो ग॒र्भिणी॑षु।**
**दि॒वेदि॑व॒ ईड्यो॑ जागृ॒वद्भि॑र्ह॒विष्म॑द्भिर्मनु॒ष्ये॑भिर॒ग्निः॥ २॥**

भा०—(गर्भिणीषु) गर्भिणी स्त्रियों में (गर्भः इव) जिस प्रकार गर्भ (सुधितः) अच्छी प्रकार धारण किया होता है और जिस प्रकार (जातवेदाः) प्रत्येक उत्पन्न हुए पदार्थ में विद्यमान व्यापक अग्नि भी (अरण्योः) दो अरणी नामक काष्ठों में गुप्त रूप से स्थित रहता है। उसी प्रकार (जातवेदाः) प्रत्येक उत्पन्न वा प्रसिद्ध पदार्थों को जानने वाला विद्वान् (अरण्योः) अति अधिक उत्तम मार्ग में ले जाने वाले माता पिता, गुरुजनों के अधीन (निहितः) नियमपूर्वक रक्खा जाकर और (गर्भिणीषु) अपने भीतर उसको सब प्रकार से गर्भ के समान सुरक्षित रखने वाली माताओं के समान विद्याओं के बीच गर्भ के समान ही

( सुधितः ) सुखपूर्वक उपदिष्ट होकर ( दिवे दिवे ) दिन प्रतिदिन ( जागृवद्भिः ) जागरणशील, अति सावधान ( हविष्मद्भिः मनुष्येभिः ) अग्नि को जिस प्रकार हवि चरु वाले ऋत्विज् उपासते हैं उसी प्रकार ( हविष्मद्भिः ) ग्राह्य ज्ञानों वाले ( मनुष्येभिः ) मननशील पुरुषों द्वारा ( ईड्यः ) उपदेश करने योग्य है। ( २ ) इसी प्रकार यह आत्मा, जीव जो ( जातवेदाः ) प्रत्येक उत्पन्न प्राणी के भीतर विद्यमान है वह ( अरण्योः ) खूब सुप्रसन्न दम्पतियों के बीच विद्यमान रहता है। गर्भिणी माताओं द्वारा धारण किया जाता है। उत्पन्न हो जाने पर जागरणशील सावधान पुरुषों द्वारा गर्भ में रक्षा किया जाने योग्य होता है।

**उ॒त्ता॒नाया॒मव॑ भरा चिकि॒त्वान्त्स॒द्यः प्रवी॑ता॒ वृष॑णं जजान।**
**अ॒रु॒षस्तू॑पो॒ रुश॑दस्य॒ पाज॒ इळा॑यास्पु॒त्रो व॒युने॑ऽजनिष्ट ॥ ३ ॥**

भा०—( चिकित्वान् ) ज्ञानवान् होकर हे पुरुष ! ( उत्तानायाम् ) उत्तान लेटी भूमिरूप स्त्री में ( अव भर ) वीर्य आधान कर। वह ( प्रवीता ) उत्तम रीति से कान्तिमती पति से संगत होकर ( सद्यः ) शीघ्र ही ( वृषणं ) बलवान् हर्षदायक पुत्र को ( जजान ) उत्पन्न करे। ( अस्य पाजः ) इस पुरुष का वीर्य ही ( रुशत् ) दीप्तियुक्त और ( अरुषस्तुपः ) उज्वल स्तुति योग्य होकर ( इडायाः वयुने ) भूमिरूप माता के अन्तरंग भाग में ( पुत्रः ) पुत्र रूप में ( अजनिष्ट ) प्रकट होता है। ( २ ) उसी प्रकार ( उत्तानायाम् ) उतान विस्तृत भूमि में विद्वान् पुरुष बीजवपन करे, वह ( प्रवीता ) अच्छी प्रकार बोई जाकर ( वृषणं ) बलयुक्त अन्न को उत्पन्न करती है। उसका ( पाजः ) अन्न ( रुशत् ) उज्वल पीत वर्ण और ( अरुषस्तूपः ) उज्ज्वल वर्ण अन्न होकर भूमि के पुत्र के समान इसके ऊपर उत्पन्न होता है। ( ३ ) अग्नि के पक्ष में— नीचे अधरारणि होती है उसमें अग्नि विद्या का ज्ञाता मन्थन-दण्ड धरे। वह बलपूर्वक रगड़ी जाकर बलयुक्त अग्नि को उत्पन्न करती

है। (अस्य पाजः) इस अग्नि का तेज (रुशत्) उज्ज्वल देदीप्यमान होता है। और (अरुषस्तूपः) उज्ज्वल तेज समूह युक्त अग्नि (इडायाः पुत्रः) उत्तर वेदी के पुत्र के समान ही (वयुने) अरणि के छिद्र में उत्पन्न होता है। विद्वान् शिष्य के पक्ष में—हे विद्वान् गुरो! तू (चिकित्वान्) स्वयं ज्ञानवान् होकर शिष्य की 'उत्ताना' अर्थात् ज्ञानोन्मुख बुद्धि में ज्ञान स्थापित कर। वह (सद्यः) शीघ्र ही (प्रवीता) उत्तम ज्ञान से युक्त होकर शिष्य को बलवान् बना देती है। वह (अरुषस्तूपः) देदीप्यमान तेजःसंघ से युक्त वा रोषरहित एवं स्तुत्य होकर (इडायाः पुत्रः) वाणी के पुत्र के समान शिष्य आचार्य के (वयुने अजनिष्ट) विज्ञान में भी कुशल हो जाता है। राष्ट्रपक्ष में—उत्सुक प्रजा के बीच विद्वान् जन ऐश्वर्य प्राप्त करावे। वह तेजस्विनी होकर नायक को बलवान् बनाती है। वह तेजस्वी होकर मातृ-भूमि के पुत्र के समान (वयुने) अन्तरिक्ष में वायु के समान बलवान् एवं ज्ञान और कर्म में कुशल हो जाता है।

> इळायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि।
> जातवेदो नि धीमह्यग्ने हव्याय वोळ्हवे ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! तेजस्विन्! हे (जातवेदः) विद्वन्! हे ऐश्वर्यवन् (पृथिव्या नाभा अधि) पृथिवी अर्थात् अन्तरिक्ष के बीच में (हव्याय वोढवे) ग्रहण करने, चलाने के लिये जिस प्रकार महान् सूर्य है उसी प्रकार (इळायाः पदे) भूमि के सर्वोच्च शासक पद पर और (इळायाः पदे) वाणी के उत्तम ज्ञान के निमित्त (पृथिव्या नाभा अधि) पृथिवी राज्य के केन्द्र में और विस्तृत नगर भूमि के बीच (त्वा) तुझको (हव्याय) कर और ऐश्वर्य के रूप में स्वीकारने योग्य राज्य को (वोढवे) वहन करने के लिये (त्वा निधीमहि) तुझे स्थापित करें। इसी प्रकार हे (जातवेदः) विद्याओं में निष्णात! तुझको (हव्याय वोढवे) प्रदान योग्य

ज्ञान कोष के धारण करने और अन्यों तक पहुँचाने के लिये ( नि धीमहि ) नियुक्त करते हैं।

**मन्थता नरः कविमद्वयन्तं प्रचेतसममृतं सुप्रतीकम्।**
**यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरस्तादग्निं नरो जनयता सुशेवम् ॥५॥३२॥**

भा०—( यज्ञस्य पुरस्ताद् अग्निं यथा मन्थन्ति जनयन्ति च ) जिस प्रकार यज्ञ के पूर्व याज्ञिक लोग अग्नि का मथन करते और उसको प्रकट कर लेते हैं उसी प्रकार हे ( नरः ) श्रेष्ठ, नायक पुरुषो ! आप लोग ( कविम् ) क्रान्तदर्शी ( प्रचेतसम् ) उत्तम ज्ञान और चित्त वाले ( अमृतम् ) अविनाशी, दीर्घायु ( सुप्रतीकम् ) उत्तम विश्वासपात्र और शुभ सुन्दर रूपवान् ( अद्वयन्तं ) दो प्रकार का रूप न प्रकट करने वाले, भीतर बाहर, मन और वाणी और कर्म में एक समान आचरण करने हारे निष्कपट पुरुष को ( मन्थत ) मथ कर दूध में से मक्खन के समान और काठों में से अग्नि के समान सामान्य प्रजागण में से सर्वश्रेष्ठ सारवान् पुरुष को खूब वादविवाद, विचार के बाद यत्न से प्राप्त करो। हे ( नरः ) श्रेष्ठ पुरुषो ! आप उसको ही ( यज्ञस्य केतुम् ) परस्पर के सुसंगत जन-समाज की ध्वजा के समान आदरणीय और मान ज्ञान का बतलाने वाला ( प्रथमम् ) सबसे मुख्य ( सुशेवम् ) उत्तम सेवादि सुखों से युक्त ( पुरस्तात् ) सबके आगे २ ( अग्निम् ) अग्रणी मार्गदर्शक के समान ( जनयत ) बनाओ। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

**यदी मन्थन्ति बाहुभिर्वि रोचतेऽश्वो न वाज्यरुषो वनेष्वा।**
**चित्रो न यामन्नश्विनोरनिवृतः परि वृणक्त्यश्मनस्तृणा दहन् ॥६॥**

भा०—जिस प्रकार ( बाहुभिः मन्थन्ति ) बाहुओं से रासें पकड़ कर अश्व को जब मथते, मथने के समान झटके लगाते हैं और तब ( अश्वः न वाजी ) वेगवान् अश्व जिस प्रकार ( अरुषः ) मर्म स्थानों पर ताड़ित होकर (विरोचते) विविध रूप में उछलता, कूदता, भागता है इसी प्रकार जब अग्नि को

बाहुओं से मथते हैं तब भी ( अश्वः ) वह व्यापक अग्नि ( अरुषः ) सब प्रकार चमकता हुआ ( वाजी ) वेगवान् होकर ( वनेषु विरोचते ) किरणों और काष्ठों में विशेष रूप से चमकता है उसी प्रकार ( यदि ) जब ( बाहुभिः ) बाधित वा पीड़ित करने वाली सेनाओं से शत्रुओं को ( मन्थन्ति ) मथन या विनाश करते हैं तब ( वाजी ) संग्राम करने में कुशल पुरुष ( वनेषु ) प्राप्त करने योग्य ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के निमित्त वा सैन्य दलों के बीच ( अरुषः ) तेजस्वी या रोषरहित होकर ( विरोचते ) विशेष रूप से चमकता और सर्वप्रिय होता है। ( अश्विनोःयामन् चित्रः न ) दिन रात्रि के प्रहरों में जिस प्रकार सूर्य ( अनिवृतः ) अबाधित होकर ( तृणा दहन् अश्मनः परिवृणक्ति ) घासों को ताप से झुलसाता हुआ तीव्र ताप से ही मेघों को सर्वत्र छादित करता है और जिस प्रकार ( अश्विनोः चित्रः न ) अश्व के स्वामी रथी और सारथी दोनों का चित्र गति से जाने वाला अश्व ( यामन् ) मार्ग में ( अनिवृतः ) अबाधित होकर ( तृणा दहन् अश्मनः परिवृणक्ति ) तुच्छ घासों को खाता हुआ भी शत्रु के हथियारों को चीर कर निकल जाता है और जिस प्रकार अग्नि ( अश्विनोः यामन् चित्रः ) दिन रात्रि के कालों में अद्भुत रूप होकर (तृणा दहन् अश्मनः परिवृणक्ति ) तिनकों को जलाता हुआ पत्थरों को तड़का देता है उसी प्रकार वीर तेजस्वी पुरुष भी ( अश्विनोः ) अश्व सैन्य के स्वामी स्वपक्ष और परपक्ष, दोनों के ( यामन् ) संयमन या वश करने में ( चित्रः ) अद्भुत कुशल होकर ( अनिवृतः ) किसी से भी बाधित न होकर ( तृणा दहन् ) तृणकों के समान तुच्छ वा हिंसाकारी शत्रु सैन्यों को अग्नि के समान भस्म करता हुआ ( अश्मनः ) शस्त्रों आयुधों को (परि वृणक्ति) छिन्न भिन्न कर देता है।

जातो अग्नी रोचते चेकितानो वाजी विप्रः कविशस्तः सुदानुः।
यं देवास ईड्यं विश्वविदं हव्यवाहमदधुरध्वरेषु ॥ ७ ॥

भा०—( जातः अग्निः रोचते ) उत्पन्न होकर अग्नि जिस प्रकार प्रकाशित होता है और ( हव्यवाहम् अध्वरेषु अदधुः ) चरु को ग्रहण करने में समर्थ प्रज्वलित अग्नि को यज्ञों में आधान करते हैं। उसी प्रकार ( जातः) प्रकट होकर ( अग्निः ) अग्रणी, नायक विनयशील ज्ञानी पुरुष ( चेकितानः ) अन्यों को ज्ञान देता और स्वयं ज्ञानवान् होता हुआ ( वाजी ) ऐश्वर्य और ज्ञान से सम्पन्न होकर, ( विप्रः ) मेधावी ( कविशस्तः ) क्रान्तदर्शी, विद्वानों द्वारा शिक्षित और उत्तम प्रकाशित (सुदानुः) ज्ञान और धन का दाता होकर ( रोचते ) सब को प्रिय लगता है। ( देवासः ) विद्वान् और उसकी कामना करनेहारे मित्र राजा जन ( यं ) जिस ( विश्वविदं ) सर्वज्ञ, सर्ववेत्ता ( ईड्यं ) स्तुतियोग्य, पृथ्वी राज्य के योग्य ( हव्यवाहम् ) ऐश्वर्य के धारक श्रेष्ठ पुरुष को ( अध्वरेषु ) यज्ञों और संग्रामों तथा अन्य उत्तम कार्यों पर ( अदधुः ) अध्यक्ष रूप से स्थापित करते हैं।

**सीदं होतः स्व उ लोके चिकित्वान्त्सादया यज्ञं सुकृतस्य योनौ।**
**देवावीर्देवान्हविषा यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयो धाः ॥ ८ ॥**

भा०—हे ( होतः ) सुख और ज्ञान के देनेहारे विद्वन्! तू ( स्वे लोके उ ) अपने आत्मदर्शन में ही ( सीद ) प्रसन्न होकर विराज। तू अध्यात्म दर्शन में प्रतिष्ठा प्राप्त कर। तू ( चिकित्वान् ) ज्ञानवान् होकर ( यज्ञं ) अपने इष्ट आत्मा या स्वाध्यायादि यज्ञ वा आत्मसमर्पणादि कार्य को ( सुकृतस्य ) उत्तम धर्म कर्म के (योनौ) परम योनि अर्थात् कारण वा आश्रय परमेश्वर या शास्त्र में ( सादय ) स्थापित कर। तू ( देवावीः ) देव अर्थात् ज्ञानों को देने वाले इन्द्रिय गणों की रक्षा करता हुआ, जितेन्द्रिय होकर ( देवान् ) इन प्राणों को ( हविषा ) अन्न वा ज्ञानोपाय से ( यजासि ) वश कर। हे ( अग्ने ) ज्ञानवन्! तू ( यजमाने ) तेरे से संगति करने वाले, तुझसे प्रेम करने वाले, तुझे सब सुखों के देने वाले प्रभु

में ही तू (बृहत् वयः) अपना जीवन (धाः) प्रदान कर अथवा तू दान-शील मित्र, सत्संगी वा शिष्य में अपना बड़ा ज्ञान प्रदान कर। (२) राजा अपने ही राष्ट्र में विराजे, उत्तम धर्म के आश्रय पुरुषों में सत्संगादि करे। विद्वानों का रक्षक होकर अन्न को अन्नादि से सत्कार करे, आत्मसमर्पक करादि देने वाले प्रजाजन से बहुत बड़ा बल स्थापित करे।

**कृणोत धूमं वृषणं सखायोऽस्रेधन्त इतन वाजमच्छ।**
**अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवासो असहन्त दस्यून् ॥९॥**

भा०—(येन) जिस द्वारा (देवासः) विद्वन् वीर लोग (दस्यून्) प्रजा का नाश करने वाले दुष्ट शत्रुओं को (असहन्त) पराजित करते हैं (अयम्) यह (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी वीर पुरुष (पृतनाषाट्) शत्रु सेनाओं को पराजित करने हारा (सुवीरः) उत्तम वीर, वीर्यवान् हो। ऐसे ही (धूमं) शत्रुओं को कंपा देने वाले (वृषणं) बलवान् पुरुष को (कृणोत) अपने में उत्पन्न करो और हे (सखायः) मित्रगण! आप लोग (अस्रेधन्तः) नाश को न प्राप्त होते हुए सदा बलशाली बनो (वाजम्) संग्राम में (अच्छ इतन) अपने शत्रु पर जा चढ़ो। (२) हे विद्वान् शिष्य जनो! आप लोग ज्ञान के वर्षक अज्ञान के नाशक पुरुष को आश्रय करो। अपने वीर्य का नाश न करते हुए, ब्रह्मचारी रहकर (वाजं) ज्ञान को प्राप्त करो। यह ज्ञानी सब मनुष्यों में सहनशील, तपस्वी, (सु-वि-इरः) उत्तम विविध विद्याओं का उपदेष्टा है, जिसके द्वारा विद्या की कामनावाले जन काम क्रोधादि आत्म-नाशक भावों को पराजित करते हैं। आत्मा परमात्मा और योगी पक्षमें—वे असङ्ग, ज्ञान निर्धूत कल्पश होने से धूम, ज्ञान सुख वर्षक धर्ममेघ से 'वृषभ' हैं। शेष स्पष्ट है।

**अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः।**
**तं जानन्नग्न आ सीदाथा नो वर्धया गिरः ॥ १० ॥ ३३ ॥**

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! ( ते ) तेरा ( अयं ) यह ( योनिः ) घर ( ऋत्वियः ) सब ऋतुओं के अनुकूल सुखदायी हो । ( यतः ) जिसमें प्रकट होकर तू ( अरोचथाः ) सबका प्रेमभाजन हो । हे विद्वन् विनीत ! शिष्य ( अयं ) यह आचार्य या गुरुगृह ही ( ते ऋत्वियः योनिः ) तेरे लिये सत्यज्ञान प्राप्त करने योग्य वा प्राणों के बल वृद्धि योग्य ( योनिः ) निवासस्थान है ( यतः जातः ) जिसमें से तू विद्यासम्पन्न होकर ( अरोचथाः ) सूर्य के समान ज्ञानप्रकाश से चमक । हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! तू यहां ( तम् ) उस परमेश्वर को ( जानन् ) जानता हुआ ( आसीद ) यहां उत्तमासन पर आदर पूर्वक विराज ( अथ ) और ( नः ) हमारी ( गिरः ) उत्तम वेद-वाणियों की वृद्धि कर। ( २ ) आत्मारूप अग्नि के लिये यह देह ( ऋत्विया ) प्राणों के निवास योग्य उत्तम गृह है । आत्मा इसमें प्रकट होकर नाना रुचि प्रकट करता है । उस परम प्रभु को जानता हुआ वह उत्तम लोक में विराजे और हम स्तोत्रकों की स्तुतियों की वृद्धि करता है । ( ३ ) राजा के लिये यह सभाभवन ( ऋत्वियः ) ऋतु अर्थात् राजसदस्योचित घर है । जिसमें वह तेजस्वी होकर विराजता है । वह उस पद का विशेष रूप से ज्ञान करके आसन पर विराजे और हमारी उत्तम वाणियों या प्रार्थनाओं को अधिक समृद्ध करे । इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

**तनूनपा॑दुच्यते॒ गर्भ॑ आसु॒रो नरा॒शंसो॑ भवति॒ यद्वि॒जाय॑ते ।**
**मा॒त॒रिश्वा॒ यदमि॑मीत मा॒तरि॒ वात॑स्य॒ सर्गो॑ अभव॒त्सरी॑मणि ॥११॥**

भा०—यह अग्नि ( तनूनपात् ) जिसका व्यापक रूप कभी नाश को प्राप्त नहीं होता है इसीलिये 'तनूनपात्' कहा जाता है । अथवा वह सब प्राणियों के भीतर प्राण रूप से रहकर देहों को गिरने नहीं देता इसलिये 'तनूनपात्' कहाता है । वही ( गर्भः ) सबके भीतर गर्भ में बालक के समान प्रसुप्तवत् रहने से 'गर्भ' कहाता है । वही ( आसुरः ) असुर अर्थात् प्रकाश से रहित वायु के आश्रय उत्पन्न होने से 'आसुर' कहाता

है। वह ही (नराशंसः) बहुत से विद्वान् पुरुषों से शिष्यों के प्रति विद्युत् आदि रूप में उपदेश करने योग्य होने से 'नराशंस' हो जाता है। (यत्) जो (विजायते) इस प्रकार से नाना रूपों में प्रकट होता है। और (यत्) जो (मातरि) अपने ही निर्माण करने या उत्पन्न करने वाले में या आकाश में (अमिमीत) विद्युत् रूप से शब्द करता है इसलिये वह (मातरिश्वा) 'मातरिश्वा' कहाता है। और इस अग्नि के (सरीमणि) वेग से चलने पर (वातस्य सर्गः) वायु की उत्पत्ति (अभवत्) होती है अथवा (वातस्य सरीमणि सर्गः अभवत्) वायु के वेग से चलने पर इस अग्नि की उत्पत्ति होती है। अथवा यह विद्युत् रूप अग्नि (आसुरः गर्भः) जब मेघ के गर्भ में विद्यमान रहता है तब वह (तनूनपात् उच्यते) व्यापक जलों को भी नीचे न गिरने देने से या जलों के बीच में स्वयं न गिरने से 'तनूनपात्' कहाता है (यद्) जब वह (विजायते) विशेष दीप्ति से प्रकट होता है। (नराशंसः भवति) मनुष्य भी उसका वर्णन करते हैं इसलिये वह 'नराशंस' कहाता है। और (यत्) जब (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में श्वास के समान वेग से चलने वाला वायु (मातरि) अन्तरिक्ष में (अमिमीत) इस अग्नि-विद्युत् को उत्पन्न करता है तब (वातस्य सरीमणि) प्रबल वायु के चलने पर ही (सर्गः अभवत्) जल वृष्टि होती है। (२) विद्वान् के पक्षमें—असुर अर्थात् मेघ के समान दोषों को दूर करने वाले आचार्य के अधीन जब (गर्भः) गृहीत गर्भ के समान सुरक्षित ब्रह्मचारी होता है तब वह 'तनु' अर्थात् शरीर से वीर्य क्षरित या स्खलित न होने देने वाला ब्रह्मचारी 'तनूनपात्' कहाता है। और जब (विजायते) विशेष रूप से विद्यावान् होकर आचार्य-कुल में उत्पन्न हो जाता है तब (नराशंसः) उत्तम पुरुषों द्वारा उपदेश योग्य होने से 'नराशंस' कहाता है। जब वह (मातरि) माता के समान उत्पादक ज्ञानदाता विद्वान् आचार्य के अधीन (अमिमीत) विशेष रूप से विद्या

का अभ्यास करता, अपने में ज्ञान प्राप्त करता है तब वह ( मातरिश्वा ) ज्ञानी आचार्य के अधीन अपने आपको समर्पण करने से 'मातरिश्वा' कहाता है। यह शिष्य की इस प्रकार की ( सर्गः ) सृष्टि या उत्पत्ति ( वातस्य ) ज्ञानवान् पुरुष के ( सरीमणि ) संगति लाभ करने पर ही ( अभवत् ) होती है, अन्यथा नहीं।

सुनिर्मथा निर्मथितः सुनिधा निहितः कविः।
अग्ने स्वध्वरा कृणु देवान्देवयते यज ॥ १२ ॥

भा०—( सुनिर्मथा ) उत्तम मन्थन दण्ड से ( निर्मथितः ) मथा हुआ अग्नि उत्तम स्थान पर स्थापित होकर जिस प्रकार ( सु-अध्वरा ) उत्तम व्यवहारों में ( देवान् करोति यजते च ) उत्तम २ व्यवहारों को उत्पन्न करता और उत्तम फल भी देता है उसी प्रकार ( कविः ) क्रान्त-दर्शी विद्वान् ( सुनिर्मथा ) उत्तम शास्त्रालोडन रूप तप से ( निर्मथितः ) विशेष रूप से मथित हो, सुतप्त होकर वा पूर्ण ज्ञान रूप सार प्राप्त करके ( सुनिधाः ) उत्तम स्थान पर नियुक्त किया जावे। इसी प्रकार नायक भी उत्तम २ परीक्षाओं से परीक्षित होकर उत्तम पद पर नियुक्त हो। हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक और हे विद्वन्! तू ( देवान् ) विद्वान् अपने ज्ञानादि के इच्छुक पुरुषों को ( सु-अध्वरा ) शोभन, विनष्ट न होने वाले, स्थिर कार्यों में ( कृणु ) लगा और उन कार्यों में अपने उत्तम गुणों को प्रकट कर। ( देवयते ) शुभ गुणों की कामना करने वाले को यज्ञ में उत्तम गुण प्रदान कर।

अजीजनन्नमृतं मर्त्यासोऽस्रेमाणं तरणिं वीळुजम्भम्।
दश स्वसारो अग्रुवः समीचीः पुमांसं जातमभि सं रभन्ते ॥१३

भा०—( मर्त्यासः ) मनुष्य नायक को ( अस्रेमाणम् ) शत्रुओं द्वारा शोषण किये जाने योग्य ( तरणिं ) संकटों से पार उतारने में समर्थ ( वीडुजम्भम् ) बलवान् हिंसाकारी सैन्य बलों से युक्त,

( अजीजनन् ) बनावें । और ( दस ) दसों दिशाओं की प्रजाएं सेनाओं वा ( स्वसारः ) स्व-अर्थात् धन का लक्ष्य करके आने वाली, स्वयं उसके शरण आने वाली ( अग्रुवः ) आगे आकर ( समीचीः ) एक साथ उसका आदर करती हुई ( जातम् पुमांसं ) उत्पन्न हुए पुत्र को बहिनों के समान प्रेम से उस ( जातं पुमांसम् ) प्रसिद्ध वा प्रकट हुए वीर पुरुष को ( अभि सं रभन्ते ) सब ओर से प्राप्त करें और प्रसन्न हों ।

**प्र सप्त होता सनुकादरोचत मातुरुपस्थे यदशोचदूधनि ।**
**न नि मिषति सुरणो दिवेदिवे यदसुरस्य जठरादजायत ॥१४॥**

भा०—( यत् ) जिस प्रकार अग्नि ( सप्तहोता ) सातों प्राणों से सात ऋत्विजों के समान ग्रहण करने योग्य ( सनकात् ) अपने सनातन मूलकारण से उत्पन्न होकर ( अरोचत ) प्रकाशित होता है और जो (मातुः उपस्थे) अपने उत्पादक निमित्त भूत वायु के समीप और (ऊधनि) रात्रिकाल वा अन्तरिक्ष में ( अशोचत् ) चमकता है अथवा जो सूर्य रूप में सात रश्मियों द्वारा जल ग्रहण करने हारा, सनातन चिरकाल से चमक रहा है और जो ( मातुः ) आकाश के बीच ( ऊधनि ) मेघ में विद्युत् रूप से चमकता है ( यत् ) जो अग्नि ( दिवे दिवे ) प्रतिदिन (सुरणः) उत्तम ध्वनि करता हुआ ( न निमिषति ) कभी नाश को प्राप्त नहीं होता और जो ( असुरस्य ) बलवान् प्रभञ्जन वायु के ( जठरात् ) मध्य से ( अजायत ) प्रकट होता है । अथवा—( सुरणः ) सुख से या उत्तम रूप से गमन करने वाला सूर्य ( दिवे दिवे ) प्रतिदिन (न निमिषति) कभी अस्त नहीं होता ( यत् ) जो विद्युत् रूप से ( असुरस्य ) मेघ के ( जठरात् ) मध्य भाग से उत्पन्न होता है । उसी प्रकार ( मातुः उपस्थे ऊधनि ) माता का गोद स्तनों पर पलते बालकवत् , मातृ-पृथिवी के ऊपर उत्तम ऐश्वर्य पद पर ( अशोचत् ) विशेष कान्ति से चमकता है और सातों प्राणोंवत् सात प्रकृतियों का वशकर्त्ता सर्वप्रिय होता है

वह उत्तम रमणशाली होकर कभी ( न निमिषति ) अस्त सूर्यवत् नहीं होता।

अ॒मि॒त्रा॒यु॒धो॑ म॒रुता॑मिव प्र॒याः प्र॑थम॒जा ब्रह्म॑णो॒ विश्व॒मिद्वि॑दुः ।
द्यु॒म्नव॒द्ब्रह्म॑ कुशि॒कास॒ एरि॑र॒ एक॑एको॒ दमे॑ अ॒ग्निं समी॑धिरे ॥१५॥

भा०—( अमित्रायुधः ) शत्रुओं पर अपने शस्त्रों का प्रहार करने में कुशल जो वीर पुरुष ( मरुताम् ) वायु के समान बलवान् व व्यापारियों के हितार्थ ( प्रयाः ) आगे बढ़ते हुए ( प्रथमजाः ) सर्वश्रेष्ठ पद पर स्थित अग्रगण्य होकर (ब्रह्मणः) बड़े भारी राष्ट्रैश्वर्य का (विश्वम्) सर्वस्व ( इत् ) ही ( विदुः ) प्राप्त कर लेते हैं वे ( कुशिकासः ) परस्पर सर्वश्रेष्ठ, सन्धि से सुसम्बद्ध वा व्यवहारकुशल पुरुष ( द्युम्नवत् ) उत्तम कीर्तियुक्त ( ब्रह्म ) ऐश्वर्य को ( एरिरे ) प्राप्त होते हैं और वे ( एकः—एकः ) एक एक करके भी ( दमे ) दमन कार्य में ( अग्निम् ) अपने अग्रणी नायक को ही ( सम-एधिरे ) सब मिलकर चमकाते, उसके ही तेज, प्रताप और प्रभाव को बढ़ाते हैं। इसी प्रकार विद्वान् जन अपने भीतरी द्वेष, काम क्रोधादि शत्रुओं के साथ निरन्तर युद्ध करने हारे सर्वप्रथम सर्वश्रेष्ठ, उत्तम पद की ओर जाने वाले ( ब्रह्मणः इत् विदुः ) परमेश्वर से ही समस्त विश्व को उत्पन्न हुआ जानते हैं या उसीसे समस्त ज्ञान प्राप्त करते हैं। वे ( कुशिकासः ) उत्तम ज्ञानोपदेष्टा होकर तेजोयुक्त, यशोयुक्त ( ब्रह्म ) वेद-वचनों का ( ऐरिरे ) उच्चारण करते, उपदेश करते हैं। वे एक २ करके ( दमे ) अपने गृह में और ( दमे = मदे ) अति हर्ष या प्रसन्नता की दशा में ( अग्निं ) ज्ञानमय तेजोमय प्रभु को यज्ञाग्नि के समान ही अच्छी प्रकार प्रकाशित करते हैं। उसी के गुणों को अपने में जगाते, उसी को प्रकट करते हैं।

यद॒द्य त्वा॑ प्रय॒ति य॒ज्ञे अ॒स्मिन्होत॑श्चिकि॒त्वोऽवृ॑णीमही॒ह ।
ध्रु॒वम॑या ध्रु॒वमु॒ताश॑मिष्ठाः प्रजा॒नन्वि॒द्वाँ उप॑ याहि॒ सोम॑म् ॥१६॥३४॥१॥२

भा०—हे ( होतः ) साधनों, उपसाधनों और राष्ट्र को अपने अधीन ग्रहण करने वाले ! हे ( चिकित्वः ) ज्ञानवन् ! वीर पुरुष ! ( यत् ) जिस कारण से हम लोग ( इह ) इस और ( यज्ञे प्रयति ) और प्रयत्नशील, सबके परस्पर संगति से युक्त समुदाय में वा प्रयत्नसाध्य संग्राम आदि कार्य में ( त्वा ) तुझको ( अवृणीमहि ) सर्व-श्रेष्ठ पद पर नायक रूप से वरण करते हैं इसलिये तू भी ( ध्रुवम् ) इस स्थायी पद को ( अयाः ) प्राप्त कर । ( उत ) और ( ध्रुवम् ) इस स्थिर राष्ट्र को ( अशमिष्ठाः ) शान्तकर । तू ( विद्वान् ) स्वयं ज्ञानवान् विद्वान् होकर ( प्रजानन् ) सब कुछ अच्छी प्रकार जानता हुआ ( सोमम् ) ऐश्वर्य को ( उपयाहि ) प्राप्त कर । इति चतुस्त्रिंशो वर्गः ॥

इति तृतीयाष्टके प्रथमोऽध्यायः । इति तृतीये मण्डले द्वितीयोऽनुवाकः ॥

---

## अथ द्वितीयोऽध्यायः

### [ ३० ]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६—११, १४, १७, २० निचृत्त्रिष्टुप् । ५, ६, ८, १३, १६, २१, २२ त्रिष्टुप् । १२, १५ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ४, ७, १६, १८ भुरिक् पङ्क्तिः ॥ द्वाविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

**इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयांसि ।**
**तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः ॥१॥**

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! सूर्य के समान अज्ञानान्धकार के विनाशक विद्वन् ! शत्रुओं को छिन्न भिन्न करने हारे वीर पुरुष वा परमेश्वर ! (त्वा) तुझको ( सोम्यासः ) उत्तम ज्ञान प्राप्त करने योग्य दीक्षा प्राप्त शिष्य और ऐश्वर्य प्राप्ति के इच्छुक एवं नाम पदों पर अभिषेक योग्य जन, ( सखायः )

और तेरे समान ख्याति प्रसिद्धि वाले जन ( त्वा इच्छन्ति ) तुझे चाहते हैं। वे ( सोमं ) ज्ञान और ऐश्वर्य का ( सुन्वन्ति ) सम्पादन करते हैं, उसको प्राप्त करने का यत्न करते हैं और ( प्रयांसि दधति ) उत्तम ज्ञानों, अन्नों और ऐश्वर्यों को धारण करते हैं। वे ( जनानाम् ) मनुष्यों के बीच में रहते हुए उनकी की हुई ( अभिशस्ति ) हिंसा, स्तुति और निन्दा सब कुछ ( तितिक्षन्ते ) सहन करते हैं। हे इन्द्र ! ( त्वत् ) तुझसे अधिक ( प्रकेतः ) उत्कृष्ट ज्ञानवाला ( कश्चन हि ) कौन है ? तुझ से बड़ा ज्ञानी महामति दूसरा नहीं।

**न ते॑ दू॒रे प॑र॒मा चि॒द्रजां॒स्या तु प्र या॑हि हरि॒वो॒ हरि॑भ्याम् ।**
**स्थि॒राय॒ वृष्णे॒ सव॑ना कृ॒तेमा यु॒क्ता ग्रावा॑णः समिधा॒ने अ॒ग्नौ ॥२॥**

भा०—हे ( हरिवः ) वेगवान् अश्वों के स्वामिन् ! ( ते ) तेरे लिये ( परमा चित् रजांसि ) दूर से दूर के लोक या प्रदेश भी ( दूरे न ) दूर नहीं है। तू (हरिभ्याम्) वेगवान् अश्वों से (आ प्रयाहि = आयाहि प्रयाहि) आ जा सकता है। ( स्थिराय ) स्थिर ( वृष्णे ) बलवान् मेघ के समान ऐश्वर्यादि के वृष्टि करने वाले तेरे लिये (इमा) ये नाना प्रकार के (सवना) ऐश्वर्य और अभिषेकादि कृत्य ( कृता ) किये जावें। और (अग्नौ समिधाने) अग्नि के समान तेजस्वी अग्रणी नायक के अच्छी प्रकार प्रदीप्त होने, एवं तेजस्वी होकर चमकते रहने पर ( ग्रावाणः ) शत्रुओं को शिलापाटों के समान कुचल देने वाले वीर गण भी ( युक्ताः ) अधीन रहकर सहयोग करते हैं। ( २ ) हे विद्वन् ! तेरे लिये ( परमा रजांसि ) परम, सर्वोत्कृष्ट ज्ञान भी दूर, अज्ञेय नहीं है, तू ( हरिभ्यां ) मन और इन्द्रियों के प्रयोग से उनको प्राप्त कर। स्थिर मति और मनो बन्धन करने में समर्थ तेरे जानने के लिये ही ये ( सवना ) सब पदार्थ बने हैं तुझ ज्ञानी पुरुष के ज्ञान से प्रकाशित होने पर तेरे अधीन ही ये ( ग्रावाणः ) स्तुतिशील विद्याभ्यासी जन भी ( युक्ताः ) मनोयोग दें और विद्या में दत्तचित्त हों।

इन्द्रः सुशिप्रो मघवा तरुत्रो महाव्रातस्तुविकूर्मिर्ऋघावान् ।
यदुग्रो धा बाधितो मर्त्येषु क्व१त्या ते वृषभ वीर्याणि ॥ ३ ॥

भा०—सेनापति पक्षमें—( इन्द्रः ) ऐश्वर्य व शत्रु बलों को विदारण करने, फोड़ने फाड़ने वा छेदने काटने और उनके भयभीत करने हारा ( सुशिप्रः ) उत्तम शोभायुक्त नासिका और जबाड़ों वाला वा उत्तम शोभा युक्त शिरस्त्राण, मुकुट आदि वाला, ( तरुत्रः ) दुःखों, शत्रु के आक्रमणों, युद्धों से पार उतारने वाला, ( महाव्रातः ) बड़े सैन्य दलों का स्वामी, ( तुविकूर्मिः ) बहुत से कर्मकर्त्ताओं का स्वामी वा नाना कर्म करने वाला, ( ऋघावान् ) शत्रु को मारने वाले नाना शस्त्रों, नाना वीर पुरुषों और शत्रुनाशक शक्तियों और सेनाओं का स्वामी है । हे ( वृषभ ) बलवन् ! मेघ के समान शत्रुओं पर शस्त्रों और प्रजा पर ऐश्वर्य सुखों की वर्षा करने हारे ! तू ( बाधितः ) शत्रुओं से संग्रामों में दुष्टों की करतूतों से लाचार होकर राष्ट्र में भी (मर्त्येषु) स्वपक्ष के मारने वाले शत्रुओं, साधारण मनुष्यों के बीच में भी ( यत् ) जिन २ नाना ( वीर्याणि ) बलों को ( उग्रः ) अति भयंकर तेजस्वी होकर ( धाः ) धारण करता और प्रकट करता है ( त्या ) वे नाना बल पराक्रम के कर्म ( ते ) तेरे ( क्व ) कहां हैं ? यह सब सदा सावधान रहकर जांचता रह । ( २ ) परमेश्वर वा विद्वान् पुरुष (सुशिप्रः) उत्तम ज्ञानवान्, तेजस्वी (तरुत्रः) अज्ञान और भवबन्धन से तारने वाला ( महाव्रातः ) बड़े व्रत पालकों वा लोकसंघों का स्वामी (ऋघावान्) भीतरी शत्रु 'ऋ' अर्थात् उद्वेगजनक क्रोधादि दुर्भावों को नाश करने वाली शक्ति का स्वामी ( इन्द्रः ) आत्मद्रष्टा पुरुष और ऐश्वर्यवान् है । तू भयंकर होकर मनुष्यों, मरणधर्मा प्राणियों के बीच ( बाधितः ) प्रयत्नवान् होकर नाना बलों को प्रदान करता है वे सब तेरे वीर्य बल (क्व) कहां ? किस स्थान पर केन्द्रित—आश्रित हैं ? सर्व संसार की सञ्चालक शक्तियां कहां स्थित हैं ? तेरा सब अगम्य है ।

त्वं हि ष्मा च्यावयन्नच्युतान्येको वृत्रा चरसि जिघ्नमानः ।
तव द्यावापृथिवी पर्वतासोऽनु व्रताय निमितेव तस्थुः ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार विद्युत् ( अच्युतानि च्यावयन् वृत्रा जिघ्नमानः चरति) न गिरने वाले जलों को नीचे गिराता और मेघस्थ जलों को ताड़न करता हुआ विचरता है उसी प्रकार हे इन्द्र ! ऐश्वर्यवन् शत्रुहन्तः! सेनापते ! ( त्वं हि ) तू निश्चय से ( एकः ) अकेला, अद्वितीय ( अच्युतानि ) अच्युत, दृढ़, न क्षीण होने वाले, जमकर लड़ने वाले बलवान् शत्रु-सैन्यों को ( च्यवयन् ) स्थानच्युत करता हुआ, भगाता और गिराता हुआ ( वृत्रा ) मेघों को वायु विद्युत या सूर्यवत् बढ़ते हुए शत्रुगण को ( जिघ्नमानः ) हनन करता हुआ ( चरसि ) विचरता है । ( तव ) तेरे ( अनुव्रताय ) अनुकूल, नियमपूर्वक रहने के लिये ( द्यावापृथिवी ) सूर्य और पृथिवी के समान ऊपर नीचे विराजमान ज्ञानी, अज्ञानी, पुरुष स्त्री और शास्य शासक, प्रजावर्ग और अध्यक्ष गण, सेनावर्ग और नायकवर्ग और ( पर्वतासः ) पर्वतों के समान अचल और मेघों के समान शस्त्रवर्षी वीर और पोरु २ और टुकड़ी टुकड़ी से बने सैन्य-व्यूह सभी ( निमिता इव ) नियम में व्यवस्थित के सदृश ( अनु तस्थुः ) रहकर तेरे अधीन होकर काम करें । ( २ ) परमेश्वर ( एकः अच्युतानि च्यवयन् ) एक अद्वितीय होकर गतिरहित, जड़ पांचों भूतों या प्रकृति के परमाणुओं को चला रहा है । वह ( वृत्रा ) वृद्धिशील महान् ब्रह्माण्डों या चक्रगति से विवर्त्तन करने वाले सूर्यादि लोक और नीहार-मण्डलों (Nelulae) को ( जिघ्नमानः ) घनीभूत स्थूल सूर्य, पृथिवी ग्रह नक्षत्रादि में पिण्डित करता हुआ ( चरसि ) सर्वत्र व्यापता और सब को चला रहा है । ( द्यावापृथिवी पर्वतासः ) सूर्य, पृथिवी और पर्वत वा मेघ आदि पदार्थ भी ( तव व्रताय ) तेरे व्यवस्था पालन करने के लिये ही मानो ( निमिता इव ) बहुत नियमपूर्वक रचे जाकर ( अनु तस्थुः ) तेरी आज्ञानुसार सब काम

करते हैं। अथवा ( वृत्रा जिघ्नमानः चरसि ) तू विघ्न वा बाधाओं को नाश करता हुआ व्याप रहा है।

उताभये पुरुहूत श्रवोभिरेको दृळ्हमवदो वृत्रहासन्।
इमे चिदिन्द्र रोदसी अपारे यत्संगृभ्णा मघवन्काशिरित्ते ॥५॥१॥

भा०—हे सेनापते! राजन्! मेघ या विद्युत् जिस प्रकार ( वृत्रहासन् श्रवोभिः दृढम् अवदः ) मेघों में व्यापता और उनको बलपूर्वक आघात करता हुआ सुनाई देने वाली गर्जनाओं से समस्त प्रजा को अकाल से निर्भय रहने के निमित्त स्थिर रूप से बतला देता है उसी प्रकार तू भी ( वृत्रहा ) नगर के घेरने, प्रतिद्वन्द्विता में बढ़ने वाले और विघ्नकारी शत्रुओं को विनाश करता हुआ है ( पुरुहूत ) बहुत सी प्रजाओं से संकटों में पुकारे जाने योग्य राजन्! वीर! ( श्रवोभिः ) श्रवण करने योग्य घोषणावचनों से ( अभये ) प्रजा को अभय के निमित्त ( दृढम् ) दृढतापूर्वक ( अवदः ) कह दे, उनकी रक्षा का निश्चय करा दे। ( इमे अपारे रोदसी ) इन अनधिपति, असीम आकाश और पृथिवी दोनों को जिस प्रकार सूर्य अच्छी प्रकार वश करता है उसका ही ( काशिः ) यह सब प्रकाश सर्वत्र व्याप रहा है उसी प्रकार हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! ( इमे ) ये ( रोदसी ) स्वपक्ष और परपक्ष की सेनाएं जो दुष्टों को रुलाने में समर्थ और एक दूसरे की बाढ़ को रोकने में समर्थ हैं वे दोनों ( अपारे ) पाररहित, अतिशय विस्तृत हैं। वा ( अपारे ) उत्तम पालक पुरुष से रहित हैं। उन दोनों को ( यत् ) जब तू ( संगृभ्णाः ) अच्छी प्रकार से वश कर लेता है तो हे ( मघवन् ) ऐश्वर्यवन् परम पूज्य पद के स्वामिन्! ( ते इत् ) तेरा ही यह ( काशिः ) प्रबल, न्यायप्रकाश वा तेज पराक्रम वा प्रबल हाथ वा मुष्टि अर्थात् प्रहार साधन बल और प्रबन्ध साधन शासन है। ( २ ) परमेश्वर और आचार्य अज्ञान नाशक होने से 'वृत्रहा' हैं। वह समस्त जीव संसार को अभय देने के लिये गुरु द्वारा

श्रवण योग्य श्रुतियों, वेदवाक्यों से स्थिर सत्य ज्ञान का उपदेश करता है। (रोदसी) नर नारी दोनों ही पालक वा अज्ञानता से रहित हैं। उनको वह (संगृभ्णाति) अपने अधीन वश करे, उपनयन पूर्वक भली प्रकार शिष्यवत् स्वीकार करे, यह उसी का ज्ञान प्रकाश है जिससे सब ज्ञानवान् हों। इति प्रथमो वर्गः ॥

प्र सू त इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून्।
जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विश्वं सत्यं कृणुहि विष्टमस्तु ॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) सूर्य के समान तेजस्विन्! (ते वज्रः) तेरा वेगवान् रथ (हरिभ्यां) वेगवान् दो रथों से युक्त होकर (प्रवता) प्रबल वेग से और उत्तम मार्ग से (प्र सु एति) अति उत्तम रूप से आगे बढ़े। और (ते वज्रः) तेरा खड्ग, शस्त्र बल भी (शत्रून् प्रमृणन्) शत्रुओं को अच्छी प्रकार नाश करता हुआ (प्र एतु) आगे बढ़े। तू (प्रतीचः) प्रतिकूल दिशा से आने वा प्रतिपक्षी शत्रुओं को और (अनूचः) कपट वृत्ति से अनुकूल वा पीछे से आक्रमण करने वाले और (पराचः) दूर गये, दूर के शत्रुओं को भी (प्रजहि) आगे बढ़कर मार और तू (विश्वं) सब (सत्यं) यथार्थ बात को (प्र सु कृणु) अच्छी प्रकार प्रकाशित कर। और यह सत्य (विष्टम् अस्तु) सर्वत्र राष्ट्र में फैले। (२) हे परमेश्वर! तेरा (वज्रः) गम्य, शरणयोग्य और अज्ञाननाशक ज्ञान हस शिष्यों को कर्म और ज्ञान द्वारा प्राप्त हो। तू बाधक प्रतिपक्षी क्रोधादि व्युत्थानों को अनुकूल सुख रूप से प्राप्त व्यसनों और दूरगत चिरकालिक संस्कारों को नष्ट कर समस्त सत्य का को प्रकाशित करता वा विश्व जगत् को सत् रूप में प्रकट करता है वह सत्य ही सर्वत्र व्यापता है।

यस्मै धायुरदधा मर्त्यायाभक्तं चिद्भजते गेह्यं१ सः।
भद्रा त इन्द्र सुमतिर्घृताची सहस्रदाना पुरुहूत रातिः ॥७॥

भा०—(यस्मै) जिस पुरुष को हे ऐश्वर्यवन्! तू (धायुः) सबको

धारण पोषण करने हारा होकर ( अद्धाः ) धारण पोषण, पालन व विद्या ज्ञान आदि प्रदान करता है ( सः ) वह पुरुष ( अभक्तं चित् ) विभाग करने के अयोग्य विद्या आदि के समान या ( अभक्तं ) पूर्व कभी न सेवित अपूर्व धन के तुल्य श्रेष्ठ, ( गेह्यं ) गृहोपयोगी धन को ( भजते ) प्राप्त करता है। हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! प्रभो! हे ( पुरुहूत ) बहुतों से स्तुति योग्य ( ते सुमतिः ) तेरी शुभ मति, ज्ञान ( भद्रा ) सबका कल्याण करने वाली, ( घृताची ) प्रकाश और स्नेह से युक्त, एवं रात्रि के समान सुखदायिनी है। ( ते रातिः ) तेरा दान भी ( सहस्रदाना ) सहस्रों को देने वाला है। ( २ ) अध्यात्म में—जिस पर प्रभु कृपा करते हैं ( गेह्यं ) वह ग्रहण करने योग्य, इसी शरीर में भोगने योग्य अपूर्व ऐश्वर्य पाता है।

**स॒ह॒दानुं॑ पुरुहूत क्षि॒यन्त॑मह॒स्तमि॑न्द्र॒ सं पि॑ण॒क्कुणा॑रुम्।**
**अ॒भि वृ॒त्रं वर्ध॑मानं॒ पिया॑रुम॒पाद॑मिन्द्र त॒वसा॑ जघन्थ ॥ ८ ॥**

भा०—हे ( पुरुहूत ) बहुतों से स्तुतियोग्य! ( सहदानुम् ) जल सहित ( कुणारुम् ) गर्जनशील मेघ को जिस प्रकार वायु, विद्युत् या सूर्य अपने तेज से और वेग से छिन्न भिन्न कर देता है उसी प्रकार तू भी ( सहदानुं ) सैन्य को मार गिराने वाली शस्त्र बल से सहित, ( क्षियन्तम् ) प्रजा या राष्ट्र में बसने वाले ( कुणारुम् ) अहंकार से गर्जते हुए, शत्रु या दुष्ट पुरुष को ( अहस्तम् ) हस्त या हनन साधन, शस्त्रों से रहित करके ( संपिणक् ) अच्छी प्रकार पीस या कुचल डाला। और जिस प्रकार सूर्य या विद्युत् ( पियारुम् वर्धमानं वृत्रं अपादं तवसा जघन्थ ) पान किये जाने योग्य, बढ़े हुए, बहुत अधिक जल को वेग से आघात करके नीचे गिरा देता है उसी प्रकार ( अभिवर्धमानं ) मुकाबले पर बढ़ने वाले (वृत्रं) अतएव वृद्धिशील ( पियारुं ) हिंसाशील शत्रु को ( अपादम् ) गमन करने के साधन चरण रथादि रहित, निराश्रय करके ( तवसा ) बलपूर्वक (जघ-

न्थ ) नाशकर, दण्डित कर । आचार्य—( सहदानुं ) व्रत खण्डन करने वाले कुकर्मों से युक्त ( क्षियन्तं ) अधीन रहने वाले ( कुणारुं ) अध्ययनशील ( अहस्तं ) अप्रशस्त कर्मा विद्यार्थी को भी अच्छी प्रकार दण्डित करे । और ( अपादं ) ज्ञानरहित, बढ़ते हुए विघ्नकारी ( पियारुम् ) व्रत विलोपक विघ्न को शक्ति से नाश करे ।

नि सा॒स॒नामि॑षि॒रामि॑न्द्र॒ भूमिं॑ म॒हीम॑पा॒रां सद॑ने ससत्थ ।
अस्त॑भ्ना॒द्द्यां वृ॑ष॒भो अ॒न्तरि॑क्ष॒मर्ष॒न्त्वाप॒स्त्वये॒ह प्रसू॑ताः ॥९॥

भा०—( वृषभः ) वृष्टि करने हारा सूर्य जिस प्रकार ( द्याम् अस्तभ्नात् ) तेज को या आकाशस्थ जलों को धारण करता है । और वही स्वयं ( सदने ) अपने स्थान पर ( नि ससत्थ ) नियम से स्थिर रहता है और ( अपाराम् महीम् ) पालकरहित बड़ी भारी ( सामनाम् ) समस्थल वाली या एक समान गति से जाने वाली, ( इषिराम् ) अन्न से पूर्ण या क्रान्ति मार्ग से चलने वाली ( भूमिं ) भूमि को और ( अन्तरिक्षं ) अन्तरिक्ष को भी ( अस्तभ्नात् ) धारण करता है । और जिस प्रकार उसी से ( प्रसूता ) प्रेरित ( आपः ) जल अन्तरिक्ष और भूमि को ( अर्षन्ति ) प्राप्त होते हैं उसी प्रकार ( वृषभः ) शस्त्रवर्षी, बलवान् वीरपुरुष ( सदने ) अपने आश्रय पर ( नि ससत्थ ) स्थिर होकर विराजे और पहले ( सामनाम् ) साम-वचनों से युक्त ( इषिराम् ) पति के प्रति स्त्री के समान अपने प्रति अनुराग इच्छा से युक्त ( महीम् ) बड़ी पूज्य ( अपाराम् ) असीम, अपार वा रक्षक पालक व पूरक पुरुष से रहित ( भूमिम् ) सब अन्नादि ऐश्वर्यों की उत्पादक भूमि को और ( अन्तरिक्षम् ) भीतर से स्थित जन समुदाय को और ( द्याम् ) ज्ञान प्रकाश से युक्त उच्च तेजस्वी जनता वा विद्वत्सभा को भी ( अस्तभ्नात् ) वश करे । हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! राजन् ( त्वया प्रसूताः ) तेरे द्वारा शासित (आपः) प्राप्त प्रजाएं ( अर्षन्तु ) तुझे प्राप्त हों या सन्मार्ग में ( नि अर्षन्तु ) नियम से चलें । ( २ ) गृहस्थ में

स्त्री ( सामना ) समान मन वाली, सामयुक्त प्रीतिपूर्वक वचन कहने वाली और समान अधिकार, मानपद से युक्त हो। ( इपिरा ) अपार, असीम प्रेम वाली या जिसको पतिरूप पालक या उसके अर्धांश का पूरक पुरुष न प्राप्त हुआ हो ( द्यौ ) ज्ञान और कामना से युक्त हो। ऐसी स्त्री को पुरुष अपने घर में रखकर ( अस्तभ्नात् ) अपने अधीन रक्खे। पुरुष से उत्पादित ( आपः ) उत्तम पुत्र गण ही प्राप्त हों। ( २ ) परमेश्वर पुरुष सर्व वशी होने से वृषभ है। समावस्था को प्राप्त, प्रकृति इसकी इच्छा शक्ति से गति करने वाली, महत् तत्व वाली असीम है उसको वह परमेश्वर वश करता है। वह प्रसुप्त अप्रतर्क्य अलक्षणा होने से 'द्यौ' है ( आपः ) हे प्रभो ! वे सब प्राकृत परमाणु नीहारिकामण्डल तेरे ही द्वारा प्रेरित होकर चल रहे हैं।

**अलातृणो वल इन्द्र व्रजो गोः पुरा हन्तोर्भयमानो व्यार।**
**सुगान्पथो अकृणोन्निरजे गाः प्रावन्वाणीः पुरुहूतं धमन्तीः॥१०॥२॥**

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ( अलातृणः ) बहुत अधिक शत्रुओं पर प्रहार करने योग्य, समर्थ ( वलः ) शत्रु नगरों को घेरने में समर्थ या ( वलः = बलः ) बलवान् पुरुष जो ( गोः व्रजः ) गौ के आश्रयभूत बाड़े के समान ( गोः ) पृथिवी का ( व्रजः ) एकमात्र आश्रय हो वह ( पुरा ) सब से प्रथम ( हन्तोः ) प्रतिपक्ष के आघात से ( भयमानः ) भय करता हुआ ( विः आर ) विविध प्रकार की चालें चले। और ( निरजे ) अपने शत्रु को सर्वथा उखाड़ देने और अपने आप बच निकलने के लिये मार्गों को ( सुगाम् ) उत्तम सुखपूर्वक गमन करने योग्य ( अकृणोत् ) बनावे और ( पुरुहूतं ) बहुतों से प्रशंसित वा विपत्तिकाल में पुकारने योग्य उत्तम नायक को ( धमन्तीः ) उत्तेजित करने वाली ( वाणीः ) वाणियों को ( प्र अवन् ) अच्छी प्रकार सुरक्षित रक्खे और उसको ( धमन्तीः ) पुकारने वाली ( गाः ) भूमि निवासिनी प्रजाओं की भी ( प्रावन् ) अच्छी

प्रकार रक्षा करे। ( २ ) मेघपक्ष में—( अलातृणः वलः ) विद्युत् आघात करने वाला आकाश में व्यापक मेघ ( गोः व्रजः ) अति वेगवती विद्युत् का आश्रय है। वा ( गोः व्रजः ) गौ के आश्रय के समान ही पृथिवी निवासिनी प्रजा का जीवनाश्रय होता है। ( भयमानः हन्तोः पुरा व्यार ) भयभीत शत्रु जिस प्रकार बलवान् मार से भय करके पहले परे हट जाता है उसी प्रकार वह भी ( भयमानः = उभयमानः ) अन्तरिक्ष और पृथिवी दोनों में गर्जता हुआ ( हन्तोः पुरः ) पृथिवी पर जल विद्युतादि के आघात करने के लिये विविध प्रकार से फैल जाता है, विविध मार्गों से जाता है। ( पुरुहूतं धमन्ती वाणीः ) विद्युतों को प्रदीप्त करती हुई दीप्तियों को वा गर्जनाओं को बहुतों के इष्ट जल को ध्वनित करने वाली गर्जनाओं को सुरक्षित रखता है। ( निरजे ) सब जल फेंक देने या निकाल देने के लिये सुगम मार्ग बना लेता है ( गाः अवन् ) बहुतसी भूमि निवासी प्रजाओं की रक्षा करता है। ( ३ ) आचार्य—अज्ञान को नाश करने वाला होने से जलातृण है। विद्यार्थी संरक्षा संवरण करने से 'बल' है। वेद वाणी का आश्रय या प्राप्ति मार्ग होने से (गोः व्रजः) है। वह दण्ड देने के पहले उसके बुरे पापों से भय करके विविध उपाय करे। शिष्य के बुरे लक्षणों को सर्वथा दूर करने के सुगम २ मार्ग बनावे। ( पुरुहूतं ) बहु उपदेश योग्य शिष्य को उपदेश करने वाली नाना वाणियों और ( गाः ) ज्ञानयुक्त शिष्यों को ( प्रावन् ) अच्छी प्रकार रक्षा करे। इति द्वितीयो वर्गः॥

**एको॒ द्वे वसु॑मती समी॒ची इन्द्र॒ आ प॑प्रौ पृथि॒वीमु॒त द्याम्।**
**उ॒तान्तरि॑क्षाद॒भि नः॑ समी॒क इ॒षो र॒थीः स॒युजः॑ शूर॒ वाजा॑न्॥११॥**

भा०—( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् शत्रुओं को नाश करने हारा बलवान् पुरुष ( पृथिवीम् उत द्याम् ) आकाश और पृथिवी को सूर्य के समान (द्याम् उत पृथिवीम् ) ज्ञानवान् प्रजाओं और सामान्य भूमि वासी प्रजाओं

( द्वे ) दोनों को ( एकः ) अकेला ही ( समीची ) परस्पर एक दूसरे से संगत और ( वसुमती ) ऐश्वर्यों तथा वसने वाले प्रजा और अध्यक्षगणों से युक्त करके ( आ पप्रौ ) सब प्रकार से पालता और पूर्ण, समृद्ध करता है वह ही ( उत अन्तरिक्षात् ) अन्तरिक्षवत् राष्ट्र के बीच में से भी प्रजा को पुष्ट करता है। उसी प्रकार हे ( शूर ) शूरवीर पुरुष ! तू (नः समीके) हमारे समीप रहता हुआ ( रथीः ) रथारूढ़ महारथी होकर ( नः ) हमारी ( इषः ) इच्छाओं और सेनाओं को और ( सयुजः ) सहोद्योगी कार्यकर्त्ताओं को और ( वाजान् ) वेगवान् अश्वों, ऐश्वर्यों को ( अभि आ पूरय ) सब प्रकार पूर्ण कर। ( २ ) विद्वान् पुरुष या सुसंगत ऐश्वर्ययुक्त नर नारियों को ज्ञान से पूर्ण करे, वह अन्तःकरण से भी हमारे समीप रहकर हमारी उत्तम इच्छाओं, सत्संगकारी मित्रों और प्राप्त ज्ञानयोग्य शरणागत शिष्यों को ज्ञान से पूर्ण करे।

**दिशः सूर्यो न मिनाति प्रदिष्टा दिवेदिवे हर्यश्वप्रसूताः।**
**सं यदानळध्वन आदिदश्वैर्विमोचनं कृणुते तत्त्वस्य ॥ १२ ॥**

भा०—( यत् = यः ) जो ( सूर्यः न ) सूर्य के समान तेजस्वी हो कर ( दिवे दिवे ) प्रति दिन ( हर्यश्वप्रसूताः ) वेगवान् सैन्यों के नाम का प्रशंसित ( प्रदिष्टाः ) उत्तम रीति से आज्ञावशवर्त्ती ( दिशः ) दिशाओं में रहने वाली अन्य प्रजाओं को या शत्रु सेनाओं को ( मिनाति) अपने आज्ञा के वश करता या उखाड़ फेंकता है। वह ( अध्वनः ) सब मार्गों और प्रदेशों को ( अश्वैः ) वेगवान् अश्वों और आशु गमन करने वाले साधनों के समान अच्छी प्रकार वश करे। और ( तत् आत् इत्) तव उसके अनन्तर ही वह ( अस्य ) उस राष्ट्र अर्थात् उत्तम अधपक्षों से, सैन्यों, दूर २ के राष्ट्रों को पहले तेजस्वी होकर वश करे। फिर सब स्थानों पर अपने तीव्र वेगवान् यानों या गाड़ियों का प्रबन्ध करे और तब राष्ट्र के संकटों को दूर करे। अथवा—( सः सूर्यः दिशः मिनाति ):

वह सूर्यवत् तेजस्वी होकर दिशावासिनी प्रजाओं को नाश न करे। प्रत्युत सब मार्गों और स्थानों को वेगवान् अश्वादि साधनों से वश करके राष्ट्र को विशेष कड़े प्रबन्ध से युक्त प्रजा को स्वच्छन्द विहरने दे। अर्थात् सदा ही कोई 'मार्शल्ला' न लगा रहे।

**दिदृक्षन्त उषसो यामन्नक्तोर्विवस्वत्या महि चित्रमनीकम्।**
**विश्वे जानन्ति महिना यदागादिन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ॥१३॥**

भा०—( विवस्वत्याः उषसः यामन् अक्तोः महि चित्रम् अनीकं दिदृक्षन्त ) जिस प्रकार सूर्य की उत्तम प्रभा के प्रकट होने पर 'अक्त' अर्थात् उसके प्रकाश सूर्य का अद्भुत उत्तम मुख लोग देखना चाहा करते हैं और ( इन्द्रस्य पुरूणि सुकृता कर्म जानन्ति ) सूर्य के बहुत से उत्तम २ कर्मों को जाना करते हैं उसी प्रकार ( उषसः यामन् ) शत्रुओं को सन्तप्त करने वाली ( विवस्वत्याः ) विविध वसु, ऐश्वर्यों और प्रजाजनों से बनी सेना के ( यामम् ) प्रयाणकाल में लोग ( अक्तोः ) उसके सेचक, पालक, प्रकाशक, संचालक सेनापति के ( महि ) महान् ( चित्रम् ) अद्भुत (अनीकम् ) सैन्य या बल को ( दिदृक्षन्ते ) देखना चाहा करते हैं ( यत् ) जब वह ( महिना ) अपने बड़े भारी सैन्य या महान् सामर्थ्य से ( आगात् ) आता है तब ( इन्द्रस्य ) उस शत्रुहन्ता के ( पुरूणि ) नाना ( सुकृता ) उत्तम रीति से किये ( कर्म ) कर्मों को ( विश्वे ) सभी लोग ( जानन्ति ) जान लेते हैं।

**महि ज्योतिर्निहितं वक्षणास्वामा पक्वं चरति बिभ्रती गौः।**
**विश्वं स्वाद्म सम्भृतमुस्रियायां यत्सीमिन्द्रो अदधाद्भोजनाय ॥१४॥**

भा०—( वक्षणासु ) जगत् को धारण करने वाली दिशाओं के बीच में यह सूर्य ( महि ज्योतिः निहितम् ) बड़ा भारी प्रकाश सूर्य रूप स्थापित है और ( आमा ) उसकी सहचरी ( गौः ) पृथिवी ( पक्वं बिभ्रती ) परि-

पक्व अन्न या स्वरूप को धारण करती हुई (चरति) विचरती, गौ के समान उत्तम रस अन्नों को उत्पन्न करने वाली भूमि में (इन्द्रः) जल देने वाला मेघ वा (सीम्) सूर्य (यत्) जो कुछ भी सर्वप्रकार के (भोजनाय) प्राणियों के भोजन करने और उनकी रक्षा करने के लिये (अदधात्) धारण कराता है इसलिये उस पृथिवी में (विश्वं) सब प्रकार का (स्वाद्म) उत्तम स्वादयुक्त वा उत्तम खाद्य अन्न आदि पदार्थ (संभृतम्) अच्छी प्रकार स्थित और पुष्ट होता है। (२) इसी प्रकार—(वक्षणासु) वहन या धारण करने में समर्थ सेनाओं और प्रजाओं में ही (महि ज्योतिः निहितम्) जलधाराओं में विद्युत् के समान बड़ाभारी तेज स्थित रहता है। वह (आमा) बल में कच्ची, निर्बल होकर भी गौ के समान (पक्वं बिभ्रती चरति) परिपक्व बलवान् वीर्यवान् स्वामी को धारण करती हुई पत्नी के समान ही उसका सुख भोग करती है अथवा स्वयं निर्बल रहकर उस (पक्वं) परिपक्व वीर्यवत् दृढ़ तेज को धारण करती हुई (चरति) उसका भोग करती है। जिसको (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (भोजनाय) सबके भोग और रक्षा के लिये धारण करता है वह (विश्वं स्वाद्मं) सब प्रकार का सुखकारक, सुखादु भोजन और बल (उस्रियायां संभृतम्) दुधार गौ के समान सब पदार्थों की उत्पादक भूमि वा प्रजा में अच्छी प्रकार विद्यमान और परिपुष्ट होता है। (३) (इन्द्रः) विद्वान् आचार्य (भोजनाय) रक्षणीय शिष्य को जो ज्ञान प्रदान करता है वह ज्ञानोत्पादक वाणी में अच्छी प्रकार स्थित है। (वक्षणासु) वचनयोग्य वाणियों में ही बड़ा ज्ञानप्रकाश स्थित है यह (गौः) ज्ञानवाणी स्वयं (आमा) कोमल होकर भी परिपक्व ज्ञान को धारण करती हुई (चरति) गुरु से शिष्य का प्राप्त होती है।

इन्द्र॒ दृह्य॑ यामको॒शा अ॑भूवन्य॒ज्ञाय॑ शिक्ष गृण॒ते सखि॑भ्यः।
दु॒र्मा॒यवो॑ दु॒रेवा॒ मर्त्या॑सो निष॒ङ्गिणो॑ रि॒पवो॒ हन्त्वा॑सः ॥१५॥२॥

भा०—हे ( इन्द्र ) शत्रुओं के हन्तः ! सेनापते ! ( यज्ञाय ) संग्राम करने के लिये वीर पुरुष ( यामकोशाः ) लम्बे २ खड्ग वाले ( अभूवन् ) होवें । तू ( सखिभ्यः ) मित्रवर्ग और ( गृणते ) स्तुतिशील प्रजावर्ग को ( शिक्ष ) ज्ञान ऐश्वर्य प्रदान कर, उनको वेतन और युद्ध की शिक्षा दे । और ( दृह्य ) उनसे अपने को दृढ़ कर और बढ़ । क्योंकि ( दुर्मायवः ) दुःखदायी शब्द करने वाले ( मर्त्यासः ) मरने वा मारने वाले (निषङ्गिणः) खड्ग वा तरकसों वाले ( रिपवः ) शत्रुगण ( हन्त्वासः ) मारने योग्य हैं, बड़े बलवान् हैं, जब बलवान् शत्रुओं को मारना हो तो राजा मित्रवर्गों को और प्रजा को युद्ध की शिक्षा करे और उनके शस्त्र भी बड़े २ हों । ( २ ) दानशील ऐश्वर्यवान् के पक्षमें—कोश ख़ज़ाने बहुत बड़े २ हों । वह मित्रों और विद्वान् को दान करे और बढ़े । दुष्ट वचन, दुष्ट चाल और ( नि-सङ्गिणः ) निकृष्ट संग वाले पापी शत्रु पुरुष सदा ( हन्त्वासः ) मारने और दण्ड देने योग्य हों । विद्वान् पक्षमें—हे आचार्य तू बढ़े । तेरे ज्ञानकोश विस्तृत हों, तू मित्रों, प्रेमीजनों और स्तुतिशील को ज्ञान दे । दुष्टवचनी, दुराचारी, कुसंगी, पापकर्मा और दण्ड देने योग्य मनुष्य को दण्ड दे । इति तृतीयो वर्गः ॥

**सं घोषः शृण्वेऽवमैर॒मित्रै॑र्ज॒ही न्ये॑ष्व॒शनिं॒ तपि॑ष्ठाम् ।**
**वृ॒श्चेम॒धस्ता॒द्वि रु॑जा॒ सह॑स्व ज॒हि रक्षो॑ मघवन्र॒न्धय॑स्व ॥१६॥**

भा०—हे ( मघवन् ) पूज्य ! सेनापते ! ( अवमैः ) नीच, अधम, ( अमित्रैः ) स्नेह न करने वाले शत्रुजनों द्वारा तेरा ( घोषः ) गर्जन, तेरे अस्त्रों का गर्जन ( शृण्वे ) सुना जाय । और ( एषु ) उन पर तू ( तपिष्ठाम् ) अति सन्तापदायक अग्नि से खूब प्रज्वलित, ( अशनिं ) अशनि नामक विद्युत्वत् अस्त्र, तोप ( विजहि ) चलाकर शत्रु का नाश कर । ( ईम् ) इन शत्रुओं को सब तरफ़ से ( वृश्च ) शस्त्रों से काट ( विरुज ) विविध प्रकार से पीड़ित कर और उनको तोड़, ( सहस्व ) उनको पराजित

कर। ( रक्षः ) आगे बढ़ने से या सत्कार्यों के करने से रोकने वाले बलवान् विघ्नकारियों को ( जहि ) मार ( रन्धयस्व ) विनष्ट कर। तपिष्ठ अशनि 'तोप' है जिसका परिणाम यह है शत्रु के शरीर कटें, विविध प्रकार सैन्य टूटें फूटें, पराजित हों। 'तोप', 'तपिष्ठ' दोनों शब्दों की तुलना करो।

**उद्बृ॑ह॒ रक्षः॑ स॒हमू॑लमिन्द्र वृ॒श्चा मध्यं॒ प्रत्यग्रं॑ शृणीहि।**
**आ कीव॑तः सल॒लूकं॑ चकर्थ ब्रह्म॒द्विषे॒ तपु॑षिं हे॒तिम॑स्य॥ १७॥**

भा०—हे ( इन्द्र उद्बृह ) तू स्वयं उन्नत होकर बढ़! शत्रुहनन करने हारे! सेनापते! तू ( रक्षः ) विघ्नकारी दुष्ट पुरुष को ( सह-मूलम् ) मूलसहित ( वृश्च ) काट डाल और ( मध्यं ) उसके बीच के भाग के ( प्रत्यग्रं ) आगे बढ़े हुए अगले भाग को भी ( प्रति शृणीहि ) एक २ करके नष्ट कर। ( आकीवतः ) कितने भी दूर पर विद्यमान ( सललूकं ) भागते हुए अति लोभी, वा पापी पुरुष को ( चकर्थ ) मार और ( ब्रह्म-द्विषे ) धन के कारण हमसे द्वेष करने वाले वा वेद वा वेदज्ञ के द्वेषी पुरुष के विनाश के लिये ( तपुषिम् हेतिम् ) तापदायी, ज्वलनशील आग्नेय अस्त्र ( अस्य ) फेंक, चला।

**स्व॒स्तये॑ वा॒जिभि॑श्च प्रणेतः॒ सं यन्म॒हीरिष॑ आ॒सत्सि॒ पूर्वीः॑।**
**रा॒यो व॒न्तारो॑ बृह॒तः स्या॑मा॒स्मे अ॑स्तु॒ भग॑ इन्द्र प्र॒जावा॑न्॥१८॥**

भा०—हे ( प्रणेतः ) उत्तम नेता सेनापते! तू ( वाजिभिः ) संग्राम करने में कुशल वीर पुरुषों, अश्वों और उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों सहित ( यत् ) जब ( पूर्वीः ) पूर्व, वंशपरम्परा से प्राप्त या पूर्व से शिक्षित ( महीः ) बड़ी २, पूज्य ( इषः ) सेनाओं पर ( स्वस्तये ) हम प्रजाजन वा राष्ट्र के कल्याण के लिये ( आ सत्सि ) अध्यक्ष रूप से विराजे हम ( बृहतः ) बड़े २ ( रायः ) ऐश्वर्यों के ( वन्तारः ) विभाग करवाने वाले ( स्याम ) हों। ( अस्मे ) हमें हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! सेनापते! ( प्रजा-

वान् भगः ) उत्तम सन्तान और उत्तम प्रजा से युक्त ऐश्वर्य ( अस्तु ) प्राप्त हो ।

**आ नो॑ भर॒ भग॑मिन्द्र द्यु॒मन्तं॒ नि ते॑ दे॒ष्णस्य॑ धीमहि प्ररे॒के ।**
**ऊ॒र्वइ॑व पप्रथे॒ कामो॑ अ॒स्मे तमा पृ॑ण वसुपते॒ वसू॑नाम् ॥ १९ ॥**

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! तू ( नः ) हमें ( द्युमन्तं ) तेज से युक्त, प्रकाशयुक्त, चमकीला ( भगम् ) स्वर्ण मुक्ता आदि ऐश्वर्य ( आ-भर ) प्राप्त करा । ( प्ररेके ) बड़े भारी शंकास्थान, संशय-पूर्ण, संकटापन्न विपत्तिकाल में भी हम ( ते ) तुझ ( देष्णस्य ) दानशील पुरुष की ही ( धीमहि ) याद करें । तू अपनी दानशीलता से हमारे प्राणों के संकट संदेहादि के अवसर पर रक्षक हो । ( अस्मे कामः ) हमारी इच्छा, धनादि प्राप्त करने की अभिलाष भी ( ऊर्वः ) अग्नि के समान ( प्रपथे ) बढ़ा ही करती है । हे ( वसूनां वसुपते ) समस्त बसे हुए प्रजाजनों के बीच सब ऐश्वर्यों के और प्रजाओं के पालक ! तू हमारे ( तत् आपृण ) उस अभि-लाष को पूर्ण कर । अध्यात्म में वा आचार्य पक्षमें—शंका, संदेह से युक्त शास्त्र में ( देष्णस्य ) ज्ञानदाता आदेष्टा के प्रकाश युक्त ज्ञान को हम धारण करें । हमारा ( कामः ) अभिलाषुक आत्मा समुद्र की तरह से बढ़े, वसु अर्थात् अन्तेवासी शिष्यों का पति कुलपति उस आत्मा को ज्ञान से पूर्ण करे ।

**इ॒मं कामं॑ मन्दया॒ गोभि॒रश्वै॑श्च॒न्द्रव॑ता॒ राध॑सा प॒प्रथ॑श्च ।**
**स्व॒र्यवो॑ म॒तिभि॒स्तुभ्यं॒ विप्रा॒ इन्द्रा॑य॒ वाहः॑ कुशि॒कासो॑ अक्रन् २०**

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू ( गोभिः ) गौओं और ( अश्वैः ) अश्वों और ( चन्द्रवता ) सुवर्ण से युक्त ( राधसा ) कार्यसाधक धन से हमारे ( इमं कामं ) इस अभिलाषा को या अभिलाषा युक्त आत्मा को ( मन्दय ) तृप्त कर और हर्षित कर और ( पप्रथः च ) उसको और बढ़ा । (स्वर्यवः) सुख की कामना करने वाले ( विप्राः ) विद्वान् बुद्धिमान् ( वाहः ) कार्यों को अपने ऊपर लेने हारे ( कुशिकासः ) उत्तम वचन स्तुति बोलनेहारे

कुशल पुरुष ( इन्द्राय ) ऐश्वर्यवान् पुरुष के लिये ( कामं अक्रन् ) सदा अभिलाषा करते हैं, उसी को चाहते हैं। ( २ ) हे प्रभो ! तू हमारे इस 'काम' अर्थात् तृष्णा या आत्मा को ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रियों और आह्लाद-युक्त आराधना से मन्द कर या तृप्त कर, तुझ ईश्वर की ही वे सब विद्वान् स्तोता चाह करें।

**आ नो गोत्रा दर्दृहि गोपते गाः सम॒स्मभ्यं॑ स॒नयो॑ यन्तु वाजाः। दि॒वक्षा॑ असि वृषभ स॒त्यशु॑ष्मो॒ऽस्मभ्यं॒ सु म॑घवन्बोधि गो॒दाः ॥ २१ ॥**

भा०—हे ( गोपते ) पृथ्वी के पालक ! राजन् ! तू ( नः ) हमारे ( गोत्रा ) कुलों को ( आदर्दृहि ) आदर युक्त कर, बढ़ा। और ( गाः आदर्दृहि ) गौवों को प्रदान कर ( अस्मभ्यम् ) हमारे लिये ( वाजाः ) वेगवान् अश्वादि और संग्राम और ऐश्वर्य भी ( सनयः ) सुखप्रद, भोग योग्य ( संयन्तु ) होकर अच्छी प्रकार प्राप्त हों। हे ( वृषभ ) बलवन् ! तू ( दिवक्षाः ) सूर्य के समान विज्ञान प्रकाश आदि में व्यापक और ( सत्यशुष्मः ) सत्य और न्याय के बल से बलवान् और सच्चा बलवान् (असि) है। तू (गोदाः) गौ, भूमि, वाणी आदि का दाता है। तू हे (मघवन् ) ऐश्वर्यवन् ! ( अस्मभ्यं ) हमारे लाभ के लिये ही ( सु बोधि ) उत्तम ज्ञान कर और करा। ( २ ) हे गोपते ! आचार्य हमें ( गोत्रा ) वाणियों को प्रदान कर। ज्ञान वाणियें ही हमारे प्रति तेरे उत्तम दान हों। तू ज्ञाननिष्ठ एवं सत्य ज्ञान बल से युक्त है। तू हमारे लिये वेदवाणी-प्रद होकर हमें ज्ञान करा।

**शु॒नं हु॑वेम म॒घवा॑न॒मिन्द्र॑म॒स्मिन्भरे॒ नृत॑मं॒ वाज॑सातौ।**
**शृ॒ण्वन्त॑मु॒ग्रमू॒तये॑ स॒मत्सु॒ घ्नन्तं॑ वृ॒त्राणि॑ स॒ञ्जितं॒ धना॑नाम् ॥२२॥४॥**

भा०—हम लोग ( शुनं ) उत्साह में बढ़े हुए या ज्ञानवृद्ध या शीघ्र कार्य सम्पादन करने वाले ( मघवानम् ) उत्तम ऐश्वर्य के स्वामी,

( इन्द्रम् ) शत्रु के हन्ता ( अस्मिन् ) इस ( वाजसातौ ) ऐश्वर्य के देने वाले ( भरे ) संग्राम में ( नृतमं ) सर्वश्रेष्ठ नायक ( उग्रम् ) शत्रुओं के लिये भयप्रद ( समत्सु ) संग्रामों में ( ऊतये ) रक्षा करने के लिये ( शृण्वन्तं ) प्रजाओं की पुकार सुनने वाले और (वृत्राणि) बढ़े हुए शत्रुओं को ( घ्नन्तं ) विनष्ट करते हुए और ( धनानाम् सञ्जितम् ) धनों का विजय करने वाले पुरुष को ( हुवेम ) 'इन्द्र' इस आदरयोग्य पद से ( हुवेम ) बुलावें। उसी के 'मघवा' और 'श्वा' आदि भी नाम हैं।

## [ ३१ ]

विश्वामित्रः कुशिक एव वा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, १४, १६ विराट् पङ्क्तिः । ३, ६ भुरिक् पङ्क्तिः । २, ५, ६, १५, १७—२० निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ७, ८, १०, १२, २१, २२ त्रिष्टुप् । ११, १३ स्वराट् त्रिष्टुप् ॥ द्वाविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

**शास॒द्वह्नि॑र्दुहि॒तुर्न॒प्त्यं॑ गाद्वि॒द्वाँ ऋ॒तस्य॒ दीधि॑तिं सप॒र्यन् ।**
**पि॒ता यत्र॑ दुहि॒तुः सेक॑मृ॒ञ्जन्त्सं श॒ग्म्ये॑न॒ मन॑सा दध॒न्वे ॥ १ ॥**

भा०—( वह्निः ) कन्या को विवाह करने वाला पुरुष ( दुहितुः ) कन्या के गर्भ से उत्पन्न हुए ( नप्त्यं ) नाती को ( गात् ) प्राप्त होता है इस प्रकार ( विद्वान् ) जानता हुआ ( ऋतस्य ) धर्मशास्त्र या सत्य को (दीधितिं) धारण करने वाली व्यवस्था का ( सपर्यन् ) आदर करता हुआ ( शासत् ) ऐसा अनुशासन करे अर्थात् इस प्रकार की व्यवस्था करे ( यत्र ) जिसमें ( दुहितुः ) कन्या का ( पिता ) पिता, पालक ( सेकम् ) सेचन से प्राप्त पुत्र को ( ऋञ्जन् ) प्राप्त करता हुआ ( शग्म्येन ) सुखी (मनसा) चित्त से ( सं दधन्वे ) मान ले। और कन्या का सम्बन्ध योग्य पुरुष से कर दे। कन्या का पिता जिसके पुत्र नहीं है वह इस चिन्ता में

है कि कन्या का विवाह कर देने पर कन्या में जो नाती होगा उसको तो कन्या के साथ विवाहित पति ही ले लेगा। तब वह 'ऋत' अर्थात् सत्य क़ानूनी व्यवस्थापक के पास जाकर व्यवस्था मांगे। वहां सत्यव्यवस्था को धारण करने की 'सपर्या' अर्थात् सेवा करने वाला जज (शासत्) शासन करे, ऐसी व्यवस्था दे जिससे कन्या का पिता कन्या के (सेक) भीतर हुए पुत्र को प्राप्त कर सके, और सुखी चित्त से (सं दधन्वे) अपनी कन्या का सम्बन्ध दूसरे कुल से करदे। वह यही व्यवस्था है कि अपुत्र पिता की कन्या में जमाई से हुआ नाती ही कन्या के पिता का वंश-कर हो। वह अपने नाना की जायदाद का ही हकदार हो। देखो मनु के पुत्र-पुत्रिका विधान (मनु अ० ९। १२७॥)

**न जामये तान्वो रिक्थमारैक्चकार गर्भं सनितुर्निधानम्।**
**यदी मातरो जनयन्त वह्निमन्यः कर्ता सुकृतोरन्य ऋन्धन् ॥२॥**

भा०—(तान्वः) देह से उत्पन्न हुआ पुत्र (जामये) अन्यों के लिये पुत्र उत्पन्न करने वाली अपनी भगिनी को (रिक्थं) पिता का धन (न आरैक्) नहीं प्रदान करे। प्रत्युत वह उस अपनी भगिनी को (सनितुः) उसके भोक्ता, पाणिग्रहीता पति के लिये (गर्भं निधानं चकार) गर्भ धारण करने योग्य (चकार) बनावे। (यदि) यद्यपि (मातरः) माता पिता लोग (वह्निम् जनयन्त) पुत्र पुत्री दोनों को ही पुत्र रूप से या सन्तान रूप से उत्पन्न करते हैं तो भी उन दोनों में से (अन्यः) एक पुत्र ही (सुकृतोः) पिता के लिये सुखकारी कार्य पोषणादि का (कर्त्ता) करने हारा होता है। और (अन्यः) दूसरी कन्या (ऋन्धन्) केवल सुसम्पन्न सुभूषित मात्र ही करदी जाती है और दूसरे को दे दी जाती है। जिस प्रकार विद्वान् लोग अग्नि को उत्पन्न करते हैं जिनमें से एक केवल चमकाता प्रकाश देता है दूसरा यज्ञ को करता है। उसी प्रकार एक कुल को पालता पोषता दूसरा केवल मात्र सजाता ही है।

**अ॒ग्निर्ज॑ज्ञे जु॒ह्वा॒३॒॑ रेज॑मानो म॒हस्पु॒त्राँ अ॑रु॒षस्य॑ प्र॒यक्षे॑ ।**
**म॒हान् गर्भो॒ मह्या जा॒तमे॑षां म॒ही प्र॒वृद्ध॑र्य॒श्वस्य॑ य॒ज्ञैः ॥ ३ ॥**

भा०—जिसप्रकार ( जुह्वा ) 'जुहू' अर्थात् ज्वाला से ( रेजमानः ) कंपकपाता हुआ ( अग्निः ) अग्नि ( जज्ञे ) उत्पन्न होता है और वह ( अरुषस्य ) सर्व प्रकार में देदीप्यमान सूर्य के समान अपने ( महः पुत्रान् ) बड़े २ किरणों को (प्रयक्षे) उत्तम रीति से एकत्र करने या प्रसारित करने में समर्थ होता है। वह अग्नि ही ( एषां महान् गर्भः ) इन सब किरणों का बड़ा भारी उत्पादक और धारक होता है और ( एषां महि आजातम् ) उनका बहुत बड़ा स्वरूप होता है ( हर्यश्वस्य ) पीत किरणों से युक्त सूर्य के किरणों से मिलने से उनकी ( प्रवृत् ) चेष्टा या प्रवृत्ति या कार्य करने की शक्ति भी बहुत बड़ी होती है। उसी प्रकार ( जुह्वा ) वाणी के बल से ( रेजमानः ) आगे बढ़ता हुआ ( अग्निः ) ज्ञानवान् विद्वान् पुरुष भी ( जज्ञे ) प्रकट होता है और वह ( अरुषस्य ) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के ( महः पुत्रान् ) बड़े २ पुत्रों को (प्रयक्षे) उत्तम पद पर पहुंचने, उत्तम रीति से सत्संग करने के लिये उत्पन्न करता है। उन बड़े पुत्र रूप शिष्यों का गुरु के अधीन रहना यह विद्वान् आचार्य का ( महान् गर्भः ) बड़ा भारी गर्भ के समान विद्यागर्भ है जिसमें वह शिष्यों को धारण करता है। ( एषाम् आजातम् महि ) इनका इस प्रकार वेद ज्ञान में उत्पन्न होना भी बड़ा आदरयोग्य महत्त्व पूर्ण होता है। और ( हर्यश्वस्य ) आकर्षणशील आत्मवान् महान् गुरु के ( यज्ञैः ) दिये विद्या दानों और सत्संगों से ( एषां ) इन शिष्यों की ( प्रवृत् ) प्रवृत्ति, चेष्टा भी ( मही ) बड़ी, उत्तम हो जाती है। ( २ ) इसी प्रकार अग्रणी नायक अपनी कान्ति और वाणी के बल से शत्रुओं को कंपाता और स्वयं तमतमाता हुआ बड़े २ पुरुषों का ( प्रयक्षे ) उत्तम संगठन करने के लिये उत्पन्न हो। उस तेजस्वी का (गर्भः) वश भी बड़ा, उनका स्वरूप भी बड़ा,

और तीव्र अश्वों के स्वामी के दान मान सत्कारों से उनका कार्य व्यापार भी बहुत बड़ा, विशाल हो जाता है।

**अभि जैत्रीरसचन्त स्पृधानं महि ज्योतिस्तमसो निरजानन्।**
**तं जानतीः प्रत्युदायन्नुषासः पतिर्गवामभवदेक इन्द्रः ॥ ४ ॥**

भा०—( स्पृधानं ) शत्रु के साथ मुकाबला करने वाले वीर पुरुष को देखकर वा प्राप्त कर ( जैत्रीः ) विजय करने वाली सेना और प्रजाएं ( असचन्त ) समवाय या संघ बना लेती हैं। और उसको ही वे ( तमसः ) अन्धकार के बीच में मार्ग दिखाने वाले ( महि ज्योतिः ) बड़े भारी ज्योति के समान ही ( निर्-अजानन् ) जानते हैं। वे उसको अन्धकार रात्रि में से निकले सूर्य के समान ही जानते हैं। ( उषासः ) प्रभात वेलाएं जिस प्रकार ( तं प्रति उद् आयन् ) उसका आश्रय लेकर ही ऊपर आती हैं। उसी प्रकार ( उषासः ) शत्रुतापकारी सेनाएं, ( उषासः ) कमनीय वा उदयशील, प्रजाएं ( जानतीः ) जानती बूझती हुई ( तं प्रति ) उसको भली प्रकार आश्रय करके ( उत आयन् ) ऊपर उठती हैं। वही ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् तेजस्वी शत्रुनाशक पुरुष ( गवाम् एकः पतिः अभवत् ) सब भूमियों का, अद्वितीय पालक हो जाता है।

**वीळौ सतीरभि धीरा अतृन्दन् प्राचा हिन्वन् मनसा सप्त विप्राः।**
**विश्वामविन्दन् पथ्यामृतस्य प्रजानन्नित्ता नमसा विवेश॥५॥५॥**

भा०—( धीराः ) धीर, बुद्धिमान् ध्याननिष्ठ विद्वान् जन ( वीडौ ) बल प्राप्त होजाने पर या बलवान् प्राण के आश्रय पर ही ( सतीः सप्त ) बलवती सातों वृत्तियों या प्रकृतियों को ( अतृन्दन् ) मारते हैं। उन पर वश करते हैं। ( विप्राः ) बुद्धिमान् पुरुष ही उन ( सप्त ) सातों को ( प्राचा ) उत्तम पद की ओर जाने वाले ( मनसा ) मननशील चित्त वा ज्ञान से ( अहिन्वन् ) उनको बढ़ाते, उनको पुष्ट करते । और

वे ( विश्वाम् ) समस्त ( ऋतस्य पथ्याम् ) सत्य के मार्ग ( अविन्दन् ) जान लेते हैं। ( प्रजानन् इत् ) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष ही ( ताः ) उन सातों को ( नमसा ) गुरुभक्ति, परमेश्वरोपासना और उत्तम आहार द्वारा ( आ विवेश ) प्रविष्ट होकर उनको दमन करता है। (२) राष्ट्र पक्षमें— स्वामी, अमात्य, सुहृद्, राष्ट्र, दुर्ग, कोष और बल इन सातों प्रकृतियों को ( धीराः = अधि ईराः ) अध्यक्षजन वश करता है। अपने (मनसा) वश करने वाले बल से उनको बढ़ावे, जो ( ऋतस्य) सत्य न्याय के सब हित मार्ग को जानते हैं। विद्वान् ही उनको अन्न के बल पर या नमाने वाले दण्ड के बल पर वश करे।

**वि॒दद् यदी॑ स॒रमा॑ रु॒ग्णमद्रे॒र्महि॒ पाथः॑ पू॒र्व्यं स॒ध्र्य॑क् कः।**
**अग्रं॑ नयत् सु॒पद्यक्ष॑राणा॒मच्छा॒ रवं॑ प्रथ॒मा जा॑न॒ती गा॑त् ॥ ६ ॥**

भा०—जिस प्रकार ( यदि ) जब ( सरमा ) वेग से ध्वनि करने वाली विद्युत् (अद्रेः) मेघ का (रुग्णम्) भंग (विदत्) कर देती है। तब वह ( सध्र्यक् ) साथ में ही विद्यमान (पूर्व्यं) पूर्व से सञ्चित (महि पाथः) बड़े भारी जलराशि को ( कः ) उत्पन्न करती है। वह ( सुपदी ) शोभन रूप वाली या उत्तम वेग से जाने वाली विद्युत् ( अक्षराणां ) नीचे न गिरने वाले मेघस्थित जलों के ( अग्रं ) अग्र प्रान्त में स्थित भाग को ( नयत् ) नीचे ले आती है ( प्रथमा ) वह सब से प्रथम या व्यापक हो कर भी (अच्छा) खूब ( रवं जानती गात् ) ध्वनि करती हुई प्रकट होती है। उसी प्रकार ( सरमा ) वेग से जाने वाले वीर पुरुष की बनी सेना ( यदि अद्रेः रुग्णम् विदत् ) जब अपने दीर्ण होने वाले प्रबल नायक का भङ्ग हुआ जान ले तो वह ( पूर्व्यं ) पूर्व के लोगों से किये ( सध्र्यक्) साथ में विद्यमान ( महि पाथः ) बड़े भारी पालनशील बल को ( कः ) उत्पन्न करे। वह ( सुपदी ) उत्तम पदों, संकेतों से युक्त होकर ( अक्षराणां) अपने में से 'अक्षर', अविनाशी, शत्रु भय से न भाग जाने वाले, अविचलित

स्थिर पुरुषों के ( अग्रं ) मुख्य भाग को ( नयत् ) आगे बढ़ावे और वह ( प्रथमा ) स्वयं सर्वश्रेष्ठ ( रवं जानती ) उनके संकेत ध्वनि का जानती हुई ( अच्छ गात् ) सेना आगे आगे बढ़े।

**अगच्छदु विप्रतमः सखीयन्नसूदयत्सुकृते गर्भमद्रिः।**
**ससान मर्यो युवभिर्मखस्यन्नथाभवदङ्गिराः सद्यो अर्चन् ॥ ७ ॥**

भा०—( विप्रतमः ) सब से अधिक विद्वान् पुरुष ( सखीयन् ) सबको अपना मित्र बनाने की इच्छा करता हुआ ( अगच्छत् ) प्राप्त हो। और ( अद्रिः गर्भम् ) जिस प्रकार मेघ अपने गर्भ में स्थित जल को ( सुकृते असूदयत् ) शुभ अन्नोत्पत्ति के लिये दूसरों पर बरसा देता है और ( अद्रिः गर्भम् सुकृते असूदयत् ) जिस प्रकार पर्वत वा पाषाण खण्ड अपने भीतर के मणिमुक्ता, जल आदि पदार्थ उत्तम शिल्पी पुरुष के लाभ के लिये उत्पन्न कर देता है उसी प्रकार वह विद्वान् पुरुष भी ( अद्रिः ) मेघवत् उदार और पर्वत के समान अचल होकर भी ( सुकृते ) अन्यों के सुख उत्पन्न करने के लिये या ( सुकृते ) उत्तम धर्माचरण करने वाले शिष्य जन के उपकार के लिये ( गर्भम् ) अपने भीतर के ज्ञान को ( असूदयत् ) उत्तम जलों के समान प्रवाहित करे, ज्ञानस्रोत को बहादे। ( मर्यः ) उत्तम पुरुष ( युवभिः ) युवा, बलवान् पुरुषों सहित ( मखस्यन् ) ज्ञान यज्ञ का सम्पादन करता हुआ ( ससान ) ज्ञान का दान और विभाग करे। ( अथ ) और ( अंगिराः ) अग्नि के समान तेजस्वी होकर (सद्यः) शीघ्र ही (अर्चन्) अन्यों से पूजनीय ( अभवद् ) हो जावे।

**सतः सतः प्रतिमानं पुरोभूर्विश्वा वेद जनिमा हन्ति शुष्णम्।**
**प्र णो दिवः पदवीर्गव्युरर्चन्त्सखा सखीँरमुञ्चन्निरवद्यात् ॥ ८ ॥**

भा०—( पुरोभूः ) सबसे पूर्व और सबके आगे होकर रहने वाला अग्रणी नायक ( सतः-सतः ) प्रत्येक बलवान् पुरुष का ( प्रतिमानं )

परिमाण करने वाला, सब को मापने में समर्थ, सब से अधिक बलशाली हो और ( विश्वा ) सब ( जनिमा ) उत्पन्न जन्तुओं को ( वेद ) जाने। वह ( शुष्णम् ) सब का शोषण करने वाले दुष्ट पुरुष को ( हन्ति ) मारे वह ( नः ) हमें ( दिवः ) प्रकाश सुख ज्ञान की (पदवीः) पगदण्डियों पर ( प्र अर्चन् ) आगे बढ़ावे वह ( गव्युः ) गो अर्थात् पृथिवी अर्थात् उस पर रहने वाली प्रजा का हितेच्छु और ( सखा ) सब का मित्र होकर ( सखीन् ) अपने मित्रों को ( अवद्यात् ) अकथनीय निन्दित पाप से ( अमुञ्चत् ) ) छुड़ावे। ( २ ) विद्वान् पुरुष प्रत्येक पदार्थ को प्रतिमान परिमाण और सब उत्पत्तियों को जाने। वह उनके (शुष्ण ) शोषक दुःख शोकादि का नाश करे अथवा उनके वीर्य को प्राप्त करे वह ( गव्युः ) वाणी का स्वामी, ज्ञान की उत्तम प्रतिष्ठाओं को पावे, मित्र शिष्यों को पाप से मुक्त करे।

**नि गव्यता मनसा सेदुरर्कैः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम्।**
**इदं चिन्नु सदनं भूर्येषां येन मासाँ असिषासन्नृतेन॥ ९॥**

भा०—विद्वान् पुरुष ( गव्यता मनसा ) वाणी के समान स्तुति शील चित्त से ( अमृतत्वाय ) अमृत अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करने के लिये ( अर्कैः ) अर्चना करने योग्य, स्तुतियोग्य विद्वानों सहित या मन्त्रों से ( गातुम् कृण्वानासः ) उत्तम मार्ग या भूमि या स्तुति को करते हुए ( नि सेदुः ) नियम से स्थिर होकर विराजें। ( एषां ) इन विद्वानों का ( इदं चित् नु ) यही उत्तम ( भूरि ) बहुत बड़ा ( सदनं ) आश्रय या प्रतिष्ठा है ( येन ) जिस ( ऋतेन ) सत्य, धर्माचरण के बल से ( मासान् ) मासों या काल के नाना भागों को (असिषासन्) विभक्त करते हैं। भिन्न २ मास के लिये वे भिन्न २ व्रताचरण की व्यवस्था कर लेते हैं।

**सम्पश्यमाना अमदन्नभि स्वं पयः प्रत्नस्य रेतसो दुघानाः।**
**वि रोदसी अतपद्घोष एषां जाते निष्ठामदधुर्गोषु वीरान्॥१०॥६॥**

भा०—( रेतसः पयः दुघानाः ) उत्तम वीर्य के उत्पादक दूध को जिस प्रकार गौओं से दुहा जाता है उसी प्रकार ( प्रत्नस्य ) सर्वश्रेष्ठ, सनातन से चले आये ( रेतसः ) बल वीर्य, ब्रह्म विज्ञान के उत्पादक (स्वं) अपने आत्मा को ( पयः ) वृद्धि या पुष्टकारक ज्ञान रूपसे ( दुघानाः ) पूर्ण करते हुए और ( स्वम् सम्पश्यमानाः ) अपने ही आत्मा को सम्यक् दृष्टि से साक्षात् करते हुए ( अभि अमदन् ) खूब प्रसन्न और हर्षित होते हैं। ( एषां ) उनको ( घोषः ) वाणी, उपदेश ही ( रोदसी ) सूर्य और पृथिवी के समान समस्त स्त्री पुरुषों को ( वि अतपत् ) विविध प्रकार से तपाता या तपस्या करता है। वे विद्वान् गण ( जाते ) अपने पुत्र के समान शिष्य में ही ( निःस्थाम् अदधुः ) निष्ठाको धारण कराते और ( गोषु ) वाणियों, विद्याओं में ( वीरान् ) वीर्यवान् पुरुषों को ( अदधुः ) नियुक्त करते हैं। वीर पुरुष अपने पूर्व के संचित सुरक्षित वीर्य से उत्पन्न अपने पुष्टिकारी बल को देखते और पूर्ण करते हुए अपनी आज्ञा से स्वपक्ष और परपक्ष दोनों को स्थापित करते हैं। ( जाते ) प्राप्त राष्ट्र में या प्रसिद्ध पुरुष में स्थिरता प्राप्त करते और भूमियों पर वीरों को स्थापित करते हैं। ( २ ) अध्यात्म में ( वीरान् ) प्राणों को।

**स जातेभिर्वृत्रहा सेदु हव्यैरुदुस्रिया असृजदिन्द्रो अर्कैः।**
**उरूच्यस्मै घृतवद्भरन्ती मधु स्वाद्म दुदुहे जेन्या गौः ॥ ११ ॥**

भा०—(सः) वह बलवान् पुरुष (जातेभिः) प्रसिद्ध बलशाली पुरुषों द्वारा, उनकी सहायता से ( वृत्रहा ) विघ्नकारी, बढ़ते शत्रुओं को नाश करने हारा होता है ( सः ) वह (इत् उ) ही (हव्यैः) वेतनादि देने योग्य, उत्तम नाम पदों से व्यवहार करने योग्य ( अर्कैः ) अर्चना योग्य पूज्य, स्तुत्य पुरुषों से ( उस्रियाः ) उर्वरा भूमियों को ( असृजत् ) युक्त करता है। और ( जेन्या गौः ) विजय करने योग्य, वह भूमि ( उरूची ) बहुत से ऐश्वर्यों से युक्त होकर स्वयं ( घृतवत् मधु ) जलों से युक्त अन्न ( स्वाद्म )

उत्तम खाने योग्य स्वादु पदार्थ (भरन्ती) धारण करती हुई (दुदुहे) गौ के समान प्रदान करती है। (२) विद्वान् पुरुष (जातेभिः) प्रादुर्भूत हुए मन्त्रों या विचारों द्वारा (उस्रियाः) वाणियों को प्रकट करे। यह (जेन्या गौः) विजयशालिनी वाणी (उरूची) बहुत ज्ञान युक्त होकर गौ के समान स्नेह युक्त मधुर सुख कर परिणाम उत्पन्न करती है।

**पि॒त्रे चि॑च्चक्रुः॒ सद॑नं॒ सम॑स्मै म॒हि त्विषी॑मत्सु॒कृतो॒ वि हि ख्यन्। वि॒ष्क॒भ्नन्तः॒ स्कम्भ॑नेना॒ जनि॑त्री॒ आसी॑ना ऊ॒र्ध्वं र॑भ॒सं वि मि॑न्वन् ॥ १२ ॥**

भा०—विद्वान् पुरुष (अस्मै पित्रे) इस सर्वपालक पुरुष के लिये ही (महि सदनं) बड़ा भारी गृह, भवन (त्विषीमत्) उत्तम दीप्ति से युक्त (चित्) बड़े आदर से (सं चक्रुः) बनाते हैं और (सुकृतः) उत्तम शिल्पकार लोग (हि) ही उसको (वि ख्यन्) विशेष रूप से देखते हैं। वे लोग (जनित्री) माता के समान उत्पन्न करने वाली भूमि आधार और शिखर भाग दोनों को (स्कम्भनेन) थामने वाले स्तम्भादि साधन से (वि-स्कभ्नन्तः) विविध उपायों से थामते और दृढ़ करते हुए (उध्वंम् आसीनाः) उन्नत स्थान, शिखर पर बैठे हुए (रभसं) गृह को सब कार्यों का साधक (विमिन्वन्) विविध प्रकार मापें और बनावें। (२) अध्यात्म में—(सुकृतः) प्राणगण उस इन्द्र के इस देह रूप तेजोमय गृह को बनाते हैं, देखते हैं, विद्वान् लोग कुम्भक प्राणायाम से (जनित्री) प्राण अपान दोनों को थामते और सर्वकार्यसाधक आत्मा परमात्मा का विविध उपायों से ज्ञान और साक्षात् करते हैं।

**म॒ही यदि॑ धि॒षणा॑ शि॒श्नथे॒ धात्स॑द्यो॒वृधं॑ वि॒भ्वं१॒॑ रोद॑स्योः। गिरो॒ यस्मि॑न्ननव॒द्याः स॑मी॒चीर्विश्वा॒ इन्द्रा॑य॒ तवि॑षी॒रनु॑त्ताः ॥१३॥**

भा०—(यदि) यदि (मही) भारी वाणी और प्रज्ञा तुम लोगों की (यस्मिन्) जिस परमेश्वर के विषय में (शिश्नथे) स्वयं शिथिल

हो जाय, उसका वर्णन करने में असमर्थ हो तो भी वह ( रोदस्योः ) आकाश और पृथिवी में भी ( विभ्वं ) विविध शक्तियों में विद्यमान व्यापक ( सद्योवृधं ) अति शीघ्र बढ़ा देने वाले उसी प्रभु परमात्मा को (धात्) बतलाती है। ( यस्मिन् ) जिस परमेश्वर में (अनवद्याः) निन्दादि दोषों से रहित ( विश्वाः ) समस्त ( गिरः ) वाणियें ( समीचीः ) अच्छी प्रकार संगत होती हैं। और उसी ( इन्द्राय ) परमैश्वर्यवान् की ही (विश्वाः तविषीः) समस्त ये शक्तियां ( अनुत्ताः ) स्वयं चल रही हैं। किसी अन्य द्वारा प्रेरित नहीं हैं। ( २ ) शास्य शासकों के बीच विशेष सामर्थ्यवान् पुरुष बड़ी बलवती सेनाएं अपने आश्रय के लिये नियुक्त करे। जिसमें स्तुतिये संगत हों, सब शक्ति सेनाएं उसी के आधीन रहें।

मह्या ते॑ स॒ख्यं व॑श्मि श॒क्तीरा वृ॑त्र॒घ्ने नि॒युतो॑ यन्ति पू॒र्वीः ।
महि॑ स्तो॒त्रमव॒ आग॑न्म सू॒रेर॒स्माकं॒ सु म॑घवन्बोधि गो॒पाः ॥१४॥

भा०—हे (मघवन् ) ऐश्वर्यवन्! हे परमेश्वर! हम लोग ( ते ) तेरे (महि सख्यं) बड़े भारी पूजनीय मैत्रीभाव को (आवश्मि) सदा चाहते हैं। (वृत्रघ्ने) बढ़ते शत्रुओं को नाशक और बाधक के अज्ञान नाशक, सूर्यवत् प्रकाशक तेरे ही अधीन ( नियुतः ) नियुक्त या लक्षों करोड़ों ( पूर्वीः ) पहले से चली आई, सनातन या पूर्ण ( शक्तीः ) सेनाएं शक्तियां ( आ यन्ति ) प्राप्त हों ( सूरेः ) सबके उत्पादक, प्रेरक और ज्ञानवान् प्रकाशक तेरे ही ( स्तोत्रम् ) स्तुति और ( महि ) बड़े भारी, पूज्य ( अवः ) ज्ञान और रक्षादि को हम लोग ( आ अगन्म ) प्राप्त हों। तू ( अस्माकं ) हमारा ( गोपाः ) रक्षक होकर ( सु बोधि ) उत्तम रीति से ज्ञानवान् हो और हमें भी प्रबुद्ध कर।

महि॒ क्षेत्रं॑ पु॒रुश्च॒न्द्रं वि॑वि॒द्वानादित्सखि॑भ्यश्च॒रथं॒ समै॑रत् ।
इन्द्रो॒ नृभि॑रजन॒द्दीद्या॑नः सा॒कं सूर्य॑मु॒षसं॑ गा॒तुम॒ग्निम् ॥१५॥७॥

भा०—( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् और तत्वदर्शी राजा और विद्वान् पुरुष ( सखिभ्यः ) अपने समान ख्याति और दर्शन विज्ञान से युक्त अपने मित्र जनों के उपकार के लिये ही वड़ा भारी, अति उत्तम ( क्षेत्रं ) रहने के लिये, बीज अनाजादि बोने के लिये और निवास करने के लिये क्षेत्र, खेत, पुत्रोत्पादक स्त्री और कार्य क्षेत्र, और ( पुरु-चन्द्रं ) बहुत प्रकार के सुख आह्लाद जनक धन को ( विविद्वान् ) विविध उपायों से प्राप्त करता और कराता हुआ ( आत् इत् ) अनन्तर ( चरथं ) जंगम सम्पत्ति और भोग्य अन्नादि सामग्री भी ( सम् ऐरत् ) प्रदान किया करे। और वह ( नृभिः साकं ) अपने प्रधान नायक पुरुषों के साथ मिलकर ( दीद्यानः ) स्वयं तेजस्वी होकर विद्या के द्वारा ( सूर्यं उषसं ) सूर्य और उषा और ( गातुम् अग्निम् ) पृथिवी और अग्नि के समान ( साकं ) एक साथ मिलें। माता पिता और पुत्र और पत्नी पति के जोड़े ( अजनत् ) उत्पन्न करे वा ( सूर्यम् उषसं ) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष, उषा के समान कान्तियुक्त या शत्रुसंतापक सेना को और ( गातुम् ) पृथ्वी के समान विस्तृत राष्ट्र और ( अग्निम् ) अग्नि के समान तेजस्वी ब्राह्मण और अग्रणी पुरुषों को पैदा करे, उनको बनावे।

**अपश्चिदेष विभ्वोऽदमूनाः प्र सध्रीचीरसृजद्विश्वश्चन्द्राः।**
**मध्वः पुनानाः कविभिः पवित्रैर्द्युभिर्हिन्वन्त्यक्तुभिर्धनुत्रीः ॥१६॥**

भा०—( दमूनाः ) मन को वश करने वाला और राष्ट्र को दमन करने मे समर्थ पुरुष ( अपः चित् ) जलों के समान रोक लगा देने पर यथेष्ट दिशामें ले जाने योग्य ( सध्रीचीः ) अपने साथ सहयोग करने वाली ( विश्व-चन्द्राः ) सब को आह्लाद करने वाली सब प्रकार के धन सुवर्णादि से समृद्ध (विभ्वः) व्यापक, विविध सुखों के उत्पादक विद्याओं और प्रजाओं को (प्र असृजत्) और उत्तम रीति से उन्नत करे। वे विद्याएं और प्रजाएं ( द्युभिः अक्तुभिः ) दिन और रात, सदा ही ( मध्वः ) अन्न

जल आदि मधुर, बलकारी पदार्थों को ( पुनानाः ) पवित्र करती हुई और (पवित्रैः) स्वयं पवित्र और अन्यों को भी पवित्र करने वाले, पंक्तिपावन (कविभिः ) दूरदर्शी विद्वानों द्वारा ( धनुत्रीः ) सबको प्रसन्न करनेवाली और स्वयं धन धान्य और बल को रखने वाली होकर ( हिन्वन्ति ) स्वयं बढ़ें बढ़ावें। विद्वान् पुरुष अपने संग रहने वाली शिष्य प्रजाओं और विद्याओं को सर्वाह्लादक विशेष सामर्थ्यवान् करें और नायक पुरुष अपनी प्रजाओं को सुवर्णादि से समृद्ध करें।

**अनु कृष्णे वसुधिती जिहाते उभे सूर्यस्य मंहना यजत्रे।**
**परि यत्ते महिमानं वृजध्यै सखाय इन्द्र काम्या ऋजिप्याः॥१७॥**

भा०—( सूर्यस्य मंहना ) जिस प्रकार सूर्य के महान् सामर्थ्य से ( उभे ) दोनों ( कृष्णे ) श्वेत और काली, प्रकाशमय और अन्धकारमय, ( यजत्रे ) परस्पर संगत हुए दिन रात्रि तथा ( कृष्णे यजत्रे ) एक दूसरे का आकर्षण करने वाले आकाश और पृथिवी ( अनु जिहाते ) एक दूसरे के पीछे अनुसरण करते और अनुकूल रहते हैं। और उसी के सामर्थ्य से दोनों ( वसुधिती ) बसने वाले लोकों को धारण करते हैं उसी प्रकार हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! ( सूर्यस्य ) सूर्य के समान तेजस्वी, शासक तेरे ( मंहना ) महान् सामर्थ्य और दान से ( कृष्णे ) एक दूसरे को परस्पर आकर्षण करने वाले, एक दूसरे के प्रिय ( यजत्रे ) एक दूसरे को आत्मसमर्पण करने वाले और संगतिशील स्त्री पुरुष ( उभे ) दोनों ( अनुजिहाते ) एक दूसरे के अनुकूल चलते और व्यवहार करते हैं। तेरे ही सामर्थ्य से दोनों ( वसुधिती ) ऐश्वर्यों को धारण करते हैं। हे ऐश्वर्यवन्! ( काम्या ) कामना करने वाले, ( ऋजिप्याः ) ऋजु, सरल धर्मानुकूल व्यवहार करने वाले ( सखायः ) मित्र गण ( वृजध्यै ) शत्रुओं का वर्जन करने के लिये ( ते महिमानं ) तेरे ही महान् सामर्थ्य को ( परि )

सब प्रकार से आश्रय लेते हैं। (२) ईश्वर के महान् सामर्थ्य से परस्पर पूर्वक दिन-रात्रिवत् सूर्य चन्द्र चलते और धर्मात्मा जन पाप को वर्जते हैं।

पतिर्भव वृत्रहन्त्सूनृतानां गिरां विश्वायुर्वृषभो वयोधाः।
आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान्महीभिरूतिभिः सरण्यन्॥१८॥

भा०—हे (वृत्रहन्) मेघों को छिन्न भिन्न करने वाले सूर्य के समान तेजस्वी राजन्! हे शत्रुओं के नाशक! सूर्य जिस प्रकार (विश्वायुः) सबको आयु, दीर्घ जीवन देने वाला, (वयोधाः) बल धारण करने वाला, (वृषभः) मेघ से वृष्टि करने वाला (गिरां पतिः) अन्तरिक्षस्थ मेघ गर्जनाओं का स्वामी है उसी प्रकार तू (विश्वायुः) समस्त मनुष्यों का स्वामी, सबके जीवनों का रक्षक (वयोधाः) बल और विज्ञान को धारण करने वाला, (वृषभः) शान्ति, सुख का वर्षक (सूनृतानां गिरां) उत्तम सत्य ज्ञान से पूर्ण वाणियों और उत्तम ज्ञान धन वा अन्नों से समृद्ध स्तुतिकर्त्ताओं का (पतिः भव) पालक हो। (शिवेभिः) कल्याणकारी, (सख्येभिः) मित्रता के भावों, कार्यों से, और (महीभिः ऊतिभिः) बड़ी रक्षा करने वाली शक्तियों और रक्षा साधनों से (महान्) महान् आदरणीय होकर (सरण्यन्) सबके जाने योग्य उत्तम मार्ग के समान सबका चारा होता हुआ वा स्वयं उत्तम ज्ञान को प्राप्त करता हुआ (नः) हमें (आगहि) प्राप्त हो!

तमङ्गिरस्वन्नमसा सपर्यन्नव्यं कृणोमि सन्यसे पुराजाम्।
द्रुहो वि याहि बहुला अदेवीः स्वश्च नो मघवन्त्सातये धाः॥१९॥

भा०—हे (अंगिरस्वन्) जलते हुए अंगारों के समान तेजस्विन्! वा तेजस्वी विद्वानों वा वीरों के स्वामिन्! राजन्! (तम्) उस (नव्यं) स्तुति करने योग्य (पुराजाम्) सबसे पुरातन वा पूर्व उत्पन्न, वयोवृद्ध तुझको (नमसा) नमस्कार और अन्नादि द्वारा

( सपर्यन् ) पूजा करता हुआ ( सन्यसे ) धनों का परस्पर विभाग करने वाले जनों के बीच न्यायानुकूल व्यवस्था वा उद्योग करने के लिये ( कृणोमि ) नियत करूं। तू ( बहुलाः ) बहुत सी ( द्रुहः ) परस्पर द्रोह करने वाली ( अदेवीः ) ज्ञान प्रकाश युक्त से व्यवहारज्ञ विद्वान् वा राजा से रहित प्रजाओं को ( वि याहि ) विविध प्रकार से प्राप्त हो, वश कर, ऐसी द्रोही और अदानशील शत्रु-प्रजा पर ( वि याहि ) विविध उपायों से आक्रमण कर। और ( अदेवीः वि याहि ) अविदुषी स्त्रियों और प्रजाओं को दूर कर अर्थात् उनको विद्वान् कर। हे ( मघवन् ) ऐश्वर्य-वन् ! तू ( नः ) हमें ( सातये ) प्रदान करने के लिये ( स्वः ) सुख ऐश्वर्य ( धाः ) धारण करा।

मिहः पावकाः प्रतता अभूवन्त्स्वस्ति नः पिपृहि पारमासाम्।
इन्द्र त्वं रथिरः पाहि नो रिषो मक्षूमक्षू कृणुहि गोजितो नः॥२०॥

भा०—हे राजन् ! हे सेनापते ! हे विद्वन् ! ( पावकाः ) अग्नियों की ( मिहः ) वर्षाएं ( प्रतताः ) दूर तक फैली हुई ( अभूवन् ) हों, तू ( नः ) हमें ( आसाम् पारम् ) उनके पार करके ( स्वस्ति ) सुख-पूर्वक ( पिपृहि ) पालन कर। अथवा—( पावकाः ) पवित्र स्वच्छ करने वाली (मिहः) जलवृष्टियें ( प्रतताः अभूवन् ) दूर २ तक फैली हों ( नः ) हमारे ( आसाम् ) इनके पालन सामर्थ्य को ( स्वस्ति ) सुख-पूर्वक ( पिपृहि ) पूर्ण कर। अर्थात् खूब वृष्टियां हों उनसे प्रचुर अन्न हों और प्रजा का पालन हो। इसी प्रकार राष्ट्र में ( मिहः पावकाः ) ज्ञान सेचक, परमपावन पुरुष दूर २ तक फैलें। उनसे हमें ( आसाम् पारम् ) उन शत्रु सेनाओं और विपत्तियों के पार करे, सुख को पूर्ण कर। हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! ( त्वं ) तू ( रथिरः ) महारथी होकर ( नः ) हमें ( रिषः ) हिंसक पुरुष और जन्तु से ( पाहि ) बचा। और ( मक्षु

मक्षु ) अति शीघ्र, ( नः ) हमें ( गोजितः कृणुहि ) भूमिविजयी वाग्-विजयी और जितेन्द्रिय बना ।

**अदे॑दिष्ट वृत्र॒हा गोप॑ति॒र्गा अ॒न्तः कृ॒ष्णाँ अ॑रु॒षैर्धाम॑भिर्गात् ।**
**प्र सू॒नृता॑ दि॒शमा॑न ऋ॒तेन॒ दुर॑श्च॒ विश्वा॑ अवृणो॒दप॒ स्वाः ॥२१॥**

भा०—जिस प्रकार ( वृत्रहा ) अन्धकार का नाशक ( गोपतिः ) किरणों का स्वामी सूर्य ( गाः अदेदिष्ट ) रश्मियों को दूर २ तक डालता, जगत् को प्रकाशित करता है । और जिस प्रकार ( कृष्णान् अन्तः ) काले अन्धकारों के भीतर (अरुषैः धामभिः) अति देदीप्यमान प्रकाशों से ( गात् ) प्रवेश करता और उनको व्याप लेता है । और जिस प्रकार वह ( ऋतेन ) जल के वर्षण द्वारा ( सूनृता दिशमानः ) अन्नों को प्रदान करता हुआ ( स्वाः विश्वाः दुरः अवृणोत् ) अपने सब अन्धकारवारक किरणों को दूर २ तक प्रकट करता है । उसी प्रकार राजा वा सेनापति ( वृत्रहा ) बढ़ते और घेरते हुए शत्रु का नाश करने हारा वीर पुरुष ( गो-पतिः ) समस्त भूमियों और आज्ञा वाणियों का स्वामी होकर ( गाः अदेदिष्ट ) भूमियों पर शासन करे और आज्ञाओं का प्रदान किया करे । इसी प्रकार ( वृत्रहा गोपतिः गाः अदेदिष्ट ) अज्ञान या विघ्नों का नाशक, वेदवाणियों का पालक विद्वान् शिष्यों को वाणियों का उपदेश करे । सेनापति ( अरुषैः धामभिः ) देदीप्यमान तेजों से और प्रजाओं का वध न करने वाले राष्ट्र के धारक पोषक उपायों से ( कृष्णान् अन्तः गात् ) कर्षण करने योग्य, दबाने योग्य दुष्टों के भीतर प्रवेश करे और कर्षक किसान प्रजाओं के भीतर तक पहुंचे, उनका प्रिय बने। इसी प्रकार आचार्य ( अरुषैः धामभिः ) रोष, ताड़नादि से रहित ज्ञानधारक उपायों से ( कृष्णान् अन्तः गात् ) अपनी ओर आकर्षण करने योग्य प्रिय शिष्यों के भीतर स्थान प्राप्त करे । राजा ( ऋतेन सूनृता दिशमानः ) सत्य, न्याय-व्यवस्था और वेद के द्वारा उत्तम सत्य व्यवस्थाओं को देता हुआ और ( ऋतेन सूनृता दिशमानः ) धनैश्वर्य सहित

अधीनों को उत्तम अन्न प्रदान करता हुआ वह ( स्वाः ) अपनी ( विश्वाः दुरः ) समस्त शत्रुनिवारक सेनाओं और शक्तियों का द्वारों के समान ( अप अवृणोत् ) प्रकाश करे। इसी प्रकार विद्वान् पुरुष सत्य ज्ञान से युक्त उत्तम वाणियों का उपदेश करता हुआ अपनी समस्त ( दुरः ) अज्ञान दूर करने वाली वाणियों को हृदय के द्वारों के समान प्रकट रूप से खोल दे।

**शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।**
**शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥२२॥८॥**

भा०—व्याख्या देखो ३। ३०। २२ ॥ इत्यष्टमो वर्गः ॥

## [ ३२ ]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१—३, ७—९, १७ त्रिष्टुप् । ११—१५ निचृत्त्रिष्टुप् । १६ विराट् त्रिष्टुप् । ४, १० भुरिक् पङ्क्तिः । ५ निचृत्पङ्क्तिः । ६ विराट्पङ्क्तिः । सप्तदशर्चं सूक्तम् ॥

**इन्द्र सोमं सोमपते पिबेमं माध्यन्दिनं सवनं चारु यत्ते ।**
**प्रप्रुथ्या शिप्रे मघवन्नृजीषिन्विमुच्या हरी इह मादयस्व ॥ १ ॥**

भा०—हे ( सोमपते ) सोम अर्थात् उत्तम ओषधि, अन्नादि खाद्य रसों के पालक वा पान करने हारे पुरुष ! तू ( सोमं पिब ) उस अन्नादि ओषधि रस को पान कर, उसको खा। ( यत् ) जब ( ते ) तेरा ( माध्यन्दिनं ) दिन के मध्य काल का ( सवनं ) सवन अर्थात् यज्ञ, बलिवैश्वदेव ( चारु ) उत्तम रीति से हो चुके। हे ( मघवन् ) हे उत्तम धन युक्त ! हे ( ऋजीषिन् ) सरल इच्छाओं और ऋजु, सादे उत्तम इष् अर्थात् अन्न को उपभोग करने हारे ! उस समय तू ( शिप्रे ) मुख के दोनों भागों को ( प्रप्रुथ्य ) अच्छी प्रकार भर करके और ( हरी ) ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों को भोजन काल में ( विमुच्य ) विशेष रूप से शिथिल,

बन्धन मुक्त करके ( इह ) इस उत्तम अन्न भोजन के समय ( मादयस्व ) अपने को अन्न से तृप्त कर। ( २ ) राजा सेनापति के पक्षमें—हे ( सोमपते ) ऐश्वर्यमय राष्ट्र के पालक ! तू इस ऐश्वर्यमय राष्ट्र का पालन और उपभोग कर। जब तेरा (माध्यन्दिनं सवनं) मध्याह्न काल के सूर्य के समान राष्ट्र के बीच में होने वाला 'सवन' अर्थात् अभिषेक हो जावे उस समय हे ( मघवन् ) उत्तम धन के स्वामिन् ! हे ( ऋजीपिन् ) ऋजु अर्थात् अकुटिल, धर्ममार्ग पर प्रजा को प्रेरित करने हारे ! तू ( शिप्रे ) अपनी दोनों बलयुक्त सेनाओं को ( प्रप्रुथ्य ) अच्छी प्रकार वश करके ( हरी विमुच्य ) अश्वों को छोड़कर ( इह ) इस राष्ट्र में ( मादयस्व ) अपने और अपने प्रजाजन को तृप्त, सन्तुष्ट और आनन्दित कर। ( ३ ) आचार्य 'सोम' शिष्य का पालन करे जब की उसका अपनी आयु के मध्यकाल में होने योग्य सवन, गृहस्था-श्रम को पूर्ण कर वनस्थ होने का अवसर हो। वह ( शिप्रे ) ज्ञान और कर्म दोनों को पूर्ण कर ( हरी विमुच्य ) मन को हरने वाले माता पिता और पुत्रादि बन्धनों को छोड़कर इस विद्या प्रदान के कार्य में आनन्द-लाभ करे। अध्यात्म में—सोम आत्मानन्द 'माध्यंदिन सवन' आत्मा के भीतर होने वाला 'सवन' अर्थात् 'आनन्द वर्षण' करने वाले 'धर्म मेघ' का उदय, 'हरी' प्राण और अपान की दोनों गति।

**गवाशिरं मन्थिनमिन्द्र शुक्रं पिबा सोमं ररिमा ते मदाय।**
**ब्रह्मकृता मारुतेना गणेन सजोषा रुद्रैस्तृपदा वृषस्व ॥ २ ॥**

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! सूर्य के समान तेजस्विन् ! जिस प्रकार ( गवाशिरं शुक्रं पिबति ) सूर्य किरणों से प्राप्त होने योग्य शुद्ध जल का पान करता है और ( मारुतेन गणेन रुद्रैः सजोषाः वर्षति ) वायुओं और गर्जते मेघों या विद्युतों से युक्त होकर जल वर्षाता है उसी प्रकार तू भी ( गवाशिरम् ) इन्द्रियों और भूमि निवासी प्रजाओं के द्वारा भोग और प्राप्त करने योग्य ( मन्थिनम् ) शत्रुओं और दुष्टों के दल को मथन

या दलन करने में समर्थ ( शुक्रं ) बल को और शीघ्रता से काम करने वाले सेनाबल को ( पिब ) प्राप्त कर और पालन कर । ( ते ) तेरे अधीन ( मदाय ) तेरे ही हर्ष को बढ़ाने और ( मदाय = दमाय ) उसको दमन, व्यवस्थापना करने के लिये (सोमं) अभिषेक द्वारा प्राप्त होने वाले राष्ट्रैश्वर्य के पालक पद को (ररिम) प्रदान करें । तू ( ब्रह्मकृता ) ब्राह्मणों के द्वारा शिक्षित वा धन द्वारा वशीकृत व प्राप्त ( मारुतेन ) मनुष्यों, शत्रु-मारक सैनिकों के ( गणेन ) संख्याबद्ध दल से वा ( मारुतेन गणेन ) सुवर्ण के बने संख्या योग्य धन राशि से और ( रुद्रैः ) विद्वानों के उपदेष्टा विद्वानों और दुष्ट शत्रु को रुलाने वाले वीर पुरुषों से ( सजोषाः ) समान भाव से प्रीतियुक्त होकर ( तृपत् ) खूब तृप्त, पूर्ण होकर ( आ वृषस्व ) सब प्रकार से बलवान् , प्रबन्ध करने में समर्थ हो । ( २ ) विद्वान् पुरुष इन्द्रियों को बलवान् करने वाले हृदय को मथने वाले वीर्य की रक्षा करे । तृप्ति के लिये हम अन्न दें । प्राणायाम आदि वायुगण और अन्य गौण प्राणों से सुसेवित, अन्न से तृप्त होकर बलवान् बनें । ( ३ ) आचार्य को ( मदाय ) विद्योपदेश के लिये शिष्य को सौंपें । वह वीर्य पालन करावे ( मारुतेन ) वेदाध्ययन के अभ्यासी शिष्यगण और नैष्टिक ब्रह्मचारियों से युक्त होकर बढ़े ।

**ये ते शुष्मं ये तविषीमवर्धन्नर्चन्त इन्द्र मरुतस्त ओजः ।**
**माध्यन्दिने सवने वज्रहस्त पिबा रुद्रेभिः सगणः सुशिप्र ॥३॥**

भा०—जिस प्रकार ( माध्यन्दिने ) दिन के मध्य में होने वाले ( सवने ) काल में जिस प्रकार सूर्य वायुओं से मिलकर ( सोमं पिबति ) जल का पान करता है उसी प्रकार हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुओं को दलन करने वाले पुरुष ! ( ये ) जो लोग ( ते ) तेरे ( शुष्मं ) शत्रुओं को शोषण करने वाले बल या सामर्थ्य को और ( ये ) जो ( तविषीम् ) बलवती सेना को ( अवर्धन् ) बढ़ाते हैं और जो ( मरुतः ) वायु के समान तीव्र बलवान् पुरुष ( अर्चन्तः ) तेरा आदर सत्कार करते हुए

( ते ओजः ) तेरे ओज पराक्रम को बढ़ाते हैं, हे ( वज्रहस्त ) शस्त्रों से सुसज्जित हाथों या शत्रु हननकारी सेना के स्वामिन् ! हे ( सुशिप्र ) शोभन मुख वाले, सौम्यमुख ! तू सूर्य के समान ही ( माध्यन्दिने सवने ) मध्याह्न कालिक सूर्य के समान तेज होने पर या राष्ट्र के बीच में अभिषेक होने पर ( रुद्रेभिः ) शत्रु को रुलाने वाले वीरों सहित और ( सगणः ) अपने सैन्य गणों सहित राष्ट्र का पालन और उपभोग कर। ( २ ) अध्यात्म में—प्राणगण आत्मा की बल और शक्ति को बढ़ाते हैं, उनके बल पर मनुष्य उत्तम अन्नादि का उपभोग करें।

**त इन्न्वस्य मधुमद्विविप्र इन्द्रस्य शर्धो मरुतो य आसन्।**
**येभिर्वृत्रस्येषितो विवेदामर्मणो मन्यमानस्य मर्म ॥ ४ ॥**

भा०—जिस प्रकार ( मरुतः ) वायुगण ही ( इन्द्रस्य शर्धं ) विद्युत् के बल को धारण करके ( इन्द्रस्य मधुमत् शर्धः विविप्रे ) सूर्य या विद्युत् के बल से युक्त बल अर्थात् वर्षाकारी मेघ को सञ्चालित करते हैं और उन वायुओं से प्रेरित या उत्पन्न हुआ यह विद्युत् ( वृत्रस्य मर्म विवेद ) वृत्र अर्थात् मेघ के मर्म या मध्य भाग तक पहुंच जाता है उसी प्रकार ( ये मरुतः ) जो वीर विद्वान् पुरुष (इन्द्रस्य) इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्यवान् राष्ट्रपति के अधीन रहकर ( आसन् ) उसके मुख अर्थात् मुख्य स्थान पर विराजते हैं वे ही ( अस्य ) ऐश्वर्यवान् राजा या सेनापति या राष्ट्र के ( मधुमत् शर्धः ) शत्रुगण को कंपा देने वाले बल को ( विविप्रे ) सञ्चालित करते हैं। ( येभिः ) जिनसे (इषितः) प्रेरित और सैन्य युक्त होकर वह राजा ( वृत्रस्य ) अपने बढ़ते हुए और घेरने वाले ( अमर्मणः ) अज्ञात मर्म वाले ( मन्यमानस्य ) अभिमानी शत्रु के ( मर्म ) अति निर्बल मृत्युकारी मर्मस्थल को ( विवेद ) जाने। अथवा—( ये इन्द्रस्य शर्ध आसन् ) जो वीर राजा के बलस्वरूप होते हैं वे ही उसके बलयुक्त सैन्य को सञ्चालित करते हैं।

मनुष्वदिन्द्र सवनं जुषाणः पिबा सोमं शश्वते वीर्याय ।
स आ ववृत्स्व हर्यश्व यज्ञैः सरण्युभिरपो अर्णा सिसर्षि ॥५॥९॥

भा०—( इन्द्र ) हे ऐश्वर्यवन् ! ( मनुष्वत् ) मननशील पुरुषों से युक्त ( सवनं ) राज्याभिषेक कार्य को ( जुषाणः ) प्रेम से स्वीकार करता हुआ तू ( शश्वते वीर्याय ) सनातन से चले आये और चिरकाल तक स्थिर रहने वाले वीर्य के लिये ( सोमं ) ओषधि रस के समान ही बलकारक राष्ट्रैश्वर्य या वीर्य का ( पिब ) उपभोग, पालन और पोषण कर । हे ( हर्यश्व ) बलवान् अश्वों और इन्द्रियों से युक्त ! तू ( सरण्युभिः ) सरणशील, आगे बढ़ने के इच्छुक ( यज्ञैः ) सुसंगत, आदरणीय पूज्य सहायकों से ( सः ) वह तू ( आ ववृत्स्व ) सर्वत्र वर्त्ताकर, व्यवहार कर, और विद्युत् जिस प्रकार ( अपः अर्णा सिसर्षि ) अन्तरिक्ष और जलों के बीच गति करती है उसी प्रकार हे वीर ! ( अपः ) तू आप्त तथा ( अर्णा ) ज्ञानवान् प्रजाओं को ( सिसर्षि ) प्राप्त हो । ( २ ) विद्वान् आचार्य के पक्ष में—मननशील ज्ञानी पुरुष के यज्ञ को करता हुआ अपने नित्य स्थिर (वीर्याय) सन्तान की वृद्धि के लिये शिष्य को रक्खे । (सरण्युभिः ) उत्तम उपदेशों से युक्त ज्ञान, दानों और सत्संगों व मैत्रीभावों सहित तू ( आ ववृत्स्व ) वर्त्ताव कर । ( अपः अर्णान् ) उत्तम ज्ञान जलों को प्रवाहित कर । इति नवमो वर्गः ॥

त्वमपो यद्ध वृत्रं जघन्वाँ अत्याँ इव प्रासृजः सर्तवाजौ ।
शयानमिन्द्र चरता वधेन वव्रिवांसं परि देवीरदेवम् ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार ( देवी अपः वव्रिवांसं अदेवम् वृत्रं जघन्वान् अपः प्रासृजत् ) स्वच्छ जलों को घेरकर विराजमान कान्तिरहित, श्याम मेघ को विद्युत् या वायु आघात करता और बहाने के लिये जलों को उत्पन्न कर देता है । उसी प्रकार हे वीर सेनापते ! ( त्वम् ) तू ( यत् ह ) जब

भी ( देवीः ) उत्तम पुरुष की कामना करने वाली, उत्तम गुणों से युक्त (अपः) आप्त प्रजाओं को (वव्रिवांसं) घेरने वाले ( शयानम् ) सोते हुए, प्रमादी, ( अदेवम् ) अदानशील, स्वयं प्रजा को खा जाने वाले, उत्तम गुणों से हीन, पापाचारी ( वृत्रं ) विघ्नकारी, दुष्ट शत्रु को ( चरता वधेन ) चलते हुए शस्त्र से ( जघन्वान् ) मारता हुआ ( आजौ सर्त्तवे ) संग्राम में वेग से भागने के लिये ( अत्यान् इव ) जिस प्रकार घोड़ों को ( प्र असृजः ) आगे बढ़ाता है उसी प्रकार ( सर्त्तवे ) भाग निकलने और ( अपः ) जलों के समान वेग से शत्रु सेनाओं को निकल भागने के लिये ( प्र असृजः ) वाधित कर देता है। ( २ ) परमेश्वर पक्षमें— ( अपः ) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु ( वृत्रं ) निहारिका।

**यजा॑म॒ इन्नम॑सा वृ॒द्धमिन्द्रं॑ बृ॒हन्त॑मृ॒ष्वम॒जरं॒ युवा॑नम्।**
**यस्य॑ प्रि॒ये म॒मतु॑र्य॒ज्ञिय॑स्य॒ न रोद॑सी महि॒मानं॑ म॒माते॑ ॥ ७ ॥**

भा०—( यस्य ) जिस ( यज्ञियस्य ) पूजनीय, सत्संगयोग्य, दानशील प्रजापति के योग्य ( महिमानं ) महान् सामर्थ्य को (प्रिये रोदसी) कमनीय, प्राप्तियुक्त ( रोदसी ) माता पिता, स्वपक्ष और परपक्ष की प्रजाएं भी ( न ममतुः ) माप नहीं सकतीं, और ( न ममाते ) निश्चय से जिसकी महिमा का पार नहीं पा सकते उस ( वृद्धम् ) अनुभव, आयु और ज्ञान में वृद्ध, ( बृहन्तम् ) बड़े ( अजरम् ) जरारहित, बलवान्, ( युवानम् ) बलिष्ठ, ( ऋष्वम् ) दर्शनीय पुरुष को ( नमसा ) आदर सत्कार, अन्नादि द्वारा ( यजाम ) पूजा करें। इसी प्रकार जिस परमेश्वर के महान् सामर्थ्य को आकाश और भूमि दोनों भी नहीं माप सकते और त्रिकाल में भी नहीं माप पाते उस सबसे महान् ( अजरं ) नित्य, बलवान्, दर्शनीय परमेश्वर की ( इत् ) ही हम सदा नमस्कारों द्वारा ( यजाम ) उपासना करें।

इन्द्र॑स्य॒ कर्म॒ सुकृ॑ता पु॒रूणि॑ व्र॒तानि॑ दे॒वा न मि॑नन्ति॒ विश्वे॑ ।
दा॒धार॒ यः पृ॑थि॒वीं द्याम्उ॒तेमां ज॒जान॒ सूर्य॑मु॒षसं॑ सु॒दंसाः॑ ॥ ८ ॥

भा०—( यः ) जो परमेश्वर ( द्याम् उत इमाम् पृथिवीम् ) आकाश और इस भूमि को ( दाधार ) धारण करता है और जो ( सुदंसाः ) उत्तम कर्मों का वा उत्तम रीति से समस्त संसार का कार्य करने हारा प्रभु ( सूर्यम् ) सूर्य और ( उपसम् ) उपा को अथवा ( उपसं सूर्यम् ) तापदायी अग्निमय और दीप्तिमय सूर्य को ( जजान ) उत्पन्न करता है उस ( इन्द्रस्य ) महान् ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के ( पुरूणि ) बहुतसे ( सुकृता ) उत्तम रीति से सम्पादित ( कर्म ) कर्मों को और ( व्रतानि ) उत्तम रीति से पालन करने योग्य व्रतों, नियमों को ( विश्वे देवाः ) सभी विद्वान् लोग और तेजस्वी सूर्यादि भी ( न मिनन्ति ) उल्लंघन नहीं करते । ( २ ) इसी प्रकार जो पुरुप तेजस्वी शासक और शास्य दोनों को धारण करता और तापदायी या सूर्य के समान तेजस्वी पद को प्रकट करता है उस शोभन कर्म करने वाले शत्रुहन्ता नायक के उत्तम कर्मों और व्यवस्थाओं को सभी लोग कभी उल्लंघन न करें ।

अद्रो॑घ स॒त्यं तव॒ तन्म॑हि॒त्वं स॒द्यो यज्जा॒तो अपि॑बो ह॒ सोम॑म् ॥
न द्याव॑ इन्द्र त॒वस॑स्त॒ ओजो॒ नाहा॒ न मासाः॑ श॒रदो॑ वरन्त ॥९॥

भा०—हे ( अद्रोघ ) किसी से भी द्रोह या द्वेप बुद्धि न करनेहारे ! ( तव ) तेरा ( तत् ) वह महान् अपरिमित ( सत्यं महित्वं ) सच्चा महान् सामर्थ्य है ( यत् ) जिससे तू ( जातः ) प्रकट होकर ( ह ) निश्चय से ( सोमम् ) समस्त ऐश्वर्य और सामर्थ्य को ( अपिवः ) पालन और उपभोग करता है । हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! ( तवसः ) बलशाली ( ते ) तेरे और ( ते तवसः ) तेरे बल के ( ओजः ) पराक्रम और प्रताप को ( न द्यावः ) न सूर्य आदि तेजस्वी लोक, न भूमिगत

प्रजाएँ ( न अहा ) न दिन ( न मासाः ) न मास और ( न शरदः ) न शरद् आदि ऋतु गण वा वर्ष ही ( वरन्त ) निवारण कर सकते हैं। प्रत्युत तेरे प्रताप को सब मानते हैं, वह स्थिर है। ( २ ) परमेश्वर भी मित्र है वह किसी से द्रोह नहीं करता। वह समस्त महान् सामर्थ्य को धारता है। सूर्यादि लोक, दिन, मास, ऋतु आदि भी उसके महान् बल पराक्रम को समाप्त नहीं कर सकते, वह अनन्त बलशाली है।

**त्वं सुद्यो अपिबो जात इन्द्र मदाय सोमं परमे व्योमन्।**
**यद्ध द्यावापृथिवी आविवेशीरथा भवः पूर्व्यः कारुधायाः ॥१०॥१०॥**

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्य के स्वामिन्! इन्द्रिय सामर्थ्यों के अधिष्ठाता जीवात्मन्! ( त्वं ) तू ( सद्यः ) शीघ्र ही ( जातः ) उत्पन्न होकर वा उत्तम गुणों में प्रकाशित होकर ( परमे ) सबसे उत्कृष्ट ( व्योमन् ) विशेष रूप से सर्वत्र व्यापक, सर्वरक्षक परमेश्वर के आश्रय रहकर ( मदाय ) अति आनन्द लाभ करने के लिये ( सोमम् ) परमैश्वर्य और ब्रह्मानन्द रस को ( अपिबः ) उपभोग कर। इसी प्रकार हे ( इन्द्र ) परमेश्वर! तू ( परमे व्योमन् ) परम रक्षकस्वरूप में सदा प्रकट होकर ( मदाय ) परम आनन्द देने के लिये ( सोमम् अपिबः ) ज्ञानवान् जीव की रक्षा कर। ( यत् ह ) निश्चय से तू ( द्यावापृथिवी ) आकाश और भूमि में ( आविवेशीः ) व्यापक हो रहा है। इसी प्रकार जीव ( द्यावापृथिवी ) प्राण और अपान वा माता पिता के बीच प्रविष्ट रहता है। तू ( अथ ) और वह तू ( कारुधायाः ) समस्त विश्व के विधायक जगदुत्पादक सामर्थ्यों, स्तुतिकर्त्ता विद्वानों और शिल्पियों को भी धारण करने वाला होकर सबसे (पूर्व्यः) पूर्व ही ( अभवः ) विद्यमान है। (२) इसी प्रकार राजा सब से ऊंचे पद पर स्थित होकर सबके हर्ष के लिये राष्ट्र की रक्षा करे। वह स्व और पर दोनों पक्ष में समान रहे, वह सब शिल्पियों का रक्षक पोषक हो। इति दशमोवर्गः ॥

अहुन्नहिं परिशयानमर्ण ओजायमानं तुविजात तव्यान् ।
न ते महित्वमनु भूदध द्यौर्यदन्यया स्फिग्या३क्षामवस्थाः ॥११॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य या विद्युत् ( अर्णः परिशयानम् ) जल में सब प्रकार व्यापक उससे पूर्ण ( ओजायमानं अहिं अहन् ) बलशाली जलधर मेघ को आघात करता है उसी प्रकार हे ( तुविजात ) बहुतसों में प्रसिद्ध एवं बहुतसों को अपने समान उत्पन्न करनेहारे वीर ! तू ( तव्यान् ) बहुत बलवान् होकर (अर्णः परिशयानम्) जल के समान शान्त स्वभाव, सरल और चञ्चल, भयभीत प्रजाजन के चारों ओर घेरा डाल कर पड़े रहने वाले या उसमें गुप्त रूप से छुपे हुए ( ओजायमानम् ) पराक्रम दिखलाने वाले ( अहिम् ) आक्रमणकारी शत्रु को ( अहन् ) विनाश कर । ( यत् ) जब तू ( अन्यया ) अपनी एक ( स्फिग्या ) शक्ति से ( क्षाम् ) भूमि निवासिनी प्रजा को ( अव स्थाः ) अवस्थित या व्यवस्थित, वशीभूत करे ( अध ) तब ( द्यौः ) ज्ञानप्रकाश से युक्त राजसभा भी ( ते महित्वम् ) तेरा महान् सामर्थ्य का ( न अनु भूत् ) अनुकरण नहीं कर सकती ।

यज्ञो हि त इन्द्र वर्धनो भूदुत प्रियः सुतसोमो मियेधः ।
यज्ञेन यज्ञमव यज्ञियः सन्यज्ञस्ते वज्रमहिहत्य आवत् ॥ १२ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् राजन् ! ( यज्ञः हि ) निश्चय से यज्ञ अर्थात् हमारा नाना करादि का देना और त्याग ही ( ते ) तुझे (वर्धनः) बढ़ाने वाला ( उत प्रिय ) प्रिय, तृप्त करने वाला ( सुतसोमः ) ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाला और ( मियेधः ) सब दुःखों और संकटों को नाश करने हारा है । हे राजन् ! तू ( यज्ञियः ) उत्तम पूजा, सत्संग और दान के योग्य ( सन् ) होकर ( यज्ञेन ) अपने उत्तम त्याग, सत्संग और मैत्रीभाव से ( यज्ञम् ) प्रजा के त्याग, संगति और मैत्री-

भाव की रक्षा कर। ( ते यज्ञः ) अर्थात् तेरा दान, त्याग और मैत्रीभाव ही ( अहिहत्ये ) अभिमुख खड़े शत्रु को विनाश करने के काम में ( वज्रम् ) शस्त्रास्त्र बल की ( आवत् ) रक्षा करता है। (२) ( यज्ञः ) देवपूजा और परमेश्वर का परम दान और सत्संग ही हे परमेश्वर ! तेरे गुणों को बढ़ाने वाला, सबको प्रिय, जीव को पवित्र करने वाला, परम पवित्र कार्य है। तू सर्वस्तुत्य होकर अपने महान् दान और सखाभाव से ही इस सुसंगत जीव की रक्षा कर अन्धकार को नाश करने के लिये तेरी उपासना और सख्य ही ( वज्रम् ) अज्ञाननाशक ज्ञान-वैराग्य रूप वज्र की रक्षा करते हैं।

यज्ञेनेन्द्रमवसा चक्रे अर्वागैनं सुम्नाय नव्यसे ववृत्याम्।
यः स्तोमेभिर्वावृधे पूर्व्येभिर्यो मध्यमेभिरुत नूतनेभिः ॥ १३ ॥

भा०—( यः ) जो ( पूर्व्येभिः ) पूर्व किये गये, ( मध्यमेभिः ) बीच में किये गये और (नूतनेभिः) नवीन (स्तोमेभिः) स्तुति योग्य वचनों, कर्मों और सैनिक सहायक दलों में ( वावृधे ) बढ़ता है ( एवं ) उस पुरुष को मैं प्रजाजन स्वयं ( यज्ञेन ) अपने मित्रता, संगठन, प्रबन्ध और करादि दान, मान सत्कार द्वारा और ( अवसा ) उत्तम रक्षा आदि के निमित्त ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्यवान् इन्द्र रूप से ( आ चक्रे ) स्वीकार करूं, उसे नायक एवं राजा बनाऊं। और ( एनं ) उसको ( अर्वाक् ) सबके समक्ष ( नव्यसे सुम्नाय ) नये से नये सुख, ऐश्वर्य आदि की वृद्धि के लिये ही ( आ ववृत्याम् ) वरण करूं (२) परमेश्वर के पूर्व के, बीच के और नये स्तुति वचनों से महिमा प्रतीत होती है। उसको उपासना, ज्ञान से (अर्वाक् आचक्रे) साक्षात् करूं और अति रमणीय सुख परमानन्द को प्राप्त करने के लिये वरण करूं।

विवेष यन्मा धिषणा जजान स्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमह्नः।
अंहसो यत्र पीपरद्यथा नो नावेव यान्तमुभये हवन्ते ॥ १४

भा०—( यत् ) जब ( मा ) मुझे यह ( धिषणा ) उत्तम बुद्धि ( वित्रेप ) प्राप्त हो और प्रकट हो जाय कि मुझे ( पार्यात् अह्नः पुरा ) पार लगाने वाले दिन से पूर्व ही ( इन्द्रम् ) उस ऐश्वर्यवान् पुरुष की ( स्तवै ) स्तुति करना आवश्यक है तब ( यथा ) जिस प्रकार से भी हो और ( यत्र ) जिस काल और जिस देश में भी होऊं वह ( नः ) हमें (अंहसः) पाप से ( पीपरत् ) रक्षा करता है। और ( नावा इव यान्तम् ) नाव से जाते हुए यात्री को जिस प्रकार ( उभये हवन्ते ) दोनों तटों के लोग पुकारते हैं उसी प्रकार सबको तारने वाले प्रभु के आश्रय से जाने वाले पुरुष को भी ( उभये ) सांसारिक और पारमार्थिक दोनों क्षेत्रों के लोग ( हवन्ते ) पुकारते हैं, उसको आदर से देखते हैं।

आपूर्णो अस्य कुलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै ।
समु प्रिया आववृत्रन्मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ॥१५॥

भा०—( सेक्ता इव ) सेचन करने वाला जिस प्रकार ( पिबध्यै ) वृक्षादि को पानी पिलाने के लिये ( कोशं सिसिचे ) मेघ को बरसाता है और जिस प्रकार ( कलशः आ पूर्णः ) कलसा खूब भरा हुआ और दूसरा ( सेक्ता ) जल धारा सेचन करने वाला पुरुष ( पिबध्यै ) दूसरे को जलपान कराने के लिये ( कोशं सिसिचे ) जल प्रदान करता है उसी प्रकार ( अस्य ) इस प्रजाजन या राजा का ( कलशः ) कलश, राष्ट्र ( स्वाहा ) सुखजनक कर आदि प्रदान से उत्तम ऐश्वर्यों से ( आपूर्णः ) खूब भरा हुआ हो। वह ( पिबध्यै ) स्वयं और प्रजाजन को पालन और उपभोग करने के लिये ( सेक्ता इव ) मेघ या सूर्य के समान ही ( कोशं सिसिचे ) अपने खज़ाने को प्रजा के उपकारार्थ लगादे। अथवा प्रजाजन भी ( सेक्ता ) अभिषेक करने वाला होकर ( कोशं ) खज़ाने के समान प्रजा पालक पुरुष को ही ( पिबध्यै ) अपनी रक्षार्थ ( सिसिचे ) अभिषेक करे। और ( प्रियाः ) उसके प्रिय ( सोमासः ) ऐश्वर्यवान्, अन्य

अभिषिक्त पदाधिकारी जन ( इन्द्रम् ) इस शत्रुहन्ता पुरुष के ( अभि प्रदक्षिणित् ) चारों ओर घिरकर ( मदाय ) अपने हर्ष और तृप्ति या स्तुति के लिये ( उ ) ही ( सम् आववृत्रन् ) अच्छी प्रकार घेर लें। इसी प्रकार ( इन्द्रम् सोमासः ) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र को जलयुक्त मेघवत् अभिषिक्त जन तृप्ति लाभ के लिये घेरकर सुरक्षित रक्खें।

**न त्वा गभीरः पुरुहूत सिन्धुर्नाद्रयः परि षन्तो वरन्त।**
**इत्था सखिभ्य इषितो यदिन्द्रा दृळ्हं चिदरुजो गव्यमूर्वम् ॥१६॥**

भा०—हे ( पुरुहूत ) बहुत से प्रजाजनों से रक्षार्थ पुकारे जाने योग्य वीरजन ! ( त्वां ) तुझको ( गभीरः सिन्धुः ) गहरी नदी और (न अद्रयः) न बड़े २ पहाड़ ही ( सन्तः ) विद्यमान रह रहकर ( परि वरन्त ) दूर कर सकते या रोक सकते हैं। वे तेरे मार्ग में बाधक नहीं हो सकते। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! ( यत् ) जब तू ( इत्था ) इस प्रकार से सचमुच ( सखिभ्यः ) अपने प्रिय सुहृदों के उपकार के लिये ( इषितः ) चाहा जाकर या प्रेरित या सेनायुक्त होकर तू ( दृढम् ) दृढ़ ( गव्यं ) पृथिवी के ( ऊर्वम् ) निरोधस्थान, रुकावट के या ( गव्यम् ऊर्वम् ) पृथ्वी के ऊपर के दृढ़ से दृढ़ हिंसक, बाधक शत्रु को भी ( अरुजः ) तुम तोड़ डालते हो। ( २ ) परमेश्वर का मुकाबला गम्भीर से गम्भीर समुद्र और ऊंचे से ऊंचे पर्वत या मेघ भी नहीं कर सकते।

**शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।**
**शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥१७॥११॥**

भा०—व्याख्या देखो सू० ३० । २२ ॥ इत्येकादशो वर्गः ॥

## [ ३३ ]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ नद्यो देवता ॥ छन्दः—१ भुरिक् पङ्क्तिः । स्वराट् पङ्क्तिः । ७ पङ्क्तिः । २, १० विराट्त्रिष्टुप् । ३, ८, ११, १२ त्रिष्टुप् । ४, ६, ९ निचृत्त्रिष्टुप् । १३ उष्णिक ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

**प्र पर्व॑ताना॒मुश॒ती उ॒पस्था॒दश्वे॑ इव॒ विषि॑ते॒ हास॑माने ।**
**गावे॑व शु॒भ्रे मा॒तरा॑ रिहा॒णे विपा॑ट्छुतु॒द्री पय॑सा जवेते ॥ १ ॥**

भा०—( पर्व तानाम् उपस्थात् ) पर्वतों के वीच में से जिस प्रकार दो नदियां ( विपाट् शुतुद्री ) अपने तटों को तोड़ती फोड़ती, और अति वेग से वहती हुई ( पयसा जवेते ) जल से पूर्ण होकर वेग से जाती हैं और जिस प्रकार ( उशती ) परस्पर कामना करने वाले वेग से दौड़ते २ ( अश्वे ) दो घोड़ा घोड़ी, ( हासमाने ) एक दूसरे से स्पर्धा करती हुईं ( जवेते ) वेग से दौड़ रही हों और जिस प्रकार ( गावा इव शुभ्रे ) धवल वर्ण की दो गौवें वा दोनों गौ और वृषभ ( रिहाणे ) परस्पर एक दूसरे को चाटती, प्रेम करती हों उसी प्रकार स्त्री और पुरुष परस्पर विवाहित होकर दोनों ( पर्वतानाम् उपस्थात् ) अपने पालन करने वाले माता पिता गुरुजनों के समीप ( उशती ) एक दूसरे को हृदय से चाहते हुए, ( विपिते ) विशेष रूप से बन्धन में बद्ध, ( हासमाने ) एक एक से गुणों, विद्या और शोभा में स्पर्धा करते हुए वा ( हासमाने ) एक दूसरे को प्रसन्न करते हुए होवें, ( शुभ्रे ) उत्तम शोभा युक्त, शुद्ध वस्त्र और आचरण वाले, ( मातरा ) माता और पिता के पद पर विराजते हुए, ( रिहाणे ) उत्तम भोजनादि का आस्वाद लेते हुए वा परस्पर आलिंगन प्रेमादि करते हुए, ( विपाट् ) एक दूसरे के पाश, फन्दों, ऋणादि के बन्धनों को दूर करने वाले, विविध सुखों को प्राप्त कराने वाले और विविध प्रकार से एक दूसरे को प्रेम-पाशों में बांधने वाले और ( शुतुद्री ) एक दूसरे के शोकों को दूर करनें वाले, अति शीघ्र ही एक दूसरे के प्रेम से द्रवित वा कष्टों से व्यथित होने वाले होकर ( पयसा ) पुष्टिकारक अन्न दुग्धादि से बालकों के प्रति (जवेते) शीघ्र प्राप्त हों। 'विषिते' विविधं सिते बद्धे। 'हासमाने'—द्रवित हों, प्रेम से बढ़ें। ( २ ) सेना और सेनापति दोनों प्रजा को बंधनों से छुड़ाने से 'विपाट्' हैं। राजा और सेना शीघ्र वेग

से जाने वाली होने से 'शुतुद्री' हैं। हासतिः स्पर्धायां हर्षमाणे वा ॥निरु०॥ 'मातरौ'—माता च पिता च मातरौ। मातृशब्दशेषः छान्दसः। विपाट् विपाटनाद्वा विपाशनाद्वा, विप्रापणाद्वा, पाशा अस्यां व्यपाश्यन्त वसिष्ठस्य मुमूर्षतस्तद्विपाट् उच्यते। पूर्वमासीदुरुञ्जिरा। निरु०। विपाट्-पट गतौ, पश बाधनस्पर्शनयोः इति ण्यन्तौ विपूर्वौ। शस्य व्रश्चनादि नाषत्वम्। विविधं पटति गच्छति विपाट् इति वा॥ 'शुतुद्री—शुद्राविणी, क्षिप्रद्राविणी, तुन्नेव द्रवति। (सा० निरु०) आशु शुगद्राविणी वा। शु शीघ्रं तुदति व्यथयति। (द०) तुद्यते व्यथिता भवति इति वा विपाट् शुतुद्री इति उभयत्र सुपो लुक् विपाशौ शुतुद्र्यौ इति। (२) अध्यात्म में—प्राण और अपान वा आत्मा और परमात्मा दोनों ही मृत्यु भय से ग्रस्त वसिष्ठ अर्थात् देह में उत्तम वसु, जीव के पाशों को छिन्न भिन्न करने से 'विपाट्' है और शोक मृत्यु भयादि दूर करने से 'शुतुद्री' हैं। सर्वोत्पादक वा ज्ञानवान् होने से 'माता' है, शुद्धस्वरूप होने से 'शुभ्र' है, कान्ति वा प्रेमबद्ध युक्त होने से 'रुशती' बन्धनमुक्त होने से 'विषिते' और आनन्द युक्त होने से 'हासमाने' हैं। वे दोनों (पयसा) तृप्तिकर आनन्द रस से पूर्ण होकर एक दूसरे के प्रति वेग, प्रेम से द्रवित होते हैं।

इन्द्रे॑षिते प्रस॒वं भिक्ष॑माणे॒ अच्छा॑ समु॒द्रं र॒थ्ये॑व याथः।
स॒मा॒रा॒णे ऊ॒र्मिभिः॒ पिन्व॑माने अ॒न्या वा॑म॒न्याम॑प्येति शुभ्रे॥ २॥

भा०—जिस प्रकार (इन्द्रेषिते) सूर्य या मेघ वृष्टि द्वारा अति वेग से प्रेरित होकर (ऊर्मिभिः पिन्वमाने) तरंगों से तट प्रदेशों को सींचती हुई दो महानदियां एक दूसरे से मिलकर (समुद्रं याथः) समुद्र को पहुंच जाती हैं उसी प्रकार स्त्री पुरुष पति पत्नी दोनों (इन्द्रेषिते) 'इन्द्र' अर्थात् अज्ञान के नाश करने वाले विद्वान् पुरुष द्वारा सन्मार्ग में प्रेरित होकर (प्रसवं भिक्षमाणे) उत्तम सन्तान की एक दूसरे से प्रार्थना और

याचना करते हुए (रथ्या इव) रथ में लगे दो अश्वों के समान वा रथ में बैठे रथी सारथी के समान या रथ में लगे दो चक्रों के समान (अच्छा) परस्पर प्रेमयुक्त होकर (समुद्रं याथः) समुद्र के समान अपार काम्य सुख को प्राप्त करें। वे दोनों (ऊर्मिभिः) प्रेम की उठी तरंगों से (समाराणे) परस्पर सुसंगत होकर वा एक दूसरे को अपने समान भाव से संप्रदान करते हुए और (पिन्वमाने) स्नेहों द्वारा एक दूसरे को सींचते, बढ़ाते वा निषेक करते हुए (शुभ्रे) मन, तन, वाणी से शुद्ध, स्वच्छ वा तेजस्वी होकर रहो और (वाम्) तुम दोनों से (अन्या) एक व्यक्ति (अन्याम्) दूसरी व्यक्ति को (अप्येति) अच्छी प्रकार ऐसे प्राप्त हो कि एक में एक समा जाय। (२) सेना, नायक वा राजा प्रजा (प्रसवं भिक्षमाणे) उत्तम शासन और ऐश्वर्य चाहते हुए अपार ऐश्वर्य को प्राप्त करें। कामो हि समुद्रः। शत० ॥

**अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासं विपाशमुर्वी सुभगामगन्म।**
**वत्समिव मातरा संरिहाणे समानं योनिमनु सञ्चरन्ती ॥ ३ ॥**

भा०—विपाट् माता का वर्णन करते हैं। हम लोग (सुभगाम्) पति द्वारा उत्तम रीति से सुखपूर्वक सेवने योग्य, उत्तम सौभाग्य और ऐश्वर्यादि सुखों की देने वाली, (सिन्धुम्) पति को प्रेम-पाश में बांधने वाली (मातृतमाम्) उत्तम ज्ञानवती वा उत्तम माता के स्वभाव और रूप वाली (विपाशम्) पति को ऋणादि बन्धनों से छुड़ाने वाली, (उर्वीम्) भूमिस्वरूप, बहुत विशाल हृदय वाली स्त्री का (अयासम्) मैं प्राप्त होऊं। और ऐसी ही माता को हम सभी (अगन्म) प्राप्त करें। (मातरा) माता और पिता दोनों ही (वत्सं इव संरिहाणे) बछड़े को प्रेम से चराती गौवों के समान अति स्नेह से युक्त होकर प्रजा सन्तति को (संरिहाणे) अच्छी प्रकार प्रेम करते हुए (समानं योनिम्) एक ही गृह में (अनु) आश्रय लेकर (सं चरन्ती) एक साथ रहते

रहें। ( २ ) सबसे श्रेष्ठ माता परमेश्वर विविध बन्धनों को काटने से 'विपाश्' है। सुख ऐश्वर्यवान् होने से 'सुभगा' है। महान् होने से 'उर्वी' है। मातृवत् पूज्य होने से माता के समान स्त्रीलिंग में कहा गया है। जीव और प्रभु एक दूसरे को मा बच्चे के समान प्रेम करें। जीव भी ज्ञानी होने से 'माता' है। उन दोनों का समान योनि, स्वरूप, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, प्रत्यगात्मरूपता है।

**एना व॒यं पय॑सा॒ पिन्व॑माना॒ अनु॒ योनिं॑ दे॒वकृ॑तं॒ चर॑न्तीः।**
**न वर्त॑वे प्रस॒वः सर्ग॑तक्तः किं॒युर्विप्रो॑ न॒द्यो॑ जोहवीति॥ ४॥**

भा०—जिस प्रकार ( पयसा पिन्वमानाः नद्यः ) जल से भरी पूरी नदियां और देशों को सींचती हुई ( देवकृतं योनिम् अनु चरन्तीः ) परमेश्वर के बनाये स्थान, समुद्र मार्ग को अनुसरण करती हुई, या (देवकृतं योनिम् अनु चरन्तीः ) मेघ से बरसे या सूर्य द्वारा उत्पादित जल को साथ लेकर चलती हुई जाती हैं। उनका ( सर्गतक्तः प्रसवः ) जलों के द्वारा सुप्रसन्न, वेग से गमन करना ( न वर्त्तवे ) फिर लौटने के लिये नहीं होता इसी प्रकार ( वयम् ) हम सभी स्त्री पुरुष (एना पयसा) इस अन्न और दूध से अन्न और जल से ( पिन्वमानाः ) स्वयं और औरों को पुष्ट करते हुए ( देवकृतं योनिम् ) परमेश्वर और देव अर्थात् विद्वान् द्वारा या प्रिय कामनायोग्य पति द्वारा बनाये गृह को ही ( अनु चरन्तीः ) अनुकूल होकर प्राप्त होते हैं। हमारा ( सर्गतक्तः प्रसवः ) सृष्टिनियम से विकसित उत्तम सन्तान उत्पन्न करने का कार्य ( न वर्त्तवे ) कभी निवृत्त या समाप्त नहीं हो सकता। तब फिर ( विप्रः ) विविध कामनाओं को पूर्ण करने हारा विद्वान् पुरुष ( किंयुः ) किस विशेष कामना को करता हुआ ( नद्यः ) गुणों और विद्याओं में समृद्ध, रूप-यौवन-सम्पन्न युवतियों को ( जोहवीति ) स्वीकार किया करता है? उत्तम सन्तान के अतिरिक्त दूसरे किसी और प्रयोजन से विद्वान् लोग स्त्रियों को ग्रहण नहीं

करते। और वह सन्तान का कार्य स्वाभाविक नैसर्गिक कर्म है। स्त्रियें भी सन्तान को दूध आदि से पुष्ट करती हुई सदा पति के गृह में धर्म नियमानुसार आचरण करके रहती हैं।

**रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः।**
**प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः॥५॥१२॥**

भा०—हे (ऋतावरीः) ऋत अर्थात् सत्य ज्ञान, न्याय और धन की वरण करने वाली प्रजाओ, सेनाओ! आप लोग (मुहूर्त्तम्) घड़ी भर (एवैः अपनी उत्तम चालों से, गमनागमनादि विशेष व्यापारों से (मे) मेरे (सोम्याय वचसे) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त, राष्ट्र के हितकारी वचन के श्रवण करने और पालन करने के लिये (उप रमध्वम्) उपराम करो। स्थिर चित्त होकर मेरा वचन सुनो। (बृहती) बहुत बड़ी (मनीषा) मन के ऊपर वश करने वाली बुद्धिमती, स्त्री (सिन्धुम् आ) सिन्धु के समान गंभीर पुरुष की ही (अवस्युः) कामना करती हुई उसको (अच्छ) सन्मुख प्राप्त करके उसके साथ (प्र अह्वे) उत्तम रीति से गुणों, विद्याओं और शोभा में स्पर्धा करती है। और इसी प्रकार (कुशिकस्य) निष्कर्ष रूप में विद्याओं के द्वारा के उपदेश करने वाले विद्वान् पुरुष का (सूनुः) पुत्र के समान शिष्य बलवान् ज्ञानवान् युवक भी (ताम् बृहतीं मनीषां सिन्धुम् अच्छ प्र अह्वे) उस बड़ी मनस्विनी महानदी के समान गंभीर, गति वाली, एवं (सिन्धुम्) गृहस्थ के बन्धनों में बांध लेने वाली स्त्री को ही (अवस्युः) प्राप्त करने की इच्छा करता हुआ (प्र अह्वे) उसको रूप-गुण-विद्या आदि में उत्तम स्पर्धा करे और उसे अपने समान जानकर आदरपूर्वक स्वीकार करे। (२) इसी प्रकार (बृहती मनीषा अवस्युः सिन्धुम् अह्वे) बड़ी भारी स्तम्भन शक्ति को धारने वाले सेना-समुद्रवत् गम्भीर नायक को अपनी रक्षा की कामना से स्पर्धापूर्वक प्राप्त करे। और (कुशिकस्य सूनुः)

शस्त्रास्त्रकुशल सैन्य बल का संञ्चालक पुरुष ( बृहती मनीषा ) बड़ी भारी बुद्धि से युक्त होकर ( सिन्धुम् अवस्युः प्र अह्वे गच्छ ) समुद्रवत् अपार सैन्य बल का रक्षा करने का इच्छुक होकर स्पर्धा पूर्वक प्राप्त करे। 'बृहती, सिन्धुम् मनीषा' आदि पद दीपक वृत्ति से उभयत्र संयोजित होते हैं। ( २ ) अध्यात्म में सत्य ज्ञानसम्पन्न वाणी 'ऋत' का उपदेश करने वाले 'ऋतावरी' हैं। वे ( एवैः ) ज्ञानों से योग्य वचन उपदेश के लिये ( मूहूर्त्त = मुहुः-ऋतम् ) वारंवार ऋत अर्थात् सत्यज्ञान को मुझको ( उपरमध्वम् ) प्रदान करें। वह बड़ी भारी प्रज्ञावती बृहती वेदवाणी ( सिन्धुम् ) अगाध आनन्द सागर प्रभुका ही उत्तम उपदेश करती है। ( कुशिकस्य ) कोशस्थ आत्मा का ज्ञाता मैं भी उसी महान् आनन्द सागर की ही ( प्र अह्वे ) खूब स्तुति करूं। इति द्वादशो वर्गः ॥

**इन्द्रो॑ अ॒स्माँ अ॑रद॒द्वज्र॑बाहु॒रपा॑ह॒न्वृ॒त्रं प॑रि॒धिं न॒दीना॑म्।**
**दे॒वो॑ऽनयत्सवि॒ता सु॑पा॒णिस्तस्य॑ व॒यं प्र॑स॒वे या॑म उ॒र्वीः॥ ६॥**

भा०—( इन्द्रः ) जिस प्रकार सूर्य या मेघ ( वज्रबाहुः ) विद्युत् को बाहु के समान आघातकारी शक्ति के समान धारण करके ( नदीनां परिधिम् ) नदियों को ऊपर तक परिपूर्ण करने वाले ( वृत्रं अप अहन् ) मेघ को आघात करता है और नदियों को ( अरदत् ) खन २ कर बना देता है ( सुपाणिः सविता ) उत्तम किरणों वाला मेघों का उत्पादक प्रेरक सूर्य ही ( देवः ) तेजस्वी और वृष्टि द्वारा जल देने वाला होता है ( प्रसवे ) उत्तम जलोत्सर्ग करने पर बड़ी २ नदियां चलती हैं। उसी प्रकार ( वज्र-बाहुः ) शस्त्र को हाथ में धारण करने और वज्र या शस्त्र युक्त बाहु के तुल्य शत्रु को सदा दण्ड देने वाला क्षत्रिय ( इन्द्रः ) बल-वान् और ऐश्वर्यवान् होकर ( अस्मान् ) हम समस्त प्रजाओं और सेनाओं को (अरदत्) लेखन करता, कर्षण या उत्पीड़न, शासन करता है, वही ( नदीनां ) समृद्ध प्रजाओं के या नाना प्रकार चिल्ल पुकार

करने वाली प्रजाओं के ( परिधिम् ) सब ओर से रक्षक या घेरने वाले ( वृत्रं ) बढ़ते हुए शत्रु को भी ( अप अहन् ) मार कर दूर भगावे। वही ( सुपाणिः ) शुभ हाथों, उत्तम साधनों से युक्त (देवः) दानशील, विजिगीषु ( सविता ) सूर्य के समान तेजस्वी होकर ( अस्मान् ) हमको सन्मार्ग में ( अनयत् ) ले जावे। ( तस्य प्रसवे ) उसके उत्तम शासन में ( वयं ) हम ( उर्वीः ) बहुत संख्या में सुफल समृद्ध होकर (यामः) चलें, प्रयाण करें। ( २ ) गृहस्थ, स्वयंवर पक्षमें—( नदीनां ) समृद्धियों के धारक ( वृत्रं ) दुष्ट विघ्नकारी धनमत्त पुरुष को नाश करने वाला ( इन्द्रः ) विद्वान् ऐश्वर्यशील पुरुष ( अस्मान् ) हम उत्तम स्त्रियों के (अरदत् ) हृदय पर छाप लगाता है। वह ( देवः ) कामना योग्य उत्तम तेजस्वी सुन्दर पुरुष हमें ( अनयत् ) परिणय करे उसी के (प्रसवे) उत्तम सन्तान उत्पन्न करने के कार्य में हम बहुगुणसम्पन्न होकर लगें। जातौ बहु वचनम्। ( ३ ) शिल्पी इञ्जीनियर 'इन्द्र' है वह लोह के बने हथियारों से नदियों को खने, नदियों को भरने वाले जल को दूर देशों तक ले जावे। उसके शासन में नदी, नहरें चलें।

प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यं१न्तदिन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृश्चत्।
विवज्रेण परिषदो जघानायन्नापोऽयनमिच्छमानाः ॥ ७ ॥

भा०—( यद् अहिम् विवृश्चत् ) सूर्य जिस प्रकार मेघ को छिन्न भिन्न कर देता है वह उसका बड़ा भारी बल कार्य सदा ही उत्तम कहने योग्य है। वह ( वज्रेण ) विद्युत् द्वारा ( परिषदः जघान ) चारों तरफ़ स्थित मेघस्थ जलों को आघात करता और ( आपः ) जल आश्रय चाहते हुए ( आयन् ) नीचे आ गिरते हैं। उसी प्रकार ( यत् ) जो वीर पुरुष ( अहिम् ) अभिमुख स्थित शत्रु को ( विवृश्चत् ) विविध उपायों से काट गिराता है और ( तत् ) वह ( इन्द्रस्य ) इन्द्र का ऐश्वर्यवान् शत्रुघाती

बलवान् पुरुष का ( कर्म ) काम और ( वीर्यं ) बल ( शश्वधा ) सदा काल ही ( प्रवाच्यम् ) सबसे उत्तम रूप से कथन करने योग्य है। वह वीर पुरुष ही ( परिषदः ) चारों ओर घेर के बैठी शत्रु-सेनाओं या छावनियों को ( वज्रेण ) शस्त्र बल से ( वि जघान ) विविध प्रकार से आघात करे और (अयनम् इच्छमानाः आपः) स्थान या शरण चाहने वाले प्रजागण ( अयनम् इच्छमानाः ) विशेष अधिकार चाहने वाले ( आपः ) समीपतम, आप्त पुरुष ही ( आ अयन् ) आगे बढ़ें, उन्नत पद प्राप्त करें। गृहस्थ पक्षमें—इन्द्र आचार्य का यह बड़ा उत्तम स्तुत्य कार्य है कि वह अज्ञान का नाश करता है, ज्ञान रूप वज्र से अपने चारों ओर बैठे शिष्य जनों को प्राप्त करता है। इसी प्रकार जलवत् स्वभाव युक्त सौम्य शिष्य भी (अयनं) ज्ञानेच्छुक होकर उसके शरण आते हैं। चारों ओर स्थितों को वह ज्ञान से प्राप्त होता उनके अज्ञान को नाश करता है यह उसका बड़ा स्तुत्य ज्ञानबल या विशेषोपदेश और उत्तम कर्म है।

एतद्वचो जरितर्मापि मृष्ठा आ यत्ते घोषानुत्तरा युगानि।
उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो नि कः पुरुषत्रा नमस्ते ॥८॥

भा०—हे ( जरितः ) उपदेश करने हारे विद्वन्! हे आज्ञापक! ( एतद् वचः ) इस वचन को तू ( मा अपि मृष्ठाः ) कभी सहन मत कर ( यत् ) कि ( ते ) तेरे ( उत्तरा युगानि ) आगे आने वाले वर्षों में ( घोषान् ) उद्घोषित घोषणाओं को ( प्रति ) पालन न करें। हे ( कारो ) क्रियाकुशल पुरुष! ( उक्थेषु ) प्रशंसनीय उपदेशादि कर्मों में ( नः ) हमें प्रजाओं स्त्रियों, और सेनाओं को ( प्रति जुषस्व ) अवश्य प्रेम कर। और ( नः ) हमें कभी तू ( पुरुषत्रा ) पुरुषों के बीच ( नि कः ) निरादर मत कर। ( नमः ते ) हम तेरे प्रति सदा नमस्कार और आदर भाव दर्शाते हैं।

ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन ।
नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधोअक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः॥९॥

भा०—( ओ ) हे ( स्वसारः ) अपने पति, पालक को स्वयं अपनी इच्छा से प्राप्त करने हारी, स्वयं वरणशील उत्तम स्त्री जनो ! आप लोग ( कारवे ) उत्तम क्रियाकुशल पुरुष के वचन ( शृणोत ) सुनो । वह ( रथेन ) वेग से चलने वाले (अनसा) शकट से ( वः ) तुमको ( दूरात् ) दूर देश से भी आकर ( ययौ ) प्राप्त होवे । आप लोग ( सु नमध्वम् ) उत्तम रीति से विनयपूर्वक झुक कर रहो । आप लोग ( सुपाराः भवत ) सुखसे पालन और पूर्ण करने योग्य होकर रहो । और आप लोग विनय से ( अधो-अक्षाः ) नीचे आंख किये हुए ( स्रोत्याभिः ) प्रवाहों से ( सिन्धवः ) वहने वाली नदियों के समान विनय से जाने वाली होकर रहो । अथवा ( स्रोत्याभिः ) वहने वाली धाराओं से नदियों के समान रजःस्रावों से सदा शुद्ध, नीरोग निर्मल शरीर होकर रहो । ( २ ) प्रजाएं और सेनाएं 'स्व' अर्थात् धन प्राप्त्यर्थ शत्रु पर चढ़ाई करने से 'स्वसृ' हैं । वे अपने नेता कर्त्ता के वचन सुनें । वह दूर देशों को रथादि से प्राप्त करें । वे उसके आगे विनय से रहें । वे सुख से शास्य हों । वे नीचे ही उसके अधीन व्यापार करती हुई चालों से ( सिन्धवः ) नदियों या जलों के समान स्थिर रूप से परम्परा द्वारा चलती चली जावें ।

आ ते कारो शृणवामा वचांसि ययाथ दूरादनसा रथेन ।
नि ते नंसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्या शश्वचै ते ॥१०॥१३॥

भा०—हे ( कारो ) क्रियाकुशल पुरुष ! हम प्रजागण, सैन्यगण ( ते वचांसि ) तेरे वचनों को ( शृणवाम ) सुनें । तू ( अनसा रथेन ) शकट और रथ से ( दूरात् ) दूर २ के देशों तक भी जाता और दूर से आ भी जाता है । ( पीप्याना इव ) जिस प्रकार खूब हृष्ट पुष्ट हुई (योषा) स्त्री ( शश्वचै ) आलिंगन करने के लिये (नि नंसै) प्रेम से झुकती है और

जिस प्रकार ( कन्या मर्याय इव ) कमनीय कन्या पुरुष के ( शश्वचै ) आलिंगन के लिये लज्जाशील उत्सुकता से झुकती है और पुरुष के आलिंगन को उसके अनुकूल होकर सह लेती है उसी प्रकार हम प्रजास्थ लोग भी ( ते ) तेरे ( शश्वचै ) साथ सब प्रकार के सहयोग के लिये ( निनंसै ) निरन्तर तेरे अनुकूल रहकर प्रेमपूर्वक तेरा साथ दें। ( २ ) विद्या सम्पादन कर विवाह करने वाला पुरुष भीरथादि से दूर देश से आवे और हृष्ट पुष्ट कमनीय कन्या उस पुरुष को वरने और पत्नी होकर प्रेम पूर्वक उसके अनुकूल होकर, उसके अधीन हो कर रहे। इति त्रयोदशो वर्गः॥

यदुङ्ग त्वा भरताः सन्तरेयुर्गव्यन्ग्राम इषित इन्द्रजूतः ।
अर्षादह प्रसवः सर्गतक्त आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम् ॥११॥

भा०—( अङ्ग ) हे अभिलाषा करने योग्य स्त्रि ! ( भरताः ) भरण पोषण करने में समर्थ पुरुषो ! ( यत् ) जब ( त्वा ) तुझको (सम् तरेयुः) अच्छी प्रकार प्राप्त कर अपने मनोरथ में सफल हो जाते हैं तब ( गव्यन् ) स्तुति, आशीष् वाणी कहता हुआ ( इन्द्र-जूतः ) विद्वान् पुरुषों से प्रेरित ( ग्रामः ) विद्वान् जनों का संघ ( इषितः ) इच्छुक होकर ( अर्षात् ) प्राप्त हो। ( अह ) और अनन्तर ( सर्गतक्तः ) जलों के समान सुप्रसन्न या निसर्गतः सुप्रसन्न उत्तम सन्तति ( अर्षात् ) प्राप्त हो। मैं ( यज्ञियानाम् ) मैत्री भाव और संग करने के योग्य, उपदेय एवं अभिभावकों द्वारा देने योग्य ( वः ) तुम स्त्रियों की ( सुमतिम् ) शुभ मति को ( आवृणे ) अच्छी प्रकार स्वीकार करूं वा आप लोगों के विषय में सदा शुभ मति, उत्तम बुद्धि रक्खूं। (२) प्रजा राजा पक्ष में—(भरताः) राष्ट्रपालक जन तुम प्रजा या सेना को अच्छी प्रकार प्राप्त होओ, (इन्द्र-जूतः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता नायक द्वारा प्रेरित इच्छावान् सैन्यसमूह ( गव्यम् ) भूमि विजय की कामना करता हुआ ( अर्षात् ) आगे बढ़े। जलों से हरा भरा ( प्रसवः ) उत्तम अभिषेक हो। ( वः यज्ञियानां ) करप्रद एवं

मैत्री और सत्संग, सुप्रबन्ध रचना में योग्य तुम लोगों की भी ( सुमतिं ) उत्तम मति का मैं राजा सदा आदर करूं। ( ३ ) अध्यात्म में इन्द्र—आत्मा, ग्रामः प्राणगण।

**अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम्।**
**प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम्॥१२॥**

भा०—जिस प्रकार ( गव्यवः ) उत्तम भूमि के स्वामी ( भरताः ) प्रजा के पालक पुरुष ( सम् अतारिपुः ) नदियों को उत्तम उपाय से पार कर जाते हैं और जिस प्रकार ( विप्रः ) विद्वान् पुरुप ( नदीनां ) उत्तम उपदेश करने वाली वाणियों के ( सुमतिम् ) उत्तम ज्ञान को ( सम् अभक्त ) अच्छी प्रकार ग्रहण कर लेता है और जिस प्रकार ( सुराधाः वक्षणाः ) उत्तम रीति से बनाई गई जल बहाने वाली नदियां ( इषयन्तीः ) अन्न उत्पन्न करती हुई प्रजाओं को पुष्ट करती हैं, पालती है और शीघ्रता से बहती हैं। उसी प्रकार ( भरताः ) पालन पोपण करने में समर्थ पुरुप ( गव्यन्तः ) अपने लिये योग्य भूमि, क्षेत्र, स्त्री प्राप्त करके ही ( सम् अतारिषुः ) इस संसार सागर के कर्त्तव्य-पथ से पार उतर जाते हैं। ( विप्रः ) मेधावी विद्वान् पुरुप ( नदीनाम् ) गुणों में सम्पन्न स्त्रियों की ( सुमतिम् ) शुभ धर्म बुद्धि को ( सम् अभक्त ) अच्छी प्रकार सेवन करता है। हे उत्तम स्त्रियो! आप लोग ( इषयन्तः ) उत्तम अन्न बनाती हुई और ( सुराधाः ) उत्तम ऐश्वर्यवती होकर ( प्र पिन्वध्वम् ) अच्छी प्रकार बढ़ो बढ़ाओ। ( वक्षणाः आपृणध्वम् ) अपने कोखों को सन्तानों से पूर्ण करो। ( शीभम् यात ) उत्तम रीति से यथाशीघ्र पतियों को प्राप्त करो। (२) इसी प्रकार प्रजाएं और सेनायें भी अन्न ऐश्वर्य चाहती हुई खूब बढ़े बढ़ावें, गाड़ियों को भरें और शीघ्र यातायात करें। भूमि के स्वामी संग्रामों को पार करें, विजयी हों। बुद्धिमान् पुरुप समृद्ध प्रजाओं की सुसम्मति को अपने साथ रक्खें। ( ३ ) वाणी के इच्छुक शिष्य ज्ञान प्राप्त कर पार उतरें।

उद्व॑ ऊ॒र्मिः शम्या॑ ह॒न्त्वापो॒ योक्त्रा॑णि मुञ्चत ।
माऽदु॑ष्कृतौ॒ व्ये॑नसा॒ऽघ्न्यौ शून॒मार॑ताम् ॥ १३ ॥ १४ ॥

भा०—हे उत्तम स्त्रियो ! आप लोग ( आपः ) उत्तम पुरुष द्वारा प्राप्त करने योग्य और ( शम्याः ) कर्म कुशल होकर ( योक्त्राणि ) आचार्य द्वारा बांधी गयी मेखला आदि रज्जुओं को ( उत् मुञ्चत ) त्याग करो। ( वः ) आप लोगों का ( ऊर्मिः ) तरंग उत्साह, हृदय का उत्तम भाव ( उत् हन्तु ) ऊपर उठे। हे वर वधू ! विवाहित स्त्री पुरुषो ! आप दोनों ( अदुष्कृता ) दुष्टाचरण से रहित और ( वि-एनसा ) अपराधों से रहित शुद्ध चरित्र होकर ( अघ्न्यौ ) एक दूसरे को पीड़ित न करते हुए, सौंदर्य से ( शूनम् आ अरताम् ) सुख को प्राप्त करो। दुःख को ( मा अरताम् ) प्राप्त न होओ। अथवा ( योक्त्राणि मा मुञ्चत ) परस्पर संयोग के प्रेम बन्धनों का त्याग मत करो। इति चतुर्दशो वर्गः॥

## [ ३४ ]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ११ त्रिष्टुप् । ४, ५, ७, १० निचृत्त्रिष्टुप् । ६ विराट्त्रिष्टुप् । ३, ६, ८ भुरिक्पंक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रः॑ पू॒र्भिदाति॑र॒द्दास॑म॒र्कैर्वि॒दद्व॑सु॒र्दय॑मानो॒ वि शत्रू॑न् ।
ब्रह्म॑जूतस्त॒न्वा॑ वावृधा॒नो भूरि॑दात्र॒ आपृ॑ण॒द्रोद॑सी उ॒भे ॥ १ ॥

भा०—( पूर्भिद् ) शत्रुनगरों को तोड़ने हारा ( इन्द्रः ) शत्रु-नाशक सेनापति सूर्य के समान तेजस्वी होकर ( अर्कैः ) किरणों से अन्धकार के समान अपने अर्चनीय आदर योग्य उत्तम २ मन्त्रणाओं से (दासम्) अपने सेवक को (अतिरत्) बढ़ावे और (अर्कैः दासम् अतिरत्) तेजों से प्रजा के नाश करने वाले शत्रु का नाश करे। वह ( विदद्वसुः ) बसने वाली प्रजाओं से बसे राष्ट्र और ऐश्वर्य को प्राप्त करके ( दयमानः )

प्रजा पर दया, रक्षा करता हुआ और (शत्रून् दयमानः) अपने राष्ट्र बल का नाश करने वाले शत्रु जनों का नाश करता हुआ, (ब्रह्मजूतः) ब्राह्मण वर्ग और धनों से युक्त होकर (तन्वा) अपने शरीर और विस्तृत राष्ट्र बल से (वावृधानः) बढ़ता हुआ (भूरिदात्रः) बहुत अधिक दानशील और शत्रुनाशक होकर (उभे रोदसी) दोनों लोकों को सूर्य के समान स्वपक्ष और परपक्ष दोनों का (आ अपृणात्) पालन करे।

मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिमियर्मि वाचममृताय भूषन्।
इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा॥ २॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! प्रभो! मैं (अमृताय) अमृतत्व वा चिरस्थायी सुख को लाभ करने के लिये (मखस्य) पूजा करने योग्य (तविषस्य) बलवान्, सर्वशक्तिमान् (ते) तेरी (जूतिम्) प्रेरणा और (वाचम्) वाणी को (भूषन्) अलंकृत करता हुआ तुझ को (इयर्मि) प्राप्त होता हूं। हे प्रभो! (मानुषीणां) मननशील और (दैवीनां) दिव्य गुणों से युक्त (विशां) प्रजाओं और (क्षितीनाम्) राज्य में रहने वाली प्रजाओं के बीच में तू ही (पूर्वयावा) सबसे पूर्व आगे बढ़ने वाला पूर्वों के बनाये न्यायपथ पर चलने चलाने हारा है।

इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद्वर्पणीतिः।
अहन्व्यंसमुशधग्वनेष्वाविर्धेना अकृणोद्राम्याणाम्॥ ३॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (शर्धनीतिः) बलस्वरूप सेना या दण्ड का सञ्चालन करने हारा होकर (वृत्रम्) बढ़ते हुए शत्रु या विघ्नकारी का (अवृणोत्) दूर करे। वह (वर्पणीतिः) समस्त रूपवान् उत्तम पदार्थों को वश करने हारा (मायिनाम्) कपट मायावेशादि करने वालों की चाल को (प्र अमिनात्) अच्छी प्रकार नष्ट करे। (उशधक्)

कान्ति या तेज से जलने या भस्म करने वाला अग्नि जिस प्रकार (वनेषु) जंगलों में लग कर (वि अंसम्) विविध शाखा स्कंधों वाले वृक्ष को (अहन्) नाश कर देता है उसी प्रकार राजा भी ( उशधक् ) युद्ध की चाह करने वालों को भस्म कर देने वाला तेजस्वी होकर ( वनेषु ) जंगलों में ( व्यंसम् ) विविध अंस, स्कन्ध अर्थात् स्कन्धावारों या छावनियों वाले शत्रु को भी ( अहन् ) विनाश करे। और सूर्य जिस प्रकार (राम्याणाम्) रात्रियों के अन्धकारों के बीच में से ( धेनाः ) धवल उषाओं या पक्षियों की वाणियों को प्रकट करता है उसी प्रकार वह भी ( राम्याणाम् ) रमण करने योग्य और प्रजाओं के चित्तों को रमाने वाली भूमियों या इनमें वसी प्रजाओं के बीच में ही ( धेनाः ) अपनी शासनाज्ञाओं को ( आविः अकृणोत् ) प्रकट करे।

**इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः।**
**प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ॥ ४ ॥**

भा०—( इन्द्रः ) वह ऐश्वर्यवान् नायक वीर पुरुष ( स्वर्षाः ) सबका सुख साधन प्रदान करता हुआ ( अहानि जनयन् ) दिनों को जिस प्रकार सूर्य उत्पन्न करता है उसी प्रकार वह भी ( अहानि ) न नाश होने वाले सैन्यों को प्रकट करता हुआ ( अभिष्टिः ) सब ओर संगठन करता हुआ ( उशिग्भिः ) युद्ध की कामना वाली वीर सेनाओं से ( पृतनाः ) शत्रु सेनाओं को ( जिगाय ) विजय करे। वह ( मनवे ) मननशील राज्य की प्रजा के लाभ और रक्षा के लिये ( अह्नां केतुम् ) दिन के प्रकाशक सूर्य के समान ही ( अह्नां केतुम् ) अहन्तव्य, बलवान् सैन्यों के ज्ञापक झण्डे के प्रति ( प्र अरोचयत् ) उनकी सबसे अधिक रुचि और प्रेम उत्पन्न करे। और इस प्रकार ( बृहते ) बड़े भारी ( रणाय ) संग्राम विजय के लिये भी ( ज्योतिः ) तेज और प्रभाव को ( अविन्दत् ) प्राप्त करे। ( २. ) परमेश्वर सर्व सुखप्रद है, दिनों को प्रकट करता, सर्व-

प्रिय, सब मनुष्यों पर विजय पाता, मनुष्यों को ज्ञान देता, रमण करने के लिये प्रकाश प्रदान करता है ।

इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद्दधानो नर्या पुरूणि ।
अचेतयद्धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥५॥१५॥

भा०—( इन्द्रः ) शत्रुओं का नाश करने हारा सेनापति ( नृवत् ) नायक के समान ( पूरूणि ) बहुत से ( नर्या ) नायकोचित सामर्थ्यों, सैन्यों और ऐश्वर्यों को धारण करता हुआ ( तुजः ) शत्रुओं को मारने में समर्थ, (बर्हणाः) बड़ी २ सेनाओं में भी (आ विवेश) उत्तम पद पर स्थित हो, उनका अध्यक्ष बने। [आङ् अध्यर्थः]। वह (जरित्रे) स्तुतिशील पुरुष को (इमाः) ये नाना प्रकार की (धियः) ज्ञान और कर्मों का ( अचेतयत् ) गुरु के समान ही ज्ञान करावे। वह ( आसाम् ) उनके ( इमं ) इस प्रकार ( शुक्रं वर्णम् ) शुद्ध उत्तम वर्ण और शीघ्र कार्य करने वाले योग्य कर्त्ता को ( प्र अतिरत् ) भी पार करे और बढ़ावे। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ।
वृजनेन वृजिनान्त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ॥ ६ ॥

भा०—( अस्य ) इस ( इन्द्रस्य ) ऐश्वर्यवान्, शत्रुदलनकारी वीर पुरुष के ( पुरूणि ) बहुत से ( सुकृता ) उत्तम रीति से किये गये, धार्मिक ( महानि ) बड़े २ ( कर्म ) करने योग्य कर्त्तव्यों और किये कार्यों को ( पनयन्ति ) प्रजाजन प्रशंसा करते और उसके गीत गाते हैं। वह राजा ( अभिभूत्योजाः ) शत्रु पराजय करने वाले पराक्रम से युक्त वीर पुरुष ( वृजनेन ) बल से और ( मायाभिः ) विशेष २ अज्ञेय बुद्धि चातुर्यों से ( वृजिनान् ) पापाचारी ( दस्यून् ) प्रजाओं के नाशक दुष्ट पुरुषों को (सं पिपेष) एक साथ ही पीस कर निर्मूल कर दे।

युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः ।
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥७॥

भा०—( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् शत्रुहनन करने में समर्थ पुरुष ( देवेभ्यः ) विद्वान् एवं ऐश्वय देने वाले प्रजाजनों के हि। के लिये उनसे ही शिक्षा प्राप्त करके ( सत्-पतिः ) सज्जनों का पालक और ( चर्षणिप्राः ) मनुष्यों को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने हारा होकर ( महा युधा ) अपने महान् युद्ध बलसे ( वरिवः ) बड़ा ऐश्वर्य (चकार) प्राप्त करे। ( विप्राः कवयः ) विद्वान् मेधावी पुरुष ( उक्थेभिः ) उत्तम २ प्रशंसनीय वचनों से ( तानि ) उन २ नाना कर्मों को ( विवस्वतः सदने ) सूर्य के समान तेजस्वी पद पर विराजने वाले उसको ( गृणन्ति ) उपदेश करें। और उसके किये कर्मों की स्तुति या साधुवाद करें। ( २ ) परमेश्वर सज्जनों का पालक सबको पूरक, महान् सामर्थ्य से देवों, प्राणों और दानशीलों को ऐश्वर्य दे । है। विद्वान्, सूर्य के समान तेजस्वी उस परमेश्वर के रूप में उसके नाना कर्मों का वर्णन करते हैं।

सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः ।
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥ ८ ॥

भा०—( यः ) जो ( स्वः ) सुख और दुष्टों का सन्तापकारी, प्रतापी और ( देवीः अपः ) दिव्य प्रजागणों को ( ससान ) धारण करता और अन्यों को देता है और ( यः ) जो ( पृथिवीम् ससान ) भूमि को अपने शासन से धारण करता और अन्यों में विभक्त करता है, ( उत इमां द्याम् ) और इस सबकी रक्षा करने वाली राजसभा या भूमि को ( ससान ) धारण करता है उस ( सत्रसहं ) सत्य के बल पर और सत्वोद्वेग से शत्रुओं का पराजित करने वाले ( वरेण्यम् ) प्रजाओं द्वारा वरण करने और श्रेष्ठ मार्ग में प्रजा को ले चलने हारे ( सहोदाम् ) दुर्बलों को बल देने वाले ( स्वः अपः देवीः च ) तेज, विजयेच्छुक असक्त, कुशल, सेना और प्रजाओं को धारण करने वाले ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता राजा को ( अनु ) प्राप्त करे ( धीरणासः ) बुद्धिकौशल, कर्मकौशल से

रक्षा करने वाले वीर और ध्यान स्तुति में रमण करने वाले बुद्धिमान् पुरुष (मदन्ति) हर्ष का अनुभव करते हैं। (२) परमेश्वर पक्ष में स्पष्ट है।

सुसानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम्।
हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून्प्रार्यं वर्णमावत्॥ ९॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (अत्यान् ससान) अति वेग वाले अश्वों वा अश्वसैन्यों को श्रेणी में विभक्त करे। (उत) और वह (सूर्य) उनके प्रेरक, सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को (ससान) पदों पर नियुक्त कर उनको वेतनादि प्रदान करे। वह (पुरुभोजसं गाम्) बहुत से प्रजाजनों का पालन करने वाली 'गौ' अर्थात् गाय आदि पशु, भूमि और वाणी का (ससान) विभाग एवं प्रदान करे। वह (हिरण्ययम्) सुवर्ण आदि बहुत से ऐश्वर्य से युक्त (भोगम्) उपभोग योग्य गृह, द्रव्य आदि सुख साधन को (ससान) नियमानुसार विभक्त करे। वह (दस्यून् हत्वी) प्रजा के नाश करने वालों को दण्डित करके (आर्यं वर्णम्) उत्तम गुण कर्म स्वभाव के श्रेष्ठ पुरुषों को (प्र आवत्) अच्छी प्रकार रक्षा करे। (२) परमेश्वर (अत्यान्) वेग से जाने वाले ग्रहों को, सूर्य को, सर्वपालक पृथिवी को, सुवर्णादिमय भोगों को देता, दुष्टों को नाश कर उत्तम पुरुषों की रक्षा करता है।

इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतीँरसनोदन्तरिक्षम्।
बिभेद वलं नुनुदे विवाचोऽथाभवद्दमिताभिक्रतूनाम्॥ १०॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (अहानि) सभी दिनों, सदा (ओषधीः असनोत्) प्रजा में आरोग्य बढ़ाने के लिये ओषधियों का वितरण करावे। वह (वनस्पतीः असनोत्) स्थान २ पर बड़े, छायादार, फलदार वृक्षों को लगावे। (अन्तरिक्षम् असनोत्) जल का प्रबन्ध करे, स्थान पर जलाशय, प्याऊ आदि बनवावे। (वलं बिभेद) बल अर्थात् सैन्य को विभाग करे, छावनी २ में बांट कर रक्खे। वह (विवाचः)

विविध प्रकार की वाणियों और आज्ञाओं को (नुनुदे) दे, (अथ) और प्रतिस्पर्द्धियों, शत्रुओं का ( दमिता ) दमन करने वाला ( अभवत् ) हो।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ११।१६

भा०—व्याख्या देखो ( सू० ३३ । १७ ) ॥ इति षोडशो वर्गः ॥

## [ ३५ ]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७, १०, ११ त्रिष्टुप्। २, ३, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप्। ९ विराट्त्रिष्टुप्। ४ भुरिक् पङ्क्तिः ॥ ५ स्वराट् पङ्क्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

तिष्ठा हरी रथ आ युज्यमाना याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छ।
पिबास्यन्धो अभिसृष्टो अस्मे इन्द्र स्वाहा ररिमा ते मदाय॥१॥

भा०—हे ( इन्द्र ) शत्रुहन्तः ! तू ( युज्यमाना ) रथ में लगे (हरी) घोड़ों को वश करके ( रथे आ तिष्ठ ) रथ पर सवार हो। तू ( वायुः न ) वृक्षों को वायु के समान शत्रुओं को बलपूर्वक उखाड़ने में समर्थ होकर ( नः ) हमारे ( नियुतः ) नियुक्त अश्वसेनाओं को वश करके ( अच्छ ) अच्छी प्रकार ( याहि ) युद्धयात्रा कर। तू ( अभिसृष्टः ) आक्रमण करता हुआ ( अस्मे ) हमारे ( अन्धः ) अन्नादि ऐश्वर्य को ( पिबासि ) पालन और उपभोग कर। हम यह सब ( ते मदाय ) तेरी प्रसन्नता और हर्ष की वृद्धि के लिये तुझे ( स्वाहा ) उत्तम, सत्य वाणी से ( ररिम ) प्रदान करें।

उपाजिरा पुरुहूताय सप्ती हरी रथस्य धूर्ष्वा युनज्मि।
द्रवद्यथा सम्भृतं विश्वतश्चिदुपेमं यज्ञमा वहात इन्द्रम्॥ २ ॥

भा०—मैं ( पुरुहूताय ) बहुत सी प्रजाओं द्वारा बुलाये जाने योग्य

पुरुष के लिये ( रथस्य ) रथ को ( हरी ) वेग से ले जाने में समर्थ ( सप्ती ) उत्तम ( अजिरा ) वेग से जाने वाले। अश्वों को ( धूर्षु ) रथ को धारण करने वाले धुराओं में ( उप युनज्मि ) लगावें ( यथा ) जिससे वह रथ ( द्रवत् ) वेग से चले। और वे दोनों अश्व ( विश्वतः ) सब प्रकार से ( सम्भृतं ) उत्तम युद्धादि साधनों से सुसज्जित ( इमं यज्ञम् ) इस उत्तम संग्राम और सुसंगति युक्त राष्ट्र-यज्ञ को ( इन्द्रम् ) शत्रुहन्ता पुरुष को ( चित् ) उत्तम रीति से ( उप आवहातः ) ले जावें और प्राप्त करावें।

उपो नयस्व वृषणा तपुष्पोतेमव त्वं वृषभ स्वधावः।
ग्रसेतामश्वा वि मुचेह शोणा दिवेदिवे सदृशीरद्धि धानाः ॥३॥

भा०—हे ( वृषभ ) बलशालिन्! हे ( स्वधावः ) उत्तम अन्न और जलसमृद्धि और आत्म शक्तिसे सम्पन्न मेघके समान दानशील ( त्वम् ) तू ( वृषणा ) बलवान् ( तपुष्पा ) शत्रुके संतापकारी शस्त्रों को पालन करने या शस्त्राघातों से रक्षा करने वाले दोनों अश्वों को ( उप नयस्व उ ) प्राप्त कर। ( शोणौ ) रक्त वर्णके दोनों ( अश्वा ) अश्वों को (इह वि मुच) यहां सुरक्षित स्थान में मुक्त कर और वे दोनों ( ग्रसेतां ) घास आदि सुख से खावें। तू भी (दिवे दिवे) दिन प्रति दिन (धानाः) अग्निसे पकाये विशेष पुष्टिकारक अन्नों को ( अद्धि ) खा।

ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन्प्रजानन्विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥४॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! ( सधमादे ) एकसाथ हर्षपूर्ण होने के समान संग्राम में मैं (ते) तेरे ( आशू ) शीघ्रगामी (सखाया) मित्रों के समान सदाके साथी ( ब्रह्मयुजा ) बहुत साधनैश्वर्य प्राप्त करने वाले (हरी) दो अश्वों को (ब्रह्मणा) जिस प्रकार अन्न घासादि से पुष्ट करके जोड़ा जाता

है उसी प्रकार दो (हरी) सैन्य और राष्ट्र को हरने या सन्मार्ग पर लेजाने वाले दो प्रमुख पुरुषों को ( ब्रह्मणा ) बड़े ऐश्वर्य प्रदान द्वारा ( युनज्मि ) नियुक्त करता हूं । तू ( रथम् ) रथ पर उसके समान रमण करने योग्य या वेग से जाने वाले राष्ट्र वा सैन्य बल पर ( स्थिरं ) स्थिरतापूर्वक और(सुखं) अनायास ( अधितिष्ठन् ) अध्यक्ष रूप से शासन करता हुआ ( प्रजानन् ) उत्तम ज्ञानवान् और ( सोमम् विद्वान् ) ऐश्वर्यप्राप्ति और राष्ट्र-शासन के कार्य को भलीभाँति जानता हुआ ( उप याहि ) उसको प्राप्त कर । ( २ ) अध्यात्म में—( हरी ) प्राण और अपान हैं । एक साथ हर्ष अनुभव करने का अवसर या स्थान देह है । उसमें अन्न द्वारा प्राणों को नियुक्त कर शरीर रूप रथ में आत्मा सुखसे रहे । ( ३ ) अथवा आत्मा परमात्मा दोनों को योग्य विधिसे नियुक्त करूं । साक्षात् आत्मा ( रथं ) रसस्वरूप परमानन्द को प्राप्त कर परमैश्वर्य को प्राप्त करें ।

मा ते हरी वृषणा वीतपृष्ठा नि रीरमन्यजमानासो अन्ये ।
अत्यायाहि शश्वतो वयं तेऽरं सुतेभिः कृणवाम सोमैः ॥५॥१७॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! ( अन्ये ) दूसरे, अपने से भिन्न शत्रुगण (यजमानासः ) मैत्री भाव करते हुए ( ते ) तेरे ( वृषणा ) बलवान् ( वीतपृष्ठा ) कान्तियुक्त वा सुरक्षित पीठ वाले, कवचयुक्त ( हरी ) रथके लेजाने वाले अश्वों और रथसैन्य के नायकों को भी ( मा निरीरमन् ) कभी निम्न श्रेणी के व्यसनों में न लुभा लेवें । तू ( शश्वतः ) चिरकाल से शत्रुता करने वालों को (अति आयाहि) अतिक्रमण करके उनको लांघकर आगे बढ़ । ( वयं ) हम ( ते ) तेरे लिये ( सुतेभिः ) उत्पादित ( सोमैः ) ऐश्वर्यों से और ( सुतैः सोमैः ) अभिषिक्त शासकों द्वारा या निष्पन्न अभिषेकों द्वारा ( अरं कृणवाम ) खूब अन्नादि की वृद्धि करें । अच्छी प्रकार अभिषेक करें । इति सप्तदशो वर्गः ॥

तवायं सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमं सुमना अस्य पाहि ।
अस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर इन्दुमिन्द्र ॥ ६ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन्तः ! ( अयं सोमः ) यह समस्त ऐश्वर्य और शासन ( तव ) तेरा है । तू ( अर्वाङ् ) इसके नीचे, आश्रयरूप होकर ( सुमनाः ) शुभ चित्त और ज्ञान से युक्त होकर ( अस्य ) इसके ( शश्वत्तमम् ) अति स्थायी पद को ( पाहि ) सुरक्षित रख और उसका उपभोग कर । ( अस्मिन् ) इस ( यज्ञे ) अतिपूज्य, आदरणीय और सबके प्रति मित्रभाव से वर्त्तने योग्य ( बर्हिषि ) वृद्धिशील परम आसन और प्रजामय राष्ट्र पर ( निषद्य ) स्थिरता से विराज कर ( इमं ) इसके ( इन्दुम् ) स्नेह से आर्द्र आहार के समान ही ( जठरे ) अपने उत्पादक शासन के भीतर ( दधिष्व ) धारण कर । अध्यात्म में—'सोम' शिष्य का शुभ चित्त से पालन करे, इस ब्रह्माध्यापन पुण्यदानकार्य में उच्च आसन पर विराज कर ( इन्दुम् ) स्नेहार्द्र शिष्य का अपने विद्या के गर्भ में लेकर शिष्य को भी, पुत्र को माता के समान उत्पन्न करे ।

स्तीर्णं ते बर्हिः सुत इन्द्र सोमः कृता धाना अत्तवे ते हरिभ्याम् ।
तदोकसे पुरुशाकाय वृष्णे मरुत्वते तुभ्यं राता हवींषि ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य के समक्ष ( बर्हिः ) यह महान् आकाश या भूलोक ( स्तीर्णं ) विस्तृत रहता है । ( सुतः सोमः ) जल निषिक्त होता है । सूर्य के ( हरिभ्यां ) प्रकाश ताप जलादि लेने और लाने वाले किरणों से ही ( अत्तवे ) संसार के खाने योग्य ( धानाः कृताः ) अन्न, दाना उत्पन्न होते हैं, सूर्य का अपना स्थान दूर भी है तो भी वह ( पुरुशाकाय ) बहुत शक्तिशाली या बहुतसे हरे शाकादि उत्पन्न करने वाला ( वृष्णे मरुत्वते ) वर्षणशील वायुओं का सञ्चालक होता है ये अन्न भी उसी के दिये होते हैं, उसी प्रकार हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् !

राजन् ! (ते) तेरा यह (बर्हिः) वृद्धिशील प्रजामय राष्ट्रलोक (स्तीर्णं) अति विस्तृत हो। (ते) तेरे लिये (सोमः) ऐश्वर्य वा अभिषेक भी (सुतः) किया जाय। (ते) तेरे (हरिभ्याम्) उत्तम नायकों द्वारा (अत्तवे) उपभोग के लिये (धानाः) राष्ट्र को धारण करने वाले पुरुष वा पालने योग्य प्रजाएं भी (कृताः) अच्छी प्रकार सुशासित हों, वे अन्नादि के समान उपभोग योग्य हों। (तदोकसे) उस उत्तम स्थान या गृह में निवास करने वाले (पुरुशाकाय) बहुत से सामर्थ्यों से सम्पन्न (वृष्णे) बलवान् राज्यप्रबन्धक (मरुत्वते) वायु तुल्य वीर सैनिकों के स्वामी (तुभ्यं) तेरे और तेरे लिये ही ये (हवींषि) ग्रहण करने और देने योग्य अन्नादि ऐश्वर्य (राता) दिये हुए और तुझे ही दिये जाने योग्य हैं। (२) अध्यात्म में—प्राणों का स्वामी आत्मा 'मरुत्वान्' है। उसके भोजन के लिये ये अन्नादि, धान्य, सोम ओषधिरस और (बर्हिः) प्रजा सन्तानादि हैं। यह गृह 'ओकस्' है, इन्द्रियगण शक्ति है अतः 'पुरुशाक' है।

**इमं नरः पर्वतास्तुभ्यमापः समिन्द्र गोभिर्मधुमन्तमक्रन्।**
**तस्यागत्या सुमना ऋष्व पाहि प्रजानन्विद्वान्पथ्या३अनु स्वाः ॥८॥**

भा०—(पर्वताः आपः गोभिः इमं मधुमन्तं अक्रन्) मेघ और जल, धाराएं, नदियें जिस प्रकार भूमियों से मिलकर इस लोक को जल और अन्न से युक्त कर देते हैं उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! प्रभो! राजन्! (नरः) नायकगण (पर्वताः) पालन करने की शक्ति वाले और (आपः) आप्त पुरुष (तुभ्यम्) तेरे लिये, तेरे ही (इमं) इस राष्ट्र को (गोभिः) भूमियों, वाणियों द्वारा हे (ऋष्व) महान्! (मधुमन्तम्) मधुर अन्न और ज्ञान से युक्त (सम् अक्रन्) सुसंस्कृत करें। तू (स्वाः) अपने (पथ्याः) हितकारी मार्गों को (विद्वान्) जानता हुआ (प्र जानन्) उत्तम ज्ञानवान् और (सुमनाः) उत्तम चित्त से

युक्त होकर ( तस्य पाहि ) उस राष्ट्र का उपभोग और पालन कर। ( २ ) पुरुष भी स्वयं ( स्वाः पथ्याः पिबेत् ) अपने पथ्य हितकारी पदार्थों को ही खावे पीवे। ज्ञानी, विद्वान् और शुभ चित्त वाला होकर रहे।

**याँ आभ॑जो म॒रुत॑ इन्द्र॒ सोमे॒ ये त्वामव॑र्ध॒न्नभ॑वन्ग॒णस्ते॑।**
**तेभि॑रे॒तं स॒जोषा॑ वावशा॒नो॒३॒॑ऽग्नेः पि॑ब जि॒ह्वया॒ सोम॑मिन्द्र ॥ ९ ॥**

भा०—( यान् मरुतः ) जिन वायु के समान बलवान् पुरुषों को तू ( सोमे ) अपने ऐश्वर्य की प्राप्ति और अभिषेक के कार्य में ( आ अभजः ) अपने अधीन नियुक्त करे और जो ( त्वाम् अवर्धन् ) तुझे बढ़ावें वे ( ते गणः ) तेरा सहायक दल है ( तेभिः ) उनके साथ ( सजोषाः ) समान रूप से प्रीतियुक्त होकर ( वावशानः ) उनको खूब अच्छी प्रकार चाहता हुआ ( अग्नेः जिह्वया ) अग्नि की ज्वाला के समान अग्रणी नायक विद्वान् पुरुष की वाणी या सब ग्रस जाने वाली शक्ति से ( इन्द्र ) हे इन्द्र ! ऐश्वर्यवन् ! तू ( सोमं पिब ) राष्ट्र के ऐश्वर्य को उपभोग और पालन कर। ( २ ) आचार्य शिष्य पक्ष में—अग्नि और इन्द्र आचार्य हैं, मरुद्गण और सोम शिष्य हैं।

**इन्द्र॒ पिब॑ स्व॒धया॑ चित्सु॒तस्या॒ग्नेर्वा॑ पाहि जि॒ह्वया॑ यजत्र।**
**अ॒ध्व॒र्योर्वा॒ प्रय॑तं शक्र॒ हस्ता॒द्धोतु॒र्वा॑ य॒ज्ञं ह॒विषो॑ जुषस्व ॥१०॥**

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! राजन् विद्वन् ! अथवा ( इन्द्र ) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र ! तू ( स्वधया ) अपने धारण और पोषण करने वाली शक्ति से ( सुतस्य ) निष्पन्न वा अभिषिक्त मुख्य पुरुष के और ( अग्नेः वा ) अग्नि के समान ( जिह्वया ) तीव्र ज्वाला रूप तीक्ष्ण वाणी से ( सुतस्य पिब पाहि ) प्राप्त हुए राज्य का उपभोग और पालन कर। हे ( यजत्र ) आदर सत्कार और मैत्री के योग्य पुरुष ! हे ( शक्र ) शक्तिशालिन् ! तू ( अध्वर्योः ) अध्वर अर्थात् प्रजा के हिंसन, पीड़न से रहित योग्य पुरुष के ( हस्तात् ) हाथ और ( होतुः ) दानशील और

संग्रहशील पुरुष के हाथ से ( प्रयतं ) अच्छी प्रकार सुसंयत ( यज्ञं ) और सुसंगत राष्ट्र की रक्षा कर और ( हविषः ) उत्तम अन्न को (जुषस्व) प्रेम से स्वीकार कर ।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ११।१८

भा०—व्याख्या देखो सू० ३४ । ११ ॥ इत्यष्टादशो वर्गः ॥

## [ ३६ ]

विश्वामित्रः । १० घोर आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७, १०, ११ त्रिष्टुप् । २, ३, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ विराट्त्रिष्टुप् । ४ भुरिक् पङ्क्तिः । ५ स्वराट् पङ्क्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

इमामू षु प्रभृतिं सातये धाः शश्वच्छश्वदूतिभिर्यादमानः ।
सुतेसुते वावृधे वर्धनेभिर्यः कर्मभिर्महद्भिः सुश्रुतो भूत् ॥ १ ॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! तू ( शश्वत् शश्वत ) निरन्तर, सदा ही ( यादमानः ) प्रार्थना किया जाकर ( ऊतिभिः ) रक्षाकारी पुरुषों और सेना दुर्गादि रक्षा साधनों से ( इमाम् ) इस ( प्रभृतिम् ) उत्तम भरण पोषण करने योग्य प्रजा को ( सातये ) उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये ही (सु धाः उ) अच्छी प्रकार, सुखपूर्वक धारण पोषण कर । तू (सुते सुते ) राष्ट्र में उत्पन्न प्रत्येक पदार्थ पर और प्रत्येक पदाभिषेक पर ( महद्भिः ) बड़े २ ( वर्धनेभिः ) वृद्धिकारक ( कर्मभिः ) कर्मों से ( वावृधे ) बढ़, वृद्धि को प्राप्त कर और उन बड़े २ कर्मों से ही तू ( सुश्रुतः ) सुप्रसिद्ध (भूत्) हो । (२) आचार्य प्रार्थित होकर अपने शिष्य को नाना शिक्षाओं और आशिषों द्वारा उसको इस ( प्रभृतिं ) सबसे उत्तम रीति से धारण करने योग्य वाणी को प्रदान करने के लिये शिष्य का पालन कर । तू प्रत्येक शिष्य

पर वृद्धिकारक कर्मों से बढ़ और सुप्रसिद्ध हो। इसी प्रकार विद्वान् शिष्य ( यादमानः = याचमानः ) विद्यादि याचना करता हुआ ( प्रभृतिं ) उत्तम धारणीय ज्ञान, वाणी और दीक्षा को सनातन-पुरातन ज्ञान के लाभार्थ धारण करे। प्रत्येक ज्ञान के निमित्त वृद्धिकारक कर्मों से बढ़े और सुश्रुत, बहुश्रुत होवे।

इन्द्राय सोमाः प्रदिवो विदाना ऋभुर्येभिर्वृषपर्वा विहायाः।
प्रयम्यमानान्प्रति षू गृभायेन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्णः॥ २॥

भा०—( प्रदिवः ) उत्तम प्रकाश वाले, तेजस्वी, उत्तम कामना वाले ( सोमाः ) सौम्य स्वभाव के शिष्यगण ( विदानाः ) ज्ञान लाभ करते हुए ( इन्द्राय ) अज्ञाननाशक इन्द्र, आचार्य की ही वृद्धि के लिये होते हैं ( येभिः ) जिनसे वह ( विहायाः ) विशेष २, विविध विद्याओं का दान करने वाला ( वृषपर्वा ) वर्षणशील मेघ के समान शिष्यों को पूर्ण और पालन करने वाला गुरु ही ( ऋभुः ) सत्य ज्ञान से प्रकाशमान महान् हो जाता है। हे ( इन्द्र ) विद्वन्! गुरो! तू ( प्रयम्यमानान् ) उत्तम रीति से यम नियमों का पालन करने वाले विद्यार्थी जनों को (प्रति-गृभाय ) अपने अधीन ले। और ( वृषधूतस्य ) ज्ञानरूप जलों के सेचन करने वाले विद्वानों द्वारा अज्ञानों से रहित हुए ( वृष्णः ) बली, वीर्यवान् शिष्य का ( पिब ) पालन कर। ( २ ) उत्तम चमकीले ये ऐश्वर्य सब उसी शत्रुहन्ता के लिये हैं। जिन्हों से वही सर्वत्यागी, बलवान् पालक महान् हो जाता है। वह ( प्रयम्यमानान् ) अच्छी प्रकार संयम किये जाते हुए शत्रुओं को पकड़े, और बलवान् पुरुषों से आलोडित प्रबल राष्ट्र का भोग करे। ( ३ ) अध्यात्म में—विरक्त सर्वत्यागी 'विहायाः' है और आकाशवत् व्यापक विशुद्ध परमेश्वर भी 'विहायाः' है। ये सब ऐश्वर्य जीव-गण वा आनन्दरस उसी के हैं। उत्तम नियम में स्थित लोकों और प्राणों को वही धारण करता है। वही उस परम बल और प्राण को धारण करता है।

पिबा वर्धस्व तव घा सुतास इन्द्र सोमासः प्रथमा उतेमे ।
यथापिबः पूर्व्याँ इन्द्र सोमाँ एवा पाहि पन्यो अद्या नवीयान् ॥३॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! हे विद्वन् आचार्य ! ( प्रथमाः ) पहले ( उत ) और ( इमे ) ये नये दोनों ही ( सोमासः ) सौम्यगुणयुक्त शिष्यजन ( तव घ सुतासः ) तेरे ही निश्चय से पुत्र के समान है। तू ( पिब ) उनका पालन कर और ( वर्धस्व ) शिष्य परम्परा से सन्तति से पिता के समान बढ़। हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! ( यथा ) जिस प्रकार ( पूर्व्यान् सोमान् ) पूर्व के आये शिष्यों का तू ( अपिबः ) पालन करता रहा हे ( पन्यो ) उपदेष्टः ! ( अद्य ) आज, अब तू ( एव ) उसी प्रकार ( नवीयान् सोमान् ) इन नये उत्पन्न विद्यार्थिजनों को भी ( पाहि ) पालन कर। ( २ ) ऐश्वर्ययुक्त इन्द्र व्यवहार व्यापार करने हारा होने से भी 'पन्यु' है। ( ३ ) राजा भी अभिषिक्त नये पुराने पदाधिकारियों को और उत्पन्न प्रजागण को पुत्रवत् ही पाले और बढ़े। 'उपनयन करने वाला आचार्य तीन रात शिष्य को अपने उदर में रखता है' इसी प्रकार उदर में रखने के ही समान धर्म से जलों के समान 'सोम' विद्यार्थियों का भी सोम ओषधि रसों के साथ उपमानोपमेय भाव सर्वत्र जानना चाहिये। रक्षणार्थ और प्रश्नार्थ दोनों धातुओं को वेद में पिब आदेश होता है और नहीं भी होता है। इस मन्त्र में 'पिब' 'पाहि' दोनों का प्रयोग समान रूप से है। ( ४ ) परमेश्वर इन्द्र है जीवगण सोम हैं। उन सबको वह पालन करता है अतएव सबसे बड़ा है। वही स्तुत्य होने से 'पन्यु' है।

महाँ अमत्रो वृजने विरप्श्यु१ग्रं शवः पत्यते धृष्ण्वोजः ।
नाह विव्याच पृथिवी चनैनं यत्सोमासो हर्यश्वममन्दन् ॥ ४ ॥

भा०—( अमत्रः ) सबका सहायक, शत्रुओं पर चढ़ाई करने वाला और शत्रुओं को पीड़ित करने वाला, ( महान् ) गुणों में महान्, (वृजने)

वल में और (वृजने) दुःखदायी संकटों और अविद्यादि दोषों को दूर करने में (विरप्शी) अधीनों को विविध रूप से आज्ञा और उपदेश करने वाला पुरुष, (उग्रं) वहुत उग्र, भयंकर (शवः) वल और (धृष्णुः) शत्रुपराजयकारी (ओजः) पराक्रम (पत्यते) प्राप्त होता है। (यत्) जव (हर्यश्वम्) वेगवान् अश्वों के स्वामी को (सोमासः) ऐश्वर्य समूह और अभिषिक्त नायकगण (अमन्दन्) हर्षित करते हैं तव (एनं पृथिवी चन) समस्त पृथिवी, उसके निवासी भी (न अह विव्याच) उस तक नहीं पहुंचते, उसकी शक्तियों को सीमित नहीं कर सकते। (२) परमेश्वर महान्, सर्वव्यापक, विविध ज्ञानोपदेष्टा है। उसका ज्ञान, वल सवसे उन्नत सर्वातिशायी है। ज्ञानी जीव, योगीजन उसकी स्तुति करते हैं, पृथिवी भी उसको माप नहीं सकती। वह पृथिवी से भी महान् है। वह सर्व दुःखहारी होने से स्वयं 'हरि' और व्यापक होने से 'अश्व' है।

म॒हाँ उ॒ग्रो वा॑वृधे वी॒र्या॑य स॒माच॑क्रे वृष॒भः काव्ये॑न।
इन्द्रो॒ भगो॑ वाज॒दा अ॑स्य॒ गाव॒ः प्र जा॑यन्ते॒ दक्षि॑णा अस्य पू॒र्वीः ॥ ५ ॥ १९ ॥

भा०—(महान्) गुणों में महान् (उग्रः) वलवान् पुरुष (वीर्याय) अपने वल वीर्य को वढ़ाने के लिये (वावृधे) और भी वढ़े, वह (वृषभः) वलवान् और ऐश्वर्यों का दान देनेहारा होकर (काव्येन) क्रान्तदर्शी विद्वानों के उपदेश किये शास्त्र से (सम् आचक्रे) अच्छी प्रकार सव कार्यों का अनुष्ठान करे। वह (इन्द्रः) ज्ञान, ऐश्वर्यवान् शत्रुहनन करने में समर्थ (भगः) सवके सेवा करने योग्य (वाजदाः) युद्ध, ज्ञान और वल को देनेहारा हो। (अस्य) उसकी (गावः वाजदाः) गौएं दुग्धादि देने वाली, वाणियें ज्ञान देने वाली, भूमियें अन्न देने वाली (प्रजायन्ते) होवें और (अस्य दक्षिणाः) उसकी ज्ञान, धन आदि दान-

क्रियाएं भी ( पूर्वीः ) पूर्ण और ( वाजदाः ) ज्ञान, ऐश्वर्य आदि देने वाली हों। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

**प्र यत्सिन्धवः प्रसवं यथायन्नापः समुद्रं रथ्येव जग्मुः।**
**अतश्चिदिन्द्रः सदसो वरीयान्यदीं सोमः पृणाति दुग्धो अंशुः॥६॥**

भा०—( यथा ) जिस प्रकार ( सिन्धवः ) जल ( प्रसवम् ) अपने उत्पादक मेघ या सूर्य को ( प्र आयन् ) अच्छी प्रकार प्राप्त होते हैं और ( आपः ) जलधाराएं ( रथ्या इव ) रथ में लगे अश्वों के समान ही जिस प्रकार ( समुद्रं जग्मुः ) वेग से बहते हुए समुद्र को प्राप्त होते हैं। ( अतः चित् ) इसी कारण से ( इन्द्रः सदसः वरीयान् ) इन्द्र सूर्य ही सबसे अधिक शक्तिशाली सिद्ध होता है। उसी के द्वारा ( दुग्धः ) दुहा गया या उत्पादित ( अंशुः सोमः ) सबके भोजन करने योग्य खाद्य, ओषधिगण ( ईम् पृणाति ) इस समस्त संसार को पालन करता है। इसी प्रकार ( यत् ) इसके ( प्रसवं ) उत्तम शासन को प्राप्त कर ( सिन्धवः ) वेग से जाने वाले अश्वसैन्य ( प्र आयन् ) आगे बढ़ते हैं और ( आपः ) आप्त, प्रजागण जिस ( समुद्रं ) समुद्र के समान गम्भीर पुरुष को प्राप्त होते हैं इसी कारण ( इन्द्रः ) वह ऐश्वर्यवान् पुरुष ( सदसः वरीयान् ) अपने सभाभवन से भी बहुत बड़ा है उसके भी ऊपर शासन करता है। ( यद् दुग्धः अंशुः सोमः ) जिस द्वारा दुहा गया या पूर्ण किया गया व्यापक ऐश्वर्य या सर्वोपभोग्य राष्ट्र ( ईम् पृणाति ) इस समस्त प्रजागण को पालता है या यह समस्त ( सोमः ) ऐश्वर्य ही ( ईं पृणाति ) इस राजा को पूर्ण करे। ( २ ) परमेश्वर पक्ष में—( यत् ) जिस परमेश्वर से ( सिन्धवः ) महा नदों के समान प्रवाहित होने वाले निहारिका प्रवाह ( प्रसवं प्र आयन् ) उत्पत्ति लाभ करते हैं जिस महान् समुद्र के समान अपार प्रभु को ( आपः ) आप्त जीवगण या सूक्ष्म प्रकृति को व्यापक परमाणुसंघ संगत होते हैं वह परमेश्वर इस ( सदसः ) सबके प्रतिष्ठा या

आश्रय-स्थान महान् आकाश से भी महान् है (यत् दुग्धः अंशुं ईं पृणति) उसी परमेश्वर का सब को पूर्ण करने वाला सर्वत्र व्यापक ( सोमः ) सब का प्रेरक बल इस संसार को पूर्ण कर रहा है। ( ३ ) आचार्य पक्ष में—शिष्यगण विद्या योनिसम्बन्ध से बांधने से सिन्धु हैं, प्राप्त होने से 'आपः' हैं। उनका उत्पादक आचार्य ही 'प्रसव' है। वही गम्भीर ज्ञान का समुद्र है वे उसको प्राप्त होते हैं। ब्रह्मचर्याश्रम 'सदस्' है। वह परिपूर्ण ज्ञानवान् शिष्य ही आचार्य को सेवादि से प्रसन्न करे। ( ४ ) अध्यात्म में—सिन्धु, आपः, प्राण हैं। इन्द्र आत्मा। 'सदस्' देह, सोम, ज्ञान वा वीर्य।

स॒मु॒द्रेण॒ सिन्ध॑वो॒ याद॑माना॒ इन्द्रा॑य॒ सोमं॒ सुषु॑तं॒ भर॑न्तः।
अं॒शुं दु॑हन्ति ह॒स्तिनो॑ भ॒रित्रै॒र्मध्वः॑ पुनन्ति॒ धार॑या प॒वित्रैः॑ ॥७॥

भा०—( सिन्धवः ) नदियें ( समुद्रेण ) समुद्र के साथ मिलकर ( सोमं भरन्ति ) जिस प्रकार उसमें जल भरती हैं और उसे पूर्ण करती हैं। उसी प्रकार ( समुद्रेण ) समुद्र के समान अति गम्भीर नायक पुरुष से मिलकर ( यादमानाः ) उससे ही ऐश्वर्य की याचना या कामना करते हुए ( इन्द्राय ) उस ऐश्वर्यवान् पुरुष को बढ़ाने के लिये ( सु-सुतं ) अच्छी प्रकार से पैदा किये ऐश्वर्य को ( भरन्तः ) प्राप्त करते हुए ( हस्तिनः ) सिद्धहस्त, कुशल पुरुष ( भरित्रैः ) भरण पोषण करने के साधनों से ( अंशुं दुहन्ति ) सारयुक्त पदार्थ को पूर्ण करते हैं और ( पवित्रैः मध्वः ) जिस प्रकार अन्नों को छाजों से साफ़ किया जाता है और ( धारया मध्वः ) जिस प्रकार धारा से जलों को स्वच्छ किया जाता है उसी प्रकार ( पवित्रैः ) पवित्र आचरणों से और ( धारया ) उत्तम वाणी से ( मध्वः ) बलवान् पुरुषों को ( पुनन्ति ) पवित्र करें। ( २ ) समुद्र रूप पूर्ण विद्या की याचना करते हुए सुसम्बद्ध-शिष्य ज्ञानवान् पुरुष से सुसंगत हों। वे इस आचार्य के उत्तम ज्ञान को धारण करें वा विद्वान्

जन उत्पन्न पुत्रवत् शिष्य को धारण करें। ( हस्तिनः ) उत्तम सिद्धहस्त कुशल पुरुष पोषक उपायों से शिष्य को पूर्ण करें, पवित्राचरण और वेद-वाणी से पवित्र करें।

**हृ॒दा इ॑व कु॒क्षयः॑ सोम॒धानाः॒ समीं॑ वि॒व्याच॒ सव॑ना पु॒रूणि॑ ।**
**अन्ना॒ यदिन्द्रः॑ प्रथ॒मा व्याश॑ वृ॒त्रं ज॑घ॒न्वाँ अ॑वृणीत॒ सोम॑म् ॥८॥**

भा०—( ह्रदाः इव सोमधानाः ) जलाशय जिस प्रकार अपने भीतर जल रखते हैं उसी प्रकार ( कुक्षयः ) मनुष्य की कोखें ( सोम-धानाः ) सोम अर्थात् अन्नों को अपने भीतर रखती हैं उनके समान ही ( कुक्षयः ) इसी प्रकार सार भाग को अपने पास रखने वाले जन वा कोश भी ( सोमधानाः ) सोम, ऐश्वर्य को धारण करने वाले हों ( यत् इन्द्रः ) जो इन्द्र ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता विजिगीषु राजा ( वृत्रं जघन्वान् ) अपने बढ़ते हुए विघ्नकारी शत्रु को मारता हुआ ( सोमं अवृणीत ) ऐश्वर्य को अन्न के समान बलकारक रूप से प्राप्त करता है वह ( पुरूणि प्रथमा सवना ) बहुतसे श्रेष्ठ और विस्तृत यशोजनक ऐश्वर्यों को ( सं विव्याच ईम् ) सब तरफ़ से अच्छी प्रकार सुरक्षित रूप से प्राप्त करे और ( अन्ना ) अन्नों के समान ही उन ( अन्ना ) उपभोग किये जाने पर भी न क्षीण होने वाले अक्षय ऐश्वर्यों को ( वि आश ) विविध प्रकार से उपभोग करे। ( २ ) आचार्य पक्ष में—( कुक्षयः ) सार-भाग को धारण करने वाले विद्याओं के भण्डाररूप विद्वान् जन गंभीर जला-शयों के समान अपने में सोमों, शिष्यों को धारण करते हैं। अज्ञान का नाशक विद्वान् आचार्य जब सोम शिष्य का वरण करता है तब बहुत से ( सवना ) ज्ञान जिनको उसने प्रथम अन्नों के समान ही अपने में लिया था वह उनको ( ईं विव्याच ) उस विद्यार्थी जन को ही प्रदान कर देता है।

आ तू भर माकिरेतत्परि ष्ठाद्विद्मा हि त्वा वसुपतिं वसूनाम् ।
इन्द्र यत्ते माहिनं दत्रमस्त्यस्मभ्यं तद्धर्यश्व प्र यन्धि ॥ ९ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! तू ( आ भर ) ऐश्वर्य का संग्रह कर, तू राष्ट्र का भरण पोषण कर । और ( तत् ) तेरे इस सुरक्षित ऐश्वर्य को ( माकिः परि स्थात् ) कोई व्यक्ति भी न रोक रक्खे । ( त्वा हि ) तुझे ही ( वसूनां वसुपतिं ) समस्त ऐश्वर्यों और राष्ट्र में बसने वाले प्रजाओं का 'वसुपति', स्वामी ( विद्म ) जानते हैं । ( यत् ते ) जो तेरा ( माहिनम् ) महान्, आदरणीय ( दत्रम् अस्ति ) दान, शत्रुच्छेदन और प्रजा रक्षण का सामर्थ्य है तू ( तत् ) उसको हे ( हर्यश्व ) वेगवान् अश्व-सैन्यों के स्वामी ! ( अस्मभ्यम् ) हमारे लिये ( प्र यन्धि ) अच्छी प्रकार प्रदान कर । सब तरफ विभक्त करके और फैला कर रख । ( २ ) वसु, ब्रह्मचारियों के पालक आचार्य 'वसुपति' हैं । वह उसे धारण करे, अन्य कोई उसको विघ्न न हो । आचार्य का सर्वोत्तम दान ज्ञान है वह हम सबको दे ।

अस्मे प्र यन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः ।
अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन् ॥ १० ॥

भा०—हे ( मघवन् ) ऐश्वर्य के स्वामिन् ( ऋजीषिन् ) सरल मानस प्रवृत्ति वाले धार्मिक पुरुष ! हे ( शिप्रिन् ) सुन्दर मुख नासिका वाले सौम्य पुरुष वा हे तेजस्विन् ! बलवन् ! हे ( इन्द्र ) शत्रुहन्तः ! आप ( भूरेः ) बहुत से ( विश्ववारस्य ) सबसे वरण करने योग्य, सब संकटों के वारक ( रायः ) ऐश्वर्य का ( अस्मे प्रयन्धि ) हमें अच्छी प्रकार दान और विभाग करो । और ( अस्मे ) हमें ( शतं शरदः ) सौ बरसों तक ( जीवसे ) जीवन धारण के लिये ( धाः ) धारण पोषण कर । या ( अस्मे जीवसे शतं शरदः धाः ) हमें जीने के लिये सौ बरस की आयु दे, हमें सौ बरस तक जीने दे । और ( अस्मे ) हमें ( शश्वतः वीरान् ) चिरस्थायी वीर पुरुष और वीर्यवान् पुत्र ( धाः ) प्रदान कर ।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥११।२०॥

भा०—व्याख्या देखो पूर्ववत् । सू० ३४ । ११ ॥

[ ३७ ]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ७ निचृद्गायत्री । २, ४—६, ८—१० गायत्री । ११ निचृदनुष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च ।
इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥ १ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) शत्रुहन्तः ! सेनापते ! ( त्वा ) तुझको हम ( वार्त्रहत्याय ) बढ़ते हुए और सत्कर्म से रोकने वाले, विघ्नकारी या नगरों को घेरने वाले शत्रुओं वा दुष्ट पुरुषों के हनन करने वाले और ( पृतना-साह्याय ) सेनाओं को पराजित करने में समर्थ ( शवसे ) बल को प्राप्त करने और बढ़ाने के लिये ( आ वर्त्तयामसि ) प्रवृत्त करते और सर्वत्र स्थापित करते हैं । ( २ ) प्रभो ! विघ्ननिवारण, शत्रुविजय और बलवृद्धि के लिये तेरा पुनः २ चिन्तन करते हैं ।

अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो ।
इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥ २ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! तेजस्वी पुरुष ! हे ( शतक्रतो ) अनेक उत्तम प्रज्ञाओं और कर्मों वाले ! ( वाघतः ) जो वाणी द्वारा दोषों का नाश करने वाले और शास्त्रों और उत्तम उपायों को धारण करने वाले विद्वान् पुरुष हैं (ते) वे ( मनः ) मन, ज्ञान को और (चक्षुः) आंखों वा दर्शन शक्ति को ( अर्वाचीनं ) अपने अभिमुख वृद्धिशील ( कृण्वन्तु ) करें । ( २ ) परमात्मपक्ष में—हे इन्द्र परमेश्वर (वाघतः) विद्वान् लोग अपने मन और भीतरी चक्षु को ( ते अर्वाचीनं कृण्वन्तु ) तेरे प्रति प्रवृत्त करें ।

नामा॑नि ते शतक्रतो विश्वा॑भिर्गी॒र्भिरी॑महे ।
इन्द्रा॑भिमातिषाह्ये॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) परम ऐश्वर्य के उत्पादक ! ( शतक्रतो ) बहुतसी प्रजाओं वाले ! ( अभिमातिषाह्ये ) अभिमानी शत्रुओं को पराजय करने वाले संग्राम में हम ( ते ) तेरे ( नामानि ) बहुत से सार्थक नामों को ( विश्वाभिः गीर्भिः ) सभी स्तुति, प्रशंसा रूप वाणियों से ( ईमहे ) सार्थक हुआ चाहते हैं । शतक्रतु, इन्द्र, वृत्रहा, शिप्रिन् इत्यादि नाना गुणदर्शक नामों को शत्रुविजय के कार्य में सफलता प्राप्त होने पर ही राजा को दिये जावें । अन्यथा ये नाम आडम्बरमात्र हैं ।

पु॒रु॒ष्टु॒तस्य॒ धाम॑भिः श॒तेन॑ महयामसि ।
इन्द्र॑स्य चर्षणी॒धृतः॑ ॥ ४ ॥

भा०—( पुरुस्तुतस्य ) बहुतों से प्रशंसित ( चर्षणीधृतः ) प्रजाओं और शत्रुओं का कर्षण, पीड़न करने वाली सेनाओं को धारण करने वाले ( इन्द्रस्य ) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता पुरुष को हम ( शतेन धामभिः ) सैकड़ों नामों, सैकड़ों पदों से ( महयामः ) विभूषित करें । ( २ ) अध्यात्म में 'चर्षणी'—इन्द्रियगण ।

इन्द्रं॑ वृ॒त्राय॒ हन्त॑वे पुरुहू॒तमुप॑ ब्रुवे ।
भरे॑षु॒ वाज॑सातये ॥ ५ ॥ २१ ॥

भा०—( वृत्राय हन्तवे ) विघ्नकारी, नगरादि को घेरने वाले, बढ़ते हुए शत्रु को दण्डित करने के लिये और ( भरेषु ) संग्रामों और प्रजा-पोषणकारी कार्यों, यज्ञों में ( वाजसातये ) ऐश्वर्य के लाभ के लिये ( पुरुहूतम् ) बहुतों से प्रस्तुत ( इन्द्रं ) शत्रुदल के विदारक पुरुष को मैं प्रजाजन ( उपब्रुवे ) चाहता हूं । ( २ ) अध्यात्म में 'पुरु' इन्द्रियगण, वाज ज्ञान । वृत्र अज्ञान । इत्येकविंशो वर्गः ॥

वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो ।
इन्द्र वृत्राय हन्तवे ॥ ६ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) शत्रुदलन करने हारे ! हे ( शतक्रतो ) सैकड़ बुद्धियों वाले ! ( वृत्राय हन्तवे ) शत्रु को दण्डित करने के लिये हम प्रजाजन ( त्वाम् ईमहे ) तुझ से प्रार्थना करते हैं तू ( वाजेषु ) संग्रामों में ( सासहिः ) शत्रुपराजय करने में समर्थ ( भव ) हो ।

द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सु तूर्षु श्रवःसु च ।
इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ॥ ७ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुदलविदारक ! ( द्युम्नेषु ) ऐश्वर्यों में ( पृतनाज्ये ) सेनाओं के द्वारा परस्पर संग्राम में ( पृत्सु तूर्षु ) सेनाओं और सामान्य प्रजाओं को परस्पर हिंसन, पीड़न के अवसरों में और ( श्रवःसु च ) बलों, ज्ञानों और अन्नादि प्रसिद्धिकारक ऐश्वर्यों के निमित्त ( अभिमातिषु ) अभिमान करने और आक्रमण करने वाले शत्रुओं में तू ( साक्ष्व ) उन सबको परास्त कर ।

शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् ।
इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥ ८ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुओं के दलन करने वाले ! सूर्य के समान प्रतापिन् ! तू ( नः ) हमारे ( ऊतये ) रक्षा के लिये ( शुष्मिन्तमम् ) सबसे अधिक बलवान्, शत्रुशोषणकारी, ( द्युम्निनं ) यश और ऐश्वर्य वाले ( जागृविम् ) सदा जागने वाले अत्यन्त सावधान ( सोमम् ) अभिषिक्त पदाधिकारी, ज्ञानवान् ऐश्वर्यवान् पुरुष को (पाहि) रख । उसको रक्षार्थ नियुक्त कर ।

इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु ।
इन्द्र तानि त आ वृणे ॥ ९ ॥

भा०—हे ( शतक्रतो ) सैकड़ों प्रज्ञाओं वाले ! ( पञ्चसु जनेषु ) तेरे पांचों प्रकार के जनों में ( ते आ इन्द्रियाणि ) जो तेरे बल और ऐश्वर्य, तेरे सेवन करने योग्य प्रिय पदार्थ और शरीर में इन्द्रियों के समान राष्ट्र और परराष्ट्र के हिताहित को देखने सुनने आदि का कार्य करने वाले शासक जन हैं हे ( इन्द्र ) वीर पुरुष ( ते ) तेरे लिये ( तानि आ वृणे ) उनको मैं प्राप्त कराऊं। 'पञ्चजन'—चार वर्ण और पांचवें निषाद ( सा० ) अथवा—राज्यसेना, कोश, दूत, कर्म, न्यायशासन इन पर नियुक्त पञ्च जन। ( दया० )

अग॑न्निन्द्र॒ श्रवो॑ बृ॒हद् द्यु॒म्नं द॑धिष्व दु॒ष्टर॑म्।
उत्ते॒ शुष्मं॑ तिरामसि ॥ १० ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! तुझे ( श्रवः ) अन्न, ज्ञान, यश और ( बृहत् ) बड़ा भारी ( द्युम्नं ) ऐश्वर्य ( अगन् ) प्राप्त हों, तू ( दुस्तरम् ) दुस्तर, अपार ज्ञान, ऐश्वर्य और बल को ( दधिष्व ) धारण कर। हम भी ( ते शुष्मं ) तेरे शत्रुशोषणकारी बल को (उत् तिरामसि) उत्तम कोटि तक पहुंचा देवें, बढ़ावें।

अ॒र्वा॒वतो॑ न॒ आ ग॑ह्यथो॑ शक्र परा॒वतः॑।
उ॒ लो॒को यस्ते॑ अद्रिव॒ इन्द्रे॒ह तत॒ आ ग॑हि ॥ ११ ॥ २२ ॥

भा०—हे ( शक्र ) शक्तिशालिन् ! तू ( अर्वावतः ) समीप के और ( परावतः ) दूर के भी देश से ( नः आगहि ) हमें प्राप्त हो। हे ( अद्रिवः ) मेघों से युक्त सूर्यवत् विचित्र पुरुषों और शत्रुनाशक आयुधधारी सैन्यों के स्वामिन् ! ( यः ) जो भी ( ते लोकः ) तेरा स्थान है हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् शत्रुहन्तः ! वीर ! तू ( ततः ) वहां से ही ( आगहि ) आ, हमें प्राप्त हो। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

# [ ३८ ]

विश्वामित्रगोत्र वाचो वा पुत्रः प्रजापतिरुभौ वा विश्वामित्रो वा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ६, १० त्रिष्टुप्। २—५, ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप्।
भुरिक् पङ्क्तिः ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

**अभि तष्टेव दीधया मनीषामत्यो न वाजी सुधुरो जिहानः।**
**अभि प्रियाणि मर्मृशत्पराणि कवीँरिच्छामि सन्दृशे सुमेधाः॥१॥**

भा०—( तष्टा इव मनीषाम् ) तक्षक, चतुर शिल्पी जिस प्रकार अपने शिल्प में बुद्धि को प्रकाशित करता है और ( पराणि प्रियाणि अभिमर्मृशत् ) बहुत से उत्तम उत्तम, प्रिय, मनोहर पदार्थों को बनाना विचारता है और जिस प्रकार (सुधुरः जिहानः वाजी अत्यः न) उत्तम रूपसे रथ को धारण करने वाला वेगसे जाता हुआ अश्व ( पराणि प्रियाणि अभिमर्मृशत् ) दूरके प्रिय पदार्थों को प्राप्त करा देता है उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुष ! तू भी अपनी ( मनीषाम् ) मन की इच्छा शक्ति और प्रजाको ( दीधय ) प्रकाशित कर और ( सुधुरः ) ज्ञान और अपने कार्य-भार को उत्तम रीति से धारण करता हुआ ( जिहानः ) आगे बढ़ता हुआ ( वाजी ) ज्ञान, ऐश्वर्य से युक्त ( अत्यः ) निरन्तर आगे बढ़ने वाला होकर ( पराणि ) अति उत्कृष्ट ( प्रियाणि ) प्रिय सुखों और हितों को ( अभिमर्मृशत् ) खूब अच्छी प्रकार विचार करे। और मैं ( सुमेधाः ) उत्तम प्रज्ञावान् बुद्धिशाली होकर (संदृशे ) तत्वार्थों को अच्छी प्रकार देखने के लिये ( कवीन् ) क्रान्तदर्शी विद्वान् पुरुषों को ( इच्छामि ) प्राप्त कर ज्ञान के प्रश्न करूं।

**इनोत पृच्छ जनिमा कवीनां मनोधृतः सुकृतस्तक्षत द्याम्।**
**इमा उ ते प्रण्यो३वर्धमाना मनोवाता अध नु धर्मणि ग्मन्॥२॥**

भा०—( कवीनां ) क्रान्तदर्शी, दूरगामी प्रजा से युक्त विद्वान् पुरुषों के ( जनिम् ) जन्मविषयक रहस्य को ( इना पृच्छ ) स्वामी, प्रभु,

गुरुजनों से पूछे वे ( मनोधृतः ) मन को वश करने और ज्ञान को धारण करने वाले ( सुकृतः ) उत्तम कर्मकर्त्ता पुण्यकर्मा लोग ही ( द्याम् ) ज्ञानप्रकाश और अर्थ प्रकाशक रुचिर वाणी को ( तक्षत ) प्रकट करते हैं। हे विद्वन्! आचार्य! ( उत ) और ( इमाः ) ये ( ते ) तेरे अधीन ( प्रण्यः ) उत्तम मार्ग पर स्वयं जाने और अन्यों को ले जाने वाली ( वर्धमानाः ) बढ़ने वाली ( मनोवाताः ) ज्ञान के द्वारा प्रेरित होकर उत्तम प्रजाएं वा सेनाएं ( धर्मणि ) सबके धारक पोषक राष्ट्र में और धर्म-मार्ग में ( न ) शीघ्र ही ( ग्मन् ) चलें। ( २ ) इस ( द्याम् ) महान् आकाश को उत्तम कुशल, ज्ञानयुक्त शक्तियों ने बनाया और इन 'कवि' प्रज्ञावान् शक्तियों के ( जनिम ) मूल उद्भव को इन प्रभुशक्तियों से पूछो। ये बढ़ी हुई शक्तियां ही जगत् को उत्तम रीति से चलाने और निर्माण करने हारी हैं, वे ज्ञानवान् प्रभु से प्रेरित हैं और उसी सर्व-धारक प्रभु के आश्रय में स्वयं चलती हैं।

**नि षीमिदत्र गुह्या दधाना उत क्षत्राय रोदसी समञ्जन्।**
**सं मात्राभिर्ममिरे येमुरुर्वी अन्तर्मही समृते धायसे धुः ॥ ३ ॥**

भा०—( अत्र ) इस लोक में विद्वान् लोग ( सीम् ) सब प्रकार के ( गुह्या ) छिपे रहस्य, विज्ञानों को ( नि दधानाः ) धारण करते हुए ( क्षत्राय ) अपने बल और ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये ( रोदसी ) सूर्य और भूमि के समान अध्यात्म में प्राण और अपान राष्ट्र में स्त्री और पुरुष दोनों वर्गों को ( समञ्जन् ) ज्ञान से प्रकाशित करें वे ( मात्राभिः ) मात्रा अर्थात् ज्ञान सम्मान साधनों से ( सं ममिरे ) ज्ञान प्राप्त करें, सम्मान प्राप्त करें, ( उर्वी ) बड़े ( मही ) पूजनीय (सम्-ऋते) पर-स्पर सत्य व्यवहार से सम्बद्ध, उन दोनों को ( संयेमुः ) संयम में स्थिर करें, परस्पर सम्बद्ध करें और ( धायसे ) एक दूसरे को पुष्ट करने के लिये ( सं-धुः ) एकत्र स्थापित करें। ( २ ) संसार में परमात्मा की महती

शक्तियां गुह्य रहस्यों को धारती हुई बल स्थापन के लिये आकाश और भूमि दोनों को प्रकाशित करती हैं, मात्रा अर्थात् सूक्ष्म २ अवयवों से संसार को रचती हैं, परस्पर संगत बड़ी आकाश भूमि दोनों एक दूसरे को पुष्ट करने लिये धारण करती हैं।

**आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः।**
**महत्तद्वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥४॥**

भा०—जिस प्रकार ( स्वरोचिः ) अपने ही प्रकाश से प्रकाशमान सूर्य ( श्रियः वसानः चरति ) प्रभाओं, कान्तियों को धारण करता हुआ विचरता और ( आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषन् ) मध्य में विराजते को किरण चारों ओर से सुभूषित करती है। उसी प्रकार राजा, प्रतापी तेजस्वी वीर पुरुष ( स्वरोचिः ) स्वयं अपने तेज से चमकता हुआ ( श्रियः ) लक्ष्मियों, ऐश्वर्यों और अपने आश्रित प्रजा और भृत्य सेनाओं को ( वसानः ) अपने ऊपर आच्छादक वस्त्रों के समान अपनी शोभा और रक्षा के लिये धारण करता हुआ ( चरति ) विचरे। और ( आतिष्ठन्तं ) राष्ट्र के ऊपर अध्यक्ष रूप से विराजते हुए को ( विश्वे ) सभी अधीनस्थ या मित्रजन ( परि अभूषन् ) उसके चारों ओर उसको सुभूषित करें या उसके चारों ओर रहें। ( वृष्णः असुरस्य महत् नाम ) जिस प्रकार वर्पणशील मेघ में बहुत अधिक जल हो और वह ( विश्वरूपः ) व्यापकरूप होकर ( अमृतानि आतस्थौ ) जलों को अपने में धारता है उसी प्रकार ( वृष्णः ) प्रजा पर ऐश्वर्यों और शत्रुजन पर आयुधों की वर्षा करने वाले ( असुरस्य ) दोषों और दुष्टों को उखाड़ने वाले और राष्ट्र के सञ्चालन करने वाले वा प्राणों में रमने वाले बलवान् पुरुष का ( तत् नाम महत् ) अलौकिक शत्रुओं को नमाने, दमन करने का भी बहुत बड़ा सामर्थ्य हो। वह ( विश्वरूपः ) सब प्रकार के गवादि पशुओं का स्वामी होकर सभी ( अमृतानि ) न मरने वाले,

जीवित जागृत प्राणियों और सुखदायक ऐश्वर्यों पर ( आतस्थौ ) अधिष्ठित हो, उन पर शासन करे। ( २ ) परमेश्वर स्वयं प्रकाश होने से 'स्वरोचि' है। वह सब कान्तियों सूर्यादि लोकों को धारण करता है, सब उसी पर आश्रित हैं, अन्तर्यामी होकर सबको वेग से प्रेरणा करने से वह 'असुर' है। सुखों के बरसाने से 'वृषन्' है। उसका बड़ा नाम 'कर्म सामर्थ्य' है। वह सर्व विश्वव्यापक होने से 'विश्वरूप' है। वह सब ( अमृतानि ) अमर जीवों आनन्दों और तत्वों का अध्यक्ष होकर विराजता है।

**असूत पूर्वो वृषभो ज्यायानिमा अस्य शुरुधः सन्ति पूर्वीः।**
**दिवो नपाता विदथस्य धीभिः क्षत्रं राजाना प्रदिवो दधाथे॥५॥२३॥**

भा०—( पूर्वः वृषभः असूत ) जिस प्रकार जल से पूर्ण मेघ जलधाराओं को उत्पन्न करता है। उसके ही सामर्थ्य से ( शुरुधः ) वे जलधाराएं ( शुरुधः ) तृष्णादि को रोकने वाली उत्पन्न होती हैं। इसी प्रकार ( पूर्वः ) ऐश्वर्य से पूर्ण एवं प्रजा का पालक ( वृषभः ) बलवान् ( ज्यायान् ) सबसे अधिक श्रेष्ठ होकर ( असूत ) शासन करे। ( अस्य ) इसके शासन में ( इमाः ) ये ( पूर्वीः ) पूर्व, परम्परा से प्राप्त ( शुरुधः ) स्वयं वेग से बढ़कर शत्रुओं को रोकने वाली सेनाएं ( सन्ति ) हों। इस प्रकार राजा और प्रजा वा राजा और रानी दोनों ही ( दिवः ) प्रकाशमान, कामनायोग्य ( विदथस्य ) प्राप्त करने योग्य राज्यैश्वर्य को ( नपाता ) न गिरने देने वाला, उसके रक्षक होकर ( राजाना ) अपने २ गुणों और प्रतापों से एक दूसरे का मन अनुरञ्जन करते हुए, तेजों से प्रकाशित होते हुए ( धीभिः ) धारण करने वाले कर्मों और बुद्धियों से ( प्रदिवः ) उत्तम कोटि के काम्य और प्रकाशयुक्त विज्ञानों वा ऐश्वर्यों और ( क्षत्रं ) बलवीर्य, राज्यैश्वर्य को ( दधाथे ) धारण करें। ( २ ) परमेश्वर पक्षमें—( पूर्वः ) सबसे पूर्व विद्यमान और सबसे अधिक पूर्ण परमेश्वर सुखों

का वर्षक, सबसे बड़ा, महान् होकर इस जगत् को उत्पन्न करता है। वे ( पूर्वीः शुरुधः अस्य ) पूर्ण वा सबसे पूर्व विद्यमान प्रकृति की मात्राएं, जो वेग के कर्म को रोके हुए थीं, निश्चल थीं वा वे परमेश्वर के 'शुच्' अर्थात् दीप्ति, तेज को अपने भीतर धारण करने वाली रहीं। वे भी उसके ही शासन में सदा से रही । आत्मा और परमात्मा ये दोनों (राजाना) स्वप्रकाश होने से राजा हैं। दोनों ही ( दिवः विदथस्य नपाता ) प्रकाश और ज्ञान को विनष्ट नहीं होने देते। वे दोनों ( धीभिः ) प्रज्ञाओं और धारणशक्तियों से ( प्रदिवः दधाथे ) उत्कृष्ट ज्ञानों, कामनाओं और बड़े २ लोकों को धारण करते हैं। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ।
अपश्यमत्र मनसा जगन्वान्व्रते गन्धर्वां अपि वायुकेशान् ॥ ६ ॥

भा०—हे ( राजाना ) उत्तम गुणों और तेजों से प्रकाशमान, एक दूसरे के मनों को अनुरंजन करने वाले, दिन रात्रि और सूर्य चन्द्र के समान परस्पर उपकारक, राजा प्रजाजनो ! आप दोनों मिलकर ( त्रीणि ) तीन ( पुरूणि ) राष्ट्र के ऐश्वर्यों को पालने और पूर्ण करने वाली ( विश्वानि ) समस्त ( सदांसि ) सभास्थानों को ( विदथे ) ज्ञान और ऐश्वर्य के लाभ के लिये ( परि भूषथः ) ऐसे अलंकृत करो जैसे सूर्य, चन्द्र दोनों तीनों लोकों को अलंकृत करते हैं ( अत्र ) यहां इन सभाभवनों में ( मनसा जगन्वान् ) ज्ञान द्वारा आगे बढ़ता हुआ ( व्रते ) नियम में व्यवस्थित ( वायुकेशान् ) वायु में खुले अनावृत केशों वाले ( गन्धर्वान् ) वेदवाणी के धारक विद्वानों और भूमि के धारक शासकों को भी ( अपश्यम् ) देखूं। ( २ ) आत्मा परमात्मा दोनों स्वप्न, जागरित, सुषुप्ति तथा सृष्टि, प्रलय और मध्य तीनों स्थानों को ज्ञानशक्ति के बल से सुशोभित करते हैं, उन दोनों में से प्रत्येक पर 'वायुकेश' गन्धर्व हैं जिनको मन के द्वारा जाना जाता है। आत्मा में प्राणगण वायुकेश हैं। वे व्याप्त आत्मा के

केशों के समान हैं, वे वाणी के धारक होने से, शरीरधारक होने से गन्धर्व हैं। परमेश्वर में, वायु में व्यापक केश अर्थात् किरणों वाले सूर्यादि भूमि को धारण करते हैं उनको मैं साक्षात् देखूं, उनका रहस्य जानूं।

तदिन्न्वस्य वृषभस्य धेनोरा नामभिर्ममिरे सक्म्यं गोः।
अन्यदन्यदसुर्यं वसाना नि मायिनो ममिरे रूपमस्मिन् ॥ ७ ॥

भा०—( अस्य वृषभस्य धेनोः तत् इत् ) यह बरसने वाली, सूर्य को ही रसपान कराने वाली इस मेघमाला का ही सामर्थ्य है कि उसके ( नामभिः ) जलों से कृषक लोग जिस प्रकार ( गोः सक्म्यं ममिरे ) पृथिवी से अन्न उत्पन्न करते हैं और भी ( अन्यत् अन्यत् ) नाना प्रकार के ( असुर्यं ) मेघ द्वारा उत्पन्न रुई, कपास आदि को पहनते हुए ( मायिनः अस्मिन् रूपं नि ममिरे ) बुद्धिमान् लोग इस लोक में नाना रूप या रुचिकर पदार्थ उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार ( अस्य ) इस ( वृषभस्य ) बलवान् पुरुष की ( धेनोः ) वाणी रूप कामधेनु का ही ( तद् इत् नु ) वह अलौकिक सामर्थ्य है कि इसके ( नामभिः ) सबको नमाने वाले शासनों से ( गोः ) इस भूमि की प्रजाओं का ( सक्म्यं ) समवाय, संगठन ( आ ममिरे ) बनावें। वे ( अन्यत् अन्यत् ) भिन्न २ प्रकार के ( असुर्यं ) बलशाली पुरुषोचित राज्याधिकार को ( वसानाः ) धारण करते हुए ( अस्मिन् ) इस राष्ट्र में ( मायिनः ) बुद्धिमान् पुरुष ( अन्यत् अन्यत् रूपम् नि ममिरे ) नाना प्रकार के रूप या रुचिकर पदार्थों का निर्माण करते हैं। ( २ ) परमेश्वर पक्ष में—वह परमेश्वर की कामधेनु वाणी का अलौकिक सामर्थ्य है कि नाम अर्थात् संज्ञापदों से वाणी के सुसम्बद्ध वाक्य को विद्वान् लोग बना लेते हैं। वे उस महान् ज्ञानी के ज्ञान को धारते हुए बुद्धिमान् जन उसके ज्ञान के ही रुचिभेद से नाना रूप प्रकट करते हैं।

**तदिन्न्वस्य सवितुर्नकिर्मे हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत् ।**
**आ सुष्टुती रोदसी विश्वमिन्वे अपीव योषा जनिमानि वव्रे ॥८॥**

भा०—( याम् ) जिस ( हिरण्ययीम् ) सुवर्णादि धनैश्वर्ययुक्त ( अमतिं ) कान्ति को समस्त लोक ( अशिश्रेत् ) सेवन करता है ( तत् इत् नु ) वह सब निश्चय ( मे सवितुः ) मुझ सूर्य के समान तेजस्वी, सबके उत्पादक, शासकस्वरूप ( मे ) मेरी हो । उसका ( नकिः ) कोई और प्राप्त न कर सके । और जिस प्रकार ( योषा जनिमानि वव्रे ) स्त्री उत्पन्न सन्तानों को स्वीकार करती और वस्त्रादि से ढांपती है मैं ( सुस्तुती ) सूर्य समान तेजस्वी पुरुष ( सुस्तुती ) उत्तम स्तुति या उपदेश से (विश्वमिन्वे ) समस्त विश्व को अन्नादि से संतुष्ट, प्रसन्न एवं तृप्त करने वाले ( रोदसी ) सूर्य भूमि के समान स्त्री और पुरुषों को ( आ वव्रे ) आवरण करूं । शिष्य प्रजा पुत्रादि रूप से वरण करूं । परमेश्वर पक्ष में—जिस तेजोमयी कान्ति या दीप्ति को मनुष्य सेवते हैं वह ( नकिः मे ) मेरी नहीं प्रत्युत ( तत् इत् नु अस्य सवितुः ) वह सब उसी प्रभु, सर्वोत्पादक परमेश्वर की है । वह प्रभु परमेश्वर पुत्र पुत्री आदि सन्तानों को माता के समान विश्वव्यापी सूर्य पृथ्वी दोनों के ( इव अपि वव्रे ) आवरण करता, अपने अंचरे में ढके सा रहता है, उनको प्रशस्त रीति से पालता रहता है ।

**युवं प्रत्नस्य साधथो महो यद्दैवी स्वस्तिः परि णः स्यातम् ।**
**गोपाजिह्वस्य तस्थुषो विरूपा विश्वे पश्यन्ति मायिनः कृतानि ॥९॥**

भा०—हे मित्र और वरुण ! परस्पर स्नेही और एक दूसरे की रक्षा, संकटनिवारण और प्रेमपूर्वक वरण करने वाले ! स्त्री पुरुषो ! राजा प्रजावर्गो ! ( युवं ) तुम दोनों ( प्रत्नस्य ) पूर्व से चले आये, सनातन ( महः ) महान् पूजनीय परमेश्वर के बतलाये धर्म की ( साधथः ) साधना करो ( यत् ) जिससे ( दैवी स्वस्तिः ) देव परमेश्वर और विद्वानों द्वारा शुभ कल्याणमय सुख शान्ति हो । आप दोनों ( नः ) हमारे ( परिस्या-

तम् ) रक्षक रूप में इर्द गिर्द और कार्यों के ऊपर निरीक्षक रूप से रहो। ( गोपाजिह्वस्य ) भूमि वेद और वेदवाणी की रक्षा करने वाली जिह्वा अर्थात् वाणी वा आज्ञा को धारण करने वाले ( तस्थुषः ) स्थित ( मायिनः ) अति बुद्धिमान् पुरुष के ( विरूपा कृतानि ) विविध प्रकार के किये कर्मों और बनाये संसार के पदार्थों को ( विश्वे मायिनः पश्यन्ति ) सभी बुद्धिमान् देखते हैं।

**शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।**
**शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्॥१०।२४।३॥**

भा०—व्याख्या देखो ( सू० ३२ । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

## [ ३९ ]

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ९ विराट्त्रिष्टुप् । ३—७ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ८ भुरिक् पङ्क्तिः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

**इन्द्रं मतिर्हृद आ वच्यमानाच्छा पतिं स्तोमतष्टा जिगाति ।**
**या जागृविर्विदथे शस्यमानेन्द्र यत्ते जायते विद्धि तस्य ॥ १ ॥**

भा०—जिस प्रकार ( वच्यमाना ) उत्तम वचनों से प्रशंसित स्त्री (पतिं) पति को प्राप्त होती और उसी के गुणानुवाद करती है, उसी प्रकार ( स्तोमतष्टा ) स्तुति-मन्त्रों द्वारा सु-अलंकृत ( वच्यमाना ) मुख से उच्चारण करने योग्य ( मतिः ) स्तुति और प्रज्ञा ( अच्छ ) अपने लक्ष्यभूत ( पतिम् ) सर्वपालक स्वामी परमेश्वर को ( जिगाति ) प्राप्त होती और उसी के गुणानुवाद करती है। ( या ) जो ( विदथे जागृविः ) उत्सुक परि लाभ के निमित्त उत्सुक जागृत प्रियतमा के समान ही ( विदथे ) लक्ष्य रूप प्रभु की प्राप्ति और ज्ञान के निमित्त ( शस्यमाना ) गुरु द्वारा उपदेश की जाती है। हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! स्वामिन् ! ( यत् ते जायते तस्य

विद्धि ) जिस प्रकार जो बाद में अपनी हो जाती है उत्तम पुरुष उसी को पत्नी रूप से प्राप्त करता है, अपना जानता है उसी प्रकार हे स्वामिन् ! ( ते यत् जायते ) तेरे ही गुण वर्णन के लिये जो स्तुति और मति ( हृदः ) हृदय से हो जाती है ( तस्य विद्धि ) तू उसे जान और स्वीकार कर ।

**दिवश्चिदा पूर्व्या जायमाना वि जागृविर्विदथे शस्यमाना ।**
**भद्रा वस्त्राण्यर्जुना वसाना सेयमस्मे सनजा पित्र्या धीः ॥२॥**

भा०—जिस प्रकार स्त्री ( दिवः चित् ) पति की कामना से (आजायमाना ) वह पूर्व विद्वानों से संस्कृत होकर 'जाया' हो जाती है और वह ( शस्यमाना ) पति के गुणों के सम्बन्ध में सखियों द्वारा कही गयी ( विदथे जागृविः ) पति को प्राप्त करने के निमित्त, जागती-सी रहती है, उत्सुकता के कारण निद्रित नहीं होती और वह जिस प्रकार ( अर्जुना भद्रा वस्त्राणि ) श्वेत, शुद्ध, सुखकारक, कल्याणकारक सुन्दर वस्त्रों को धारण करती है और वह ( सनजा ) दानपूर्वक दूसरे की होकर भी ( पित्र्या ) विवाहकर्त्ता के पिता माता की हितकारिणी और ( धीः ) विवाहकर्त्ता के द्वारा धारण पोषण करने योग्य हो जाती है । उसी प्रकार ( पूर्व्या ) हमसे पूर्व के विद्वानों से प्रकट हुई । ( दिवः चित् ) सूर्य से उषा के समान, ज्ञानप्रकाश से ( आजायमाना ) सब प्रकार से प्रकट होती हुई ( विदथे ) इष्ट देव के प्राप्त करने के निमित्त वा यज्ञ में ( वि शस्यमाना ) विविध प्रकार से स्तुति की जाती हुई ( भद्रा ) अति कल्याणकारक, सुखप्रद ( अर्जुना ) दोषरहित ( वस्त्रादि ) आच्छादक छन्दों को धारण करती हुई ( सनजा ) सनातन परम पुरुष से उत्पन्न हुई (पित्र्या) माता पिता और वाणी के पालक गुरुजनों में स्थित ( सा इयं ) वह यह ( धीः ) धारण करने योग्य वाणी और सन्मति ( अस्मे ) हमें प्राप्त हो ।

**यमा चिदत्र यमसूरसूत जिह्वाया अग्रं पतदा ह्यस्थात् ।**
**वपूंषि जाता मिथुना सचेते तमोहना तपुषो बुध्न एता ॥ ३ ॥**

भा०—जिस प्रकार ( यमसूः यमा असूत ) जोड़ा उत्पन्न करने वाली स्त्री जोड़ा पैदा करती है ( चित् ) उसी प्रकार ( यमसूः ) संयमवान् ब्रह्मचारियों को उत्पन्न करने और विद्याधाराओं से स्नान कराने वाला आचार्य भी ( अत्र ) इस लोक में ( यमा ) पापमार्गों से उपरत, संयमी, जितेन्द्रिय नर-नारियों को ( असूत ) उत्पन्न करे। वह आचार्य ( जिह्वायाः ) सब ज्ञानों को अपने भीतर रखने वाली वेदवाणी के ( अग्रं ) सबसे उन्नत अंश को भी ( पतत् ) पहुंचे, विद्याशाखा के उपरितम सर्वोपरि ज्ञान को भी प्राप्त करे। ( हि ) वह ( आ अस्थात् ) सबसे ऊपर विराजे। नर और नारी दोनों वर्ग ( तमोहना ) सूर्य चन्द्र वा दिन रात्रि के समान अज्ञान अन्धकार को नाश करने वाले होकर ( तपुषः बुध्ने आ इता ) मूल आश्रय पर स्थिर होकर आगे बढ़ें। वे दोनों वर्ग बाद में ( जाता ) विद्या के गर्भ से स्नातकरूप से उत्पन्न होकर ( मिथुना वपूंषि ) जोड़े २ शरीरों को ( सचेते ) संगत करें। अर्थात् विद्वान् होकर बाद में गृहस्थ होकर रहें। ( २ ) राष्ट्र का प्रबन्ध करने वाले 'यम' हैं, उनके ऊपर शासक सभा 'यमसू' है वह इस राष्ट्र में उत्तम प्रवन्धकारी जनों का ( असूत ) शासन करती है। वह ( जिह्वायाः अग्रं ) वाणी, आज्ञा करने के सर्वोच्च पद को प्राप्त करके सब पर अध्यक्ष होकर रहती है। शत्रु-संतापक बल के आश्रय पर ( तमोहना ) दुःखों का विनाश करने वाले होकर सब शरीर दो दो होकर, मिल कर रहें। ( ३ ) परमेश्वर ही सब जोड़ों को व सूर्य चन्द्रादि को उत्पन्न करने से 'यमसू' है। सूर्यवत् तेजस्वी नर-नारी 'यम' हैं। वह सर्वोत्पादक परमेश्वर वाणी के अग्र, सर्वोच्च पद पर स्थित है, सर्वस्तुत्य है, समस्त तप के मूल आश्रयभूत उस परमेश्वर के आश्रित होकर सब में जोड़े शरीर चल रहे हैं। उसी के आश्रय पर वे अपने शोक दुःखादि का नाश करते हैं।

**नकिरेषां निन्दिता मर्त्येषु ये अस्माकं पितरो गोषु योधाः।**
**इन्द्र एषां दृंहिता माहिनावानुद्गोत्राणि ससृजे दंसनावान् ॥४॥**

भा०—( अस्माकं ) हमारे बीच में से ( ये पितरः ) जो पालक, रक्षक, माता पिता के समान पूज्य पुरुष ( गोषु ) भूमियों को प्राप्त करने के लिये ( योधाः ) युद्ध करने हारे हैं ( एषां ) उनकी ( निन्दिता ) निन्दा करने वाला ( नकिः ) कोई न हो। ( एषां ) इनका ( दृंहिता ) दृढ़ करने वाला, उनकी वृद्धि करने वाला, शत्रुहन्ता वीर राजा ही ( माहिनावान् ) बड़े भारी बल सामर्थ्य का स्वामी हो और वह ( दंसनावान् ) उत्तम कर्म करने हारा, कुशल पुरुष ही उनके ( गोत्राणि ) वंशों का ( उत् ससृजे ) उन्नत करे। आचार्य पक्ष में—हमारे बालक पूज्यों में जो ( गोषु योधाः ) वेदादि वाणियों में श्रमशील हैं उनका कोई निन्दक न हो। उनका बढ़ाने वाला पूज्य, सत्यकर्मी आचार्य ही उनके गोत्रों को बनाने वाला होता है। इसी आधार पर प्राचीन ऋषियों के गोत्र चले हैं। ( ३ ) इसी प्रकार जो ( पितरः ) व्रतपालक ( गोषु योधाः ) इन्द्रियग्राह्य विषयों में इन्द्रियों के विजयार्थ युद्ध करते हैं आन्तरिक काम क्रोधादि शत्रुओं से लड़ते हैं उनका निन्दक कोई न हो। परमेश्वर उनको बढ़ाता और उनको ( गोत्राणि ) इन्द्रियों के रक्षा साधनों को उत्तम दृढ़ करता है। इन्द्रियों का विजय करने से उनका बल वीर्य बढ़ता है।

सखा ह यत्र सखिभिर्नवग्वैरभिज्ञ्वा सत्वभिर्गा अनुग्मन्।
सत्यं तदिन्द्रो दशभिर्दशग्वैः सूर्यं विवेद तमसि क्षियन्तम् ॥५।२५॥

भा०—( यत्र ) जिस आश्रम में ( नवग्वैः ) नवीन २ ज्ञान वाणी में गति करने वाले नवागत ( सखिभिः ) एक समान नाम वाले व्रतधारी ब्रह्मचारियों सहित ( अभिज्ञु, सत्त्वभिः ) आगे को गोड़े किये पालोथी लगाकर बैठने वाले वा ( सत्वभिः ) सत्कर्म, ज्ञान और बल वीर्यशाली व्रतधारी ब्रह्मचारियों से संगत होकर ( इन्द्रः ) अध्यात्म या प्रत्यक्ष तत्व को देखने वाला या विद्यार्थियों को, काष्ठों को अग्नि के समान

प्रदीप्त करने वाला आचार्य ( गाः अनु ग्मन् ) ज्ञानवाणियों का अनुगमन या अभ्यास करता रहता है ( तत् ) उसी आश्रम में वह विद्वान् ( दशभिः दशग्वैः ) दशों इन्द्रिय सामर्थ्यों से युक्त दशों प्राणों से युक्त होकर ( तमसि ) अन्धकार में ( क्षियन्तं ) विद्यमान ( सूर्यं ) सूर्य के समान उज्ज्वल ( सत्यं ) सत्य ज्ञान और सत्य बल को ( विवेद ) प्राप्त करे। ( २ ) सेनानायक दशों वाणियों, दशों धर्मशास्त्रों को जानने वाले दश विद्वानों के साथ मिलकर अज्ञान अन्धकार में सूर्य के समान चमचमाते अनृत असत्य अज्ञान का नाश करते हुए ( सत्यं ) सत्य न्यायप्रकाश को प्राप्त करे। राजा सत्य न्याय को प्राप्त करने के लिये 'दशावरा परिषद्' की स्थापना करे। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

**इन्द्रो मधु सम्भृतमुस्रियायां पद्वद्विवेद शफवन्नमे गोः ।**
**गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु हस्ते दधे दक्षिणे दक्षिणावान् ॥६॥**

भा०—( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता पुरुष ( उस्रियायाम् ) दूध दही आदि उत्पन्न करने वाली गौ के समान ही अन्नादि उत्पन्न करने वाली भूमि में ही ( सम्भृतम् ) अच्छी प्रकार धारण किये हुए ( मधु ) मधुर अन्नादि खाद्य सामग्री को और ( पद्वत् शफवत् ) पैरों और खुरों वाले पशु धन को भी ( विवेद ) प्राप्त करे। और वह ( गोः ) भूमि के ( गुहाहितम् ) गुप्त स्थानों में रक्खे ( गुह्यं ) गोपन करने योग्य ( गूढ ) गुप्त धन को ( अप्सु ) आप्त जनों में ( नमे ) प्रदान करें। और उसको ( दक्षिणावान् ) कुशल बुद्धिमान् पुरुषों का स्वामी ( दक्षिणे हस्ते ) दांये बलशाली हाथ, अर्थात् प्रबल पुरुष के अधीन (दधे) सुरक्षित रक्खे।

**ज्योतिर्वृणीत तमसो विजानन्नारे स्याम दुरिताद्भीके ।**
**इमा गिरः सोमपाः सोमवृद्ध जुषस्वेन्द्र पुरुतमस्य कारोः ॥७॥**

भा०—जिस प्रकार सूर्य उत्पन्न होकर ( तमसः ज्योतिः वृणीते ) अन्धकार से प्रकाश को पृथक् कर देता है उसी प्रकार ( विजानन् ) विशेष

ज्ञानवान् पुरुष सदा ( तमसः ) अन्धकार से ( ज्योतिः ) प्रकाश को, अविद्या से विद्या को ( वृणीत ) सदा पृथक् २ करे, विवेक करता रहे। हम लोग ( दुरिताद् आरे ) दुष्टाचरण से पृथक् और ( अभीके ) भय रहित सत्याचरण में ( स्याम ) लगे रहें। हे ( सोमपाः ) ज्ञान और ऐश्वर्य को पान और पालन करनेहारे हे ( सोमवृद्ध ) ज्ञान और ऐश्वर्य के द्वारा बढ़े हुए, ज्ञानवृद्ध, अनुभववृद्ध और धनाध्यक्ष ! हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! ज्ञानदर्शिन् ! तू ( पुरुतमस्य ) बहुतों में श्रेष्ठ, बहुत से शत्रुओं और विघ्नों के नाशक ( कारोः ) क्रियाकुशल, विद्वान् पुरुष की ( इमाः गिरः ) इन उपदेश-वाणियों को ( जुषस्व ) प्रेम से ग्रहण कर।

**ज्योतिर्यज्ञाय रोदसी अनु ष्यादारे स्याम दुरितस्य भूरेः।**
**भूरि चिद्धि तुजतो मर्त्यस्य सुपारासो वसवो बर्हणावत् ॥ ८ ॥**

भा०—( रोदसी अनु यज्ञाय ज्योतिः ) दोनों के परस्पर संगति के लिये जिस प्रकार आकाश और भूमि दोनों के बीच सूर्य रूप ज्योति है उसी प्रकार ( यज्ञाय ) परस्पर मिलने, मित्र होकर रहने और एक दूसरे के आदर सत्कार और ईश्वर-पूजा के निमित्त भी ( रोदसी अनु ) राजा प्रजा, पुरुष और स्त्री दोनों को ( ज्योतिः अनु स्यात् ) ज्ञान का प्रकाश सदा प्राप्त हो। हम लोग ( भूरेः ) बहुत से ( दुरितात् ) दुष्टाचरण पापादि से ( आरे स्याम ) दूर ही रहें। हे ( वसवः ) राष्ट्र में वसने वाले प्रजाजनो ! ( बर्हणावत् ) वृद्धि से युक्त ( भूरि ) बहुत से ऐश्वर्य को ( तुजतः मर्त्यस्य ) पालन करने वाले मनुष्य के आप लोग भी ( सुपारासः ) उत्तम रीति से पूर्ण करने, तृप्त करने और पालन करने वाले होकर उसके अनुगामी होकर रहो।

**शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।**
**शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ९।२६।२**

भा०—व्याख्या देखो सू० ३३ । २२ ॥ इति षड्विंशो वर्गः । द्वितीयोऽध्यायः ॥

## अथ तृतीयोऽध्यायः

### [ ४० ]

मित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१—४, ६—९ गायत्री । ५ निचृद्गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रं त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे ।
स पाहि मध्वो अन्धसः ॥ १ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! हे आह्लादकारी ! प्रजाजन में रमण वाले ! हम ( त्वा वृषभं ) सुख ऐश्वर्यों के वर्षक एवं बलवान् तुझको, । को धारण करने वाले ! ( सुते सोमे ) उत्पन्न हुए ऐश्वर्य, राज्य ासन के लिये ( हवामहे ) प्रार्थना करते हैं । ( सः ) वह तू (मध्वः) द्मद, मधुर, ( अन्धसः ) प्राणधारक एवं खाने योग्य अन्न आदि ावर्ग का ( पाहि ) ओषधिरस के समान ही पालन कर और ।ग कर ।

इन्द्रं क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत ।
पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥ २ ॥

भा०—हे (पुरुस्तुत इन्द्र) बहुतों से प्रशंसित ! हे ऐश्वर्य के इच्छुक ! ुतं ) उत्पन्न हुए ( क्रतुविदं ) क्रियाशक्ति और बुद्धि को प्राप्त कराने ( सोमं ) ओषधि अन्नादि को ( हर्य ) चाह । और ( तातृपिम् ) ारने वाले प्रिय अन्नादि रस का ( पिब ) पान कर ( वृषस्व ) और न् हो ।

इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः ।
तिरः स्तवान विश्पते ॥ ३ ॥

भा०—हे ( स्तवान ) स्तुतियोग्य ! हे ( विश्पते ) प्रजाओं के पालक ! हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! तू ( नः ) हमारे ( धितावानम् ) अपने विभक्त करने योग्य धन को सुरक्षित रखने वाले, ( यज्ञं ) परस्पर के मेल, व्यवहार और मैत्रीभाव, संगठन को ( विश्वेभिः देवेभिः ) सब विद्वानों और वीर विजयेच्छुक पुरुषों द्वारा ( तिरः ) बढ़ा ।

इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते ।
क्षयं चन्द्रास इन्दवः ॥ ४ ॥

भा०—हे ( सत्-पते ) सज्जनों के प्रतिपालक ! हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! ( इमे ) ये ( चन्द्रासः ) आह्लादजनक, प्रजा के मनोरञ्जन करने हारे, ( इन्दवः ) ऐश्वर्यवान् हृदयों में प्रजा के प्रति आर्द्र, स्नेहभाव रखने वाले ( सोमाः ) सौम्यगुण युक्त, प्रजा के प्रेरक, ( सुताः ) नाना पदों पर अभिषिक्त हैं वे (तव क्षयं प्रयन्ति) तेरे ही स्थान पर उत्तम रीति से कार्य करते हैं । ( २ ) हे मनुष्य ! ये उत्पन्न ओषधि आदि सुखजनक हरे सरस पदार्थ तेरे घर और जठर, शरीर में आवें । ( ३ ) हे आचार्य ! ये शिष्यगण पुत्रवत् सुखजनक चन्द्रवत् प्रतिदिन बढ़ने वाले तेरे गुरुगृह में प्राप्त हों ।

दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् ।
तव द्युक्षास इन्दवः ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू ( वरेण्यम् ) श्रेष्ठ, ( सुतम् सोमम् ) उत्पन्न ऐश्वर्य और शासन को, उत्तम उत्पन्न अन्नादि को ( जठरे ) उदर और अपने शासन में (दधिष्व) रख, ये ( इन्दवः ) ऐश्वर्य ( तव ) तेरे ही ( द्युक्षासः ) प्रकाश या तेज को धारण करने वाले हैं या ये चमकने

वाले ऐश्वर्य तेरे ही हैं। ( २ ) राजा ( सुतं सोमं ) अभिषिक्त अधिकारी को भी अपने अधीन रक्खे। ये तेजस्वी श्रेष्ठ पुरुष भी उसी के अधीन रहें। ( ३ ) गुरु आचार्य माता के गर्भ के बालक के समान ही श्रेष्ठ शिष्य को अपने अधीन 'विद्यागर्भ' में रक्खे। इति प्रथमो वर्गः॥

गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे।
इन्द्र त्वादातमिद्यशः॥ ६॥

भा०—हे ( गिर्वणः ) वाणियों द्वारा स्तवन और याचना, प्रार्थना करने योग्य ! तू ( नः ) हमारे (सुतं) उत्पादित ऐश्वर्यमय राष्ट्र की (पाहि) रक्षा कर। तू (मधोः) जलवत् ज्ञान की (धाराभिः) धाराओं से (अज्यसे) स्नान या अभिषेक कराया जाता है, उससे हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! ( यशः ) यह सब यश, बल, वीर्य और अन्नादि ऐश्वर्य ( त्वादातम् ) तुझ से ही सुशोभित, तेरे द्वारा स्वीकृत, सुरक्षित हो।

अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता।
पीत्वी सोमस्य वावृधे॥ ७॥

भा०—( वनिनः द्युम्नानि ) जिस प्रकार किरणों से युक्त सूर्य के तेज सूर्य को ही प्राप्त होते हैं उसी प्रकार ( वनिनः ) सेवन करने योग्य ऐश्वर्य के स्वामी पुरुष के ( द्युम्नानि ) समस्त ऐश्वर्य ( इन्द्रं ) ऐश्वर्य के रक्षक, भूमि के धारक और शत्रु के नाशक पुरुष को ही ( अक्षिता ) अक्षय होकर ( सचन्ते ) प्राप्त होते हैं और वह ( सोमस्य पीत्वी ) उस ऐश्वर्य वा राष्ट्र का पालन और उपभोग करके ( वावृधे ) वृद्धि को प्राप्त करता है।

अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन्।
इमा जुषस्व नो गिरः॥ ८॥

भा०—हे ( वृत्रहन् ) बढ़ते विघ्नकारी शत्रु को मारने वाले ! तू ( नः ) हमारे ( अर्वावतः ) समीप के और ( परावतः च ) दूर के

देश से भी ( नः आगहि ) हमें प्राप्त हो। अथवा दूर वा समीप रहते हुए भी हमें तू प्राप्त हो। तू ( नः ) हमारी ( इमाः गिरः जुषस्व ) इन वाणियों, प्रार्थनाओं को प्रेम से स्वीकार कर।

यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे।
इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ९ ॥ २ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! ( यत् ) जब तू ( अर्वावतं परावतं च अन्तरा ) समीप और दूर के बीच के प्रदेश में भी ( हूयसे ) आदर से बुलाया जावे ( ततः ) वहां से तू ( इह आगहि ) यहां आ।

इति द्वितीयो वर्गः ॥

## [ ४१ ]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ यवमध्या गायत्री । २, ३, ५, ६ गायत्री । ४, ७, ८ निचृद्गायत्री । ६ विराड्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

आ तू न इन्द्र मद्र्यग्घुवानः सोमपीतये।
हरिभ्यां याह्यद्रिवः ॥ १ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! शत्रुनाशक! हे ( अद्रिवः ) मेघों सहित सूर्य के समान तेजस्विन्! पर्वत के समान अभेद्य! और मेघों के तुल्य अन्नादि दाता और शस्त्रवर्षी वीर पुरुषों के स्वामिन्! वा शस्त्रों, शस्त्रधारी सैन्य के स्वामिन्! अखण्ड बल वा शासन के स्वामी! तू ( हुवानः ) आह्वान किया जाकर, आदरपूर्वक बुलाया जाकर ( सोमपीतये ) ओषधिरसों, अन्नों के समान ऐश्वर्यों के पान, उपभोग और पालन के निमित्त ( हरिभ्याम् ) अपने दो अश्वों सहित ( मद्र्यक् ) मेरी ओर, मुझ प्रजाजन को लक्ष्य कर ( आ याहि ) आ, हमें प्राप्त हो। ( २ ) अध्यात्म में—( अद्रिवः ) अखण्ड शक्तियुक्त आत्मा, परमात्मा, हरि, प्राणापान।

सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक्।
अयुञ्जन्प्रातरद्रयः ॥ २ ॥

भा०—( ऋत्वियः होता ) जिस प्रकार होता, यज्ञकर्त्ता ऋतु अनुसार यज्ञ करने वाले ( आनुषक् बर्हिः स्तृणाति ) साथ २ लगे कुशा बिछा देता है उसी प्रकार ( सत्तः ) उच्च सिंहासन पर विराजता हुआ ( होता ) राष्ट्रको अपने अधीन लेवे, अधीनस्थ भृत्यों को वेतनादि देने वाला पुरुष भी ( ऋत्वियः ) उत्तम 'ऋतु' अर्थात् ज्ञान, राजसभा के सदस्यों और राजभ्रातरों के बीच में मुख्य होकर ( आनुषक् ) अपने अनुकूल होकर अपने से प्रेमभाव से बद्ध होकर (बर्हिः) वृद्धिशील प्रजाजनों वा राष्ट्र को ( तिस्तिरे ) विस्तृत करे, बढ़ावे । ( प्रातः ) प्रातः, प्रारम्भ में ही ( अद्रयः ) अद्रि के समान अविचल, निर्भय और मेघवत् उदार और सिद्धहस्त पुरुष ( अयुज्रन् ) नियुक्त हों, राष्ट्र-कार्य में योग दें ।

इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद ।
वीहि शूर पुरोळाशम् ॥ ३ ॥

भा०—हे ( शूर ) दुष्टों के हिंसक, शूरवीर ! हे ( ब्रह्मवाहः ) महान् धन ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र को धारण करने हारे राजन् ! ( इमा ) ये ( ब्रह्म ) नाना धन और ऐश्वर्य ( क्रियन्ते ) किये जाते हैं, तू ( बर्हिः ) इस वृद्धिशील प्रजाजन पर ( आसीद ) अध्यक्ष होकर विराज । तू ( पुरः ) समक्ष रक्खे ( पुरोडाशम् ) प्रेम, आदरपूर्वक प्रदान किये हुए राष्ट्र को ( वीहि ) प्राप्त हो और अन्न के समान उसका उपभोग, पथ्यापथ्य का विचार करके कर । ( २ ) हे ब्रह्म, वेद को धारण करने वाले विद्वन् ! ( इमा ब्रह्म क्रियन्ते ) इन वेदों का अभ्यास किया जाय, तू आसन पर विराज, उत्तम अन्न का भोजन कर या प्रत्यक्ष समक्ष स्थित शिष्य का पालन कर ।

रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् ।
उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ ४ ॥

भा०—हे ( गिर्वणः ) वाणी द्वारा सेवने और स्तुति, प्रार्थना करने

योग्य ! हे ( वृत्रहन् ) विघ्नकारी, शत्रुओं के नाश करने हारे ! हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! तू ( नः ) हमें और हमारे (एषु) इन ( सवनेषु ) अभिषेकों, ऐश्वर्यों और ( स्तोमेषु ) स्तुतियों और स्तुति योग्य ( उक्थेषु ) उत्तम वचनों और स्तुत्य कार्यों में ( रारन्धि ) स्वयं रमण कर और हमें रमा।

मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम्।
इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—( मतयः ) मननशील लोग ( सोमपाम् ) ऐश्वर्यों के रक्षक, ( उरुं ) महान्, ( शवसस्पतिम् ) बलों के पालक ( इन्द्रं ) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता पुरुष को ( वत्सं मातरः न ) बच्चे को माता गौएं जैसे (रिहन्ति) प्रेम से चूमती चाटती हैं उसी प्रकार (रिहन्ति) प्रेम करके सुखी होती हैं। इति तृतीयो वर्गः ॥

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे।
न स्तोतारं निदे करः ॥ ६ ॥

भा०—( सः ) वह तू ( महे राधसे ) बड़े भारी धनैश्वर्य लाभ करने और कार्य साधने के लिये तू अपने आप ( अन्धसः ) अन्न आदि से ( मन्दस्व ) तृप्ति लाभ कर। तू ( स्तोतारं ) उपदेशप्रद विद्वान् को (निदे न करः) निन्दा कार्य वा निन्दनीय कार्य के लिये मत कर, उसे उसमें मत लगा।

वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे।
उत त्वमस्मयुर्वसो ॥ ७ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! ( वयम् ) हम ( हविष्मन्तः ) लेने और देने योग्य अन्नादि पदार्थों से युक्त होकर ( त्वायवः ) तेरी ही कामना करते हुए तेरी ( जरामहे ) स्तुति करते हैं। हे ( वसो ) सबको बसाने वाले ( उत ) और ( त्वम् ) तू ( अस्मयुः ) हमारा प्रिय हो।

मारे अस्मद्वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ्याहि।
इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥ ८ ॥

भा०—हे ( हरिप्रिय ) अश्वों के प्रिय ! ( अस्मत् ) हमें ( आरे मा

वि मुमुचः ) दूर वा पास त्याग मत कर । ( अर्वाङ् याहि ) तू आगे बढ़ । हे ऐश्वर्यवन् ! हे ( स्वधावः ) स्वयं राष्ट्र को धारण करने की शक्ति के स्वामिन् ! तू ( इह मत्स्व ) इसी राष्ट्र में हर्षित हो ।

अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना ।
घृतस्नू बर्हिरासदे ॥ ९ ॥ ४ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! ( केशिना ) केशों वाले दो अश्व ( त्वां ) तुझ ( अर्वाञ्चम् ) आगे बढ़ने वाले को ( सुखे रथे ) सुखपूर्वक जाने वाले रथ में लेकर ( बर्हिः आसदे ) प्रजा पर उत्तम शासनार्थ विराजने के लिये ( वहताम् ) ले चला करें । वे दोनों ( घृतस्नू ) तेज को प्रसारित करने वाले हों । इति चतुर्थो वर्गः ॥

## [ ४२ ]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४—७ गायत्री । २, ३, ८, ९ निचृद्गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम् ।
हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥ १ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! तू ( नः ) हमारे ( गवाशिरम् ) गौओं, पशु या जीवों के खाने योग्य ( सुतम् सोमम् ) उत्पन्न 'सोम' अर्थात् ओषधियों के समान ( गवाशिरम् ) प्रजाओं द्वारा उपभोग योग्य वा ( गवाशिरम् ) गौ पृथिवी में स्थित ( सुतम् सोमम् ) उत्पन्न हुए ऐश्वर्य को ( यः ते ) जो तेरा ( अस्मयुः ) हमें चाहने वाला, हमारा हितकारी रथ आदि है उससे ( हरिभ्यां ) वेगवान् अश्वों से ( नः आगहि ) हमें प्राप्त हो । आचार्य पक्ष में—( सुतं सोमं ) पुत्र तुल्य सौम्य शिष्य जो ( गवाशिरम् ) वेदवाणी को व्याप रहा है उसको ज्ञान और कर्ममार्ग

में ले जाने वाले उपायों सहित प्राप्त हो। जो शिष्य ( ते ) तेरा और ( अस्मयुः ) हम मां बाप को भी चाहने वाला हो।

तमिन्द्र मदमा गंहि बर्हिःष्ठां ग्रावभिः सुतम्।
कुविन्न्वस्य तृप्णवः॥ २॥

भा०—जिसप्रकार ( ग्रावभिः सुतम् ) मेघों से सींचे गये (बर्हिष्ठां) आकाशस्थ ( मदं सुतम् ) सर्व हर्षजनक जल को सूर्य पुनः आकर्षण कर लेता है और उस जल से बहुत से जन्तुगण तृप्त होते हैं इसी प्रकार ( ग्रावभिः सुतम् ) मेघों से सींचे गये ( मदं तम् ) सबके तृप्तिकारक वा हर्षजनक उस ( सुतम् ) उत्पन्न अन्न को यह सूर्य प्राप्त हो और इस अन्न से भी बहुत से तृप्त होते हैं। ( २ ) हे आचार्य ! तू ( मदं ) हर्षजनक ( बर्हिष्ठां ) आसन पर स्थित ( ग्रावभिः सुतम् ) विद्वान् उपदेष्टाओं द्वारा उपदिष्ट पुत्र वा शिष्य को प्राप्त हो और ( नु अस्य त्वं कुवित् तृप्णवः ) तू शीघ्र ही उसको बहुत अधिक तृप्त कर। ज्ञान से तृप्त कर। ( २ ) राजा ( ग्रावभिः सुतम् ) सैन्य के शस्त्रों द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य को प्राप्त होवे। इससे अच्छी प्रकार तृप्त, प्रसन्न हो और अन्यों को तृप्त करे।

इन्द्रमित्था गिरो ममाच्छागुरिषिता इतः।
आवृते सोमपीतये॥ ३॥

भा०—( मम ) मेरी ( इत्था ) इस प्रकार की ( गिरः ) उत्तम वाणियां ( इषिताः ) कही गईं ( इन्द्रं ) ऐश्वर्यवान् वा विद्वान् पुरुष को ( आवृते ) उत्तम रीति से सुरक्षित, आच्छादित स्थान, राष्ट्र या पुर में ( सोमपीतये ) शिष्य और राष्ट्रैश्वर्य की रक्षा के लिये ( अच्छ अगुः ) प्राप्त हों। ( २ ) पक्षान्तर में—अन्नादि पदार्थ वा जल आवृत अर्थात् ढके स्थान में सुरक्षित स्थान में रक्खे जाने का राजा आदि को उपदेश हो।

इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे।
उक्थेभिः कुविदागमत्॥ ४॥

भा०—हम ( उक्थेभिः स्तोमैः ) प्रशंसनीय उत्तम वचनों से ( सोमस्य पीतये ) ओषधि रस, अन्नादि के पान उपभोग आदि के लिये ( इन्द्रं ) उत्तम ऐश्वर्यवान्, विद्वान् पुरुष को ( हवामहे ) बुलावें वह ( इह ) हमारे पास ( कुविद् आगमत् ) बहुत २ बार आवे । इसी प्रकार राष्ट्र के पालन के लिये उत्तम बलवान् नायक को उत्तम वचनों से प्रार्थना करें वह बहुत वार हमें प्राप्त हो ।

इन्द्र सोमाः सुता इमे तान्दधिष्व शतक्रतो ।
जठरे वाजिनीवसो ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—हे ( वाजिनीवसो ) वाजिनी अर्थात् उषा को बसाने वाला सूर्य जिस प्रकार जलों को ( जठरे ) अन्तरिक्ष में धारण कर लेता है उसी प्रकार हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! ( इमे ) ये ( सुताः ) उत्पन्न ( सोमाः ) ऐश्वर्ययुक्त अन्नादि पदार्थ हैं । ( तान् ) उनको हे ( शतक्रतो ) अनेक कर्म और ज्ञानों वाले ! तू ( जठरे ) अपने उदर में और वश में ( दधिष्व ) धारण कर । ( २ ) राजा बलवती सेना और अन्नवती भूमि को बसाने वाला होने से 'वाजिनीवसु' है । वह अभिषिक्त अधीन राजाओं को अपने वश में रक्खे । इति पञ्चमो वर्गः ॥

विद्मा हि त्वा धनञ्जयं वाजेषु दधृषं कवे ।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥ ६ ॥

भा०—हे ( कवे ) क्रान्तदर्शिन् ! विद्वन् ! हे आज्ञापक ! हम ( त्वा ) तुझको ( वाजेषु ) संग्रामों में शत्रुओं को ( धृषं ) पराजित करने वाला और ( धनञ्जयं ) धन को जीत कर लाने वाला ही ( विद्म ) जानते हैं । ( अध ) और इसी कारण ( ते ) तुझसे हम ( सुम्नम् ) सुखजनक धन की ( ईमहे ) याचना करते हैं । हे विद्वन् ! तुझको ज्ञानों में प्रगल्भ और गौ, सुवर्ण आदि पदक पारितोषिकादि को स्पर्धापूर्वक जीत लेने वाला जानते हैं । तुझसे उत्तम ज्ञान की याचना करते हैं ।

इ॒मामि॑न्द्र॒ गवा॑शिरं॒ यवा॑शिरं च नः पिब ।
आ॒ग॒त्या वृष॑भिः सु॒तम् ॥ ७ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! ( वृषभिः सुतम् ) मेघों से उत्पन्न जल ( गवाशिरं ) किरणों से ताप द्वारा गृहीत होता है और ( यवाशिरं ) यव आदि अन्नों से ग्रहण किया जाता है उस जल को प्रथम जिस प्रकार सूर्य पान करता है उसी प्रकार तू भी ( वृषभिः सुतम् ) बलवान् प्रबन्धक शासकों से उत्पन्न किये ( गवाशिरं ) गौ, भूमि मेघ से प्रजाओं द्वारा उपयुक्त और ( यवाशिरम् ) यव अर्थात् शत्रुओं के दूर करने वाले वीर सैन्यों से भुक्तशेष ( इमं ) इस ( नः ) हमारे ( सुतम् ) उत्पन्न ऐश्वर्य या राष्ट्र को ( आगत्य ) प्राप्त करके ( पिब ) पालन वा उपभोग कर ।

तुभ्येदि॑न्द्र॒ स्व ओ॒क्ये॒३॒॑ सोमं॑ चोदामि पी॒तये॑ ।
ए॒ष रा॑रन्तु ते हृ॒दि ॥ ८ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! हे ज्ञानवन् विद्वन् ! आचार्य ! (तुभ्य इत् स्वे ओक्ये) तेरे अपने स्थान आश्रम में ही मैं इस ( सोमं ) शिष्य को ( पीतये ) ब्रह्मचर्य के पालन के लिये ( चोदामि ) प्रेरित करता हूं। ( एषः ) वह ( ते हृदि ) तेरे हृदय में ( रारन्तु ) रमण करे, तेरे चित्त के अनुकूल होकर रहे, तुझे प्रिय लगे ।

त्वां सु॒तस्य॑ पी॒तये॑ प्र॒त्नमि॑न्द्र हवामहे ।
कु॒शि॒कासो॑ अव॒स्यवः॑ ॥ ९ ॥ ६ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! हम ( कुशिकासः ) सार को ग्रहण करने में कुशल ( अवस्यवः ) तेरे अधीन रक्षा, व्रत और प्रजा के पालन और ज्ञान की कामना करते हुए ( सुतस्य पीतये ) उत्पन्न पुत्र वा शिष्य के पालन और पुत्रवत् प्रजायुक्त राष्ट्र के रक्षण और

ऐश्वर्य के उपभोग के लिये ( प्रत्नं त्वां ) पुरातन या प्रथमतः अनुभव-वृद्ध तुझको हम लोग ( हवामहे ) बुलाते हैं । इति षष्ठो वर्गः ॥

## [ ४३ ]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३ विराट् पंक्तिः । २, ४, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ भुरिक् त्रिष्टुप् । ७, ८ त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

**आ याह्यर्वाङुप वन्धुरेष्ठास्तवेदनु प्रदिवः सोमपेयम् ।**
**प्रिया सखाया वि मुचोप बर्हिस्त्वामिमे हव्यवाहो हवन्ते ॥ १ ॥**

भा०—हे राजन् ! तू ( वन्धुरेष्ठाः ) बन्धनयुक्त प्रेम सम्बन्ध या प्रबन्ध में स्थित रह कर ( प्रदिवः अनु ) अपने से प्रकृष्ट, उत्तम ज्ञान वाले पुरुष के अधीन रहकर ( तव इत् ) तू अपने ही ( सोमपेयम् ) ऐश्वर्य भोग को ( उप आयाहि ) प्राप्त हो । और ( प्रिया सखाया ) ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ग दो प्रिय मित्रों को ( बर्हिः ) सामान्य प्रजा के समीप ( उप विमुच ) विविध कार्यों में नियुक्त कर । (इमे) ये ( हव्य-वाहः ) अन्नादि पदार्थों को धारण करने वाले प्रजाजन ( त्वाम् ) तुझको (उप हवन्ते) पुकारते हैं । „क्षत्रं वै प्रस्तरो विश इतरं वर्हिः ॥ श० १।३।४। १० ॥ बर्हिः विश् प्रजाएं है और राजा के दो प्रियसखा क्षत्रिय और ब्राह्मण वर्ग हैं । उनको न्याय और शासन के लिये प्रजाओं पर नियुक्त करे ।

**आ याहि पूर्वीरति चर्षणीराँ अर्य आशिष उप नो हरिभ्याम् ।**
**इमा हि त्वा मतयः स्तोमतष्टा इन्द्र हवन्ते सख्यं जुषाणाः ॥२॥**

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यप्रद विद्वन् ! तू ( पूर्वीः ) अपने से पूर्व और समृद्धियों से पूर्ण ( चर्षणीः ) प्रजाजनों को ( अति आयाहि ) अतिक्रमण करके, शक्ति आदि में सबसे बढ़कर प्राप्त कर, उनको अपने अधीन कर । तू ( अर्यः ) स्वामी होकर ( हरिभ्याम् ) सब प्रजाके दुःखों को

हरने वाले विद्वान् और बलवान् पुरुषों द्वारा ( नः ) हमारे ( आशिषः ) उत्तम आशा सूचक वचनों, आशीर्वादों वा इच्छाओं को ( उप आयाहि ) प्राप्त कर। (सख्यम् ) तेरी मित्रता को (जुषाणाः) प्रेम से सेवन करते हुए (स्तोमतष्टाः) उत्तम स्तुति-वचनों से परिष्कृत ( इमा हि ) ये ( मतयः ) मननशील विदुषी प्रजाएं और उनकी सभाएं ( त्वा हवन्ते ) तुझे पुकारें, आदरपूर्वक आमन्त्रित करें। अध्यात्म में—( चर्षणीः ) ज्ञानेन्द्रिय गण। ( मतयः ) प्रजाएं और स्तुतियें।

आ नो॑ य॒ज्ञं न॑मो॒वृधं॑ स॒जोषा॒ इन्द्र॑ देव॒ हरि॑भिर्याहि॒ तूय॑म्।
अ॒हं हि त्वा॑ म॒तिभि॒र्जोह॑वीमि घृ॒तप्र॑याः सध॒माद॑े मधू॑नाम् ॥३॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! विद्वन्! तू ( सजोषाः ) प्रेम-सहित ( तूयम् ) शीघ्र ही (हरिभिः) प्रजाके कष्टों को हरने वाले, तेजस्वी विद्वानों सहित (नः) हमारे ( नमोवृधम्) अन्नादि पदार्थ तथा शत्रु नमाने वाले सैन्य बल को बढ़ाने वाले ( यज्ञं ) यज्ञ, परस्पर संगतियुक्त राष्ट्र के प्रबन्ध को ( आयाहि ) आ, प्राप्त हो। ( घृतप्रयाः ) जल और पुष्टिकारक अन्नादि से सत्कार करने हारा ( अहं हि ) मैं प्रजागण, ( मधूनां ) मधुर पदार्थ अन्न और जलों के द्वारा (सधमादे) एक साथ तृप्त होने के सहभोज आदि के अवसर में (त्वा ) तुझको ( मतिभिः ) मननशील पुरुषों सहित ( आजोहवीमि )आदर से बुलाता हूं।

आ च॒ त्वामे॒ता वृष॑णा॒ वहा॑तो॒ हरी॒ सखा॑या सु॒धुरा॒ स्वङ्गा॑।
धा॒नाव॒दिन्द्रः॒ सव॑नं जुषा॒णः सखा॒ सख्यु॑ः शृणव॒द्वन्द॑नानि ॥४॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! (एता हरी) श्वेत, बलवान् अश्व जिस प्रकार रथ को या रथमें विराजते स्वामी को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाते हैं उसी प्रकार ( एता ) अखिल विद्याओं में पारंगत या तेरे ( आ इता ) अधीन आये हुए (वृषणा) वीर्यसेचन में समर्थ, बलवान्, जवान ( हरी)

एक दूसरे के बल को प्राप्त करने वाले, (सखाया) परस्पर मित्र (सुधुरा) गृहस्थादि भार को उत्तम रीति से धारण करने वाले ( सु-अङ्गा ) उत्तम अंगों वाले स्त्री और पुरुष वर्ग (त्वाम् आवहातः) तुझे अपने ऊपर शासक रूप से प्राप्त करें और (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता राजा ( सखा ) सबका मित्र होकर ( धानावत् सवनं ) धारण पोषण करने योग्य प्रजाओं से युक्त ऐश्वर्य का ( जुषाणः ) सेवन करता हुआ ( सख्युः ) अपने मित्र प्रजागण के ( वन्दनानि ) स्तुति वचनों, उपदेशों को और अभिवादन वचनों को ( शृणवद् ) सुना करे।

कुविन्मा गोपां करसे जनस्य कुविद्राजानं मघवन्नृजीषिन्।
कुविन्म ऋषिं पपिवांसं सुतस्य कुविन्मे वस्वो अमृतस्य शिक्षाः॥५॥

भा०—हे विद्वन्! ऐश्वर्यवन्! तू ( मां ) मुझको (कुवित्) बहुत बड़े भारी ( जनस्य ) जनसमुदाय का ( गोपां करसे ) रक्षक बना। ( ऋजीषिन् ) ऋजु, सरल धर्ममार्ग में चलने और चलाने हारे हे ( मघवन् ) आदरणीय धनसम्पन्न! तू मुझको ( कुवित् राजानं ) बहुतों का राजा (करसे) बना। ( मा ) मुझको ( ऋषिं ) मन्त्रार्थ द्वारा विद्वान् और ( सुतस्य पपिवांसं ) उत्पन्न पुत्र, ऐश्वर्य और राष्ट्र का पालक और भोक्ता बना और ( मे ) मुझे ( कुवित् वस्वः ) बहुत बड़े ( अमृतस्य ) अमृतस्वरूप सुखद ( वस्वः ) सब में बसने वाले आत्मा और अक्षय ऐश्वर्य की ( शिक्षाः ) शिक्षा और दान कर।

आ त्वा बृहन्तो हरयो युजाना अर्वागिन्द्र सधमादो वहन्तु।
प्र ये द्विता दिव ऋञ्जन्त्याताः सुसम्मृष्टासो वृषभस्य मूराः॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (बृहन्तः) बड़े २ (हरयः) कार्यभार को वहन करने वाले विद्वान् पुरुष ( युजानाः ) योग वा मनोयोग द्वारा समाहित चित्त होकर ( सधमादः ) एक साथ मिलकर, सुप्रसन्न होकर

(त्वा) तुझको ( अर्वाग् ) सबके सन्मुख ( आवहन्तु ) आदरपूर्वक बुलावें और धारण करें। ( वे ) जो ( दिवः ) सूर्य के समान तेजस्वी ( वृषभस्य ) बलवान् पुरुष के ( द्विता ) दोनों ओर रहकर ( सूराः ) शत्रुओं को मारते हुए ( सु-सं-मृष्टासः ) शुभ उत्तम प्रकार से शुद्ध एवं विचारवान् होकर ( आताः ऋञ्जन्ति ) सब दिशाओं में जाते हैं और उनको अपने अधीन वश करते और विजय करते हैं।

**इन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्ण आ यं ते श्येन उशते जभार।**
**यस्य मदे च्यावयसि प्र कृष्टीर्यस्य मदे अप गोत्रा ववर्थ॥ ७॥**

भा०—( वृषधूतस्य वृष्णः ) जिस प्रकार बलिष्ठ वायुयुक्त सञ्चालित वर्षणशील मेघ या वृष्टिकारक जल को सूर्य पान कर लेता है ( यं श्येनः (आ जभार) जिसको शुभ्र किरणगण आहरण कर लेता है, जिसके बल पर वह सूर्य ( कृष्टीः ) जलों के आकर्षण करने वाले अपने किरणों को भूतल पर गिराता है, जिसके हर्ष या बलपर सूर्य ( गोत्राः ) पर्वतों को ढांपता, मेघों को दूर कर देता और भूमि को जल से और ओषधियों से ढंक देता है उस जल को सूर्य ही खैंचता है। उसी प्रकार हे (इन्द्र) सूर्य के समान तेजस्विन्! ऐश्वर्यवन्! शत्रु के हनन करने हारे! तू (वृषधूतस्य) बलवान् पुरुषों को कंपाने वाले ( वृष्णः ) अति बलशाली, प्रबल राष्ट्र को ( पिब ) पालन कर। ( यं ) जिसको ( श्येनः ) बाज पक्षी के समान निर्बल शत्रुओं पर वेग से जा पड़ने वाला सेनानायक ( उशते ते ) राज्य की कामना करने वाले तेरे लिये ( उत् जभार ) शत्रु के हाथों से उद्धार करता है और ( यस्य मदे ) जिसके प्राप्त कर लेने के हर्ष में ( कृष्टीः ) कर्षण या पीड़न करने योग्य शत्रु मनुष्यों को ( प्र च्यावयसि ) अपने पद से गिरा देता है अथवा जिसके दमन करने में राजा ( कृष्टीः ) किसान प्रजाओं को ( प्र ) उत्तम रीति से ( च्यावयसि ) उत्साहित करता है और ( यस्य मदे ) जिसके लाभ के आनन्द होने पर ( गोत्रा ) भूमि को (अप ववर्थ)

परास्त करता है या, ( गोत्रा अप वव्रर्थ ) पर्वत के समान अभेद्य, स्थिर शत्रुओं को भी उखाड़ फेंकता है ।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥८॥७॥

भा०—व्याख्या देखो सू० ३२ । मं० २२ ॥ इति सप्तमो वर्गः ॥

## [ ४४ ]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृद्बृहती । ३, ५ बृहती । ४ स्वराडनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अयं ते अस्तु हर्यतः सोम आ हरिभिः सुतः ।
जुषाण इन्द्र हरिभिर्न आ गह्या तिष्ठ हरितं रथम् ॥ १ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! ( अयं ) यह ( सोमः ) ऐश्वर्ययुक्त प्रजाजन ( हर्यतः ते ) कामनाशील तेरे लिये ( हर्यतः अस्तु ) स्वयं भी कमनीय वा कामना करने योग्य ( अस्तु ) हो जिसको ( हरिभिः ) वेगवान् अश्वादि साधनों तथा दुःखादि हरण करने वाले विद्वान् पुरुषों ने तेरे लिये (सुतः) उत्पन्न कर तुझे प्राप्त कराया है । हे ऐश्वर्यवन् ! तू उसको (जुषाणः) प्रेमपूर्वक स्वीकार करता हुआ ( हरिभिः ) उन वेगवान् साधनों अश्वों के समान धुरन्धर विद्वानों और शासकों के सहित ( नः आगहि ) हमें प्राप्त हो और (रथम्) उत्तम रमणयोग्य रथ के समान रमण करने में योग्य ( हरितम् ) मनोहर राष्ट्र पर ( आतिष्ठ ) सदा शासन कर, उस पर अध्यक्ष रूप से रह ।

हर्यन्नुषसमर्चयः सूर्यं हर्यन्नरोचयः ।
विद्वाँश्चिकित्वान्हर्यश्व वर्धस इन्द्र विश्वा अभि श्रियः ॥ २ ॥

भा०—हे ( हर्यन् ) अर्थ, काम आदि की कामना करने वाले पुरुष! ( उषसम् अर्चयः ) प्रार्थनाशील पुरुष जिस प्रकार उषःकाल को प्राप्त कर अर्चना करता है उसी प्रकार तू भी ( उषसम् ) गुणों में कमनीय सहचारी को प्राप्त कर, उसकी अर्चना आदर सत्कार कर। हे राजन्! तू भी राज्य की कामना करने हारा होकर ( उषसम् ) उषा अर्थात् राष्ट्र को वश करने वाली तेजस्विनी और शत्रु को भस्म करदेने वाली सैन्य-शक्ति का ( अर्चयः ) आदर कर, उसकी आराधना, साधना कर, उसको महत्व दे। हे ( हर्यन् ) कामनाशील स्त्री तू भी ( सूर्यम् ) सूर्यके समान तेजस्वी एवं सन्तानोत्पादन में समर्थ पुरुष को ( अरोचयः ) हृदय से चाह। हे (हर्यन्) ऐश्वर्य की कामना करने वाले प्रजाजन तुम भी ( सूर्यम् सूर्यके समान तेजस्वी राजा को ( अरोचयः ) सदा चाहो। हे ( हर्यश्व ) वेगवान् अश्वादि साधनों से युक्त राजन्! हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! तू ( चिकित्वान् ) ज्ञानवान् और ( विद्वान् ) ऐश्वर्य को प्राप्त करने हारा या विद्यावान् होकर ( विश्वा श्रियः अभि ) समस्त लक्ष्मियों और सम्पदाओं तथा आश्रित प्रजाओं को प्राप्त करके ( वर्धसे ) वृद्धि को प्राप्त हो। इसी प्रकार हे ( हर्यश्व ) हरणशील इन्द्रियों वाले! तू भी विद्वान् विवेकी हो कर समस्त सम्पदाओं को प्राप्त होकर वृद्धि को प्राप्त हो।

द्यामिन्द्रो हरिधायसं पृथिवीं हरिवर्पसम्।
अधारयद्धरितोर्भूरि भोजनं ययोरन्तर्हरिश्चरत् ॥ ३ ॥

भा०—( ययोः ) जिन ( हरितोः ) हरणशील आकाश और पृथिवी दोनों के (अन्तः) बीच में ( हरिः ) जल हरण करने वाला सूर्य या वायु ( भूरिभोजनं ) बहुत सा खाद्य पदार्थ उत्पन्न करता और ( चरन् ) स्वयं विचरता है, उन दोनों को ( इन्द्रः ) सूर्य स्वयं ( हरिधायसं ) किरणों को धारण करने वाली ( द्याम् ) आकाश को और ( हरिवर्पसम् ) हरित वनस्पतियों से हरे रूप वाली ( पृथिवीम् ) पृथिवी को भी वह ( अधार

यत् ) स्वयं धारण करता है। उसी प्रकार ( हरिः ) शत्रुओं से धनादि आहरण करने वाला प्रबल प्रतापी पुरुष ( ययोः अन्तः ) जिन राष्ट्रों के बीच ( चरत् ) स्वयं विचरता है उन दोनों के ( भूरि भोजनम् ) बहुत से भोग्य ऐश्वर्य और उत्तम पालन कार्य को भी अपने पर धारण करता है। इस प्रकार वह ( हरिधायसं द्याम् ) वेगवान् अश्वों को धारण करने वाली विजिगीषु सेना या विद्वानों की पोषक राजसभा और ( हरिवर्पसम् ) सस्यादि से हरित रूप वाली ( पृथिवीम् ) पृथिवी को भी ( अधारयत् ) धारण करे।

जज्ञानो हरितो वृषा विश्वमा भाति रोचनम्।
हर्यश्वो हरितं धत्त आयुधमा वज्रं बाह्वोर्हरिम् ॥ ४ ॥

भा०—(हरितः वृषा ) तेजस्वी, पीतवर्ण वा नीलवर्ण का, वर्षण करने वाला सूर्य जिस प्रकार ( जज्ञानः ) उत्पन्न या उदय होकर ( रोचनं विश्वम् आभाति ) समस्त रुचिकर विश्व को प्रकाशित करता है। उसी प्रकार ( जज्ञानः ) प्रकट होकर ( हरितः ) कान्तियुक्त, सबके मनों को हरने वाला, ( वृषा ) बलवान् और प्रबन्धकारी पुरुष ( विश्वं रोचनम् आभाति ) समस्त रुचिकर राष्ट्र में चमकता है। वह ( हर्यश्वः ) सूर्य की किरणों के समान तीव्र वेग से जाने वाले अश्वों का स्वामी ( हरितम् ) दीप्तियुक्त ( हरिम् ) शत्रुओं के प्राणों को हरण करने वाले ( वज्रम् ) शत्रुओं को दूर हटाने वाले, ( आयुधं ) उन पर सब ओर से प्रहार करने वाले शस्त्र बल और सैन्य को ( बाह्वोः ) बाहुओं में हथियार के समान और प्रजाजन को भी अपने हाथों में ( धत्त ) धारण करे। हरयः इति मनुष्य नाम। निघ० ॥

इन्द्रो हर्यन्तमर्जुनं वज्रं शुक्रैरभीवृतम्।
अपावृणोद्धरिभिरद्रिभिः सुतमुद्गा हरिभिराजत ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—( इन्द्र ) सूर्य जिस प्रकार ( हर्यन्तम् ) कान्तियुक्त

( अर्जुनं ) श्वेत ( वव्रं ) अन्धकार के निवारक ( शुक्रैः अभीवृतम् ) किरणों से युक्त प्रकाश को ( अप अवृणोत् ) प्रकट करता है औरजिस प्रकार ( इन्द्रः ) तीव्र वायु ( हर्यन्तं ) अति दीप्तियुक्त ( अर्जुनं ) पीड़ित करने वाले ( शुक्रैः अभीवृतं ) जलों से घिरे हुए ( वव्रं ) विद्युत् रूप वज्र को ( अप अवृणोत् ) प्रकट करता है उसी प्रकार ( इन्द्रः ) शत्रुहन्ता राजा ( हर्यन्तं ) अति प्रदीप्त ( अर्जुनं ) शत्रु-हिंसक ( शुक्रैः ) शीघ्र कार्य करने वाले चुस्त सैनिकों से व्याप्त ( वव्रं ) शत्रुनिवारक सैन्य को ( अप अवृणोत् ) प्रकट करे । और जिस प्रकार ( हरिभिः ) किरणों और ( अद्रिभिः ) मेघों से सूर्य ( सुतम् ) सेचन करने वाले जल को प्रकट करता है उसी प्रकार ऐश्वर्यवान् राजा ( हरिभिः ) गतिशील शत्रु के धनों को हरने और प्रजाजनों के मनों को हरने वाले अश्वसैन्यों और ( अद्रिभिः ) पर्वतों के समान अचल, अभेद्य और मेघों के समान शस्त्र-वर्षी सैन्यों से ( सुतम् ) उत्पन्न ऐश्वर्यों को ( अप अवृणोत् ) प्रकट करे । वह ( हरिभिः गाः ) सूर्य जिस प्रकार जल-हरणशील किरणों से नीचे गिरने वाली जलधाराओं को बरसाता है उसी प्रकार राजा भी (हरिभिः) उत्तम मनुष्यों से (गाः) भूमियों को ( आजत ) शासन करे । इत्यष्टमो वर्गः ॥

## [ ४५ ]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृद्बृहती । ३, ५ बृहती । ४ स्वराडनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्नि यमन्विं न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥१॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहनन करने हारे राजन् ! सेनापते ! सूर्य जिस प्रकार ( मयूररोमभिः ) मोर के रोओं के समान चित्र विचित्र हरित नील किरणों से व्यापता है उसी प्रकार तू भी ( मयूर-

रोमभिः हरिभिः ) मोर के पंखों के समान नीली हरी कलगिएं लगाये ( मन्द्रैः ) मन्दगति से जाने वाले, अति हर्षोत्पादक ( हरिभिः ) वेगवान् मनुष्यों सहित ( आ याहि ) आ, आगे बढ़, सब तरफ़ प्रयाण कर। ( पाशिनः विं न ) जालिये जिस प्रकार पक्षी को फांस लेते हैं उस प्रकार ( त्वा ) तुझको ( केचित् ) कोई भी शत्रुजन ( मा नि यमन् ) न बांधलें। तू ( तान् ) उनको ( धन्व इव ) उत्तम धनुर्धर के समान ( अति ) पार करके ( इहि ) प्राप्त हो।

**वृत्रखादो वलंरुजः पुरां दर्मो अपामजः।**

**स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृळ्हाचिदारुजः॥ २॥**

भा०—जिस प्रकार ( इन्द्रः ) सूर्य, विद्युत् या वायु ( वृत्रखादः ) किरणों या वेग से मेघ को छिन्न भिन्न कर देता है ( वलं-रुजः ) मेघ को आघात करता है, ( अपां दर्मः ) जलों को विदीर्ण करता है और ( अपां अजः ) जलों को नीचे फेंकता है, ( अभिस्वरः ) जिस प्रकार विद्युत् या सूर्य खूब तेजस्वी, अति गर्जनशील होकर ( दृढ़ा चित् आ रुजति ) दृढ़ २ पर्वतों या घने मेघों को भी भेद डालता है उसी प्रकार ( इन्द्रः ) ऐश्वर्य-वान्, शत्रुहन्ता राजा ( वृत्रखादः ) अपने बढ़ते या विघ्नकारी, बाधक शत्रुओं को खा जाने या अन्न जल के समान अपने बल में ही पचा जाने वाला ( वलं-रुजः ) अपने घेरने वाले शत्रु को प्रबल आक्रमण से तोड़ फोड़ देने वाला ( पुरां दर्मः ) शत्रुओं के नगरों क़िलों को तोड़ डालने वाला ( अपाम् अजः ) पास आये शत्रुओं को उखाड़ देने और अपनी आप्त सेनाओं और प्रजाओं को सन्मार्ग में चलाने हारा ( हर्योः ) दो घोड़ों के ( रथस्य ) रथ पर ( स्थाता ) बैठने वाला, उत्तम रथी, ( अभि-स्वरः ) अति तेजस्वी, गर्जनावान् ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् होकर ( दृढ़ा-चित् ) दृढ़ से दृढ़ शत्रु-दलों को भी ( आरुजः ) अच्छी प्रकार संहार करने में समर्थ हो।

गम्भीराँ उदधीरिव क्रतुं पुष्यसि गा इव ।
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार मेघ या सूर्य ( सु-गो-पाः ) उत्तम किरणों या भूमियों का पालक होकर वृष्टि जलों से ( गम्भीरान् उदधीन् ) गहरे गहरे समुद्रों को भी पुष्ट करता है उसी प्रकार ( सुगोपाः ) भूमि का पालक होकर तू ( गम्भीरान् पुष्यसि ) गम्भीर पुरुषों को पुष्ट कर, उनको बलवान् शक्तिमान् बना और ( क्रतुं पुष्यसि ) अपने कर्म सामर्थ्य और प्रज्ञा, बुद्धि को भी पुष्ट कर ( सुगोपाः ) उत्तम गौओं का रक्षक या उत्तम संगोप्ता व्रत पालक और यज्ञपालक पुरुष ( क्रतुं पुष्यति ) यज्ञ कर्म की रक्षा करता है उसी प्रकार तू भी ( सुगोपाः ) इन्द्रियों का, वाणी का उत्तम पालक होकर ( क्रतुम् प्रज्ञां पुष्यसि ) अपने बल और बुद्धि सामर्थ्य को पुष्ट कर, बढ़ा। जिस प्रकार ( सुगोपाः ) उत्तम गोपाल ( गाः इव ) गौओं को पुष्ट करता है उसी प्रकार तू भी ( सुगोपाः ) उत्तम भूमि का और प्रजाजनों का रक्षक होकर भूमियों उनके निवासी प्रजाओं, वाणियों और आज्ञाओं को पुष्ट, दृढ़ कर। ( धेनवः यवसं ) जिस प्रकार गौएं चारे को ( प्र अश्नन्ति ) खूब खाती हैं। और जिस प्रकार (कुल्याः इव ह्रदं ) छोटी २ जलधाराएं बड़े जलाशय को व्याप लेती हैं उसके जल को स्वयं ले लेतीं या सब ओर से उसी में आकर मिलती हैं उसी प्रकार हे प्रजाजनो ! तुम भी अपने ऐश्वर्ययुक्त स्वामी का ( प्र आशत ) अच्छी प्रकार उपयोग करो और उसके ऐश्वर्य, तेज और पराक्रम को अपने में धारण करो और सब ओर से तुम उसमें आश्रय लो।

आ नस्तुजं रयिं भराशं न प्रतिजानते ।
वृक्षं पक्वं फलमङ्कीव धूनुहीन्द्र सम्पारणं वसु ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार पिता या राजा ( प्रति जानते ) व्यवहार जानने वाले वालिग पुत्र को उसका ( अंशं न ) अंश, जायदाद का भाग प्रदान

करता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! तू ( नः ) हमें और हममें से ( प्रति जानते ) तेरे कार्य करने की प्रतिज्ञा करने वाले को ( तुजं रयिं आ भर ) पालक ऐश्वर्य दान कर । ( अङ्की इव ) टेढ़ा अंकुशाकार बांस लिये हुए मनुष्य जिस प्रकार ( वृक्षं ) वृक्ष को और ( फलं पक्कं ) पके फल को ( धुनोति ) कंपा २ कर झाड़ लेता है उसी प्रकार हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन्तः ! तू भी ( वृक्षं ) व्रश्चन करने योग्य, काट गिराने योग्य शत्रु को ( धुनुहि ) अपने बड़े भारी सैन्य-बल से कंपा डाल और ( पक्कं फलम् धुनुहि ) परिपक्क फल, अतिपुष्ट, परिणाम, धनैश्वर्य्य ले ले, और उसे भयभीत व परास्त करके तू ( सम्पारणं ) प्रजा को उत्तम रीति से पालन करने वाले (वसु) ऐश्वर्य को (धुनुहि) ले ले ।

स्वयुरिन्द्र स्वराळसि स्मद्दिष्टिः स्वयशस्तरः ।
स वावृधान ओजसा पुरुष्टुत भवा नः सुश्रवस्तमः ॥५॥९॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन्तः ! तू ( स्वयुः ) धन की कामना करने वाला, उसका स्वामी और ( स्वराट् असि ) 'स्व' अर्थात् अपने ही ऐश्वर्य और कर्म सामर्थ्य से प्रकाशित होने वाला है । कल्याणमार्ग का उपदेश करने वाला और ( स्वयशस्तरः ) अपने बहुत अधिक यश, कीर्त्ति और अन्न से समृद्ध एवं उससे प्रजा को भी दुःखों से तारने वाला है । ( सः ) वह तू हे ( पुरुस्तुत ) बहुतों से प्रशंसा योग्य ! ( ओजसा वावृधानः ) पराक्रम और शौर्य से बढ़ता हुआ ( नः ) हमारे बीच ( सुश्रवस्तमः ) उत्तम कीर्त्ति और ज्ञान से सबसे अधिक यशस्वी और बहुश्रुत ( भव ) हो ।

इस सूक्त की योजना अध्यात्म में निम्नलिखितदिशा से करनी चाहिये । ( १ ) इन्द्र देह में आत्मा है, विश्वमय विराड् देह में परमेश्वर है । देह में 'हरि' प्राणगण हर्षजनक और तृप्तिजनक होने से मन्द्र और 'मयु' वाक् को उत्पन्न करने वाले मुख्य प्राण के रोमों के समान उसी से उत्पन्न होने वाले होने से आत्मा 'मयूर-रोमा' है । उस आत्मा

के वे प्राणादि अपनी वासनाओं से भोग-पाशों में न जकड़ लें प्रत्युत वह असंग उन सबको अतिक्रमण करे। विश्व में नाना वर्णों की किरणों वाले सूर्यादि अनन्त लोक मयूररोमा हरि हैं वे सब भी उसको बन्धन में नहीं डालते। परमेश्वर सबका रक्षक, व्यापक और प्रकाशक होने से 'वि' है। वह उन सबको अतिक्रमण कर 'धन्व' अन्तरिक्ष को लांघकर सूर्य के समान विराजता है। ( २ ) आत्मा 'वृत्र' अज्ञान का नाश करता देहपुरियों और इन्द्रियों को भेदता, प्राणों को प्रेरित करता है। 'पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयंभूः' ( उप० ) वा ( अपाम् अजः ) प्राणों के बीच वह अजन्मा है। प्राण, अपान दो 'हरि' अश्व हैं। उनसे जुड़े 'रथ' रमणसाधन रथ के समान देह पर स्थित देह का अधिष्ठाता आत्मा है। सब तरफ़ इन्द्रियें मन को प्रेरित कर और स्वतःप्रकाश न होने से 'अधिस्वर' हैं। वह दृढ़ से दृढ़ बन्धनों को भी तोड़ डालता है। (३) क्रतुमय देह, गौ, वाणी और इन्द्रियाँ गम्भीर उदधि, प्राण हैं। उनको सुगोपा आत्मा पुष्ट करता है। और वे आत्मा के ऐश्वर्य को भोगते और समुद्र में नदियों के समान उसी में समा जाते हैं। यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे अस्तं गच्छन्ति नाम रूपे विहाय। ( उप० ) ( ४ ) प्रत्येक पदार्थ का ज्ञान करने वाले चक्षु आदि को वह उनका अंश देता है। ज्ञानवान् होने से वह अङ्की है, कर्मफलोत्पादक, वृक्ष के समान यह देह ही वृक्ष है। उसको सञ्चालित कर आ उत्तम पालक पोषक शक्ति वीर्य बल को प्रदान करता है। ( ५ ) 'स्वयंभू' होने से 'स्वयु', स्वयं प्रकाश होने से स्वराड्, शोभन वाणी वा इच्छा होने से स्मदिष्टि है। आत्मबल से बलवत्तर है, श्रवण शक्तियुक्त बलवत्तम होने से 'सुश्रवस्तम' है। इति नवमो वर्गः ॥

[ ४६ ]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप्। २, ५ निचृत्त्रिष्टुप्। ३, ४ त्रिष्टुप्। पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

युध्मस्य ते वृषभस्य स्वराज उग्रस्य यूनः स्थविरस्य घृष्वेः ।
अजूर्यतो वज्रिणो वीर्याणीन्द्र श्रुतस्य महतो महानि ॥ १ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! ( युध्मस्य ) युद्ध करने हारे, ( वृषभस्य ) बलवान् सब श्रेष्ठ प्रजाओं और शत्रुओं पर ऐश्वर्यों और शस्त्रों को मेघ के समान वर्षण करने वाले ( स्वराजः ) स्वयं तेज से प्रकाशमान और अपनों का मनोरञ्जन करने वाले ( उग्रस्य ) भयंकर, बलवान् ( यूनः ) युवा, बलवान् ( स्थविरस्य ) ज्ञानादि में वृद्ध वा अति स्थिर ( घृष्वेः ) शत्रुओं के साथ स्पर्धा करने वाले, संघर्षण करने वाले, ( अजूर्यतः ) कभी जीर्ण वा हीनबल न होने वाले ( वज्रिणः ) शस्त्रास्त्र बल के स्वामी, वीर्यवान् ( श्रुतस्य ) जगत्-प्रसिद्ध ( महतः ) महान् शक्तिशाली ( ते ) तेरे ( महानि वीर्याणि ) बड़े २ बलके वीरोचित कार्य हों । ( २ ) विद्युत् पक्ष में—विद्युत् वेग से प्रहार या धक्का लगाने से 'युध्म' है । जल वर्षण करने से वृषभ, दीप्तिमान् होने से स्वराट्, प्रचण्ड होने से 'उग्र', जलों के घटक तत्वों के विश्लेषण और पुनःमिलन कराने से युवन्, नित्य होने से 'स्थविर', घर्षण द्वारा उत्पन्न होने से 'घृष्वि', बलवान् होने से 'वज्री', व्यापक होने से महान् और गर्जना से या यन्त्रादि द्वारा श्रवण करने योग्य होने से 'श्रुत' है उसके भी बड़े अद्भुत कार्य और ( वीर्य ) बल होते हैं ।

महाँ असि महिष वृष्ण्येभिर्धनस्पृदुग्र सहमानो अन्यान् ।
एको विश्वस्य भुवनस्य राजा स योधया च क्षयया च जनान् ॥२॥

भा०—हे ( महिष ) महान् पूजनीय ! तू ( धनस्पृत् ) धनों, ऐश्वर्यों का सेवन करने वाला, हे ( उग्र ) बलवन् ! तू ( वृष्ण्येभिः ) बलवान् पुरुषों बलों और वीर्यों, पराक्रमों से ( अन्यान् सहमानः ) शत्रु जनों को पराजित करता हुआ ( महान् असि ) सबसे बड़ा होकर रह । तू ( एकः ) अकेला, अद्वितीय ( विश्वस्य भुवनस्य राजा ) समस्त भुवन,

राष्ट्र का राजा हो। ( सः ) वह तू ( जनान् योधय च ) अपने मनुष्यों को शत्रुओं से और ( क्षयय च ) अपने राष्ट्र में बसा भी वा शत्रुओं का क्षय कर। ( २ ) परमेश्वर पक्ष में—वह महान् है, महान् दानी होने से व्यापक एवं पूज्य होने से 'महिष' है। ऐश्वर्यवान् होने से 'धनस्पृत्' है।

**प्र मात्राभी रिरिचे रोचमानः प्र देवेभिर्विश्वतो अप्रतीतः ।**
**प्र मज्मना दिव इन्द्रः पृथिव्याः प्रोरोर्महो अन्तरिक्षादृजीषी ॥३॥**

भा०—( इन्द्रः ) वह ऐश्वर्यवान् राजा ( देवेभिः ) युद्ध विजय की कामना करने वाले वीरों, व्यवहारज्ञ वैश्यों और तेजस्वी विद्वानों सहित ( रोचमानः ) अति प्रकाशित होता हुआ ( मात्राभिः ) विशेप २ परिमाणों या राष्ट्र निर्मात्री प्रजाओं से ( प्र रिरिचे ) सबसे अधिक बढ़े। वह ( विश्वतः ) सर्वत्र ( अप्रति-इतः ) किसी से भी मुक़ाबले पर पराजित न होकर ( मज्मना ) शत्रुओं को डुबा देने वाले आक्रमणकारी बल से ( दिवः ) सूर्य से भी ( प्र रिरिचे ) बढ़ जावे ( पृथिव्याः प्र रिरिचे ) पृथिवी से भी बढ़े और वह ( ऋजीषी ) सरल धार्मिक स्वभाव वाला होकर ( उरोः महः अन्तरिक्षात् ) बड़े भारी अन्तरिक्ष या वायु से भी ( प्र रिरिचे ) अधिक सामर्थ्यवान् हो जावे। वह सूर्य से अधिक तेजस्वी पृथ्वी से अधिक दृढ़, सर्वाश्रय वायु वा अन्तरिक्ष से अधिक विस्तृत और प्रबल हो। ( २ ) परमेश्वर दिव्य गुणों से प्रकाशमान होकर ( मात्राभिः ) जगत् को निर्माण करने वाली सर्गकारिणी शक्तियों द्वारा सबसे बड़ा है वह सबसे अप्रतीत, 'अप्रतर्क्य' अविज्ञेय, बल से सूर्य, पृथिवी, अन्तरिक्ष आकाशादि सबसे महान् है। वह ऋजु, धर्म मार्ग में प्रवर्त्तक होने से 'ऋजीपी' है।

**उरुं गभीरं जनुषाभ्यु१ग्रं विश्वव्यचसमवतं मतीनाम् ।**
**इन्द्रं सोमासः प्रदिवि सुतासः समुद्रं न स्रवत आ विशन्ति ॥४॥**

भा०—( स्रवतः समुद्रं न ) बहती नदियां जिस प्रकार समुद्र में ( आविशन्ति ) प्रवेश कर जाती हैं उसी प्रकार ( सुतासः सोमासः ) अभिषिक्त शासक जन, ( प्रदिवि ) उत्कृष्ट न्याय, व्यवहार, विजय कामना की पूर्त्ति के लिये ( उरुं ) महान्, ( गभीरं ) गूढ़ आशय वाले गम्भीर, ( जनुषा ) जन्म से, स्वभाव से ही ( अभि उग्रम् ) सब प्रकार से उग्र, अभिमुख व्यक्तियों के लिये भीतिप्रद ( विश्वव्यचसं ) समस्त राष्ट्र में व्यापक शासन प्रभाव वाले, ( मतीनाम् अवतम् ) मनन करने योग्य ज्ञानों और मननशील मनुष्यों के रक्षक ( इन्द्रं ) ऐश्वर्यवान् शत्रुहनन में समर्थ पुरुष को ( आ विशन्ति ) प्राप्त होते हैं और उसके साथ एक हो जाते हैं।

यं सोममिन्द्र पृथिवीद्यावा गर्भं न माता बिभृतस्त्वाया ।
तं ते हिन्वन्ति तमु ते मृजन्त्वध्वर्यवो वृषभ पातवा उ ॥५॥१०॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्, बलवन्, शत्रुनाशक राजन् ! सेनापते ! ( यं ) जिस ( सोमं ) सोम, राष्ट्र के प्रजागण ऐश्वर्य और जल, अन्नादि पदार्थों को ( द्यावा पृथिवी ) आकाश और भूमि दोनों मिलकर ( गर्भं माता न ) गर्भ को माता के समान ( त्वाया ) तुझ अपने स्वामी के साथ मिलकर ( बिभृतः ) विशेष रूप से धारण करती हैं ( तं ) उसी को ( अध्वर्यवः ) हिंसारहित प्रजापालन का कार्य करने वाले पुरुष ( ते पातवा उ ) तेरे द्वारा पालन करने के लिये या तेरे ही उपभोग के लिये ( हिन्वन्ति ) बढ़ाते हैं और ( ते ) तेरे लिये ही वे उसको ( मृजन्ति ) शोधते हैं, कण्टकस्वरूप बाधक पुरुषों से रहित भी करते हैं। (२) विद्वान् पुरुष सूर्य रूप इन्द्र से युक्त आकाश, पृथिवी के बीच उत्पन्न जल, ओषधि आदि को ( पातवा ) पान के लिये ही बढ़ाते और छानते हैं। ( ३ ) माता पिता जिस पुत्र को धारण करते हैं पालकजन उसको आचार्य के लिये ही बढ़ावें और शोधें दोषों से रहित करें। इति दशमो वर्गः ॥

## [ ४७ ]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१—३ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

**मरुत्वाँ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय ।**
**आ सिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिं त्वं राजासि प्रदिवः सुतानाम् ॥१॥**

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! शत्रुहन्तः सेनापते ! तू ( मरुत्वान् ) शत्रुओं को मारने में समर्थ पुरुषों का स्वामी और उत्तम मनुष्य प्रजाओं का राजा, ( वृषभः ) सभा द्वारा अग्रणी रूप से चुने जाने योग्य, बलवान्, सुखों, ऐश्वर्यों और शस्त्रों को मेघ के समान शत्रुओं पर वर्षण करने वाला होकर तू ( अनु-स्वधम् ) अपनी धारण, पालन पोषण करने की शक्ति, अन्नादि ऐश्वर्य के अनुसार ही ( रणाय ) संग्राम के विजय के लिये और ( मदाय ) हर्ष, आनन्द लाभ करने को भी (सोमम्) राष्ट्र की प्रजा को पुत्र के समान और राष्ट्र के ऐश्वर्य और जल अन्नादि को धन के समान ( पिब ) पालन कर और उपभोग कर । और ( जठरे मध्वः ऊर्मिम् ) पेट में मधुर अन्न वा जल की बड़ी मात्रा के समान तू भी अपने ( जठरे ) अधीन सुरक्षित राष्ट्र में ( मध्वः ऊर्मिम् ) जल की धारा और अन्न की अधिक मात्रा को ( आसिञ्चस्व ) सर्वत्र, सब ओर सींच, प्रवाहित कर । ( त्वं ) तू ही ( प्रदिवः ) सब दिनों ( सुतानां ) उत्पन्न प्रजाओं वा अभिषिक्त पदाधिकारियों के बीच में भी सबसे उत्कृष्ट ( राजा असि ) राजा है, सबसे अधिक प्रकाशमान है । आचार्य पक्ष में—शिष्य गण 'मरुत्' हैं । रमणीय, उत्तम आनन्द ही 'रण, मद' है । शेष स्पष्ट है । ( ३ ) परमेश्वर पक्ष में—सोम जीव । (४) अध्यात्म में—सोम परमेश्वर ।

**सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ।**
**जहि शत्रूँरप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः ॥ २ ॥**

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्य को प्राप्त कराने और करने वाले ! शत्रु हिंसक सेनापते ! राजन् ! तू ( सगणः ) अपने सैन्यगणों सहित और ( मरुद्भिः ) वायु के समान तीव्र वेग से वृक्षों के समान शत्रुगणों को कंपा देने वाले वीर पुरुषों के साथ ( सजोषाः ) समान प्रीतिमान् होकर ( सोमं ) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र को ( पिब ) पान, उपभोग एवं पालन कर । हे ( शूर ) शूरवीर ! शत्रुओं के हिंसक ! तू ( वृत्रहा ) मेघ के नाश करने वाले सूर्य के समान बाधक विघ्नों और बढ़ते फैलते हुए शत्रु का नाश करने वाला और ( विद्वान् ) उचित कर्मों, कर्त्तव्यों और नाना विद्याओं को जानने वाला होकर ( शत्रून् ) शत्रुओं को ( जहि ) मार, दण्डित कर, ( मृधः ) संग्रामों और संग्रामकारियों को ( अप नुदस्व ) दूर भगा । और ( नः ) हमारे लिये ( विश्वतः ) सब प्रकार और सब तरफ़ से ( अभयं कृणुहि ) भयरहित कर ।

उत ऋतुभिर्ऋतुपाः पाहि सोममिन्द्र देवेभिः सखिभिः सुतं नः।
याँ आभजो मरुतो ये त्वान्वहन्वृत्रमदधुस्तुभ्यमोजः ॥ ३ ॥

भा०—(उत ) और हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! जिस प्रकार ऋतुपाः ) ऋतुओं की रक्षा या पालन करने वाला या ऋतुओं द्वारा संसार की रक्षा करने वाला सूर्य ( ऋतुभिः सोमम् पाति ) ऋतुओं द्वारा ही उत्पन्न एवं समस्त प्राणियों को उत्पन्न करने वाले जगत् और अन्नादि वनस्पति वर्ग और समस्त चेतन जीव संसार को पालता और रक्षा करता है उसी प्रकार तू भी ( देवेभिः सखिभिः ) विद्वान्, विजय कामनाशील, व्यवहारज्ञ मित्रों और ( ऋतुभिः ) ज्ञानवान् राजसदस्य द्वारा ( नः सुतम् ) हमारे उत्पन्न किये ( सोमं पाहि ) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र और पुत्र के समान प्रजागण को पालन कर । तू जिन ( मरुतः ) वीर्यवान् वायु के समान बलवान् तीव्रगामी शत्रुओं को मारने वाले वीरों को (आभजः) प्राप्त करे और जो ( त्वा अनु ) तेरे अनुकूल और अधीन होकर

( वृत्रम् ) शत्रुओं का नाश करें वा दण्डित करें वे ही ( तुभ्यम् ) तेरे ( ओजः ) बल पराक्रम को ( अदधुः ) स्वयं धारण करें, पुष्ट करें ।

**ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ ।**
**ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमं सगणो मरुद्भिः ॥४॥**

भा०—हे ( हरिवः ) अश्वों और प्रजा के दुःखहारी उत्तम अश्वारोही सैन्यों और मनुष्यों के स्वामिन् ! हे ( मघवन् ) ऐश्वर्यवन् ! ( ये ) जो ( त्वा ) तुझको ( अहिहत्ये ) अभिमुख आये शत्रु को विनाश करने के संग्राम-कार्य में, मेघ के हनन या ताड़न कार्य में सूर्य या विद्युत को किरणों के समान ( अवर्धन् ) बढ़ाते हैं और ( ये ) जो ( शाम्बरे ) मेघ के समूह पर सूर्य के समान ही ( शाम्बरे ) शान्ति के नाशक और प्रजाजन को घेरने और छलने हारे शत्रुजन के संग संग्राम कार्य में और ( ये ) जो ( गविष्टौ ) 'गो' अर्थात् वाणी और भूमि के लाभ और विजय के कार्य में ( त्वा अवर्धन् ) तुझे बढ़ाते हैं, तेरे मान, आदर और बल की वृद्धि करते हैं और ( ये ) जो ( विप्राः ) विद्वान् पुरुष ( नूनम् ) निश्चय से ( त्वा अनु मदन्ति ) तेरे हर्ष के साथ २ हर्षित होते हैं, तेरे अनुकूल और तेरे अधीन रहकर ही प्रसन्न होते हैं उन ( मरुद्भिः ) बलवान् वायुवत्, शत्रुमारक वीर पुरुषों सहित ( सगणः ) सैन्यगण से युक्त होकर ( सोमं पिब ) ऐश्वर्य और पुत्रवत् राष्ट्र को पालन और उपभोग कर और प्राप्त कर ।

**मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम् ।**
**विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥ ५ ॥ ११ ॥**

भा०—हम ( नूतनाय अवसे ) नये से नये, सदा नवीन ( अवसे ) प्रजापालन, ज्ञानलाभ और तृप्तिलाभ आदि कार्यों के लिये ( मरुत्वन्तं ) वीर पुरुषों के स्वामी, ( वृषभं ) स्वयं बलवान्, मेघ वा सूर्य के समान प्रजा पर सुखों और ऐश्वर्यों की तथा शत्रु पर शस्त्रों की वर्षा करने में समर्थ

( वावृधानम् ) सब प्रकार से निरन्तर बढ़ने वाले ( दिव्यम् ) दिव्य, ज्ञान प्रकाश, उत्तम व्यवहार और तेज से युक्त, सबसे कामनायोग्य ( शासम् ) उत्तम रीति से शासन करने वाले, ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्यवान् ( विश्वासाहम् ) समस्त शत्रुओं को पराजित करने में समर्थ, ( उग्रम् ) शत्रुओं को भय देने वाले, ( सहोदाम् ) बलप्रद और सैन्य बल से शत्रु-बल का खण्डन करने वाले, ( तं ) उस उत्तम पुरुष को हम सदा ( हुवेम ) आदर से बुलावें, उसकी प्रशंसा करें । इत्येकादशो वर्गः ॥

## [ ४८ ]

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ४ त्रिष्टुप् । ५ भुरिक् पंक्तिः ॥

**स॒द्यो ह॑ जा॒तो वृ॑ष॒भः क॒नीनः॒ प्रभ॑र्तु॒माव॒दन्ध॑सः सु॒तस्य॑ ।**
**सा॒धोः पि॑ब प्रति॒का॒मं यथा॑ ते॒ रसा॑शिरः प्रथ॒मं सो॒म्यस्य॑ ॥१॥**

भा०—जिस प्रकार ( कनीनः ) दीप्तिमान् ( वृषभः ) वर्षणशील सूर्य ( जातः ) प्रकट होकर ( सुतस्य अन्धसः ) उत्पन्न हुए अन्न आदि वनस्पतिगण का ( प्रभर्तुम् आवत् ) उत्तम रीति से भरण पोषण करने में समर्थ होता है, वह ( रसाशिरः सोम्यस्य साधोः पिबति ) नाना जलों से अभिषिक्त ओषधिगण के हितकारी, सर्वोत्तम, सर्व कार्यसाधक जल को रश्मियों द्वारा पान करता है उसी प्रकार राजन् ! तू भी ( सद्यः ) शीघ्र ही वा ( साद्यः ) सद् संसद्, परिषदादि में श्रेष्ठ ( जातः ) सब गुणों में सम्पन्न होकर ( वृषभः ) बलवान् ( कनीनः ) कान्तिमान् , तेजस्वी, सबके कामना करने योग्य होकर ( सुतस्य ) उत्पन्न पुत्र के समान प्रजागण को ( प्रभर्तुम् ) अच्छी प्रकार भरण पोषण करने के लिये ( अन्धसः आवत् ) अन्न आदि पदार्थों को सुरक्षित करे और प्राप्त करे । और ( प्रतिकामं ) प्रत्येक उत्तम अभिलाषा के अनुकूल ( सोम्यस्य ) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र

के हितकारी ( साधोः ) सन्मार्गस्थित, कार्यसाधक, उत्तम ( रसाशिरः ) बल को धारण करने वाले या उत्तम जलादि के उपभोक्ता, राष्ट्र की (प्रथमम् ) सबसे प्रथम ( पिब ) पालना कर ( यथा ते ) जिससे तेरा ही उस पर यथेष्ट स्वामित्व हो। पक्षान्तर में—मनुष्य उत्तम वनस्पतियों के उत्तम रसादि का उपभोक्ता हो।

यज्जायथास्तदहरस्य कामेंऽशोः पीयूषमपिबो गिरिष्ठाम्।
तं ते माता परि योषा जनित्री महः पितुर्दम आसिञ्चदग्रे ॥२॥

भा०—हे राजन् ! तू ( यत् ) जब भी ( जायथाः ) उत्पन्न हो, गुणों से सबके समक्ष प्रकट हो ( तत् अहः ) उस दिन सूर्य के समान तेजस्वी होकर ( अस्य अंशोः ) इस प्राप्त हुए राष्ट्र की ( कामे ) अभिलाषा के अनुसार इसके ( गिरिष्ठाम् ) वेद वाणी व व्यवस्था पुस्तक में विद्यमान् ( पीयूषम् ) हिंसक पुरुषों के नाश करने वाले ज्ञान और बल को ( अपिबः ) प्राप्त कर। और उसका पालन कर। ( तं ) उस बल को ( ते ) तेरी ( माता ) मान करने वाली, ( योषा ) तुझ से मिलकर रहने वाली ( जनित्री ) तुझ ।जैसे ऐश्वर्यवान् को उत्पन्न करने वाली पृथिवी या राष्ट्रशक्ति ( महः पितुः ) बड़े भारी अपने पालक राजा के ( दमे ) गृह के समान शरण में या राज्य के दमन कार्य में ( अग्रे ) सब से पहले ( आसिञ्चत् ) सेचन करे, उक्त बल को पुष्ट करे। सूर्य पक्ष में—सूर्य दिन के समय ( गिरिष्ठाम् ) मेघस्थ जल को पान करता है। मानो अन्न-उत्पादक माता पृथिवी अपने पालक सूर्य के शासन में रहकर पालक पति के अधीन रहकर स्त्री के समान ही प्रथम अपने उस जल को आसिञ्चन करती है। पृथिवी माता है तो सूर्य पिता है और पृथिवी का पालक होने से पति भी है। सूर्य से उत्पन्न और अनुप्राणित पृथिवी सूर्य की पुत्री के समान होकर भी स्त्री के समान है। इस प्रकार सूर्य 'प्रजापति' का अपनी दुहिता या पुत्री के भोग को बतलाने वाला

चमत्कारी वाक्य स्पष्ट होता है। इसी दृष्टि से कहा है। 'प्रजापति'—'प्रजा का पति' अपनी सन्तानवत् पालनीय प्रजा का ही पति, पालक इसी प्रकार राजा भी जहां पुत्रवत् प्रजा का पालक है वहां उसी का पतिवत् भोक्ता भी है।

उपस्थाय मातरमन्नमैट्ट तिग्ममपश्यदभि सोमसूधः।
प्रयावयन्नचरद्गृत्सो अन्यान्महानि चक्रे पुरुधप्रतीकः ॥ ३ ॥

भा०—पुत्र जिस प्रकार ( मातरम् उपस्थाय अन्नम् ऐट्ट ) माता को प्राप्त करके अपने खाद्य पदार्थ दुग्ध आदि को मांग लेता है और ( ऊधः अभि तिग्म सोमम् अभि अपश्यत् ) स्तन को प्राप्त कर उसमें से तीव्र वेग से प्रवाहि सोम या दुग्ध रस को देखता है, पाता है। उसी प्रकार ( गृत्सः ) ऐश्वर्य की आकांक्षा करने वाला राजा भी ( मातरम् ) माता, पृथिवी को ( उपस्थाय ) प्राप्त करके ( अन्नम् ऐट्ट ) अन्न या भोग्य ऐश्वर्य की याचना करे, राजा राष्ट्रवासिनी प्रजा से अपने निमित्त भोग्य कर आदि मांग ले। वह ( ऊधः अभि ) अन्तरिक्ष या मेघ के साथ ( तिग्मं सोमम् अभि अपश्यत् ) तीव्र वेग से प्राप्त होने वाले जल के समान अन्न को भी देखे अर्थात् संवत्सर की वृष्टि के अनुपात में ही प्रजा के बीच कृषि द्वारा उत्पन्न अन्नादि प्राप्ति की सम्भावना करे। वह ( गृत्सः ) ऐश्वर्य की कामना वाला होकर ( अन्यान् ) अपने से भिन्न प्रतिकूल शत्रुओं को ( प्र यवयन् ) अच्छी प्रकार दूर करता हुआ ( अचरत् ) विचरे और ( पुरुध-प्रतीकः ) बहुत सी प्रजाओं को धारण पोषण करने के सामर्थ्य से प्रसिद्धि पाकर ( महानि ) बड़े २ कार्य ( चक्रे ) करे।

उग्रस्तुराषाळभिभूत्योजा यथावशं तन्वं चक्र एषः।
त्वष्टारमिन्द्रो जनुषाभिभूयामुष्या सोममपिबच्चमूषु ॥ ४ ॥

भा०—( एषः ) वह राजा, सेनापति ( उग्रः ) भयंकर, ( तुराषाट् ) वेगवान् शत्रु वीरों का पराजय करने हारा ( अभिभूत्योजाः ) शत्रुओं को

पराजित करने वाले पराक्रम से युक्त (यथावशं) अपने वश करने के सामर्थ्य के अनुसार ही (तन्वं चक्रे) अपने शरीर और राष्ट्र को विस्तृत करे। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (जनुषा) जन्मसे ही—निसर्ग से ही (त्वष्टारम् अभिभूय) सूर्य को भी पराजित कर उससे भी बढ़कर तेजस्वी होकर (चमूषु) सेनाओं के बल पर (अमुष्य) दूरस्थ शत्रु पुरुष के भी (सोमम् अपिबत्) राष्ट्रैश्वर्य को उपभोग करता है।

**शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।**
**शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम्॥५॥१२॥**

भा०—व्याख्या देखो सू० ३३॥ मं० २२॥ इति द्वादशो वर्गः॥

## [ ४६ ]

विश्वामित्र ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ४ निचृत्त्रिष्टुप्। २, ५ त्रिष्टुप्। ३ भुरिक् पङ्क्तिः॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

**शंसा महामिन्द्रं यस्मिन्विश्वा आ कृष्टयः सोमपाः काममव्यन्।**
**यं सुक्रतुं धिषणे विभ्वतष्टं घनं वृत्राणां जनयन्त देवाः॥१॥**

भा०—हे विद्वन्! तू उस (महान् इन्द्रम्) महान् इन्द्र की (शंस) स्तुति कर (यस्मिन्) जिसके आश्रय में रहकर (विश्वाः) समस्त (सोमपाः) विद्वान् शिष्य ओषधि वनस्पति अन्न और ऐश्वर्य के रक्षक ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यादि जन और (कृष्टयः) कृषि करने वाले प्रजा जन (कामम् आ अव्यन्) कामना योग्य यथेष्ट सुख प्राप्त करते हैं। (यं) जिस (सुक्रतुं) उत्तम धर्म कर्म में कुशल (विभ्वतष्टं) परमेश्वर से उत्पादित या महान् सामर्थ्य से बने हुए बलवान् पुरुष को (धिषणे) नर नारी या आकाश भूमि के समान प्रजा-परिषत् और राज-परिषत् दोनों तथा (देवाः) विद्वान्, व्यवहारज्ञ और युद्ध विजयी लोग (वृत्राणां घनं) बढ़ते हुए बाधक शत्रुओं को नाश करने में समर्थ (जनयन्त) बनाते हैं।

यं नु नकिः पृतनासु स्वराजं द्विता तरति नृतमं हरिष्ठाम् ।
इनतमः सत्वभिर्यो ह शूषैः पृथुज्रया अमिनादायुर्दस्योः ॥ २ ॥

भा०—( द्विता ) स्व और पर दोनों पक्षों के ( पृतनासु ) संग्रामों व वीर सेनाओं के बीच ( स्वराजं ) स्वयं अपने सामर्थ्य से सूर्यवत् प्रकाशमान, स्वयं सबके चित्तों को रञ्जन करने वाले ( नृतमं ) सर्वश्रेष्ठ ( हरिष्ठाम् ) सब मनुष्यों और अश्व सेनाओं पर अधिष्ठाता रूप से स्थित, जिस पुरुषोत्तम को ( नकिः ) कोई भी न ( तरति ) लांघ सके ( यः ह ) और जो ( सत्वभिः ) बलवान् वीर पुरुषों और ( शूषैः ) बलों या सैन्यों से ( इनतमः ) सब से उत्तम स्वामी हो वह और ( पृथुज्रयाः ) बड़े वेग और शक्ति से सम्पन्न होकर ( दस्योः ) प्रजा के नाशक दुष्ट पुरुषों के ( आयुः अमिनात् ) जीवन का नाश करे ।

सहावा पृत्सु तरणिर्नार्वा व्यानशी रोदसी मेहनावान् ।
भगो न कारे हव्यो मतीनां पितेव चारुः सुहवो वयोधाः ॥ ३ ॥

भा०—वह राजा ( सहावा ) बलवान् ( पृत्सु ) स्पर्धायुक्त संग्रामों में मनुष्यों के बीच ( तरणिः ) सब से अधिक उन्नत, सूर्य के समान तेजस्वी वा ( अर्वा न ) अश्व के समान वेग से जाने हारा, ( रोदसी ) नर नारी दोनों के बीच (वि-आनशी) विशेष रूप से व्यापक, सबके हृदय में बसा, सर्वप्रिय, ( मेहनावान् ) उदारता से देने योग्य धनों से सम्पन्न ( कारे ) कार्य के अवसर पर ( भगः न ) ऐश्वर्यवान् के समान ( हव्यः ) स्तुति करने योग्य ( मतीनां) मननशील पुरुषों के बीच उनका ( पिता इव ) पिता के समान ( चारुः ) सर्वोत्तम, पालक, ( सुहवः ) उत्तम रीति से, मान आदर पूर्वक बुलाने योग्य और (वयोधाः) सब को जीवन, बल और ज्ञान का देने वाला हो ।

धर्ता दिवो रजसस्पृष्ट ऊर्ध्वो रथो न वायुर्वसुभिर्नियुत्वान् ।
क्षपां वस्ता जनिता सूर्यस्य विभक्ता भागं धिषणेव वाजम् ॥४॥

भा०—वह राजा ( दिवः ) तेजस्वी, व्यवहारवान् और कामनावान् ( रजसः ) सामन्य सभी लोगों का ( धर्त्ता ) धारण करने वाला ( पृष्टः ) सब से पूछने योग्य, सब का आज्ञापक, अनुमन्ता ( ऊर्ध्वः ) सब के ऊपर अधिष्ठित ( रथः न ) रथ के समान सब को सुरक्षित रूप में उद्देश्य तक पहुंचाने हारा, ( वायुः ) वायु के समान बलवान्, सबका प्राणवत् प्रिय, जीवनाधार, ( वसुभिः ) राष्ट्रवासी प्रजाजनों से ही ( नियुत्वान् ) नियुक्त सेनाओं का स्वामी, सूर्य के समान ही ( क्षपां वस्ता ) रात्रि के तुल्य राष्ट्र की नाशक शक्तियों को अपने तेज से आच्छादित करने वाला और (सूर्यस्य) सूर्य के तुल्य सर्वप्रेरक तेजस्वी व्यक्तित्व का ( जनिता ) उत्पादक ( धिषणा इव ) भूमि और सूर्य दोनों के समान ( भागं ) कर आदि और ( वाजं ) बल और अन्न आदि का ( विभक्ता ) विभाग करने वाला है।

**शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।**
**शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्॥५॥१३**

भा०—व्याख्या देखो सू०३२। मं० २२॥ इति त्रयोदशो वर्गः॥

## [ ५० ]

विश्वामित्र ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, २, ४ निचृत्त्रिष्टुप्। ३, ५ त्रिष्टुप्॥ धैवतः स्वरः॥

**इन्द्रः स्वाहा पिबतु यस्य सोम आगत्या तुम्रो वृषभो मरुत्वान्।**
**ओरुव्यचाः पृणतामेभिरन्नैरास्य हविस्तन्वः काममृध्याः॥१॥**

भा०—सूर्य जिस प्रकार वर्षणशील, वायुओं सहित, किरणों से व्यापक होकर उत्तम रीति से जल को प्राप्त करता और मेघरूप से बरस कर अन्नों से सब को पूर्ण तृप्त करता और अन्न शरीर की अभिलाषा को पूर्ण करता है उसी प्रकार ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता पुरुष ( यस्य )

जिसके अधीन (सोमः) समस्त राष्ट्र का ऐश्वर्य और शासन विद्यमान है वह (तुम्रः) सब प्रकार से विपक्षी को मारने में समर्थ, (वृषभः) बलवान्, (मरुत्वान्) मर्दों अर्थात् मरने मारने वाले वीर पुरुषों का स्वामी होकर भी (स्वाहा) उत्तम, सत्य न्याय क्रिया के अनुकूल एवं शुभ आदरणीय रूप से प्रजा के दिये में से (पिबतु) उस ऐश्वर्य का उपभोग करे। वह (उरुव्यचाः) बहुत अधिक गुणवान्, शक्तिमान् और अधिकारवान् होकर भी (एभिः) इन नाना प्रकार के (अन्नैः) खाद्य पदार्थों से (आपृणताम्) अपने राष्ट्र को पूर्ण करे। और (हविः) उत्तम अन्न ही (अस्य) उस पुरुष के निजी (तन्वः) शरीर की (कामम्) सब प्रकार की अभिलाषा को भी (ऋध्याः) समृद्ध, पूर्ण करे। बड़े धनी मानी क्षत्रिय बलवानों को भी अन्नों से ही अपने देह पुष्ट करने चाहियें, निर्बल जीवों के मांसों से नहीं, यही वेद का आदेश है

आ ते॑ सप॒र्यू ज॒वसे॑ युनज्मि॒ ययो॒रनु॑ प्र॒दिवः॑ श्रु॒ष्टिमावः॑।
इ॒ह त्वा॑ धेयु॒र्हर॑यः सुशिप्र॒ पिबा॒ त्व१॒॑स्य सुषु॑तस्य॒ चारोः॑ ॥२॥

भा०—हे राजन् (सपर्यू जवसे) जिस प्रकार रथ को वेग से चलाने के लिये उसमें दो वेगवान् अश्वों को लगाया जाता है उसी प्रकार (जवसे) वेग से कार्य करने के लिये मैं विद्वान् पुरुष (ते) तेरे अधीन (सपर्यू) दो उत्तम सेवकों को या सभी स्त्री पुरुषों को सेवक रूप से (आ युनज्मि) सब प्रकार से नियुक्त करता हूं। (ययोः अनु) जिनके अनुकूल रहकर तू (प्रदिवः) उत्तम ज्ञान प्रकाशों, उत्तम कामनाओं, अभिलाषों तथा उत्तम लोकों को और (श्रुष्टिम्) रथ के समान शीघ्र गति को भी (आ अवः) प्राप्त कर। हे (सुशिप्र) उत्तम मुख युक्त सौम्य पुरुष! (हरयः) उत्तम विद्वान् पुरुष और वीर अश्वसैन्य के बल ही (त्वा) तुझे (इह) इस उत्तम पद या राष्ट्र पर (धेयुः) स्थापित और पुष्ट करें। और (अस्य) (चारोः) सुन्दर उपभोग योग्य

( सु-सुतस्य ) उत्तम रीति से शासित, राष्ट्र का उत्तम सुसंस्कृत अन्न के समान ( पिबतु ) अवश्य पालन और उपभोग कर।

**गोभिर्मिमिक्षुं दधिरे सुपारमिन्द्रं ज्यैष्ठ्याय धायसे गृणानाः।**
**मन्दानः सोमं पपिवाँ ऋजीषिन्त्समस्मभ्यं पुरुधा गा इषण्य ॥३॥**

भा०—( गृणानाः ) उत्तम स्तुतिकर्त्ता, विद्वान् उपदेष्टा लोग (मिमिक्षुं ) मेघ के तुल्य जलवत् सुखों की वृष्टि करने वाले, ( सुपारं ) उत्तम पालक और पूरक स्वयं तृप्त करने वाले (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् पुरुष का ही (गोभिः) उत्तम वाणियों से, उत्तम रश्मियों से और उत्तम भूमियों द्वारा (धायसे) समस्त राष्ट्रवासी प्रजाजन को धारण पोषण करने के लिये ही ( ज्यैष्ठ्याय दधिरे ) सबसे बड़े और श्रेष्ठ पद के निमित्त स्थापित करते हैं, उसको प्रधान पद प्रदान करते हैं ( ऋजीषिन् ) ऋजु, सरल, सत्यमय न्याय-मार्ग पर प्रजागण को ले चलने वाले वा 'ऋजीष' अर्थात् ऋजु मार्ग के प्रेरक विद्वानों के स्वामिन्! तू ( सोमं पपिवान् ) जलपानकर्त्ता सूर्य के तुल्य ही सोम ऐश्वर्य का उपभोक्ता होकर ( मन्दानः ) खूब तृप्त प्रसन्न होकर ( अस्मभ्यं ) हमारे लाभ के लिये (पुरुधा) बहुत प्रकार से ( गाः ) उत्तम वाणियों, भूमियों और गौ आदि पशुओं तथा अधीनस्थ शासक रूप बागडोरों को भी किरणों को सूर्य के समान ( सम् इषण्य ) अच्छी प्रकार प्रदान कर, प्रेरित कर, सन्मार्ग पर भली प्रकार चला।

**इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च।**
**स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन् ॥४॥**

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! तू ( इमं कामं ) अपने इस उत्तम अभिलाप को (गोभिः) उत्तम वाणियों, गवादि पशुओं, किरणवत् शासकों से, ( अश्वैः ) अश्वों, अश्वसैन्यों से, ( चन्द्रवता राधसा ) सुवर्णादि धन से समृद्ध ऐश्वर्य से ( पप्रथः ) अपने को और बढ़ा, ख्याति लाभ कर,

और स्वयं तथा अन्यों को भी ( मन्दय ) प्रसन्न कर। ( स्वर्यवः ) सुख की कामना करने वाले ( वाहः ) कार्यभार के धारण करने वाले ( कुशिकासः ) कुशल ( विप्राः ) मेधावी, विद्वान् पुरुष ( मतिभिः ) उत्तम बुद्धियों से ( तुभ्यं इमं कामम् अक्रन् ) तेरी इस उत्तम अभिलाषा को सुसम्पादित करें।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ५।१४

भा०—व्याख्या देखो सू० ३२। मं० २२॥ इति चतुर्दशो वर्गः॥

[ ५१ ]

विश्वामित्र ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—४, ७—९ त्रिष्टुप्। ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप्। १—३ निचृज्जगती। १०, ११ यवमध्या गायत्री। १२ विराडगायत्री॥ द्वादशर्चं सूक्तम्॥

चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्य१मिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत ।
वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे ॥ १ ॥

भा०—( बृहतीः गिरः ) बड़ी बड़ी, बड़े ज्ञानों का प्रतिपादन करने वाली, ज्ञानवर्धक वाणियां, वेदमय वाणियां भी ( चर्षणीधृतम् ) सब मनुष्यों को धारण करने वाले ( मघवानम् ) ऐश्वर्यवान् ( इन्द्रं ) शत्रुहन्ता ( उक्थ्यम् ) स्तुतियोग्य ( दिवे दिवे ) दिन प्रतिदिन ( सुवृक्तिभिः ) कुमार्ग से वर्जन करने वाले उत्तम वाक्यों और ऐश्वर्यों के उत्तम न्यायानुसार विभागों से प्रजा को ( वावृधानं ) बढ़ाने वाले, ( पुरुहूतं ) बहुतों से पुकारने योग्य, ( अमर्त्यम् ) साधारण मनुष्यों से विशेष ( जरमाणं ) स्तुति योग्य वा अन्यों को सन्मार्ग के उपदेश करने वाले पुरुष

वा परमात्मा की ( अभि अनूषत ) स्तुति करती हैं, उसके ही गुणों का वर्णन करती हैं।

**शतक्रतुमर्णवं शाकिनं नरं गिरो म इन्द्रमुप यन्ति विश्वतः।**
**वाजसनिं पूर्भिदं तूर्णिमप्तुरं धामसाचमभिषाचं स्वर्विदम् ॥२॥**

भा०—( मे गिरः ) मेरी वाणियां, स्तुतियां ( शतक्रतुम् ) सैकड़ों, अपरिमित प्रज्ञाओं और उत्तम कर्मों वाले ( अर्णवम् ) समुद्र के समान गम्भीर ( शाकिनम् ) शक्तिमान् ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्यवान्, ( वाजसनिम् ) ऐश्वर्य, ज्ञान, संग्राम, आदि के दाता, और संविभाग करने वाले, ( पूर्भिदं ) देहों और शत्रु के गढ़ों के तोड़ने वाले ( तूर्णिम् ) शीघ्र वेग से जाने वाले ( अप्तुरं ) प्राणों, आप्तजनों, जलों को सूर्य या विद्युत् के समान प्रेरित करने वाले ( धामसाचम् ) तेज को धारण करने वाले, ( अभिषाचं ) साक्षात् प्राप्त होने वाले, ( स्वर्विदम् ) सबको सुख पहुंचाने वाले वा सूर्यवत् तेज, प्रताप और प्रकाश के प्राप्त कराने वाले ( नरं ) तेजस्वी पुरुष, परमात्मा वा नायक को ( विश्वतः ) सब प्रकार से ( उप यन्ति ) प्राप्त होती हैं। वे उसी का वर्णन करती हैं, उसी की स्तुति करती हैं।

**आकरे वसोर्जरिता पनस्यतेऽनेहसः स्तुभ इन्द्रो दुवस्यति।**
**विवस्वतः सदन आ हि पिप्रिये सत्रासाहमभिमातिहनं स्तुहि ॥३॥**

भा०—जो ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् होकर ( जरिता ) अन्यों को उत्तम २ उपदेशों को देता और ( वसोः आकरे ) धन के समूह के आश्रय में ( पनस्यते ) व्यापार व्यवहार करता है, और जो ( अनेहसः ) पापों से रहित ( स्तुभः ) स्तुति करने योग्य विद्वानों की ( दुवस्यति ) सेवा करता है और जो ( विवस्वतः सदने ) सूर्य के समान तेजस्वी, एवं विविध और विशेष धनैश्वर्य से सम्पन्न राजा के गृह या स्थान, पद पर

स्थित होकर (आ पिप्रिये हि) स्वयं प्रसन्न होता और अन्यों को भी प्रसन्न रखता है हे विद्वान् पुरुष तू उसी ( सत्रा-साहम् ) सत्य के बल पर शत्रुओं का विजय करने वाले और ( अभिमाति-हनम् ) अभिमान करने वाले दुष्टों को दण्ड देने वाले राजा या वीर पुरुष के ( स्तुहि ) गुणों की स्तुति कर। ( २ ) विद्वान् आचार्य के पक्ष में—वसु, अन्तेवासी और बसे गृहस्थ जन के समूह या घर में वह ( पनस्यते ) उपदेश करता, निष्पाप ( स्तुभः ) वेदमन्त्रों को उच्चारण करता, सूर्य के पद पर विराज कर सबको तृप्त, ज्ञानपूर्ण करता है, सत्यबलयुक्त वह अभिमानादि भीतरी दुर्व्यसनों को नाश करता है, वह स्तुत्य है।

**नृणामु त्वा नृतमं गीर्भिरुक्थैरभि प्र वीरमर्चता सबाधः।**
**सं सहसे पुरुमायो जिहीते नमो अस्य प्रदिव एक ईशे ॥ ४ ॥**

भा०—हे राजन्! ( नृणाम् ) नायक वीर पुरुषों के बीच (नृतमं) सबसे श्रेष्ठ नायक व पुरुषोत्तम ( त्वा ) तुझ ( वीरम् ) वीर को ( सबाधः ) शत्रुओं और विघ्नों की बाधा करने वाले विद्वान् लोग भी ( उक्थैः ) उत्तम २ वचनों और ( गीर्भिः ) उत्तम वाणियों से ( अभि प्र अर्चत ) सब प्रकार स्तुति करें। वह राजा बलवान् नायकोत्तम ( पुरुमायः ) बहुतसी प्रज्ञाओं से सम्पन्न होकर ( सहसे ) अपने बल की वृद्धि के लिये ( नमः संजिहीते ) अन्न और शत्रु को नमाने के उत्तम साधन वज्र, खड्ग अस्त्रादि बल को ( संजिहीते ) अच्छी प्रकार प्राप्त करे। और वह ( प्रदिवः ) उत्तम प्रकाश से युक्त ज्ञान व उत्तम कामना से युक्त ( अस्य ) इस राष्ट्र का ( एकः ) एकमात्र सर्वोपरि ( ईशे ) स्वामी है। ( २ ) परमेश्वर को विद्वान् वाणियों और वेद वचनों से स्तुति करें, वह बहुप्रज्ञायुक्त अपने बल से सबके नमस्कारों को प्राप्त होता और ( प्रदिवः एकः ईशे ) पुरातन अनादि प्रवाह से चले आये इस जगत् का एक अद्वितीय ईश्वर है।

पूर्वीरस्य निष्षिधो मर्त्येषु पुरू वसूनि पृथिवी बिभर्ति ।
इन्द्राय द्याव ओषधीरुतापो रयिं रक्षन्ति जीरयो वनानि ५।१५

भा०—( अस्य ) इस प्रसिद्ध राजा के ( पूर्वीः ) सनातन से चली आई वेदादि शास्त्रों से प्रतिपादित ( निष्षिधः ) निषेध-आज्ञाएं, अनुशासन और कार्य को साधन करने वाली सेनाएं और चेष्टाएं ( मर्त्येषु ) मनुष्यों के बीच प्रवृत्त हों ( पृथिवी ) पृथिवी उसके ही लिये ( वसूनि पुरु ) बहुत से ऐश्वर्यों को (बिभर्त्ति) धारण करती है। और ( इन्द्राय ) उस ऐश्वर्यवान् के लिये ही ( द्यावः ) सब भूमियें, सब प्रकाशमान पदार्थ, ( ओषधीः ) ओषधियें ( उत आपः ) और नदियें समुद्र आदि ( जीरयः ) जीर्ण हो जाने वाले मनुष्य और ( वनानि ) वन, प्रान्त भी ( पुरु वसूनि रक्षन्ति ) बहुत से ऐश्वर्यों को रखते हैं। अथवा जिस प्रकार पृथिवी, सूर्य, ओषधियां, जल या प्राण गण, मनुष्य वनादि रक्षा करते और ऐश्वर्य रखते हैं उसी प्रकार वह राजा भी ऐश्वर्य धारण करे और सबकी रक्षा करे। ( २ ) परमेश्वर की सनातन वेद-आज्ञाएं मनुष्यों में प्रचलित हैं। पृथिवी, सूर्य, ओषधि, जल, मनुष्य वनादि उसी के ऐश्वर्य को धारते हैं। उसकी ही शक्ति से वे सबको पालते, रक्षा करते हैं। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

तुभ्यं ब्रह्माणि गिर इन्द्र तुभ्यं सत्रा दधिरे हरिवो जुषस्व ।
बोध्या३पिरवसो नूतनस्य सखे वसो जरितृभ्यो वयोधाः॥६॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! हे ( हरिवः ) मनुष्यों और अश्वादि सैन्यों के स्वामिन् ! ( तुभ्यम् ) तेरे ही लिये ( गिरः ) उत्तम ज्ञान-वाणियां, स्तुति-वाणियां और तेरे ही लिये ( ब्रह्माणि ) उत्तम वर्धनशील धनैश्वर्य ( सत्रा दधिरे ) सत्य ही से तुझे धारण करते हैं वा तेरे निमित्त इनको अन्य जन धारण करते हैं। तू उनको ( जुषस्व ) प्रेमपूर्वक सेवन कर। तू ही ( नूतनस्य ) नये से नये, सर्वोत्तम ( अवसः ) ज्ञान, अन्न, रक्षादि उपाय का ( बोधि ) ज्ञान

कर और हे ( वसो ) सबको सुख शान्ति से बसाने वाले ! हे ( सखे ) सबके मित्र ! तू ही ( जरितृभ्यः ) विद्वान् पुरुषों का ( आपिः ) आप्त बन्धु होकर उनको ( वयः धाः ) दीर्घ जीवन अन्न और बल का प्रदान कर । ( २ ) परमेश्वर की ही सब स्तुतियां वेद वाणियां वर्णन करती हैं । वह सबका बन्धु, सर्वत्र बसने वाला, सबको ज्ञान, जीवन और बल देता है ।

इन्द्र॑ मरुत्व इ॒ह पा॑हि॒ सोमं॒ यथा॑ शार्या॒ते अपि॑बः सु॒तस्य॑ ।
तव॒ प्रणी॑ती॒ तव॑ शूर॒ शर्म॒न्ना वि॑वासन्ति क॒वयः॑ सुय॒ज्ञाः ॥ ७ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! हे ( मरुत्वः ) वीर बलवान् पुरुषों के स्वामिन् ! तू ( इह ) इस राष्ट्र में ( सोमं ) ऐश्वर्य और ऐश्वर्य के उत्पादक प्रजा को ( पाहि ) पालना कर । ( यथा ) जिससे ( शार्याते ) शरों, शत्रुहिंसक शस्त्रों के द्वारा प्रयाण करने योग्य संग्राम आदि के अवसर पर भी ( सुतस्य ) इस ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र का स्व पुत्रादिवत् ( अपिबः ) पालन कर सके । और उत्पन्न ऐश्वर्य का उपभोग कर सके । हे ( शूर ) शूर ( तव ) तेरे ( प्रणीती ) उत्तम न्याय से और ( तव शर्मन् ) तेरे सुखकारक शरण में रहते हुए ( सुयज्ञाः ) उत्तम पूजा सत्कार योग्य और ज्ञान-दानशील ( कवयः ) क्रान्तदर्शी विद्वान् लोग ( आ विवासन्ति ) तेरी सेवा सुश्रूषा करें वा सब देशों से आकर बसें ।

स वा॑वशा॒न इ॒ह पा॑हि॒ सोमं॑ म॒रुद्भि॑रिन्द्र॒ सखि॑भिः सु॒तं नः॑ ।
जा॒तं यत्त्वा॒ परि॑ दे॒वा अभू॑षन्म॒हे भरा॑य पुरुहूत॒ विश्वे॑ ॥ ८ ॥

भा०—( यत् ) जिस कारण से ( विश्वे देवाः ) समस्त विद्वान् और विजय की कामना वाले वीरगण ( जातं त्वां ) सब गुणों से प्रसिद्ध तुझको ( महे भराय ) बड़े भारी संग्राम के लिये ( परि अभूषन् ) सुशोभित करते और ( त्वा परि अभूषन् ) तेरे ही इर्द गिर्द रह कर तेरा साथ

देते हैं हे ( पुरुहूत ) बहुतों से आदरपूर्वक पुकारने योग्य ! ( सः ) वह तू इस कारण से हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! तू ( वावशानः ) राज्यैश्वर्य और प्रजा की कामना करता हुआ ( सखिभिः ) अपने मित्र ( मरुद्भिः ) वीर बलवान् पुरुषों सहित सूर्य के समान तेजस्वी होकर ( नः ) हमारे ( सुतम् ) इस दिये हुए उत्पन्न या अभिषेक द्वारा प्रदत्त ( सोमम् ) राज्यैश्वर्य को (इह) यहां ही रहकर (पाहि) पालन कर और उपभोग कर।

अप्तूर्ये मरुत आपिरेषोऽमन्दन्निन्द्रमनु दातिवाराः ।
तेभिः साकं पिबतु वृत्रखादः सुतं सोमं दाशुषः स्वे सधस्थे ॥९॥

भा०—हे ( मरुतः ) मनुष्यो ! हे बलवान् पुरुषो ! ( अप्तूर्ये ) उत्तम कर्मों में प्रेरित करने और प्राप्त प्रजाओं के शासन कार्य में (एषः) यह राजा ही ( आपिः ) सब ओर से पालक, बन्धु के समान है। आप लोग ( दातिवाराः ) दान देने योग्य वेतनादि को प्रसन्नता से वरण या स्वीकार करने वाले, वा शत्रु के खण्डन छेदनादि का कार्य स्वीकार करने हारे, शत्रुओं की हिंसा का वारण करने वाले होकर ( इन्द्रम् अनु अमन्दन् ) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता नायक का अनुगमन करके स्वयं हर्षित होओ। वह ( वृत्रखादः ) मेघ को स्थिर करने वाले सूर्य के समान ही बढ़ते शत्रु को अपने बाधक बल से खड़ा कर देने या आगे न बढ़ने देने वाला या उसको खा जाने, नाश कर देने हारा यह वीर नायक ( तेभिः साकम् ) उन उक्त वीर पुरुषों सहित ( स्वे सधस्थे ) अपने ही एकत्र रहने के स्थान राष्ट्र, नगर भवनादि में स्थित होकर ( दाशुषः ) ऐश्वर्य देने वाले प्रजा-जन के ( सुतम् सोमम् ) उत्पन्न, प्राप्त ऐश्वर्य को ( पिबतु ) भोग करे और पालन करे।

इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते ।
पिबा त्व१स्य गिर्वणः ॥ १० ॥

भा०—हे ( गिर्वणः ) उत्तम वाणियों द्वारा याचना, प्रार्थना और

स्तुति करने योग्य ! हे ( राधानां पते ) धनों के स्वामिन् ! तू ( अस्य ) इस राष्ट्र के ( इदं ) इस ( सुतं ) उत्पन्न ऐश्वर्य और प्रजाजन को ( ओजसा ) अपने बल पराक्रम से ( पिब तु ) ओषधि रस के समान उपभोग कर या पुत्र के समान अवश्य पालन किया कर ।

यस्ते अनु स्वधामसत्सुते नि यच्छ तन्वम् ।
स त्वा ममत्तु सोम्यम् ॥ ११ ॥

भा०—( यः ) जो पुरुष ( ते ) तेरे ( सुते ) अभिषेक हो जाने पर, इस शासित राष्ट्र में ( स्वधाम् अनु असत् ) अन्न आदि स्वशरीर-पोषक वेतनादि प्राप्त करके रहे ( सः ) वह ( त्वा ) तुझको ( ममत्तु ) सुखी और हर्षित करे, तेरे विपरीत न रहे । तू अपने ( तन्वं ) शरीर और विस्तृत राष्ट्र को भी ( नि यच्छ ) नियम में रख, जितेन्द्रिय होकर रह और ( सोम्यम् आचर ) सोम, राष्ट्र के हितकारी कार्य कर अथवा ( त्वा सोम्यम् ममत्तु ) तुझ ऐश्वर्य योग्य स्वामी पुरुष को हर्षित करे । ( २ ) ओषधिरस भी ऐसा पान करे जो अन्न के अनुकूल रहे, मनुष्य को औषध लेते समय शरीर पर वश रखना चाहिये; कुपथ्य और बेपरवाही से बचना चाहिये ।

प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः ।
प्र बाहू शूर राधसे ॥ १२ ॥ १६ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! वह सोम, ऐश्वर्य, और बल, शरीर में वीर्य के समान और बलकारी ओषधि रस के समान ( ते ) तेरे ( कुक्ष्योः ) दोनों कोखों में, अंगल बगल, ( प्र अश्नोतु ) खूब व्यापे, बढ़े । ( ब्रह्मणा ) धनैश्वर्य से वा ब्रह्म, वेदज्ञान बड़े बल से ( शिरः ) शिरस्थान सर्वोच्चपद को भी ( प्र अश्नोतु ) प्राप्त करे, हे ( शूर ) शूरवीर ! वह ऐश्वर्य ( राधसे ) धन की वृद्धि और शत्रु की साधना या वशीकरण के लिये वह ऐश्वर्य वा राष्ट्र ( बाहू ) शत्रुओं को बाधित या पीड़ित करने

वाले बाहुओं के समान सैन्यों को (प्र अश्नोतु) अच्छी प्रकार प्राप्त हो। अर्थात् राष्ट्र का धन कुक्षि रूप वैश्यों, शिर रूप ब्राह्मणों और बाहू रूप क्षत्रियों को प्राप्त हो, इनकी वृद्धि के लिये उपयोग किया जावे। इति षोडशो वर्गः॥

## [ ५२ ]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ गायत्री । २ निचृद्-गायत्री । ६ जगती । ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् ।
इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥ १ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुविनाशक राजन् ! तू ( नः ) हमारे बीच में से ( धानावन्तं ) रक्षण पालन करने की शक्ति वाले वा अन्न, धनादि ऐश्वर्य वाले, ( करम्भिणम् ) पुरुषार्थों से युक्त, कर्मण्य ( अपूपवन्तं ) उत्तम त्यागी और उपासक जितेन्द्रिय, इन्द्रियों के सामर्थ्य से युक्त और ( उक्थिनम् ) उत्तम प्रवचन योग्य वेदशास्त्र के वेत्ता पुरुष को प्रातः काल ही ( जुषस्व ) सेवन कर। अन्नादि के स्वामी, वैश्य का अर्थात् बाहू से या कर टैक्सादि से पुष्ट होने वाला क्षत्रिय, अपूप अर्थात् इन्द्रिय या "अप-उप" अप-बुरे व्यवहारों का त्याग "उप" उपासना आदि से युक्त त्यागी भक्तिमान् वेदज्ञ विद्वान् इन का सब से पूर्व आदर सत्कार करना चाहिये।

पुरोळाशं पचत्यं जुषस्वेन्द्रा गुरस्व च ।
तुभ्यं हव्यानि सिस्रते ॥ २ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! हे विद्वन् ! ( पुरोडाशं ) तू आदर-पूर्वक सत्कार, मान पूजा से दिये गये ( पचत्यं ) पचने में उत्तम, सुपच अन्न का ( जुषस्व ) सेवन किया कर। और ( आ गुरस्व च ) उद्यम किया कर, उत्तम अन्न खा और शरीर से व्यायाम किया कर। ( तुभ्यं ) तेरे ही

लिये ये सब ( हव्यानि ) खाने योग्य उत्तम पदार्थ ( सिस्रते ) उत्पन्न होते हैं। उद्यमी और मान आदरपूर्वक उत्तम खाद्य खाने वाले के लिये ही सब उत्तम अन्न हैं। अखाद्यभक्षी और आलसी को वे नसीव नहीं होते।

पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः।
वधूयुरिव योषणाम् ॥ ३ ॥

भा०—( वधूयुः ) वधू अर्थात् स्त्री का कामना करने वाला, स्त्री का स्वामी ( इव ) जिस प्रकार ( पुरोडाशं योषणाम् घसत् जोषयाते च ) आदरपूर्वक दान की गई, स्त्री का ही उपभोग करता और उसको प्रेमपूर्वक स्वीकार करता है, उसी प्रकार हे ऐश्वर्यवन्! राजन्! तू ( नः ) हमारे ( पुरोडाशम् ) आदरपूर्वक दिये अन्नादि ऐश्वर्य को ( घसः ) अन्नवत् उपभोग कर और ( नः ) हमें और हमारी ( गिरः च ) वाणियों को ( जोषयासे ) प्रेमपूर्वक स्वीकार कर। राजा की प्रजा ही, पति की पत्नी के समान है यह बात मन्त्र से लक्षित है।

पुरोळाशं सनश्रुत प्रातः सावे जुषस्व नः।
इन्द्र क्रतुर्हि ते बृहन् ॥ ४ ॥

भा०—हे ( सनश्रुत ) 'सन' अर्थात् सत्यासत्य के विवेक करने वाले पुरुषों से शास्त्र-ज्ञान के श्रवण करने वाले व सत्यासत्य विवेचक ज्ञान का श्रवण करने वाले ( इन्द्र ) हे ऐश्वर्यवन्! तू ( प्रातः-सावे ) प्रातः सवन-काल में अर्थात् अपने शासन के प्रारम्भ-काल में ( नः ) हमारे ( पुरोडाशम् ) आदर पूर्वक दिये ऐश्वर्य को ( जुषस्व ) प्रेम पूर्वक स्वीकार कर। ( ते ) तेरा ( क्रतुः ) प्रजा बल और कर्म सामर्थ्य ( बृहन् ) बहुत बड़ा है।

माध्यन्दिनस्य सवनस्य धानाः पुरोळाशमिन्द्र कृष्वेह चारुम्।
प्र यत्स्तोता जरिता तूर्ण्यर्थो वृषायमाण उप गीर्भिरीट्टे ॥५।१७॥

भा०—( यत् ) जब ( स्तोता ) उत्तम विद्वान् ( जरिता ) उपदेष्टा ( तूर्ण्यर्थः ) शीघ्र ही अपने अभिप्राय को प्रकट करनेहारा होकर ( वृषायमाणः ) बलवान् पुरुष के समान वा वर्षणशील मेघ के समान ज्ञान प्रदान करता हुआ ( गीर्भिः ) उत्तम वेदवाणियों द्वारा ( उप ईट्टे ) सब को उपदेश करे तब तू भी हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! ( माध्यन्दिनस्य ) दिन के मध्यकाल के समान प्रखर, तीक्ष्ण तेज से युक्त समय पर होने वाले ( सवनस्य ) शासन और ऐश्वर्य को ( धानाः ) धारण और पोषण करनेवाली प्रजाओं और अधीन धारित पोषित सेनाओं को और ( पुरोडाशम् ) आगे दान मानपूर्वक दिये गये अन्न या राष्ट्र-भाग को ( इह ) इस राष्ट्र में ( चारुम् ) उत्तम ( कृण्व ) कर। इति सप्तदशो वर्गः ॥

**तृतीये धानाः सवने पुरुष्टुत पुरोळाशमाहुतं मामहस्व नः।**
**ऋभुमन्तं वाजवन्तं त्वा कवे प्रयस्वन्त उप शिक्षेम धीतिभिः।६**

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! हे नायक ! तू ( तृतीये ) तीसरे सर्वोत्तम ( सवने ) शासन में हे ( पुरुष्टुत ) बहुतों से प्रशंसा करने योग्य ! सायंकाल में अग्नि जिस प्रकार दिये पुरोडाश को स्वीकार करता है उसी प्रकार ( नः ) हमारे ( आहुतिम् ) आदर पूर्वक दिये गये ( पुरोडाशम् ) अन्न आदि को ( मामहस्व ) आदर पूर्वक स्वीकार कर। और ( धानाः ) धारण करने योग्य प्रजाओं को भी अपना। हे (कवे) विद्वान् दीर्घदर्शिन् ! हम लोग ( प्रयस्वन्तः ) उत्तम अन्नवान् होकर वा प्रयत्नशील होकर ( ऋभुमन्तम् ) सत्य ज्ञान और सामर्थ्य से प्रकाशित होने वाले शिष्यों और सहयोगियों के स्वामी, ( वाजवन्तं ) ज्ञानवान् तुझको ( उप ) प्राप्त होकर हम ( धीतिभिः ) उत्तम स्तुतियों से ( शिक्षेम ) ज्ञानैश्वर्य की याचना करें। ( ४–६ ) तीनों मन्त्रों में तीन सवन जीवन के तीन काल हैं। ब्रह्मचर्यकाल, यौवनकाल और वार्धक्यकाल। तीन आश्रम ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ इनमें क्रतु अर्थात् प्रज्ञा को बढ़ावे।

इनमें वृष वीर्य सेक्ता होकर अर्थ सम्पादन कर विद्वानों से संग करे, तीसरे में प्राणवान्, ज्ञानवान् होकर अन्यों का शिक्षा दे।

**पूषण्वते ते चकृमा करम्भं हरिवते हर्यश्वाय धानाः।**
**अपूपमद्धि सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ॥ ७ ॥**

भा०—हे (शूर) वीर पुरुष! (पूषण्वते) सब को पुष्ट करने वाली पृथ्वी के स्वामी रूप तेरे लिये हम (करम्भम् चकृम) कर्म सामर्थ्य से युक्त क्षात्रबल का सम्पादन करें। (हरिवते) भूमि निवासी प्रजा, मनुष्यों के स्वामी और (हर्यश्वाय) आशुगामी रथादि और अश्वादि के स्वामी तेरे लिये (धानाः चकृम) राष्ट्र को धारण करने योग्य सेनाओं और ऐश्वर्य युक्त प्रजाओं को भी सुसम्पादित करें। हे शूर! तू (विद्वान्) विद्वान् और (वृत्रहा) विघ्न नाशक शत्रुहन्ता होकर (सगणः) गणों सहित और (मरुद्भिः सह) विद्वानों, वीरों से युक्त होकर (अपूपं) मालपुए के समान समृद्ध वा स्नेहयुक्त वा ऐश्वर्य युक्त (सोमं) राष्ट्र का (पिब) उपभोग कर।

**प्रति धाना भरत तूयमस्मै पुरोळाशं वीरतमाय नृणाम्।**
**दिवेदिवे सदृशीरिन्द्र तुभ्यं वर्धन्तु त्वा सोमपेयाय धृष्णो ॥ ८ ॥ १८ ॥**

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! हे प्रजाजनो! आप लोग (अस्मै नृणां वीरतमाय) सब नायकों में से सबसे श्रेष्ठ इस वीर पुरुष के लिये (धानाः) अन्नों के समान ही परिपोषक शक्तियों, सेनाओं और प्रजाओं को (तूयम्) शीघ्र ही (प्रति भरत) प्रतिदिन प्राप्त कराओ। हे (धृष्णो) धर्षणशील, शत्रुओं का पराजय करने हारे! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! (दिवे दिवे) दिनों दिन (सदृशीः) रूप गुणों में समान पत्नियां जिस प्रकार पतियों की वृद्धि करती हैं उसी प्रकार बलैश्वर्य में समान, तेरे अनुरूप प्रजाएं और सेनाएं भी (सोमपेयाय) ऐश्वर्य-

वान् राष्ट्र के पालक और उपभोगकर्त्ता ( तुभ्यम् ) तुझको प्राप्त हों और तुझे सन्तानादि से पत्नी के समान ही (वर्धन्तु) बढ़ावें । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

## [ ५३ ]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ १ इन्द्रापर्वतौ । २—१४, २१—२४ इन्द्रः । १५, १६ वाक् । १७—२० रथाङ्गानि देवताः ॥ छन्दः—१, ५, ९, २१ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ६, ७, १४, १७, १९, २३, २४ त्रिष्टुप् । ३, ४, ८, १५ स्वराट् त्रिष्टुप् । ११ भुरिक् त्रिष्टुप् । १२, २२ अनुष्टुप् । २० भुरिगनुष्टुप् । १०, १६ निचृज्जगती । १३ निचृद्गायत्री । १८ निचृद्बृहती ॥ चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम् ।

इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आ वहतं सुवीराः ।
वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिळया मदन्ता ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार ( इन्द्रा पर्वता बृहता रथेन वामीः सुवीराः इषः-आवहतः ) इन्द्र, सूर्य या विद्युत् और पर्वत सर्व पालक मेघ दोनों रथ अर्थात् वेगवान् जल-धारा से उत्तम वृष्टियों वा अन्नादि को प्राप्त कराते हैं इसी प्रकार हे ( इन्द्र-पर्वता ) इन्द्र ऐश्वर्यवन् शत्रुहन्तः और हे पर्वत ! पर्व २, पोरु २ से बने सैन्य वर्ग के स्वामिन् ! तुम दोनों ( बृहता ) बड़े भारी ( रथेन ) वेग से जाने वाले रथसैन्य से ( वामीः ) अति सुन्दर ( सुवीराः ) उत्तम वीरों से बनी ( इषः ) अन्नादि समृद्धियों और सेनाओं को ( आवहतम् ) धारण करो । आप दोनों ( अध्वरेषु ) हिंसा आदि से रहित परस्पर प्रतिपालन आदि कार्यों में ( हव्यानि ) उत्तम २ अन्नादि पदार्थों का ( वीतम् ) उपभोग करो और ( इडया ) अन्न एवं सुन्दर वाणी से ( मदन्तौ ) परस्पर हर्ष अनुभव करते हुए ( गीर्भिः ) उत्तम वाणियों से ( वर्धेथाम् ) बढ़ो ।

तिष्ठा सु कं मघवन्मा परा गाः सोमस्य नु त्वा सुषुतस्य यक्षि ।
पितुर्न पुत्रः सिचमा रभे त इन्द्र स्वादिष्ठया गिरा शचीवः ॥२॥

भा०—हे ( मघवन् ) ऐश्वर्यवन् ! धनों के स्वामिन् ! तू ( कं ) सुख पूर्वक और ( सु ) आदर से ( तिष्ठ ) स्थिर होकर खड़ा रह । ( मा परागाः ) दूर मत जा, ( त्वा नु ) तुझे मैं ( सुषुतस्य सोमस्य ) उत्तम रीति से उत्पादित, पुत्रवत् प्रिय, सोम अर्थात् ओषधि रस के समान उत्साहवर्धक ऐश्वर्य का ( यक्षि ) प्रदान करूं। ( पुत्रः पितुः न ) जिस प्रकार पुत्र पिता के ( सिचम् आरभते ) वस्त्र का स्पर्श करता है वा निषेक आदि द्वारा उत्पन्न सन्तान भाव का प्रारम्भ करता है। उसी प्रकार हे ( शचीवः ) शक्ति, सेना और उत्तम वाणी के स्वामिन् ! ( इन्द्र ) शत्रुहन्तः एवं विद्वन् ! मैं प्रजाजन भी ( स्वादिष्टया ) अति अधिक स्वादु, मधुर ( गिरा ) वाणी से ( ते सिचम् ) तेरा राज्यपदाभिषेक ( आरभे ) करूं। ( ते ) तेरे ( सिचम् आरभे ) उज्ज्वल वस्त्र का स्पर्श करूं। तेरे वस्त्र प्रान्त को पकड़ूं, तेरा आश्रय ग्रहण करूं। राजा का लम्बा दामन पकड़ना उसका आश्रय ग्रहण करने के समान है। जैसे पुत्र पिता का दामन मीठी तुतलाती वाणी बोल के पकड़ लेता है उसमें ही स्नेहवश घुस जाता है, उसी प्रकार प्रजाजन स्नेहवश राजा के दामन में उसके शासन या छत्र-च्छाया में रहें अथवा उसका अभिषेक करें।

**शंसा॑वाध्वर्यो॒ प्रति॑ मे गृणी॒हीन्द्रा॑य॒ वाहः॑ कृणवाव॒ जुष्ट॑म् ।**
**एदं ब॒र्हिर्यज॑मानस्य सी॒दाथा॑ च भूदु॒क्थमिन्द्रा॑य श॒स्तम् ॥३॥**

भा०—हे ( अध्वर्यो ) शत्रु द्वारा अपना हिंसन, पीड़क न होकर प्रजा के पालन आदि की कामना करने वाले विद्वन् ! हम दोनों (इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् पुरुष की वृद्धि के लिये ( शंसाव ) शुभ, उत्तम बातों का उपदेश करें। तू ( मे प्रति गृणीहि ) मेरा दिया ज्ञानोपदेश प्रत्येक व्यक्ति को उपदेश कर और ( जुष्टम् ) प्रेम से सेवन करने योग्य ( वाहः ) स्तुति-वचन को हम दोनों ( कृणवाव ) करें। ( यजमानस्य ) दानशील, पूजा सत्कार करने वाले प्रजागण का ( इदं बर्हिः ) यह वृद्धिशील राष्ट्र

और राज्यपदासन है। उस पर ( आसीद ) आ, विराज। ( अथ च ) और इसके अनन्तर (इन्द्राय) इन्द्र, राजा को या राजा का ( उक्थ्यम् ) उत्तम उपदेश करने योग्य या स्तुत्य ( शस्तं ) अनुशासन का ( भूत् ) हो।

जायेदस्तं मघवन्त्सेदु योनिस्तदित्त्वा युक्ता हरयो वहन्तु।
यदा कदा च सुनवाम सोममग्निष्ट्वा दूतो धन्वात्यच्छ ॥ ४ ॥

भा०—( जाया इत् ) स्त्री ही वास्तव में ( अस्तं ) घर है। हे ( मघवन् ) ऐश्वर्यवन्! ( सा इत् उ योनिः ) वही वास्तविक रहने का आश्रय स्थान है। ( तत् इत् ) वहां ( युक्ताः हरयः ) रथ में लगे अश्वों के समान, समाहित चित्त वाले प्रेमी विद्वान्जन ( त्वा वहन्तु ) तुझे ले जावें। हम लोग भी ( यदा कदा च ) जब कभी भी ( सोमम् ) उत्पन्न करने योग्य पुत्र के तुल्य ऐश्वर्ययुक्त वा अभिषेचनीय तुझको ( सुनवाम ) सम्पन्न, ईश्वर का स्वामी बनावें या अभिषेक करें तब ( अग्निः त्वा ) अग्नि के समान ज्ञानप्रकाशक और तेजस्वी पुरुष ( दूतः ) संदेशहर एवं शत्रुओं को संताप देने हारा वीर पुरुष ( त्वा ) तुझको ( अच्छ धन्वाति ) प्राप्त हो। राजा की जाया प्रजागण ही घर हैं वही उसका आश्रय वा योनि अर्थात् सन्तान के समान राजा को जन्म देती है। अश्वादि एवं विद्वान् जन उसको प्रजा के पास ही ले जावें। प्रजा जब समृद्धि या समृद्ध राजा को अभिषेक करे ज्ञानी दूत आदि उसके सन्मुख आकर प्रजा की बात कहा करें। उसी प्रकार गृहस्थ पक्ष में—स्त्री ही पुरुष का घर, आश्रय और सन्तानोत्पादक है। विद्वान् उसको स्त्री के प्राप्त करने के लिये प्रेरित करें। जब २ लोग पुत्र को उत्पन्न करने का यत्न करें अर्थात् पुत्रार्थी हों तो अग्नि (आवसथ्य अग्नि) को दूत के समान सन्मुख प्राप्त हों। अग्नि साक्षिक विवाह हुआ करे। तभी उत्तम विवाह से उत्तम पुत्र उत्पन्न होता है।

परा याहि मघवन्ना च याहीन्द्र भ्रातरुभयत्रा ते अर्थम् ।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो रासभस्य ॥५।१९॥

भा०—हे ( मघवन् ) ऐश्वर्यवन् ! हे पूजनीय धन के स्वामिन् ! तू ( परा याहि ) दूर देश में गमन कर ( च ) और ( आ याहि च ) अपने देश में भी आ । हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! तू ( ते ) तेरे ( उभयत्र ) दोनों ही स्थानों में ( अर्थम् ) स्थित प्रयोजन को प्राप्त कर ( यत्र ) जहां ( बृहतः रथस्य ) बड़े भारी रमण करने योग्य ऐश्वर्य का ( निधानं ) ख़ज़ाना हो वहां ( रासभस्य वाजिनः ) अति हेषा रव करने वाले वेगवान् अश्व का ( विमोचनम् ) रथ से पृथक् करना या ढीली वागों से जाना उचित है, ऐश्वर्यवान् पुरुषों का दूर या समीप जहां भी ऐश्वर्य प्राप्त हो वहीं प्रसन्न अश्वों द्वारा जाना चाहिये । (२) इसी प्रकार गृहस्थ में जाने वाला पुरुष भी चाहे इह लोक में गृहस्थ होकर रहे या परम-पद की ओर जावे दोनों ओर ही पुरुषार्थ है । उत्तम सुख की जहां स्थिति हो वहां ही इस उपदेष्टव्य ज्ञानवान् आत्मा की बन्धन से विशेष मुक्ति होती है । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

अपाः सोममस्तमिन्द्र प्र याहि कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते ।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत् ॥६॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! तू ( सोमम् अपाः ) उत्तम सोमादि ओषधि रस का पान कर, ऐश्वर्य का पालन कर । ( अस्तं प्र याहि ) घर को उत्तम रीति से जाया कर । ( ते गृहे ) तेरे घर में ( जाया ) स्त्री ( कल्याणीः ) कल्याणकारिणी, सुखप्रद, सौभाग्यवती और ( सुरणं ) सुखपूर्वक रमण करने वाली हो । और तेरे घर में (बृहतः रथस्य निधानं) बड़े रथ और रमणीय पदार्थों को रखने का स्थान एवं ख़ज़ाना हो और

( वाजिनः विमोचनं ) अश्व को खोलने का स्थान अस्तबल और ( दक्षिणावत् ) दक्षिणायुक्त उत्तम यज्ञ आदि हो।

**इमे भोजा अङ्गिरसो विरूपा दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः।**
**विश्वामित्राय ददतो मघानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ॥७॥**

भा०—( इमे ) ये ( भोजाः ) प्रजाओं के पालक, रक्षक ( अंगिरसः ) देह में प्राणों के तुल्य राष्ट्र में जीवित जागृत एवं अंगारों के सदृश तेजस्वी ( विरूपाः ) विविध रूपों वाला ( दिवः ) प्रकाशमान सूर्य के तुल्य ( असुरस्य ) बलवान् सेनानायक के ( पुत्रासः ) पुत्रों के तुल्य ( वीराः ) वीर, वीर्यवान् बलवान् पुरुष ( सहस्रसावे ) सहस्रों प्रकार के ऐश्वर्यों के लाभ कराने वाले संग्राम में ( विश्वामित्राय ) सबके स्नेही और सबको मरने से बचाने वाले नायक को ( मघानि ) नाना प्रकार के ऐश्वर्य ( ददतः ) देते हुए ( आयुः प्रतिरन्त ) जीवन की वृद्धि करें या जीवन व्यतीत करें।

**रूपंरूपं मघवा बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं१ परि स्वाम्।**
**त्रिर्यद्दिवः परि मुहूर्तमागात्स्वैर्मन्त्रैरनृतुपा ऋतावा ॥ ८ ॥**

भा०—जिस प्रकार ( मघवा ) प्रकाशमान् सूर्य ( स्वां तन्वं परि ) अपने ही पिण्ड से ( मायाः कृण्वानः ) नाना माया अर्थात् अद्भुत २ रचना करता हुआ ( रूपं रूपं ) प्रत्येक रूप में ( परि बोभवीति ) व्याप जाता है। ( यत् ) जो ( स्वैः मन्त्रैः ) अपने स्तम्भन बलों का ज्ञान कराने वाले, प्रकाशमय किरणों से ( यत् ) जो (त्रि दिवः) दिन के तीनों काल ( मुहूर्त्तम् ) प्रतिमुहूर्त्त ( परि अगात् ) फैलता रहता है और ( ऋतावा ) अन्न और जल का स्वामी होकर भी (अनृतुपाः) विशेष ऋतु में ही जल का पान नहीं करता प्रत्युत सदा ही जलपान करता है उसी प्रकार ( मघवा ) ऐश्वर्यवान् पुरुष ( स्वां तन्वं परि ) अपनी शारीरिक रचना से ( यत् ) जो वह ( अनृतुपाः ) विशेष काल का पालन

न करता हुआ, विना किसी विशेष काल की अपेक्षा किये, सदा एक समान ( ऋतावा ) सत्य ज्ञान का सेवन और ग्रहण करता हुआ ( स्वैः मन्त्रैः ) अपने मननपूर्वक प्रकटित विचारों से ( मुहूर्त्तम् ) मुहूर्त्त भर ( दिवः त्रिः ) दिन में तीनों काल ( परि अगात् ) परिज्ञान करता रहे। देह को ( परि कृण्वानाः ) खूब अच्छी प्रकार परिष्कार और सुदृढ़ करता हुआ उसके उपरान्त (मायाः) नाना बुद्धियों को ( परि कृण्वानाः ) परिष्कृत करता हुआ ( रूपं रूपं ) प्रत्येक रूपवान् पदार्थ को ( परि बोभवीति ) अच्छी प्रकार ज्ञान करे।

म॒हाँ ऋषि॑र्देव॒जा दे॒वजू॑तोऽस्तभ्ना॒त्सिन्धु॑मर्ण॒वं नृ॒चक्षाः॑।
वि॒श्वामि॑त्रो॒ यदव॑हत्सु॒दास॒मप्रि॑यायत कुशि॒केभि॒रिन्द्रः॑ ॥ ९ ॥

भा०—( यत् ) जब ( महान् ) सामर्थ्य और गुणों में महान् ( ऋषिः ) मन्त्रों और तत्वार्थों का द्रष्टा ( देवजाः ) देवों, विद्वानों द्वारा उत्पन्न, उनका शिष्य वा दानशील होकर प्रसिद्ध, ( देवजूतः ) विद्वानों द्वारा प्रेरित और ( नृचक्षाः ) समस्त नायकों पर अपनी आज्ञा करने और उनके ऊपर आंख रखने हारा, ( विश्वामित्रः ) सबका मित्र, सहायक, ( सुदासम् ) उत्तम दानशील एवं उत्तम रीति से शत्रु को नाश करने वाले वीर पुरुष को ( अवहत् ) सन्मार्ग पर ले जाता है तब वह ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् राजा ( कुशिकेभिः ) अति कुशल सहयोगियों सहित ( अप्रियायत ) सबको प्रिय लगने लगता है।

हं॒सा इ॑व कृणुथ॒ श्लोक॒मद्रि॑भि॒र्मद॑न्तो गी॒र्भिर॑ध्व॒रे सु॒ते सचा॑।
दे॒वेभि॑र्विप्रा ऋषयो नृचक्षसो॒ वि पि॑बध्वं कुशिकाः सो॒म्यं मधु॑॥१०॥२०

भा०—जिस प्रकार ( हंसाः इव ) हँस व पक्षिगण ( अद्रिभिः ) पर्वतों, मेघों सहित ( मदन्तः ) अति हर्षित होते हुए ( श्लोकं कृण्वन्ति ) उत्तम शब्द करते हैं और ( सोम्यं मधु पिबन्ति ) उत्तम मधुर जल को

पान करते हैं उसी प्रकार हे (हंसाः) परमहंसो ! ज्ञानी पुरुषो ! हे (विप्राः) मेधावी विद्वान् पुरुषो ! हे ( ऋषयः ) अतीन्द्रिय तत्वों के भी दर्शन करने वाले ( नृचक्षसः ) और सब पुरुषों पर चक्षु रखने वाले सबके निरीक्षक, ( कुशिकाः ) सिद्धान्त निष्कर्ष निकालने वाले विद्वान् पुरुषो ! आप लोग ( हंसाः ) अहंभाव का नाश करने हारे होकर ( अद्रिभिः ) अपने अविनाशी आत्माओं सहित या मेघ तुल्य सुखवर्षक आत्माओं सहित और ( गीर्भिः ) वाणियों से ( मदन्तः ) खूब प्रसन्न होते हुए ( अध्वरे सुते ) परस्पर के घात प्रतिघात या हिंसादि से रहित यज्ञ के निष्पन्न होने पर उसमें ( सोम्यं मधु ) सोम ओषधि के रस से युक्त मधुर दुग्धादि के समान ( सोम्यं मधु ) सोम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के परम ब्रह्मज्ञान रूप मधुर मधु का ( देवेभिः सचा ) देव, विद्वान् दानशीलों सहित ( पिबध्वम् ) पान करो । ( २ ) राष्ट्रपक्ष में—( हंसाः ) शत्रुओं को हनन करने वाले वीर पुरुष । विंशो वर्गः ॥

**उप॒ प्रेत॑ कुशिकाश्चे॒तय॑ध्व॒मश्वं॑ रा॒ये प्र मु॑ञ्चता सु॒दासः॑ ।**
**राजा॑ वृ॒त्रं ज॑ङ्घ॒नत्प्रागपा॒गुद॒गथा॑ यजाते॒ वर॒ आ पृ॑थि॒व्याः ॥११॥**

भा०—हे ( कुशिकाः ) परराष्ट्र को पीड़ित करने हारे उत्तम कुशल पुरुषो ! आप लोग ( उप प्र इत ) समीप २ रहकर आगे बढ़ते जाओ । ( चेतयध्वम् ) स्वयं खूब सावधान होकर रहो और (राये) ऐश्वर्य की वृद्धि करने के लिये ( अश्वं ) शीघ्र चलने हारे अश्व को ( प्र मुञ्चत ) आगे २ छोड़ो । और ( सुदासः ) उत्तम शत्रुनाशक और उत्तम दान-शील ( राजा ) राजा ( प्राग्, अपाग्, उदग् ) पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा में स्थित ( वृत्रं ) बढ़ते शत्रु को, मेघ को सूर्यवत् ( जंघनत् ) दण्ड दे । ( अथ ) अनन्तर ( पृथिव्याः ) पृथिवी के ( वरे ) सर्वश्रेष्ठ भाग में ( आ यजाते ) सब ओर से सबको एकत्र कर यज्ञ करे । सर्व-

श्रेष्ठ पद पर स्थित होकर सबसे मित्रता का सम्बन्ध स्थापित करे। अश्व-मेध द्वारा विजय करके बलवान् राजा सबका मित्र होकर रहे।

य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टवम्।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम् ॥ १२ ॥

भा०—( यः ) जो ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान्, परमेश्वर वा राजा (इमे) इन ( उभे रोदसी ) दोनों भूमि, सूर्य और उनके समान स्त्री-पुरुषों की ( रक्षति ) रक्षा करता है और जो ( इदं ) इस ( ब्रह्म ) महान् ब्रह्माण्ड और धनैश्वर्य की और ( भारतं जनं ) जो भारती वाणी के उपासक विद्वान् और ( भारतं ) मनुष्यों के समूह की ( रक्षति ) रक्षा करता है ( तस्य ) उस ( विश्वामित्रस्य ) सबके मित्रस्वरूप परमेश्वर और राजा के ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्य की मैं ( अतुष्टवम् ) सदा स्तुति करूं।

विश्वामित्रा अरासत ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे।
करदिन्नः सुराधसः ॥ १३ ॥

भा०—( विश्वामित्राः ) सबके मित्र लोग ( वज्रिणे ) बलवान् ( इन्द्राय ) ऐश्वर्यवान् पुरुष के ( ब्रह्म ) बड़े भारी धनैश्वर्य के विषय में ( अरासत ) स्तुति करते हैं। वह ( नः ) हमें ( सुराधसः ) उत्तम धनैश्वर्य से सम्पन्न ( करद् ) करे।

किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुह्रे न तपन्ति घर्मम्।
आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन्रन्धया नः ॥१४॥

भा०—( ते ) वे ( कीकटेषु ) जो लोग कुत्सित कर्मों को करके जीते वा उत्तम कर्मों को तुच्छ समझते हैं वे लोग वा देश 'किं कृत' वा 'कीकट' हैं उन देशों के (ते) वे निवासी लोग ( गावः ) गौओं का ( किं कृण्वन्ति ) क्या उपयोग लेते हैं, कुछ भी उपयोग नहीं लेते। क्योंकि वे ( न ) न तो ( आशिरं ) खाने पीने योग्य दूध आदि ( दुह्रे ) दुहते हैं

और ( न घर्मं तपन्ति ) न घृत ही तपाते हैं। इस प्रकार हे ( मघवन् ) ऐश्वर्यवन् ! ( प्रमगन्दस्य ) मुझे अधिक धन प्राप्त हो इस आशा से अन्यों को देने वाले अथवा अपने धन को आमोद प्रमोद में ही व्यय करने वाले पुरुषों के ( वेदः ) धन को ( नः आभर ) हमें प्राप्त करा और ( नः ) हमारे बीच में जो ( नैचाशाखं ) नीचे की तरफ़ कुप्रवृत्तियाँ अपनी शाखा अर्थात् शक्तियों का दुरुपयोग करने वाले को तू ( रन्धयः ) वश कर। ऐश्वर्यवान् व्यापारी वा राजा का यह कर्त्तव्य है कि जिन देशों के लोग गौ आदि का उपयोग न करते हों उन देशों की गौएं व्यापार आदि द्वारा अपने देशों में लावें। और उनका उत्तम उपयोग लेवें। जिन देशों के लोग विलास में रुपये फूंकते हों उनका द्रव्य भी व्यापार द्वारा उनको विलास के पदार्थ देकर अपने देश में खैंच ले। अधिक धनाशा से जो रुपया देते हों उनका धन लेकर भी अपनी सम्पत्ति और व्यापार बढ़ा ले। और जो अपनी शक्ति नीच कुत्सित कार्यों में उपयोग करें उनको दमन करे।

**स॒स॒र्प॒रीर॑म॑तिं॒ बाध॑माना बृ॒हन्मि॑माय ज॒मद॑ग्निदत्ता।**
**आ सूर्य॑स्य दुहि॒ता त॑तान॒ श्रवो॑ दे॒वेष्व॒मृत॑मजु॒र्यम् ॥१५॥२१॥**

भा०—जिस प्रकार ( सूर्यस्य दुहिता ) सूर्य से उत्पन्न कन्यावत् उषा ( ससर्परीः ) सर्वत्र व्यापने वाली ( जमदग्निदत्ता ) प्रज्वलित अग्नि वाली किरणों से प्रदान की हुई ( बाधमाना ) अन्धकार को दूर करती हुई (बृहत् अमतिम् मिमाय) बड़े भारी उत्तम रूप को प्रकट करती है। उसी प्रकार ( जमदग्निदत्ता ) जमदग्नि अर्थात् चक्षु द्वारा प्राप्त ज्ञान को अपने भीतर धारने वाली, ( ससर्परीः ) सर्वत्र दूर तक व्यापने वाली, (अमतिं) अज्ञान का नाश करने वाली वाणी (बृहत्) बड़े भारी ज्ञान को (मिमाय) शब्द द्वारा उत्पन्न करती है। वह ( सूर्यस्य दुहिता ) सूर्य के समान प्रकाशक तेजस्वी पुरुष की सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली वाणी

( देवेषु ) ज्ञान की कामना करने वाले पुरुषों में ( अमृतम् ) अमृत, अविनश्वर ( अजुर्यम् ) कभी हानि को प्राप्त न होने वाले ( श्रवः ) श्रवण करने योग्य ज्ञान को ( आततान ) विस्तृत करती है। ( २ ) इसी प्रकार सूर्यवत् तेजस्वी राजा की सब कामना को पूर्ण करने वाली भूमि वा भूमिवासिनी प्रजा ( देवेषु ) ऐश्वर्य के इच्छुक वीर विजिगीषुओं में अक्षय ( अमृतं श्रवः ) अन्न और जल प्रदान करती है। वह ( जमदग्निदत्ता ) प्रज्वलित तेजस्वी अग्निनायक या आग्नेयास्त्रादि के प्रज्वलित करने वाले वीरों से दी गई भूमि ( अमतिं बाधमाना ) दारिद्रय को नाश करती हुई (बृहत्) बड़े भारी ऐश्वर्य को प्रदान करती है। इत्येकविंशो वर्गः ॥

ससर्परीरभरत्तूयमेभ्योऽधि श्रवः पाञ्चजन्यासु कृष्टिषु ।
सा पक्ष्या नव्यमायुर्दधाना यां मे पलस्तिजमदग्नयो ददुः ॥१६॥

भा०—( यां ) जिस वाणी को ( मे ) मुझे ( पलस्तिजमदग्नयः ) वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्ध, आत्माग्नि को प्रज्वलित करने वाले तेजस्वी पुरुष ( ददुः ) प्रदान करते हैं ( सा ) वह ( पक्ष्या ) पक्षों अर्थात् ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों का हित करने वाली, ( ससर्परीः ) सुख और ज्ञान को प्राप्त कराने वाली, सर्वत्र व्यापक या शिष्य परम्परा से एक से दूसरे को प्राप्त होने वाली, ( पाञ्चजन्यासु कृष्टिषु ) पांचों जनों में उत्पन्न मनुष्यादि प्रजाओं में ( नव्यम् ) नया ( आयुः ) जीवन (दधाना) धारण कराती हुई, ( एभ्यः ) इनको ( तूयम् ) शीघ्र ही ( श्रवः ) श्रवण योग्य ज्ञान ( अधि-अभरत् ) धारण कराती है। ( २ ) इसी प्रकार भूमि पांचों प्रकार की प्रजाओं को ( श्रवः ) अन्न देती और नया जीवन धारण कराती है।

स्थिरौ गावौ भवतां वीळुरक्षो मेषा वि वर्हि मा युगं वि शारि ।
इन्द्रः पातल्ये ददतां शरीतोररिष्टनेमे अभि नः सचस्व ॥१७॥

भा०—स्त्री और पुरुषो ! राजा और प्रजाजन ! दोनों ( स्थिरौ )

स्थिर, उत्तम स्थितिमान् होकर भी (गावौ) एक दूसरे के पास जाने वाले एक दूसरे को प्राप्त (भवताम्) होओ। अथवा वे दोनों गौ और वृषभ के समान वा रथमें लगे दो बलवान् बैलों के समान सम्भालने में समर्थ होवें। (अक्षः वीडुः) रथ में लगे अक्ष अर्थात् धुरा के समान (अक्षः) तुम पर चक्षु के समानद्रष्टा, सर्वाश्रय पुरुष बलवान् वीर्यवान् हो। (ईषा) रथमें लगे ईषा दण्ड के समान आगे २ चलने वाली या विघ्नों और कष्टकारी बाधक कारणों का नाश करने वाली दर्शनीय स्त्री (मा वि वर्हि) गृह से उत्सन्न न हो, उखड़ न जाय, वह उच्छिन्न हृदय न होजाय। (युगम्) रथ के जुए के समान परस्पर का जोड़ा (मा वि शारि) कभी एक दूसरे से विरुद्ध होकर नष्ट न हो, टूट फूट न पड़े। एक दूसरे का ताड़न न करें। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (पातल्ये) गिरने वालों को, मर्यादा से च्युत होने वालों को (शरीतोः) विनाश होने से पूर्व ही (ददताम्) योग्य जीवन सामग्री प्रदान करे वा बचावे। हे (अरिष्टनेमे) 'अरिष्ट' अर्थात् हिंसन, पीड़नादि से रहित मङ्गलमय मार्ग में लेजाने वाले नायक! (नः) हमें तू (अभिसचस्व) सदा प्राप्त हो। राष्ट्रपक्ष में—(गावौ) राजा प्रजा दोनों स्थिर हों, (अक्षः) अध्यक्ष वीर्यवान् हो, (ईषा) शत्रु विपरीत उद्योगशाली न हो। (युगः) परस्पर के सन्धि सम्बन्ध शिथिल न हों। गिरतों को विनष्ट होने से हिंसक सेना (मा वि वर्हि) बचावे। सन्मार्ग का नायक हमें सब प्रकार से समवाय से संगठित करे।

बलं धेहि तनूषु नो बलमिन्द्रानळुत्सु नः।
बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलदा असि॥ १८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् स्वामिन्! हे परमेश्वर! तू (नः) हमारे (तनूषु) शरीरों में (बलं धेहि) बल को धारण करा। (नः) हमारे (अनडुत्सु) गौ, बैल आदि प्राणि-वर्गों में (बलं धेहि) बल प्रदान कर। तू (नः) हमारे (तोकाय) पुत्र और (तनयाय)

पौत्रादि के हितार्थ या छोटे बालक और ऊंची उमर के बड़े पुत्रादि और उनके और हमारे (जीवसे) दीर्घ जीवन के लिये (बलं) बल प्रदान कराओ। (त्वं हि) तू निश्चय से (बलदाः) बल का देने वाला (असि) है।

**अभि व्ययस्व खदिरस्य सारमोजो धेहि स्पन्दने शिंशपायाम्।**
**अक्ष वीळो वीळित वीळयस्व मा यामादस्मादव जीहिपो नः॥१९॥**

भा०—हे (वीळो) वीर्यवन्! हे (वीळित) विविध प्रजाओं से प्रशंसित एवं दृढ़ीभूत पुरुष तू (खदिरस्य सारम्) खदिर वृक्ष के सार अर्थात् बलयुक्त, दृढ़, (खदिरस्य) शत्रुहिंसक सेना के (सारम्) प्रबल भाग को लक्ष्य करके (अभि वि अयस्व) विशेष रीति से व्यय कर। और (स्पन्दने) कुछ २ चलने के अवसर में (शिंशपायाम्) शीशम के समान दृढ़ रथसैन्य पर स्थिर होकर (ओजः धेहि) बल पराक्रम कर। हे (अक्ष) प्राप्त विद्य! या हे अध्यक्ष पुरुष! हे (वीळो) वीर्यवान् दृढ़ पुरुष! तू (नः) हमें (अस्मात्) इस (यामात्) प्रहर से आगे या इस प्रकार के उत्तम प्रबन्ध से (मा अव जीहिपः) मत वञ्चित रख। (२) अथवा (खदिरस्य सारम् इव ओजः धेहि) खदिर वृक्ष के सार कत्थे वा गोंद के समान ओजात्मक, तमतमाते तेज को धारण करा और (शिंशपायाम् स्पन्दन इव) शिंशपा या सीशम के वृक्ष से निकलने वाले गोंद के समान (अभि सं व्ययस्व) बहुत स्वल्प व्यय कर।

**अयमस्मान्वनस्पतिर्मा च हा मा च रीरिषत्।**
**स्वस्त्या गृहेभ्य आवसा आ विमोचनात्॥ २०॥ २२॥**

भा०—जिस प्रकार 'वनस्पति' काष्ठ का विकार रथ घर पहुंचने, यात्रा समाप्ति और अश्वादि मोचन तक साथ नहीं छोड़ता है उसी प्रकार (अयम्) यह (वनस्पतिः) महावृक्ष के समान किरणों के पालक सूर्य

के समान 'वना' अर्थात् धन में समान भाग लेने वाले वा सेवा करने वालों का पालक, अध्यक्ष, स्वामी ( अस्मान् ) हमें ( मा हाः ) कभी त्याग न करे। ( मा च रीरिषत् ) कभी विनाश न करे। वह ( आ अवसै ) कार्य समाप्ति तक और ( आ विमोचनात् ) अवकाश या छुट्टी के अवसर तक भी ( आ गृहेभ्यः ) घरों तक पहुंच जाने तक भी हमारा साथ त्याग न करे। चाहे सेवक का कार्य समाप्त हो जाय, अवकाश पर हो या घरों में बैठा हो तो भी स्वामी सेवक को न त्यागे और न दण्ड दे। ( २ ) विद्यासेवी शिष्यों का पालक आचार्य गृह पहुंचने, विद्यावसान और गुरु-गृह त्याग तक शिष्य को न त्याग करे, न पीड़ित या दण्डित करे। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य याच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व ।
यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥२१॥

भा०—हे ( इन्द्र ) शत्रुहन्तः! तू ( यात्-श्रेष्ठाभिः ) शत्रु-हिंसा के कार्य में सबसे उत्तम ( बहुलाभिः ) बहुतसी ( ऊतिभिः ) रक्षक सेनाओं से ( नः ) हमें ( जिन्व ) विजय कर और प्रसन्न कर। हे ( मघवन् ) धनैश्वर्यवन्! हे ( शूर ) शूरवीर! ( नः ) हम से ( यः अधरः ) जो नीचे रहकर ( द्वेष्टि ) द्वेष करता है ( सः पदीष्ट ) वह अच्छी प्रकार नीचे गिरे। और ( यम् उ ) जिससे हम ( द्विष्मः ) द्वेष करें ( तम् उ ) उसको ( प्राणः ) प्राण ( जहातु ) त्याग दे।

परशुं चिद्वि तपति शिम्बलं चिद्वि वृश्चति ।
उखा चिदिन्द्र येषन्ती प्रयस्ता फेनमस्यति ॥ २२ ॥

भा०—( उखा चित् ) जिस प्रकार डेगची ( येषन्ती ) उबलती हुई ( प्रयस्ता ) खूब सन्तप्त होकर ( फेनम् अस्यति ) फेन बाहर फेंकती है उसी प्रकार हे ( इन्द्र ) सेनापते! ( उखा ) शत्रुको उखाड़ कर फेंकने वाली सेना ( येषन्ती ) आगे बढ़ती हुई और ( प्रयस्ता ) अच्छी प्रकार

प्रयास, उद्यम या प्रहार करती हुई ( फेनम् ) शत्रुहिंसक शस्त्र को ( अस्यति ) शत्रु पर फेंके और ( परशुं चित् ) लोहार या अग्नि जिस प्रकार फरसे को तपाता है उसी प्रकार वह ( परशुं ) दूसरे शत्रुकी शीघ्रगामिनी सेना को ( वि तपति ) विविध उपायों से पीड़ित सन्तप्त करे । ( शिम्बलं चित् ) सेमर के वृक्ष, शाखा पुष्प वा पत्र के समान शत्रु को सुख से ( वि वृश्चति ) विविध उपायों से काटदे ।

**न साय॑क॒स्य चिकिते जनासो लो॒धं न॑यन्ति प॒शु मन्य॑मानाः ।**
**नावा॑जिनं वा॒जिना॑ हासयन्ति॒ न ग॑र्द॒भं पु॒रो अश्वा॑न्नयन्ति ॥२३॥**

भा०—( जनासः ) जो मनुष्य ( सायकस्य ) शस्त्रादि के समान प्राणों का अन्त कर देने वाले विनाशक के सम्बन्ध में ( न चिकिते ) कुछ भी नहीं जानते। वे ( मन्यमानाः ) अभिमान करते हुए अपने आपको ( लोधं पशु ) लोभवश हुए पशु के समान आगे लेजाते हैं । ( वाजिना ) ज्ञानैश्वर्य से युक्त पुरुष से कभी ( अवाजिनम् ) अज्ञानी पुरुष को लाकर ( न हासयन्ति ) हँसी नहीं कराते । और बुद्धिमान् पुरुष ( अश्वात् पुरः ) घोड़े के समक्ष ( गर्दभं न नयन्ति ) गधे को उसके मुक़ाबले पर नहीं लाते। युद्ध में जिस प्रकार प्राणान्तकारी शस्त्र बल को न जानकर भी अभिमानी सैनिक अपने स्वामी के वेतन के लोभ में पड़कर अपने आपको आगे बढ़ाते हैं । उसी प्रकार मनुष्य प्रायः अपने अन्तकारी मृत्यु के विषय में वे कुछ न जान कर केवल अभिमान से अपने को भावी लोभ में पड़ कर आगे बढ़ाते हैं, परन्तु इतने से भी वे अज्ञानी को ज्ञानी के बराबर नहीं कर सकते अर्थात् वे अभिमान पूर्वक आगे बढ़ने से ज्ञानी नहीं हो जाते ।

**इ॒म इ॑न्द्र भर॒तस्य॑ पु॒त्रा अ॑पपि॒त्वं चि॑कितु॒र्न प्र॑पि॒त्वम् ।**
**हि॒न्वन्त्यश्व॒मर॑णं॒ न नित्यं॒ ज्या॑वाजं॒ परि॑ णयन्त्या॒जौ ॥२४।२३।४॥**

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! ( इमे ) ये ( भरतस्य ) अपने भरण

पोषण करने वाले स्वामी के ( पुत्राः ) पुत्र के समान भृत्य, सैनिक लोग ( चिकितुः न ) ज्ञानवान् पुरुष के समान ( अपपित्वम् ) दूर हो जाना, भागना या पीछे हटना और ( प्रपित्वम् ) आगे बढ़ना, अपयान और प्रयाण ( हिन्वन्ति ) करते हैं। और वे ( अरणं ) प्रेरित ( अश्वं न ) अश्व के समान ( नित्यं ) नित्य ( आजौ ) संग्राम-काल में ( ज्यावाजं ) धनुष की डोरी का घोष ( परि नयन्ति ) आगे पहुंचाते हैं। अथवा वे प्रयाण और अपयान, आगे बढ़ना और पीछे हटना दोनों कार्य ( चिकितुः ) जानें। ( अश्वं हिन्वन्ति ) अश्व-सैन्य को आगे बढ़ावें और ( ज्यावाजं ) शत्रुओं को मारने वाली धनुष की डोरी वा सेना के द्वारा किये जाने वाले बल-कार्य, संग्राम को आगे बढ़ावें। इति त्रयोविंशो वर्गः॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः॥

## [ ५४ ]

प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा ऋषिः॥ विश्वे देवा देवताः॥ छन्दः—१ निचृत्पंक्तिः। ६ भुरिक् पंक्तिः। १२ स्वराट् पंक्तिः। २, ३, ६, ८, १० ११, १३, १४ त्रिष्टुप्। ४, ७, १५, १६, १८, २०, २१ निचात्त्रिष्टुप्। ५ स्वराट् त्रिष्टुप्। १७ भुरिक् त्रिष्टुप्। १९, २२ विराट्त्रिष्टुप्॥

**इ॒मं म॒हे वि॑द॒थ्या॑य शू॒षं शश्व॒त्कृत्व॒ ईड्या॑य॒ प्र ज॑भ्रुः।**
**शृणो॑तु नो द॒म्ये॑भि॒रनी॑कैः शृ॒णोत्व॒ग्निर्दि॒व्यैरज॑स्रः॥ १॥**

भा०—विद्वान् लोग ( महे ) बड़े आदरणीय ( विदथ्याय ) ज्ञान और संग्रामकार्य में कुशल ( ईड्याय ) परम पूजनीय वीर और ज्ञानी पुरुष के ( शश्वत् ) निरन्तर, सदा से सनातन ( इमं शूषं ) इस बल का सम्पादन ( प्रजभ्रुः ) किया करें। वह ( अग्निः ) अग्रणी नायक ( कृत्वः ) कर्त्ता होकर ( दम्येभिः अनीकैः ) दमन करने योग्य सेनाओं से युक्त हो, ( नः ) हमें ( शृणोतु ) सुने, हमारी प्रार्थनाएं सुने और ( अग्निः ) विद्वान् ज्ञानी पुरुष ( दिव्यैः ) दिव्य तेजों और सैन्यों से

( अजस्रः ) कभी मारा न जाकर अहिंस्र, अविनाशी होकर ( नः शृणोतु ) हमारी सुना करे। 'शश्वत्-कृत्वः' इत्येकं पदम्, इति तैत्तिरीयब्राह्मणम् ( १ । २८ ) तथाच सायणः । शश्वत् । कृत्वः । इति पदपाठः ।

**मही म॒हे दि॒वे अ॑र्चा पृथि॒व्यै कामो॑ म इ॒च्छञ्च॑रति प्रजा॒नन् ।**
**ययो॑र्ह॒ स्तोमे॑ वि॒दथे॑षु दे॒वाः स॑प॒र्यवो॑ मा॒दय॑न्ते॒ सचा॒योः ॥ २ ॥**

भा०—( ययोः ) जिन के ( स्तोमे ) स्तुति योग्य शासन में ( विदथेषु ) ज्ञानों और संग्रामों के निमित्त ( सपर्यवः देवाः ) सेवाकुशल विद्या और धन के अभिलाषी लोग ( आयोः सचा ) जीवन भर के सम्बन्ध से ( मादयन्ते ) प्रसन्न रहते हैं हे विद्वन् ! तू ( प्रजानन् ) ज्ञानवान् होकर उन ( महे दिवे ) बड़े तेजस्वी सूर्य और ( महे पृथिव्यै ) पूजनीय पृथिवी के समान तेजस्वी और सर्वाश्रय राजा रानी दोनों का ( महि अर्च ) बड़ा आदर सत्कार कर। उन दोनों में से ( मे कामः ) मुझ प्रजाकी अभिलाषा करने हारा ( इच्छन् ) राजा मुझे चाहता हुआ (चरति) विचरता है।

**यु॒वोर्ऋ॒तं रो॑दसी स॒त्यम॑स्तु म॒हे षु णः॑ सुवि॒ताय॒ प्र भू॑तम् ।**
**इ॒दं दि॒वे नमो॑ अग्ने पृथि॒व्यै स॑प॒र्यामि॒ प्रय॑सा यामि॒ रत्न॑म् ॥३॥**

भा०—हे (रोदसी) सूर्य और पृथिवी के समान एक दूसरे के उपकारक स्त्री पुरुषो ! ( युवोः ) तुम दोनों को ( ऋतम् ) एक दूसरे को प्राप्त होने का कारण ज्ञान और धन, आचरण सब ( सत्यम् अस्तु ) सत्य हो, परस्पर मिथ्याचार, मिथ्या ज्ञान न हो। ( नः ) हमारे बीच आप दोनों ( महे सुविताय ) बड़े भारी ऐश्वर्य की प्राप्ति और (सु-इताय ) पूजनीय आचार और सुखप्राप्ति के लिये ( प्र सु भूतम् ) अच्छी प्रकार उत्तम होकर रहो। हे ( अग्ने ) विद्वन् ! ( इदं ) यह ( नमः ) आदर वचन, अन्न आदि ( दिवे ) ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष और ( पृथिव्यै ) पृथिवी के समान आश्रय सर्वोत्पादक वा उत्तम सन्तानजनक माता के लिये भी हो। मैं उन

दोनों की ( प्रयसा ) अन्नादि से वा प्रयत्नपूर्वक ( सपर्यामि ) सेवा करूं और उनसे मैं ( रत्नम् ) उत्तम धन और रमण करने योग्य सुख सामग्री की ( यामि ) पुत्रवत् याचना करूं, प्राप्त करूं।

उतो हि वां पूर्व्या आविविद्र ऋतावरी रोदसी सत्यवाचः।
नरश्चिद्वां समिथे शूरसातौ ववन्दिरे पृथिवि वेविदानाः ॥ ४ ॥

भा०—हे ( ऋतावरी ) सदा सत्य ज्ञान, सत्याचरण और धनैश्वर्य के स्वामी ( रोदसी ) दुष्टों को रुलाने वाले वा प्रजाजनों को धारा को तटों के समान व्यवस्था में रखने वाले और सत्योपदेश करने वाले विद्वान् स्त्री पुरुषो ! ( उतो हि ) निश्चय से ( पूर्व्याः ) पूर्व के विद्वानों में कुशल ( सत्यवाचः ) सत्य वाणी वाले ऋषि लोग ( वां ) आप दोनों को ( आविविद्रे ) आदरपूर्वक प्राप्त करें। हे ( पृथिवि ) सबके आश्रय और उत्पादक पृथिवी के समान पूज्य देवि ! और ( शूरसातौ ) शूरवीर पुरुषों के प्राप्त करने योग्य ( समिथे ) संग्राम में ( नरः चित् ) सभी उत्तम नेता लोग ( वां वेविदानाः ) आप दोनों को प्राप्त करते हुए सदा ( ववन्दिरे ) स्तुति और अभिवादन करें।

को अद्धा वेद क इह प्र वोचद्देवाँ अच्छा पथ्या३ का समेति।
ददृश्र एषामवमा सदांसि परेषु या गुह्येषु व्रतेषु ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—( इह ) इस संसार में ( अद्धात् ) साक्षात् सत्य, यथार्थ ( कः वेद ) कौन जानता है और ( कः ) कौन ( देवान् ) विद्वान् और ज्ञान कामना करने वाले शिष्यों को ( प्र वोचत् ) प्रवचन द्वारा उपदेश करता है। ( का ) कौनसा ( पथ्या ) सन्मार्ग ( सम् एति ) भली प्रकार उद्देश्य तक पहुंचता है। ज्ञाता, प्रवक्ता और सन्मार्ग सभी दुर्लभ हैं। (परेषां) पर, सर्वोत्कृष्टपरम सूक्ष्म ( गुह्येषु )गुहा अर्थात् बुद्धि द्वारा जानने योग्य गूढ़ ( व्रतेषु ) कर्मों में (या) जो ( अवमा ) अन्तिम चरम आधार-

भूत ( सदांसि ) आश्रय-स्थान, शरण, [विद्यास्थान वा शास्त्रसिद्धान्त हैं वे (एषाम्) इन विद्वानों को ही (ददृश्रे) दिखाई देते हैं। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

**कविर्नृचक्षा अभि षीमचष्ट ऋतस्य योना विघृते मदन्ती।**
**नाना चक्राते सदनं यथा वेः समानेन क्रतुना संविदाने ॥ ६ ॥**

भा०—जिस प्रकार (ऋतस्य योनौ) जलके आश्रयस्थान महान् आकाश में स्थित ( नृचक्षाः ) सबका द्रष्टा सूर्य ( विघृते ) विशेष रूप से प्रकाशमान्, विविध रूप से जलों को धारण करने वाली, ( मदन्ती ) उससे तृप्त करने वाले आकाश और पृथिवी दोनों को ( अभि अचष्ट सीम् ) सब प्रकार से प्रकाशित करता है ( वेः सदनं यथा नाना चक्राते ) पक्षी के घोंसले के समान वे दोनों गतिशील व्यापक सूर्य के गृहके समान गमनस्थान बना रहे हैं और ( समानेन क्रतुना ) एक जैसे कर्म, वृष्टि, जलदानादि, प्रजापालन आदि कार्य से ( संविदाने ) परस्पर एक दूसरे के साथ मिले रहते हैं उसी प्रकार ( ऋतस्य योनौ ) परम सत्कार के आश्रय में विद्यमान ( विघृते ) विशेष या विभिन्न २ प्रकार से ज्ञान और भौतिक तेज से प्रकाशित होने वाले ( मदन्ती ) एक दूसरे से या को सुख से तृप्त करते हुए जीव और प्रकृति को ( कविः ) क्रान्तदर्शी ( नृचक्षाः ) सब जीवों का द्रष्टा परमेश्वर ( सीम् ) सब प्रकार से ( अभिचष्ट ) साक्षात् देखता है। वे दोनों ही ( वेः ) गतिशील व्यापक आत्मा के और ( समानेन क्रतुना ) समान कर्म और ज्ञान से ( संविदाने ) मिल कर ( नाना सदनं ) नाना प्रकार के स्थान या गृह के समान (चक्राते) बनाते हैं। (२) इसी प्रकार सत्य व्यवहार और ऐश्वर्य से सम्पन्न एक गृह में रहते हुए विशेष तेज से युक्त, हृष्ट, प्रसन्न होते हुए स्त्री-पुरुष जो दोनों आदरपूर्वक समान कर्म और ज्ञान से परस्पर मिल कर रहते हुए ( वेः ) विद्वान् पुरुष के लिये अपने को नाना प्रकार से आश्रय बनावें। और उनको

वह क्रान्तदर्शी विद्वान् सब मनुष्यों का उपदेष्टा और द्रष्टा होकर सब प्रकार से उपदेश दे।

**स॒मा॒न्या वियु॑ते दू॒रेअ॑न्ते ध्रु॒वे प॒दे त॑स्थतु॒र्जाग॒रूके॑ ।**
**उ॒त स्वसा॑रा यु॒व॒ती भव॑न्ती॒ आदु॑ ब्रुवाते मिथु॒नानि॒ नाम॑ ॥ ७ ॥**

भा०—पुनः स्त्री-पुरुषों के स्वभाव कैसे हों? ( समान्या ) वे दोनों समान होकर एक दूसरे को प्रसन्न, तृप्त करने वाले, ( वियुते ) विशेष रूप, भिन्न प्रकृति होकर भी परस्पर संगत, ( दूरे-अन्ते ) दूर रहकर भी हृदय में बसने से समीप, अथवा (दूरे-अन्ते ) दूर चिरकाल के जीवन तक अवसान करने वाले होकर ( ध्रुवे पदे ) स्थिर स्थान में ( जागरूके ) सदा जागृत, सावधान होकर ( तस्थतुः ) रहें। वे दोनों ( युवती ) युवावस्था को प्राप्त ( स्वसारा ) स्वयं एक दूसरे को प्राप्त होने वाले अथवा बहिन बहिन या बहिन भाई के समान परस्पर प्रेमयुक्त ( भवन्ती ) रहते हुए ( आत् ) तदनन्तर ( मिथुनानि नाम ) परस्पर मिलकर रहने वाले जोड़ों २ के नाम (ब्रुवाते) कहते हैं, बतलाते हैं। अर्थात् नाना युगल नामों को धारण करते हैं।

**विश्वेदे॒ते जनि॑मा॒ सं वि॑विक्तो म॒हो दे॒वान्बिभ्र॑ती॒ न व्य॑थेते ।**
**एज॑द्ध्रु॒वं प॑त्यते॒ विश्व॒मेकं॒ चर॑त्पत॒त्रि विषु॑णं॒ वि जा॒तम् ॥ ८ ॥**

भा०—( एते ) वे दोनों, आकाश और पृथिवी के समान स्त्री और पुरुष ( विश्वा इत् जनिम ) सभी प्रकार के प्राणियों का ( संविविक्तः ) सम्यक् रीति से विवेचन करें, अथवा ( विश्वा जनिमा सं विविक्तः ) अपने समस्त पूर्व के जन्मों का अच्छी प्रकार विवेक करें। वे दोनों ( महः देवान् ) बहुत से दिव्य गुणों, विद्वान् पुरुषों को ( बिभ्रती ) धारण व पोषण करते हुए भी ( न व्यथेते ) कभी उद्विग्न, व्यथित या दुखी न हों। ( एकम् ) एक को तो ( विश्वं ) यह समस्त ( एजत् ध्रुवं ) जंगम

और स्थावर ( पत्यते ) प्राप्त होता है, और दूसरे को ( पतत्रि ) वेग से जाने वाला, ( विपुणम् ) सर्वत्र व्याप्त ( जातम् ) उत्पन्न संसार ( विचरत् ) विविध रूप से विचरता है या प्राप्त होता है। जैसे पृथिवी में स्थावर जंगम और आकाश में नाना पक्षिगण रहते हैं उसी प्रकार स्त्री का सब स्थावर सम्पत्ति और पशु आदि प्राप्त हों और पुरुष को शेष बाह्य सांसारिक धन्धे हों।

सना पुराणमध्येम्यारान्महः पितुर्जनितुर्जामि तन्नः।
देवासो यत्र पनितार एवैरुरौ पथि व्युते तस्थुरन्तः॥ ९॥

भा०—( यत्र ) जिसमें ( पनितारः ) व्यवहार स्तुति और उपदेश करने वाले। ( देवासः ) ज्ञानदाता विद्वान् जन वा कामनाशील पुरुष भी ( एवैः ) अपने ज्ञानों सहित ( उरौ ) बड़े भारी ( व्युते पथि ) निरावरण, खुले, विस्तृत वा विविध तन्तु सन्तानों से बने हुए मार्ग में रहकर ( अन्तः तस्थुः ) भीतर गृह में अतिथिवत् विराजते हैं। मैं उस ( सना ) सनातन, ( पुराणम् ) अति प्राचीन ( नः ) अपने ( तत् ) उस परम ( महः ) महान् पूजनीय, ( पितुः जनितुः जामि ) पालक और उत्पादक माता पिताओं के परस्पर सम्बन्ध को ( अधि एमि ) सदा याद रक्खूं। प्रत्येक विवाहित स्त्री, पुरुष अपने माता पिताओं के स्थिर दाम्पत्य भाव के उस पवित्र सम्बन्ध को स्मरण रक्खा करें जिससे सभी कामनावान् वा विद्वान् जन बड़े संसार मार्ग पर चलते हुए भी उस ज्येष्ठ गृहस्थाश्रम के भीतर वा ऊपर आश्रित होकर गृह के समान रहते हैं। उस आश्रम की महत्ता को जान कर स्त्री पुरुष स्थायी रूप से दाम्पत्य निभावें।

इमं स्तोमं रोदसी प्र ब्रवीम्यृदूदराः शृणवन्नग्निजिह्वाः।
मित्रः सम्राजो वरुणो युवान आदित्यासः कवयः पप्रथानाः॥१०॥२५

भा०—हे (रोदसी) आकाश और भूमि के समान परस्पर उपकारक,

एक पर एक आवरण, या रक्षा करने हारे, एक दूसरे को रोकने, एक दूसरे की इच्छा से प्राप्त होने वाले स्त्री पुरुषो! मैं आप दोनों के कर्त्तव्य-विषय में ही ( इमं स्तोमं ) इस वेदोपदेश को ( प्रब्रवीमि ) अच्छी प्रकार उपदेश करता हूं। और ( ऋदूदराः ) सत्य को अपने भीतर धारण करने वाले अथवा ( ऋदूदराः = मृदूदराः ) भीतर से कोमल हृदय वाले, ( अग्नि-जिह्वाः ) अग्नि के तुल्य अपने प्रकाश से अज्ञान अन्धकार में भी प्रकाशित करने वाली ज्ञानमयी वाणी को धारण करने वाले ( सम्राजः ) एक साथ विराज कर समान कान्ति से शोभा देने वाले, ( युवानः ) युवा, तरुण ( आदित्यासः ) सूर्यवत् तेजस्वी, अड़तालीस वर्ष के ब्रह्मचर्य को धारण करने वाले, ( कवयः ) क्रान्तदर्शी, परम मेधावी, ज्ञान और ऐश्वर्य का दान प्रतिदान करने वाले वा व्रत, दीक्षादि को धारने वाले, ( पप्रथानः ) प्रसिद्धि, सेवा, सन्तति द्वारा विस्तृत होने वाले और ( मित्रः वरुणः ) परस्पर मित्र, स्नेह भाव से रहने और एक दूसरे को वरण करने वाले श्रेष्ठ पुरुष स्त्री भी (शृणवत्) इस वेदोपदेश को श्रवण करें। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

**हिरण्यपाणिः सविता सुजिह्वस्त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानः।**
**देवेषु च सवितः श्लोकमश्रेरादस्मभ्यमा सुव सर्वतातिम् ॥११॥**

भा०—हे ( सवितः ) ज्ञान और वीर्य द्वारा शिष्यों और पुत्रों को उत्पन्न करने हारे विद्वान् पुरुष! एवं ( सवितः ) हे सूर्यवत् तेजस्विन्! आप ( देवेषु ) विद्या और सुख की कामना करने वाले शिष्यों और पुत्र-जनों के हित के निमित्त अथवा देवों, विद्वानों में विद्यमान, ( श्लोकम् ) वेद-वाणी वा ज्ञान-वाणी को ( अश्रेः ) सेवन कर, उसका अभ्यास कर और ( अस्मभ्यम् ) हमारे हित के लिये ( सर्वतातिम् ) सब प्रकार के उत्तम ऐश्वर्य ( आसुव ) प्रदान कर। ( सविता ) सर्वप्रकाशक सूर्य जिस प्रकार ( हिरण्यपाणिः ) हाथों के समान तेजोयुक्त किरणों वाला होने से 'हिरण्यपाणि' है उसी प्रकार तेजोमय धातु 'हिरण्य' को अपने

हाथ में रखने वाला या उस धातु से लोक-व्यवहार करने में समर्थ वा हित और रमणीय वचनों को प्रस्तुत करने वाली वाणी से युक्त ही ( सविता ) शिष्य पुत्रादि का उत्पादक विद्वान् आचार्य और पिता हो जो ( सुजिह्वः ) उत्तम वाणी वाला होकर (दिवः विदथे) ज्ञान प्रकाश के लाभ करने में ( त्रिः ) तीनों प्रकार से या ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ तीनों कालों में वा बाल, युवा, वार्धक्य तीनों दशाओं में ( पत्यमानः ) पति अर्थात् पालक के समान आचरण करता हो। ( २ ) इसी प्रकार सविता पुत्रोत्पादक पिता या पुरुष भी स्त्री का पति होता हुआ धन धान्यवान्, उत्तम मधुर वाक्, दिन में तीन बार यज्ञ में विराजे। प्रातः सायं और मध्याह्न में बलिवैश्वदेव यज्ञ में वेद का अभ्यास करे और सब सुखप्रद पदार्थ लावे।

सुकृत्सुपाणिः स्ववाँ ऋतावा देवस्त्वष्टावसे तानि नो धात्।
पूषण्वन्त ऋभवो मादयध्वमूर्ध्वग्रावाणो अध्वरमतष्ट ॥ १२ ॥

भा०—( सुकृत् ) उत्तम कार्य करने वाला और कर्मों को उत्तम रीति से करने वाला, ( सुपाणिः ) उत्तम हस्त वाला, सिद्धहस्त उत्तम पूजनीय व्यवहार और स्तुति वचनों वाला, ( स्ववान् ) धनैश्वर्य से युक्त और आत्मसामर्थ्य से युक्त, आत्मवान् जितेन्द्रिय ( देवः ) तेजस्वी, दाता ( त्वष्टा ) सूर्य, विद्युत् के समान प्रकाशक होकर पुरुष ( नः ) हमारे ( अवसे ) ज्ञान, रक्षा और तृप्ति के लिये ( तानि ) वे नाना प्रकार के पदार्थ ( धात् ) धारण करावे। हे ( ऋभवः ) ऋत सत्य वा धनैश्वर्य से प्रकाशित और सामर्थ्ययुक्त होने वाले, अति तेजस्वी विद्वान् पुरुषो! आप लोग (पूषण्वन्तः) पूषा, पृथिवी, वा नाना पोषक पदार्थों के पालक नायकों से युक्त होकर ( मादयध्वम् ) हमें प्रसन्न करो। ( ऊर्ध्व-ग्रावाणः ) उपदेष्टा पुरुष को सब से ऊंचा रखने वाले और ग्रावा अर्थात् क्षत्रिय को अपने ऊपर नायक वा अध्यक्ष नियत करने वाले प्रजाजन ही (अध्व-

रम् ) अपने में हिंसारहित, शान्तिमय व्यवस्थित समाज को ( अतष्ट ) बनावें ।

**विद्युद्रथा मरुत ऋष्टिमन्तो दिवो मर्या ऋतजाता अयासः ।**
**सरस्वती शृणवन्यज्ञियासो धाता रयिं सहवीरं तुरासः ॥१३॥**

भा०—( विद्युत्-रथाः ) विद्युत् शक्ति से युक्त रथ वाले वा विद्युत् के समान वेग से जाने वाले, ( मरुतः ) वायुवत् बलवान् ( ऋष्टिमन्तः ) नाना ज्ञान, गतियों वा शत्रुहिंसक शस्त्रों को धारण करने वाले, ( दिवः मर्या ) तेजस्वी सूर्य के समान नायक सेनापति एवं कामनावान् पुरुष के अधीन मनुष्य, शत्रुमारक ( ऋतजाताः ) ज्ञान और धनादि से प्रसिद्ध, ( अयासः ) ज्ञानवान्, निरन्तर चलने वाले, ( यज्ञियासः ) परस्पर सत्संग मैत्री आदि करके रहने वाले ( तुरासः ) वेगवान् पुरुष और ( सरस्वती ) उत्तम ज्ञान वाली स्त्री और वेगवती सेना ये सभी ( शृणवन् ) सुनें, ज्ञान ग्रहण किया करें और ( सहवीरं रयिम् ) वीर पुरुषों एवं पुत्रादि से युक्त ऐश्वर्य को ( धात ) धारण करें ।

**विष्णुं स्तोमासः पुरुदस्ममर्का भगस्येव कारिणो यामनि ग्मन् ।**
**उरुक्रमः ककुहो यस्य पूर्वीर्न मर्धन्ति युवतयो जनित्रीः ॥१४॥**

भा०—( स्तोमासः ) स्तुतिशील, विद्वान् ( अर्काः ) सूर्य के समान तेजस्वी और स्तुतिकर्त्ता लोग ( भगस्य इव कारिणः ) धन के निमित्त कार्यकर्त्ता भृत्य लोगों के समान ( पुरुदस्मम् ) बहुत से विघ्नों और दुष्ट पुरुषों को नाश करने में समर्थ ( विष्णुम् ) व्यापक, विस्तृत सामर्थ्य वाले पुरुष को ( यामनि ) राज्य के नियंत्रण के कार्य में ( ग्मन् ) प्राप्त करें ( यस्य ) जिस ( उरुक्रमः ) महान् आरम्भ वाले, पराक्रमी पुरुष की ( ककुहः ) सर्व दिशावासी बड़ी २ प्रजाएं भी ( पूर्वीः ) पूर्ण, समृद्ध वा अपने से पूर्व विद्यमान रहकर भी ( युवतयः जनित्रीः ) युवती स्त्रियों के सम.न ( न मर्धन्ति ) पीड़ित नहीं करतीं ।

इन्द्रो विश्वैर्वीर्यैः३ःपत्यमान उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
पुरन्दरो वृत्रहा धृष्णुषेणः सङ्गृभ्या न आ भरा भूरि पश्वः १५।२६

भा०—( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता राजा ( विश्वैः वीर्यैः ) सब प्रकार के बलों से ( पत्यमानः ) ऐश्वर्यवान् स्वामी पति के समान होता हुआ ( महित्वा ) महान् सामर्थ्य से ( उभे रोदसी ) राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों को ( आ पप्रौ ) सब प्रकार से पूर्ण करे। वह ( पुरंदरः ) शत्रुके गण को तोड़ने और अपने पुर को धारने वाला ( वृत्रहा ) विघ्नकारी दुष्टों का नाशक ( धृष्णु षेणः ) शत्रु पराजयकारी सेना का स्वामी होकर तू ( नः ) हमें ( संगृभ्य ) अच्छी प्रकार संग्रह करके (भूरि पश्वः आभर) बहुत पशु सम्पदा प्रदान कर। इति षड्विंशो वर्गः॥

नासत्या मे पितरा बन्धुपृच्छा सजात्यमश्विनोश्चारु नाम ।
युवं हि स्थो रयिदौ नो रयीणां दात्रं रक्षेथे अकवैरदब्धा ॥१६॥

भा०—( मे ) मुझ प्रजाजन के ( पितरौ ) पिता के समान राजा और सेनापति और गृह में वर और वधू, पति और पत्नी अपनी प्रजा का पालन करने वाले हों, वे दोनों ( नासत्या ) कभी असत्याचरण न करने वाले और मुख पर नाक के समान राष्ट्र में अग्रगण्य पद पर विराजमान हों और ( बन्धु पृच्छा ) सब मनुष्यों को बन्धु के तुल्य जान कर उनके सुख दुःख पूछने वाले हों। वे दोनों (अश्विनोः) सूर्य चन्द्र वा दिन और रात्रि दोनों के ( चारु नाम ) उत्तम स्वरूप के तुल्य ( सजात्य ) जाति के अनुरूप ही नाम, रूप धारण करते हुए ( युवं ) तुम दोनों ( नः ) हमें ( रयिदौ स्थः ) ऐश्वर्य के देने वाले रहो। तुम दोनों (अकवैः) अकुत्सित उत्तम कर्मों से ( अदब्धा ) कभी पीड़ित न होते हुए ( रयीणां दात्रं ) ऐश्वर्यों के दान कर्म की ( रक्षेथे ) रक्षा करो।

महत्तद्वः कवयश्चारु नाम यद्ध देवा भवथ विश्व इन्द्रे ।
सख ऋभुभिः पुरुहूत प्रियेभिरिमां धियं सातये तक्षता नः ॥१७॥

भा०—हे (कवयः) क्रान्तदर्शी विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों का (तत्) वह (महत्) बड़ा (चारु) उत्तम (नाम) स्वरूप और नाम है (यत्) जो (विश्वे) आप सब लोग (इन्द्रे) ऐश्वर्ययुक्त राजा के अधीन रहकर वा (इन्द्रे) अज्ञान-नाशक आचार्य के अधीन रहकर (देवाः भवथ) धन और विद्या एवं विजय की कामनावान् हो। हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसनीय ! तू (प्रियेभिः) प्रिय (ऋभुभिः) सत्य, ज्ञान वा धनों से समर्थ और प्रकाशित पुरुषों वा शिष्यों सहित (सखा) सबका सुहृत् होकर रह। हे विद्वानो ! हे वीरो ! तुम लोग (नः) हमें (इमां धियं) इस उत्तम बुद्धि वा धारणीय वाणी को (सातये) सत्यासत्य के विवेक और धनादि लाभ के लिये (तक्षत) प्रकट करो।

**अ॒र्य॒मा णो॒ अदि॑तिर्य॒ज्ञिया॒सोऽद॑ब्धानि॒ वरु॑णस्य व्र॒तानि॑।**
**यु॒योत॑ नो अनप॒त्यानि॒ गन्तोः॑ प्र॒जावा॑न्नः पशु॒माँ अ॑स्तु गा॒तुः॥१८॥**

भा०—हे विद्वान् लोगो ! आप लोग (यज्ञियासः) यज्ञ करने वाले, परस्पर दान, मैत्री, पूजादि करने वाले होओ और (नः) हमारा (अर्यमा) सूर्य के समान तेजस्वी शत्रु को वश करने वाला, न्यायाधीश वा राजा (अदितिः) अखण्ड शासक वा माता पिता के तुल्य हो। (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ पुरुष के (व्रतानि) कर्म, नियम भी (अदब्धानि) हिंसित न हों। आप सब लोग (नः) हमारे (गन्तोः) गमन करने योग्य मार्ग से (अनपत्यानि) हमारे सन्तानों के अयोग्य पापादि कर्मों को (युयोत) दूर करो। (नः) हमारा (गातुः) भूमि और गृह (प्रजावान्) प्रजाओं से युक्त और (पशुमान् अस्तु) पशुओं से समृद्ध होवे।

**दे॒वानां॑ दू॒तः पु॑रु॒ध प्रसू॒तोऽना॑गान्नो वोचतु स॒र्वता॑ता।**
**शृ॒णोतु॑ नः पृथि॒वी द्यौरु॒तापः॒ सूर्यो॒ नक्ष॑त्रैरु॒र्व१॒॑न्तरि॑क्षम्॥१९॥**

भा०—(देवानां) देव, ज्ञानों का प्रकाश करने और ऐश्वर्यों क

ज्ञान करने और तेजस्वी प्रकाशमान् पदार्थों के बीच में ( दूतः ) प्रतापी ज्ञानवान् ( पुरुध) बहुत से ज्ञानों, धनों को धारण करने वाला, (प्रसूतः) उत्तम ऐश्वर्यवान्, उत्तम ज्ञानादि से अभिषिक्त होकर ( अनागान् नः ) अपराधों से रहित हम लोगों को ( सर्वताता ) सब प्रकार से ( वोचतु ) उपदेश करे। ( पृथिवी ) पृथिवी के समान माता, ( द्यौः ) आकाश के समान पिता, ( सूर्यः ) सूर्य के समान विद्वान् पुरुष, ( नक्षत्रैः ) नक्षत्रों सहित ( उरु ) विशाल ( अन्तरिक्षम् ) अन्तरिक्ष के समान नित्य गुणों से विराजमान प्रभु ( उत आपः ) और जलों के समान शान्त स्वभाव के आप्तजन ये सब ( नः ) हमारी बात ( शृणोतु ) श्रवण करें। अथवा पृथिवी के समान सर्वाश्रय सर्वोत्पादक, आकाश के समान महान्, जलों के समान शान्तिदायक, सर्वव्यापक सूर्य के समान तेजस्वी, नक्षत्रों सहित अन्तरिक्ष के तुल्य अल्प-वीर्य जीवों वा व्यापक नित्य गुणों सहित सर्वान्तर्यामी परमेश्वर वा नक्षत्रवत् अधीन भृत्यों वा प्रदीप्त गुणों सहित राजा वा न्यायाध्यक्ष हमारे कार्य-व्यवहार श्रवण किया करे और न्याय किया करे।

शृण्वन्तु नो वृषणः पर्वतासो ध्रुवक्षेमास इळया मदन्तः।
आदित्यैर्नो अदितिः शृणोतु यच्छन्तु नो मरुतः शर्म भद्रम्॥२०॥

भा०—( वृषणः ) मेघों के समान जलवत् सुखों, ऐश्वर्यों की वर्षा करने वाले, ( पर्वतासः ) पर्वतों के समान अचल प्रजाओं का पालन करने वाले वा अर्थिजनों की कामनाओं को मेघों के तुल्य पूर्ण करने वाले, ( ध्रुवक्षेमासः ) स्थिर होकर रक्षा करने वाले, उच्च स्वभाव वाले ( इळया ) उत्तम वाणी, भूमि और कामना से ( मदन्तः ) स्वयं हर्षित एवं प्रसन्न होने वाले विद्वान् जन ( नः शृण्वन्तु ) हमारे व्यवहार श्रवण करें। ( अदितिः ) माता पिता के तुल्य अखण्ड शासन वाला राजा ( आदित्यैः ) अपने अधीन शासकों सहित ( शृणोतु ) कार्य श्रवण

करे। ( मरुतः ) विद्वान् शत्रुहन्ता वीर लोग ( नः ) हमें ( भद्रम् ) सुखकारक ( शर्म ) गृह ( यच्छन्तु ) प्रदान करें।

**सदा सुगः पितुमाँ अस्तु पन्था मध्वा देवा ओषधीः सं पिपृक्त। भगो मे अग्ने सख्ये न मृध्या उद्रायो अश्यां सदनं पुरुक्षोः ॥२१॥**

भा०—राष्ट्र में हे ( देवाः ) विद्वान् लोगो ! ( पन्थाः ) मार्ग ( सदा ) सदा ( सुगः ) सुखपूर्वक जाने योग्य और ( पितुमान् ) अन्न जल आदि प्राणपालक पदार्थों से युक्त ( अस्तु ) हो। अथवा ( पितुमान् पुरुषः सदा सुगः पन्था इव अस्तु ) अन्न का स्वामी, अन्नदाता पुरुष सदा सुखपूर्वक सबसे प्राप्त होने योग्य मार्ग के समान होना चाहिये। हे ( देवाः ) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग ( मध्वा ) अन्न, जल और मधु के साथ ( ओषधीः ) ओषधियों को ( संपिपृक्त ) मिलाकर उपयोग करो अथवा ( मध्वा सह ओषधीरिव यूयं संपिपृक्त ) अन्न, जल वा शहद के साथ ओषधियां जिस प्रकार मिलकर अधिक गुणकारी होती हैं उसी प्रकार आप लोग भी मधुर वचनों सहित प्रजाजनों के साथ सम्पर्क करो। ( मे भगः ) मेरा ऐश्वर्य हो। हे (अग्ने) विद्वन् ! हे नायक ! (मे सख्ये) मेरे साथ मित्रता करने पर तू ( न मृध्याः ) मुझे नष्ट मत कर। स्वयं भी नष्ट न हो। मैं प्रजाजन ( पुरुक्षोः ) बहुत अन्न के स्वामी तेरे ( रायः ) ऐश्वर्यों और ( सदनं ) गृह या शरण को ( उत् अश्याम् ) उत्तम रीति से प्राप्त करूं और उपभोग करूं। अथवा हे अग्रणी नायक ! तेरी ( सख्ये ) मित्रता में ( मे भगो न मृध्याः ) मेरा ऐश्वर्य नष्ट न हो।

**स्वदस्व हव्या समिषो दिदीह्यस्मद्र्यक् सं मिमीहि श्रवांसि। विश्वाँ अग्ने पृत्सु ताञ्जेषि शत्रूनहा विश्वा सुमना दीदिही नः॥२२॥२७॥**

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! अग्नि के समान स्वयं प्रकाशक ! एवं प्रतापिन् ! तू ( हव्या ) खाने योग्य और स्वीकार करने योग्य उत्तम २

( श्रवांसि ) अन्नों को ( स्वदस्व ) स्वाद ले, उपभोग कर। और तू ( हव्या ) ग्रहण करने योग्य ( श्रवांसि ) श्रवण करने योग्य उत्तम २ वचन उपदेश ( इषः ) उत्तम कामनाएं और इच्छाएं वृष्टि, अन्नादि और शक्ति ( सं दिदीहि ) अच्छी प्रकार प्रकाशित कर उनको ( सं मिमीहि ) भली प्रकार हमें उपदेश कर। तू ( पृत्सु ) संग्रामों में ( तान् विश्वान् ) उन २ समस्त शत्रुओं को (जेषि) विजय कर। (सुमनाः) शुभ चित्त और पूज्य ज्ञान से युक्त होकर ( विश्वा अहा ) सब दिनों ( नः दीदिहि ) हमें प्रकाशित कर। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

## [ ५५ ]

प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ उषाः । २—१० अग्निः । ११ अहोरात्रौ । १२—१४ रोदसी । १५ रोदसी द्यनिशौ वा । १६ दिशः । १७—२२ इन्द्रः पर्जन्यात्मा, त्वष्टा वाग्निश्च देवताः ॥ छन्दः— १, २, ६, ७, ६—१२, १६, २२ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, ८, १३, १६, २१ त्रिष्टुप् । १४, १५, १८ विराट्त्रिष्टुप् । १७ भुरिक् त्रिष्टुप् । ३ भुरिक् पंक्तिः । ५, २० स्वराट् पंक्तिः ॥

उषसः पूर्वा अध यद्व्यूषुर्महद्वि जज्ञे अक्षरं पदे गोः ।
व्रता देवानामुप नु प्रभूषन्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार ( गोः पदे ) आदित्य सूर्य के रूप में ( महत् अक्षरं विजज्ञे ) बड़ा भारी अविनाशी सामर्थ्य प्रकट होता है ( यत् ) जिससे ( अध ) अनन्तर ( पूर्वाः उषसः वि ऊषुः ) पूर्वकाल की अनादि परम्परा से होने वाली उषाएं भी प्रकट होती रही हैं। और ( देवानां ) अग्नि विद्युत् आदि चमकने वाले पदार्थों और मेघादि जीवनप्रद पदार्थों के तथा जीवन, भोगादि के कामना वाले जीवों के भी सब ( व्रता ) कर्म (उप प्र भूषन्) उसी से होते रहते हैं वह (देवानाम्) सब दिव्य पदार्थों

का ( एकम् ) एक ( महत् ) बड़ा भारी ( असुरत्वम् ) प्राणों में रमने वाला, प्राणप्रद सामर्थ्य है। उसी प्रकार ( गोः पदे ) वाणी के ज्ञान में ( महत् अक्षरं ) बड़ा भारी अविनश्वर ब्रह्म का ज्ञान प्रकट होता है (यत्) जिससे ( पूर्वा उषसः वि ऊषुः ) पूर्व या उपासक को प्रिय लगने वाली कान्तियां या ज्ञान-दीप्तियां प्रकट होती हैं। जिस वाणी या अक्षर रूप ब्रह्म से ( देवानां ) अध्यात्म में प्राणों और विद्वानों के समस्त कर्म भी प्रकट होते हैं। वही विद्वानों का एक बड़ा भारी ( असुरत्वम् ) प्राणों के भीतर रमनेवाला अद्वितीय ब्रह्म है।

**मो षू णो अत्र जुहुरन्त देवा मा पूर्वे अग्ने पितरः पदज्ञाः।**
**पुराण्योः सद्मनोः केतुरन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ २ ॥**

भा०—( देवाः ) विद्वान् कामनावान् और विजयादि के इच्छुक लोग अथवा मदमत्त, विलासी और आलसी लोग ( अत्र ) इस लोक में ( नः ) हम पर ( मो सु जुहुरन्त ) कभी बलात्कार न करें। हे ( अग्ने ) अग्रणी पुरुष! हे विद्वन्! ( पूर्वे ) पूर्व विद्यमान, ( पितरः ) पालक ( पदज्ञाः ) प्राप्तव्य उत्तम पद को जानने वाले पुरुष भी हम पर ( मा जुहुरन्त ) प्रहार वा बलात्कार न करें। ( पुराण्योः सद्मनोः अन्तः ) सनातन से चले आये आकाश और भूमि के समान राजसभा और प्रजा-जनसभा दोनों सभा-भवनों ( Houses ) के बीच ( केतुः ) कार्य-व्यवहारों के जानने और जनाने हारे सूर्य वा ध्वजा के समान तेजस्वी और उच्च आदर पद पर स्थित माननीय पुरुष ही ( देवानां ) सब विद्वानों के बीच ( एकम् ) एकमात्र ( असुरत्वम् ) बलवान् पुरुषों के शौर्य का ( महत् ) सबसे बड़ा अद्वितीय उपलक्षण हो। जो सब में जीवन-ज्योति और उत्साह का देने वाला हो।

**वि मे पुरुत्रा पतयन्ति कामाः शम्यच्छा दीद्ये पूर्व्याणि।**
**समिद्धे अग्नावृतमिद्वदेम महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ३ ॥**

भा०—( मे ) मेरी ( कामाः ) नाना अभिलाषाएं ( पुरुत्रा ) आत्मा को तृप्त एवं प्रिय, भोग्य-सुखों द्वारा प्रसन्न करने वाली इन्द्रियों वा बहुत से प्रिय पदार्थों में ( वि पतयन्ति ) विविध रूपों से जाती हैं। तो भी मैं अभिलाषाओं के पीछे न भाग कर ( पूर्व्याणि ) पूर्व विद्वानों द्वारा आचरित और उपदेश किये गये कर्मों को ( अच्छ ) साक्षात् ( दीद्ये ) करके प्रकाशित होऊं। उनका ही आचरण करूं। हम लोग ( समिद्धे अग्नौ ) अग्रणी नायक के अच्छी प्रकार तेजस्वी ज्ञानवान् रूप में प्रकट होने पर, उसके प्रकाश में रहकर सदा ( ऋतम् ) उस सत्य आचार और ज्ञान और परमेश्वर तत्व का ( वदेम ) उपदेश करें जो ( देवानाम् ) विद्वानों के लिये ( महत् ) बड़ा भारी ( एकम् ) एक अद्वितीय ( असुरत्वं ) प्राणों में बल उत्पन्न करने वाला है। ( २ ) स्थूलार्थ में—अग्नि के समक्ष हम सत्य प्रतिज्ञा करें, सत्य कहें। यह भाव भी टपकता है।

समानो राजा विभृतः पुरुत्रा शये शयासु प्रयुतो वनानु।
अन्या वत्सं भरति क्षेति माता महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार ( राजा ) प्रकाशमान् सूर्य सर्वत्र ( समानः ) समान भाव से प्रकाशित होने वाला, ( शयासु ) अव्यक्त रूप में व्यापक दिशा में ( शये ) व्यापता है। ( वना अनुप्रयुतः ) किरणों के अनुसार सब दिशाओं में फैलता, विभक्त होता, आकाश और भूमि दोनों में से एक ( द्यौः ) माता के समान उसको ( भरति ) अपनी कोख में धारण करती ( क्षेति ) एक उसके साथ रहती है अर्थात् प्रकाश लेती है। वह सब ( देवानां ) तेजस्वी पिण्डों के बीच एक अद्वितीय बड़ा भारी अन्धकार को दूर करने वाला बल है और जिस प्रकार अग्नि प्रकाशमान्, नाना पदार्थों में विद्यमान शान्त जलादि पदार्थों में अप्रकट रूप से मानो सोता सा है, ( वना अनु प्रयुतः ) काष्ठों में विशेष रूप से प्रकट होता, उसको

एक द्यौ या सूर्य धारण करता, माता पृथिवी उसको अपने भीतर रखती, इसी प्रकार ( राजा ) राजा, सबमें तेजस्वी और प्रजा को अनुरंजन करने वाला, ( समानः ) समस्त प्रजाओं में सबके प्रति एक समान व्यवहार करने हारा, मान आदर और ज्ञानसम्पन्न ( पुरुत्रा ) नाना प्रजाओं के बीच ( विभृतः ) विविध प्रकार से धारण किया जाता है। वह ( शयासु ) सोती हुई पत्नियों में पति के तुल्य ही ( शयासु ) प्रसुप्त या शान्तभाव से विद्यमान प्रजाओं के बीच में ( शये ) स्वयं भी प्रसुप्त या शान्तभाव से रहे। और वह ( वना अनु ) ऐश्वर्यों के अनुसार बन के तुल्य विभक्त सैन्य-दलों के ऊपर नायक रूप में (प्रयुतः) सर्वोपरि नियुक्त हो। उसके नीचे दो सभाएं हों जिनमें से ( अन्या ) एक उस ( वत्सं ) वन्दना करने योग्य, पूज्य सभापति को ( वत्सं ) बालक को माता बछड़े को गाय के समान ( भरति ) पुष्ट करती है। दूसरी (माता) प्रजाजन सभा वा भूवासिनी प्रजा उसको ( क्षेति ) बसाती है। वह ( देवानां ) तेजस्वी राजाओं वा वीरों के बीच में (एकं महद् असुरत्वम्) एक बड़ी भारी शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाली सत्ता है। अथवा— वह राजा ही ( अन्या ) अन्य विमाता के समान भी प्रजा को पुत्र के समान ( भरति-हरति ) पोषण भी कर सकता है वा लूट भी सकता है, और वही ( माता ) असली माता के समान प्रजा रूप पुत्र को ( क्षेति ) बसा भी सकता है। ( २ ) परमात्मपक्ष में—परमेश्वर, सज्ज्ञान वा सर्वत्र समान भाव से व्यापक, जीवों में भी व्यापक, शया अर्थात् प्रसुप्त अव्यक्त प्रकृति विकारों में भी अव्यक्त रूप से व्यापक होकर ( वना अनु ) नाना ऐश्वर्य विभूतियों में भिन्न रूप से प्रकट होता है। उस (वत्सं) व्यापक को चित्प्रकृति भी धारण करती है और (माता) जगदुत्पादक प्रकृति उसके साथ निवास करती है। वह परमेश्वर सब देवों, जीवों के बीच सबसे बड़ा एक अद्वितीय, जीवनप्रद, प्राणों का प्राण, सर्वसंहारक परम तत्व है।

आक्षित्पूर्वास्वपरा अनूरुत्सद्यो जातासु तरुणीष्वन्तः।
अन्तर्वतीः सुवते अप्रवीता महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥५॥२८॥

भा०—जो राजा ( पूर्वासु ) पहले प्राप्त हुई प्रजाओं के बीच ( आक्षित् ) आदरपूर्वक निवास करता है, और ( अपराः ) वह अन्य प्रजाओं को भी अपने वश करने की नित्य कामना करता है, वह (सद्यः) शीघ्र ही नयी ( जातासु ) प्राप्त हुई प्रजाओं में और ( तरुणीषु ) तरुण अर्थात् अपनी समृद्धि शक्ति से पूर्ण प्रजाओं के ( अन्तः ) बीच रहे जो प्रजाएं ( अप्रवीताः ) अभी अच्छी प्रकार रक्षित भी नहीं हैं वे भी ( अन्तर्वतीः ) राष्ट्रसीमा के भीतर होकर ( सुवते ) ऐश्वर्य से युक्त हो जाती हैं। यह सब ( देवानाम् ) विद्वान् विजयी पुरुषों का ही ( एकम् ) एकमात्र ( असुरत्वम् ) शत्रु को उखाड़ फेंकने का ( महत् ) बड़ा भारी सामर्थ्य है जिससे उक्त बातें होती हैं। ( २ ) परमेश्वरपक्ष में—परमेश्वर पहली, पिछली, नवजात, तरुण, अन्तर्वत्नी, गर्भिणी और कुमारी सब प्रजाओं में व्यापक और सबको उपदेश करता है। यह परमेश्वर का ही महान् प्राण जीवनप्रद सामर्थ्य है कि जो पहले अप्रवीत अर्थात् पुरुष से असंसृष्ट रहती हैं वे भी बाद में संसृष्ट होकर गर्भवती होकर पुत्रादि प्रसव करती हैं। यह देवों के बीच वही एक प्राणप्रद सामर्थ्य है। इत्यष्टाविंशो वर्गः॥

शयुः परस्तादध नु द्विमातावन्धनश्चरति वत्स एकः।
मित्रस्य ता वरुणस्य व्रतानि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ६ ॥

भा०—राजा के पक्ष में—राजा ( द्विमाता ) राजसभा और प्रजा-सभा दोनों को मातृवत् उत्पादक रखकर ( परस्तात् ) परे, दूर देश में भी ( द्विमाता वत्सः एकः ) दो माता पिता के बीच एक बच्चे के समान विना प्रतिबन्ध के विचरे। अथवा 'द्विमाता' एक ज्ञान कराने वाली माता राजसभा दूसरी शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाली सेना दोनों का स्वामी अथवा स्वराष्ट्र परराष्ट्र, मित्र शत्रु दोनों का मापने वाला, दोनों

को अपने वश करने वाला राजा दूर देश में भी ( शयुः ) सुखपूर्वक शयन करता हुआ निर्बन्ध होकर विचर सकता है। ( मित्रस्य वरुणस्य ) सब प्रजा के मित्र, प्रजा को मरण से बचाने वाले सर्वश्रेष्ठ, सर्वशत्रुवारक, सबसे प्रेमपूर्वक वरण करने योग्य पुरुष के ( ता व्रतानि ) वे नाना कर्म वह सब ( देवानाम् एकम् महत् असुरत्वम् ) विजयकामी, वीरों का एक अद्वितीय शत्रुच्छेदक बल है। ( २ ) परमेश्वर पक्ष में—( परस्तात् ) हमारे ज्ञानेन्द्रियों वा मन वाणी से परे अव्यक्त रूप में विद्यमान है। प्रकृति और जीव दोनों का जानने वा माता के समान अपने गर्भ में रख कर उनको प्रकट करने हारा है। वह स्वयं ( अबन्धनः ) बन्धनरहित है। ( वत्सः ) स्तुति, अभिवादन करने योग्य, परमपूज्य होकर ( एकः ) अद्वितीय व्याप रहा है। उस सर्वस्नेही, सर्वश्रेष्ठ के नाना अद्भुत कर्म हैं। वह परमेश्वर अद्वितीय, महान् सञ्चालक बल वाला है।

द्विमाता होता विदथेषु सम्राळन्वग्रं चरति क्षेति बुध्नः।
प्र रण्यानि रण्यवाचो भरन्ते महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ७ ॥

भा०—( द्विमाता ) भूमि और आकाश दोनों इह और पर-दोनों लोकों का बनाने वाला, ( होता ) सबको अपने में धारण करने और सब ऐश्वर्यों का देने वाला, (विदथेषु) यज्ञों, संग्रामों और विज्ञान करने योग्य पृथिव्यादि लोकों में ( सम्राट् ) सम्राट् के समान सब का स्वामी (बुध्नः) सबका आधार होकर ( अनु अग्रम् ) हरेक पदार्थ की चोटी २ और फुनगी तक में ( चरति ) विद्युत् के समान व्यापता और ( क्षेति ) निवास करता है। उसी को लक्ष्य करके ( रण्यवाचः ) रमणीय वाणी वाले विद्वान् ( रण्यानि ) रमणीय, मनोहर वाणियां ( प्र भरन्ते ) खूब प्रस्तुत करते हैं। वही ( देवानां महत् एकम् असुरत्वम् ) बड़ा भारी एक सर्वप्रेरक बल है। ( २ ) राजा की एक अपनी माता और दूसरी माता पृथिवी है।

शूर॑स्येव॒ युध्य॑तो अन्त॒मस्य॑ प्रती॒चीनं॑ ददृशे॒ विश्व॑मा॒यत् ।
अ॒न्तर्म॒तिश्च॑रति नि॒ष्षिधं॒ गोर्म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म् ॥ ८ ॥

भा०—( अन्तमस्य शूरस्य इव युध्यतः ) अति समीपस्थ युद्ध करते हुए शूरवीर पुरुष के जिस प्रकार ( विश्वम् आयत् प्रतीचीनं ददृशे ) जो कोई भी आता है वह उससे पराजित होकर पराङ्-मुख चला जाता है उसी प्रकार ( अन्तमस्य ) सर्वत्र व्यापक परमेश्वर के ( अन्तः ) भीतर ही यह समस्त ( विश्वम् ) विश्व ( आयत् ) आता और ( प्रतीचीनं दृश्यते ) उसके पीछे उत्पन्न हुआ दिखाई देता है। वह परमेश्वर ( मतिः ) ज्ञान-स्वरूप, सबका ज्ञाता, मेधावी होकर ( चरति ) सर्वत्र व्यापता है। वह ( देवानाम् ) देवों, पृथिव्यादि लोकों, विद्वानों के बीच ( एकम् ) एकमात्र अद्वितीय, ( महत् ) सबसे बड़ा ( गोः निष्षिधम् ) वेद वाणी का निर्गमस्थान, निकास, गतिमान् संसार का प्रभव और बड़ा भारी (असुरत्वम्) जीवन शक्ति देने वाला तत्व है। ( २ ) राजा ( मतिः ) मननशील होकर ( गोः अन्तः ) पृथिवी या राष्ट्र के भीतर सब दुःखों को तोड़ने के अधिकार का भोग करे।

नि वे॑वेति पलि॒तो दू॒त आ॒स्व॒न्तर्म॒हाँश्च॑रति रोच॒नेन॑ ।
वपूं॑षि॒ बिभ्र॑द॒भि नो॒ वि च॑ष्टे म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म् ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार (पलितः इव आसु ) वृद्ध राजदूत इन प्रजाओं के बीच आता और ( रोचनेन महान् चरति ) प्रकाश, तेज वा सर्वप्रियता से पूज्य होकर विचरता है और जिस प्रकार सूर्य ( पलितः ) सब का पालक (दूतः) सन्तापक होकर ( नि विवेति ) व्यापता ( आ अन्तः महान् रोचनेन चरति ) इन दिशाओं के बीच महान् सामर्थ्यवान् होकर बड़े भारी प्रकाश से सर्वत्र व्यापता है। वह हमारे (वपूंषि बिभ्रद् नः अभि विचष्टे) हमारे शरीरों को पुष्ट करता हुआ हमें सबको प्रकाशित करता है उसी प्रकार परमेश्वर ( पलितः ) सबका पालक वा पूर्ण ( दूतः ) सबसे उपा-

सना करने योग्य ( नि विवेति ) सबके भीतर व्यापक है। वह ( आसु अन्तः ) इन सब जीव प्रजाओं के बीच ( सबसे महान् ) सबसे बड़ा पूजनीय ( रोचनेन चरति ) प्रकाशरूप होकर व्यापता है, वह ( नः ) हम सबके ( वपूंषि ) देहों को ( बिभ्रद् ) भरण पोषण करता और ( नः अभि विचष्टे ) हमें सब प्रकार से उपदेश करता और सदा देखता है। वह ( देवानां एकम् महत् असुरत्वम् ) सब देवों के बीच एक मात्र महान् दोषनाशक जीवनप्रद तत्व परमेश्वर है। ( २ ) इसी प्रकार राजा, पालक, दुष्टों का तापक होकर प्रजाओं में तेज सहित विचरे। सबके देहों को पाले, सबको देखे, सन्मार्ग का उपदेश करे, अद्वितीय बलवान् बने।

**विष्णुर्गोपाः परमं पाति पाथः प्रिया धामान्यमृता दधानः।**
**अग्निष्टा विश्वा भुवनानि वेद महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१०।२९॥**

भा०—परमेश्वर ( विष्णुः ) सर्वत्र व्यापक ( गोपाः ) सबका रक्षक, सूर्यवत् सब गमनशील लोकों का पालक होकर ( परमं पाथः पाति ) सबसे उत्कृष्ट पाथस् अन्न पृथिवी आदि लोक वा परमपद को पालन करता है। और जो ( प्रिया धामानि ) प्रिय कमनीय धाम, तेजों नामों को ( अमृता ) नाशरहित प्रकृति, आकाशादि और जीवों को ( दधानः ) धारण करता हुआ ( अग्निः ) अग्नि के समान तेजस्वी स्वयं प्रकाश हो, ( ता ) उन ( विश्वा भुवनानि ) समस्त लोकों को ( वेद ) जानता है वह ( देवानाम् ) समस्त देवों, जीवों और पृथिव्यादि लोकों के बीच ( महत् एकम् असुरत्वम् ) बड़ा अद्वितीय सबका सञ्चालक, प्राणप्रद तत्व है। (२) सूर्य सबका रक्षक, परम सूक्ष्म ( पाथः ) जल को किरणों से पान करता है। प्रिय तर्पक तेजों और अन्नों को पुष्ट करता है। सब प्राणियों को, भुवनों को प्राप्त होता है, सबसे बड़ा जीवनप्रद है। (३) राजा भी व्यापक शक्ति वाला होने से विष्णु, रक्षक होने से गोपा होकर परमपद

या पालक सैन्य-बल को रक्खे, प्रजा प्रिय तेजों और अमृतमय अन्नों को धारण करे। सबका अग्रणी होकर सबको जाने। एकोनविंशो वर्गः ॥

**नाना॑ चक्राते य॒म्या॒३॒॑ वपूं॑षि॒ तयो॑र॒न्यद्रोच॑ते कृ॒ष्णम॒न्यत् ।**
**श्या॒वी च॒ यद॑रु॒षी च॒ स्वसा॑रौ म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म् ॥ ११ ॥**

भा०—( श्यावी च यत् अरुषी च ) कृष्ण वर्ण की रात्रि और तेजोमयी उषा दोनों जिस प्रकार ( स्वसारौ ) स्वयं गति करने वाली, दोनों बहनों के समान ( यम्या ) यम, सूर्य से उत्पन्न होकर या प्राणियों को जागृति और निद्रा में बांधने वाली, (नाना वपूंषि चक्राते) नाना रूप प्रकट करती हैं। ( तयोः अन्यत् रोचते ) उन दोनों में एक तेज से चमकता और ( अन्यत् कृष्णम् ) दूसरा कृष्ण अर्थात् अन्धकार स्वरूप है यह सब उस सूर्य के ही किरणों का बड़ा भारी महत्व है। उसी प्रकार ( श्यावी ) तमोमयी, राजस भाव से संवलित प्रकृति और ( अरुषी ) सत्वयुक्त अन्तःकरण वाली जीव या चित् सत्ता, दोनों ( स्वसारौ ) दो बहिनों या भाई बहनों के समान स्वयं अपने सामर्थ्य से गति करते हैं, अनादि सी होकर भी ( यम्या ) यम, सर्वनियन्ता परमेश्वर के अधीन रह कर ही ( नाना वपूंषि ) देहों और विकृत पञ्चभूतादि रूपों को बनाते वा उत्पन्न करते हैं। ( तयोः ) उन दोनों में से ( अन्यत् ) एक ( रोचते ) स्वयं प्रकाश आत्मा है और ( अन्यत् ) दूसरा प्रकृति तत्व ( कृष्णम् ) तमोमय वा जीव को भोगार्थ अपनी तरफ़ आकर्षण करने वाला है। इन सब देवों या जीवों के बीच वही परम पूज्य प्राणप्रद तत्व का विकास है। ( २ ) राजा के पक्ष में—श्यावी पृथिवी, अरुषी पराक्रम युत तेजस्विनी सेना दोनों बहने हैं।

**मा॒ता च॒ यत्र॑ दुहि॒ता च॑ धे॒नू स॑ब॒र्दुघे॑ धा॒पये॑ते समी॒ची ।**
**ऋ॒तस्य॒ ते सद॒सीळे अ॒न्तर्म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म् ॥ १२ ॥**

भा०—( यत्र ) जिसके आश्रय पर ( माता च दुहिता च )

पृथिवी और आकाश दोनों ही माता और कन्या के समान हैं पृथिवी सब प्राणियों को उत्पन्न करने से, अन्नादि द्वारा पालने से माता है और पृथिवी सबको अन्नादि से पूर्ण करने वा आकाशस्थ मेघ रूप ऊधस से वृष्टि जल का दूध के समान पान करने से दुहिता कन्या है। उसी प्रकार आकाश या सूर्य भी मेघादि का उत्पादक और वृष्टि, अन्न आदि द्वारा प्राणियों को जीवन देने से सबकी माता और सूर्य किरणों द्वारा भूमि जल को क्षीरवत् पान करने से 'दुहिता' कन्यावत् है। वे दोनों ही (धेनू) गौओं के समान दुग्धवत् अन्न, जल और वृष्टि आदि रस प्रदान करती हैं और प्राणियों का पालन पोषण करती हैं। वे दोनों (सबर्दुघे) क्षीरवत् रसों को दोहन करती हुई (समीची) परस्पर मिल कर एक दूसरे को (धापयेते) रस पिलाती हैं। (ऋतस्य सदसि अन्तः) ऋत गतिमान् सूर्य, संसार वा जल और अन्न का आश्रय अन्तरिक्ष के बीच यह सब (देवानां) किरणों के बड़े अद्वितीय बल का ही परिणाम है जिसको मैं (ईळे) वर्णन करता हूं। ठीक उसी प्रकार राजशक्ति और पृथिवी निवासिनी प्रजा दोनों भी माता कन्या के समान परस्पर एक दूसरे को पालें, पोसें, पूर्ण तृप्त करें (ऋतस्य सदसि अन्तः देवानां मध्ये तदेकं महत् असुरत्वम्) न्यायभवन के बीच में यह एक विद्वानों के बीच अद्वितीय, दोषनिवारक सत्य न्याय का बल है कि राजा प्रजा एक दूसरे को पुष्ट करते हैं, उसी की मैं (ईळे) प्रशंसा करता हूं।

**अन्यस्या॑ व॒त्सं रि॑ह॒ती मि॑माय॒ कया॑ भु॒वा नि द॑धे धे॒नुरूध॑ः**
**ऋ॒तस्य॒ सा पय॑सापिन्व॒तेळा॑ म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म् ॥ १३**

भा०—(धेनुः) गौ के समान रस बरसाने वाली आकाश या द्यौः (कया भुवा) जलमय भूमि के द्वारा (ऊधः) मेघ को (नि दधे) धारण करती है। उस समय वह जिस प्रकार (अन्यस्याः) अपने से भिन्न, दूसरी पृथिवी के (वत्सं) बछड़े के समान पृथिवी तल से उत्पन्न

मेघ को ( रिहती ) बछड़े को गौ के समान चाटती हुई उसी के समान वह ( मिमाय ) विद्युद् गर्जन रूप से ध्वनि करती है । तब ( सा इळा ) वह भूमि ( ऋतस्य पयसा ) सूर्य से उत्पन्न या अन्न के उत्पादक और पोषक जल से ( अपिन्वत ) खूब सिंचती है । यह सब ( देवानाम् ) सूर्य की किरणों का ही ( एकं महत् असुरत्वम् ) एक बड़ा भारी जीवनदान करने का विशेष धर्म है । ( २ ) राष्ट्रपक्ष में—विदेशी राजा के रहते हुए हानि दर्शाते हैं । कोई भी (धेनुः) गौ के समान भूमि, भूमिवासिनी प्रजा ( अन्यस्या ) दूसरी भूमि के ( वत्सं ) अभिवादनीय या बसने वाले राजा को ( रिहती ) प्राप्त कर के यदि ( मिमाय ) हर्ष की ध्वनि करे तो प्रश्न है कि वह ( कया भुवा ) किस कारण से ( ऊधः निदधे ) दुग्ध देने वाले स्तन के समान ऐश्वर्य देने वाला भाग धारण करे । ऐसी दशा में वह विदेशी राजा को किसी भी कारण से धन देने को वाध्य नहीं है, तो भी ( ऋतस्य पयसा ) सत्य न्याय के पोषक जल से वह ( इळा ) भूमि ( अपिन्वत ) सेचन पाकर वृद्धि पा सकती है । अर्थात् विदेशी शासक भी न्याय और सत्य के बलपर पराई भूमि को बढ़ा सकता है । यह 'सत्य न्याय' ही विजिगीषुओं का एक बड़ा भारी बल है ।

पद्या वस्ते पुरुरूपा वपूंष्यूर्ध्वा तस्थौ त्र्यविं रेरिहाणा ।
ऋतस्य सद्म वि चरामि विद्वान्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१४॥

भा०—( पद्या ) पैरों से जाने योग्य या सूर्य के किरणों से प्रकाशित होने योग्य भूमि जो ( पुरुरूपा ) नाना रूपों के ( वपूंषि ) शरीरों, शरीरधारियों को ( वस्ते ) अपने ऊपर धारण करती है और ( ऊर्ध्वा ) ऊपर की दिशा आकाश ( त्र्यविं ) तीनों लोकों के रक्षक और प्रकाशक सूर्य को ( रेरिहाणा ) स्पर्श करती हुआ ( तस्थौ ) स्थिर रहती है तो यह सब ( देवानाम् ) सूर्य की किरणों का ( महत् एकं ) एक बड़े भारी (असुरत्वम् ) जल प्रक्षेपक धर्म ही है । उसको ही मैं वास्तव में ( ऋतस्य

सद्म ) जल, अन्न का और सत्य प्रकाशक तेज का ( सद्म ) परम आश्रय विद्वान् ( वि चरामि ) जानता हुआ प्राप्त होऊं। ( २ ) उषापक्ष में—सूर्य की किरणों से उत्पन्न होने से पद्या है वह बहुत से देहों को आच्छादित करती, उदय होती हुई सूर्य को स्पर्श करती, चाटती, प्रेम करती है।

**प॒दे इ॑व॒ निहि॑ते द॒स्मे अ॒न्तस्तयो॑र॒न्यद्गुह्य॑मा॒विर॒न्यत्।**
**स॒ध्री॒ची॒ना प॒थ्या॒३॑सा विषू॑ची म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म् ॥१५॥३०**

भा०—आकाश और भूमि दोनों ( पदे इव ) मानों दो चरणों के समान ( निहिते ) स्थिर हैं, जिनके आश्रय मानों परमेश्वर का विराट् देह संसार स्थित है। वे दोनों ( दस्मे ) दर्शनीय, अद्भुत हैं वा वे दोनों ( दस्मे ) क्रम से अन्धकार और धनैश्वर्य का नाश करने वाली हैं। ( तयोः अन्तः ) उन दोनों के बीच में ( अन्यत् ) एक आकाश तो ( गुह्यम् ) गुहा अर्थात् अन्तरिक्ष में व्यापक है और दूसरा पद 'भूमि' ( आविः ) सर्व प्रकट और सबका रक्षक भी है। इन दोनों में से एक भूमि ( सध्रीचीना ) सब प्राणियों के साथ रहती और ( पथ्या ) अन्नादि देने से हितकारिणी वा सदा सूर्य के साथ पतिपरायणा पत्नी के समान रहने वाली और ( पथ्या ) धर्म पथ से न अतिक्रमण करने वाली सती साध्वी के समान 'पथ्या' स्वक्रान्तिपथ से न विचलित होने वाली है। और ( सा ) वह आकाश (विषूची) समस्त पदार्थों में व्यापक है। यह सब ( देवानाम् एकं महत् असुरत्वम् ) सूर्य की किरणों या दिव्य सूर्यादि पिण्डों का बड़ा भारी सामर्थ्य या महिमा है कि दोनों पदार्थ ऐसे हैं। त्रिंशो वर्गः ॥

**आ धे॒नवो॑ धुनयन्ता॒मशि॑श्वीः सब॒र्दुघा॑ः शश॒या अप्र॑दुग्धाः।**
**नव्या॑ नव्या युव॒तयो॒ भव॑न्तीर्म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म् ॥१६॥**

भा०—जिस प्रकार ( धेनवः ) गौओं के समान सौम्य स्वभाव की

( नव्याः नव्याः ) नयी नयी, अति मनोहर देह वाली कन्याएं ( युवतयः भवन्तीः ) युवति दशा को प्राप्त होती हुई ( अशिश्वीः ) पालक न रहकर ( सबर्दुघाः ) आनन्द सुख से पूर्ण करती हुई ( अप्रदुग्धाः ) अन्य से अभुक्त, ब्रह्मचारिणी रहकर ( शशयाः ) निश्चिन्त रहकर शयन करतीं, हुई ( आ धुनयन्ताम् ) इधर उधर जाती, या हृदय में आकर्षण उत्पन्न करती या पतियों के साथ प्रेम सम्बन्ध करती हैं यह ( देवानां ) उनकी कामना करने वाले पतियों के लिये ( एकं महत् ) एक बड़ा भी ( असुरत्वम् ) जीवनप्रद कार्य होता है। इसी प्रकार दिशाएं (धेनवः) मेघ द्वारा रस या जल वर्षा कर लोकों को रस पालन कराती हुई दुधार गौवों के समान हैं। वे ( अशिश्वीः ) बड़ी विस्तृत ( सबर्दुघाः ) जलों, रसों को दोहन पूर्ण और प्रदान करने वाली ( शशयाः ) व्यापक ( अप्रदुग्धाः ) किसी द्वारा पूर्ण या न दुही गई, सदा रसपूर्ण ( नव्याः नव्याः ) सदा नई, मनोहर ( युवतयः ) लोकों को संग्रह और विभिन्न २ करने वाली होकर रहतीं ( देवानां महत् एकं असुरत्वं ) सूर्य की किरणों के एक बड़े भारी महान् सामर्थ्य को ( आधुनयन्ताम् ) प्रकट करतीं, विस्तारतीं वा सर्वत्र नदी के समान जल धारा रूपों में प्रेरित करतीं वा बहाती हैं।

यदुन्यासु वृष॒भो रोर॑वीति॒ सो अ॒न्यस्मि॑न्यू॒थे नि द॑धाति॒ रेतः॑ ।
स हि क्षपा॑वा॒न्त्स भगः॒ स राजा॑ म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म् ॥१७॥

भा०—१७ से २२ तक मन्त्रों का देवता इन्द्र, पर्जन्यात्मा त्वष्टा और अग्नि है इसलिये यह मन्त्र वृषभ, राजा, मेघ, आत्मा, परमात्मा, सूर्य, शिल्पि और अग्नि, विद्युत् आदि पक्षों में संगत होता है। ( १ ) मेघ पक्षमें—( यत् ) जो ( वृषभः ) वर्षणशील मेघ ( अन्यासु वृषभः ) गौओं के बीच महा वृषभ के समान ( अन्यासु ) अन्य दिशाओं में ( रोरवीति ) गर्जता है। और ( अन्यस्मिन् ) दूसरे ही ( यूथे रेतः ) जो यूथ में वीर्य निषेक करते हुए वृषभ के समान ही अन्य दिक्-समूह में

( रेतः ) जल को ( नि दधाति ) बरसाता है। ( सः हि ) वह निश्चय से ( क्षपावान् ) जल क्षेपण शक्ति से युक्त रात्रिवत् अन्धकार करने वाला ( सः भगः ) सबके सेवन और भजन करने और सुख कल्याण करने वाला (सः राजाः) वह विद्युत् से प्रकाशित वा लोक मनोरञ्जन करने वाला है वह भी सूर्य किरणों का एक बड़ा सामर्थ्य ही है। ( २ ) सूर्य के पक्षमें—वह सब दिशाओं में मेघ द्वारा गर्जता अन्यों में जल वर्षाता है या तेज, प्रकाश देता है। वही रात्रि दिन करता, वह ऐश्वर्यवान् सूर्य, तेजस्वी, दीप्तिमान्, वह किरणों के बीच एकमात्र बड़ा तेज प्रकाश का प्रक्षेप्ता है। ( ३ ) राजा बलवान् होने से वृषभ है। वह सब प्रजाओं पर हुकम चलाता है या शत्रु पर गर्जता और अपने प्रजासमूह में बल या सुवर्णादि प्रदान करता है। वह शत्रुक्षय-कारिणी 'क्षपा', सेना का स्वामी, ऐश्वर्यवान् राजा है। वह सब विजिगीषुओं के बीच बड़ा भारी शत्रु-उच्छेदक बल है।

**वीरस्य नु स्वश्व्यं जनासः प्र नु वोचाम विदुरस्य देवाः।**
**षोळ्हा युक्ताः पञ्चपञ्चा वहन्ति महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१८॥**

भा०—हे ( जनासः ) मनुष्यो ! हम लोग ( वीरस्य ) शूरवीर, बलवान् पुरुष के ( स्वश्व्यं ) उत्तम अश्व या उत्तम अश्वारोही होने की बात का ( नु ) भी ( प्र वोचाम ) अच्छी प्रकार वर्णन करें, उसको वैसा होने का उपदेश करें। वे ( षोळ्हा युक्ताः ) छः छः लग कर भी ( पञ्च पञ्च ) पांच पांच होकर (आ वहन्ति) रथ को धारण करते हैं। ( देवाः ) विद्वान् लोग ( अस्य ) इस रहस्य को ( विदुः ) जानते और साक्षात् करते हैं। अध्यात्म में वह वीर 'इन्द्र' आत्मा है। इन्द्रियें घोड़े हैं। मन सहित वे छः हैं। परन्तु ज्ञान करने के लिये वे पांच ही प्रकार का ज्ञान करते हैं। यह सब ( देवानाम् महत् एकम् असुरत्वम् ) इन्द्रियों का एक बड़ा भारी प्रेरक होने का बल भी उसी इन्द्र आत्मा का है। ( २ )

संवत्सर इन्द्र सूर्य है उसके ६ ऋतु अश्व हैं। पर हेमन्त शिशिर मिलाकर पांच हो जाते हैं।

**देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः पुपोष प्रजाः पुरुधा जजान।**
**इमा च विश्वा भुवनान्यस्य महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥१९॥**

भा०—( त्वष्टा ) सबका प्रकाशक ( देवः ) स्वयं प्रकाशमान, सब सुखों का दाता, ( सविता ) सबका उत्पादक, ( विश्वरूपः ) सब प्रकार के जीवों और सब लोकों का उत्पन्न करने वाला होकर ( प्रजाः ) उत्पन्न प्रजाओं को ( पुरुधा ) बहुत प्रकारों से ( पुपोष ) पोषण करता और ( पुरुधा ) बहुत विध ( जजान ) उत्पन्न करता है। ( इमा च ) और ये ( विश्वा ) समस्त ( भुवनानि ) लोक भी ( अस्य ) इसके बनाये हैं। ( देवानाम् ) सब सूर्यादि प्रकाशमान पदार्थों के बीच वही (एकम्) एक, अद्वितीय ( महत् ) सबसे बड़ा ( असुरत्वम् ) प्राणप्रद और प्रेरक बल है। ( २ ) इसी प्रकार राजा सूर्यवत् तेजस्वी, प्रजाओं को नाना प्रकार से पाले, उसी के अधीन ये सब नाना लोक हों।

**मही समैरच्चम्वा समीची उभे ते अस्य वसुना न्यृष्टे।**
**शृण्वे वीरो विन्दमानो वसूनि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ २० ॥**

भा०—( वीरः ) वह सबका प्रेरक, बलवान् ! सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ( समीची ) परस्पर संगत ( चम्वा ) सब जगत् को अपने भीतर लेने वाली, ( मही ) बड़ी आकाश और भूमि दोनों को दो सेनाओं को बड़े वीर नायक के समान ( सम् ऐरत् ) एक साथ चला रहा है। ( ते उभे ) वे दोनों ( अस्य ) उसके ( वसुना ) प्राणियों और लोकों को बसाने के सामर्थ्य और ऐश्वर्य से ( नि-ऋष्टे ) खूब पूर्ण, व्याप्त हैं। वह सब प्रकार के ( वसूनि ) ऐश्वर्यों को धारण करता हुआ ( शृण्वे ) सर्वत्र सुना जाता है। वह ही ( देवानाम् महत् एकम् असुरत्वम् ) सूर्यादि देवों का एकमात्र अद्वितीय, बड़ा भारी प्रेरक बल है। राजा दो

परस्पर संगत सेना और भोक्ता, स्त्री पुरुष वर्गों को भी वश करता, वे उसी के ऐश्वर्य से युक्त होती हैं। वह सब विद्वानों और वीरों को संञ्चालन करने में समर्थ है।

**इमां च नः पृथिवीं विश्वधाया उप क्षेति हितमित्रो न राजा।**
**पुरःसदः शर्मसदो न वीरा महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥ २१॥**

भा०—जो परमेश्वर ( विश्वधायाः ) विश्व को धारण करने वाला ( नः ) हमारी ( इमां च ) इस ( पृथिवीं ) पृथिवी और उस महान् आकाश को भी ( हितमित्रः ) हितैषी मित्रों वाले ( राजा न ) राजा के समान ( हितमित्रः ) जीवों को मरने से बचाने वाले वायु, सूर्य, मेघादि को धारण करने वाला सर्व तेजस्वी होकर ( उपक्षेति ) सर्वत्र स्वयं व्यापता और सर्वत्र सब जीवों को बसाता है। उसके अधीन ( पुरः-सदः ) आगे जाने वाले और ( शर्मसदः ) गृहों में रहने वाले (वीराः न) राजा के वीर पुरुषों के समान ही ( वीराः ) विविध गतियों में जाने वाले जीव गण ( पुरः सदः ) सबके आगे चलने वाले और ( शर्मसदः ) देह रूप गृहों में रहने वाले हैं। वह प्रभु ( देवानाम् महत् एकम् असुरत्वम् ) सब सूर्यादि लोकों का एक अद्वितीय सञ्चालक बल है।

**निष्षिध्वरीस्त ओषधीरुतापो रयिं त इन्द्र पृथिवी बिभर्ति।**
**सखायस्ते वामभाजः स्याम महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥२२॥३१॥३॥**

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! परमेश्वर! ( पृथिवी ) यह पृथिवी ( निः षिध्वरी ) रोगों को दूर करने और सुख मङ्गल करने वाली ( ओषधीः ) ओषधियों को ( बिभर्त्ति ) पालती पोषती है। ( उत ) और ( आपः ) जलधाराएं भी ( ते ) तेरे ( रयिम् ) ऐश्वर्य को धारण करती हैं। ( देवानाम् ) देव, पृथिवी आदि के बीच तेरा यह ( एकम् महत् ऐश्वर्यम् ) एक बड़ा भारी ऐश्वर्य है। हम ( ते सखायः ) तेरे मित्र तेरे ( वामभाजः ) उत्तम कर्म और ऐश्वर्यादि गुणों को धारण करने

वाले ( स्याम ) हों । ( २ ) राजा के पक्ष में—पृथिवी और आप्तजन राजा के ऐश्वर्यों और शत्रुतापदायक सेनाओं को धारण करें । इत्येकत्रिंशो वर्गः । इति तृतीयोऽध्यायः ॥

---

# अथ चतुर्थोऽध्यायः

## [ ५६ ]

प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा ऋषयः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ४ विराट्त्रिष्टुप् । ५, ७ त्रिष्टुप् । २ भुरिक् पंक्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

**न ता मिनन्ति मायिनो न धीरा व्रता देवानां प्रथमा ध्रुवाणि ।**
**न रोदसी अद्रुहा वेद्याभिर्न पर्वता निनमे तस्थिवांसः ॥ १ ॥**

भा०—( देवानां ) दिव्य पदार्थों, विद्वानों और वीर पुरुषों के बीच में जो ( प्रथमा ) पहले ( ध्रुवाणि ) ध्रुव, स्थिर, नित्य ( व्रता ) कर्त्तव्य-कर्म और नियम हैं ( ता ) उनको ( न मायिनः ) न कुटिल मायावी वा बड़े बुद्धिशील और ( न धीराः ) न धीर प्रज्ञावान् पुरुष ही ( मिनन्ति ) उल्लंघन कर सकते हैं । और ( अद्रुहा ) परस्पर द्रोह न करने वाली ( रोदसी ) आकाश और भूमि के तुल्य परस्पर प्रेम युक्त स्त्री पुरुष वा गुरु शिष्य, प्रजा राजा भी उन नियमों को नहीं तोड़ें । और (न) न ( तस्थिवांसः ) स्थायी रूप से रहने वाले ( पर्वताः ) पर्वतों के समान अचल एवं प्रजाओं को पालन करने में समर्थ पुरुष भी ( वेद्याभिः ) प्राप्त करने योग्य प्रजाओं सहित ( निनमे ) विनय से स्वीकार करने के अवसर में उन व्रतों, कर्मों और धर्मों का उल्लंघन करें ।

**षड्भाराँ एको अचरन्बिभर्त्यृतं वर्षिष्ठमुप गाव आगुः ।**
**तिस्रो महीरुपरास्तस्थुरत्या गुहा द्वे निहिते दर्श्येका ॥ २ ॥**

भा०—जिस प्रकार (एकः) अकेला, एक सूर्य (अचरन्) स्वयं न चलता हुआ भी स्थिर रहकर (षट् भारान् बिभर्त्ति) सबके पालक पोषक ६ ऋतुओं को धारण करता है। (वर्षिष्ठम् ऋतम्) और खूब वर्षाने वाले जल को (गावः उप आ अगुः) किरणें प्राप्त करती हैं और (अत्याः उपराः) व्यापनशील मेघ (तिस्रः महीः आ तस्थुः) तीनों लोकों को आच्छादित करते हैं और (द्वे गुहा निहिते) तीनों लोकों में से दो अन्तरिक्ष में अदृश्य हो जाती हैं और (एका) एक यह पृथिवी ही (दर्शि) दिखाई देती रहती है। उसी प्रकार एक (अचरन्) स्वयं स्थिर आत्मा पांच इन्द्रिय और छठा मन इन छः (भारान्) विषयों को हरण करने और ज्ञानों के धारक साधनों को (बिभर्त्ति) धारण करता है। (गावः) ये इन्द्रियां विषयों तक जाने से 'गौ' हैं। वे सब (वर्षिष्ठम्) सबसे अधिक बड़े, सूर्यवत् तेजस्वी (ऋतम्) बलस्वरूप, सत्यमय, ज्ञानमय आत्मा को (उप आगुः) प्राप्त होती हैं। (अत्याः) व्यापने वाले या गतिशील (उपराः) विषयों में रमण करने वाले संकल्प विकल्प (तिस्रः महीः) चित्त की तीनों भूमियों को ही व्यापते हैं। (द्वे गुहा निहिते) दो भूमियां बुद्धि में ही स्थित रहती हैं और एक भूमि अर्थात् दशा, स्थिति, जाग्रत् (दर्शि) सर्व प्रत्यक्ष दिखाई देती है। (२) परमेश्वर स्थिर एवं अभोक्ता होकर पांच भूतों और एक महत्तत्व को धारण करता है। (गावः) सब लोकगण उसी सनातन पुरुष को प्राप्त हैं। तीनों लोकों में व्यापक आप व्याप्त है। (द्वे) दोनों कार्य-कारण दशाएं उसी के बुद्धिमय ज्ञान में स्थित हैं। एक कार्य दशा सबको प्रत्यक्ष होती है।

त्रिपाजस्यो वृषभो विश्वरूप उत त्र्युधा पुरुध प्रजावान्।
त्र्यनीकः पत्यते माहिनावान्त्स रेतोधा वृषभः शश्वतीनाम्॥३॥

भा०—जिस प्रकार (वृषभः) वर्षणशील सूर्य ही (त्रिपाजस्यः) तेज, विद्युत् और अग्नि, अथवा अप्, तेज, वायु और तीनों बलों को धारण

करता है। वह ( त्रि उधाः ) तीनों प्रकार के मेघों को उत्पन्न करता, सब को पालता है। वह ( त्रि-अनीकः ) तीनों प्रकार की जीवन शक्ति या ग्रीष्म, वर्षा, शरत् तीन ऋतुओं का स्वामी होकर महान् सामर्थ्य युक्त होकर (पत्यते) पति के समान होता है (शश्वतीनां रेतोधा) बहुत सी भूमियों पर जलप्रद होता है उसी प्रकार परमेश्वर (त्रिपाजस्यः) अग्नि, वायु, जल तीनों बलों को धारण करता है, ( वृषभः ) सब सुखों का वर्षक ( विश्वरूपः ) समस्त विश्वके रूप को धारण करने वाला, सब जीवों का उत्पादक और (त्र्युधाः) तीनों लोकों को रस देने वाले स्तनवत् धारण पोषण करने वाला, ( प्रजावान् ) प्रजाओं का स्वामी ( पुरुध ) बहुत से लोकों को धारण करता है। वह ( माहिनावान् ) बहुत से महान् सामर्थ्यों का स्वामी ( त्र्यनीकः ) प्रकृति के तीनों गुणों को धारण करने वाला होकर (पत्यते) प्रकृति के पति के समान है। ( सः ) वह ( रेतोधा ) प्रकृति में अपना वीर्य धारण कराने वाला होकर (शश्वतीनां) सनातन से चली आई प्रजाओं का उत्पादक है।

**अभीकं आसां पद्वीरबोध्यादित्यानामह्वे चारु नाम ।**
**आपश्चिदस्मा अरमन्त देवीः पृथग्व्रजन्तीः परि षीमवृञ्जन् ॥४॥**

भा०—( आसाम् ) इन समस्त प्रजा और प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं के बीच ( अभीके ) अति समीप, उनमें व्यापक रहकर ( पद्वीः ) उनमें गति उत्पन्न करने वाला और जीव प्रजाओं को प्राप्तव्य उत्तमाधम पद प्राप्त कराने वाला तथा (आदित्यानां) सूर्यादि लोकों का भी सञ्चालक परमात्मा मासों के बीच सूर्य के समान ही ( अबोधि ) जानने योग्य है। मैं उस परमेश्वर के ( चारु नाम ) सुन्दर नाम का उच्चारण करूं। (अस्मै चित् आपः ) सूर्य के कारण जिस प्रकार जलधाराएं मेघ से निकलती हैं उसी प्रकार ( अस्मैचित् ) इस परमेश्वर के बल से ( देवीः आपः ) दिव्य गुणों वाली प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु ( अरमन्त ) क्रीड़ा करते,

गति करते हैं। और सब प्रजाएं और लोक समूह भी ( पृथक् ) पृथक् २ अपने २ मार्ग पर ( व्रजन्तीः ) गमन करते हुए ( सीम् ) सब प्रकार से उसी परमेश्वर को ( परि अवृञ्जन् ) आश्रय किये रहती हैं। ( २ ) राजा सब प्रजाओं और तेजस्वी पुरुषों को पदाधिकार देता है। प्रजा उसको उत्तम नाम से पुकारें। सब प्रजाएं ( देवीः ) उसे चाहती हुई उसके साथ प्रसन्न रहें। अपने मार्ग पर चलती हुई भी उसका आश्रय करें।

त्री षधस्था सिन्धवस्त्रिः कवीनामुत त्रिमाता विदथेषु सम्राट्।
ऋतावरीर्योषणास्तिस्रो अप्यास्त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानाः॥५॥

भा०—वह परमेश्वर ! ( त्री सधस्था ) तीनों लोकों को रचता है। हे ( सिन्धवः ) जल धाराओं के समान प्रवाह से गति करने वाली प्रजाओ ! ( कवीनाम् ) सब विद्वानों के बीच में ( त्रिः ) तीन २ प्रकार से ( विदथेषु ) जानने योग्य पदार्थों में ( त्रिमाता ) जन्म, स्थान और नाम तीनों का रचने वाला है वही (सम्राट्) बड़े राजा के समान सम्यक् प्रकाशमान, तेजस्वी स्वामी है। वह ( ऋतावरीः ) 'ऋत' सत्य को धारण करने वाली ( योषणाः ) सती साध्वी ( पत्यमानाः ) पति की कामना करने वाली स्त्रियों के समान ( त्रिस्रः ) तीन ( दिवः ) भूमियों को ( अप्याः ) अन्तरिक्ष में प्राणों के या जीवों के उपयोगी ( त्रिः ) तीनों प्रकार से ( विदथे ) वश में किये हुए हैं। ( २ ) इसी प्रकार सम्राट् राजा तीनों प्रकार के लोकों को वश करता, विद्वानों की रक्षा करता, प्रजाओं को संग्राम में वश करता है।

त्रिरा दिवः सवितर्वार्याणि दिवेदिव आ सुव त्रिर्नो अह्नः।
त्रिधातु राय आ सुवा वसूनि भग त्रातर्धिषणे सातये धाः॥६॥

भा०—हे ( सवितः ) सबके उत्पादक प्रेरक परमेश्वर ! हे राजन् ! तू ( दिवेदिवे ) दिनों दिन ( नः ) हमें सूर्य के समान ( दिवः ) आकाश

से वृष्टि जलों के समान ( दिवः ) हमारे उत्तम व्यवहार में से ( वार्याणि ) उत्तम, वरण करने योग्य गुणों और ऐश्वर्यों को ( अह्नः त्रिः ) दिन में तीन २ वार ( आसुव ) प्राप्त कराओ । हे ( भग ) ऐश्वर्यवन् ! आप ( रायः ) ऐश्वर्य का ( त्रिधातु ) तीनों सुवर्ण, रजत, लोह से बने धन को ( आसुव ) प्रदान करें । हे ( त्रातः ) रक्षक ! हे ( धिषणे ) बुद्धिमति राजसभे ! तू ( नः ) हमें ( वसूनि ) नाना ऐश्वर्य ( सातये ) प्राप्त करने के लिये ( धाः ) धारण कर ।

त्रिरा दिवः सविता सोषवीति राजाना मित्रावरुणा सुपाणी ।
आपश्चिदस्य रोदसी चिदुर्वी रत्नं भिक्षन्त सवितुः सवाय ॥७॥

भा०—( सविता ) सर्वोत्पादक परमेश्वर और राजा ( दिवः ) ज्ञान-प्रकाश से (राजाना) प्रकाशमान, ( मित्रावरुणा ) स्नेही और परस्पर वरण करने वाले ( सुपाणी ) उत्तम हाथ, व्यवहार और वाणी वाले स्त्री पुरुषों को ( त्रिः ) तीन २ वार ( सोषवीति ) प्रेरित किया करें । ( अस्य ) उससे ( अस्य चित् ) आप्तजन ( रोदसी चित् ) आकाश और पृथिवी के समान स्त्री पुरुष और ( उर्वी ) भूमिनिवासनी प्रजा भी ( सवितुः ) प्रेरक मुख्य राजाके ( सवाय ) अभिषेक या ऐश्वर्यवृद्धि के लिये ( रत्नं ) रमण योग्य उत्तम ऐश्वर्य की ( भिक्षन्त ) याचना करते हैं ।

त्रिरुत्तमा दूणशा रोचनानि त्रयो राजन्त्यसुरस्य वीराः ।
ऋतावान इषिरा दूळभासस्त्रिरा दिवो विदथे सन्तु देवाः ॥८॥१॥

भा०—( असुरस्य ) सबको जीवन देने वाले, दोषों के नाशक परमेश्वर के और सर्वशत्रुनाशक राजा के ( त्रिः उत्तमा ) तीन उत्तम ( दूनशा ) कभी नष्ट न होने वाले ( रोचनानि ) प्रकाशमान तत्व, सूर्य, विद्युत् और अग्नि हैं । वे तीनों ( वीराः ) वीरों के तुल्य ही ( राजन्ति) प्रकाशित होते हैं । ( देवाः ) विद्वान् लोग और विजयेच्छु लोग सूर्य

किरणों के समान ( ऋतावानः ) सत्य, न्याय रूप प्रकाश और शान्ति रूप जल से युक्त ( इषिराः ) प्रबल इच्छावान् ( दूळभासः ) दूर तक प्रकाश देने वाले, एवं दुर्दमन करने योग्य, अहिंसक ( दिवः ) दिन में ( त्रिः ) तीन वार ( विदथे ) ज्ञान प्राप्ति और ( विदथे ) संग्राम में ( आ सन्तु ) सफल हों। इति प्रथमो वर्गः ॥

## [ ५७ ]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ विश्वे देवा देवताः ॥ छन्दः—१, ३, ४ त्रिष्टुप् । २, ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

**प्र मे विविक्वाँ अविदन्मनीषां धेनुं चरन्तीं प्रयुतामगोपाम् ।**
**सद्यश्चिद्या दुदुहे भूरि धासेरिन्द्रस्तदग्निः पनितारो अस्याः ॥१॥**

भा०—( अगोपाम् ) अरक्षित ( धेनुं ) गौ के समान स्वतन्त्र ( प्रयुतां ) असंख्य ज्ञानों वाली ( धेनुं ) वाणी को ( चरन्तीं ) व्याप्त होने वाले ( मे मनीषां ) मेरी उत्तम प्रज्ञा या मति को ( विविक्वान् ) विवेकी पुरुष ( प्र अविदन् ) अच्छी प्रकार प्राप्त करे ( या ) जो ( सद्यः ) शीघ्र ही ( धासेः ) धारण करने वाले को (भूरि) बहुत सुख ( दुदुहे ) प्रदान करती है। अथवा जो शीघ्र ही बहुत ( धासेः ) धारण करने योग्य ज्ञान को ( दुदुहे ) देती और ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् पुरुष ( अग्निः ) ज्ञानी, विनयशील और ( पनितारः ) उपदेश स्तुति और व्यवहार द्वारा उपभोग लेने वाले लोग ( अस्याः ) इस वाणी के ( तत् ) इस धारण योग्य ज्ञान को प्राप्त करते हैं।

**इन्द्रः सु पूषा वृषणा सुहस्ता दिवो न प्रीताः शशयं दुदुह्रे ।**
**विश्वे यदस्यां रणयन्त देवाः प्र वोऽत्र वसवः सुम्नमश्याम् ॥२॥**

भा०—( विश्वे देवाः ) समस्त प्रकाशमान किरण जिस प्रकार ( अस्यां ) इस पृथिवी पर (रणयन्त) रमण या क्रीड़ा करते हैं वे ( दिवः

न ) सूर्य प्रकाशों के समान ( प्रीताः ) प्रिय, एवं जल द्वारा आकाश को पूर्ण करने वाले होकर ही ( शशयं ) आकाश में व्यापक मेघ को उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार ( इन्द्रः ) सूर्य, विद्युत् और ( पूषा ) सर्व पोषक पृथिवी ( वृषणा ) जल वृष्टि करने वाले और ( सुहस्ता ) सुखपूर्वक, एक दूसरे से प्रसन्न हो ( शशयं दुदुह्रे ) मेघ और अन्न को उत्पन्न करते हैं। ( वसवः ) सब प्राणिगण उन किरणों का सुख प्राप्त करते हैं इसी प्रकार ( यत् देवाः ) जो विद्वान् पुरुष ( अस्यां ) इस वाणी में ( रण-यन्त ) रमण करते हैं वे ( दिवः न प्रीताः ) सूर्य के प्रकाशों के समान प्रसन्न होकर वा ( दिवः न ) सूर्य के समान तेजस्वी गुरु से (प्रीताः) ज्ञान-तृप्त होकर ( शशयं सुम्नम् सु दुदुह्रे ) अन्तर्हृदयाकाश में व्याप्त सुख को प्रदान करते हैं। और ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान्, ज्ञानवान् विद्वान् वा परमेश्वर और ( पूषा ) सर्व पोषक, आचार्य दोनों ( वृषणा ) ज्ञान के वृष्टि करने वाले ( सुहस्ता ) उत्तम दानशील हाथों से युक्त वा सुप्रसन्न होकर ( शशयं सुम्नं दुदुह्रे ) सूर्य पृथिवी के समान ही अन्तर्व्याप्त सुख उत्पन्न करते हैं। और हे ( वसवः ) आचार्य के अधीन निवास करने वाले विद्वान् जनों और घरों में बसे गृहस्थ जनो ! ( वः ) आप लोगों के ( सुम्नम् ) उत्तम मननयोग्य ज्ञान और सुख को मैं ( अत्र ) यहां ( अश्याम् ) उपभोग करूं। ( २ ) राष्ट्रपक्षमें—इन्द्र राजा, पूषा पृथिवी निवासी प्रजागण दोनों 'सुहस्त' हैं एक युद्ध विद्या में, दूसरे कृषि व्यापार आदि में और कर आदि देने में कुशल वे दोनों और 'वसु' अर्थात् राष्ट्र को बसाने, उसमें वसने वाले सभी सुख, समृद्धि पूर्ण करें।

**या जामयो वृष्ण इच्छन्ति शक्तिं नमस्यन्तीर्जानते गर्भमस्मिन्।**
**अच्छा पुत्रं धेनवो वावशाना महश्चरन्ति बिभ्रतं वपूंषि ॥ ३ ॥**

भा०—जिस प्रकार ( जामयः ) वर्षाकाल में उत्पन्न होने वाली ओषधियां ( वृष्णः शक्तिम् इच्छन्ति ) वर्षने वाले मेघ या सूर्य के सेचन

सामर्थ्य को चाहती हैं और ( अस्मिन् गर्भम् जानते ) इसके आश्रय ही अपने भीतर पुष्प, फलादि धारण रूप गर्भ हुआ जानती हैं उसी प्रकार (जामयः) जिन स्त्रियों में पुत्र उत्पन्न हो सके ऐसी ( याः ) जो युवतियां ( वृष्णः ) बलवान् वीर्य सेचन में समर्थ युवा पुरुष की ( शक्तिं ) पुत्रोत्पादन सामर्थ्य को ( इच्छन्ति ) स्वयं प्राप्त करना चाहतीं हैं वे ( नमस्यन्तीः ) विनय से उसका आदर सत्कार करती हुईं ( अस्मिन् ) उसके अधीन रहकर ही ( गर्भम् ) गर्भ धारण करने की ( जानते ) अनुमति दें, और ( धेनवः ) गौएं जिस प्रकार ( वावशानाः ) कामना करती हुईं वीर्य सेचक वृषभ की कामना करतीं और उसके द्वारा गर्भ धारण करतीं और बड़ा उत्तम बछड़ा जनती हैं उसी प्रकार ( वावशानाः ) कामना करती हुईं स्त्रियें भी ( वपूंषि बिभ्रतं ) उत्तम शरीरावयवों को धारण करने वाले ( महः ) बड़े उत्तम, पूज्य ( पुत्रं ) पुत्र को ( चरन्ति ) प्राप्त करती हैं। ( २ ) राष्ट्रपक्ष में—(जामयः) गतिशील, विस्तृत या बहिनों के समान प्रीति युक्त प्रजाएं बलवान् राजा के शक्ति को अपने में रखना चाहती हैं वे उसके अधीन आदर करती हुईं उसके ( गर्भम् ) राष्ट्र ग्रहण या वशीकरण बल को स्वीकार करें। बड़े डील धारण करने वाले उसको ही वे पुत्र के समान प्रिय जानकर प्राप्त करें।

अच्छा विवक्मि रोदसी सुमेके ग्राव्णो युजानो अध्वरे मनीषा।
इमा उ ते मनवे भूरिवारा ऊर्ध्वा भवन्ति दर्शता यजत्राः ॥४॥

भा०—मैं ( मनीषा ) उत्तम बुद्धि से ( अध्वरे ) हिंसारहित परस्पर घात या विनाश न करने वाले कार्य में ( ग्राव्णः ) उत्तम उपदेष्टा, लोगों को ( युजानः ) संयुक्त करता हुआ ( सुमेके ) उत्तम रीति से वीर्य निषेकादि करने में समर्थ (रोदसी) सूर्य और भूमि के समान युवा स्त्री पुरुष दोनों को ( अच्छ विवक्मि ) अच्छी प्रकार उपदेश करता हूं। हे पुरुष ! ( ते मनवे ) तुझ मननशील के लिये ( इमाः ) ये स्त्रियें ( भूरि-

चाराः ) वहुत प्रकार के सुख धनादि को चाहती हुईं (दर्शताः) दर्शनीय, उत्तम रूप वाली ( यजत्राः ) सत्संग, मैत्री करने वाली होकर भी (ऊर्ध्वाः) अग्नि की ज्वालाओं के समान ऊपर रहने वाली, आदरणीय ही ( भवन्ति ) होती हैं ।

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैता पतिभिर्देवरैस्तथा ।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥

या ते॑ जि॒ह्वा मधु॑मती सु॒मेधा॒ अग्ने॑ दे॒वेषू॒च्यत॑ उरू॒ची ।
तये॒ह विश्वाँ॒ अव॑से॒ यज॑त्राना सा॑दय पा॒यया॑ चा॒ मधू॑नि ॥ ५ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) विद्वान् स्त्री वा पुरुष ! वा हे परमेश्वर ! ( या ) जो ( ते ) तेरी ( जिह्वा ) वाणी और ( मधुमती ) मधुर वचनों से युक्त ( सुमेधा ) उत्तम मननशक्ति से युक्त ( उरूची ) बहुत से ज्ञानों को धारण करने वाली ( देवेषु ) विद्वान् पुरुषों के बीच में ( उच्यते ) कही जाती है ( तया ) उस वाणी और प्रज्ञा से तू ( विश्वान् ) समस्त ( यजत्रान् ) पूज्य, सत्संग योग्य पुरुषों को ( अवसे ) ज्ञान प्राप्त करने और रक्षा के निमित्त ( आसादय ) प्राप्त कर और उनको ( मधूनि ) नाना मधुर रसों के समान मधुर वाणी के रस भी ( पायय ) पान करा ।

या ते॑ अग्ने॒ पर्व॑तस्येव॒ धारास॑श्चन्ती पी॒पय॑द्देव चि॒त्रा ।
ताम॒स्मभ्यं॒ प्रम॑तिं जातवेदो॒ वसो॒ रास्व॑ सुम॒तिं वि॒श्वज॑न्याम् ।६।२।

भा०—हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक ! हे विद्वन् ! तेजस्विन् ! ( पर्वतस्य इव धारा ) पर्वत से निकलती नदी या मेघ से निकलती धारा या मेघ से निकलती वाणी, गर्जना जिस प्रकार ( असश्चन्ती ) अनासक्त ( निःसङ्ग ) रहती हुई, ( चित्रा ) अद्भुत मार्ग से गति करती हुई ( पीपयत् ) अन्नादि ओषधियों को पुष्ट करती है उसी प्रकार ( या ) जो ( पर्वतस्य ) पालन करने वाले, या पर्वों अध्यायों से युक्त ग्रन्थ के समान ज्ञान-

वान् ( ते ) तेरी ( धारा ) ज्ञान धारण करने वाली ( चित्रा ) आश्चर्यकारिणी अद्भुत वाणी या शुभ मति ( पीपयत् ) सबको तृप्त करती है ( ताम् ) उस ( प्रमतिं ) उत्तम कोटि के ज्ञान से युक्त ( विश्व-जन्याम् ) समस्त जनों की हितकारिणी ( सुमतिं ) शुभ मति को या शुभ ज्ञानमयी वाणी को ( देव ) हे विद्वन्! हे ज्ञानदातः! हे ( जातवेदः ) समस्त उत्पन्न पदार्थों के जानने हारे! हे ( वसो ) अपने अधीन प्रजाओं और शिष्यों का बसाने हारे! तू ( अस्मभ्यं रास्व ) हमें प्रदान कर। ( २ ) पालक राजा की धारा, वाणी, हम सैनिकों को बलवान् और शुभ ज्ञानयुक्त सर्वजन हितकारिणी हो। इति द्वितीयो वर्गः ॥

## [ ५८ ]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ८, ६ त्रिष्टुप् । २, ३, ४, ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ भुरिक् पंक्तिः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

**धेनुः प्रत्नस्य काम्यं दुहानान्तः पुत्रश्चरति दक्षिणायाः ।**
**आ द्योतनिं वहति शुभ्रयामोषसः स्तोमो अश्विनावजीगः ॥१॥**

भा०—जिस प्रकार ( धेनुः दुहाना ) गौ दूध देती है और ( दक्षिणायाः अन्तः पुत्रः चरति ) दक्षिणा में देने योग्य गौ के साथ बच्छड़ा भी दक्षिणा के बीच में ही जाता है। और जिस प्रकार उषा ( धेनुः ) सबको रात्रि के अवसान में तुषार विन्दु रूप रस पिलाने हारी ( प्रत्नस्य ) अति पुरातन सूर्य के ( काम्यं ) कमनीय रूप को ( दुहाना ) उत्पन्न करती हुई उषा, प्रभातवेला होती है। उसी प्रकार वाणी रूप कामधेनु ( प्रत्नस्य ) अति पुरातन सनातन परमेश्वर के ( काम्यं ) कान्तिमय, सब के कामना योग्य ज्ञानमय स्वरूप एवं हिताहित प्राप्ति-परिहारादि के ज्ञान को ( दुहाना ) प्रदान करती रहती है। और ( दक्षिणायाः ) 'रस' अर्थात् कर्म और ज्ञान की स्वामिनी ज्ञानप्रद उस वाणी के ( अन्तः ) भीतर ही

( पुत्रः ) उससे पुत्रवत् उत्पन्न ज्ञानावबोध उसके ( अन्तः ) उषा के भीतर से उत्पन्न या प्रकट सूर्य-प्रकाश के समान (चरति) प्रकट होता है। और जिस प्रकार ( शुभ्रयामा ) शुक्ल श्वेत पक्ष की, रात्रि ( द्योतनिं ) चमकती चांदनी को ( आवहति ) धारण करती है और जिस प्रकार ( शुभ्रयामा ) भासमान, चमकते प्रहरों वाला दिन या उषा ( द्योतनिं ) सूर्य की दीप्ति को ( आवहति ) सर्वत्र फैलाता है उसी प्रकार ( शुभ्रयामा) अर्थों को भासित करने वाले विस्तार या पदसंन्निवेश से युक्त वाणी ( द्योतनिं ) अर्थप्रकाश से युक्त विद्या को ( आवहति ) स्वयं धारती और दूसरों तक पहुंचाती है। जिस प्रकार (उषसः स्तोमः) उषा का मधुर संगीत या उषाकालिक स्तुतिपाठ ( अश्विनौ ) दिन और रात्रि दोनों को ( अजीगः ) जगाता, प्रकट करता है उसी प्रकार ( उषसः ) कान्ति-युक्त तेजस्विनी पापदाहक पवित्र वाणी वेदमयी ( अश्विनौ ) सूर्य, चन्द्र वा दिन रात्रि तुल्य नरनारियों को (अजीगः ) जगावे, जागृत, प्रबुद्ध करे। राष्ट्रपक्ष में—धेनुः सर्व रसदात्री, अन्नदात्री धेनु पृथिवी सर्वश्रेष्ठ राजा को उसका कामना योग्य पदार्थ प्रदान करती है। और वह दानशील बलवती सेना वा प्रजा के बीच में उसके पुत्र के समान निर्भय बिचरे। तब वह ( शुभ्रयामा ) शुद्ध प्रकाशित पुण्यमय, निर्दोष सुन्दर 'याम' अर्थात् नियम प्रबन्ध से युक्त पृथिवी अपने में प्रकाशक तेजस्वी राजा को धारण करे। इस प्रकार ( उषसः ) अन्धकार नाशक उषा तुल्य शत्रु संतापकारी सेना या प्रजा का ( स्तोमः ) समूह या बल अधिकार ( अश्विनौ ) अश्व अर्थात् राष्ट्र के स्वामी स्त्री पुरुषों, राजा रानी, राजा या सभा दोनों को ( अजीगः ) जागृत करता, उनको चमकाता या प्राप्त होता है। ( २ ) कमनीय उत्तम स्त्री या वधू के पक्ष में—वधू पुरुष की सब कामनाएं पूर्ण करने से ( काम्यं दुहाना धेनुः ) कामदुघा धेनु के समान है, वही कार्यकुशल दक्ष प्रजापति गृहस्थ पुरुष की स्वामिनी

होने से दक्षिणा है अथवा यज्ञ के अनन्तर दीजाने वाली दक्षिणा के समान आदरपूर्वक दी जाने योग्य होने से व दक्षिणा है उसके ही भीतर ( पुत्रः ) वह पुरुष पुत्र रूप से उसके गर्भ में ( चरति ) आता है । वह ( शुभ्रयामा ) बधू भासमान, अलंकृत होकर सर्वत्र चान्दनी की सी दीप्ति धारण करती है । उस ( उषसः ) कमनीय कन्या की ( स्तोमः ) स्तुति या प्रशंसा ही ( अश्विनौ ) दोनों वर वधुओं या उसके माता पिताओं को ( अजीगः ) जागृत, प्रबुद्ध, प्रकट अर्थात् प्रसिद्ध करती है ।

**सुयुग्वहन्ति प्रति वामृतेनोर्ध्वा भवन्ति पितरेव मेधाः ।**
**जरेथामस्मद्वि पणेर्मनीषां युवोरवश्चकृमा यातमर्वाक् ॥ २ ॥**

भा०—( सुयुक् प्रति ) जिस प्रकार रथ में जुड़े घोड़े ( ऋतेन ) गतिमान् रथ से ( प्रति वहन्ति ) मनुष्य या स्वामी को स्थानान्तर पर ले जाते हैं । उसी प्रकार ( सुयुग् ) उत्तम रीति से नियुक्त विद्वान् जन वा उत्तम वाणियें हे स्त्री पुरुषो ! ( वाम् प्रति ) तुम दोनों के प्रति ( ऋतेन ) सत्य के द्वारा ( वहन्ति ) ज्ञान प्राप्त करावें । ( मेधाः ) प्रजाएं और प्रज्ञावान् पुरुष ( वाम् प्रति ) तुम दोनों के प्रति ( पितरा इव ) माता पिता के समान ही ( ऊर्ध्वाः ) ऊपर, उच्च पद के योग्य, आदरणीय ( भवन्ति ) होते हैं । आप दोनों भी ( अस्मत् ) हमें ( पणेः ) व्यवहारकुशल और विद्वान् पुरुष की ( मनीषाम् ) विचारशील बुद्धि का ( वि-जरेथाम् ) विशेष २ और विविध २ उपदेश करो । हम लोग ( युवोः ) आप दोनों की ( अवः ) रक्षा और ज्ञान की वृद्धि करें वा आप दोनों के लिये तृप्ति-कारक प्रिय अन्न प्रदान करें । आप ( अर्वाक् आयातम् ) दोनों हमारे पास आइये ।

**सुयुग्भिरश्वैः सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः ।**
**किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥ ३ ॥**

भा०—हे ( दस्रौ ) शत्रु, कष्टों और अज्ञानों का नाश करने वाले उत्तम स्त्री पुरुषो ! (सुयुग्भिः) उत्तम रीति से जुड़े हुए ( अश्वैः ) घोड़ों और ( सुवृता ) उत्तम चक्र वाले ( रथेन ) रथ से जिस प्रकार आप दोनों ( अवर्त्ति प्रति गमिष्ठा ) अप्राप्त, दूरवर्त्ती देश को प्राप्त होते हो उसी प्रकार ( अङ्ग अश्विना ) हे दिन रात्रि वा सूर्य चन्द्रवत् विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों ( सुयुग्भिः ) उत्तम रीति से समाहित ( अश्वैः ) विषयों के भोक्ता, आशुगामी इन्द्रियों और ( सुवृता ) उत्तम आचार व्यवहार युक्त (रथेन) देह वा आत्मा से आप लोग ( अवर्त्ति गमिष्ठा ) अप्राप्य पद को भी प्राप्त करने वाले होकर ( अद्रेः ) मेघ के समान सब प्रकार ज्ञान की वर्षा करने वाले वा अविनाशी वेद की ( इमं श्लोकं ) इस पुण्य वाणी का ( शृणुतम् ) श्रवण किया करो और सदा ध्यान रक्खो कि ( वां प्रति ) आप दोनों के प्रति ( पुराजाः ) पूर्व के उत्पन्न ( विप्रासः ) विद्वान् जन ( किम् आहुः ) क्या २ उपदेश करते हैं ।

**आ मन्येथामा गतं कच्चिदेवैर्विश्वे जनासो अश्विना हवन्ते ।**
**इमा हि वां गोऋजीका मधूनि प्र मित्रासो न ददुरुस्रो अग्रे॥४॥**

भा०—हे ( अश्विना ) अश्व अर्थात् राष्ट्र के स्वामिवत् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों को ( विश्वे जनासः ) सभी मनुष्य लोग ( आहवन्ते ) आदरपूर्वक बुलावें और ( कत् चित् ) कभी कभी आप दोनों ( एवैः ) उत्तम ज्ञानयुक्त पुरुषों द्वारा ( आमन्येथाम् ) उत्तम २ ज्ञान का अभ्यास किया करो और ( कत् चित् ) कभी कभी ( एवैः ) उत्तम गमन साधन रथों से ( आ गतम् ) आया जाया करो । ( अग्रे ) सब से प्रथम ( उस्रः ) सूर्य की किरणों के समान उत्तम पद पर पहुंचे हुए विद्वान् पुरुष ( मित्रासः ) तुम्हारे अति स्नेही मित्रों के सदृश लोग ( वां ) तुम दोनों को ( इमा ) इन ( गोऋजीका ) गाय के दूधसे मिले हुए ( मधूनि ) अन्नों के समान ही ( गोऋजीका ) उत्तम

वाणियों से ऋजुता विनय धर्म मार्ग ( मधूनि ) मधुर ज्ञान ( ददुः ) दिया करें ।

**तिरः पुरू चिदश्विना रजांस्याङ्गूषो वां मघवाना जनेषु ।**
**एह यातं पथिभिर्देवयानैर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥५॥३॥**

भा०—हे ( अश्विना ) अश्वयुक्त सैन्य बल के स्वामी, राजा रानी के समान विद्या में व्यापक सामर्थ्यवान् स्त्री पुरुषो ! हे ( मघवाना ) ऐश्वर्य के स्वामियो ! ( जनेषु ) मनुष्यों के बीच में ( वां ) तुम दोनों का ( आङ्गूषः ) घोष या उपदेश ( रजांसि तिरः ) सब लोकों को प्राप्त हो और ( वां आंगूषः रजांसि तिरः ) तुम दोनों का उपदेश राजस विकारों को दूर करे । अथवा ( आङ्गूषः वां रजांसि तिरः ) वेद वाणी तुम दोनों के राजसी रजोविकार काम क्रोधादि दोषों को दूर करे और आप दोनों ( देवयानैः पथिभिः ) देव, विद्वान् पुरुषों से जाने योग्य मार्गों से ( इह आ यातम् ) इस पृथिवी पर आओ । हे ( दस्रौ ) अज्ञानादि के नाशको ! ( वां ) तुम्हारे लिये ही ( इमे ) ये ( मधूनां ) मधुर ज्ञान व अन्नादि पदार्थों के (निधयः) सब खज़ाने हैं । इति तृतीयो वर्गः ॥

**पुराणमोकः सख्यं शिवं वां युवोर्नरा द्रविणं जह्नाव्याम् ।**
**पुनः कृण्वानाः सख्या शिवानि मध्वा मदेम सह नू समानाः ॥६॥**

भा०—हे ( नरा ) नायको ! दोनों उत्तम स्त्री पुरुषो ? ( वां ) तुम दोनों का परस्पर ( सख्यम् ) मित्रता ( पुराणम् ओकः ) अपने पुराने गृह के समान ( शिवं ) कल्याणकारक हो । ( युवोः ) तुम दोनों का ( द्रविणम् ) ऐश्वर्य ज्ञान भी ( जह्नाव्याम् ) त्यागी पुरुष की दान करने की शैली में व्यय होकर ( शिवं ) कल्याणकारी हो । हम लोग भी ( सख्या ) अपने मित्रता के भावों को ( पुनः ) बार २ ( शिवानि ) कल्याणयुक्त, सुखकर ( कृण्वानाः) करते हुए ( मध्वा ) उत्तम अन्न जलसे ( समाना )

एक दूसरे के समान होते हुए ( मदेम नु ) सब आनन्द और हर्ष को प्राप्त करें।

**अश्विना वायुना युवं सुदक्षा नियुद्भिश्च सजोषसा युवाना।**
**नासत्या तिरोअह्न्यं जुषाणा सोमं पिबतमस्रिधा सुदानू ॥७॥**

भा०—हे ( अश्विना ) अश्व अर्थात् अपने इन्द्रियों को उत्तम अश्वों के समान अपने वश करने वाले जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! वा भविष्य के लिये कर्त्तव्य न टालने वाले स्त्री पुरुषो ! आप दोनों ( सुदक्षा ) उत्तम ज्ञान और कर्म से युक्त, पापाचारों को अग्नि के तुल्य भस्म करने वाले, ( वायुना ) वायु, प्राणवायु और ( नियुद्भिश्च ) नियमित नियुक्त अश्वों; इन्द्रियों द्वारा ( सुदक्षा ) उत्तम बलशाली और ( युवाना ) जवान, बलवान् ( सजोषसा ) समान प्रीतियुक्त ( नासत्या ) कभी असत्याचरण न करने वाले ( अस्रिधा ) एक दूसरे के देहों और मानसभावों की हिंसा न करने वाले ( सुदानू ) उत्तम वचन, धनादि का दान करने वाले होकर ( तिरः-अह्न्यम् ) विगत या वर्त्तमान में प्राप्त दिन के कमाये (सोमं) ऐश्वर्य को अन्न जल के समान ही ( पिबतम् ) उपभोग करो।

**अश्विना परि वामिषः पुरूचीरीयुर्गीर्भिर्यतमाना अमृध्राः।**
**रथो ह वामृतजा अद्रिजूतः परि द्यावापृथिवी याति सद्यः ॥८॥**

भा०—हे ( अश्विना ) अश्व अर्थात् राष्ट्र पालन या अश्वमेध के करने वाले महानुभाव स्त्री पुरुषो ! ( वाम् ) तुम दोनों की ( इषः ) उत्तम कामनाएं और सेनाएं ( पुरूचीः ) बहुत से पदार्थों और देशों तक पहुंचाने वाली और ( गीर्भिः ) उत्तम वाणियों द्वारा ( यतमानाः ) कर्म में प्रवृत्त हुई ( अमृध्राः ) कभी तिरस्कृत न होकर ( परि ईयुः ) सब तरफ़ जावें। और ( वाम् ) तुम दोनों का (ऋतजाः) वेग से उत्पन्न ( अद्रिजूतः ) मेघ में या पर्वतादि विषम स्थलों में भी वेग से जाने वाला ( रथः ) रथ

विमान अग्नियान आदि और ( ऋतजाः ) सत्य से परिष्कृत ( अद्रि-जूतः ) अविदीर्ण, स्थिर, अविनाशी परमेश्वर की तरफ़ वेग से जाने वाला ( वां रथः ) तुम दोनों रसस्वरूप आत्मा ( सद्यः ) शीघ्र ही ( द्यावा-पृथिवी परि याति ) आकाश और भूमि में भी चले वा प्राण अपान दोनों से परे हैं।

**अश्विना मधुषुत्तमो युवाकुः सोमस्तं पातमा गतं दुरोणे।**
**रथो ह वां भूरि वर्पः करिक्रत्सुतावतो निष्कृतमागमिष्ठः ॥९।४॥**

भा०—हे ( अश्विना ) अश्वादि सैन्यों के स्वामिजनो! नायक, सेनापतियो ! ( युवाकुः ) तुम्हें प्राप्त होने वाला वा पृथक् २ वा सम्मलित ( सोमः ) ऐश्वर्य, पुत्र प्रजा आदि तुम दोनों के लिये ( मधु-सुत्तमः ) मधुर रस, अन्न, अभिषेक आदि उत्पन्न करने में सबसे उत्तम सिद्ध हो। आप दोनों उसको ( पातम् ) पालन करो। आप दोनों ( दुरोणे ) घर में ( आगतम् ) आइये। ( वां ) तुम दोनों का ( रथः ) रथ ( वर्पः ) वरण करने योग्य ( भूरि ) बहुतसा उत्तम ऐश्वर्य ( करि-क्रत् ) उत्पन्न करे और वह ( सुतावतः ) उत्तम ऐश्वर्य वाले के ( निष्कृ-तम् आगमिष्ठः ) घर में प्राप्त हो। इति चतुर्थो वर्गः॥

## [ ५९ ]

विश्वामित्र ऋषिः॥ मित्रो देवता॥ छन्दः—१, २, ५ त्रिष्टुप्। ३ निचृत्त्रि-ष्टुप्। ४ भुरिक् पंक्तिः। ६, ९ निचृद्गायत्री। ७, ८ गायत्री॥ नवर्चं सूक्तम्॥

**मित्रो जनान्यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम्।**
**मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि चष्टे मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत॥ १॥**

भा०—( मित्रः ) जो पुरुष प्रजाओं को मरने से बचावे, स्नेह करे, जिसको सब कोई उत्तम करके जाने, और जो स्नेह से सबकी रक्षा करे

ज्ञवः ) परिमित जानु वाले अर्थात् सभ्यतापूर्वक टांगे सिकोड़ कर बैठने वाले वा परिमाण से क़दम बढ़ाने वाले विवेकी पुरुष ( पृथिव्याः वरिमन् ) भूमि के बड़े भारी, श्रेष्ठ विस्तृत देश में हम लोग ( आदित्यस्य ) अदिति भूमि के उपकारक स्वामी के तुल्य सूर्य के समान तेजस्वी राजा वा विद्वान् पुरुष के उपदिष्ट ( व्रतम् ) ब्रह्मचर्य आदि आश्रमधर्म, नियमों और व्रतादि के अधीन (उप क्षियन्तः) निवास करते हुए ( वयं ) हम सब ( मित्रस्य ) मृत्यु से बचाने वाले सर्व स्नेही परमेश्वर, गुरु वा राजा के ( सुमतौ ) शुभ उत्तम ज्ञान के अधीन ( स्याम ) रहें।

अयं मित्रो नमस्यः सुशेवो राजा सुक्षत्रो अजनिष्ट वेधाः।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ४ ॥

भा०—( अयं ) यह ( मित्रः ) सर्वस्नेही, प्रजा को मृत्यु से बचाने वाला ( नमस्यः ) सबके आदर करने योग्य ( राजा ) तेज से प्रदीप्त, ( सुक्षत्रः ) उत्तम क्षात्रबल से सम्पन्न, ( वेधाः ) कर्मों के विधान करने में दक्ष, विद्वान् (अजनिष्ट) हो। (तस्य) उस ( यज्ञियस्य ) सत्संग और मैत्री के योग्य महा पुरुष की ( सुमतौ ) उत्तम मति और ( भद्रे ) कल्याणकारी ( सौमनसे ) शुभचित्तता के अधीन ( वयं ) हम ( स्याम ) रहें।

महाँ आदित्यो नमसोपसद्यो यातयज्जनो गृणते सुशेवः।
तस्मा एतत्पन्यतमाय जुष्टमग्नौ मित्राय हविरा जुहोत ॥५॥५॥

भा०—( महान् ) गुणों में महान्, पूजनीय ( आदित्यः ) अदिति पृथिवी का पालक, स्वामी, वा अदिति अर्थात् उत्तम माता पिता और राष्ट्रभूमि का उत्तम पुत्र कहाने योग्य ( नमसा ) नमस्कार, आदरपूर्वक ( उपसद्यः ) प्राप्त होने योग्य ( यातयज्जनः ) प्रजाजनों को अपने २ कार्य व्यापारों में लगाने हारा, सूर्य के समान ( सुशेवः ) उत्तम सुख देने

वह पुरुष 'मित्र' कहाता है। वह ही (जनान्) सब मनुष्यों को (ब्रुवाणः) उपदेश करता हुआ (यातयति) नाना प्रकार के यत्न पुरुषार्थ आदि कराता है। वह (मित्रः) सबका स्नेही, सूर्य के समान महान्, परमेश्वर वा राजा (पृथिवीम् उत द्याम) भूमि और आकाश को (दाधार) धारण करता है। (मित्रः) सूर्य के समान वह (कृष्टीः) कृषकों वा सामान्य मनुष्यों को भी (अनिमिषा) रात दिन (अभिचष्टे) देखता है। उस (मित्राय) राष्ट्र, प्रजा के पालक, स्नेही, त्राता के लिये (घृतवत् हव्यं) घृत से युक्त अन्न और तेजोयुक्त अन्य ग्राह्य पदार्थ (जुहोत) प्रदान करो।

**प्र स मि॑त्र॒ मर्तो॑ अस्तु॒ प्रय॑स्वा॒न्यस्त॑ आदित्य॒ शिक्ष॑ति व्र॒तेन॑।**
**न ह॑न्यते॒ न जी॑यते॒ त्वोतो॒ नैन॒मंहो॑ अश्नो॒त्यन्ति॑तो॒ न दू॒रात्॥२॥**

भा०—हे (मित्र) स्नेहवन्! आप्तजन! आचार्य! राजन्! परमेश्वर! (यः) जो पुरुष (ते) तेरे सिखाये, दर्शाये (व्रतेन) नियम कर्म से (शिक्षति) स्वयं शिक्षा ग्रहण करता वा अन्यों को शिक्षा, अन्नादि प्रदान करता है (सः) वह (मर्त्तः) मनुष्य (प्रयस्वान्) प्रयत्नशील, उत्तम अन्न और ज्ञान का स्वामी (अस्तु) अवश्य होता है। (त्वा ऊतः) तेरे द्वारा सुरक्षित पुरुष (न हन्यते) न कभी मारा जाता, वा दण्डित होता और (न जीयते) न कभी अन्यों से पराजित होता है। (एनम्) इसको (न अन्तितः) न पास से और (न दूरात्) न दूर से ही कभी (अंहः अश्नोति) पाप ही व्यापता है।

**अ॒न॒मी॒वास॒ इळ॑या॒ मद॑न्तो मि॒तज्ञ॑वो॒ वरि॑म॒न्ना पृ॑थि॒व्याः।**
**आ॒दि॒त्यस्य॑ व्र॒तमु॑पक्षि॒यन्तो॑ व॒यं मि॒त्रस्य॑ सुम॒तौ स्या॑म॥३॥**

भा०—(अनमीवासः) रोगों से रहित (इलया) अन्न, उत्तम वाणी और भूमि के राज्य से (मदन्तः) आनन्द लाभ करते हुए (मित-

वाला पुरुष ( गृणते ) उपदेश वा अनुशासन करे। (तस्मै) उस ( पन्यतमाय ) सर्वोत्तम स्तुति करने योग्य ( मित्राय ) सबको मृत्यु से बचाने वाले, सर्वस्नेही, सत्संग योग्य, शत्रुनाशक पुरुष के लिये ( जुष्टम् ) प्रेम पूर्वक स्वीकार करने योग्य ( हविः ) उत्तम ग्रहण योग्य अन्न आदि पदार्थ ( अग्नौ ) उसके अग्रणी ज्ञानी और अग्नि के तुल्य तेजस्वी होने के निमित्त ही ( आजुहोत ) आदर से प्रदान करो। इति पञ्चमो वर्गः ॥

मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि ।
द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥ ६ ॥

भा०—( चर्षणीधृतः ) मनुष्यों को धारण करने वाले, उनके शासक; ( देवस्य ) दानशील तेजस्वी ( मित्रस्य ) रक्षक, शत्रुहिंसक, स्नेही पुरुष का ( चित्रश्रवस्तमम् ) अद्भुत अन्नादि रस तथा उत्तम श्रवणयोग्य, कीर्त्ति और ज्ञान से युक्त ( द्युम्नं ) ऐश्वर्य और तेज ( सानसि ) सबके सेवन करने और सबको सुख देने वाला हो।

अभि यो महिना दिवं मित्रो बभूव सप्रथाः ।
अभि श्रवोभिः पृथिवीम् ॥ ७ ॥

भा०—( मित्रः ) अन्धकार के नाशक, सूर्य के समान ( यः ) जो सर्व सुहृत राजा, प्रभु (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से ( दिवम् ) महान् आकाश के विस्तृत एवं विजय की कामना करने वाली सेना और नाना व्यवहारकारिणी प्रजा को ( अभि बभूव ) अपने वश करने में समर्थ होता है वह ( सप्रथाः ) प्रसिद्ध कीर्त्ति और विस्तृष्ट राष्ट्र के सहित रहता हुआ ( श्रवोभिः ) यशों और अन्नों से सम्पन्न ( पृथिवीं ) पृथिवी को भी (अभि-बभूव) वश करने वाला है। ( २ ) परमेश्वर सर्व सखा है। वह महान् ( दिवं ) आकाश और सूर्य को महान् सामर्थ्य से बनाता, वश करता है। पृथिवी को अन्नों से पूर्ण करता है, वह विस्तृत जगत् के साथ विद्यमान है।

मित्राय पञ्च येमिरे जना अभिष्टिशवसे ।
स देवान्विश्वान्बिभर्ति ॥ ८ ॥

भा०—( अभिष्टिशवसे ) सब तरफ़ शासन करने में समर्थ बलशाली ( मित्राय ) सर्वस्नेही, सर्व रक्षक के लिये ही ( पञ्च जनाः ) पांचों प्रकार के जन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये प्रजाजन और पांचवां निषाद वर्ग जो राजा द्वारा पदों पर विराजे, ये पांचों वर्ग ( येमिरे ) उद्यम करें । ( सः ) वह ( देवान् विश्वान् ) किरणों को सूर्य के समान, समस्त विद्वानों और वीर विजयोत्सुक वीरों को ( बिभर्ति ) धारण करता और पालता पोषता है ।

मित्रो देवेष्वायुषु जनाय वृक्तबर्हिषे ।
इषं इष्टव्रता अकः ॥ ९ ॥ ६ ॥

भा०—( मित्रः ) सर्वस्नेही, सर्वरक्षक पुरुष ( देवेषु ) विद्वानों, व्यवहार-कुशलों और ( आयुषु ) शरणागतों वा आदरपूर्वक एकत्र संगत सभासदों, प्रजा पुरुषों के बीच ( वृक्तबर्हिषे जनाय ) धान्य, कुशाओं के काट लेने में समर्थ कृषक जन, याज्ञिक लोग और कुशल पुरुष तथा कुशादिवत् कण्टक रूप शत्रुजनों को काटने वाले वीर (जनाय) जन के बढ़ाने के लिये ( इषः ) अपनी इच्छाओं और प्रेरित सेनाओं को ( इष्टव्रताः ) अभीष्ट कर्म करने में समर्थ ( अकः ) करे । इसी प्रकार वह राष्ट्र में धान्य काट लेने वाले कृषकों के लिये वृष्टि जलों और अन्नों को अभीष्ट, मन चाहे कर्म करने में समर्थ करे । वर्षा जलों का यथेष्ट मार्ग से नहरों द्वारा ले जाने का उचित प्रबन्ध करे । (इषः) अन्नों को अभीष्ट कर्म कराने में समर्थ हो । अन्न द्वारा भृत्यों को रखकर उनसे यथेष्ट कर्म करा सके । इति षष्ठो वर्गः ॥

इहेह वो मनसा बन्धुता नर उशिजो जग्मुरभि तानि वेदसा ।
याभिर्मायाभिः प्रतिजूतिवर्पसः सौधन्वना यज्ञियं भागमानश ॥१॥

भा०—हे ( नरः ) नायक, नेता लोगो ( उशिजः ) नाना ऐश्वर्यों और प्राप्त करने योग्य पदार्थों की आकांक्षा करने वाले लोग ( बन्धुता ) परस्पर बन्धु रहते हुए ( वः ) आप लोगों के ( मनसा ) चित्त और ज्ञान से और ( वः वेदसा ) आप लोगों के धनैश्वर्य से ( इह-इह ) इस राष्ट्र या जगत् में स्थान २ पर ( तानि ) उन नाना ऐश्वर्यों को ( अभि-जग्मुः ) प्राप्त करें और वे ( याभिः ) दूर तक जाने वाली ( मायाभिः ) ज्ञानकारिणी बुद्धियों से युक्त होकर ( प्रतिजूतिवर्पसः ) शत्रुओं, प्रति-द्वन्द्वी, वेग, बल से युक्त शरीरों वाले, दृढ़ ( सौधन्वनाः ) उत्तम धनु-र्धारी लोगों के अधीन सैनिक जन ( सौधन्वनाः ) उत्तम अन्तरिक्ष में उत्पन्न मेघ के उपासक कृषकादि वा उत्तम जलप्रद मेघ तुल्य सर्व ज्ञान-प्रद विद्वान् जन ( यज्ञियं भागं ) यज्ञ, प्रजापति, राजा के द्वारा ग्रहण करने योग्य ( भागं ) कर बलि को वा ( यज्ञियं ) परस्पर सत्संग, मैत्री वा आदर से प्राप्त होने वाले अंश को ( आनश ) प्राप्त करें, भोगें। सुधन्वन ऋषयस्त्रयः पुत्राः ऋभुर्विभ्वा वाज इति। सत्य से अन्न, और धन से चमकने और सामर्थ्यवान् होने वाला पुरुष न्यायाधीश, अन्न पति और धनपति ऋभु हैं। विशेष भूमि का स्वामी वा सामर्थ्यवान् विभ्वा, है ( वाजः ) संग्रामकरी, बलवान् पुरुष 'वाज' है।

याभिः शचीभिश्चमसाँ अपिंशत यया धिया गामरिणीत चर्मणः ।
येन हरी मनसा निरतक्षत तेन देवत्वमृभवः समानश ॥ २ ॥

भा०—( ऋभवः ) खूब प्रकाश से चमकने वाले सूर्य-किरण जिस प्रकार ( शचीभिः ) अपनी शक्तियों से ( चमसान् अपिंशत ) मेघों को रूपवान् बनाते अर्थात् उत्पन्न करते हैं और वे ( गाम् अरिणीत ) पृथिवी को आच्छादित कर लेते हैं और दिन और रात्रि को उत्पन्न करते हैं और

जिस प्रकार ( ऋभवः ) ज्ञानपूर्वक कर्म करने में समर्थ शिल्पी लोग ( शचीभिः ) औज़ारों से ( चमसान् ) खाने के पात्र थाली, कटोरे, चमचे आदि ( अपिंशत ) सुन्दर रूप में बनाते हैं। और वे ( धिया ) बुद्धि से चर्म के बने जूते से ( गाम् अरिणीत ) पृथ्वी पर चलने का उपाय करते हैं। अथवा चर्म की कृत्रिम गौ आदि पशु बनाते वा चर्म के बने पट्टों आदि से ( गाम् ) वेग से जाने वाली गाड़ी यन्त्र, चक्र आदि (अरिणीत) चलाते हैं ( मनसा ) ज्ञान से अश्वों को सधाते वा शिल्प द्वारा रथ के अश्वस्थानी यन्त्र बनाते हैं इससे वे भी ( देवत्वम् ) विद्वान् पूज्य पद को प्राप्त करते हैं या धन देने योग्य हो जाते हैं इसी प्रकार ( ऋभवः ) सत्य ज्ञान और ऐश्वर्य से प्रकाशित होने वाले (याभिः) जिन (शचीभिः) बुद्धियों, वाणियों और सेना आदि शक्तियों से ( चमसान् ) मेघ के सदृश शस्त्रास्त्र वर्षा करने वाले वीरों को वा ( चमसान् ) राष्ट्र के उपभोक्ता अध्यक्षों को ( अपिंशत ) रूपवान् करते और ( चमसान् ) भूमि और प्रजा को खा जाने वालों को ( अपिंशत ) अवयव, अवयव, टुकड़े २ कर देते हैं और ( यया धिया ) जिस राष्ट्र धारक शक्ति और बुद्धि से ( चर्मणः ) चर्म की बनी जिह्वा से या चर्म की बनी तांत से ( गाम् ) वाणी को उच्चारण करते हैं और ( चर्मणः गाम् अरिणीत ) चर्म की बाण फेंकने वाली डोरी बनाते हैं। और ( येन मनसा ) जिस मन से ( ऋभवः ) सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाले विद्वान् जन ( हरी ) ज्ञानेन्द्रिय और कर्म्मेन्द्रिय दोनों प्रकार के देह-रथ में लगे अश्वों को ( निर-अतक्षत ) प्रकट करते हैं हे विद्वान् लोगो! उन्हीं शक्तियों, बुद्धियों और मनन सामर्थ्य से आप लोग ( देवत्वम् ) ज्ञानप्रद विद्वान् के पद को ( सम् आनश ) अच्छी प्रकार प्राप्त करो।

**इन्द्र॑स्य स॒ख्यमृ॒भव॒ः सम॑नशु॒र्मनो॒र्नपा॑तो अ॒पसो॑ दधन्विरे।**
**सौ॒ध॒न्व॒नासो॑ अमृत॒त्वमेरि॑रे वि॒ष्ट्वी शमी॑भिः सु॒कृत॑ः सुकृ॒त्यया॑॥३॥**

भा० —( ऋभवः ) सत्य ज्ञान और सत्य न्याय से प्रकाशित और अधिक सामर्थ्यवान् होकर विद्वान् पुरुष ( इन्द्रस्य ) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर वा समृद्ध राजा के ( सख्यं ) मित्रता को ( सम् आनशुः ) भली प्रकार प्राप्त करें। और ( मनोः नपातः ) मननशील मनुष्य और चित्त को न गिरने देने वाले ( अपसः ) उत्तम कर्मों को ( दधन्विरे ) धारण करें। वा मननशील दृढ़ मनुष्य के करने योग्य कर्मों को करें। वे ( सौधन्वनासः ) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष के पुत्र वा शिष्य होकर ( सुकृत्यया ) उत्तम क्रिया व आचरण से ( सुकृतः ) सदाचारवान् होकर ( शमीभिः ) शान्तिदायक कर्मों से ( विष्ट्वी ) परमेश्वर के परमपद को प्रवेश करके ( अमृतत्वम् ) अमृत मोक्ष पद को ( एरिरे ) प्राप्त करें। इसी प्रकार उत्तम कर्म कुशल विद्वान् पुरुष ( मनोः नपातः अपसः ) ज्ञान से उत्पन्न कर्मों को करें और उत्तम साधन सम्पन्न होकर उत्तम क्रिया ( Art ) से उत्तम काम करें कर्मों से राष्ट्र में स्थान प्राप्त कर अपने अन्न जीविकादि लाभ करें।

**इन्द्रे॑ण याथ स॒रथं॑ सु॒ते सचाँ॒ अथो॒ वशा॑नां भवथा स॒ह श्रि॒या।**
**न वः॑ प्रति॒मै सु॑कृ॒तानि॑ वाघतः॒ सौध॑न्वना ऋभवो वी॒र्या॑णि च ॥४॥**

भा०—हे ( वाघतः ) ज्ञान को धारण करने वाले! ( सौधन्वनाः ) उत्तम शक्तिसम्पन्न! हे ( ऋभवः ) सत्यज्ञान से बहुत अधिक प्रकाशमान विद्वानो! जिस प्रकार रश्मियां प्रकाशमान सूर्य के साथ जातीं और दीप्तियों की शोभा से युक्त होती हैं। उनके वृष्टि आदि कृत्य और विद्युत आदि बलों का कोई मुकाबला नहीं करता, उसी प्रकार आप लोग ( इन्द्रेण ) ऐश्वर्यवान् राजा वा ऐश्वर्य के साथ ( सरथं ) एक समान रथ में, वा रथादि सम्पन्न राज्य सेनादि को प्राप्त कर ( सुते ) उत्पन्न ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र में ( सचा ) एक साथ ( याथ ) प्रयाण करो। ( अथो ) और ( वशानाम् ) वश करने वाले, वशी मनुष्यों के

बीच वा कान्तिमान् सूर्यादि की ( श्रिया ) लक्ष्मी, कान्ति और ( वः सुकृतानि ) तुम्हारे उत्तम कार्यों के और ( वीर्याणि च ) तुम्हारे वीरोचित कार्यों, बलों और सामर्थ्यों को कोई भी ( प्रतिमै न ) मुक़ाबला या परिमाण न कर सके। ( २ ) परमेश्वर के साथ ही इस देह में अपने ज्ञानाभिषिक्त आत्मा में गमन करो, वशीभूत प्राणों के कान्ति से युक्त होओ, उत्तम कर्म और वीर्य तुम्हारे अप्रतिम हों।

इन्द्र ऋभुभिर्वाजवद्भिः समुक्षितं सुतं सोममा वृषस्वा गभस्त्योः।
धियेषितो मघवन्दाशुषो गृहे सौधन्वनेभिः सह मत्स्वा नृभिः॥५॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् राजन्! ( ऋभुभिः वाजवद्भिः समुक्षितं सुतं सोमं गभस्त्योः ) सूर्य जिस प्रकार वेगवान् प्रकाशमय किरणों से संसिक्त जल को या ओषध्यादि को किरणों द्वारा पुष्ट करता है उसी प्रकार तू ( वाजवद्भिः ऋभुभिः ) ज्ञानवान् और बलवान् विद्वानों और वीर पुरुषों से ( समुक्षितं ) अच्छी प्रकार सेचित, परिपोषित और परिपालित ( सुतं सोमम् ) शासित ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र को ( गभस्त्योः ) वश करने में समर्थ बाहुओं के बल पर ( आवृषस्व ) सब प्रकार से परिपुष्ट कर। हे ( मघवन् ) ऐश्वर्यवन्! तू ( धिया ) बुद्धि से ( इषितः ) प्रेरित होकर ( दाशुषः ) दानशील करप्रद प्रजा के ( गृहे ) ग्रहण करने हारे वश करने वाले पद पर स्थित होकर ( सौधन्वनेभिः ) उत्तम ज्ञान और धनुष आदि शस्त्र-बल से सम्पन्न ( नृभिः ) वीर विद्वान् नेताओं सहित (मत्स्व) आनन्द को लाभ कर।

इन्द्र ऋभुमान्वाजवान्मत्स्वेह नोऽस्मिन्त्सवने शच्या पुरुष्टुत।
इमानि तुभ्यं स्वसराणि येमिरे व्रता देवानां मनुषश्च धर्मभिः॥६॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! राजन्! हे ( पुरुष्टुत ) बहुतों से प्रशंसा करने योग्य! सूर्य जिस प्रकार प्रकाशवान् और अन्नवान् होकर

सब को आनन्दित करता है उसी प्रकार तू भी (ऋभुमान्) विद्वान् सत्य ज्ञानवान् पुरुषों का स्वामी और (वाजवान्) ऐश्वर्य और बल से युक्त होकर (इह) इस राष्ट्र में (नः) हमारे (अस्मिन्) इस (सवने) ऐश्वर्य में अपनी (शच्या) शक्तिशालिनी बुद्धि और सेना से (नः मत्स्व) हमें हर्षित कर। (इमानि) ये (स्वसराणि) दिन जिस प्रकार (देवानां व्रतानि) सूर्य की किरणों के द्वारा करने योग्य होते हैं उसी प्रकार (इमानि) ये (स्वसराणि) स्वयं 'स्व' धन के निमित्त आगे बढ़ने वाले (देवानां) विद्यार्थी पुरुषों और (मनुषश्च) मननशील पुरुषों के (व्रता) व्रत, कर्त्तव्य कर्म (धर्मभिः) धारण करने योग्य राष्ट्र के धारक राज्य नियमों सहित (तुभ्यं) तेरे ही लिये (येमिरे) राष्ट्र को नियन्त्रित करने और तुझे बल देने वाले हों।

इन्द्र॑ ऋ॒भुभि॑र्वा॒जिभि॑र्वा॒जय॑न्नि॒ह स्तोमं॑ जरि॒तुरुप॑ याहि य॒ज्ञिय॑म्।
श॒तं केते॑भिरिषि॒रेभि॑रा॒यवे॑ स॒हस्र॑णीथो अध्व॒रस्य॒ होम॑नि॥७॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद राजन्! तू (इह) इस राष्ट्र में (ऋभुभिः) सत्य ज्ञानों और विशाल बलों से चमकने वाले (वाजिभिः) बलवान् पुरुषों से युक्त होकर किरणों से सूर्य के तुल्य (वाजयन्) तेजस्वी बलवान् होकर (जरितुः) उपदेश देने वाले, उपदेष्टा वा आज्ञापक के (यज्ञियं) सत्संग, आदर सत्कार मान प्रतिष्ठा मैत्रीभाव के योग्य (स्तोमं) स्तुत्य पद को (उपयाहि) प्राप्त कर। और (केतेभिः) प्रजाओं और प्रज्ञावान् पुरुषों, (इषिरेभिः) इष्ट मित्रों और प्रजाको सन्मार्ग दिखलाने वालों द्वारा तू (आयवे) मनुष्य के हितार्थ (अध्वरस्य) हिंसारहित और अविनाशी न्याय आदि के (होमनि) स्वीकार योग्य कार्य में (सहस्रनीथः) सहस्रों, अनेकों से प्राप्त एवं अनेक, सहस्रों आज्ञाओं और आज्ञापकों द्वारा सहस्र वाणियों से युक्त होकर (शतं) सौ वर्ष के जीवन को (उपयाहि) प्राप्त हो अथवा (शतं केतेभिः) सैकड़ों विद्वानों से युक्त होकर सहस्रों वाणियों वा स्तुतियों से युक्त हो। इति सप्तमो वर्गः॥

# [ ६१ ]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, ५, ७ त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ४ भुरिक् पङ्क्तिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

**उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि ।**
**पुराणी देवि युवतिः पुरन्धिरनु व्रतं चरसि विश्ववारे ॥ १ ॥**

भा०—हे ( उषः ) प्रभात वेला के समान कान्तियुक्त ! हे (वाजिनि) विज्ञान, बल और अन्न समृद्धि से युक्त ! हे ( मघोनि ) ऐश्वर्यसम्पन्न तू ( प्रचेताः ) उत्तम चित्त वाली और उत्तम ज्ञान से युक्त होकर ( गृणतः ) उपदेश करते हुए विद्वान् पुरुष के ( स्तोमं ) स्तुति वचन को ( जुषस्व ) प्रेम से सेवन कर । हे ( देवि ) सुखदात्रि ! देवि ! तू ( पुराणी ) पूर्व नवयौवन वाली ( युवतिः ) युवती और ( पुरन्धिः ) बहुत से शुभ गुणों को वा पुर के समान गृह को धारण करने वाली वा अपने पालक पति को धारण करने वाली होकर हे ( विश्व-वारे ) सबसे उत्तम वरण करने योग्य ! तू ( अनुव्रतं चरसि ) अनुकूल व्रताचरण करने वाली हो । ( २ ) शत्रु वल को भस्म करने वाली सेना उषा है । बलवती वा युद्धविजयिनी होने से 'वाजिनी' ऐश्वर्य युक्त होने से 'मघोनी' है । वह अपने आज्ञापक की आज्ञा सुने । पुर, राष्ट्र की रक्षिका सेना शत्रु को दूर भगाने वाली होने से 'युवति' है । सब शत्रु को वारण करने से 'विश्ववारा' है, वह नाम के अनुकूल रहकर कार्य करे ।

**उषो देव्यमर्त्या विभाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती ।**
**आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये ॥२॥**

भा०—हे ( उषः देवि ) कमनीय कान्ति वाली देवि ! तू ( सूनृता ) शुभ सत्य वचनों को ( ईरयन्ती ) बोलती हुई ( अमर्त्या ) साधारण

मनुष्यों से ऊपर असाधारण होकर ( चन्द्ररथा ) चन्द्र के समान कान्ति-मान, सुवर्ण आदि से सजे रथ में बैठकर चन्द्र से युक्त उषा के समान वा चन्द्र तुल्य आह्लादक पति को रमण रूप से प्राप्त कर ( विभाहि ) विशेष कान्ति से चमक । ( सुयमासः अश्वाः ) उषा के व्यापक किरणों के समान उत्तम नियन्त्रित अश्व ( त्वा आवहन्तु ) तुझे दूर स्थान में ले जावें। ( ये ) जो ( पृथुपाजसः ) बहुत बड़े बल वाले हैं वे ( सुयमासः अश्वाः ) उत्तम जितेन्द्रिय अश्व के समान गृहस्थ रथ को उठाने में समर्थ बलवान् , वीर्यवान् पुरुष ही ( सुयमासः ) उत्तम प्रतिज्ञाबद्ध होकर ( हिरण्य-वर्णां ) सुवर्ण के समान हित एवं रमणीय वर्ण व स्वभाव वाली ( त्वा आवहन्तु ) तुझे विवाह द्वारा प्राप्त करें ।

**उषः॑ प्रती॒ची भुव॑नानि॒ विश्वो॒र्ध्वा ति॑ष्ठस्य॒मृत॑स्य के॒तुः ।**
**स॒मा॒नमर्थं॑ चरणी॒यमा॑ना च॒क्रमि॑व नव्य॒स्या व॑वृत्स्व ॥ २ ॥**

भा०—जिस प्रकार (विश्वा भुवनानि प्रतीची ऊर्ध्वा अमृतस्य केतुः) समस्त भुवनों को व्यापती हुई उषा जीवमात्र को ज्ञान या चेतना देने वाली सबसे ऊपर रहती है वह ( समानम् अर्थं चरणीयमाना चक्रम् आव-र्त्तते ) एक समान मार्ग में चलती हुई वार वार चक्रवत् आती है उसी प्रकार हे ( उषः ) कान्तिमति ! कमनीय गुणों से चमकने वाली कन्ये ! तू ( प्रतीची ) आदर योग्य पुरुष का आदर सत्कार करती हुई वा प्रत्यक्ष सबके समक्ष आती हुई ( विश्वा भुवनानि ) सब प्राणियों, मनुष्यों के ( ऊर्ध्वा ) ऊपर, आदरणीय पद पर स्थित होकर ( अमृ-तस्य केतुः ) अमृत के तुल्य जीवन और उत्तम अन्न और जल के गुणों को जानने वाली हो। हे ( नव्यसि ) सबसे अधिक नवीनतम ! अति सुन्दरि ! अतिस्तुत्ये ! तू अपने पति के साथ ( समानम् ) मान आदर सहित, एक समान ( अर्थं ) उद्देश्य को, गृहस्थ जीवन के मार्ग को चलने में ( चरणीयमाना ) चरण के तुल्य आचरण करती हुई रथ में लगे दो

पहियों में से ( चक्रम् इव ) एक चक्र के समान ( वावृत्स्व ) वर्त्ताव किया कर। स्त्री पुरुष दोनों गृहस्थ शरीर के दो चरणों के समान वा गृहस्थ रथ के दो पहियों के समान हैं। पति पत्नी मिलकर एक शरीर वा एक रथ बनते हैं, ऐसा वेद का अभिप्राय है।

अव॒ स्यूमे॑व चि॒न्वती॑ म॒घोन्यु॒षा या॑ति॒ स्वस॑रस्य॒ पत्नी॑।
स्व१॒र्जन॑न्ती सु॒भगा॑ सु॒दंसा॒ आन्ता॑द्दि॒वः प॑प्रथ॒ आ पृ॑थि॒व्याः ॥४॥

भा०—( उषा स्वसरस्य पत्नी स्यूमा इव अवचिन्वती ) तन्तु उत्पन्न करने वाली चर्खे की तकली जिस प्रकार (स्व-सरस्य पत्नी सती अवचिनोति) स्वयं आप से आप निकलने वाले सूत की रक्षिका होकर उसको एकत्र करती हुई गति करती है उसी प्रकार ( उषा ) प्रभात वेला भी ( मघोनी ) उत्तम प्रकाशयुक्त होकर ( स्वसरस्य पत्नी ) स्वयं कालगति से चलने वाले वा उत्तम प्रकार से अन्धकार को दूर करने वाले दिन की मालिकन सी होकर ( अवचिन्वती ) अन्धकार का नाश और प्रकाश किरणों का अवचय या सञ्चय सा करती हुई ( स्वः जनन्ती ) प्रकाशमान सूर्य को उत्पन्न करती हुई ( सुभगा ) उत्तम सेवने योग्य, सुखप्रदात्री ( सुदंसा ) उत्तम स्वरूप वाली, दर्शनीय ( दिवः पृथिव्याः आ अन्ताम् पप्रथे ) आकाश और पृथिवी की सीमा तक फैल जाती है उसी प्रकार स्त्री ( मघोनी ) ऐश्वर्ययुक्त ( उषा ) कमनीय गुणों से युक्त, पति की नित्य शुभ कामना करने वाली ( स्वसरस्य ) सुख सञ्चारित करने वा स्वयं अभिलाषा युक्त होकर प्राप्त होने वाले पुरुष की ( पत्नी ) स्वयं पत्नी होकर ( स्यूमा इव ) तन्तु सन्तान उत्पन्न करने वाली तकली के समान स्वयं भी सन्तान रूप तन्तु सन्तान उत्पन्न करने वाली होकर ( अव चिन्वती ) विनम्र भाव से गुणों और रत्नों का सञ्चय करती हुई ( स्वः जनन्ती ) पति को सुख उत्पन्न करती हुई ( सुभगा ) उत्तम रूप से सुख से सेवनीय, सौभाग्यवती, ( सुदंसा ) उत्तम कर्म करने वाली, सदाचारिणी ( दिवः आ

अन्तात् पृथिव्याः आ अन्तात् ) आकाश की परली सीमा और पृथिवी की परली सीमा तक ( पप्रथे ) प्रख्यात हो। यह सूर्य की कान्ति के समान कमनीय और पृथिवी के समान सबका आश्रय उत्पादक माता हो। ( २ ) उषा, सेना ( स्वसरस्य पत्नी ) उत्तम शस्त्रप्रक्षेप्ता, पुरुष वा धनुष आदि शस्त्रास्त्रों की पालिका वा अपने सञ्चालक नायक की पत्नी के समान उसकी रक्षिका हो। वह ऐश्वर्यवती होकर शत्रुओं का अवचय, वा अपक्षय करती हुई ( स्वः जनन्ती ) शत्रुओं के संतापकारी तेजस्वी नायक को प्रकट करती हुई, उत्तम युद्धादि कर्म में निपुण होकर सर्वत्र दिगन्तों तक प्रसिद्ध हो और फैले।

अच्छा वो देवीमुषसं विभातीं प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम्।
ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रेत्प्र रोचना रुरुचे रण्वसंदृक् ॥५॥

भा०—( मधुधा दिविपाजः अश्रेत् ) जिस प्रकार 'मधु' आदित्य को धारण करने वाली उषा आकाश में तेज को धारण करती है और जिस प्रकार वह ( रण्वसंदृक् ) रम्यदर्शना, ( रोचना रुरुचे ) प्रकाशवती होकर चमकती है उसी प्रकार ( मधुधा ) पति के निमित्त मधुपर्क को लाती हुई, मधुर वचनों और मधुर रूप, गुण, स्वभाव को धारण करती हुई वा मधु अर्थात् उत्तम अन्न जल को ( अश्रेत् ) धारण करे और परिपक्व करे ( दिवि ) अपनी कामना के योग्य पति के आश्रय रहकर (ऊर्ध्वं) सबसे ऊपर ( रण्वसंदृक् ) रमणीय, सम्यक् दृष्टि, सौम्यलोचना होकर ( रोचना ) सबके हृदय को अच्छी लगती हुई ( रुरुचे ) सबके मनोनुकूल वर्त्ते। हे विद्वान् पुरुषो ! ( वः ) आप लोगों के बीच में ऐसी ( देवीं ) दिव्य गुणों से युक्त ( उषसं ) पति की कामना करने वाली ( सुवृक्तिम् ) उत्तम रीति से दुर्गुणों से बचने वाली ( विभातीं ) विशेष रूप से गुणों से चमकने वाली कन्या वा स्त्री को ( वः ) आप लोग (अच्छ)

सबके समक्ष ( नमसा ) आदर सत्कार और अन्नादि से ( प्र भरध्वम् ) खूब पुष्ट, पूर्ण करो ।

**ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या रेवती रोदसी चित्रमस्थात् ।**
**आयतीमग्न उषसं विभातीं वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः ॥ ६ ॥**

भा०—जिस प्रकार ( ऋतावरी ) सत्य प्रकाश से युक्त उषा ( दिवः अर्कैः अबोधि ) सूर्य के तेजों से जगती है वह ( रोदसी ) अन्तरिक्ष और पृथिवी में ( आ अस्थात् ) सर्वत्र व्याप जाती है ( आयतीम् विभातीं उषसं प्राप्य भिक्षमाणः अग्निः द्रविणं एति ) उस व्यापक प्रकाश वाली उषा काल को प्राप्त होकर याचन करता हुआ विनयशील भक्त द्रुत, रसमय ज्ञान को प्राप्त होता है उसी प्रकार ( ऋतवरी ) सत्य ज्ञान, उत्तम ऐश्वर्यवती स्त्री ( दिवः ) कामनावान् पति के ( अर्कैः ) उत्तम अर्चना योग्य गुणों और प्रशंसा वचनों से ही ( अबोधि ) जानी जाती है वह ( रेवती ) उत्तम गुणों और लक्षणों से सम्पन्न, सौभाग्यवती कन्या वा स्त्री ( रोदसी ) आकाश और पृथिवी के समान अपने माता पिता वा पितृकुल और मातृकुल दोनों में ( आ अस्थात् ) आदर से प्राप्त हो । हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् विद्वन्! हे अग्रणी नायक ! तू ( वामं ) प्राप्त करने योग्य, उत्तम, ( द्रविणं ) ऐश्वर्य के समान ( आयतीं ) आती हुई, ( विभाती ) विशेष गुणों से चमकती हुई ( उषसम् ) कमनीय, कान्तिमती कन्या की ( भिक्षमाणः ) उसके पिता से प्रार्थना करता हुआ ( एषि ) उसे प्राप्त हो । ययाति आदि उत्तम विद्वान् राजकुमारों ने भी गुणवती कन्या प्राप्त करके भी उनके पिताओं से ही याचना करके प्राप्त किया । वे इतिहास इस मन्त्र की व्याख्या हैं ।

**ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन्वृषा मही रोदसी आ विवेश ।**
**मही मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रेव भानुं वि दधे पुरुत्रा ॥ ७ ॥ ८ ॥**

भा०—(ऋतस्य) प्रकाश और ( उषसाम् ) उषा या प्रभात वेलाओं के ( बुध्ने ) मूल में विद्यमान ( मही रोदसी ) बड़ी भारी आकाश और पृथ्वी दोनों को ( इषण्यन् ) प्रेरित करने हारा ( वृषा ) वृष्टियों का कर्त्ता सूर्य जिस प्रकार ( आविवेश ) आकाश और पृथिवी दोनों के बीच प्रवेश करता वा प्रकट होता है, उसी प्रकार ( ऋतस्य ) सत्य ज्ञान, ऐश्वर्य और ( उषसाम् ) कमनीय कन्याओं के ( बुध्ने ) आश्रय रूप में उनको ( इषण्यन् ) चाहता हुआ ( वृषा ) वीर्य सेचन में समर्थ युवा पुरुष ( मही ) पूजनीय ( रोदसी ) माता पिता दोनों को ( आ विवेश ) आदर पूर्वक प्राप्त हो। जिस प्रकार ( मित्रस्य वरुणस्य मही माया ) मित्र अर्थात् दिन और वरुण अर्थात् रात्रि दोनों की यह बड़ी शक्ति है कि यह उषा ( चन्द्रा इव भानुं ) सुवर्णपुञ्जों के समान दीप्ति या सूर्य को ( पुरुत्रा ) बहु रूप या बहुत से देशों में ( विदधे ) फैला देती है। उसी प्रकार ( मित्रस्य ) स्नेह और ( वरुणस्य ) परस्पर एक दूसरे के वरण करने वाले वर वधू की यह ( मही माया ) अति पूज्य, उत्कृष्ट बुद्धि है कि वह ( पुरुत्र ) बहुतों के बीच में ( चन्द्रा इव ) आह्लादकारिणी कन्या के समान ही ( भानुं ) कान्तिमान् पुरुष को भी ( विदधे ) बना देती है। दोनों वर वधू समान हो जाते हैं। अथवा—सखा वरण कर्त्ता पुरुष की ही वह पूज्य मति है उस ( भानुं ) कान्तिमती कन्या को ( चन्द्रा इव ) सुवर्णों के पुञ्जों के समान आभूषणों से युक्त बना देती है। इत्यष्टमो वर्गः ॥

## [ ६२ ]

विश्वामित्रः । १६—१८ विश्वामित्रो जमदग्निर्वा ऋषिः ॥ १—३ इन्द्रावरुणौ । ४—६ बृहस्पतिः । ७—९ पूषा । १०—१२ सविता । १३—१५ सोमः । १६—१८ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, ५, १०, ११, १६ निचृद्गायत्री । ६ त्रिपाद्गायत्री । ७, ८, ९, १२, १३, १४, १५, १७, १८ गायत्री ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

इमा उ वां भृमयो मन्यमाना युवावते न तुज्या अभूवन्।
क्व१त्यदिन्द्रावरुणा यशो वां येन स्मा सिनं भरथः सखिभ्यः ॥१॥

भा०—हे ( इन्द्रा वरुणा ) ऐश्वर्यवन् ! इन्द्र सूर्य, विद्युत् के तुल्य तेजस्विन् ! हे वरुण ! सबके आवरण करने वाले अन्धकार वा रात्रि के तुल्य सबको वश करने वाले सर्वश्रेष्ठ क्षत्रिय पुरुष ! ( इमाः ) ये ( ऊ ) ही ( वां ) तुम दोनों की ( मन्यमानाः ) जानी गई ( भृमयः ) भ्रमण की क्रियाएं हैं जो ( युवावते ) तुम दोनों की रक्षा करने वाले और तुम दोनों को चाहने वाले सज्जन के हित के लिये कभी ( तुज्याः न अभूवन् ) नाश होने योग्य नहीं हैं। हे ( इन्द्रा वरुणा ) सूर्य और मेघ के समान राजन् सेनापते ! ( वां ) तुम दोनों का ( त्यत् यशः क्व ) वह यश और तेज कहां स्थित है ( येन ) जिससे आप दोनों ( सखिभ्यः ) मित्रों के लिये ( सिनं ) परस्पर प्रेम बांधने वाले बल और अन्न को पुष्ट करते हो।

अयमु वां पुरुतमो रयीयञ्छश्वत्तममवसे जोहवीति।
सजोषाविन्द्रावरुणा मरुद्भिर्दिवा पृथिव्या शृणुतं हवं मे ॥ २ ॥

भा०—हे ( इन्द्रा वरुणौ ) सूर्य और मेघ के तुल्य ऐश्वर्यवान् सब दुःखों को वारण करने हारे वा दिन रात की तुल्य प्रधान नायक स्त्री पुरुषो ! ( अयम् ) यह ( वां ) तुम दोनों के ( रयीयन् ) ऐश्वर्य की कामना करने वाला ( पुरुतमः ) बहुत संख्या वाला है जो ( शश्वत्तमम् ) सदा तुम दोनों को ( अवसे ) अपनी रक्षा के लिये ( जोहवीति ) पुकारता है। आप दोनों ( सजोषौ ) समान प्रीतियुक्त होकर ( मरुद्भिः ) वायुगणों के तुल्य बलवान् पुरुषों सहित ( दिवा पृथिव्या ) सूर्य और पृथिवी दोनों के तुल्य उत्पादक और आश्रय होकर ( मे हवं ) मेरे वचन को ( शृणुतं ) श्रवण करो।

अस्मे तदिन्द्रावरुणा वसु ष्यादस्मे रयिर्मरुतः सर्ववीरः।
अस्मान्वरूत्रीः शरणैरवन्त्वस्मान्होत्रा भारती दक्षिणाभिः ॥३॥

भा०—हे ( इन्द्रा वरुणा ) दिन, रात्रि व सूर्य मेघ के तुल्य नायक जनो ! ( अस्मे ) हमें ( तत् ) वह अलौकिक ( वसु ) ऐश्वर्य ( स्यात् ) प्राप्त हो। हे ( मरुतः ) वायुवत् बलवान् पुरुषो ! ( अस्मे ) हमें ( सर्ववीरः ) सब वीरों से युक्त ( रयिः ) गौ पशु हिरण्यादि हो। ( वरूत्रीः ) शत्रुओं से बचाने वाली सेनाएं ( शरणैः ) शत्रुनाशक साधनों, अस्त्रों और शस्त्रों से ( अवन्तु ) रक्षा करें। और ( अस्मान् ) हमको ( होत्रा ) प्रदान योग्य और ( भारती ) सर्वपालक वाणी ( दक्षिणाभिः ) उत्तम दानों और उदार वाणियों द्वारा ( अवन्तु ) रक्षा करें।

बृहस्पते जुषस्व नो हव्यानि विश्वदेव्य।
रास्व रत्नानि दाशुषे ॥ ४ ॥

भा०—हे ( बृहस्पते ) बृहती, वेदवाणी के पालक विद्वान् ! हे महान् ब्रह्माण्ड के पालक परमेश्वर ! तू ( नः ) हमारे ( हव्यानि ) दान देने और स्वीकार करने योग्य पदार्थों और वचनों को ( जुषस्व ) प्रेम से सेवन कर और ( दाशुषे ) दानशील पुरुष को ( रत्नानि ) उत्तम, रमणीय धन ( रास्व ) प्रदान कर। विद्वान् भी ऐसा नियम बनावें कि राज्य में वही लोग धन पावें जो लोकोपकार में दान देने वाले हों।

शुचिमर्कैर्बृहस्पतिमध्वरेषु नमस्यत।
अनाम्योज आ चके ॥ ५ ॥ ९ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग ( अर्कैः ) उत्तम आदर सत्कार मन्त्रों और उत्तम विचारों से ( शुचिम् ) पवित्र ( बृहस्पतिम् ) वेद के वाणी के पालक विद्वान् पुरुष वा सर्व ब्रह्माण्ड के स्वामी परमेश्वर को ( अध्वरेषु ) यज्ञ, विद्याप्राप्ति आदि अहिंसनीय अपीड़नीय कार्यों के

अवसरों पर (नमस्यत) नमस्कार करो, उसका परम आदर सत्कार करो। मैं उससे ही (अनामि) कभी न झुकने वाले (ओजः) बल पराक्रम की (आ चके) प्रार्थना करूं। इति नवमो वर्गः ॥

वृषभं चर्षणीनां विश्वरूपमदाभ्यम्।
बृहस्पतिं वरेण्यम् ॥ ६ ॥

भा०—(चर्षणीनां) समस्त मनुष्यों के बीच में (वृषभम्) समस्त सुखों की वर्षा करने वाले, बलवान्, सब पर कृपालु (अदाभ्यम्) किसी से न मारने योग्य, सबसे सत्कार पाने योग्य (वरेण्यम्) अति श्रेष्ठ वा श्रेष्ठ मार्ग में ले जाने वाले (बृहस्पतिं) वेद वाणी के पालक विद्वान् और महान् ब्रह्माण्ड के स्वामी (विश्वरूपं) समस्त पदार्थों के ज्ञाता एवं समस्त पदार्थों के निर्माता विश्वरूप परमेश्वर को (नमस्यत) नमस्कार करो।

इयं ते पूषन्नाघृणे सुष्टुतिर्देव नव्यसी।
अस्माभिस्तुभ्यं शस्यते ॥ ७ ॥

भा०—हे (आघृणे) सब प्रकार से प्रकाशमान! सब प्रकार से सुखों की वर्षा करने वाले सूर्य के समान तेजस्विन्! मेघ के समान सुखवर्षक! हे (पूषन्) अन्न वा पृथ्वी के समान सर्वपोषक! (ते) तेरी (इयं) यह (नव्यसी) अति नवीन, सदा स्तुति योग्य, (सुस्तुतिः) उत्तम स्तुति है। (अस्माभिः) हमसे (तुभ्यं) तेरे लिये यह (शस्यते) सदा कही जाय।

तां जुषस्व गिरं मम वाजयन्तीमवा धियम्।
वधूयुरिव योषणाम् ॥ ८ ॥

भा०—(वधूयुः) वधू की कामना करने वाला पुरुष जिस प्रकार (वाजयन्ती) अन्न ऐश्वर्य को चाहने वाली (योषणाम्) स्त्री को प्रेम

से स्वीकार करता है उसी प्रकार हे विद्वन्! हे परमेश्वर! ( वाजयन्ती ) ज्ञान, सत्यासत्य विवेक करने वाली ( मम ) मेरी ( तां ) उस ( गिरं ) वाणी और ( धियं ) धारणावती बुद्धि को मन्त्रमय, विचारमय भावना से ( जुषस्व ) प्रेम से स्वीकार कर।

यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति।
स नः पूषाविता भुवत्॥ ९॥

भा०—( यः ) जो परमेश्वर ( विश्वा भुवना ) समस्त लोकों को ( अभि विपश्यति ) प्रत्यक्ष विविध प्रकार से देखता है और ( भुवना ) समस्त लोकों को ( सं पश्यति च ) अच्छी प्रकार सम्यग् दृष्टि से देखता है ( सः ) वह ( नः ) हमारा ( पूषा ) पोषक और ( अविता ) रक्षक है। ( २ ) इसी प्रकार सबको सम्यक् दृष्टि से देखने वाला पुरुष ही हमारा पोषक और रक्षक हो।

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥ १०॥ १०॥

भा०—( यः ) जो परमेश्वर ( नः ) हमारी ( धियः ) बुद्धियों को ( प्रचोदयात् ) अच्छी प्रकार उत्तम मार्ग में प्रेरण करता है (सवितुः) सर्वोत्पादक उस ( देवस्य ) प्रकाशस्वरूप, सर्वप्रकाशक, सर्वदाता परमेश्वर के ( तत् ) उस अनुपम ( वरेण्यम् ) सर्वश्रेष्ठ ( भर्गः ) पापों को भून डालने वाले, समस्त कर्म-बन्धनों को भस्म करने वाले तेज को ( धीमहि ) धारण करें और उसी का ध्यान करें। ( २ ) जो ( नः ) हमारे ( धियः ) समस्त कर्मों को सञ्चालित करता उस सर्वप्रेरक देव, दानशील सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के उस सर्व शत्रुतापक तेज और प्रजा भृत्यादि पालक ( भर्गः ) अन्न को ( धीमहि ) धारण करें।

वेदाश्छन्दांसिसवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य कवयोऽन्नमाहुः।
कर्माणि धियस्तदु ते ब्रवीमि प्रचोदयन्त्सविता याभिरेति॥ अथर्व०॥

वेद, छन्द ( मन्त्र ) उसी सर्वोत्पादक परमेश्वर के वरण करने योग्य सर्वश्रेष्ठ सर्व पापनाशक तेज है जिसको सर्वप्रकाशक परमेश्वर का कवि विद्वान् लोग 'अन्न' अर्थात् अक्षय ऐश्वर्य बतलाते हैं। कर्म ही धी है यही मैं तुझे उपदेश करता हूं कि जिनसे सर्वोत्पादक प्रभु सूर्यवत् प्रेरणा करता हुआ सब जीवों वा लोकों को प्राप्त होता है। इति दशमो वर्गः॥

देवस्य सवितुर्वयं वाजयन्तः पुरन्ध्या।
भगस्य रातिमीमहे ॥ ११ ॥

भा०—( वयं ) हम लोग ( देवस्य ) सर्वप्रकाशक, तेजोमय, सर्वैश्वर्यप्रद ( सवितुः ) सबके प्रेरक और सबके उत्पादक ( भगस्य ) सबके भजने और सेवने योग्य, कल्याणमय, सुखप्रद परमेश्वर की (रातिम्) दान समृद्धि को ( वाजयन्तः ) ज्ञान, अन्न, बल और ऐश्वर्य की कामना करने हुए ( पुरन्ध्या ) बहुत धारण सामर्थ्ययुक्त बुद्धि से (ईमहे) याचना करते हैं।

देवं नरः सवितारं विप्रा यज्ञैः सुवृक्तिभिः।
नमस्यन्ति धियेषिताः ॥ १२ ॥

भा०—( विप्राः नरः ) विद्वान् लोग ( धियेषिताः ) बुद्धि और उत्तम कर्मों से प्रेरित होकर और ( सुवृक्तिभिः ) दोषों को उच्छेदन करने में समर्थ (यज्ञैः) देवपूजन, शास्त्राभ्यास, सत्संग, दान आदि पुण्य कर्मों से ( देवं ) सर्वप्रकाशक सर्वदाता ( सवितारं ) सर्वोत्पादक सर्व-प्रेरक परमेश्वर को ही ( नमस्यन्ति ) नमस्कार करते हैं।

सोमो जिगाति गातुविद्देवानामेति निष्कृतम्।
ऋतस्य योनिमासदम् ॥ १३ ॥

भा०—( सोमः ) ऐश्वर्ययुक्त पुरुष ( देवानां ) ज्ञान प्रकाश देने वाले, तेजस्वी ज्ञानी पुरुषों की ( गातुवित् ) प्रशंसा, उत्तम मार्ग को प्राप्त कर उनके ( निष्कृतम् ) सर्व साधनसम्पन्न ( ऋतस्य ) सत्य

ज्ञान के ( योनिम् ) कारण वा आश्रय और ( आसदम् ) आकर बैठने के स्थान, आश्रय को ( जिगाति ) जाता है और वह परम ( निष्कृतं ) शुद्ध ज्ञान सुख को और सत्य के आश्रय परम प्राप्तव्य को भी प्राप्त करता है।

सोमो॑ अ॒स्मभ्यं॑ द्वि॒पदे॒ चतु॑ष्पदे च प॒शवे॑ ।
अ॒न॒मी॒वा इष॑स्करत् ॥ १४ ॥

भा०—( सोमः ) चन्द्र के समान रसादि ओषधियों को जानने और बनाने वाला विद्वान् पुरुष ( अस्मभ्यम् ) हमारे ( द्विपदे ) दो पांव वाले भृत्यों ( चतुष्पदे च पशवे ) और चार पैर वाले पशुओं के लिये ( अनमीवाः इषः ) रोग रहित अन्न ( करत् ) उत्पन्न करे।

अ॒स्माक॒मायु॑र्व॒र्धय॑न्न॒भिमा॑तीः॒ सह॑मानः ।
सोमः॑ स॒धस्थ॒मास॑दत् ॥ १५ ॥

भा०—( अस्माकम् ) हमारे ( आयुः ) जीवनों को ( वर्धयन् ) बढ़ाता हुआ ( अभिमातीः ) शत्रुओं के समान देह के शत्रु रूप रोगों को ( सहमानः ) विनाश करता हुआ ( सोमः ) सूर्य का तेज, वायु, चन्द्र वा ओषधिरस और विद्वान् उपदेष्टा ( सधस्थम् ) हमारे साथ एक स्थान में ( आसदत् ) आकर रहे।

आ नो॑ मित्रावरुणा घृ॒तैर्गव्यू॑तिमुक्षतम् ।
मध्वा॒ रजां॑सि सुक्रतू ॥ १६ ॥

भा०—हे ( मित्रावरुणा ) परस्पर स्नेह करने और एक दूसरे का वरण करने वाले विवाहित उत्तम स्त्री पुरुषो ! आप दोनों ( नः ) हमारे बीच में ( सुक्रतू ) उत्तम कर्म और ज्ञान को करते हुए ( घृतैः ) जलों के समान स्नेहयुक्त आचार विचारों से ( गव्यूतिम् ) ज्ञान वाणियों के सत्संग को और ( मध्वा ) मधुर वचनों से ( रजांसि ) लोकों को ( उक्षतम् ) सेचन करो। भूमि को जल से सेंचो, स्नेहों से सत्संगों को और मधुर वचन से सामान्य जनों के साथ वर्त्ताव करो।

उ॒रु॒शंसा॑ नमो॒वृधा॑ म॒ह्ना दक्ष॑स्य राजथः ।
द्राघि॑ष्ठाभिः शुचिव्रता ॥ १७ ॥

भा०—हे उक्त स्त्री पुरुषो ! आप दोनों ( शुचिव्रता ) शुद्ध कर्म करते, शुद्धाचारी होकर ( उरुशंसा ) बहुत प्रशंसा और प्रशस्त विद्याओं से युक्त ( नमोवृधा ) 'नमः' परस्पर के आदर सत्कार बल और अन्नादि से बढ़ते बढ़ाते हुए दोनों ( द्राघिष्ठाभिः ) अति अधिक सामर्थ्य वा पुरुषार्थ से युक्त क्रियाओं से वा बहुत विस्तार वाली सम्पदाओं-भूमियों से और ( दक्षस्य मन्हा ) बल और ज्ञान के महान् सामर्थ्य से (राजथः) खूब प्रकाशित होओ ।

गृ॒णा॒ना ज॒मद॑ग्निना॒ योना॑वृ॒तस्य॑ सीदतम् ।
पा॒तं सोम॑मृतावृधा ॥ १८ ॥ ११ ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—हे उत्तम स्त्री पुरुषो ! ( जमदग्नि ) प्रज्वलित अग्नि के समान सत्य का प्रकाश करने वाले विज्ञानमय विद्वान् वा चक्षु से विवेक करके ( गृणाना ) उपदेश करते हुए आप दोनो ! ( ऋतस्य योनौ ) अन्न से पूर्ण गृह के समान ( सीदतम् ) विराजो । और दोनों (ऋतवृधा) अन्न के तुल्य नित्य सेवनीय धन वा सत्य के बल से बढ़ते हुए ( सोमं ) उत्पन्न सन्तान का ( पातं ) पालन करो ( सोमं पातं ) ऐश्वर्य का उपभोग करो, उत्तम बल, ओषधिरस का पान करो । इत्येकादशो वर्गः । इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

* इति तृतीयं मण्डलं समाप्तम् *
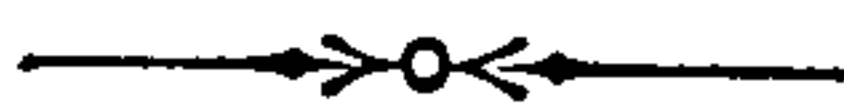
# अथ चतुर्थं मण्डलम्

[ १ ]

वामदेव ऋषिः ॥ १, ५—२० अग्निः । २—४ अग्निर्वा वरुणश्च देवता ॥ छन्दः—१ स्वराडतिशक्वरी । २ अतिजगती । ३ अष्टिः । ४, ६ भुरिक् पंक्तिः । ५, १८, २० स्वराट् पंक्तिः । ७, ६, १५, १७, १९ विराट्त्रिष्टुप् । ८, १०, ११, १२, १६ निचृत्त्रिष्टुप् । १३, १४ त्रिष्टुप् ॥ विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

त्वां ह्य॑ग्ने॒ सद॒मित्स॑म॒न्यवो॑ दे॒वासो॑ दे॒वम॑र॒तिं न्ये॑रि॒र इति॒ क्रत्वा॑ न्येरि॒रे । अम॑र्त्यं यजत॒ मर्त्ये॒ष्वा दे॒वमादे॑वं जनत॒ प्रचे॑तसं॒ विश्व॒मादे॑वं जनत॒ प्रचे॑तसम् ॥ १ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक ! ( समन्यवः ) ज्ञानवान् और शत्रु को विजय करने के लिये विशेष स्पर्द्धा व क्रोध से युक्त ( देवासः ) विद्यादि ऐश्वर्यों की कामना करने वाले शिष्य जन वा वीर जन ( देवं ) सर्व विज्ञान-प्रकाशक, विद्यादाता और विजयेच्छुक, और ( अरतिं ) प्राप्त होने योग्य, सर्वोपरि, सबसे अधिक मतिमान् , ( त्वां ) तुझको ( हि ) ही निश्चय से, ( सदम् इत् ) अपने शरण वा आश्रय जानकर ( नि एरिरे ) तुझे प्राप्त होते हैं और प्राप्त हों ( इति ) इस प्रकार के, तदनुकूल ( क्रत्वा ) उत्तम आचरण और ज्ञान से ही वे ( नि-एरिरे ) नियम से सर्वथा तुझे प्राप्त हों और तुझे प्रेरित करें । हे विद्वान् लोगो ! आप लोग ( मर्त्येषु ) मरणधर्मा मनुष्यों वा शत्रुओं को मारने वाले वीर भटों के बीच में, ( अमर्त्यं ) असाधारण मनुष्य और ( देवं ) ज्ञान प्रकाशक विद्यादाता और ऐश्वर्य दाता विजिगीषु राजा को ( आ यजत ) सब प्रकार से पूजा सत्कार करो, उसके साथ

मैत्री, सत्संग बनाए रक्खो। और (आदेवं) सब ओर प्रकाश करने वाले, सूर्यवत् तेजस्वी (प्रचेतसं) उत्कृष्ट ज्ञान वाले पुरुष को (जनत) उत्पन्न करो और (विश्वम्) सभी (आदेवं) सर्व प्रकाशक (प्रचेतसम्) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष को (आजनत) अपने में से अधिक प्रसिद्ध करो। (२) (समन्यवः देवाः) ज्ञानवान् विद्वान् लोग परमेश्वर को शरण जानकर प्राप्त हों। इसी प्रकार ज्ञान और कर्म से वे प्राप्त होते हैं। मरणधर्मा मनुष्यों में अमर उत्तम ज्ञानी प्रभु वा आत्मा की वे उपासना करें। उसको सर्व प्रकाशक, सर्वोत्कृष्ट ज्ञान और चित्त वाला जानें और बतलावें।

**स भ्रातरं वरुणमग्न आ ववृत्स्व देवाँ अच्छा सुमती यज्ञवनसं ज्येष्ठं यज्ञवनसम्। ऋतावानमादित्यं चर्षणीधृतं राजानं चर्षणीधृतम् ॥ २ ॥**

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! विद्वन्! सेनानायक! उत्तम विनीत शिष्य! (सः) वह तू (वरुणम्) दोषों, शत्रुओं और पापों को दूर करने वाले, सर्वश्रेष्ठ, वरण करने योग्य (भ्रातरम्) भाई बन्धु के समान पालक, प्रजा को भरण पोषण करने में समर्थ पुरुष को (आ ववृत्स्व) आदर पूर्वक स्वीकार कर। उसके अधीन वा अनुकूल रहकर रह। और (देवान्) विद्वान्, दानशाली तेजस्वी पुरुषों की (सुमती) शुभ मति से (अच्छ) प्राप्त करे और (यज्ञवनसं) सत्संग, मैत्री और दान के देने वाले (ज्येष्ठं) सबसे उत्तम (यज्ञवनसं) पूजनीय पद को प्राप्त, (ऋतावानम्) सत्य ज्ञान न्यायाचरण, ऐश्वर्य और अन्नादि के स्वामी, (आदित्यं) सूर्य के समान तेजस्वी और प्रजा से उनके उपकार के लिये करादि लेने वाले, (चर्षणीधृतम्) समस्त मनुष्यों को धारण करने में समर्थ, (राजानं) राजा, सबका मनोरञ्जन करनेवाले (चर्षणीधृतम्) विद्वान् तत्वद्रष्टा पुरुषों द्वारा स्थापित पुरुष को (आववृत्स्व) प्राप्त

होकर उसके अधीन रह। (२) परमेश्वर सबका पालक, बन्धु होने से भ्राता है। (यज्ञवनसं) सब पूजाओं का दाता और स्वीकर्त्ता है (ऋतावानम्) सत्य ज्ञानमय, सर्वाधार, सब मनुष्यों का धारक है। उसको (सुमती) उत्तम ज्ञानपूर्वक प्राप्त करो।

**सखे सखायमभ्या ववृत्स्वाशुं न चक्रं रथ्येव रंह्यास्मभ्यं दस्म रंह्या।**
**अग्ने मृळीकं वरुणे सचा विदो मरुत्सु विश्वभानुषु।**
**तोकाय तुजे शुशुचान शं कृध्यस्मभ्यं दस्म शं कृधि॥ ३॥**

भा०—हे (सखे) मित्र, हे सखे! हे (दस्म) शत्रु के नाश करने हारे नायक! (रथ्या) रथ के योग्य (रंह्या) वेग से जाने वाले (आशुं चक्रं न) वेगवान् घोड़े जिस प्रकार चक्र को (आ वर्त्तयतः) बराबर चलाते हैं उसी प्रकार तू भी (आशुं) वेग से काम करने वाले, चुस्त (चक्रं) क्रियावान् को (अभि आववृत्स्व) सब प्रकार से प्राप्त कर, उसके अनुकूल रहकर वर्त्ताव कर। हे (अग्ने) अग्रणी पुरुष! तू (वरुणे) सर्वश्रेष्ठ, वरण करने योग्य, पापों और शत्रुओं के निवारक पुरुष के अधीन और (विश्वभानुषु) समस्त विश्व में सूर्य के समान तेजस्वी (मरुत्सु) मनुष्यों के बल पर ही (सचा) सत्य संयोग और समवाय बल से (मृलीकं) सुखकारी ऐश्वर्य और ज्ञान (विदः) प्राप्त कर। हे (शुशुचान) देदीप्यमान! तू (तोकाय) पुत्रवत् (तुजे) पालने योग्य सन्तान, प्रजा के हित के लिये (शं कृधि) कल्याण कर और हे (दस्म) दर्शनीय वा दुःखों के नाशक! तू (अस्मभ्यं शं कृधि (हमारे लिये कल्याण कर, हमें शान्ति प्रदान कर।

**त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः।**
**यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत्॥४॥**

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक! हे ज्ञानवान् पुरुष! तू (विद्वान्) हम में से विद्वान् है। तू (नः) हमारे (देवस्य) ज्ञान और

ऐश्वर्य को देने वाले ( वरुणस्य ) सर्वश्रेष्ठ, पापादि निवारक, आचार्य, राजा और प्रभु परमेश्वर के सम्बन्ध में हमारे ( हेडः ) क्रोध और अनादर के भावको ( अव यासिसीष्ठाः ) दूर कर । तू ( यजिष्ठः )सबसे अधिक पूज्य, ( वह्नितमः ) कार्य का भार सहने में सबसे श्रेष्ठ, ( शोशुचानः ) निरन्तर प्रकाशमान्, तेजस्वी होकर ( अस्मात् ) हम से ( विश्वा द्वेषांसि ) सब प्रकार के द्वेष के कार्यों, भावों को ( प्र मुमुग्धि ) दूर कर ।

स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ ।
अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि ॥५॥१२॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवान् ! तेजस्विन् ! प्रभो ! (सः) वह (त्वं) तू ( नः ) हमारे बीच ( ऊती ) रक्षण, ज्ञान, पालन आदि कर्मों द्वारा ( अवमः ) हमारे अति समीप और ( अस्याः उषसः ) इस प्रभात वेला के समान कमनीय, पाप नाशक वेला के ( वि उष्टौ ) विशेष रूप से प्रकट होने पर तू हमारे ( नेदिष्ठः ) अति समीप-तम ( भव ) हो । ( तू (नः) हमें ( वरुणं ) वरण करने योग्य श्रेष्ठ पदार्थ, उत्तम पुरुष और पापनिवारक बल ( रराणः ) प्रदान करता हुआ ( नः ) हमें ( अव यक्ष्व ) अपने अधीन सत्संग और मैत्रीभाव से जोड़े रख । ( नः ) हमारे (मृळीकं) सुखकारी ज्ञान प्रकाश को ( वीहि ) प्रकाशित कर । ( नः ) हमारे लिये ( सुहवः ) उत्तम पदार्थों का दाता, सुखपूर्वक बुलाने योग्य, सुगृहीत नाम वाला, सुख से पुकारने योग्य, शरण ( एधि ) हो । इति द्वादशो वर्गः ॥

अस्य श्रेष्ठा सुभगस्य सन्दृग्देवस्य चित्रतमा मर्त्येषु ।
शुचि घृतं न तप्तमघ्न्यायाः स्पार्हा देवस्य मंहनेव धेनोः ॥ ६ ॥

भा०—( अस्य ) इस ( सुभगस्य ) उत्तम ऐश्वर्यवान् ( देवस्य ) मेघ के समान दानशील और सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के ( मर्त्येषु ) वीर प्रजाजनों के बीच में ( श्रेष्ठा ) अति उत्तम और ( चित्रतमा ) अति

उत्तम और ( चित्रतमा ) अति आश्चर्यजनक कर्म और ( संदृक् ) श्रेष्ठ और अद्भुत सम्यक् दृष्टि हो । ( देवस्य ) अभिलाषी पुरुष को जिस प्रकार ( अघ्न्यायाः ) गौ का ( शुचि ) शुद्ध पवित्र ( तप्तं ) गरम ( घृतं ) स्तनों से निकला दूध वा तपा, घी और (धेनोः मंहना इव) दानाभिलाषी को जिस प्रकार गो-दान ( स्पार्हा ) अति अभिलाषा योग्य होता है उसी प्रकार ( देवस्य ) उस सूर्यवत् तेजस्वी राजा को भी अपनी ( अघ्न्यायाः ) कभी न मारने योग्य प्रिय, गोवत् पालन करने योग्य प्रजा का ( शुचि ) शुद्ध, ईमानदारी से प्राप्त, ( तप्तं ) शत्रुओं को संताप जनक ( घृतं ) तेज और ( धेनोः )गाय के समान सबकी पोषक पृथिवी के ( मंहना ) दिये नाना ऐश्वर्य भी उसको ( स्पार्हा ) चाहने योग्य, श्रेष्ठ हों ।

त्रिर॑स्य॒ ता प॑र॒मा स॑न्ति स॒त्या स्पा॒र्हा दे॒वस्य॒ जनि॑मान्य॒ग्नेः ।
अ॒न॒न्ते अ॒न्तः परि॑वीत॒ आगा॒च्छुचि॑ः शु॒क्रो अ॒र्यो रोरु॑चानः ॥७॥

भा०—(अग्नेः त्रिः परमा सत्या जनिमा) अग्नि के जिस प्रकार तीन प्रकार के परम, सत्य, सर्व हितकारी, बलवान् स्वरूप हैं, अग्नि, विद्युत् और सूर्य उसी प्रकार ( अस्य देवस्य ) इस ज्ञान और ऐश्वर्य के देने वाले विद्वान् पुरुष, और तेजस्वी राजा के भी ( त्रिः ) तीन प्रकार के ( ताः ) वे नाना ( परमा ) उत्तम कोटि के, ( सत्या ) सत्य, ( स्पार्हा ) अति उत्तम, चाहने योग्य, ( जनिमानि ) स्वभावसिद्ध रूप हैं, प्रथम ( अनन्ते अन्तः ) वह अनन्त आकाश में तेजस्वी सूर्य के समान ( अनन्ते ) अनन्त परमेश्वर के ( अन्तः ) बीच में ( परिवीतः ) सब प्रकार से प्रकाशित और प्रविष्ट हो, उसी में रमने वाला हो । दूसरे, वह ( शुक्रः ) तेज से युक्त, विद्युत् के समान, (शुचिः) स्वयं शुद्ध पवित्र, अन्यों को शुद्ध करने वाला धार्मिक रूप में ( आ गात् ) सर्वत्र जाना जाय । तीसरे वह ( रोरुचानः ) अग्नि के तुल्य कान्तिमान् और सबको रुचिकर होकर ( अर्यः ) सबका रक्षक, स्वामी हो ।

स दूतो विश्वेदभि वष्टि सद्मा होता हिरण्यरथो रंसुजिह्वः ।
रोहिदश्वो वपुष्यो विभावा सदा रण्वः पितुमतीव संसत् ॥८॥

भा०—( सः ) वह विद्वान् पुरुष, उत्तम नायक, ( दूतः ) शत्रुओं का संतापक, सज्जनों का सेवक, ( विश्वा सद्मा अभि वष्टि ) सूर्य, दीपक वा अग्नि के समान ही सब गृहों, लोकों और पदों को चमकाता है, वह ( हिरण्यरथः ) लोह, सुवर्णादि के बने रथ वाला, हितकारी, रमणीय, रूपवान् ( रंसुजिह्वः ) रम्य, मधुर वाणी बोलने हारा, ( रोहित्-अश्वः ) रक्त वर्ण के वेगवान् घोड़ों वा अग्नि आदि साधनों वाला, ( वपुष्यः ) उत्तम देह, रूपवान् ( विभावा ) कान्तिमान् ( सदा ) नित्य ( रण्वः ) रमणीय, सुन्दर और ( पितुमती इव ) अन्नादि वा पालक सभापति से समृद्ध ( संसत् ) सभा, या भवन के समान सबका पालक हो ।

स चेतयन्मनुषो यज्ञबन्धुः प्र तं मह्या रशनया नयन्ति ।
स क्षेत्यस्य दुर्यासु साधन्देवो मर्तस्य सधनित्वमाप ॥ ९ ॥

भा०—( सः ) वह ( यज्ञबन्धुः ) उत्तम दान, सत्संग और मैत्री भाव आदि उत्तम कर्मों द्वारा सबका बन्धु, सहायक होकर ( मनुषः ) मनुष्यों को ( चेतयन् ) ज्ञानवान् करे, उनको आपत्ति से सचेत करे । ( तं ) उसको विद्वान् लोग ( रशनया ) रस्सी या लगाम से जिस प्रकार अश्व को सन्मार्ग पर चलाते हैं उसी प्रकार ( मह्या ) बड़ी उत्तम, पूजनीय ( रशनया ) राष्ट्र में व्यापक नीति से या पूज्य परम्परा वा भृत्य परम्परा सहित ( प्र नयन्ति ) उत्तम रीति से ले जावें । ( सः ) वह ( देवः ) तेजस्वी राजा ( अस्य ) इस राष्ट्र के ( दुर्यासु ) राज्य-गृहों में वा शत्रु निवारक सेनाओं वा प्रजाओं के बीच ( क्षेति ) निवास करे और ( साधन् ) कार्यों को सिद्ध करता हुआ, ( मर्तस्य ) मनुष्य समूह के लिये ( सधनित्वम् ) ऐश्वर्यवान् पुरुषों से युक्त राज्य पद को ( आप ) प्राप्त करे वा धनसम्पन्न पुरुषों के समान उत्तम पद को प्राप्त करे ।

स तू नो अग्निर्नयतु प्रजानन्नच्छा रत्नं देवभक्तं यदस्य ।
धिया यद्विश्वे अमृता अकृण्वन्द्यौष्पिता जनिता सत्यमुक्षन् ।१०।१३

भा०—( सः ) वह ( अग्निः ) अग्रणी नायक, तेजस्वी राजा विद्वान् ( यत् ) जो ( अस्य ) इस संसार का ( देवभक्तं ) देव, विद्वान् और अभिलाषुक जीव के सेवन करने योग्य ( अच्छ रत्नं ) रमणीय ऐश्वर्य, जीवन सुख आदि पदार्थ है उसकी ओर ( प्रजानन् ) अच्छी प्रकार ज्ञान-वान् वह ( नः ) हमें ( तु नयतु ) शीघ्र ही ले जावे । जिसको ( विश्वे अमृताः ) समस्त अमृत, जीवगण ( धिया अकृण्वन् ) बुद्धिपूर्वक विचार करते हैं ( द्यौः ) ज्ञान प्रकाश से युक्त ( पिता ) पालक, आचार्य (जनिता) उत्पन्न करने वाली माता और पिता के तुल्य शिष्य को उत्पन्न करने वाला आचार्य भी जिसको ( सत्यम् ) सत्य ज्ञान से सेचन करे और बढ़ावे ( २ ) परमेश्वर पक्षमें—वह सबसे उत्कृष्ट ज्ञानवान् उत्तम ऐश्वर्य हमें दे । उस प्रभु को समस्त मुक्त जीवगण ध्यान करते, पिता माता आचार्य आदि सत्य स्वरूप करके धारण करते और अन्यों को उसका उप-देश करते हैं । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

स जायत प्रथमः पस्त्यासु महो बुध्ने रजसो अस्य योनौ ।
अपादशीर्षा गुहमानो अन्तायोयुवानो वृषभस्य नीळे ॥ ११ ॥

भा०—( सः ) वह नायक (प्रथमः) सबसे मुख्य होकर (पस्त्यासु) गृहों में निवास करने वाली प्रजाओं के बीच, घरों में मुख्य पुरुष के समान ही ( जायत ) रहे । वह ( अस्य ) इस ( महः रजसः ) बड़े भारी लोक जन-समूह के ( योनौ ) आश्रय स्थान (बुध्ने) उसके बांधने या नियन्त्रण करने के पद पर विराजे । वह (अपात्) स्वयं सबका आश्रय होने से पैर के समान अन्य पैर की अपेक्षा न करता हुआ, ( अशीर्षा ) स्वयं सबसे मुख्य होकर शिर के तुल्य, अन्य शिर की अपेक्षा न करता हुआ ( गुहमानः )

सबके बीच अप्रकट रूप से विचार करने वाला, वा सब ओर से संवृत होकर, ( अन्ता ) अपने अन्तों, सिद्धान्तों या परिणत कार्यों का कार्य-कर्त्ताओं को ( वृषभस्य नीडे ) वृष्टि, अन्नादि के दाता सूर्य के उत्तम तेजस्वी पद पर स्थित होकर ( आयोयुवानः ) रश्मियों के समान कार्य में नियुक्त करता हुआ ( जायत ) रहे । ( २ ) परमेश्वर पक्षमें—वह ( पस्त्यासु ) समस्त लोकों में और आश्रय भूत प्रकृति विकृतियों में सबका आदिकारण, इस महान् सूर्य के भी परम मूल में आश्रय रूप से विद्यमान् है । वह शिरः पाद आदि अवयवों से रहित, निराकार, निरवयव प्रभु सर्व सुखवर्धक प्रभु के पद पर ( अन्ता ) सबके समीप हृदय में सदा व्यापक रहता है । अथवा सर्व प्रथम उत्पन्न मेघ या नीहारिका के भी मूल आश्रय में गूढ़ रूप से विद्यमान रहा ।

प्र शर्धं आर्त प्रथमं विपन्यँ ऋतस्य योना वृषभस्य नीळे ।
स्पार्हो युवा वपुष्यो विभावा सप्त प्रियासोऽजनयन्त वृष्णे ॥१२॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! तू प्रथम, (ऋतस्य) सत्यज्ञान के (योना) गृह में, आचार्य के घरमें और ( वृषभस्य नीळे ) ज्ञान को मेघ के समान वर्षाने वाले गुरु के आश्रय में रहकर ( विपन्या ) विशेष उपदेश करने योग्य वेद वाणी के द्वारा ( प्रथमं शर्धः ) सर्वश्रेष्ठ, बल ज्ञान, ब्रह्मचर्य को ( प्र आर्त ) अच्छी प्रकार प्राप्त कर । इसी प्रकार हे राजन् ! नायक ! तू ( ऋतस्य योना ) धनैश्वर्य और ऋत अर्थात् सत्य न्याय के पद और ( वृषभस्य नीळे ) अर्थात् राज्यप्रबन्ध के शकट को उठाकर ले चलने वाले वृषभ के तुल्य सर्व प्रधान-पद पर स्थित होकर ( विपन्या ) विविध आज्ञा और व्यवहार चलाने वाली वाणी और नीति से सर्वोत्तम बल को प्राप्त कर । वह तू ( स्पार्हः ) सबके चाहने योग्य, सर्व प्रिय, ( युवा ) जवान, बल-वान् , ( वपुष्यः ) उत्तम शरीर धारण करने वाला, ( विभावा ) विशेष कान्तिमान् हो । और ( सप्त ) सात ( प्रियासः ) प्रिय बन्धुजन (वृष्णे)

उस वलवान् पुरुष के हित के लिये (शर्धः अजनयन्त) वल और सुख उत्पन्न करें। (२) अध्यात्म में—यह जीव 'ऋत' सत्यज्ञान और सर्व सुखवर्षी प्रभु के आश्रय रहकर स्तुति द्वारा सर्वश्रेष्ठ वल प्राप्त करे। वह सर्वस्पृहणीय, सर्वप्रिय, वलवान् शरीर धर तेजःस्वरूप हो। सात प्रिय प्राण उसको ज्ञान वल उत्पन्न करें। (३) प्रभु परमेश्वर सत्य ज्ञान के परम आश्रय सूर्यवत् सर्व सुखवर्षक के पद पर स्थित होकर सर्वोत्तम वल को धारण करता है। वह सर्वस्पृहणीय, वलवान्, सवके देहों में भी व्यापक तेजःस्वरूप है। सर्वतर्क, सात प्रकृति विकृति उसी प्रभु के वल से (अजनयन्त) सृष्टि को उत्पन्न करते हैं। (४) राजा के पक्षमें—(सप्त प्रियासः) उसको वल में तृप्त, पूर्ण करने वाले सातों प्रिय प्रकृति अमात्य राष्ट्र, कोश दुर्ग, वल आदि उसको (वृष्णे) प्रधान प्रवन्धक के कार्य के लिये समर्थ करते हैं।

अस्माकमत्र पितरो मनुष्या अभि प्र सेदुर्ऋतमाशुषाणाः।
अश्मव्रजाः सुदुघा वव्रे अन्तरुदुस्रा आजन्नुषसो हुवानाः॥१३॥

भा०—(अत्र) इस लोक वा राष्ट्र में जो (अस्माकम्) हमारे वीच में हमारे ही (पितरः) पालन करने वाले और (मनुष्याः) मननशील पुरुष (ऋतम्) सत्यज्ञान, वेद, ब्रह्मचर्य, वीर्य और धनैश्वर्य को (आशुषाणाः) प्राप्त करते हुए और तपस्या करते हुए (अभि प्र सेदुः) सदा प्रसन्न रहते या कार्यों पर उत्साहपूर्वक जाते हैं, अथवा तपस्या करते हुए (ऋतम् अभि प्र सेदुः) ज्ञान, वेद, ब्रह्मचर्य, वीर्य और धन को प्राप्त करने के लिये प्रस्थान करते हैं, वे (हुवानाः) ज्ञान का दान और प्रतिग्रह करते हुए (अश्मव्रजाः) मेघ के समान ज्ञानवर्षक लोगों की शरण जाने वाले, (सुदुघाः) उत्तम ज्ञान का दोहन करने वाले, (वव्रे अन्तः) आवृत स्थान में स्थित गौओं के समान ही (वव्रे अन्तः) वरण करने योग्य प्रभु परमेश्वर के भीतर ही (उषसः) सव

पापों को दग्ध करने वाली (उस्राः) तेजोमय रश्मियों, दीप्तियों और वाणियों को (उत् आजन्) प्रकट करते और प्राप्त करते हैं। अर्थात् जिस प्रकार उत्तम गो-पालक लोग (अश्मव्रजाः वव्रे अन्तः स्थिताः उस्राः उद् आजन्) पत्थर की बनी गोशालाओं के बीच में विद्यमान उत्तम दोहने योग्य, बाड़े में स्थित गौओं को हांकते हैं, बाहर करते हैं उसी प्रकार विद्वान् लोग (अश्मव्रजाः) व्यापक परमेश्वर की तरफ़ जाने वाली (सुदुघाः) उत्तम सुख रस प्रदान करने वाली आनन्दवर्षिणी, (उस्राः उषसः) स्वयं उत्पन्न होने वाली प्रातः उषा के तुल्य दीप्ति वाली (वव्रे अन्तः) आवृत अन्तःकरण के भीतर स्थित वाणियों को (उत् आजन्) ऊपर प्रकट करें, उच्चारण करें। (२) सेनानायक, राष्ट्रपालक लोग भी (अश्मव्रजाः) शस्त्र धारण करके चलने वाली (सुदुघाः) राष्ट्र को ऐश्वर्य से पूर्ण करने वाली, (उषसः) शत्रुसंतापक, (उस्राः) शत्रु पर चढ़ाई करने वाली सेनाओं को और समृद्ध प्रजाओं को (हुवानाः) आज्ञा देते हुए (वव्रे) सुगुप्त (अन्तः) राष्ट्र के भीतर (उत् आजन्) उत्तम रीति से सञ्चालित करें। (३) अध्यात्म में—(पितरः) प्राणगण।

ते म॑र्मृजत दद्वांसो॒ अद्रिं॒ तदे॑षाम॒न्ये अ॒भितो॒ वि वो॑चन्।
प॒श्वय॑न्त्रासो अ॒भि का॒रम॑र्च॒न्विदन्त॒ ज्योति॑श्चकृ॒पन्त॒ धीभिः॑॥१४॥

भा०—(ते) वे विद्वान् लोग (अद्रिं) मेघ को रश्मियों के समान, अभेद्य अज्ञान को (दद्वांसः) विदारण या छिन्न भिन्न करते हुए (मर्मृजत) अपने को निरन्तर शुद्ध करते रहें। (एषाम्) इनमें से ही (अन्ये) कुछ विद्वान् लोग (अभितः) सब ओर (तत्) उस परमात्मा और आत्मा का (वि वोचन्) विविध प्रकार से उपदेश किया करें। वे (पश्वयन्त्रासः) देखने वाले यन्त्रों से युक्त या नाना यन्त्रों का साक्षात् करने वाले, अथवा देखने वाली इन्द्रियों को अपने अधीन निय-

न्त्रित करने वाले जितेन्द्रिय होकर ( कारम् अभि ) कर्त्ता, विश्व के निर्माता परमेश्वर को साक्षात् करके ( अर्चन् ) उसकी स्तुति करें। अथवा ( पश्व-यन्त्रासः ) नाना देखने के दूरदर्शक और सूक्ष्मदर्शक यन्त्रों से सम्पन्न होकर ( कारम् अभि अर्चन् ) परमेश्वरीय नाना शिल्पों को प्राप्त करें और उनका उपदेश करें। और ( धीभिः ) बुद्धियों से ( ज्योतिः विदन्त ) दूरस्थ नक्षत्रादि ज्योति का ज्ञान करें वा ज्ञानमय ज्योति को ( विदन्त ) प्राप्त करें, जानें। और ( धीभिः ) बुद्धियों और कर्मों से ही ( चक्रपन्त ) निरन्तर काम करने में समर्थ होवें। ( २ ) वीर पुरुष ( दृद्वांसः ) शत्रुओं को विदारण करते हुए ( अद्रिं ) वज्रादि शस्त्र को चमकावें। उनमें कुछ आज्ञा देने का काम करें दूसरे पशु के समान यन्त्र बनकर या यन्त्रादि रखकर कर्त्ता मुख्य पुरुष की आज्ञा पालन करें। वे ( ज्योतिः ) सुवर्णादि वेतन प्राप्त करें और कर्मों, बुद्धियों से सामर्थ्यवान् बनें।

ते गव्यता मनसा दृध्रमुब्धं गा येमानं परि षन्तमद्रिम्।
दृळ्हं नरो वचसा दैव्येन व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥१५॥१४॥

भा०—( गव्यता मनसा ) उत्तम ज्ञान-वाणियों को प्राप्त करने की इच्छा वाले चित्त से, नाना वेद-वाणी के तुल्य आचरण करने वाले वेद के तुल्य नित्य ज्ञान से ( दृध्रम् ) शिष्यों को बढ़ाने वाले ( उब्धम् ) स्वयं उक्त प्रकार के ज्ञान से पूर्ण वा अन्यों के अज्ञान को नाश करने वाले, ( गाः येमानम् ) किरणों को सूर्य के तुल्य वाणियों और इन्द्रियों के नियम में रखने वाले ( सन्तम् ) सत्स्वभाव ( अद्रिम् ) मेघ के समान ज्ञानवर्षक, पर्वत के समान उच्च प्रकृति वाले, उन्नत, ( दृढं ) दृढ़, ( गोमन्तं ) सूर्यवत् ज्ञानरश्मियों और वेदवाणियों के स्वामी, ( व्रजं ) परम-गन्तव्य वा सर्व विद्या मार्गों में जाने में समर्थ विद्वान आचार्य को ( ते नरः ) वे शिष्य जन ( उशिजः ) ज्ञानों की कामना करते हुए ( दैव्येन वचसा ) देव, ज्ञानदाता के योग्य वचन से आदर पूर्वक ( परि

वव्रुः ) प्रार्थना करे उसका चारों ओर से घेर कर उसके समीप रहें, और ( वि वव्रुः ) विविध प्रकार से अपनावें। ( २ ) वीर नायक लोग भी ( गव्यता मनसा ) उसकी आज्ञा पालन की इच्छा और भूमि-प्राप्ति की इच्छा वाले चित्त से ऐश्वर्य के धारक ऐश्वर्यपूर्ण भूमियों के विजेता, दृढ, भूमि के स्वामी, सर्वोपगम्य पुरुष को देवोचित, वा राजोचित आदर युक्त वचन से नायकरूप से वरें। ( ३ ) इसी प्रकार विद्वानजन परमेश्वर को स्तुति वाणी से युक्त चित्त से वरें। ( दृध्रं ) वह प्रभु जगत् को धारण करता, ( उब्धं ) व्यापता है। समस्त लोकों, सूर्यों का नियन्ता, सत् रूप मेघ तुल्य आनन्दघन, दृढ़, सर्वोपगम्य परमपद और ( गोमान् ) स्वयं जीवों का स्वामी है, सब उसकी स्तुति करें। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

ते म॑न्वत प्रथ॒मं नाम॑ धे॒नोस्त्रिः स॒प्त मा॒तुः प॑र॒माणि॑ विन्दन्।
तज्जा॑न॒तीर॒भ्य॑नूषत॒ व्रा आ॒विर्भु॑वदरु॒णीर्य॒शसा॒ गोः ॥ १६ ॥

भा०—( ते ) वे विद्वान् लोग ( मातुः ) सर्वोत्पादक, सबकी माता ( धेनोः ) सबकी धारक पोषक, गायके समान मधुर रस पिलाने वाली वाणी के ( नाम ) नाम या स्वरूप को, माता के नाम को बालकों के समान ( प्रथमं ) सबसे प्रथम, सर्वश्रेष्ठ करके ( त्रिः मन्वत ) श्रवण, मनन और निदिध्यासन इन तीन प्रकारों से ज्ञान करें और वे ( मातुः ) समस्त ज्ञानों को उपदेश करने वाली वाणी के या सर्वोत्पादक सर्वजननी परमेश्वरी शक्ति के ( सप्त ) सात वा सर्वव्यापक ( परमाणि ) परम सर्वोत्कृष्ट रूपों का ( विन्दन् ) ज्ञान करें। वाणी के ७ रूप सात प्रकार के छन्द, परमेश्वरी शक्ति से युक्त सर्वजननी प्रकृति के सात रूप, पांच भूत, महत् तत्व और अहंकार। अथवा ( त्रिः सप्त परमाणि विन्दन् ) वे वाणी के २१ रूपों का ज्ञान करते हैं। वेदवाणी के २१ रूप, गायत्री आदि सात, अति जगती आदि सात और कृति आदि सात ( जानतीः ) ज्ञान से युक्त ( व्राः ) परमेश्वर को वरण करने और उसको संभजन

कीर्त्तन करने वाली ( व्राः ) वाणियें ( अरुणीः ) रक्त गुण वाली उषाओं के समान ज्ञान प्रकाश वाली होकर ( तत् ) उसी परमेश्वर महान् आत्मा की ( अभि अनूषत ) सब प्रकार से स्तुति करती हैं, और वह आत्मा ( गोः ) वाणी के ( यशसा ) बल और तेज से ही, रश्मि के बल से सूर्य के तुल्य, इन्द्रियों के बल से जीव आत्मा के तुल्य और भूमि के यश से राजा के तुल्य ही ( आविः भुवत् ) प्रकट होता है। (२) माता भूमि के सात परम रक्षक, स्वामि, अमात्य, सुहृद्, राष्ट्र, दुर्ग, कोश, बल ये सात प्रकृतियें हैं। उसका तीन प्रकार से ज्ञान है—भूमि, सुवर्ण सेना अथवा, उसका तीन प्रकार से विचार है—उत्साहशक्ति, मन्त्रशक्ति और प्रभु शक्ति वा प्रचुर अर्थबल ज्ञानयुक्त नायक को वरण करने वाली प्रजाएं उस नामकी स्तुति करती है और वह ( गोः यशसा ) भूमि या सूर्य के तेज से प्रकट होता है।

नेश॒त्तमो॑ दु॒धि॑तं॒ रोच॑त॒ द्यौरुद्दे॒व्या उ॒षसो॑ भा॒नुर॑र्त ।
आ सूर्यो॑ बृह॒तस्ति॑ष्ठ॒दज्राँ॑ ऋ॒जु मर्ते॑षु वृजि॒ना च॒ पश्य॑न् ॥१७॥

भा०—हे विद्वन्! राजन्! प्रभो! जिस प्रकार सूर्योदय के होने पर ( दुधितं तमः ) आकाश में फैला हुआ अन्धकार भी ( नेशत् ) नष्ट हो जाता है, और (द्यौः रोचत) सूर्य चमकने लगता है; वा दिन या प्रकाश चमकता है। और ( देव्याः उषसः ) प्रकाश वाली उषा का ( भानुः ) प्रकाश भी ( उत् अर्त्त ) उदय को प्राप्त होता है। (सूर्यः) सूर्य (बृहतः) बड़े २ ( अज्रान् ) प्रकाशनिवारक, दूर २ तक फेंके गये किरणों को ( आतिष्ठति ) सर्वत्र थामता है, और उन पर विराजता है, उसी प्रकार वाणी के उदय होने पर अन्तःकरण में पूर्ण अज्ञान का तिमिर नाश को प्राप्त होता है, ज्ञान का प्रकाश चमक जाता है और पापनाशक उषा देवी आत्मशक्ति विवेकख्याति का उदय होता है, भीतरी आत्मा वा विद्वान् सूर्य के तुल्य होकर बड़े २ ( अज्रान् ) ज्ञान साधनों का अनुष्ठान करता

है या प्राणों की साधना करता है, और तब वह ( मर्त्तेषु ) मरणधर्मा मनुष्यों या जड़ देहों के बीच ( ऋजु ) सरल सत् तत्व और ( वृजिना ) नाना प्रेरक बलों को अथवा ज्ञान वाणी द्वारा धर्म तथा वर्जनीय पाप कर्मों को ( पश्यन् ) देखने और विवेक करने लगता है। ( २ ) राजा पक्षमें—जब उषादेवी, विजयशालिनी शत्रुदाहक सेना के तेज का उदय होता है तो शत्रु सैन्य नष्ट होता है (द्यौः) विजयिनी सेना या विजय लक्ष्मी चमकती है, सूर्य तुल्य तेजस्वी राजा ( अज्रान् = वज्रान् ) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले बलवान् पुरुषों के ऊपर अध्यक्ष होकर विराजे और मनुष्यों के बीच पुण्य, पाप का विवेक न्यायपूर्वक करे।

आदित्पश्चा बुबुधाना व्यख्यन्नादिद्रत्नं धारयन्त द्युभक्तम्।
विश्वे विश्वासु दुर्यासु देवा मित्र धिये वरुण सत्यमस्तु ॥१८॥

भा०—जिस प्रकार सूर्योदय के पश्चात् जागते हुए लोग विविध पदार्थों को देखते और कहते हैं और चमक से युक्त रत्नादि पदार्थ को रख लेते हैं, सभी किरणें सभी गृहों में जाती हैं और सब पदार्थ सत्य देखने और प्रयोग में आता है उसी प्रकार ( आत् इत् ) इसके अनन्तर और ( पश्चा ) पीछे भी ( बुबुधानाः ) निरन्तर बहुत ज्ञान करने वाले, ( वि अख्यन् ) विविध प्रकार से ज्ञानों का दर्शन करें, और अन्यों को उसका उपदेश करें। ( आत् इत् ) और अनन्तर ( द्युभक्तम् ) इच्छापूर्वक प्राप्त किये हुए ( रत्नम् ) रमणीय ज्ञान को ( धारयन्त ) धारण करें। ( विश्वे देवाः ) सभी विद्वान् गण ( विश्वासु दुर्यासु ) सब ही घरों में विराजमान हों। हे ( मित्र ) सर्व स्नेहवान्, प्रजारक्षक ! हे (वरुण) सर्वदुःखवारक ! सर्वश्रेष्ठ राजन् ! ( धिये ) ज्ञान धारण करने और कर्म करने के लिये ( सत्यम् ) सदा सत्यज्ञान ( अस्तु ) प्राप्त हो।

अच्छा वोचेय शुशुचानमग्निं होतारं विश्वभरसं यजिष्ठम्।
शुच्यूधो अतृणन्न गवामन्धो न पूतं परिषिक्तमंशोः ॥ १९ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (शुशुचानम्) सूर्य के समान दीप्तिमान् (अग्निम्) अग्नि के तुल्य कान्तिमान्, तेजस्वी, (विश्वभरसं) समस्त विश्व को पालन पोषण करने वाले (यजिष्ठं) अतिदानशील, सबसे अधिक पूज्य, संत्संग योग्य परमेश्वर को मैं (अच्छ वोचेय) साक्षात् कर उसको अन्यों को उपदेश करता हूं। वह प्रभु (गवां) किरणों के बने (शुचि ऊधः) पवित्र कान्तिमान् प्रभात के समान पवित्र है और गौओं के (ऊधः न शुचि) स्तन मण्डल के समान पवित्र है और (अतृणत्) सब प्रकार के उत्तम रस को प्रदान करता है। वा वह (न अतृणत्) किसी का नाश नहीं करता सबको पालता है (अन्धः न) सोम रस या अन्न के समान (पूतं) अति पवित्र और (अंशोः) सूर्य के तेज से (परिषिक्त) सब प्रकार सेचित और परिवर्धित, व्याप्त है। अर्थात् परमेश्वर गोस्तनों के समान सर्वरसप्रद, अन्न के समान सर्व पोषक और सूर्य के तुल्य तेजः प्रकाशमान या 'अंशु' व्यापक सामर्थ्य से सर्वत्र व्यापक है। (२) इसी प्रकार राजा भी सबका पालन करे।

**विश्वे॑षा॒मदि॑तिर्य॒ज्ञिया॑नां॒ विश्वे॑षा॒मति॑थि॒र्मानु॑षाणाम्।**
**अ॒ग्निर्दे॒वाना॒मव॑ आवृणा॒नः सु॑मृळी॒को भ॑वतु जा॒तवे॑दाः॥२०।१५॥**

भा०—वह परमेश्वर (विश्वेषाम् यज्ञियानां) समस्त पूजनीय पदार्थों में (अदितिः) अविनश्वर नित्य है, वह (विश्वेषां) समस्त (मानुषाणाम्) मनुष्यों के बीच में (अतिथिः) व्यापक, अतिथि के समान पूज्य और सबका अधिष्ठाता है। वह (अग्निः) ज्ञानस्वरूप और प्रकाशस्वरूप (देवानां) सब प्रकाशमान पृथिव्यादि लोकों और विद्वान् प्रार्थियों को (अवः) रक्षा, पालन, शरण और ज्ञान (आवृणानः) प्रदान करता हुआ (जातवेदाः) सब उत्पन्न पदार्थों का जानने हारा (सुमृळीकः भवतु) सबको उत्तम सुख देने वाला हो। इति पञ्चदशो वर्गः॥

[ २

वामदेव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, १९ पंक्तिः । १२ निचृत्पंक्तिः । १४ स्वराट् पंक्तिः । २, ४—७, ६, १३, १५, १७, १८, २० निचृत्-त्रिष्टुप् । ३, १६ त्रिष्टुप् । ८, १०, ११ विराट्त्रिष्टुप् ॥

यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा देवो देवेष्वरतिर्निधायि ।
होता यजिष्ठो मह्ना शुचध्यै हव्यैरग्निर्मनुष ईरयध्यै ॥ १ ॥

भा०—( यः ) जो ( मर्त्येषु ) मरणधर्मा देहों, मूर्तिमान् पदार्थों और जीवों के बीच (अमृतः) कभी नाश को प्राप्त न होने वाला, (ऋतावा) सत्य ज्ञानमय, ( देवः ) प्रकाशस्वरूप, सबका प्रकाशक ( देवेषु ) सब कामनावान् जीवों के बीच और सूर्यादि तेजस्वी लोकों के बीच ( अरतिः ) अति ज्ञानवान्, स्वामी रूप से ( निधायि ) विद्यमान है। वह परमेश्वर होता सब सुखों का देने वाला, ( यजिष्ठः ) सबसे अधिक पूज्य, (अग्निः) सबका अग्रणी, सर्वव्यापक, समस्त विश्व के अंग २ में विद्यमान होकर ( मह्ना ) अपने महान् सामर्थ्य से ( हव्यैः ) ग्रहण करने योग्य ज्ञानों और अन्नादि पदार्थों से ( मनुषः ) सब मनुष्यों को ( शुचध्यै ) पवित्र और तेजोयुक्त करने और ( ईरयध्यै ) प्रेरित करने, सञ्चालित करने में समर्थ है। ( २ ) इसी प्रकार राजा ( मर्त्येषु अमृतः ) शत्रु मारक सैन्यों के बीच अविनष्ट, ( ऋतावा ) न्यायी, ( अरतिः ) सबका प्रेरक स्वामी होकर विराजे। वह दाता, पूज्य, महान् शक्ति राष्ट्र के मनुष्यों को स्वच्छ और सञ्चालित भी करे।

इह त्वं सूनो सहसो नो अद्य जातो जाताँ उभयाँ अन्तरग्ने ।
दूत ईयसे युयुजान ऋष्व ऋजुमुष्कान्वृषणः शुक्रांश्च ॥ २ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! ( सहसः सूनो ) समस्त शक्ति के उत्पन्न करने और चलाने हारे ! हे ( अग्ने ) ज्ञानवान् ! ( इह ) इस संसार में ( त्वं )

तू ( जातः ) प्रकट होकर ( नः ) हम ( जातान् ) उत्पन्न हुए ( उभयान् ) स्थावर, जंगम व पक्ष प्रतिपक्ष स्त्री पुरुष दोनों के ( अन्तः ) बीच में ( दूतः ) दो राजपक्षों के बीच दूत के समान साक्षी और दुष्टों का सन्तापक, दण्डदायक होकर ( ईयसे ) जाना जाता है। तू ( ऋष्वः ) महान् होकर ( ऋजुमुष्कान् ) ऋजु, सरल धर्ममार्ग से परिपुष्ट होने वाले ( वृषणः ) बलवान् ( शुक्रांश्च ) शीघ्र कार्य करने में समर्थ वा वीर्यवान् तेजस्वी पुरुषों को भी ( युयुजानः ) योगाभ्यास द्वारा समाहित करता है, उनको प्राप्त होता है। ( २ ) राजा सैन्यबल का सञ्चालक, पुत्रवत् उत्पन्न होकर मित्र रिपु दोनों वर्गों के बीच परन्तप होकर जाना जाय। वह महान् राष्ट्र में धर्मनीति से पुष्ट, बलशाली, आशुकर्म करने में समर्थ, कुशल पुरुषों को नियुक्त करे।

अत्या॑ वृ॒धस्नू॒ रोहि॑ता घृ॒तस्नू॑ ऋ॒तस्य॑ मन्ये॒ मन॑सा॒ जवि॑ष्ठा।
अ॒न्तरी॑यसे अरु॒षा यु॑जा॒नो यु॒ष्मांश्च॑ दे॒वान्विश॒ आ च॒ मर्ता॑न्॥३॥

भा०—जिस प्रकार महारथी ( अत्या युजानः ) वेगवान् दो घोड़ों को रथ में लगाता हुआ ( विशः अन्तः ईयते ) प्रजाओं के बीच में प्रवेश करता है उसी प्रकार हे आत्मन् ( अत्या ) सदा गतिशील, ( वृधस्नू ) शरीर की वृद्धि करने वाले, ( रोहिता ) रक्त वर्णवत् तेजस्वी, ( घृतस्नू ) तेज का सञ्चार कराने वाले, ( मनसा जविष्ठा ) मन के बल से अति अधिक वेग वाले, ( अरुषा ) कान्तिमान् वा उद्वेग से रहित, प्राण और अपान दोनों को, ( युजानः ) योगाभ्यास द्वारा वश करता हुआ तू ( युष्मान् देवान् ) तुम सब अर्थात् स्वरूप से भिन्न २ ज्ञानप्रकाशक और ग्राह्य विषय के अभिलाषी, इन्द्रियगत प्राणों और ( विशः ) प्रवेश करने योग्य ( मर्त्तान् च ) मरणधर्मा शरीरों को भी ( आ ) पूर्णतया व्याप कर ( अन्तः ) उनके भीतर ( ईयसे ) गति करता है। उसको मैं ( मन्ये ) ज्ञान करता और आत्मा मानता हूं। ( २ ) इसी

प्रकार राष्ट्र में प्रधान पुरुष अपने अधीन ( ऋतस्य मनसा ) सत्य के ज्ञान वा न्याय, ऐश्वर्य से समृद्धिदायक तेजस्वी, दो प्रधान पुरुषों को प्रधान पद पर नियुक्त करके, वह सब विद्वानों, प्रजाओं और वीर पुरुषों के बीच प्रसिद्ध हो।

**अर्यमणं वरुणं मित्रमेषामिन्द्राविष्णू मरुतो अश्विनोत।**
**स्वश्वो अग्ने सुरथः सुराधा एदु वह सुहविषे जनाय॥ ४॥**

भा०—हे ( अग्ने ) अग्रिणी नायक! हे ज्ञानवान् विद्वन्! तू ( सु-अश्वः ) उत्तम अश्व सैन्य, और वेगवान् वाहन का स्वामी और ( सुरथः ) उत्तम रथों का स्वामी ( सुराधाः ) उत्तम, सुखजनक ऐश्वर्य का स्वामी होकर ( सुहविषे जनाय ) उत्तम अन्न से समृद्ध प्रजाजन के उपकार के लिये ( अर्यमणं ) शत्रुओं को वश करने वाले, न्यायाधीश, ( वरुणं ) सर्वश्रेष्ठ, ( मित्रम् ) प्रजा को मरण से बचाने वाले और ( इन्द्राविष्णू ) ऐश्वर्यवान् और व्यापक सामर्थ्य वाले और ( मरुतः ) शत्रुओं को मारने वाले वा वायु के तुल्य बलवान्, वेगवान् (उत अश्विना) और अश्वों के स्वामी वा सूर्य चन्द्रवत् वा दिन रात्रिवत् एक दूसरे के साथ जीवन मार्ग को बिताने वाले स्त्री पुरुषों या उत्तम वैद्य इन सबको ( आवह इत् ) प्राप्त करा। ( २ ) अध्यात्म में—अर्यमा समान, वरुण मित्र प्राण, अपान, इन्द्र विष्णु आत्मा मन, मरुत् प्राणगण, अश्विना दोनों चक्षु या नासिकास्थ प्राण, इन सबको जितेन्द्रिय और उत्तम देह रथी धारण करे।

**गोमाँ अग्नेऽविमाँ अश्वी यज्ञो नृवत्सखा सदमिदप्रमृष्यः।**
**इळावाँ एषो असुर प्रजावान्दीर्घो रयिः पृथुबुध्नः सभावान्॥५॥१६॥**

भा० —हे ( असुर ) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने हारे वीर पुरुष! हे प्राणों में रमण करनेहारे जितेन्द्रिय पुरुष! तू ( गोमान् ) भूमि का,

गौ आदि सम्पदा का और उत्तम वाणियों और सूर्यवत् रश्मि रूप अधीन पुरुषों का स्वामी हो। हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् अग्रणी नायक! तू ( अविमान् ) प्राणों और राष्ट्र के रक्षक पुरुषों का, भेड़ आदि पशुओं का स्वामी ( अश्वी ) अश्वों और देह में अपने भोक्ता प्राणों व इन्द्रियों का स्वामी हो। तू ( यज्ञः ) सबका आदरणीय, सबके सत्संग करने योग्य, दानशील, ( नृवत्-सखा ) नायकों से युक्त सैन्यों का परम सुहृत् और ( सदम् इत् ) सदा ही ( अप्रमृष्यः ) शत्रु द्वारा कभी पराजित न होने वाला, असह्य विक्रमशाली ( इळावान् ) उत्तम वाणी और भूमि का स्वामी, ( प्रजावान् ) प्रजा का स्वामी, ( दीर्घः ) विस्तृत साधनों वाला, दूर तक शत्रुओं का नाश करने और पहुंचने वाला, ( रयिः ) ऐश्वर्यों का दान और प्रतिग्रह करने वाला, समृद्ध, ( पृथुबुध्नः ) आकाश वा सूर्य के समान महान् वा विस्तृत प्रबन्धक ( सभावान् ) और सभा का स्वामी हो। तू सदा ही उक्त अधिकारों को धारण कर। इति षोडशो वर्गः॥

**यस्त॑ इ॒ध्मं ज॒भर॑त्सिष्विदा॒नो मू॒र्धानं॑ वा त॒तप॑ते त्वा॒या।**
**भुव॒स्तस्य॒ स्वत॑वाँः पा॒युर॑ग्ने॒ विश्व॑स्मात्सीमघाय॒त उ॑रुष्य॥६॥**

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन्! विद्वन्! राजन्! परमेश्वर! ( यः ) जो पुरुष ( सिष्विदानः ) सबको स्नेह करता हुआ और सबको बन्धन से छुड़ाता हुआ ( ते ) तेरे ( इध्मं ) दीप्तिमान् तेज को ( जभरत् ) धारण करता है, ( वा ) और जो ( त्वाया ) तेरी कामना से ही ( मूर्धानं ) शिर के समान उच्चकोटि के जनसमूह वा नायक पद को ( ततपते ) निरन्तर संतप्त करता वा शिर को तपाता, अर्थात् तपस्या से शिर के समान उच्च पद प्राप्त करता है तू ( स्वतवान् ) स्वयं अपने बल से बलशाली, स्वयं प्रवृद्ध होकर ( तस्य पायुः भुवः ) उसका पालक होता है और ( विश्वस्मात् ) सब प्रकार के ( अघायतः ) पापाचरण करने वालों से उसकी ( सीम् ) सब प्रकार से ( उरुष्य ) रक्षा कर।

अथवा—हे ( ततपते ) विस्तृत राष्ट्र के स्वामिन् ! जो ( सिष्विदानः ) स्नेहवान् वा श्रमी होकर ( ते इध्मं मूर्धानं जभरत् ) तेरे तेजस्वी शिरोवत् मुख्य पद को धारण करता है (त्वाया) तुझे प्राप्त होता है तू ( स्वतवान् ) आत्म बलशाली उसकी ( भुवः ) भूमि की ( पायुः ) रक्षा करता है और उसको पापाचारियों से बचाता है ।

**यस्ते॒ भरा॒दन्नि॑यते चि॒दन्नं॑ नि॒शिष॒न्म॒न्द्रमति॑थिमु॒दीर॑त् ।**
**आ दे॑व॒युरि॒नध॑ते दुरो॒णे तस्मि॑न्र॒यिर्ध्रु॒वो अ॑स्तु॒ दास्वा॑न् ॥ ७ ॥**

भा०—हे विद्वन् ! ( यः ) जो पुरुष ( ते ) तेरे लिये (अन्नियते) भोजन करने के नियत समय में वा अन्न की कामना करने वाले तेरे लिये ( अन्नं ) अन्न को ( चित् ) बड़े आदरपूर्वक ( निशिषत् ) अच्छी प्रकार नाना व्यञ्जनों से विशेष गुणकारी बनाता हुआ उस ( मन्द्रम् ) अति सुखकारी अन्न को ( ते ) तेरे उपभोग के लिये ( भरात् ) लावे, और ( अतिथिम् ) अतिथि को पूज्य जान कर ( उत् ईरत् ) उत्तम रीति से उठे वा आदरपूर्वक वचन कहे, वह पुरुष ( देवयुः ) विद्वानों का प्रिय, एवं शुभ गुणों और उत्तम रश्मियों के स्वामी सूर्यवत् उत्तम प्रिय जनों का स्वामी होकर ( इनधते ) उसको स्वामिवत् धारण करने वाले ( तस्मिन् ) उस ( दुरोणे ) घर में ( रयिः ) ऐश्वर्य युक्त ( ध्रुवः ) स्थिर और ( दास्वान् ) दानशील ( अस्तु ) हो । ( २ ) हे परमेश्वर जो पुरुष ( ते अन्नियते ) तेरे निमित्त, अन्नेच्छुक जन को अन्न दान करता, अतिथि का आदर करता है, घर में ईश्वर की कामना से अग्नि को प्रज्वलित करता, अग्निहोत्र करता है उस घर में वह ऐश्वर्यवान्, स्थिर, दानशील होता है ।

**यस्त्वा॑ दो॒षा य उ॒षसि॑ प्र॒शंसा॑त्प्रि॒यं वा॑ त्वा कृ॒णव॑ते ह॒विष्मा॑न् ।**
**अश्वो॒ न स्वे दम॒ आ हे॒म्यावा॒न्तमंह॑सः पीपरो दा॒श्वांस॑म् ॥८॥**

भा०—हे ज्ञानवान् परमेश्वर ! हे विद्वन् ! ( यः ) जो पुरुष हविष्मान्, अन्न चरु, दान सामग्री और भक्ति आदि से युक्त होकर ( दोषा ) रात्रि में, सायंकाल और ( यः ) जो ( उषसि ) प्रातः प्रभात वेला में ( त्वा प्रशंसात् ) तेरी स्तुति करता है ( वा ) और ( त्वा ) तेरे को लक्ष्य कर ( प्रियं ) तेरे प्रिय वा अन्यों को प्रिय, तृप्तिकारक कार्य ( कृणवते ) करता है । तू ( स्वे दमे ) अपने घर में ( हेम्यावान् ) जल से शीतल रात्रि से युक्त चन्द्रमा के तुल्य शीतल स्वभाव वाला और ( हेम्यावान् ) हेम सुवर्ण को बढ़ाने वाली सम्पदा से युक्त होकर, ( हेम्यावान् अश्वः न ) सुवर्ण से मढ़ी 'सुन्दर कक्षबंधनी रज्जु वा लगाम आदि से युक्त अश्व के समान स्वयं सुवर्णादि सम्पदा से युक्त उसका भोक्ता होकर ( तं दाश्वांसं ) उस दानशील पुरुष को ( अंहसः ) पाप से ( आ पीपरः ) सब प्रकार से बचाता है । अर्थात् जो मनुष्य प्रातः सायं संध्या अग्निहोत्र करता है वह अपने गृह में सम्पन्न होता है, प्रभु उसको पाप से बचाते हैं ।

**यस्तुभ्यमग्ने अमृताय दाशद्दुवस्त्वे कृणवते यतस्रुक् ।**
**न स राया शशमानो वि योषन्नैनमंहः परि वरदघायोः ॥ ९ ॥**

भा०—हे ( अग्ने ) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! हे विद्वन् ! ( यः ) जो पुरुष ( अमृताय तुभ्यम् ) अमृतमय मोक्षस्वरूप तेरे लिये (दाशत्) अपने आप को सौंप देता है और जो ( यतस्रुक् ) स्रुच् के समान इन्द्रियों को वश करके ( त्वे ) तेरी ( दुवः कृणवते ) उपासना, स्तुति करता है ( सः ) वह ( शशमानः ) शम, शान्ति का निरन्तर अभ्यास करता हुआ (राया) धनैश्वर्य से ( न वि योषत् ) कभी वियुक्त नहीं होता और ( एनं ) उसको ( अघयोः ) दूसरे पर अत्याचार वा पापाचरण करने की इच्छ वाले दुष्ट, पापी पुरुष का ( अंहः ) पाप कभी ( न परि वरत् ) भी नहीं कर सकता । अग्नि के पक्ष में—अग्नि में जो पुरुष ( अमृताय ) जल के वृष्टि और अन्न की प्राप्ति के लिये हवि घृतादि देता है और स्रुक्

स्रुवादि थाम कर जो अग्निहोत्र करता है वह बराबर तीव्र गति से आगे बढ़ता हुआ भी कभी धनैश्वर्य से हीन नहीं होता। और न हत्याकारी पुरुष का पापाचरण आदि उस तक पहुंचता या उसे घेर सकता है।

**यस्य त्वमग्ने अध्वरं जुजोषो देवो मर्तस्य सुधितं रराणः।**
**प्रीतेदसद्धोत्रा सा यविष्ठासाम यस्य विधतो वृधासः॥१०॥१७॥**

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे परमेश्वर प्रकाशस्वरूप! (त्वं देवः) तू दानशील, प्रकाशक होकर (यस्य मर्तस्य) जिस मरणधर्मा मनुष्य के (सुधितम्) उत्तम रूप से धारण करने योग्य ऐश्वर्य को (रराणः) प्रदान करता हुआ तू (यस्य) जिसके (अध्वरं) यज्ञ या अविनश्वर आत्मा को (जुजोष) प्रेम करता है हे (यविष्ठ) अति बलवन्! और हम लोग (विधतः) विधान या जगत् निर्माण करने वाले (यस्य) जिसके (वृधासः) सदा बढ़ाने हारे हों उस पुरुष की (सा) वह (होत्रा) आहुति और वाणी (प्रीता इत् असत्) अवश्य सबको तृप्त प्रसन्न करती है। इति सप्तदशो वर्गः॥

**चित्तिमचित्तिं चिनवद्वि विद्वान्पृष्ठेव वीता वृजिना च मर्तान्।**
**राये च नः स्वपत्याय देव दितिं च रास्वादितिमुरुष्य॥११॥**

भा०—विद्वान् पुरुष (वीता पृष्ठा इव) जिस प्रकार अपने पास आयी भार उठाने में समर्थ पृष्ठों को वा, सेचन, पालन पोषण करने वाले अन्न जलादि पदार्थों को (वि चिनवत्) विशेष रूप से संग्रह करता है उसी प्रकार (विद्वान्) विद्वान् राजा (चित्तिम् अचित्तिम्) संगृहीत और असंगृहीत सञ्चित और असञ्चित शक्तियों को (वि चिनवत्) विशेष रूप से सञ्चय करे। उनको पृथक् २ रक्खे। इसी प्रकार (वृजिना च) अपने शत्रुवारक बलों या सैन्यों को और (मर्त्तान् च) साधारण मनुष्यों को भी विविध रूप से रक्खे। हे (देव)

दानशील पुरुष ! ( नः ) हमें ( स्वपत्याय ) उत्तम संतान से युक्त ( राये ) ऐश्वर्य को प्रयोग में लाने के लिये ( दितिं च रास्व ) दानशीलता या दान देने योग्य पदार्थ या खण्डित होनेवाले नश्वर पदार्थ भौतिक ऐश्वर्य प्रदान कर और साथ ही ( अदितिम् ) न नाश होने वाले या न दान देने योग्य पदार्थों की ( उरुष्य ) रक्षा कर। राजा के लिये पुण्य का धन चित्ति और अपुण्य पाप से प्राप्त धन अचित्ति है, सैन्य बल चित्ति है, साधारण प्रजाजन अचित्ति है। इसी प्रकार भौतिक नश्वर धन देय होने से वा खण्डित हो जाने से या रुपये पैसे अन्नी दुअन्नी आदि परिमाण में टूटने से 'दिति' रत्न, आदि वा भूमि भवन आदि शामिलात के द्रव्यअ खण्डनीय, अविभाज्य धन 'अदिति' है। विभाज्य धन और अविभाज्य धन दोनों ही उत्तम सन्तान पालनार्थ धन वृद्धि के लिये आवश्यक हैं। अथवा—विद्वान् पुरुष ( चित्तिम् अचित्तिम् ) चेतनायुक्त और जड़, विज्ञान और अज्ञान को पृथक् २ करे। जिस प्रकार रक्षक ( वीता पृष्ठा इव ) दृढ़ पीठ वाले और गये बीतों को पृथक् २ करता है इसी प्रकार राजा सैन्यों और साधारण मनुष्यों को भी पृथक् २ रक्खे।

**क॒विं श॑शासुः क॒वयोऽद॑ब्धा निधा॒रय॑न्तो॒ दुर्या॑स्वा॒योः ।**
**अत॒स्त्वं दृश्याँ॑ अग्न ए॒तान्प॒ड्भिः प॑श्ये॒रद्भु॑ताँ अ॒र्य एवैः ॥१२॥**

भा०—( अदब्धाः ) कभी नाश न होने वाले ( कवयः ) विद्वान्, बुद्धिमान् दूरदर्शी पुरुष ( आयोः ) प्राप्त मनुष्य के ( दुर्यासु ) घरों में ( निधारयन्तः ) नित्य नियम से व्रतादि धारण कराते हुए ( कविम् ) विद्वान् पुरुष को ( शशासुः ) उत्तम उपदेश करते हैं। ( अतः ) इसलिये हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक ! विद्वन् ! ( त्वं ) तू ( अर्यः ) स्वामी, सबका पालक है। तू ( एतान् दृश्यान् ) दर्शन करने योग्य ( अद्भुतान् ) अद्भुत विद्वान् पुरुषों को ( पड्भिः ) पैरों से या ( एवैः ) रथादि यानों से प्राप्त होकर ( पश्येः ) देखा कर उनसे कुशल मंगल पूछा कर सत्संग किया कर।

त्वमग्ने वाघते सुप्रणीतिः सुतसोमाय विधते यविष्ठ।
रत्नं भर शशमानाय घृष्वे पृथुश्चन्द्रमवसे चर्षणिप्राः ॥ १३ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! हे ( यविष्ठ ) सबसे अधिक बलयुक्त ! हे ( घृष्वे ) दीप्तियुक्त पदार्थों को घर्षण करके विद्युतादि उत्पन्न करने हारे ! वा शत्रुजनों के साथ स्वयं संघर्ष या स्पर्द्धा करने और प्रजाओं में संघर्ष स्पर्द्धा कराने हारे ! ( त्वम् ) तू ( सुप्रणीतिः ) उत्तम रीति से सब से बढ़कर नीतिमान्, ( पृथुः ) विस्तृत बल और राज्य का स्वामी, ( चर्षणिप्राः ) मनुष्यों को ऐश्वर्य से पूर्ण करने वाला होकर ( सुत-सोमाय ) ज्ञान और ऐश्वर्य एवं ओषधि रसादि को उत्पन्न करने वाले, विद्वान्, बलवान् ( विधते ) सेवा करने वाले और ( शशमानाय ) सबके दुःखों को या सबकी सीमाओं को लांघने वाले, सबसे अग्रगण्य पुरुष को तू ( रत्नम् ) रमणीय द्रव्य ( भर ) प्रदान कर। ( अवसे ) उसकी रक्षा और तृप्ति के लिये ( चन्द्रम् ) आह्लादकारक सुवर्णादि धन प्रदान कर।

अधा ह यद्वयमग्ने त्वाया पड्भिर्हस्तेभिश्चकृमा तनूभिः।
रथं न क्रन्तो अपसा भुरिजोर्ऋतं येमुः सुध्य आशुषाणाः ॥१४॥

भा०—( अध ह ) बनाने वाले शिल्पी लोग ( न ) जिस प्रकार ( भुरिजोः अपसा ) बाहुओं के कर्म या बल से ( रथं ) रथ को बनाते हैं और ( सुध्यः ) उत्तम बुद्धिमान् उत्तम कर्म-कुशल ( आशुपाणाः ) तीव्र गति देने हारे लोग ( ऋतम् येमुः ) रथ के वेग को भी नियमित करते हैं उसी प्रकार हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक ! विद्वन् ! ( यत् ) जब हम ( त्वाया ) तेरी हितकामना वा तुझे प्राप्त होने की इच्छा से ( पड्भिः ) पैरों से, ( हस्तेभिः ) हाथों से और ( तनूभिः ) अपने शरीरों से ( चकृमा ) कार्य करें तब ( सुध्यः ) उत्तम बुद्धिमान, कर्मकुशल और ( आशुषाणाः ) शीघ्र ही अपनी शक्ति, धन आदि का उचित विभाग करते हुए पुरुष ( भुरिजोः ) धारण पोषण

करने में समर्थ बाहुओं और उनके तुल्य राजा प्रजा वा क्षात्रबल के ( अपसा ) कर्म सामर्थ्य से ( क्रन्तः ) कर्म करते हुए ( रथं ) वेगवान् रथ के तुल्य ही ( ऋतम् ) सत्य, ज्ञान और न्यायाचरण का और राष्ट्र-रूप रथ का ( येमुः ) प्रबन्ध करें।

**अधा मातुरुषसः सप्त विप्रा जायेमहि प्रथमा वेधसो नॄन्।**
**दिवस्पुत्रा अङ्गिरसो भवेमाद्रिं रुजेम धनिनं शुचन्तः॥१५॥१८॥**

भा०—( अध ) और ( उषसः सप्त विप्राः ) जिस प्रकार उषा से सात प्रकार के वा फैलने वाले जगद्व्यापी किरण उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार हम लोग भी ( मातुः ) प्रथम माता से ( अध ) और अनन्तर ( उषसः ) पाप नाशक विद्या की दीप्ति से युक्त अग्नि के तुल्य तेजस्वी ( मातुः उषसः ) ज्ञानवान् आचार्यरूप माता से हम ( सप्त ) सातों प्रकार के ( विप्राः ) विद्वान्, विविध प्रकार से राष्ट्र के पदों को पूर्ण करने करने वाले, ( प्रथमा ) प्रथम, मुख्य ( वेदसः ) ज्ञानवान् ( जायेमहि ) उत्पन्न हों। वे हम ( नॄन् ) नायक पुरुषों को प्राप्त करें। और हम लोग ( दिवः ) ज्ञानवान् सूर्यवत् तेजस्वी के ( पुत्राः ) किरणों के समान (पुत्राः) बहुतों के रक्षक पुत्र (अंङ्गिरसः) अङ्गारों या अग्नि के समान तेजस्वी ( भवेम ) होवें। और ( धनिनं ) धनैश्वर्य के स्वामी के प्रति (शुचन्तः) सत्य न्याय, कार्य व्यवहारों में सदा पवित्र, शुद्ध, ईमानदार रहते हुए ( अद्रिं ) मेघ या पर्वत के तुल्य अभेद्य शत्रु को भी सूर्य की किरणों या विद्युतों के तुल्य ( रुजेम ) तोड़ डालें। इत्यष्टादशो वर्गः॥

**अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशुषाणाः।**
**शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन्॥१६॥**

भा०—( यथा ) जिस प्रकार ( पितरः ) जलों का पान करने वाले सूर्य के किरण गण ( ऋतम् आशुषाणाः ) जल को वाष्परूप से संविभक्त करते हुए ( शुचि दीधितिम् अयन् ) शुद्ध तेज और दीप्ति को

प्राप्त करते हैं और ( क्षाम भिन्दन्तः ) अन्धकार को छिन्न भिन्न करते हुए ( अरुणीः ) रक्त वर्ण की उषाओं को ( अपव्रन् ) प्रकट करते हैं, उसी प्रकार ( नः ) हमारे ( पितरः ) बालक जन ( परासः ) पालन करने में कुशल वा बाद में आये और ( प्रत्नासः ) वृद्ध जन, ( ऋतम् आशुषाणाः ) सत्य ज्ञान वेद न्याय और अन्न, जल, धनैश्वर्य का विभाग और दान प्रतिदान वा प्राप्ति करते हुए ( उक्थशासः ) उत्तम वचनों का उपदेश करते हुए ( शुचि इत् अयन् ) शुद्ध ज्ञान और कर्म वा पद को प्राप्त करें और ( दीधितिम् ) सबके धारक और प्रकाशक नायक को प्राप्त करें। वे ( क्षाम ) पृथिवियों को ( भिन्दन्तः ) अन्न को प्राप्त करने के लिये कृषि वा कूप, कुल्या निर्माणादि द्वारा तोड़ते हुए ( अरुणीः ) उत्तम वाणियों, भूमियों को ( अप व्रन् ) प्रकट करें।

सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तोऽयो न देवा जनिमा धमन्तः।
शुचन्तो अग्निं ववृधन्त इन्द्रमूर्वं गव्यं परिषदन्तो अग्मन् ॥१७॥

भा०—( सुकर्माणः ) उत्तम कर्म करने हारे ( सुरुचः ) उत्तम कान्ति और उत्तम रुचि वाले, ( देवयन्तः ) अपने में शुभ कामनाओं, गुणों और देव अर्थात् तेजस्वी प्रभु की कामना करते हुए (देवाः) विद्वान्, विद्याभिलाषी पुरुष ( अयः न ) सुवर्ण या लोह को ( धमन्तः ) अग्नि में जिस प्रकार सुनार धौंकते और स्वच्छ करते हैं उसी प्रकार अपने ( जनिम ) जन्म अर्थात् इस उत्पन्न होने वाले शरीर को वा शरीरस्थ आत्मा को ( धमन्तः ) अग्नि रूप आचार्य के अधीन ( धमन्तः ) धौंकते या 'शब्द' अर्थात् उपदेश ग्रहण करते और व्रत ब्रह्मचर्यादि द्वारा तप से तप्त करते हुए स्वयं (शुचन्तः) अपने को स्वच्छ, तेजस्वी कान्तिमान सुवर्ण के समान कुन्दन बनाते हुए, ( अग्निं ) अग्नि ज्ञानवान् आचार्य को ( ववृधन्तः ) बढ़ाते हुए और ( ऊर्वं ) महान्, अज्ञान के नाशक ( इन्द्रं ) परमेश्वर्यवान् गुरु वा प्रभु के ( परिषदन्तः ) चारों ओर भक्ति

पूर्वक विराजते वा उपासना करते हुए ( गव्यं ) राजा से या भूमिसमूह वा सूर्य से रश्मि समूह के प्रकाश के तुल्य वेद वाणियों के ज्ञान को ही ( अग्मन् ) प्राप्त करें ।

आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद्देवानां यज्जनिमान्त्युग्र ।
मर्तानां चिदुर्वशीरकृप्रन्वृधे चिदर्य उपरस्यायोः ॥ १८ ॥

भा०—हे ( उग्र ) बलशालिन् ! राजन् ! विद्वन् ! ( यत् ) जब ( अन्ति ) समीप में ( देवानां ) ऐश्वर्य के अभिलाषी और विजिगीषु लोगों का ( जनिम ) जन्म होता है । तब ( क्षुमति ) अन्न से समृद्ध पुरुष के अधीन जिस प्रकार ( पश्वः ) पशुओं के ( यूथा इव आ अख्यत् ) जत्थे के जत्थे दिखाई देते हैं उसी प्रकार तेरे अधीन पशुवत् भृत्यों के भी ( यूथा ) समूह के समूह दिखाई देते हैं । ( मर्त्तानां ) शत्रु को मारने वाले मनुष्यों की ( चित् ) उत्तम २ ( उर्वशीः ) जंघाओं से लांघने वाली या बड़े राष्ट्रों को वश करने में समर्थ सेनाएं ( अकृप्रन् ) समर्थ होती हैं । और ( अर्यः ) स्वामी वा वैश्य जन ( चित् ) भी (उपरस्य आयोः ) वपन किये बीजों के सस्य सम्पत्ति रूप में देने वाले मेघ के कारण जैसे वैश्य (वृधे) बढ़ता है उसी प्रकार (उपरस्य) शत्रु सेना के वपन अर्थात् छेदन करने वाले ( आयोः ) मनुष्यों का ( अर्यः ) स्वामी राजा भी ( वृधे ) बढ़ता है ।

अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
अनूनमग्निं पुरुधा सुश्चन्द्रं देवस्य मर्मृजतश्चारु चक्षुः ॥ १९ ॥

भा०—हे राजन् ! हे विद्वन् ! हम लोग ( ते ) तेरे अधीन रहकर ( सु अपसः ) उत्तम कर्म करने वाले, सदाचारी होकर ( अभूम ) रहें । ( विभातीः उषसः ) विशेष दीप्तियुक्त होने वाली प्रभात वेलों को प्राप्त कर जिस प्रकार लोग ( ऋतं ) प्रकाश को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार ( विभातीः ) विशेष दीप्ति से युक्त ( उषसः ) कामनानुकूल स्त्रियों को

प्राप्त करके हम ( ऋतम् अवस्रन् ) सत्य, धर्ममय जीवन व्यतीत करें। इसी प्रकार हे राजन् ! हम ( विभाती उषसः ) विशेष तेजस्विनी शत्रु-दाहक सेनाएं प्राप्त करके भी ( ऋतम् ) सत्य ज्ञान को ( अवस्रन् ) अनुसरण करें। अपने उग्र सैन्य बल से उन्मत्त होकर हम अन्याय न करें। और ( अग्निं ) अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी नायक को भी हम ( अनूनं ) किसी बात में भी न्यून न रहने देकर पूर्ण ( अकर्म ) करें और उसको ( पुरुधा ) बहुत प्रकारों से ( सुश्चन्द्रं अकर्म ) उत्तम आह्लाद-दायक और उत्तम सुवर्णादि ऐश्वर्य से युक्त करें। और (मर्मृजतः देवस्य) राष्ट्र के कण्टक शोधन और सत्यासत्य विवेक करने हारे राजा वा राजा द्वारा नियुक्त पुरुष के ( चक्षुः ) चक्षु को हम ( चारु ) उत्तम दूरगामी और न्यायपूर्ण निष्पक्षपात ( अकर्म ) बनाये रक्खें। ( २ ) विद्वान् के अधीन रहकर भी हम सदाचारी हों, सब दिनों सत्य ज्ञान वेद का अभ्यास करें, अग्नि को सदा पूर्ण तेजोयुक्त करें, अग्निहोत्र करें। विवेकी शुद्धाचारी देव की चक्षु को निष्पक्ष बनाये रक्खें।

**एता ते॑ अग्न उ॒चथा॑नि वे॒धोऽवो॑चाम क॒वये॒ ता जु॑षस्व।**
**उच्छो॑चस्व कृणु॒हि वस्य॑सो नो म॒हो रा॒यः पु॑रुवार॒ प्र य॑न्धि॥२०॥१९**

भा०—हे ( वेधः ) कार्य विधान करनेहारे मेधाविन् विद्वन् ! हे नायक पुरुष ! हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! ( ते ) तुझ ( कवये ) क्रान्तदर्शी चतुर पुरुष के हितार्थ ( एता ) ये ( उचथानि ) नाना उत्तम वचन हम ( अवोचाम ) सदा कहें। और तू ( नः ) हमारे ( ता ) उनको (जुषस्व) प्रेमपूर्वक स्वीकार और सेवन कर। तू ( उत् शोचस्व ) उत्तम रीति से सबके ऊपर प्रकाशित हो। (नः) हमें ( वस्यसः ) उत्तम वसु बसने वालों में सबसे उत्कृष्ट ( कृणुहि ) बना। हे ( पुरुवार ) बहुतों से वरण करने योग्य और बहुतों का वारण करने हारे ! तू ( नः ) हमें ( महः ) बड़ा भारी ( रायः ) ऐश्वर्य ( प्र यन्धि ) प्रदान करे। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

## [ ३ ]

वामदेव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ५, ८, १०, १२, १५ निचृत्त्रिष्टुप् । २, १३, १४ विराट्त्रिष्टुप् । ३, ७, ६ त्रिष्टुप् । ४ स्वराड्बृहती । ६, ११, १६ पंक्तिः ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

**आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।**
**अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥ १ ॥**

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग ( वः ) अपने ( अध्वरस्य ) न नष्ट होने वाले और प्रजा को नष्ट न होने देने वाले राज्य के ( राजानम् ) तेजस्वी ( रुद्रं ) दुष्टों को रुलाने और गर्जना सहित शत्रु पर धावा करने वाले ( होतारं ) युद्ध में शत्रुओं को ललकारने और भृत्यादि को वेतनादि देने वाले ( रोदस्योः ) भूमि और आकाश के बीच सूर्य के समान स्व और पर-पक्षों वा वादि प्रतिवादी वा स्त्री और पुरुष दोनों के बीच में ( सत्ययजं ) सत्य बल और न्याय के देने वाले वा सत्य प्रतिज्ञा द्वारा दोनों को मिलाने वाले ( अग्निं ) अग्रणी नायक, अग्नि के तुल्य (हिरण्यरूपम्) हित और रमणीय रूप वाले तेजस्वी पुरुष को ( अवसे ) राष्ट्र की रक्षा करने के लिये ( अचित्तात् ) बिना चित्त के, हृदयहीन ( तनयित्नोः ) गर्जना करने वाले सैन्य-बल को उत्पन्न करने के ( पुरा ) पूर्व ही ( कृणुध्वम् ) स्थापित करो । ( २ ) भौतिक पक्ष में—यज्ञ के बीच में चमकने वाले प्रचण्ड, सर्व सुखप्रद, आकाश भूमि के बीच सत्-विद्यमान् पदार्थों में व्यापक चमकते हुए अग्नि-तत्व को ( अचित्तात् ) विना काष्ठ चयनादि के ( तनयित्नोः ) गर्जना वाली विद्युत् से अपने कार्य व्यवहार के लिये उत्पन्न करो । ( ३ ) इसी प्रकार ज्ञानदाता, उपदेशक तेजस्वी पुरुष को विना ज्ञान से शून्य पुत्रादि के समक्ष उपदेशार्थ स्थापित करो ।

**अयं योनिश्चकृमा यं वयं ते जायेव पत्य उशती सुवासाः ।**
**अर्वाचीनः परिवीतो नि षीदेमा उ ते स्वपाक प्रतीचीः ॥ २ ॥**

भा०—हे राजन्! (ते) तेरे रहने के लिये (यं) जिस घर को (वयम्) हम (चक्रम) बनावें (अयं) वह (योनिः) घर (पत्ये) पति के हित के लिये (उशती) कामना वाली (सुवासाः) उत्तम वस्त्रों से सुशोभित (जाया इव) स्त्री के समान (उशती सुवासाः) कान्तिमान् और उत्तम रीति से, सुख से रहने योग्य हो। और वह गृह (अर्वाचीनः) आगे से बढ़ा हुआ और (परिवीतः) सब ओर से सुरक्षित हो। उसमें तू भी (अर्वाचीनः) वर्त्तमान में विद्यमान और (परिवीतः) सब प्रकार से सुरक्षित हो। (अ स्वापक) स्वयं परिपक्व या संतापक और बल से युक्त न होकर भी (इमाः) इन (ते) अपनी (प्रतीचीः) विपरीत जाने वाली वा विशेष रूप से तेरे अभिमुख स्थित प्रजाओं को भी प्राप्त कर, उन पर (निषीद) आधिपत्य कर। प्रजाओं को विना सताये तू राज्य कर।

आशृण्वते अदृपिताय मन्म नृचक्षसे सुमृळीकाय वेधः।
देवाय शस्तिममृताय शंस ग्रावेव सोता मधुषुद्यमीळे ॥ ३ ॥

भा०—हे (वेधः) विद्वन्! मेधाविन्! तू (आश्रृण्वते) आदर से सुनने वाले (अदृपिताय) मोह और अहंकार से रहित, विनीत (नृचक्षसे) अपने नायक, ज्ञान-मार्ग प्रवर्त्तक गुरु को सौम्य वा उत्सुक दृष्टि से देखने वाले (सुमृडीकाय) उत्तम सुखप्रद (देवाय) ज्ञान की कामना करने वाले (अमृताय) शिष्य वा पुत्र रूप से विद्यमान व्यक्ति को (शस्तिम्) अनुशासन या उपदेश (शंस) प्रदान कर। जो (ग्रावा इव) वाणी के उपदेष्टा के समान (सोता) सन्मार्ग में लेजाने हारा (मधुषुत्) मधुर वचन बोलने हारा हो या जो (ग्रावा इव) शिलाखण्ड वा मुसल के समान (सोता) कूट पीट कर अन्नादि पदार्थवत् सार तत्व का देने दर्शाने वाला और (मधुषुत्) मधु और मनन करने योग्य वचन, ज्ञान का प्रदान करता है (यम्) जिसको (ईळे) सभी लोग चाहते और प्रशंसा करते हैं।

त्वं चिन्नः शम्या अग्ने अस्या ऋतस्य बोध्यृतचित्स्वाधीः ।
कदा त उक्था सधमाद्यानि कदा भवन्ति सख्या गृहे ते ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! तू ( ऋतचित् ) सत्य ज्ञान, वेद, न्याय-प्रकाश और ऐश्वर्य को सञ्चय करने और ज्ञान करने हारा और (स्वाधीः) उत्तम रीति से धारण और पोषण करने हारा है ( अतः त्वं चित् ) तू ही ( नः ) हमारे में से ( अस्याः ) इस प्रजा के ( शम्याः ) कर्म के ( ऋतस्य ) यथार्थ ज्ञान को ( बोधि ) जान और अन्यों को जना । हे विद्वन् ! तू बतला दिया कर कि तेरे ( उक्था ) उत्तम वचन योग्य वाणियां (सधमाद्यानि ) एक साथ मिलकर हर्ष प्राप्त करने योग्य अवसर ( कदा ते ) तेरे सम्बन्ध में कब २ होने सम्भव हैं और ( ते ) तेरे ( गृहे ) गृह पर ( कदा ) कब २ ( सख्या ) मित्रों के सत्संग ( कदा ) कब २ होने वाले हैं । इन अवसरों पर नवीन ज्ञान पिपासु लोग आवें और लाभ उठाया करें ।

कथा ह तद्वरुणाय त्वमग्ने कथा दिवे गर्हसे कन्न आगः ।
कथा मित्राय मीळ्हुषे पृथिव्यै ब्रवः कदर्यम्णे कद्भगाय ॥५॥२०॥

भा०—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! तू इस बात का भी अच्छी प्रकार ज्ञान रख कि (वरुणाय) प्रजा के वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष के लिये (कथा ह) किस प्रकार से, किस हेतु से ( तत् ब्रवः ) उस परम तत्व का उपदेश करे, ( दिवे कथा ) ज्ञान प्रकाश से युक्त वा ज्ञान के इच्छुक के लिये कैसे ( ब्रवः ) उपदेश करे । ( नः ) हमारे ( आगः ) अपराध की कब और क्यों ( गर्हसे ) तू निन्दा करता है । ( मित्राय ) सबके मित्र, मृत्यु आदि से बचाने वाले और ( मीढुषे ) मेघवत् सब पर सुखों की वर्षा करने वाले और ( पृथिव्यै ) पृथिवी और उस पर विशेष रूप से बसने वाली प्रजा को ( कथा ) किस प्रकार उपदेश करे । ( अर्यम्णे, भगाय ) और ऐश्वर्य से युक्त पुरुष के लिये ( कत् कत् ब्रवः ) कब २ किस २ प्रकार उपदेश करे । इति विंशो वर्गः ॥

कद्धिष्ण्यासु वृधसानो अग्ने कद्वाताय प्रतवसे शुभंये।
परिज्मने नासत्याय क्षे ब्रवः कदग्ने रुद्राय नृघ्ने ॥ ६ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्रणी ! तेजस्विन् ! विद्वन् ! तू (धिष्ण्यासु) धिषण्य बुद्धि या वाणी में श्रेष्ठ प्रजाओं वा सभाओं के बीच ( वृधसानः ) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ ( वाताय ) वायु के समान ( प्रतवसे ) प्रबल, ( शुभंये ) शुभ, कल्याणमार्ग में चलने और अन्यों को चलाने वाले पुरुष के लिये ( कत् ) किस प्रकार और कब ( ब्रवः ) कहे, उपदेश करे, ( परिज्मने ) सब ओर विद्यमान भूमि के स्वामी, ( नासत्याय ) सदा असत्याचरण से पृथक्, धर्मात्मा और ( क्षे ) भूमि के स्वामी ( रुद्राय ) दुष्टों को रुलाने और सज्जनों को उपदेश करने वाले और ( नृघ्ने ) शत्रु के नायकों को मारने वाले के लिये ( कत् ब्रवः ) कैसे और कब कहो इत्यादि का उत्तम ज्ञान करो। यथायोग्य वचन बोलना, उनके यथा योग्य रीति से चलाना, उनके दोष गुणादि दर्शाना ये सब काम अग्रणी पुरुष और विद्वान् को सीखना चाहिये ।

कथा महे पुष्टिम्भराय पूष्णे कद्रुद्राय सुमखाय हविर्दे ।
कद्विष्णव उरुगायाय रेतो ब्रवः कदग्ने शरवे बृहत्यै ॥ ७ ॥

भा०—( महे ) बड़े, पूज्य ( पुष्टिम्भराय ) पोषणकारी सम्पदा-अन्न पशु आदि को धारण करने वाले ( पूष्णे ) सबके पोषक पुरुष के वा भूमि के उपकार व वृद्धि के लिये ( कथा ) किस प्रकार ( रेतः ) जल के समान धनधान्य वर्धक वचन वा बात कहे। ( रुद्राय ) दुष्टों को रुलाने वाले वा शिष्यों को उपदेश करने वाले ( सुमखाय ) उत्तम यज्ञशील और ( हविर्दे ) अन्नादि ग्राह्य पदार्थों के देने वाले पुरुष के हितार्थ ( कत् ) कब और किस प्रकार शान्तिमय वचन ( ब्रवः ) कहो। ( विष्णवे ) व्यापक शक्तिशाली, ( उरुगायाय ) बहुतों से प्रशंसित पुरुष के लिये ( कत् रेतः ब्रवः ) कब वा किस प्रकार जल के समान शीतल और शान्तिदायक

वचन कहो और हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! हे अग्रनायक ! ( बृहत्ये ) बड़ी भारी ( शरवे ) शत्रुनाशक सेना को ( कत् ब्रवः ) किस प्रकार वा कब कहो, ये सब यथायोग्य रीति से जानना चाहिये ।

**कथा शर्धाय मरुतामृताय कथा सूरे बृहते पृच्छ्यमानः ।**
**प्रति ब्रवोऽदितये तुराय साधा दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ॥८॥**

भा०—हे ( जातवेदः ) धनों के स्वामिन् ! हे ज्ञानों को जाननेहारे ! तू इस बात का भी अच्छी प्रकार ज्ञान कर कि ( मरुताम् ) शत्रुओं का मारने वाला, वायु के समान बलवान् पुरुषों के ( शर्धाय ) बल वृद्धि के लिये और मनुष्यों के ( ऋताय ) ज्ञान प्रसार और सत्य न्याय तथा ऐश्वर्य अन्न जलादि को प्राप्त करने के लिये ( कथा ) किस प्रकार से (प्रति ब्रवः) कहे, और ( बृहते सूरे ) वड़े भारी सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के लिये (पृच्छ्यमानः) पूछा जाकर ( कथा ) किस रीति से ( प्रति ब्रवः ) प्रत्युत्तर देवे । ( तुराय ) अति शीघ्रकारी, वेग से जाने वाले ( अदितये ) माता, पिता, पुत्र, अखण्ड शासन वाले पुरुष को ( कथा प्रति ब्रवः ) कैसे प्रत्युत्तर देवें । तू ( चिकित्वान् ) इन सब बातों का ज्ञान करता हुआ ( दिवः ) प्रकाशवान् सूर्य के समान गुरु से वा समस्त कामना योग्य व्यवहारों को ( साध ) भली प्रकार अभ्यास कर ।

**ऋतेन ऋतं नियतमीळ आ गोरामा सचा मधुमत्पक्वमग्ने ।**
**कृष्णा सती रुशता धासिनैषा जामर्येण पयसा पीपाय ॥ ९ ॥**

भा०—जिस प्रकार ( गोः ) पृथिवी से उत्पन्न ( ऋतेन ऋतम् ) अन्न या जल के द्वारा ( अन्नं ) अन्न ( नियतम् ) नियम से प्राप्त किया जाता है। अर्थात् भूमि पर अन्न का बीज बोकर वा जल सेचन करके उससे अन्न प्राप्त किया जाता है उसी प्रकार (गोः) वाणी के (ऋतेन) सत्य ज्ञान के द्वारा (नियतम्) नियम से विद्यमान (ऋतम्) सत्याचरण को भी मैं (आ ईळे) आदरपूर्वक प्राप्त करूं । हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! अग्रणी विद्वन् ! आचार्य नायक

( आमा ) जो ज्ञान आदि अभी अपरिपक्व है वह ( सचा ) परस्पर सत्संग से अन्न के समान ही कालान्तर में ( मधुमत् ) मधुर गुण सहित ( पक्वम् ) परिपक्व हो, उसे मैं प्राप्त करूं ( कृष्णा सती रुशप्ता धासिना पयसा पीपाय ) जिस प्रकार काली गौ अपने श्वेत पुष्टिकारक दूध से बच्चे को पुष्ट करती है उसी प्रकार ( एषा ) यह ( कृष्णा ) कृषि योग्य भूमि, (सती) हमें प्राप्त होकर ( रुशता ) कान्तिमान् ( धासिना ) सबके धारक और पोषक सूर्य के साथ मिलकर आर ( जामर्येण पयसा ) उत्पन्न होने वाले प्राणियों को प्राप्त होने और जीवन देने वाले वा 'जाम' भोजन को प्राप्त होने वाले पुष्टिकारक जल और अन्न से ( पीपाय ) सबको पुष्ट करती है उसी प्रकार यह वाणी ( कृष्णा ) चित्तों को आकर्षण करने वाली होकर तेजस्वी धारण करने वाले विद्वान् के साथ (जामर्येण पयसा) जाम अर्थात् आस्वादन करने योग्य रस के उत्पादक ( पयसा ) ज्ञान से ( पीपाय ) सबको तृप्त करती है। इत्येकविंशो वर्गः ॥

**ऋतेन हि ष्मा वृषभश्चिदक्तः पुमाँ अग्निः पयसा पृष्ठ्येन।**
**अस्पन्दमानो अचरद्वयोधा वृषा शुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥१०॥२१॥**

भा०—जिस प्रकार ( ऋतेन अक्तः वृषभः ) जल से पूर्ण बरसने वाला बादल ( पृष्ठ्येन पयसा अस्पन्दमानः अचरत् ) वर्षण करने योग्य जल से मन्द २ चलता हुआ जाता है वह ( वयोधाः ) अन्न का पोषण करता हुआ ( वृषा ) वर्षणशील मेघ ( शुक्रं दुदुहे ) जल को प्रदान करता है और ( अधः ) उसका दोहन योग्य स्तनमण्डल तुल्य ( पृश्निः ) अन्तरिक्ष होता है और जिस प्रकार ( ऋतेन अक्तः वृषभः ) तेज से युक्त वृष्टिकारक सूर्य ( अग्निः ) अग्नि के तुल्य तेजस्वी होकर ( पयसा ) आकाश या भूतल पर के जल से युक्त होकर ( वयोधाः ) किरणों, बलों वा अन्नों का धारक पोषक होकर ( अस्पन्दमानः अचरद् ) स्वयं न चलता हुआ भी सर्वत्र व्याप्त होजाता है, वह बलवान् ( वृषा ) सूर्य (शुक्रं दुदुहे)

देदीप्यमान तेज और शुद्ध जल प्रदान करता है उस समय तेजको दोहन के लिये ( ऊधः पृश्निः ) रात्रि या उषा तेज वर्षाने वाली और 'पृश्नि' आदि सूर्य स्वयं उसमें तेजप्रद होता है ( चित् ) उसी प्रकार ( वृषभः ) श्रेष्ठ पुरुष, बलवान् मेघ के समान ज्ञान वा सुखों की वर्षा करने वाला ( पुमान् ) पुरुष और ( अग्निः ) अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी नायक ( ऋतेन ) सत्य ज्ञान और न्यायप्रकाश वा ऐश्वर्य से (अक्तः ) प्रकाशित होकर ( पृष्ठ्येन ) पृष्ठ, आधार में विद्यमान ( पयसा ) पुष्टिकारक अन्न वा बलवीर्य से युक्त होकर ( अस्पन्दमानः ) धर्ममार्ग से विचलित न होकर ( वयोधाः ) ज्ञान, बल और दीर्घ जीवन को धारण करता हुआ, ( वृषा ) सुखों का वर्षक, बलवान् एवं उत्तम प्रबन्धक होकर स्वयं (पृश्निः) जल सेचक मेघ, सूर्य वा पृथ्वी के समान और (ऊधः) अन्तरिक्ष वा रात्रि के समान ( शुक्रं दुदुहे ) तेज को दोहन करे।

ऋतेनाद्रिं व्यसन्भिदन्तः समङ्गिरसो नवन्त गोभिः ।
शुनं नरः परि षदन्नुषासमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ॥ ११ ॥

भा०—( अङ्गिरसः ) प्रकाशमान सूर्य की किरणें या वायुगण जिस प्रकार ( ऋतेन अद्रिं वि असन् ) जल से युक्त मेघ को विविध प्रकार से फेंकते हैं और ( भिदन्तः ) उसको छिन्न भिन्न करते हुए ( गोभिः ) सूर्य के व्यापक प्रकाशों से ( नवन्त ) उसे व्याप देते हैं ( उषासं परिसदन् ) वे किरण उषाकाल में सर्वत्र फैलते और ( अग्नौ जाते स्वः अभवत् ) सूर्य के उत्पन्न होने पर प्रकाश और ताप उत्पन्न होता है इसी प्रकार ( अङ्गि-रसः ) अंगारों के समान तेजस्वी और ज्ञानी पुरुष ( ऋतेन ) सत्य ज्ञान, न्याय-प्रकाश से ( अद्रिम् ) मेघ के समान प्रकाश को ढकलेने वाले आवरण को ( वि असन् ) विशेष रूप से दूर करें और ( भिदन्तः ) उसे छिन्न भिन्न या विश्लेषण करते हुए ( गोभिः ) ज्ञानवाणियों से ( नवन्त ) सत्य का सबको उपदेश करें। इसी प्रकार तेजस्वी वीर पुरुष ( ऋतेन )

धनैश्वर्य और तेज, बल से पर्वत के तुल्य अभेद्य शत्रुको उखाड़ फेंके और ( गोभिः ) धनुषों की डोरियों से वाणों द्वारा उसको छिन्न भिन्न करते हुए ( नवन्त ) उसका शासन करें। ( नरः ) विद्वान् और वीर पुरुष ( शुनं ) सुखपूर्वक ( उषासम् ) उषा के तुल्य तेजस्वी पुरुष को ( परिसदन् ) घेर कर बैठें उसकी उपासना करें। विद्वान् लोग प्रातःकाल ( शुनं ) सुखपूर्वक उपास्य की उपासना करें और वीर लोग ( उषासम् ) शत्रुदाहक नायक के चारों ओर परिषत् बनाकर बैठे। तब ( अग्नौ जाते ) जिस प्रकार अग्नि के उत्पन्न होने पर ताप उत्पन्न होता है उसी प्रकार ( अग्नौ जाते ) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष के प्रकट होने पर ( स्वः ) सुखमय राज्यैश्वर्य ( अभवत् ) होता है। उत्तम विद्वान् आचार्य के प्रकट होने पर ज्ञान प्रकाश वा उपदेशमय शब्द प्रकट होता है।

**ऋतेन देवीरमृता अमृक्ता अर्णोभिरापो मधुमद्भिरग्ने।**
**वाजी न सर्गेषु प्रस्तुभानः प्र सदमित्स्रवितवे दधन्युः ॥ १२ ॥**

भा०—जिस प्रकार ( मधुमद्भिः ) मधुर गुण वा मधु अर्थात् अन्नों से युक्त ( अर्णोभिः ) जलों से ( आपः ) प्राणगण ( स्रवितवे ) चलने के के लिये ( सदम् प्र दधन्युः ) अपने आश्रयभूत देह को अच्छी प्रकार धारण करते हैं उसी प्रकार ( अमृक्ता ) रज आदि से युक्त हुई ( देवीः आपः ) प्राप्त शुभ गुणों से कान्तमती, पतियों की अभिलाषिणी स्त्रियें ( ऋतेन ) सत्य के बल से (अमृताः) अमृत तुल्य, सुखजनक होकर ( मधुमद्भिः ) मधुर गुणों और अन्नादि समृद्धि से युक्त ( अर्णोभिः ) जलों के तुल्य स्वच्छ शान्तिदायक पुरुषों के संग से ( स्रवितवे ) संसार चलाने के लिये ( सदम् ) गृहाश्रम को ( प्र दधन्युः ) अच्छी प्रकार धारण करें। और ( सर्गेषु ) जलों के बीच ( वाजी न ) वेगवान्, विद्युत् जिस प्रकार ( प्रस्तुभानः ) विशेष गर्जना करता वा शोभा देता है उसी प्रकार (वाजी) ऐश्वर्यवान्, बलवान् पुरुष भी ( प्रस्तुभानः ) अच्छी प्रकार अर्चित होकर

( सर्गेषु ) सर्गों और सन्तानों के हेतु ही ( सदम् इत् प्रदधन्यात् ) अपने गृहाश्रम को धारण करे। ( २ ) इसी प्रकार राजा की आप प्रजाएं (देवीः) राजा को चाहती हुई या विजयाभिलाषिणी सेनाएं ( मधुमद्भिः अर्णोभिः ) वेगवान् रथों से ( अमृक्ताः ) अहिंसित होकर ( ऋतेन ) बल और धन सहित ( स्ववितवे ) आगे बढ़ने के लिये ही ( सदम् प्र दधन्युः ) आसन वृत्ति राजसभा को धारण करें। पूज्य नायक ( वाजी न सर्गेषु ) युद्धों में वेगवान् अश्व के समान आगे बढ़े।

मा कस्य॑ य॒क्षं सद॒मिद्धु॒रो गा मा वे॒शस्य॑ प्रमिन॒तो मापेः।
मा भ्रातु॑रग्ने॒ अनृ॑जोॠ॒णं वे॒र्मा सख्यु॒र्दक्षं॑ रि॒पोर्भु॑जेम ॥ १३ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) विद्वन्! नायक! तू ( कस्य ) किसी भी (ह्रुरः) बलात्कार करने वाले के ( यक्षम् ) आदर सत्कार के आडम्बर को और ( सदम् ) घर को भी ( मा गाः ) मत प्राप्त कर। तू ( प्रमिनतः ) हिंसाकारी ( वेशस्य ) पड़ोसी के ( सदम् यक्षं च ) घर और संगति ( मा गाः ) मत प्राप्त कर। इसी प्रकार हिंसक ( मापेः ) बन्धुजन के भी गृह, संगति आदि मत कर। इसी प्रकार ( अनृजोः ) कुटिल ( भ्रातुः ) भाई के ( ऋणं मापेः ) ऋण या धन का भोग मत कर और ( अनृजोः सख्युः ) कुटिलाचारी मित्र के भी धन को मत ले। और हम ( अनृजोः रिपोः ) कुटिल शत्रु के ( दक्षं ) सैन्य बल को ( मा भुजेम ) उपभोग न करें।

रक्षा॑ णो अग्ने॒ तव॒ रक्ष॑णेभी रारक्षा॒णः सु॑मख प्रीणा॒नः।
प्रति॑ष्फुर॒ वि रु॑ज वी॒ड्वंहो॑ ज॒हि रक्षो॒ महि॑ चिद्वावृधा॒नम् ॥१४॥

भा०—हे ( सुमख ) उत्तम त्रुटि रहित यज्ञ करने हारे विद्वन्! राजन्! ( अग्ने ) हे अग्रणी! तू ( तव रक्षणेभिः ) अपने रक्षा साधनों से ( रारक्षाणः ) रक्षा करता हुआ ( प्रीणानः ) सबको प्रसन्न करता हुआ ( नः रक्ष ) हमारी रक्षा कर। और ( वीडु अंहः ) प्रबल पाप को

( प्रति स्फुर, विरुज ) विविध रीति से भंग कर और ( वावृधानम् ) निरन्तर बढ़ते हुए ( महि रक्षः ) बड़े भारी विघ्नकारी को (जहि) विनाश कर ।

एभिर्भव सुमना अग्ने अर्कैरिमान्त्स्पृश मन्मभिः शूर वाजान् ।
उत ब्रह्माण्यंगिरो जुषस्व सं ते शस्तिर्देववाता जरेत ॥ १५ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! हे राजन् ! तू ( एभिः अर्कैः ) इन मन्त्रों और अर्चना, पूजा सत्कार के योग्य विद्वानों से तू ( सुमनाः ) उत्तम ज्ञान और चित्त वाला ( भव ) हो । ( इमान् वाजान् ) तू इन ऐश्वर्यों और गुणों को हे ( शूर ) शूरवीर ( मन्मभिः ) अन्य भी मनन योग्य गुणों के साथ (स्पृश) ग्रहण कर । हे (अंगिरः) तेजस्विन् ! तू (ब्रह्माणि) वृद्धिशील धनों को ( जुषस्व ) स्वीकार कर । ( ते ) तेरी ( देववाता ) विद्वान् पुरुषों द्वारा की गई ( शस्तिः ) स्तुति वा नसीहत ( सं जरेत ) अच्छी प्रकार की जाय ।

एता विश्वा विदुषे तुभ्यं वेधो नीथान्यग्ने निण्या वचांसि ।
निवचना कवये काव्यान्यशंसिषं मतिभिर्विप्र उक्थैः ॥१६॥२२॥

भा०—हे ( वेधः ) कार्य करने हारे, हे विशेष धारणावान् कवे ! हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! ( तुभ्यं विदुषे ) तुझ विद्वान् के लिये ( एता ) ये ( विश्वा ) सब ( नीथा ) सन्मार्ग पर लेजाने वाले ( निण्या ) निश्चित तत्वार्थ बतलाने वाले, ( वचांसि ) वचन हैं । अच्छी प्रकार तत्व बतलाने वाले इन ( काव्यानि ) विद्वानों के बनाये संदर्भ मैं ( कवये ) क्रान्तदर्शी तेरे हित के लिये ( मतिभिः ) मनन करने योग्य ( उक्थैः ) वचनों द्वारा ( अशंसिषन् ) कहूं । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

## [ ४ ]

वामदेव ऋषिः ॥ अग्नी रक्षोहा देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ५, ८ भुरिक् पंक्तिः । ६ स्वराट् पंक्तिः । १२ निचृत्पंक्तिः । ३, १०, ११, १५ निचृत् त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् । ७, १३ त्रिष्टुप् । १४ स्वराड् बृहती ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन ।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥ १ ॥

भा०—हे नायक ! तू ( प्रसितिम् ) उत्तम प्रबन्ध से युक्त पृथ्वी के समान दृढ़ ( पाजः ) आश्रयभूत बल ( कृणुष्व ) सम्पादन कर । तू ( राजा इव अमवान् ) राजा के समान सहायक पुरुषों से युक्त होकर ( इभेन ) हस्ति बल के साथ वा निर्भय गण के साथ ( याहि ) प्रयाण कर । तू ( तृष्वीम् ) अति वेग वाली, वा पियासी मृगी के पीछे भागते शिकारी के समान वा ( तृष्वी ) जल रहित भूमि के प्रति वेग से जाते हुए मेघ के समान तू भी ( तृष्वीम् ) वेग से जाने वाली वा ( तृष्वीम् ) ऐश्वर्य की चाहने वाली, तृष्णालु ( प्रसिति ) सूत्र के समान परस्पर बन्धी हुई, सुप्रबद्ध सेना के पीछे ( द्रूणानः ) आता हुआ, ( तपिष्ठैः ) अत्यधिक सन्तापजनक शस्त्रास्त्रों से ( रक्षसः ) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों का ( अस्ता असि ) उखाड़ फेंकने वाला हो और ( विध्य ) उनको ताड़ना कर ।

तव भ्रमास आशुया पतन्त्यनु स्पृश धृषता शोशुचानः ।
तपूंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसंन्दितो वि सृज विष्वगुल्काः ॥ २ ॥

भा०—हे नायक ! ( अग्ने ) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् ! ( भ्रमासः आशुया ) जिस प्रकार अग्नि के भ्रमणशील या वेग से जाने वाले किरण बड़ी तीव्र गति से दूर तक जाते हैं उसी प्रकार ( तव ) तेरे ( भ्रमासः ) भ्रमणशील शस्त्रास्त्र और सैनिकगण ( आशुया ) अति वेग से (पतन्ति) जावें । तू ( धृषता ) शत्रु को पराजय करने वाले बल से (शोशुचानः) खूब देदीप्यमान होता हुआ ( अनु स्पृश ) शत्रुओं के पीछे २ जा । और ( जुह्वा ) अपनी वाणी से ही ( असंदितः ) स्वयं अखण्डित और बन्धन रहित रहता हुआ तू ( विश्वक् ) सब ओर को ( तपूंषि ) तापजनक अस्त्र शस्त्र ( विसृज ) चला और ( पतङ्गान् ) अग्नि की ज्वाला से निकले तापों और स्फुलिङ्गों के समान ( पतङ्गान् विसृज ) वेग से जाने वाले

अश्वारोहियों और वाणों को छोड़ और ( उल्काः ) आकाश से गिरने वाले चमकते तारों के समान तू सब ओर अपने चमकते अग्नि-अस्त्र (विसृज) छोड़ ।

**प्रति स्पशो वि सृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः ।**
**यो नो दूरे अघशंसो यो अन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरा दधर्षीत् ॥३॥**

भा०—हे ( अग्ने ) नायक ! अग्नि के समान तेजस्विन् ! राजन् ! तू ( तूर्णितमः ) अति शीघ्रकारी, आलस्य रहित होकर अपने ( स्पशः ) सिपाहियों, चरों और सत्यासत्य को विवेकपूर्वक देखने वाले पुरुषों को ( प्रति विसृज ) अपने शत्रु-गृहों और प्रत्येक स्थान में भेज । तू स्वयं ( अदब्धः ) किसी प्रकार पीड़ित न होकर ( अस्याः विशः ) इस अधीन प्रजा का ( पायुः ) पालक ( भव ) हो । ( यः ) जो ( अघशंसः ) पापाचार का प्रशंसक वा पापाचार करने की धमकी देने वाला है ( नः दूरे ) वह हमसे दूर हो या ( यः ) जो ( अन्ति ) समीप में ( व्यथिः ) प्रजा को व्यथा या पीड़ा देने वाला भेड़िये के तुल्य पुरुष है वह ( ते ) तुझे ( माकिः आदधर्षीत् ) कभी भी पराजित न कर सके ।

**उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्व न्यमित्राँ ओषतात्तिग्महेते ।**
**यो नो अरातिं समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥४॥**

भा०—हे ( अग्ने ) अग्रणी सैन्यनायक ! तू ( उत् तिष्ठ ) उठ, खड़ा हो, सबसे उच्च आसन पर नायक रूप में शत्रुविजय के लिये उद्यत हो । ( प्रति आ तनुष्व ) शत्रु के विपरीत अपने सैन्य-बल को विस्तृत कर, धनुष आदि तान । हे ( तिग्महेते ) तीक्ष्ण शस्त्रों को धारण करने वाले ( अमित्रान् ) शत्रुओं को ( नि ओषतात् ) तू खूब संतप्त कर । वृक्षों को जलाकर अग्नि के समान निर्मूल कर । हे ( समिधान ) खूब प्रकाशमान तेजस्विन् ! ( यः ) जो ( नः ) हमारे बीच में हमसे ( अराति ) शत्रु भाव ( चक्रे ) करे ( तं ) उसको ( नीचा ) नीचे गिरा कर ( शुष्कं अतसं न ) सूखे काठ के समान अग्निवत् ( धक्षि ) जला डाल ।

ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने ।
अवं स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्र मृणीहि शत्रून् ।५।२३॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक ! राजन् ! तू ( अधि अस्मत् ) हम सबसे ( ऊर्ध्वः ) ऊपर ( भव ) हो । और ( दैव्यानि ) देवों, विद्वानों और विजिगीषुओं, व्यवहार-कुशलों से करने योग्य सभी उत्तम कार्यों और देव, जल अग्नि आदि के बने अस्त्र शस्त्रों वा सैन्यों को (आविः कृणुष्व ) प्रकट कर । (स्थिरा) स्थिर सैन्यों को (अव तनुहि) अपने अधीन रख । और ( यातुजूनां ) प्रयाण करने में अति वेग से जाने वाले लोगों के बीच में ( जामिम् अजामिम् ) अपने बन्धु और अबन्धु को जान । अथवा—( यातुजूनां ) चढ़ाई करने के निमित्त वेग से आने वाले शत्रुओं के बीच से ( शत्रून् ) शत्रुओं को चाहे वे (जामिम् अजामिम् ) अपने बन्धु या अबन्धु भी हों उनको ( प्रमृणीहि ) खूब विनाश कर । और ( प्रति विध्य ) मुकाबले पर स्थिर होकर ताड़ित कर । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

स ते जानाति सुमतिं यविष्ठ य ईवते ब्रह्मणे गातुमैरत् ।
विश्वान्यस्मै सुदिनानि रायो द्युम्नान्यर्यो वि दुरो अभि द्यौत् ॥६॥

भा०—हे ( यविष्ठ ) उत्तम युवावस्थायुक्त बलवन् ! विद्वन् ! प्रभो ! ( यः ) जो ( ईवते ) ज्ञानवान् ( ब्रह्मणे ) वेदज्ञ विद्वान् को ( गातुम् ऐरत् ) उत्तम वाणी कहता उसका आदर सत्कार करता है वा जो ( ईवते ) इस जगत् को सञ्चालन करने वाली शक्ति के स्वामी (ब्रह्मणे) महान् परमेश्वर के ( गातुम् ) प्राप्त करने के मार्ग को ( ऐरत् ) उपदेश करता है ( सः ) वह ( ते ) तेरी ( सुमतिं ) उत्तम ज्ञान को (जानाति) जानता है । ( अस्मै ) उसके ( विश्वानि सुदिनानि ) सब दिन उत्तम सुखकारी होते हैं, उसको ( रायः ) सब ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं । ( द्युम्नानि) सब प्रकार यश और भोग्य अन्न प्राप्त होते हैं वह ( अर्यः ) स्वामी वा वैश्य के समान ( दुरः ) अपने सब गृहों को और शत्रु और बाधा के

वारण करने वाली सेनाओं गृह तुल्य प्रजाओं को भी तथा ज्ञान के द्वार-रूप वाणियों को भी ( वि अभिद्यौत् ) विविध प्रकार से प्रकाशित करे।

**सेदग्ने अस्तु सुभगः सुदानुर्यस्त्वा नित्येन हविषा य उक्थैः।**
**पिप्रीषति स्व आयुषि दुरोणे विश्वेदस्मै सुदिना सासदिष्टिः ॥७॥**

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् विद्वन्! हे राजन् वा हे परमेश्वर! ( यः ) जो पुरुष ( नित्येन ) नित्य, स्थायी, न नष्ट होने वाले (हविषा) आह्वान करने योग्य या ग्रहण करने योग्य वेद द्वारा वा उत्तम अन्न से, और ( यः ) जो ( उक्थैः ) उत्तम वचनों से ( त्वा ) तुझको ( स्वे ) अपने ( आयुषि ) जीवन में और अपने ( दुरोणे ) घर या राष्ट्र में ( वि प्रीषति ) प्रसन्न करने का यत्न करता है ( सः इत् सुभगः अस्तु ) वह ही उत्तम ऐश्वर्ययुक्त और वह ही ( सुदानुः ) उत्तम दानशील हो। ( अस्मै विश्वा इत् सुदिना ) उसके ही सब दिन सुखकारक होते और (सा) उसका ही वह नाना प्रकार की उत्तम संगति और दान, मैत्री आदि प्राप्त और सफल होते हैं। नित्य अग्नि में नियम से जो हवि चरु आदि और वेदमन्त्रों से अग्नि और प्रभु को प्रसन्न करता, सन्ध्या और अग्नि-होत्र करता है और जो विद्वानों को नित्य अन्न से प्रसन्न करता, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ और वलिवैश्वदेव करता है वह ही उत्तम दानी और उत्तम ऐश्वर्यवान् हो। उसके सब दिन सुखपूर्वक बीतते हैं। उसके ही यज्ञ, सत्संग, मैत्री आदि सफल होते हैं। इसी प्रकार जो प्रजा राजा को नियम पूर्वक कर देती है वह समृद्ध उत्तम दानशील वा शत्रुखण्डक होती है, उसके दिन अच्छे और संगठन भी उत्तम होता है।

**अर्चामि ते सुमतिं घोष्यर्वाक्सं ते वावाता जरतामियं गीः।**
**स्वश्वास्त्वा सुरथा मर्जयेमास्मे क्षत्राणि धारयेरनु द्यून् ॥ ८ ॥**

भा०—हे राजन्! हे विद्वन्! मैं प्रजाजन ( ते ) तेरे ( सुमतिं ) उत्तम मति वाले, बुद्धिमान् उत्तम ज्ञानी पुरुष का और तेरी उत्तम मति

का ( अर्चामि ) आदर करूं। ( इयं ) यह ( गीः ) वाणी ( घोषि ) उत्तम शब्दयुक्त होकर ( वावाता ) सब अज्ञानों का नाश करती हुई ( ते अर्वाक् ) तेरे प्रति ( सं जरताम् ) अच्छी प्रकार उपदेश वा स्तुति करे। और ( इयं गीः ) यह शत्रुपक्ष को निगल जाने वाली ( वावाता ) शत्रु पक्ष का निरन्तर विनाश करती हुई सेना ( घोषि ) घोष, सिंहनाद करती हुई ( अर्वाक् ) तेरे समक्ष ( संजरताम् ) शत्रु के जीवन का नाश करे। हम लोग ( स्वश्वाः ) उत्तम अश्वों ( सुरथाः ) उत्तम रथों और अश्वबल और रथबल से युक्त होकर ( त्वा मर्जयेम ) तुझे सुशोभित करें और ( अस्मे ) हमारे लिये तू ( अनुद्यून् ) सब दिनों ( क्षत्राणि ) क्षात्रबल, और ऐश्वर्य धारण कर और हमें धारण करा।

इह त्वा भूर्या चरेदुप त्मन्दोषावस्तर्दीदिवांसमनु द्यून्।
क्रीळन्तस्त्वा सुमनसः सपेमाभि द्युम्ना तस्थिवांसो जनानाम्॥९॥

भा०—हे विद्वन्! राजन्! ( इह ) इस राष्ट्र में, इस लोक में ( दोषावस्तः ) दिन रात ( त्वां दीदिवांसम् ) देदीप्यमान तेजस्वी ( त्वा ) तुझको प्राप्त करके ( भूरि ) बहुत अधिक ( त्मन् ) स्वयमेव ( उप आचरेत् ) तेरी सेना आदर सत्कार और श्रेष्ठाचार करे। और ( अनुद्यून् ) दिनों दिन हम भी ( समनसः ) शुभ ज्ञान और चित्त वाले होकर ( क्रीडन्तः ) पिता के समीप खेलते हुए बालकों के समान ( त्वा अभिसपेम ) तुझे प्राप्त हों। और ( जनानाम् ) मनुष्यों के बीच ( द्युम्ना अभितस्थिवांसः ) यशों और ऐश्वर्यों को प्राप्त करके तेरे समीप तेरे सन्मुख स्थित रहते हुए तुझे प्राप्त हों।

यस्त्वा स्वश्वः सुहिरण्यो अग्न उपयाति वसुमता रथेन। तस्य त्राता भवसि तस्य सखा यस्त आतिथ्यमानुषग्जुजोषत्॥१०॥२४॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्रणी! राजन्! हे प्रभो! ( यः ) जो पुरुष ( सु-अश्वः ) उत्तम अश्व और ( सुहिरण्यः ) उत्तम धनैश्वर्य से युक्त होकर

(वसुमता रथेन) धन धान्य से सम्पन्न रथ से ( त्वा उपयाति ) तुझे प्राप्त होता है और ( यः ) जो ( ते ) तेरे ( आतिथ्यम् ) आतिथ्य ( अनुषक् ) अनुकूल रूप से स्वपदमानानुसार ( जुजोषत् ) स्वयं स्वीकार करता वा ( ते आतिथ्यम् जुजोषत् ) तेरा अतिथ्य स्वयं प्रेम से करता है तू ( तस्य ) उसका ( त्राता ) रक्षक और ( तस्य सखा ) उसका मित्र ( भवसि ) होकर रह । ( २ ) हे परमेश्वर ! जो ( सुअश्वः ) उत्तम इन्द्रियों से युक्त जितेन्द्रिय और ( सुहिरण्यः ) उत्तम देह और आत्मवान् होकर तेरी उपासना करे जो तेरा आतिथ्य निरन्तर सेवन करे, तेरी शरण आवे तो तू उसका त्राण करता और उसका सखा बन जाता है ।

महो रुजामि बन्धुता वचोभिस्तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय ।
त्वं नो अस्य वचसश्चिकिद्धि होतर्यविष्ठ सुक्रतो दमूनाः ॥११॥

भा०—हे ( होतः ) ज्ञान और ऐश्वर्य के देने वाले ! हे ( यविष्ठ ) बलशालिन् ( वचोभिः ) वचनों द्वारा ही प्राप्त होने वाली जो ( बन्धुता ) सम्बन्ध है उससे मैं ( महः ) बड़ा भारी शत्रुबल तथा अज्ञान को (रुजामि) नष्ट करने में समर्थ हूं । (तत्) वह सम्बन्ध (पितुः) पालक पिता माता के तुल्य ही ( गोतमात् ) ज्ञानियों में श्रेष्ठ आचार्य और पुरुषों में श्रेष्ठ वा भूमियों में श्रेष्ठ राजा के पास से शिष्य वा प्रजाजन रूप ( माम ) मुझको ( अनु इयाय ) क्रम से प्राप्त हो । हे विद्वन् ! ( त्वं ) तू ( दमूना ) अपने चित्त, इन्द्रियों को दमन करने हारा और प्रजा को दमन करने में मनोयोग देने हारा होकर तू ( नः ) हमें ( अस्य वचसः ) इस वचन का ( चिकिद्धि ) ज्ञान करवा कर ।

अस्वप्नजस्तरणयः सुशेवा अतन्द्रासोऽवृका अश्रमिष्ठाः ।
ते पायवः सध्र्यञ्चो निषद्याग्ने तव नः पान्त्वमूर ॥ १२ ॥

भा०—राजा के भृत्य वा अधीन शासक कैसे हों—हे ( अमूर ) मूढ़ता आदि दोषों से रहित राजन् ! वे ( अस्वप्नजः ) कभी न होने

वाले, सदा जागरणशील, सदा सावधान, ( तरणयः ) नित्य तरुण, जवान, प्रबल, ( सुशेवाः ) उत्तम सुख देने वाले ( अतन्द्रासः ) कभी तन्द्रा या विषयों के प्रमाद में न पड़ने वाले, ( अवृकाः ) चोर वा भेड़ियें के स्वभाव से रहित ( अश्रमिष्ठाः ) कभी न थकने वाले हों। ( ते ) वे ( पायवः ) पालक गण ( सध्र्यञ्चः ) सदा एक साथ काम करने वाले सहयोगी होकर ( निषद्य ) अपने २ पदों पर विराज कर ( तव ) तेरे अधीन जन ( नः ) हम प्रजा जनों की ( पान्तु ) रक्षा करें। ( २ ) इसी प्रकार परमेश्वर की शक्तियां भी नित्य जागृत, प्रबल, सूर्यवत् तेजस्वी, सुखप्रद, अविकृत ज्योति वाली अनथक, सहयोगिनी होकर जन्तुओं की पालक हैं। वे हमारी रक्षा करें।

ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन्।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः॥१३॥

भा०—( ये ) जो ( ते ) तेरे ( पायवः ) नियुक्त रक्षक गण स्वयं ( मामतेयं ) ममता के भाव से अपनाये हुए ( अन्धं ) लोचनहीन अज्ञानी प्रजाजन को स्वयं ( पश्यन्तः ) यथार्थ ज्ञान से देखते हुए ( दुरितात् ) दुष्टाचरण और दुःखमार्ग में जाने से ( अरक्षन् ) बचा लेते हैं ( विश्ववेदाः ) सर्वज्ञ सर्वैश्वर्य का स्वामी तू ( तान् ) उन ( सुकृतः ) शुभ कर्मकारी लोगों को ( रक्ष ) सुरक्षित रख, उनको नियुक्त कर। जिससे ( दिप्सन्तः ) हिंसा करने के इच्छुक घात लगाने वाले ( रिपवः ) शत्रुगण ( इत् ) भी ( न अह ) कभी ( देभुः ) प्रजा का नाश कर सकें।

त्वया वयं सधन्य१स्त्वोतास्तव प्रणीत्यश्याम वाजान्।
उभा शंसा सूदय सत्यताते ऽनुष्ठुया कृणुह्यह्रयाण॥ १४॥

भा०—हे ( सत्यताते ) सत्य न्याय के विस्तार करने हारे! ( वयं ) हम लोग ( त्वया ) तेरे द्वारा ( सधन्यः ) समान धन के स्वामी होकर

(त्वा ऊता) तेरे द्वारा सुरक्षित रहकर (तव प्रणीती) तेरे बनाये विधान, प्रेम, उत्तम नीति से (वाजान्) ऐश्वर्यों और संग्रामों को (अश्याम) भोगें और विजय करें। हे सत्य रक्षक! हे न्यायवित्! हे (अह्रयाण) लज्जारहित निर्भीक कार्य करने हारे! तू (उभा शंसा) दोनों वादियों को (अनुष्ठुया) अपने मनोनूकूल करते हुए (सूदय) सञ्चालित कर।

अया ते अग्ने समिधा विधेम प्रति स्तोमं शस्यमानं गृभाय।
दहाशसो रक्षसः पाह्यस्मान्द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात्॥१५॥२५॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी! नायक! ज्ञानवन्! हे तेजस्वी राजन्! हम लोग (अया) इस (समिधा) अच्छी प्रकार प्रकाशित होने वाली वाणी द्वारा (शस्यमान) प्रशंसा करने योग्य (स्तोमं) स्तुति-वचन वा उपदेश (ते विधेम) तेरे हितार्थ विधान करें। तू उसको (प्रति गृभाय) प्रत्यक्ष सादर ग्रहण कर, मान। तू (अशसः) प्रजाओं को खा जाने वाले वा (अशसः) अप्रशस्त (रक्षसः) कार्य विघ्न करने वाले पुरुष से (अस्मान् पाहि) हमें बचा। हे (मित्रमहः) मित्रों के द्वारा पूजनीय! हे मित्रों का सत्कर्त्तव्य या मित्रों के द्वारा महान् सामर्थ्यवान् वा सूर्य के समान वा वायुवत् तेजस्विन्! तू (द्रुहः) द्रोही, देशद्रोही और प्रजा द्रोही, (निदः) निन्दाकारी (अवद्यात्) निन्दा योग्य पुरुष से भी (पाहि) हमारी रक्षा कर। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

इति चतुर्थोऽध्यायः

## अथ पञ्चमोऽध्यायः

[ ५ ]

वामदेव ऋषिः॥ वैश्वानरो देवता॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप्। २, ५, ६, ७, ८, ११ निचृत् त्रिष्टुप्। ३, ४, ९, १२, १३, १५ त्रिष्टुप्। १०, १४ भुरिक् पंक्तिः॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

वैश्वानराय मीळ्हुषे सजोषाः कथा दाशेम ग्नये बृहद्भाः ।
अनूनेन बृहता वक्षथेनोप स्तभाय दुपमिन्न रोधः ॥ १ ॥

भा०—जो ( बृहद्भाः ) सूर्य के समान बड़े भारी तेज वा ज्ञान-प्रकाश से युक्त ( अनूनेन ) किसी से भी न कम, अति अधिक ( बृहता ) बहुत बड़े ( वक्षथेन ) कार्य भार को उठाने या धारण करने के सामर्थ्य से ( रोधः न ) जलों के तट के समान ( उपमित् ) इस जगत् को स्वयं जानने, बनाने और चलाने हारा होकर ( उप स्तभायत् ) संभालता है, उस ( वैश्वानराय ) समस्त जगत् के सञ्चालक, सब मनुष्यों के नायक राजा और विद्वान् ( मीळ्हुषे ) सूर्य वा मेघ के तुल्य आनन्द ऐश्वर्य सुखों के वर्षक ( अग्नये ) अग्नि के तुल्य ज्ञानप्रकाशक, अग्रणी, मार्गदर्शक के लिये हम ( सजोषाः ) समान रूप से प्रीतियुक्त होकर ( कथा दाशेम ) किस प्रकार आत्मसमर्पण करें, करादि दें । दान, मान आदर सत्कार आदि करें ।

मा निन्दत य इमां मह्यं रातिं देवो ददौ मर्त्याय स्वधावान् ।
पाकाय गृत्सो अमृतो विचेता वैश्वानरो नृतमो यह्वो अग्निः ॥२॥

भा०—( यः ) जो ( देवः ) दानशील, सूर्य के समान प्रकाशक और मेघ के ( स्वधावान् ) अन्न और जल से युक्त होकर ( मर्त्याय मह्यं ) मुझ ( पाकाय ) परिपक्व ज्ञानी, तपस्या युक्त, सुदृढ़ मनुष्य को ( इमां रातिं ददौ ) इस प्रत्यक्ष दान, ज्ञान धनादि का प्रदान करता है उसकी ( मा निन्दत ) निन्दा मत करो । वह ( गृत्सः ) उपदेश देने वाला गुरु, ( अमृतः ) मृत्यु से रहित, कभी न मरने वाला ( विचेताः ) विविध ज्ञानों को जानने वाला, ( वैश्वानरः ) सब मनुष्यों में प्रकाशमान, (नृतमः) सब मनुष्यों वा जीवों में श्रेष्ठ, नरोत्तम, ( यह्वः ) महान् ( अग्निः ) सबका नायक, सबका प्रकाशक, अग्निवत् तेजस्वी, स्वप्रकाश है ।

सामं द्विबर्हा महिं तिग्मभृष्टिः सहस्ररेता वृषभस्तुविष्मान् ।
पदं न गोरपंगूळ्हं विविद्वानग्निर्मह्यं प्रेदु वोचन्मनीषाम् ॥ ३ ॥

भा०—( सहस्ररेताः वृषभः ) अनेक जलों से युक्त वर्षणशील मेघ वा सूर्य ( द्विबर्हाः ) आकाशभूमि दोनों को बढ़ाने वाला, ( तिग्मभृष्टिः ) तीक्ष्ण प्रकाश ताप से युक्त होकर जिस प्रकार ( गोः अपगूळ्हं पदं विविद्वान् ) किरणों के स्वरूप प्राप्त करता हुआ चेतना वा ज्ञान देता है उसी प्रकार ( द्विबर्हाः ) विद्या और विनय दोनों से बढ़ने हारा वा ब्रह्मचर्य और गृहस्थ दोनों से बढ़ा हुआ वानप्रस्थ कुलपति वा दोनों लोकों से महान् ( तिग्मभृष्टिः ) तीक्ष्ण प्रकाश से युक्त, पापों को दग्ध करने में समर्थ, ( सहस्ररेताः ) अतुल बल वीर्य सम्पन्न, सहस्रों विद्या बलों से युक्त, ( वृषभः ) सर्वश्रेष्ठ, ( तुविष्मान् ) बलवान्, ( अग्निः ) ज्ञानवान् पुरुष, अग्रणी नायक या परमेश्वर, ( गोः ) वाणी और पृथिवी के ( अपगूळ्हं ) अति अव्यक्त, अप्रकट रूप को ( विविद्वान् ) विशेष रूप से जानता हुआ, ( मह्यं ) मुझ प्रजाजन की ( मनीषाम् ) मन वा ज्ञान की प्रेरक बुद्धि या ज्ञान का ( प्रवोचत् इत् ) अच्छी प्रकार उपदेश करे ।

प्र ताँ अग्निर्बभसत्तिग्मजम्भस्तपिष्ठेन शोचिषा यः सुराधाः ।
प्र ये मिनन्ति वरुणस्य धाम प्रिया मित्रस्य चेततो ध्रुवाणि ॥४॥

भा०—( ये ) जो ( वरुणस्य ) सबसे वरण करने योग्य, सर्वश्रेष्ठ और ( मित्रस्य ) प्रजा को मरने से बचाने वाले, सर्वस्नेही ( चेततः ) ज्ञानी पुरुष के ( ध्रुवाणि ) स्थिर, ( प्रिया ) प्रिय ( धाम ) स्थान, नाम, देह आदि का ( प्रमिनन्ति ) नाश करें ( तान् ) उनको ( यः ) जो ( सुराधाः ) उत्तम ऐश्वर्यवान् ( अग्निः ) अग्रणी नायक ( तिग्मजम्भः ) तीक्ष्ण, हिंसक आयुधों से सम्पन्न है वह अपने ( तपिष्ठेन ) अति संताप-दायक ( शोचिषा ) तेज से ( बभसत् ) प्रदीप्त करे, जलावे, पीड़ित करे

अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो दुरेवाः ।
पापासः सन्तो अनृता असत्या इदं पदमजनता गभीरं ॥५॥१॥

भा०—जिस प्रकार ( अभ्रातरः योषणः न ) पालक पोषक भाई वा पति से रहित स्त्रियें ( दुरेवाः ) दुःखदायी गति पाकर ( गभीरं पदं ) गहरे संकट-स्थान पैदा कर लेती हैं और जिस प्रकार ( जनयः पतिरिपः ) पालक पति की भूमिस्वरूप होकर भी पतिद्वेषिणी स्त्रियें ( दुरेवाः ) दुष्टाचारिणी होकर (पापासः अनृताः) पापयुक्त असत्य-भाषिणी और ( असत्याः ) सत्याचरण से रहित होकर ( गभीरं पदं अजनत ) गहरा संकट या नरक पैदा कर लेती हैं ( व्यन्तः ) जाते हुए लोग ( पापासः ) पापाचारी ( अनृताः ) असत्यवादी ( असत्याः ) असदाचारी लोग भी जीवन-मार्ग में ( इदं ) इस प्रत्यक्ष ( गभीरं पदम् अजनत ) गहरे स्थान, गढ़ा या अधःपतन को प्राप्त करते हैं, वे नीचे गिरते हैं । इति प्रथमो वर्गः ॥

इदं मे अग्ने कियते पावकामिनते गुरुं भारं न मन्म ।
बृहद्दधाथ धृषता गभीरं यह्वं पृष्ठं प्रयसा सप्तधातु ॥ ६ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! हे तेजस्विन् ! हे ( पावक ) पवित्र करनेहारे ! तू (मे) मुझ (कियते) अल्पज्ञानी, अल्पशक्ति, (अमिनते) व्रत भंग न करने वाले शिष्य, जीव के उपकार के लिये ही ( कियते गुरुं भारं न ) स्वल्प बल वाले के उपकार के लिये ( गुरुं भारं नं ) बहुत अधिक भार के समान ( गुरुं ) उपदेश करने योग्य ( भारं ) पोषणकारक ( मन्म ) मनन करने योग्य ( बृहत् ) बहुत बड़ा ( गभीरं ) अति गंभीर ( यह्वं ) महान् ( पृष्ठं ) प्रश्नों द्वारा जानने योग्य, हृदय में आनन्द वर्षक ( सप्त-धातु ) सुवर्णादि सात धातुओं से युक्त धन के तुल्य सात प्रकार के छन्दों द्वारा धारण करने योग्य वेद-विज्ञान को ( धृषता ) अति प्रगल्भ (प्रयसा)

उत्तम प्रयत्न और तृप्तिकारक प्रसन्न-चित्त से ( दधाथ ) आप धारण करावें मुझे प्रदान करें ।

**तमिन्न्वे३व समना समानमभि क्रत्वा पुनती धीतिरश्याः ।**
**ससस्य चर्मन्नधि चारु पृश्नेरग्रे रुप आरुपितं जबारु ॥ ७ ॥**

भा०—हे शिष्यगण ! तू ( समना ) समान चित्त होकर ( पुनती क्रत्वा ) पवित्र करने वाले ज्ञान और कर्म के अभ्यास द्वारा ( समानम् ) अपने तुल्य मित्रवत् ( तम् इत् नु एव ) उस गुरु को ही ( धीतिः सन् ) धारणाशील वा अध्ययनशील होकर ( अश्याः ) उसे मित्र तुल्य जान कर प्राप्त कर । ( पृश्नेः ससस्य ) पृश्नि नाम मृग के ( चर्मन् अधि ) चर्म पर स्थित होकर उसके तुल्य ही ( ससस्य ) ऊपर उठते हुए ( पृश्नेः ) सूर्य के ( चर्मन् अधि ) आचरण या व्रत में विद्यमान रहकर ( रुपः ) ज्ञानाङ्कुर बीजों के रोपने वाले गुरु से तू ( आरुपितं ) आदर वा प्रेम-पूर्वक वपन किये ( जबारु ) वेग से या उपदेश पूर्वक बढ़ने वाले ज्ञान को ( रुपः आरुपितं जबारु ) अंकुरवती भूमि से अति शीघ्र वृद्धिशील अन्न के तुल्य ही (अश्याः) प्राप्त कर। स्त्री पुरुष के पक्ष में—हे स्त्री ! तू (धीतिः) गर्भ वा गृहस्थ धारण करने में समर्थ युवति ( समना ) समान प्रेममय चित्त वाली होकर ( क्रत्वा ) मन ज्ञान वा कर्म से वा यज्ञ द्वारा (समानम्-अभि पुनती ) अपने समान गुण रूपादि युक्त पुरुष को प्राप्त करती हुई ( तम् इत नु एव अश्याः ) उसको ही प्राप्त कर । ( पृश्नेः ) पालक एवं वीर्य सेचन में समर्थ ( ससस्य ) शयन करते हुए पति के ही ( चर्मन् ) चर्म या आच्छादन वस्त्र, बिछौने आदि पर (अग्रे) प्रथम तू ( रुपः ) बीज वपनकर्त्ता पति से (आरुपितं) आदर वा प्रेम से वपन किये (जबारु) स्वयं जीर्ण होकर उत्पन्न होने वाले सन्तान आदि को, भूमि में उत्पन्न अन्न के तुल्य ही ( अश्याः ) प्राप्त कर ।

**प्रवाच्यं वचसः किं मे अस्य गुहा हितमुप निणिग्वदन्ति ।**
**यदुस्रियाणामप वारिव व्रन्पाति प्रियं रुपो अग्रं पदं वेः ॥ ८ ॥**

भा०—( अस्य ) इस विद्वान् आचार्य के ( वचसः ) वचन के सम्बन्ध में ( मे ) मेरे लिये ( किम् प्रवाच्यं ) क्या अद्भुत वा कितना अधिक प्रवचन करने योग्य है जिसे ( गुहा हितम् ) बुद्धि में स्थित और ( निणिक् ) अति शुद्ध और शिष्यादि की बुद्धि को विमल करने वाला ( उपवदन्ति ) बतलाते वा विद्वान् जन उपदेश करते हैं। ( उस्रियाणां वाः इव ) किरणों या मेघ की जलधाराओं या नदियों के जल के समान ( उस्रियाणाम् ) स्वयं उठने वाली वाणियों के ( यत् ) जिस उत्तम साररूप ज्ञान को विद्वान् लोग ( अप व्रन् ) खोलते वा प्रकट करते हैं। वही ( रुपः वेः ) बीजोत्पादक पृथिवी और कान्तिमान् सूर्य इन दोनों के तुल्य ( रुपः ) सन्तति उत्पादक स्त्री और ( वेः ) कमनीय कामनावान् पुरुष माता वा पिता दोनों के (प्रियं) प्रिय ( अग्रं ) मुख्य ( पदं ) पद आदरणीय स्थान को ( पाति ) पालन करता है। अर्थात् वह आचार्य उनके माता पिता के तुल्य होता है।

इदमु त्यन्महि महामनीकं यदुस्रिया सचत पूर्व्यं गौः।
ऋतस्य पदे अधि दीद्यानं गुहा रघुष्यद्रघुयद्विवेद ॥ ९ ॥

भा०—( इदम् उ ) यह ही ( त्यत् ) वह परम ( महि ) बड़ा भारी ( महाम् ) बड़ों के भी बीच में ( अनीकं ) बलवान् सूर्य रूप तेजःपुञ्ज है ( यत् पूर्व्यं ) सब से पूर्व विद्यमान् कारणों से उत्पन्न जिसको ( उस्रिया गौः ) दुधार गौ के तुल्य जलप्रद रश्मि वा गतिशील पृथिवी ( सचते ) प्राप्त है और जिसको ( ऋतस्य पदे ) सूक्ष्म जल के आश्रयस्थान आकाश के भी ( अधि ) ऊपर ( दीद्यानं ) देदीप्यमान ( गुहा ) अन्तरिक्ष में ( रघुष्यत् ) वेग से जाता हुआ ( रघुयत् ) अति वेग से गमन करने वाले पिण्ड के तुल्य ( विवेद ) विद्वान् जानता है। इसी प्रकार राजा और विद्वान् भी बड़ों में बड़ा बल है जिसको (गौः) पृथिवी और वाणी गौ के तुल्य पालक को प्राप्त होवे। ( ऋतस्य पदे अधि-

दीद्यानं ) न्याय वा ज्ञान के परम पद पर प्रकाशमान को बुद्धि में अति तीव्र रूप में शिष्य जन जानें।

अर्ध द्युतानः पित्रोः सचासामनुत गुह्यं चारु पृश्नेः।
मातुष्पदे परमे अन्ति षद्गोर्वृष्णः शोचिषः प्रयतस्य जिह्वा ॥१०॥

भा०—( अध ) और जिस प्रकार ( द्युतानः ) प्रकाशमान सूर्य ( पित्रोः सचा ) जगत् के पालक आकाश और भूमि दोनों के बीच में ( सचा ) स्थिर होकर ( पृश्नेः ) अन्तरिक्ष की ( गुह्यं ) गुहा में स्थित ( चारु ) उत्तम या व्यापक जल को ( आसा ) विक्षेपक बल से ( अमनुत ) स्वयं ग्रहण करता है और ( मातुः परमे पदे ) अन्तरिक्ष के परम दूरवर्ती स्थान में विद्यमान ( वृष्णः ) जलवर्षी ( शोचिषः ) प्रकाशमान ( प्रयतस्य ) उत्तम यत्नशील, शक्तिशाली सूर्य की ( गोः ) किरणों की ( जिह्वा ) जल ग्रहण करने की शक्ति ( अन्ति सत् ) समीप विद्यमान जल को ग्रहण कर लेती है उसी प्रकार ( द्युतानः ) प्रकाशमान तेजस्वी शिष्य ( पित्रोः सचा ) माता पिता के साथ रहकर भी ( पृश्नेः ) प्रश्न करने योग्य गुरु के ( गुह्यं चारु ) बुद्धि स्थित उत्तम ज्ञान को ( अमनुत ) जान ले, ( मातुः परमे पदे ) माता के समान उत्तम ज्ञाता के भी परम, उत्कृष्ट पद पर स्थित ( वृष्णः ) ज्ञानवर्षक (शोचिषः) तेजस्वी ( प्रयतस्य ) अति उत्तम जितेन्द्रिय गुरु के (अन्ति सत् ) समीप रहकर उसकी ( गोः ) वाणी के ( चारु गुह्यं ) उत्तम गुप्त विज्ञान का भी (जिह्वा) वाणी द्वारा ( अमनुत ) ज्ञान करले। इति द्वितीयो वर्गः॥

ऋतं वोचे नमसा पृच्छ्यमानस्तवाशसा जातवेदो यदीदम्।
त्वमस्य क्षयसि यद्ध विश्वं दिवि यदु द्रविणं यत्पृथिव्याम् ॥११॥

भा०—मैं ( नमसा ) आदरपूर्वक ( आशसा ) अति प्रशंसित रूप से ( पृच्छ्यमानः ) पूछा जाऊं तो अवश्य हे ( जातवेदः ) विद्वन्!

( यदि इदम् ) यह जो भी कुछ है सब ( तव ) तुझे ( ऋतम् वोचे ) सत्य ही बतलाऊं। अथवा हे ( जातवेदः ) परमात्मन् ! तेरे विषय में जब भी मैं आदर से प्रश्न किया जाऊं ( तव आशसा ) तेरे प्रशस्त ज्ञान से तो ( ऋतं वोचे ) सत्य वेद ज्ञान का ही उपदेश करूं। हे प्रभो ! ( यत् विश्वम् ) जो भी समस्त विश्व है, ( यद् उ ) जो कुछ ( दिवि ) आकाश में और ( यत् ) जो भी ( पृथिव्याम् ) पृथिवी में (द्रविणं) द्रविण, ऐश्वर्यादि और तेज गतिशील, सूर्यादि लोक और जल वायु आदि तत्व और ज्ञान है ( अस्य ) इसमें ( त्वम् क्षयसि ) तू ही सर्वत्र वस रहा है, तुझ से कुछ छिपा नहीं, इसलिये झूठ न बोलकर सदा सत्य ही कहूं।

किं नो अस्य द्रविणं कद्ध रत्नं वि नो वोचो जातवेदश्चिकित्वान्।
गुहाध्वनः परमं यन्नो अस्य रेकु पदं न निदाना अगन्म ॥१२॥

भा०—हे ( जातवेदः ) विद्वन् ! ऐश्वर्यवन् ! हे सर्वज्ञ परमेश्वर ! ( अस्य ) इस संसार का ( नः ) हमारे उपयोगी ( किं द्रविणं ) क्या धन वा यश है (कत् रत्नं) किस २ प्रकार का रमण करने योग्य पदार्थ है ? तू ( चिकित्वान् ) सब कुछ जानता हुआ ही ( नः विवोचः ) हमें भी विविध प्रकार से उपदेश कर। ( अस्य अध्वनः ) इस महान् मार्ग के गन्तव्य प्रभु का ( गुहा ) बुद्धि में स्थित ( परमं ) परम, सर्वोत्कृष्ट ( यत् ) जो ( पदम् ) ज्ञातव्य स्वरूप ( रेकु ) संशयास्पद सा है उसको हम (निदानाः) परस्पर की निन्दा करते हुए ( न अगन्म ) नहीं प्राप्त होते हैं। अथवा नेत्युपमार्थीयः। जो मिथ्यास्वरूप है उसकी ( निदानाः ) निन्दा करते या अपलाप करते हुए हम ( रेकु पदं न अगन्म ) सबसे अतिरिक्त सर्वातिशायि परम पद को प्राप्त हों। 'नेतिनेतीत्यात्मा'। उप० ॥

का मर्यादा वयुना कद्ध वाममच्छा गमेम रघवो न वाजम्।
कदा नो देवीरमृतस्य पत्नीः सूरो वर्णेन ततनन्नुषासः ॥ १३ ॥

भा०—( का मर्यादा ) क्या मर्यादा है ( का वयुना ) कौन २ से

करने योग्य कर्त्तव्य हैं और कौन २ से जानने योग्य ज्ञान हैं ( रघवः वाजं न ) वेगवान् अश्व जिस प्रकार संग्राम को जाते हैं और शीघ्रकर्त्ता अनालसी लोग जिस प्रकार ज्ञान विज्ञान को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार हम भी ( रघवः ) ज्ञानी होकर ( कत् ह ) कब ( वामं वाजं ) प्राप्त और सेवन करने योग्य ज्ञानैश्वर्य को ( गमेम ) प्राप्त करेंगे । ( सूरः ) सूर्य जिस प्रकार ( वर्णेन ) उत्तम प्रकाश से ( देवीः अमृतस्य पत्नीः उषासः ततनन् ) प्रकाश वाली, कान्तिमती, सन्तान की पालक पत्नियों के समान प्रभात वेलाओं को विस्तारित करता है उसी प्रकार हे विद्वन् ! आप ( सूरः ) प्रेरक होकर ( नः ) हमारे लिये ( कदा ) कब ( अमृतस्य पत्नीः ) अमृत आत्मा की पालक (देवीः) दिव्य प्रकाश से युक्त (उषासः) पापदाहक ज्योतिष्मती प्रज्ञाओं को और सत्य ज्ञान की पालक वाणियों का ( ततनन् ) हमारे प्रति प्रकट करेंगे ।

**अनिरेण वचसा फल्ग्वेन प्रतीत्येन कृधुनातृपासः ।**
**अधा ते अग्ने किमिहा वदन्त्यनायुधास आसता सचन्ताम् ॥१४॥**

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! परमेश्वर ! ( अनिरेण ) मन को सुन्दर न लगने वाले, अरुचि कर ( फल्ग्वेन ) व्यर्थ, निःसार ( प्रतीत्येन ) विरुद्ध ज्ञान वाले, वाधित, ( कृधुना ) स्वल्प ( वचसा ) वचन से ( अतृपासः ) न तृप्त होने वाले लोग ( इह ) इस लोक में (ते) तेरे ( किम् ) किस ज्ञान की ( आ वदन्ति ) चर्चा करें । वे ( अनायुधासः ) हथियार के साधनों से रहित, निहत्थों के समान ( असता ) असत् ज्ञान से (सचन्ताम्) युक्त हो जावेंगे । इसलिये हे विद्वन् ! तू उनको विस्तृत रमणीय, सारवान् , अबाधित, अनन्त वेद का उपदेश कर ।

**अस्य श्रिये समिधानस्य वृष्णो वसोरनीकं दम आ रुरोच ।**
**रुशद्वसानः सुदृशीकरूपः क्षितिर्न राया पुरुवारो अद्यौत् ।१५।३।**

भा०—( अस्य ) इस ( समिधानस्य ) अग्नि वा सूर्यवत् देदीप्य-

मान ( वृष्णः ) प्रबन्ध करने हारे वा मेघ के तुल्य सुखों के वर्षक (वसोः) प्रजा को वसाने वाले राजा की ( श्रिये ) लक्ष्मी की वृद्धि के लिये ही उसके ( दमे ) गृहवत् राष्ट्र या दमन में ( अनीकं ) वड़ा सैन्यमय तेज (आ रुरोच ) सर्वत्र प्रकाशित हो। वह ( रुशत् ) तेजस्वी होकर (वसानः) राष्ट्र में रहता हुआ ( सुदृशीकरूपः ) उत्तम दर्शनीय शरीर होकर ( राया पुरुवारः ) धनैश्वर्य से वहुतों द्वारा वरण करने योग्य, वहुत से शत्रुओं का वारक होकर ( क्षितिः न ) भूमि या राष्ट्र के समान ही गंभीर विस्तृत वा शत्रुओं का क्षयकारी होकर (अद्यौत्) प्रकाशित हो। इति तृतीयो वर्गः॥

[ ६ ]

वामदेव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५, ८, ११ विराट् त्रिष्टुप् । ७ निचृत्त्रिष्टुप् । १० त्रिष्टुप् । २, ४, ९ भुरिक् पंक्तिः । ६ स्वराट् पंक्तिः ॥

ऊर्ध्व ऊ षु णो अध्वरस्य होतरग्ने तिष्ठ देवताता यजीयान् ।
त्वं हि विश्वमभ्यसि मन्म प्र वेधसश्चित्तिरसि मनीषाम् ॥१॥

भा०—हे ( होतः ) ज्ञान और धन के देने वाले विद्वन् ! ऐश्वर्यवन् ! तू ( नः ) हमारे ( अध्वरस्य ) हिंसा रहित, अन्यों से नाश न किये जाने योग्य, अध्ययनाध्यापन और प्रजा पालन के कार्य में ( देवतातौ ) विद्वानों और विजयेच्छु, व्यवहार-निपुण लोगों के बीच ( यजीयान् ) सवसे अधिक आदरणीय, सवका स्नेही, मित्र और सत्संग योग्य होकर ( ऊर्ध्वः ) सबसे ऊपर अध्यक्ष रूप से ( तिष्ठ ) विराज। हे ( अग्ने ) अग्रणी ! विद्वन् ! ( त्वं हि ) तू ही निश्चय से ( विश्वं मन्म ) समस्त मनन करने योग्य ज्ञान और स्तम्भन करने योग्य शत्रु-बल को ( अभि असि ) अपने वश करने में समर्थ हो और ( वेधसः ) ज्ञानी और कर्म कुशल कर्त्ता की ( चित् ) भी ( मनीषाम् ) उत्तम बुद्धि को ( प्र तिरसि ) वढ़ा।

अमूरो होता न्यसादि विक्ष्वग्निर्मन्द्रो विदथेषु प्रचेताः ।
ऊर्ध्वं भानुं सवितेवाश्रेन्मेतेव धूमं स्तभायदुप द्याम् ॥ २ ॥

भा०—( विक्षु ) प्रजाओं के बीच ( अग्निः ) ज्ञानी और अग्रणी नायक तेजस्वी ( अमूरः ) मूढ़ता रहित, विद्वान्, ( होता ) ज्ञानादि का देने वाला, ( मन्द्रः ) सबको आनन्द देने वाला ( विदथेषु ) ज्ञानों और धनों को प्राप्त करने के लिये ( प्र-चेताः ) उत्तम ज्ञानवान् होकर ( नि असादि ) विराजे । वह ( सविता इव ) उत्पादक पिता वा सूर्य के समान ( ऊर्ध्वं भानुं ) सबसे उत्तर कान्ति को ( अश्रेत् ) धारण करे और ( मेता इव ) उत्तम ज्ञानवान् के तुल्य ही ( धाम् ) ज्ञान प्रकाश और तेज को तथा ( धूमम् ) अग्नि के तुल्य धूम को, शत्रुओं को कंपा देने वाले सैन्य-बल को ( स्तभायत् ) अपने वश करे ।

यता सुजूर्णी रातिनी घृताची प्रदक्षिणिद्देवतातिमुराणः ।
उदु स्वरुर्नवजा नाक्रः पश्वो अनक्ति सुधितः सुमेकः ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार ( घृताची ) तेज से युक्त उषा वा जल से युक्त रात्रि, (रातिनी) सुख देने वाली होकर (देवतातिम् उत् अनक्ति) प्रकाशमान किरणों वा सूर्य को प्रकट करती है, उसी प्रकार (यता) संयत, नियमों में सुप्रबद्ध वा संयम से रहने वाली ब्रह्मचारिणी, ( घृताची ) तेज और घृतादि स्नेहयुक्त पदार्थों को सेवने वाली, ( सुजूर्णिः ) उत्तम रीति से सब कार्य वेग से करने वाली, ( रातिनी ) बहुतों के दिये दानों वा आशिषों को प्राप्त करने वाली होकर ( प्रदक्षिणित् ) वेदि में प्रदक्षिणा करती हुई ( देवतातिम् ) अपने प्रिय कामनायोग्य पतिदेव को ( उद् अनक्ति ) उद्वाह करे, प्राप्त करे । और जिस प्रकार ( उराणः ) बहुतों को जीवन देने वाला ( स्वरुः ) अति प्रतापी सूर्य, ( नवजाः न ) नव उत्पन्न, बालक के समान ( अक्रः ) ऊपर उठता हुआ ( सुधितः ) सुखकारी और ( सुमेकः ) उत्तम रीति से प्रकाशमान होकर ( पश्वः उत् अनक्ति ) अपनी किरणों को प्रकट करता है उसी प्रकार ( उराणः ) बहुत कर्म करने में समर्थ वा बहुतों को जीविका देकर पालने में समर्थ ( स्वरुः ) आज्ञा

देने वाला वा प्रतापी पुरुष ( नवजाः अक्रः न ) नव उत्पन्न उदय होते हुए सूर्य के तुल्य (सुधितः) सुखपूर्वक पालित पोषित, सबको सुखकारी, हितकर्त्ता, (सुमेकः) उत्तम तेज से युक्त, उत्तम वीर्यवान् होकर (पश्वः) बहुत से गौ आदि पशुओं को ( उत् अनक्ति ) प्राप्त करे अर्थात् गवादि सम्पत्ति की वृद्धि करे । ( २ ) इसी प्रकार सुप्रबद्ध, वेगवती, ऐश्वर्यदानों से युक्त, तेजस्विनी सेना ( देवतातिम् प्रदक्षिणित् ) अपने स्वामी के दायें बलवती होकर रहे । और वह सबका वृत्तिदाता, तेजस्वी, नवजात, उदेता नायक सबका हितैषी तेजस्वी होकर सेनाओं को ( पश्वः न ) पशुओं को गोपालवत् चलावे और उन पर शासन करे ।

स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्ना ऊर्ध्वो अध्वर्युर्जुजुषाणो अस्थात् ।
पर्यग्निः पशुपा न होता त्रिविष्ट्येति प्रदिव उराणः ॥ ४ ॥

भा०—( स्तीर्णे ) प्रकाश से आच्छादित ( बर्हिषि ) महान् आकाश में ( अग्नौ समिधाने ) सूर्य या अग्नि के समान विस्तृत वा सुरक्षित ( बर्हिषि ) वृद्धिशील राष्ट्र वा प्रजाजन में ( अग्नौ समिधाने ) अग्रणी नेता के अति तेजस्वी होने पर ( अध्वर्युः ) अपनी अहिंसन वा अपीड़न, अविनाश की इच्छा करने हारा लोक ( जुजुषाणः ) स्वामी की प्रेमपूर्वक सेवा करता हुआ ( ऊर्ध्वः ) उन्नत रूप में आदर से ( अस्थात् ) स्थित रहे । और ( अग्निः ) तेजस्वी अग्रणी नायक भी ( पशुपाः न ) पशुओं के पालक गोपाल के समान उनका सब प्रकार से रक्षक और, ( होता ) उनको ऐश्वर्य देने वाला होकर ( उराणः ) बहुत बड़े कार्य वा उनके ऐश्वर्य की वृद्धि करता हुआ ( प्रदिवः ) सदा से वा उत्तम ज्ञानों, प्रकाशों वा काम्य पदार्थों को ( त्रिविष्टि ) आकाश में सूर्य के समान ( त्रिविष्टि ) उत्तम, मध्यम, अधम तीनों प्रजाओं पर ( परि एति ) वश करे ।

परि त्मना मितद्रुरेति होताग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ।
द्रवन्त्यस्य वाजिनो न शोका भयन्ते विश्वा भुवना यदभ्राट् ॥५॥४॥

भा०—जिस प्रकार ( अग्निः ) अग्नि वा सूर्य ( ऋतावा ) तेजस्वी ( त्मना मितद्रुः ) स्वयं अपने से परिमित परिज्ञात गति वाला होता है, और उसके ( शोकाः द्रवन्ति ) प्रकाश, किरणें वेग से दूर तक जाती हैं ( यत् अभ्राट् विश्वा भुवना भयन्ते ) जब चमकता है, भड़कता है तब सब लोक गति करते और अग्नि से सब प्राणी भय करते हैं उसी प्रकार (होता) सबका दाता और सबको अपने वश करने वाला (अग्निः) तेजस्वी अग्रणी नायक पुरुष ( मन्द्रः ) सबको हर्षित करने वाला ( मधुवचाः ) मधुर वाणी बोलने वाला, ( ऋतावा ) सत्य ज्ञान और न्याय तथा धनैश्वर्य से युक्त ( मितद्रुः ) परिमित गति से जाने वाला होकर ( त्मना ) अपने आप अपने सामर्थ्य से ( परि एति ) सब तरफ़ गमन करे। (अस्य) उसके वाजिनः न ) वेगवान अश्वों, वलवान् पुरुषों के समान ही (शोकाः) प्रकाश, तेज भी ( द्रवन्ति ) दूर तक जावें। ( यत्-अभ्राट् )जब वह तेज से चमकता है तब ( विश्वा भुवना ) समस्त भुवन, सब लोग ( भयन्ते ) भयभीत हों। ( २ ) परमेश्वर परिमित सब पदार्थों में व्यापक होने से 'मितद्रु' है। दाता होने से 'होता', ज्ञान प्रकाशस्वरूप होने से, पाप दग्ध करने से 'अग्नि', आनन्द घन होने से 'मन्द्र' है। वेद उसकी मधुर वाणी है, वह सत्य ज्ञानमय है। उसके तेजों के तुल्य वेगवान् सूर्यादि भाग रहे हैं, वह कालाग्नि रूप में जब चमकता है तो सब प्राण, लोक लोकान्तर भय से कांपते हैं। इति चतुर्थो वर्गः ॥

भद्रा ते॑ अग्ने स्वनीक संदृग्घोरस्य॑ स॒तो विषु॑णस्य॒ चारुः॑ ।
न यत्ते॑ शो॒चिस्तम॑सा॒ वर॑न्त॒ न ध्व॒स्मान॑स्त॒न्वी॒३॒॑ रेप॒ आ धुः॑ ॥६॥

भा०—हे ( अग्ने ) तेजस्विन् ! अग्रणी ! राजन् ! विद्वन् ! हे ( स्वनीक ) उत्तम सेना के स्वामिन् ! ( घोरस्य ) घोर, अति भयानक ( सतः ) और साथ ही अति सज्जन ( विषुणस्य ) राष्ट्र में व्यापक सामर्थ्यवान् ( ते ) आपकी ( चारुः ) उत्तम ( सं-दृक् ) समान, निष्पक्षपात

दृष्टि ( भद्रा ) सबका कल्याण करने वाली हो। ( यत् ) जिसके कारण ( ध्वस्मानः ) विध्वंस करने वाले प्रजा-नाशक लोग ( ते शोचिः ) तेरे तेज को ( तमसा ) अन्धकार के तुल्य प्रजोत्पीड़न, अन्याय अत्याचारादि से ( न वरन्त ) नहीं ढक सकते और वे ( तन्वि ) किसी के या तेरे शरीर पर भी ( रेपः ) अपना हत्यादि पापमय प्रयोग ( न आदधुः ) नहीं कर सकते।

**न यस्य॒ सातु॒र्जनि॑तो॒रवा॑रि॒ न मा॒तरा॑पि॒तरा॒ नू चि॑दि॒ष्टौ।**
**अधा॑ मि॒त्रो न सुधि॑तः पाव॒कोऽ३॒॑ग्निर्दी॑दाय॒ मानु॑षीषु वि॒क्षु ॥७॥**

भा०—( यस्य ) जिस ( सातुः ) दानशील (जनितोः) सर्व सुखोत्पादक पिता के तुल्य राजा वा गुरु को (न अवारि) किसी प्रकार भी वारण न किया जा सके, अथवा जिस दानशील के आगे ( जनितोः न अवारि ) उत्पादक माता पिता को भी उतना न स्वीकार किये जा सकें और (यस्य) जिस के आगे (इष्टौ) अति प्रिय (मातापितरौ) माता पिता भी ( चितन् ) आदर योग्य ( न अवारि ) न स्वीकार किया जा सके, ( अध ) और वह ( मित्रः ) प्राणों के समान अति प्रिय, ( पावकः ) अग्नि के तुल्य पवित्र करने वाला, ( सुधितः ) उत्तम रीति से स्थापित व हितकारी, ( अग्निः ) अग्रणी नायक विद्वान् आचार्य और भीतरी आत्मा ( मानुषीषु ) मननशील मनुष्य ( विक्षु ) प्रजाओं में ( दीदाय ) प्रकाशित होता है।

**द्विर्यं पञ्च॒ जीज॑नन्त्सं॒वसा॑नाः॒ स्वसा॑रो अ॒ग्निं मानु॑षीषु वि॒क्षु।**
**उ॒ष॒र्बुध॑मथ॒र्यो॒३॒॑ न दन्तं॑ शु॒क्रं स्वासं॑ पर॒शुं न ति॒ग्मम् ॥ ८ ॥**

भा०—( अथर्यः दन्तं शुक्रं स्वासं न ) जिस प्रकार स्त्रियें अपने दाँतों को स्वच्छ और अपने मुख को भी स्वच्छ रखती हैं और जिस प्रकार ( स्वसारः अग्नि जीजनन् ) बहनें अग्नि को जलाती हैं उसी प्रकार ( यं ) जिस पुरुष को ( पञ्च द्विः ) दशों दिशाओं की ( संवासानाः ) एक साथ निवास करती हुई एक स्थान पर एकत्र स्थित होकर ( स्वसारः ) स्वयं

अपने शासन में बढ़ने वाली प्रजाएं ( मानुषीषु विक्षु ) मनुष्य प्रजाओं में ( अग्निं ) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष को अग्रणी रूप से ( जीजनन् ) उत्पन्न करती हैं अथवा ( पञ्च स्वसारः यं अग्निं द्विः जीजनन् ) पांचों जन, ब्राह्मणादि प्रजाएं जिस अग्रणी नायक को दो वार अपना नायक बनालें तो वे (अथर्यः) स्वयं कभी पीड़ित न होकर ( उषर्बुधम् ) प्रातःकाल जागने हारे ( दन्तं ) प्रजा के भोक्ता, (शुक्रं) तेजस्वी शुद्धाचारी (स्वासं) उत्तम सौम्य मुख वाले ( परशुं न तिग्मम् ) फरसे के समान तीक्ष्ण शत्रुनाशक पुरुष को ही ( अग्निं जीजनन् ) अपना अग्रणी बनावें।

तव॒ त्ये अ॑ग्ने ह॒रितो॑ घृत॒स्ना रोहि॑तास ऋ॒ज्वञ्च॒: स्वञ्च॑: ।
अ॒रु॒षासो॒ वृष॑ण ऋजुमु॒ष्का आ दे॒वता॑तिमह्वन्त द॒स्माः ॥ ९ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) नायक ! तेजस्विन् ! राजन् ! ( तव ) तेरे (त्ये) वे नाना ( हरितः ) अश्वों के समान शीघ्रगामी मनुष्य ( घृतस्नाः ) जल से सदा स्नान करने वाले, ( रोहितासः ) रक्त वर्ण, तेजस्वी, ( ऋज्वञ्चः ) सरल, धार्मिक मार्ग से चलने वाले ( स्वञ्चः ) सुष्ठु उत्तम पूजा के योग्य, ( अरुषासः ) रोष, क्रोध रहित, सौम्य स्वभाव वाले ( वृषणः ) बलवान्, उत्तम प्रबन्धकर्त्ता, ( ऋजुमुष्काः न ) ऋजु सरल धार्मिक नीति से स्वयं पुष्ट होने वाले, ( दस्माः ) प्रजा के दुःखों का नाश करने वाले पुरुष ( देवताति ) उत्तम विद्वान् तेजस्वी पुरुष को ( अह्वन्त ) बुलावें, अपने दाता राजा की प्रतिस्पर्द्धा करें, गुणों में उसके समान हों।

ये ह॒ त्ये ते॒ सह॑माना अ॒यास॑स्त्वे॒षासो॑ अग्ने अ॒र्चय॒श्चर॑न्ति ।
श्ये॒नासो॒ न दु॑वस॒नासो॒ अर्थं॑ तुविष्व॒णसो॒ मारु॑तं॒ न शर्धः॑ ॥१०॥

भा०— हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक ! हे विद्वन् ! ( ये ह ) जो ( ते ) तेरे ( सहमानाः ) शत्रुओं को पराजित करने वाले, सहनशील, तितिक्षु, ( अयासः ) वेग से जाने वाले, ज्ञाननिष्ठ, ( त्वेषासः ) कान्तिमान्, तेजस्वी, ( अर्चयः ) अग्नि के प्रकाशों वा ज्वालाओं के तुल्य एवं

अर्चना, सत्कार करने योग्य ( श्येनासः ) श्येन या बाजों के समान वेग से आक्रमण करने वाले वीरों एवं ज्ञान प्राप्त करने हारे, सदाचारी शिष्यों के समान ( दुवसनासः ) परिचर्या करने वाले उत्तम सेवक, ( तुविष्वणासः ) नाना प्रकार के घोष करने वाले, नाना स्वरों से वेदपाठी, वीरगण और विद्वान् पुरुष ( मारुतं शर्धः न ) वायु के तुल्य प्रबल वीरों के सैन्य बल, प्राणों के ब्रह्मचर्य बल और ( अर्थं ) द्रव्य एवं वेदार्थ और प्राप्य ब्रह्म तत्व को ( चरन्ति ) प्राप्त हों।

**अकारि ब्रह्म समिधान तुभ्यं शंसात्युक्थं यजते व्यू धाः।**
**होतारमग्निं मनुषो नि षेदुर्नमस्यन्त उशिजः शंसमायोः ॥११॥५॥**

भा०—हे ( समिधान ) अग्नि के समान देदीप्यमान! तेजस्विन् नायक! हे विद्वन्! ( तुभ्यम् ) तेरे लिये ( ब्रह्म ) यह महान् ऐश्वर्य और बड़ा भारी वेद ज्ञान ( अकारि ) किया गया है। तेरे ही लिये विद्वान् जन ( उक्थं शंसति ) उत्तम वचन कहे। तू ( यजते ) सत्संग करने वाले के लिये ( उक्थं ) उत्तम ( वि धाः उ ) विधान कर। ( मनुषः ) मननशील पुरुष ( होतारम् ) ज्ञान और ऐश्वर्य के दानशील ( अग्निं ) अग्रणी वा विद्वान् को और ( मायोः ) मनुष्यों को वा जीवन के हित का ( शंसम् ) उपदेश करने वाले को ( नमस्यन्तः ) आदरपूर्वक नमस्कार करते हुए (उशिजः) उसको चाहते हुए (निषेदुः) उसके समीप विराजें। इति पञ्चमो वर्गः ॥

## [ ७ ]

वामदेव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप्। ७, १०, ११ त्रिष्टुप्। ८, ९ निचृत् त्रिष्टुप्। २ स्वराडुष्णिक्। ३ निचृदनुष्टुप् ४, ६ अनुष्टुप्। ५ विराडनुष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

**अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः।**
**यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥ १ ॥**

भा०—जो यह ( प्रथमः ) सब से श्रेष्ठ, सब से आदि में वर्तमान, ( होता ) सब सुखों और ऐश्वर्यों का देने वाला, ( यजिष्ठः ) सबसे अधिक पूज्य, एवं सबसे अधिक मित्र, सत्संग योग्य ( अध्वरेषु ) समस्त यज्ञों में ( ईड्यः ) स्तुति करने योग्य है। ( अयम् ) उसे ( धातृभिः ) यज्ञादि कर्मकर्त्ता और ध्यान धारण के करने हारे पुरुष ( इह ) यहां, इस जगत् में ( धायि ) सभी हृदय में धारण करते हैं। और ( यम् ) जिसको ( अप्नवानः ) उत्तम कर्म करने हारे वा उत्तम रूप, गुण, पुत्र पौत्रादि युक्त ( भृगवः ) तेजस्वी, पापनाशक पुरुष ( चित्रं ) अद्भुत ( विभ्वं ) विभु, महान् व्यापक परमेश्वर को ( विशेविशे ) प्रत्येक प्रजा के हित के लिये ( वनेषु ) जंगलों में वा सभी भोग्य ऐश्वर्यों में या तेजस्वी पदार्थों में ( विरुरुचुः ) विद्युत् अग्नि के समान प्रकट पाते और उसी के तेज का ध्यान करते और स्वयं भी ( यम् अप्नवानः विरुरुचुः ) जिसको प्राप्त होते हुए विविध प्रकार से शोभित होते हैं।

अग्ने॒ क॒दा त॑ आनु॒षग्भुव॑द्दे॒वस्य॒ चेत॑नम्।
अधा॒ हि त्वा॑ जगृभ्रि॒रे मर्ता॑सो वि॒क्ष्वीड्य॑म् ॥ २ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) तेजःस्वरूप यह मनुष्य ( कदा ) कब ( देवस्य ते ) प्रकाशस्वरूप तेरे ( आनुषक् ) अनुकूल ( भुवत् ) होता है। ( अध ) और ( त्वा हि ) तुझे निश्चय रूप से ( मर्त्तासः ) मरणधर्मा मनुष्य लोग कब ( विक्षु ) सब प्राणि रूप प्रजाओं के बीच में ( ईड्यम् ) स्तुति करने योग्य, ( चेतनम् ) चेतन, सबको ज्ञानवान् करने वाले सबको जीवनदाता रूप से ( कदा जगृभ्रिरे ) कब ग्रहण करेंगे कब जान पावेंगे। अर्थात् वे समस्त प्राणी तेरे ही जीवनप्रद सामर्थ्य को जानें।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥
एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ॥ गीता अ० ७ ॥ ६ ॥

ऋतावानं विचेतसं पश्यन्तो द्यामिव स्तृभिः ।
विश्वेषामध्वराणां हस्कर्तारं दमेदमे ॥ ३ ॥

भा०—उस परमेश्वर को विद्वान् लोग ( ऋतावानं ) सत्य ज्ञान और मूलकारण प्रकृति रूप 'ऋत' या अव्यक्त तत्व के स्वामी ( विचेतसं ) विविध ज्ञानों से युक्त ( स्तृभिः द्यामिव ) नक्षत्रों से युक्त आकाश के समान, नाना आच्छादक वा व्यापक वा रश्मियों से युक्त सूर्य के समान व्यापक गुणों वा नाना सामर्थ्यों से युक्त ( पश्यन्तः ) देखते हुए ( विश्वेषाम् ) समस्त ( अध्वराणाम् ) अविनाशी जीवों और यज्ञों के ( दमे दमे ) गृह २ में दीपक वा अग्नि के समान प्रत्येक लोक में प्रकाशक रूप से ( जगृभ्रिरे ) ज्ञान करते हैं ।

आशुं दूतं विवस्वतो विश्वा यश्चर्षणीरभि ।
आ जभ्रुः केतुमायवो भृगवाणं विशेविशे ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार ( विवस्वतः ) सूर्य से लोग ( आशुं ) शीघ्रगामी, ( दूतं ) संतापजनक, ( भृगवाणम् ) भून देने वाले, ( केतुम् ) प्रकाश को ( आजभ्रुः ) प्राप्त करते हैं ( यः ) जो (विश्वा चर्षणीः अभि) सब देखने वालों को प्राप्त होता है और ( विशेविशे ) प्रत्येक प्रजा के सुख के लिये होता है उसी प्रकार ( आयवः ) विद्वान् ज्ञानी पुरुष ( यः विश्वाः चर्षणीः अभि ) समस्त ज्ञानद्रष्टा पुरुषों में व्यापक है ऐसे ( विवस्वतः ) सूर्यवत् तेजस्वी परमेश्वर और विद्वान् से ( आशुं ) व्यापक ( दूतं ) पापी लोगों को संतप्त करने वाले, ( भृगवाणं ) पापों को भून देने वाले ( केतुं ) ज्ञान प्रकाश को ( आजभ्रुः ) प्राप्त करें जो ( विशेविशे ) प्रत्येक प्रजाजन के लिये हितकारी हो ।

तमीं होतारमानुषक् चिकित्वांसं नि षेदिरे ।
रण्वं पावकशोचिषं यजिष्ठं सप्त धामभिः ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—विद्वान् लोग ( तम् ईम् होतारं ) उस दानशील ( चिकित्वांसम् ) ज्ञानवान्, रोग दुःख पीड़ा आदि दूर करने में समर्थ, ( एवं ) रमणीयस्वरूप, ( पावकशोचिषं ) अग्नि के समान तेजस्वी, पवित्रकारक तेज से युक्त ( यजिष्ठं ) अतिदानी, सत्संग योग्य, सर्वमित्र, पुरुष को ( सप्तधामभिः ) सातों प्रकार के धारण सामर्थ्यों वा प्राणों सहित ( निषेदिरे ) प्रतिष्ठित करें। उसको गुरु वा स्वामी रूप से प्राप्त कर प्रभु वा विद्वान् स्वयं भी ( आनुषक् ) उसके अनुकूल होकर उसके समीप स्थिर हो कर विराजें। इति षष्ठो वर्गः ॥

तं शश्वतीषु मातृषु वन आ वीतमश्रितम्।
चित्रं सन्तं गुहा हितं सुवेदं कूचिदर्थिनम् ॥ ६ ॥

भा०—( शश्वतीषु मातृषु ) निरन्तर बहते जलों में वा नित्य आकाशादि पदार्थों में और ( वने ) प्रकाश की किरणों में वा बन, काष्ठ में ( आवीतं ) सर्वत्र व्याप्त वा प्रकाशित, ( अश्रितम् ) अन्यों द्वारा असेवित अग्नि या विद्युत् को जिस प्रकार प्राप्त करते हैं उसी प्रकार विद्वान् लोग ( शश्वतीषु मातृषु ) निरन्तर स्थायी माताओं में बालक के तुल्य नित्य जगत् निर्माण करने वाली व्यापक शक्तियों या प्रकृति के परमाणुओं में और ( वने ) वन में अग्नि के तुल्य वन अर्थात् तेज या सेव्य इस दृश्य जड़ जगत् में ( आ वीतम् ) सर्वत्र व्याप्त, एवं कान्तिमान्, गतिमान् ( अश्रितम् ) और स्वयं अन्यों द्वारा न भोगने योग्य, ( चित्रं ) अद्भुत, एवं सर्वत्र चेतना देने वाले, चिन्मय, ( सन्तं ) सत्स्वरूप ( गुहाहितम् ) अन्तरिक्ष में सूर्य या वायु के समान बुद्धि या गूढ़ भाव में स्थित, ( सुवेदम् ) उत्तम रीति से, एवं सुखपूर्वक और अति आदर पूजा या भक्ति द्वारा जानने, मनन करने और प्राप्त करने योग्य ( कूचिद् अर्थिनम् ) कहीं भी अभ्यर्थना करने योग्य परमेश्वर की ( निषेदिरे ) उपासना करते हैं। ( २ ) प्रजागण स्थायी प्रजाओं और ऐश्वर्य में सुरक्षित उत्तम ज्ञानी नायक को प्राप्त करें।

स सस्य यद्वियुता सस्मिन्नूधन्नृतस्य धामन्रणयन्त देवाः ।
महाँ अग्निर्नमसा रातहव्यो वेरध्वराय सदमिदृतावा ॥ ७ ॥

भा०—( यत् ) जिसको ( देवाः ) विद्वान् लोग (ससस्य वियुता) स्वप्न या निद्रा के टूट जाने पर ( सस्मिन् ऊधन् ) और समस्त रात्रि के बीत जाने पर ( ऋतस्य धामन् ) सत्य ज्ञान के धारण करने वाले तेज के स्वरूप में ( रणयन्त ) रमण करते और उपदेश करते हैं । वह ( महान् अग्निः ) महान्, ज्ञानवान् तेजस्वी ( रात-हव्यः ) समस्त अन्नादि पदार्थों का देनेवाला, ( ऋतावा ) सत्य ज्ञान वा मूल प्रकृति का स्वामी, ( सदम् इत् ) सदा ही, ( नमसा ) अपने वश करने वाले बल से, शस्त्र-बल से राष्ट्र को राजा के समान ( अध्वराय ) समस्त संसार कोनाश न होने देने और उसके पालन के लिये ( वेः ) व्यापता है ।

वेरध्वरस्य दूत्यानि विद्वानुभे अन्ता रोदसी सञ्चिकित्वान् ।
दूत ईयसे प्रदिव उराणो विदुष्टरो दिव आरोधनानि ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार ( वेः अध्वरस्य ) तेजःप्रकाश से युक्त यज्ञ के ( दूत्यानि विद्वान् ) ताप से होने योग्य कर्मों को प्राप्त करता हुआ (दूतः) स्वयं अति तप्त अग्नि ( उराणः ) स्वल्प पदार्थ को भी बहुत व्यापक करता हुआ ( दिवः आरोधनानि विदुस्तरः ) आकाश के ऊपर २ के स्थानों तक में पहुंचा देता और ( उभे रोदसी अन्ता संचिकित्वान् ) आकाश और भूमि दोनों के मध्य के रोगों को भी भली प्रकार दूर करने वाला होता है । उसी प्रकार विद्वान् राजा (वेः) व्यापक (अध्वरस्य) न विनाश होने योग्य इस राष्ट्र के ( दूत्यानि ) दूतों द्वारा करने योग्य कार्यों को ( विद्वान् ) जानता हुआ और ( उभे रोदसी अन्तः ) मित्र और अरि दोनों पक्षों के बीच ( सं चिकित्वान् ) भली प्रकार विवेक करता हुआ ( प्रदिवः ) सदा ही ( उराणः ) बहुत बड़े कार्य करता हुआ ( विदुस्तरः ) अति अधिक ज्ञानवान् होकर ( दिवः आरोधनानि ) भूमि के वश करने योग्य स्थानों

च कार्यों को ( दूतः ) शत्रुसंतापक होकर ( ईयसे ) प्राप्त करे। ( २ ) परमेश्वर के पक्ष में—वह इस व्यापक संसार के ( दूत्यानि ) तापयुक्त अग्नि विद्युत् आदि के समस्त कर्मों को जानता हुआ ( उभे रोदसी अन्तः ) जड़ चेतन दोनों के बीच स्वयं सम्यग् ज्ञानवान्, ( दूतः ) सर्वोपास्य, दुष्टों का संतापक, ( प्रदिवः ) अति पुरातन, नित्य, महान् विश्वकर्मा, परम ज्ञानी होकर ( दिवः आरोधनानि ) ज्ञान प्रकाश के समस्त लोकों को व्यापता है।

कृष्णं त एम रुशतः पुरो भाश्चरिष्ण्व१र्चिर्वपुषामिदेकम्।
यदप्रवीता दधते ह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदु दूतः ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार ( रुशतः ) देदीप्यमान अग्नि या विद्युत् का ( एम ) मार्ग ( कृष्णं ) कोयले के रूप में काला वा आकर्षक होता है, ( पुरः भाः ) आगे दीप्त होता है ( वपुषाम् ) देहयुक्त रूपवान् पदार्थों में उसका ( एकम् अर्चिः ) एक विशेष तेज होता है। उसको ( अप्रवीता ) विना रगड़ी अरणि या दण्डी, गर्भ में गुप्त रूप से धारण करती है। ( जातः ) वह प्रकट होकर ( दूतः ) तापयुक्त हो जाता है उसी प्रकार हे राजन्! ( रुशतः ) देदीप्यमान, तेजस्वी ( ते ) तेरा ( कृष्णं ) शत्रुओं को काटने वाला वा प्रजाओं के चित्तों को आकर्षण करने वाला, ( एम ) मार्ग या प्रयाण हो, ( पुरः ) आगे ( भाः ) कान्ति ( वपुषाम् ) देहधारी जवानों के बीच ( इदम् ) यह ( एकम् ) अद्वितीय ( चरिष्णु ) चलता फिरता ( अर्चिः ) पूज्य स्वरूप हो। ( यत् ) जिस तुझको ( अप्रवीता ) अन्यों से अभुक्त प्रजा ( गर्भं ह ) गर्भ को माता के समान ( गर्भं ) स्वीकारने योग्य वा प्रजा के ऐश्वर्यों को ग्रहण करने वाले तुझको ( दधते ) धारण करती है और तू ( जातः ) प्रकट होकर ( सद्यः ) शीघ्र ही ( दूतः भवसि इत् उ ) सद्योजात बालक के समान पीड़ा जनक, एवं शत्रुओं को संतापजनक होता है। ( २ ) परमेश्वर ( रुशत् ) दीप्तिमय

है उसका ( एम ) ज्ञानमय रूप ( कृष्णं ) पाप काटने और चित्त हरने वाला है वह सब रूपों में अद्वितीय, अर्चनीय ज्योति है। अभुक्ता प्रकृति उसके तेज को अपने में धारती है, वह प्रकट होकर सर्व बन्धनों का जलाने हारा होता है।

**स॒द्यो जा॒तस्य॒ ददृ॑शा॒नमोजो॒ यद॑स्य॒ वातो॑ अनु॒वाति॑ शो॒चिः।**
**वृ॒णक्ति॑ ति॒ग्मामत॒सेषु॑ जि॒ह्वां स्थि॒रा चि॒दन्ना॑ दयते॒ वि जम्भैः॑ १०**

भा०—जिस प्रकार ( अस्य शोचिः ) इस अग्नि के लपट के अनुकूल ( वातः अनुवाति ) वायु चलता है, और ( सद्यः जातस्य ओजः ददृशानं भवति ) उत्पन्न होते ही उसका तेज दिखाई देता है वह ( अतसेषु तिग्मां जिह्वां वृणक्ति ) काष्ठों के बीच तीक्ष्ण लपट को पहुंचाता है और ( अन्ना चित् जम्भैः स्थिरा वि दयते ) दांतों से अन्न के समान बड़े वृक्षों को भी विनष्ट करती है उसी प्रकार (अस्य) इस तेजस्वी राजा की (शोचिः) तेज को ( वातः ) वायु के समान बलवान् ( यत् ) जब वीर जन ( अनुवाति ) अनुगमन करता है और ( सद्यः जातस्य ) तुरन्त राजा रूप से प्रकट होते ही उसका ( ओजः ) बल पराक्रम ( ददृशानम् ) सबको दीखने लगता है। वह ( अतसेषु ) वेग से जाने वाले भृत्यों वा सैनिकों के बीच में ( तिग्मां ) तीक्ष्ण ( जिह्वां ) वाणी को ( वृणक्ति ) प्रदान करता है, ( जम्भैः अन्ना चित् ) दाढ़ों से अन्नों के समान, ( जम्भैः ) अपने हिंसाकारी शस्त्रास्त्र साधनों से ( स्थिरा ) स्थिर शत्रुओं को भी ( अन्न चित् ) भोज्य अन्नों के समान ( वि दयते ) विविध प्रकारों से खण्डित करता है। ( २ ) विद्युत् के पक्ष में—उसकी चमक के पीछे वायु वहता, उसकी चमक तुरन्त दीखती है, वह ( अतसेषु ) गतिमान् मेघों या वायुओं में अपनी तीखी जीभ फेंकती है, स्थिर, दृढ़ पर्वतों को भी तोड़ डालती है।

**तृ॒षु यदन्ना॑ तृ॒षुणा॑ व॒वक्ष॑ तृ॒षुं दू॒तं कृ॑णुते य॒ह्वो अ॒ग्निः।**
**वात॑स्य मे॒ळिं स॑चते नि॒जूर्व॑न्ना॒शुं न वा॑जयते हि॒न्वे अर्वा॑ ।११।७।**

भा०—जिस प्रकार ( अग्निः ) विद्युत् ( तृपुणा ) अपने तीव्र वेग से (अन्ना तृपु ववक्षे) अन्न आदि भोग्य पदार्थों को शीघ्र ढो ले जाता है और अग्नि और तीव्र ताप से चरु आदि को छिन्न भिन्न कर शीघ्र ही दूर २ तक पहुंचा देता है और ( दूतं कृणुते ) ताप उत्पन्न करता, ( वातस्य मेळिं सचते ) वायु के साथ संगति प्राप्त करता है, ( अर्वा आशुं न वाजयते ) अश्व के समान वेगवान् होकर वेग से जाने वाले रथ को गति देता है। उसी प्रकार ( अग्निः ) अग्रणी नायक पुरुष ( यत् ) जब ( तृपुणा ) अपने शीघ्रगामी साधनों से ( अन्ना ) राष्ट्र के अन्न आदि प्रजा के उपभोग योग्य पदार्थों को (तृपु) शीघ्र २ (ववक्ष) एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुंचाने का प्रबन्ध करे। वह ( यह्वः ) महान् होकर ( तृपुं दूतं कृणुते ) वेग से जाने वाला दूत बनावे। ( वातस्य ) वायुवत् शत्रु जन को समूल उखाड़ फेंकने वाले सैन्यबल के ( मेळिं ) संगति को ( सचते ) प्राप्त करे और ( नि जूर्वन् ) वेग से जाता हुआ ( अर्वा आशुं न ) रथ को अश्व के समान ( आशुं वाजयते ) वेगवान् सैन्य को संग्राम में लगावे। इति सप्तमो वर्गः ॥

## [ ८ ]

वामदेव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५, ६ निचृद्गायत्री । २, ३, ७ गायत्री । ८ भुरिग्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम् ।
यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥ १ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! ( वः ) आप लोगों के बीच ( विश्ववेदसं ) सब में विद्यमान ( हव्यवाहम् ) प्राप्य पदार्थों को प्राप्त करने और उन तक पहुंचाने में समर्थ ( यजिष्ठं ) संग कराने वाले ( दूतं ) तापजनक वा

दूत के समान दूर संदेश पहुंचाने वाले (अमर्त्यम्) अविनाशी अग्नि का (गिरा) वाणी द्वारा उपदेश कर और (ऋञ्जसे) हे विद्वान् तू उसका भली प्रकार प्रयोग कर। इसी प्रकार आप लोग अपने बीच में (विश्व-वेदसं) सब धनों वा ज्ञानों के स्वामी, हव्य अन्नादि ग्रहण करने वाले उत्तम संदेश लाने वाले मनुष्यों में असाधारण दानशील, सत्संग वा मैत्री भाव से युक्त पुरुष को (गिरा ऋञ्जसे) वाणी द्वारा सत्कार करो। (३) सर्वत्र, सर्वव्यापक, उपास्य, ज्ञानप्रद, अविनाशी, पूज्यतम प्रभु की वाणी द्वारा स्तुति करो।

स हि वेदा वसुधितिं महाँ आरोधनं दिवः।
स देवाँ एह वक्षति॥ २॥

भा०—(सः हि) वही (महान्) गुणों में महान् है, वह (वसु-धितिं वेद) ऐश्वर्य का धारण करना और कराना जानता है, वह (दिवः) ज्ञान और प्रकाश का (आरोधनं) सञ्चय और वृद्धि करना जाने। (सः) वह (देवान्) किरणों के समान (देवान्) नाना उत्तम सुखप्रद गुणों, पदार्थों और विद्वानों को (इह) इस जगत् में (आ वक्षति) धारण करे।

स वेद देव आनमं देवाँ ऋतायते दमे।
दाति प्रियाणि चिद्वसु॥ ३॥

भा०—(सः) वह (देवः) दानशील, प्रकाशक, विद्वान् वा विद्यादि की कामनाशील (देवान्) पृथिव्यादि पदार्थों को (आनमं) अपने वश करना (वेद) जाने और वह (देवान् आनमं वेद) ज्ञानदाता विद्वानों को सत्कार नमस्कार करना जाने। वह (ऋतायते) सत्य ज्ञान धन आदि की इच्छा करने वाले पुरुष के (दमे) घर में (प्रियाणि चित्) नाना प्रिय वचन वा पदार्थ और (वसु) ऐश्वर्य (दाति) प्रदान करे।

स होता सेदु दूत्यं चिकित्वाँ अन्तरीयते।
विद्वाँ आरोधनं दिवः ॥ ४ ॥

भा०—( सः ) वह अग्नि के तुल्य ( होता ) सबको अपने में ले लेने वाला भोक्ता हो, ( सः इत् उ ) वह नायक ही विद्वान् ( अन्तः ) भीतर राष्ट्र आदि में ( दूत्यं ) दूत के योग्य कर्म को ( चिकित्वान् ) जानता हुआ और ( दिवः ) प्रकाश ज्ञान और भूमि के ( अरोधनम् ) वश करने, सञ्चय और वृद्धि करना ( विद्वान् ) जानता हुआ ( इयते ) प्राप्त हो। ( २ ) प्रभु परमेश्वर सर्वदाता होने से 'होता' है वह ज्ञानी, ज्ञानप्रकाश का निरोधक होकर अन्तःकरण में ज्ञानप्रद होकर व्यापता है।

ते स्याम ये अग्नये ददाशुर्हव्यदातिभिः।
य ईं पुष्यन्त इन्धते ॥ ५ ॥

भा०—( ये ) जो ( हव्यदातिभिः ) अन्नादि देने योग्य दानों के द्वारा ( अग्नये ) ज्ञानी विद्वान् पुरुष को ( ददाशुः ) दान देते हैं और ( ये ) जो ( ईम् ) उसको ( पुष्यन्तः ) पुष्ट करते हुए ( इन्धते ) और अधिक प्रदीप्त करते, अधिक विद्यादान करने में समर्थ करते हैं हम लोग ( ते स्याम ) वे ही अर्थात् उसी प्रकार के धनी और ज्ञानी हों।

ते राया ते सुवीर्यैः ससवांसो वि शृण्विरे।
ये अग्ना दधिरे दुवः ॥ ६ ॥

भा०—( ये ) जो ( अग्ना ) अग्नि वा विद्युत् में ( दुवः ) नाना परिचर्या, प्रयोग ( दधिरे ) साध लेते हैं ( ते राया ) वे धन से युक्त होते हैं और ( ते ) वे ( सुवीर्यैः ) उत्तम बल वीर्यों से युक्त होकर ( ससवांसः ) सुख से शयन करते हुए वा नाना ऐश्वर्य भोगते हुए ( विशृण्विरे ) विविध ज्ञानों का श्रवण करते हैं। ( २ ) ( ये अग्नौ दधिरे दुवः ) जो विद्यार्थी वा भृत्यादि ज्ञानी आचार्य और नायक के

अधीन रहकर उसकी सेवा शुश्रूषा करते हैं ( ते ) वे ( राया ) धन और ( ते ) वे ( सुवीर्यैः ) उत्तम बलवीर्यों से सम्पन्न होकर (ससवांसः) सुख से निद्रा लेते वा सुख सेवन करते और वे ( विशृण्विरे ) विविध ज्ञानों का श्रवण करते हैं वा विविध प्रकारों से प्रख्यात होते हैं ।

अस्मे रायो दिवेदिवे सं चरन्तु पुरुस्पृहः ।
अस्मे वाजास ईरताम् ॥ ७ ॥

भा०—( दिवेदिवे ) दिनों दिन ( अस्मे ) हमें ( पुरुस्पृहः ) बहुतों से अभिलाषा करने योग्य ( रायः ) नाना ऐश्वर्य ( सं चरन्तु ) अच्छी प्रकार प्राप्त हों । और (अस्मे) हमें ( वाजासः ) नाना बल और विज्ञान ( ईरताम् ) प्राप्त हों ।

स विप्रश्चर्षणीनां शवसा मानुषाणाम् ।
अति क्षिप्रेव विध्यति ॥ ८ ॥ ८ ॥

भा०—( सः ) वह ( विप्रः ) विद्वान् ( चर्षणीनाम् ) ज्ञान, ऐश्वर्य से प्रकाशित करने वाले और ( मानुषाणाम् ) मननशील मनुष्यों के दुःखों को (शवसा) अपने बल से (क्षिप्रा इव) वेग से जाने वाले बाणों के तुल्य (अति विध्यतु) प्रहार करे और उनको दूर करे । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[ ९ ]

वामदेव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, गायत्री । २, ६ विराड्गायत्री । ५ त्रिपादगायत्री । ७, ८ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने मृळ महाँ असि य ईमा देवयुं जनम् ।
इयेथ बर्हिरासदम् ॥ १ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! हे राजन् ! ( ई ) इस ( देवयुं ) उत्तम गुणों, विद्वानों और ज्ञान धनादि के दानशील, गुरु और प्रभु को

चाहने वाले ( जनम् ) पुरुष को ( मृळ ) सुखी कर । तू (महान् असि) गुणों से महान् और पूजा करने योग्य है । तू ( बर्हिः ) उत्तम आसन और प्रजाजन पर ( आ सदम् ) प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिये ( इयेथ ) प्राप्त हो वा प्रतिष्ठा प्राप्त-पुरुष को स्वयं प्राप्त हो ।

स मानुषीषु दूळभो विक्षु प्रावीरमर्त्यः ।
दूतो विश्वेषां भुवत् ॥ २ ॥

भा०—जो ( विक्षु ) प्रजाओं में ( अमर्त्यः ) साधारण मनुष्यों से भिन्न ( दूतः ) शत्रुओं का उपतापक हो और ( विश्वेषाम् ) सबके बीच (प्रावीः) उत्तम रक्षक, तेजस्वी और विद्यावान् ( भुवत् ) हो । ( सः ) वह पुरुष ( मानुषीषु ) मनुष्य प्रजाओं के बीच ( दूळभः = दुर्-दभः ) दुर्लभ है वा शत्रुओं द्वारा कठिनता से मारने योग्य बलवान् हो ।

स सद्म परि णीयते होता मन्द्रो दिविष्टिषु ।
उत पोता नि षीदति ॥ ३ ॥

भा०—( सः ) वह विद्वान् ( होता ) उत्तम द्रव्यों, ज्ञानों का दाता, ( मन्द्रः ) सबको आनन्द देने हारा, ( उत पोता ) और सबको पवित्र करने वाला होकर ( दिविष्टिषु ) यज्ञों और नाना काम्य प्रयोगों के अवसर पर ( सद्म ) अन्यों द्वारा अपने गृह पर ( परि णीयते ) आदर-पूर्वक ले जाया जावे ।

उत ग्ना अग्निरध्वर उतो गृहपतिर्दमे ।
उत ब्रह्मा नि षीदति ॥ ४ ॥

भा०—( उत ) और ( दमे ) गृह में ( अध्वरे ) यज्ञ के अवसर में ( ग्नाः ) स्त्रियें ( उतो गृहपतिः ) और गृह का स्वामी, ( उत ) और ( ब्रह्मा ) वेद का विद्वान् पुरुष ( निषीदति ) प्रधान आसन पर विराजे । अथवा ( अध्वरे ) यज्ञ वा प्रजा के हिंसादि से रहित प्रजा पालन आदि

कार्य में ( अग्निः ) अग्रणी नायक पुरुष ( दमे गृहपतिः ) घर में गृह स्वामी के समान ( दमे ) दमन करने के कार्य में ( ग्नाः ) वाणियों और शत्रु पर गमन, प्रयाण करने वाली सेनाओं पर ( ब्रह्मा ) महान् शक्ति-सम्पन्न होकर ( निषीदति ) उच्च पद पर विराजे। और ( ब्रह्मा ) विद्वान् पुरुष ( ग्नाः निषीदति ) वेदवाणियों पर वश कर विराजे।

वेषि ह्यध्वरीयतामुपवक्ता जनानाम्।
हव्या च मानुषाणाम् ॥ ५ ॥

भा०—हे विद्वन्! राजन्! नायक! तू ( उपवक्ता ) सबको उपदेश करने वाला है। तू ( अध्वरीयताम् ) हिंसा रहित यज्ञ और अविनश्वर राज्यपालनादि की कामना करने वाले ( जानानाम् ) मनुष्यों के और ( मानुषाणाम् ) मननशील विद्वानों के योग्य ( हव्या ) उत्तम अन्नों और ज्ञानों की ( वेषि ) कामना कर और उनको आदर पूर्वक ग्रहण कर।

वेषीद्वस्य दूत्यं१ यस्य जुजोषो अध्वरम्।
हव्यं मर्तस्य वोळ्हवे ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि ( हव्यं वोढवे यस्य अध्वरं जुजोषः तस्य दूत्यं वेषि ) हवि ग्रहण करने के लिये जिसके यज्ञ को प्राप्त होता है उसके यज्ञ में तापजनक रूप को प्राप्त होता है उसी प्रकार हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक वा विद्वन्! तू ( यस्य ) जिसके ( अध्वरं ) यज्ञ और राज्य-पालनादि कार्य को ( जुजोषः ) प्रेम से स्वीकार करता है उसी ( मर्तस्य ) मनुष्य के ( हव्यं वोळ्हवे ) ग्रहण करने योग्य कर, अन्नादि पदार्थ को प्राप्त करने के लिये ( अस्य ) उसके प्रति ( दूत्यं ) दूत या उत्तम संदेश-हर के समान ज्ञानदाता के कार्य को ( वेषि इत् उ ) प्राप्त हो।

अस्माकं जोष्यध्वरमस्माकं यज्ञमङ्गिरः।
अस्माकं शृणुधी हवम् ॥ ७ ॥

भा०—हे ( अंगिरः ) ज्ञानवन् ! हे तेजस्विन् ! तू ( अस्माकम् ) हमारे ( अध्वरम् ) अविनाशी यज्ञ-कार्य को ( जोषि ) प्रेमपूर्वक स्वीकार कर। तू ( अस्माकं यज्ञं ) हमारे यज्ञ, दान सत्संग और प्रेम, मैत्रीभाव वा आदर सत्कार को ( जोषि ) स्वीकार कर और ( अस्माकम् ) हमारे वचनों का ( श्रुणुधि ) श्रवण कर।

परि ते दूळभो रथोऽस्माँ अश्नोतु विश्वतः।
येन रक्षसि दाशुषः ॥ ८ ॥ ९ ॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! ( ते ) तेरा ( दूळभः ) न नाश होने वाला, दृढ़ वह ( रथः ) रथ ( अस्मान् ) हमें ( विश्वतः ) सब तरफ़ से ( परि अश्नोतु ) प्राप्त हो ( येन ) जिससे तू ( दाशुषः ) दानशील प्रजा पुरुषों को ( रक्षसि ) रक्षा करता है। ( २ ) परमेश्वर पक्ष में— उसका वह अविनश्वर ( रथः ) रस, आनन्द हमें सब प्रकार से मिले जिससे वह आत्मसमर्पक भक्तों की रक्षा करता है। इति नवमो वर्गः ॥

## [ १० ]

वामदेव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ गायत्री । २, ३, ४, ७ भुरिग्गायत्री । ५, ८ स्वराडुष्णिक् । ६ विराडुष्णिक् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम्।
ऋध्यामा त ओहैः ॥ १ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक ! विद्वन् ! आचार्य ! हे विनयशील शिष्य ! ( ते ओहैः ) तुझे प्राप्त होने वाले, ज्ञान प्राप्त कराने वाले ( स्तोमैः ) उत्तम वचनों वेदमन्त्रों से ( तं ) उस तुझ को ( अश्वं न ) वहन करने के समर्थ उपकरणों से अश्व के तुल्य ही ( ऋध्याम ) समृद्ध करें। ( हृदिस्पृशम् ) हृदय तक को छूने वाले, अति प्रिय ( भद्रं ) कल्याणकारी, सुखजनक, (क्रतुं न) यज्ञ वा बुद्धि के तुल्य हृदय को प्रिय,

कल्याणकारक, उपकर्त्ता तुझको भी हम ( स्तोमैः ) उत्तम वचनों, वीर्यों और धन समूहों से ( ऋध्याम ) समृद्ध करें।

अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः।
रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूर्थ ॥ २ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) विद्वन्! राजन्! प्रभो! तू ( साधोः ) उत्तम-कार्य साधन में समर्थ ( क्रतोः ) प्रज्ञा, बुद्धि और ( भद्रस्य ) कल्याण कारी ( दक्षस्य ) बल के (अध हि) और ( बृहतः ) बड़े भारी (ऋतस्य) सत्य ज्ञान, न्याय और धनैश्वर्य वा राज्य का ( रथीः ) रथवान्, महारथी के समान स्वामी ( बभूथ ) हो।

एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वर्ण ज्योतिः।
अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥ ३ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) राजन्! विद्वन्! तू ( एभिः ) इन ( अर्कैः ) अर्चना करने योग्य, सत्कार के पात्र पुरुषों सहित ( नः ) हमारा रक्षक ( भव ) हो और ( स्वः न ज्योतिः ) सूर्य के समान तेजस्वी प्रकाशक हो ( नः अर्वाङ् भव ) हमारे बीच आगे बढ़ने वाला हो और तू ( सुमनाः ) उत्तम चित्त और उत्तम ज्ञानवान् होकर ( विश्वेभिः अनीकैः ) समस्त सैन्यों, बलों सहित हमें प्राप्त हो।

आभिष्टे अद्य गीर्भिर्गृणन्तोऽग्ने दाशेम।
प्र ते दिवो न स्तनयन्ति शुष्माः ॥ ४ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) विद्युत् वा अग्नि के समान तेजस्विन्! हम (ते) तेरे प्रति ( आभिः ) इन नाना (गीर्भिः) वाणियों, वचनों से ( गृणन्तः ) तेरे प्रति उपदेश करते हुए ( दाशेम ) राज्य-कर आदि प्रदान करें। और ( ते शुष्माः ) शत्रु शोषण करने वाले, बली पराक्रमी सैन्य बल, ( दिवः न ) विद्युतों वा मेघों के तुल्य ( प्र स्तनयन्ति ) खूब गर्जते हैं।

तव स्वादिष्ठाग्ने संदृष्टिरिदा चिदह्न इदा चिदक्तोः ।
श्रिये रुक्मो न रोचत उपाके ॥ ५ ॥

भा०—( अग्ने ) तेजस्विन् ! राजन् ! सूर्य और अग्नि के ( रुक्मः न ) तेज के समान के वा स्वर्ण के तुल्य ( अह्नः चित् अक्तोः चित् ) दिन और रात्रि में भी ( रुक्मः ) तेरा ऐश्वर्यमय तेज और ( स्वादिष्ठा ) अति अधिक आनन्द ऐश्वर्य भोग का सुख स्वाद देने वाली ( संदृष्टिः ) सम्यक् दृष्टि, ज्ञान, उत्तम न्याय प्रदर्शन का सामर्थ्य (उपाके) सबके समीप ( श्रिये ) शोभा और ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये ( रोचते ) प्रकाशित हो, चमके, सबको अच्छा लगे ।

घृतं न पूतं तनूररेपाः शुचि हिरण्यम् ।
तत्ते रुक्मो न रोचत स्वधावः ॥ ६ ॥

भा०—हे ( स्वधावः ) अन्नों के स्वामी, अन्नदाता ! स्वयं अपने बल से राष्ट्र को धारण करने वाली शक्ति के स्वामिन् ! ( ते तनूः ) तेरा देह और विस्तृत शक्ति, ( घृतं न पूतं ) जल वा घी के तुल्य पवित्र ( शुचि ) शुद्ध, कान्तिमान् ( हिरण्यम् ) सुवर्ण के समान सबको हितकारी और रमणीय है । ( तत् ) वह ( ते ) तेरा देह, ( रुक्मः ) सुवर्ण और सूर्य के प्रकाश के तुल्य ( रोचत ) प्रकाशित हो ।

कृतं चिद्धि ष्मा सनेमि द्वेषोऽग्न इनोषि मर्त्तात् ।
इत्था यजमानादृतावः ॥ ७ ॥

भा०—हे ( ऋतावः ) सत्यज्ञान, सत्य धनैश्वर्य के स्वामिन् ! तू ( इत्था ) इस प्रकार से, सचमुच, ( यजमानात् मर्त्तात् ) मैत्री, सत्संग और कर आदि प्रदान करने वाले प्रजाजन से ( कृतं ) किये गये ( द्वेषः ) द्वेष को भी ( सनेमि ) अपने सबको दबाने वाले बल सहित (इनोषि स्म) दूर करते रहो । ( चित् ह ) उसी प्रकार हम भी करें । वा यही तेरा उत्तम

कार्य है । अथवा ( द्वेपः मर्त्तात् यजमानात् च कृतं इनोपि ) द्वेप युक्त पुरुप और करप्रद पुरुप से भी तू ( कृतं ) उत्पन्न किये धनैश्वर्यादि वा पाप पुण्यादि को प्राप्त होता है । तू मित्र शत्रु अनुयोगी प्रतियोगी सभी के अच्छे बुरे किये का भागी है ।

शिवा नः सख्या सन्तु भ्रात्राग्ने देवेषु युष्मे ।
सा नो नाभिः सदने सस्मिन्नूधन् ॥ ८ ॥ १० ॥ १ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान तेजस्विन् ! राजन् ! प्रभो ! ( नः ) हमारी ( सख्या ) मित्रताएं और ( भ्रात्रा ) भाईचारे के कार्य ( युष्मे देवेषु ) तुम व्यवहारकुशल पुरुषों के बीच ( शिवा सन्तु ) सदा शुभ कल्याणकारी हों, अथवा हे अग्ने ( देवेषु ) देव, विद्वानों और व्यवहार कुशल पुरुषों के बीच ( नः सख्या भ्रात्रा ) हमारे भाई और मित्र सहित हमारे सब व्यवहार एवं कार्य नीति ( शिवा भवन्तु ) शिव, कल्याणकारी हों । और ( सा ) वह उत्तम नीति ही ( सस्मिन् ) समस्त ( ऊधन् ) धन धान्य सम्पन्न ( सदने ) गृह वा राज्य में ( नः ) हमें ( नाभिः ) केन्द्रस्थ नाभि के तुल्य बांधने वाली हो । अर्थात् जिस प्रकार (ऊधन्) एक माता के दूध पर पलने वाले बालकों की एक नाभि, एक भ्रातृ-सम्बन्ध है इसी प्रकार एक ( सदने ) सभा भवन वा राज्य में या प्रतिष्ठित पद के अधीन रहने वालों की एक ( नाभिः ) केन्द्र, बंधन या संगठन हो । इति दशमो वर्गः ॥

## [ ११ ]

वामदेव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता । छन्दः—१, २, ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ स्वराडबृहती । ४ भुरिक्पंक्तिः ॥ षड्टचं सूक्तम् ॥

भद्रं ते अग्ने सहसिन्ननीकमुपाक आ रोचते सूर्यस्य ।
रुशद्दृशे ददृशे नक्तया चिदरूक्षितं दृश आ रूपे अन्नम् ॥ १ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् ! अग्रणी नायक ! हे ( सहसिन् ) बलवन् ! ( ते ) तेरा ( भद्रं ) कल्याणकारी, अन्यों को सुख देने वाला, ( रुशत् ) कान्तियुक्त ( अनीकम् ) मुख और तेज ( उपाके ) समीप में ( सूर्यस्य रुशत् अनीकम् इव ) सूर्य के चमचमाते तेज के समान ( नक्तया चित् ) रात्रि के समय में भी ( दृशे ) सत्यासत्य दर्शाने के लिये ( आ रोचते ) सर्वत्र प्रकाशित हो और सबको ( ददृशे ) दीखे । वह तेरा तेज, मुख वा स्वरूप ( अरूक्षितम् अन्नम् ) स्निग्ध घृतादि से युक्त अन्न के तुल्य ( दृशे ) देखने और ( रूपे ) निरूपण करने में भी ( आ रोचते ) सब प्रकार से चमके । सबको भला लगे ।

वि षा॑ह्यग्ने गृण॒ते म॑नी॒षां खं वेप॑सा तुविजात॒ स्तवा॑नः ।
विश्वे॑भि॒र्यद्वा॒वनः॑ शुक्र दे॒वैस्तन्नो॑ रास्व सुमहो॒ भूरि॒ मन्म॑ ॥२॥

भा०—हे ( तुविजात ) बहुतों में प्रसिद्ध ! कीर्तिमन् ! ( अग्ने ) हे अग्नि के तुल्य तेज से युक्त ! अग्रणी नायक ! विद्वन् ! शिष्य ! अध्यात्म में—हे बहुत से प्राणों वा शरीरों में उत्पन्न आत्मन् ! तू ( स्तवानः ) स्तुति किया जाता हुआ वा अन्यों को उपदेश करता हुआ या उपदेश प्राप्त करता हुआ ( गृणते ) स्तुति करते वा उत्तम वचन वा उपदेश करने वाले विद्वान् के लिये ( मनीषां ) बुद्धि ( खं ) इन्द्रिय, कर्ण आदि के छिद्र को ( वेपसा ) उत्तम कर्म सहित ( वि षाहि ) खोल, उसके वचन ध्यानपूर्वक सुन । और हे ( शुक्र ) शुद्ध कान्तिमन् ! वीर्यवन् ! तेजस्विन् ( यत् ) जब तू ( विश्वेभिः देवैः ) समस्त विद्वानों, विद्या धनादि के अभिलाषियों सहित ( वावनः ) जो कुछ प्राप्त करे, ( नः ) हमें भी ( तत् ) वह ( मन्म ) मनन करने योग्य ज्ञान वा उत्तम धन ( सुमहः ) उत्तम महान् राशि में ( रास्व ) प्रदान कर ।

त्वद॑ग्ने॒ काव्या॒ त्वन्म॑नी॒षास्त्वदु॒क्था जा॑यन्ते॒ राध्या॑नि ।
त्वदे॑ति॒ द्रवि॑णं वी॒रपे॑शा इ॒त्थाधि॑ये दा॒शुषे॒ मर्त्या॑य ॥ ३ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! अग्नि के तुल्य तेजस्विन् ! विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! ( इत्था धिये ) इस प्रकार की सत्य बुद्धि वाले ( दाशुषे ) दानशील ( मर्त्याय ) मनुष्य के लिये ( काव्या ) विद्वानों से बनाये जाने योग्य उत्तम ज्ञान ( त्वत् ) तुझ से ही उत्पन्न होते हैं । ( मनीषाः त्वत् ) समस्त उत्तम बुद्धियां ( त्वत् ) तुझ से प्रकट होती हैं । (राध्यानि) कार्यसाधक और आराध्य उत्तम वचन ( त्वत् जायन्ते ) तुझसे प्रादुर्भूत होते हैं ( वीरपेशाः ) वीरों का स्वरूप या वीरों के योग्य सुवर्ण आदि धन और ( द्रविणम् ) ऐश्वर्य भी सब ( त्वत् ) तुझ से ही ( एति ) प्राप्त होता है । राजा, विद्वान् वा प्रभु ही इन समस्त वातों का राष्ट्र में वा लोक में उद्भव है ।

त्वद्वाजी वाजम्भरो विहाया अभिष्टिकृज्जायते सत्यशुष्मः ।
त्वद्रयिर्देवजूतो मयोभुस्त्वदाशुर्जूजुवाँ अग्ने अर्वा ॥ ४ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) तेजस्विन् राजन् ! विद्वन् ! ( त्वत् ) तुझसे ही ( वाजी ) ज्ञानवान्, बलवान् और वेगवान् ( वाजम्भरः ) अन्न युद्ध ऐश्वर्य और ज्ञान धारण करने में समर्थ ( विहायाः ) वेग से जाने वाला, वा महान् ( अभिष्टिकृत् ) उत्तम यज्ञ, सत्संग, मैत्री वा दान करने वाला ( सत्यशुष्मः ) सत्य के बल से युक्त पुरुष ( जायते ) उत्पन्न होता है । (त्वत् ) तुझसे ही ( देवजूतः ) विद्वानों से प्रेरित होने वाला ( मयोभुः ) सुख उत्पन्न करने वाला ( रयिः ) ऐश्वर्य वा ( आशुः ) वेगवान् ( जूजुवान् ) वेग से जाने वाला ( अर्वा ) अश्व उसके तुल्य वेगवान् यन्त्र रथ आदि उत्पन्न होता है । इसी प्रकार अग्नि से विद्युतादि के वेगयुक्त रथ यन्त्रादि उत्पन्न होते हैं ।

त्वामग्ने प्रथमं देवयन्तो देवं मर्ता अमृत मन्द्रजिह्वम् ।
द्वेषोयुतमा विवासन्ति धीभिर्दमूनसं गृहपतिममूरम् ॥ ५ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! हे विद्वन् ! हे गृह-

पते ! हे ( अमृत ) अविनाशिन् ! ( देवयन्तः ) शुभ गुणों की कामना करते हुए ( मर्त्ताः ) मनुष्य ( प्रथमं ) सब से श्रेष्ठ, सब से प्रथम विद्यमान, ( मन्द्रजिह्व ) हर्षकारी मधुरवाणी बोलने वाले ( द्वेषः युतम् ) द्वेष के समस्त भावों से रहित, अजातशत्रुः ( दमूनसं ) सब को दमन करनेवाले, मन और इन्द्रियों को दमन करने वाले, जितेन्द्रिय (गृहपतिम्) घर के स्वामी ( अमूरं ) मूढ़ता रहित, ( त्वाम् ) तुझको ( धीभिः ) उत्तम ज्ञानों, कर्मों और स्तुतिवाणियों से ( आविवासन्ति ) आदरपूर्वक वा साक्षात् सर्वत्र सेवते, स्तुति करते हैं। प्रजातिरमृतम्। शत० ॥ गृह पति सन्तति द्वारा अविनाशी है।

आरे अस्मदमतिमारे अंह आरे विश्वां दुर्मतिं यन्निपासि।
दोषा शिवः सहसः सूनो अग्ने यं देव आ चित्सचसे स्वस्ति ।६।११॥

भा०—हे ( सहसः सूनो ) बलवान्, सहनशील पुरुष के पुत्र, उत्तम पिता के पुत्र ! विद्वन् ! एवं हे (सहसः सूनो) शत्रु पराजयकारी बल के प्रेरक सञ्चालक सेनापते ! हे ( अग्ने ) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् ! अग्रणी ! नायक हे ( देव ) सूर्य के समान प्रकाशक एवं ज्ञान धनादि के देने हारे ! ( दोषा ) रात्रियें अग्नि वा दीपक के तुल्य तेजस्वी होकर ( दोषा ) दोषों वा दुर्गुणों वा संकटों के बीच विद्यमान ( यं चित् ) जिसको भी तू ( स्वस्ति ) उसके कल्याण के लिये ( आसचसे ) प्राप्त होता है, स्नेह करता है तू उसके लिये ( शिवः ) कल्याणकारी मंगल वा शान्तिजनक होता है। इसलिये तू ( अस्मत् ) हम से भी ( अमतिम् ) मति रहित अज्ञानी अज्ञान वा भूख प्यास की पीड़ा जिससे प्रेरित होकर मनुष्य पापाचरण करता है। उसे ( आरे ) दूर कर। ( अंह आरे ) हमारे पाप को दूर कर। ( विश्वां दुर्मतिं ) समस्त प्रकार की दुष्ट बुद्धि को भी (आरे) दूर कर ( यत् ) क्योंकि तू ही ( निपासि ) सब को सब प्रकार से बचाया करता है। इत्येकादशो वर्गः ॥

[ १२ ]

वामदेव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ३, ४ भुरिक् पंक्तिः । ६ पंक्तिः ॥ षड्टचं सूक्तम् ॥

यस्त्वामग्न इनधते यतस्रुक्त्रिस्ते अन्नं कृणवत्सस्मिन्नहन् ।
स सु द्युम्नैरभ्यस्तु प्रसक्षत्तव क्रत्वा जातवेदश्चिकित्वान् ॥१॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! हे राजन् ! ( यः ) जो ( यतस्रुक् ) स्रुच नामक पात्र को हाथ में लिये यज्ञकर्त्ता जिस प्रकार अग्नि को प्रदीप्त करता है उसी प्रकार जो ( यतस्रुक् ) बाह्य विषयों की ओर बहने वाली इन्द्रियों को वा प्राणों को वश करने वाला जितेन्द्रिय पुरुष ( त्वाम् ) तुझको ( इनधते ) प्रकाशित करता वा तुझको अपना स्वामी जान कर तेरी सेवा करता है और ( सस्मिन् ) सब ( अहनि ) दिनों ( ते ) तेरे लिये ( त्रिः ) तीन वार ( अन्नं ) अन्न ( कृणवत् ) करता है ( सः ) वह ( सुद्युम्नैः ) उत्तम यशों और धनों से ( अभि अस्तु ) युक्त हो, हे ( जातवेदः ) ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! समस्त उत्पन्न पदार्थों को जानने हारे ! वह ( चिकित्वान् ) ज्ञानवान् होकर ( तव ) तेरे ( क्रत्वा ) कर्म, सामर्थ्य और ज्ञान से ( प्रसक्षत् ) युक्त हो वा शत्रुओं को विजय करे । अग्नि वा सेनापति के बल से अर्थात् अग्नि आदि अस्त्रों से शत्रुओं को विजय करे । अग्नि में तीन वार अन्न करना प्रातः सायं और बलि-वैश्वदेव द्वारा अग्नि में आहुति देना है । पूज्य विद्वान् माता पिता, अतिथि को प्रातः मध्याह्न और सायं तीन वार आहार देना ।

इध्मं यस्ते जभरच्छश्रमाणो महो अग्ने अनीकमा सपर्यन् ।
स इधानः प्रति दोषामुषासं पुष्यन्रयिं सचते घ्नन्नमित्रान् ॥२॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् ! ( यः ) जो पुरुष ( शश्रमाणः ) खूब परिश्रम करता हुआ ( इध्मं जभरत् ) अग्निहोत्र के

निमित्त यज्ञ काष्ठ लाने के समान ही ( ते ) तेरे लिये ( इध्मं ) देदीप्यमान ( अनीकम् ) तेज वा सैन्य की ( सपर्यन् ) सेवा करता हुआ ( जभरत् ) उसे प्राप्त हो, पुष्ट करे ( सः ) वह ( प्रति दोषाम् प्रति उषासम् ) प्रति सायंकाल और प्रत्येक रात्रिकाल ( इधानः ) प्रदीप्त करता हुआ ( पुष्यन् ) स्वयं पुष्ट होता हुआ और ( अमित्रान् ) शत्रुओं को नाश करता हुआ ( रयिं सचते ) ऐश्वर्य को प्राप्त करता है। प्रातः सायं अग्निहोत्र करने का यहां स्पष्ट विधान है। उससे 'रयिं' अर्थात् देह की कान्ति और 'अमित्र' अर्थात् द्वेष भावों का नाश होता है। पूर्व मन्त्र में तीन वार आहुति से तीन वार का अभिप्राय तीन वार अग्निहोत्र नहीं है। प्रत्युत दो वार अग्निहोत्र तीसरी वार बलिवैश्वदेव मात्र है।

अ॒ग्निरी॑शे बृह॒तः क्ष॒त्रिय॑स्या॒ग्निर्वाज॑स्य पर॒मस्य॑ रा॒यः ।
द॒धा॑ति॒ रत्नं॑ विध॒ते यवि॑ष्ठो॒ व्या॑नु॒षङ्मर्त्या॑य स्व॒धावा॑न् ॥३॥

भा०—अग्नि का स्वरूप बतलाते हैं। ( अग्निः ) अग्नि के समान तेजस्वी अग्र नायक पुरुष ही ( बृहतः ) बड़े भारी ( क्षत्रियस्य ) क्षत्रिय अर्थात् क्षात्र-धर्म युक्त बल का ( ईशे ) स्वामी है। ( अग्निः ) वह अग्रणी पुरुष, ( परमस्य ) सबसे उत्कृष्ट ( वाजस्य ) बल और ( रायः ) ऐश्वर्य का ( ईशे ) स्वामी हो। वह ( यविष्ठः ) अति युवा, बलवान् पुरुष ( स्वधावान् ) अपने राष्ट्र के धारण, पालन करने की शक्ति से युक्त होकर ( आनुषक् ) सबके अनुकूल होकर, ( विधते ) सेवा परिचर्या या कर्म करने वाले ( मर्त्याय ) मनुष्य के हितार्थ ( रत्नं ) नाना रमणीय पदार्थ, धन अन्न आदि ( वि दधाति ) प्रदान करता है।

यच्चि॒द्धि ते॑ पुरुष॒त्रा य॑विष्ठा॒चित्ति॑भिश्चकृ॒मा कच्चि॒दाग॑ः ।
कृ॒धी ष्व१॒॑स्माँ अदि॑ते॒रना॑गा॒न्व्येनां॑सि शिश्रथो॒ विष्व॑गग्ने ॥४॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्नि के तुल्य तेजस्विन्! हे ( यविष्ठ ) अति युवा, बलवान् या पापों को दूर करने हारे! हम लोग ( यत् चित् हि )

जो कुछ भी ( कत् चित् ) और कभी ( अचित्तिभिः ) अपने अज्ञानों या मूर्खताओं वश ( ते ) तेरे ( पुरुपत्रा ) मनुष्यों के बीच में ( आगः ) अपराध ( चकृम ) करें तू ( अदितेः ) अपने अखण्ड शासन और अदीन, किसी के सामने न झुकने वाली व्यवस्था से ( अस्मान् ) हमें ( अनागान् ) अपराधों से रहित ( कृधि ) कर। और ( एनांसि ) अपराधों को ( विश्वक् ) सर्व प्रकार से ( वि शिश्रथः ) विविध प्रकारों से दूर कर।

महश्चिदग्न एनसो अभीक ऊर्वाद्देवानामुत मर्त्यानाम्।
मा ते सखायः सदमिद्रिषाम यच्छा तोकाय तनयाय शं योः ॥५॥

भा०—हे ( अग्ने ) तेजस्विन्! हम लोग ( देवानाम् ) विद्वानों और ( मर्त्यानाम् ) साधारण मनुष्यों के ( अभीके ) समीप में ( महः चित् ऊर्वात् एनसः ) बड़े भारी लम्बे चौड़े पाप से भी सदा पृथक् रहें। हम लोग ( ते ) तेरे ( सखायः ) मित्र होकर ( सदम् इत् ) सदा ही ( मा रिषाम ) कभी पीड़ित न होवें। तू हमारे ( तोकाय तनयाय ) पुत्र और पौत्रों को भी ( शं योः ) शान्ति सुख, ताप निवारण ( यच्छ ) प्रदान कर।

यथा ह त्यद्वसवो गौर्यं चित्पदि षिताममुञ्चता यजत्राः।
एवो ष्व१स्मन्मुञ्चता व्यंहः प्र तार्यग्ने प्रतरं न आयुः ॥६॥१२॥

भा०—हे ( यजत्राः ) ज्ञान प्रदान करने एवं सत्संग करने हारे ( वसवः ) अन्यों को बसाने और स्वयं राष्ट्र में बसनेवाले प्रजाजनो! ( यथा ) जिस प्रकार ( ह ) भी हो सके ( चित् पदि सितां गौर्यम् ) पैरों में बंधी गौ के तुल्य ( पदि ) ज्ञातव्य विषय में ( सिताम् ) शब्दार्थ सम्बन्ध से बंधी हुई ( त्यां ) उस उत्तम ( गौर्यं ) वाणी को ( अमुञ्चत ) अन्यों को प्रदान करते हो ( एव उ ) उसी प्रकार ( अस्मत् ) हम से ( अंहः ) पाप को ( सु वि मुञ्चत ) उत्तम रीति से दूर करो। ( नः )

हमारी ( प्रतरं ) संसार से पार उतारने वाले सुदीर्घ ( आयुः ) आयु को ( प्रतारि ) बढ़ाओ । इति द्वादशो वर्गः ॥

## [ १३ ]

वामदेव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ५ विराट्त्रिष्टुप् । निचृत्त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

**प्रत्य॒ग्निरु॒षसा॒मग्र॑मख्यद्वि॒भाती॒नां सु॒मना॑ रत्न॒धेय॑म् ।**
**या॒तम॑श्विना सु॒कृतो॑ दुरो॒णमुत्सूर्यो॒ ज्योति॑षा दे॒व ए॑ति ॥ १ ॥**

भा०—जिस प्रकार ( अग्निः ) सर्व प्रकाशक सूर्य ( विभातीनां ) विशेष रूप से चमकने वाली ( उषसाम् ) प्रभात वेलाओं के ( रत्नधेयम् ) रमणीय, मनोहर ( अग्रम् ) मुख-भाग को ( प्रति अख्यत् ) प्रकाशित करता है उसी प्रकार ( सुमनाः ) उत्तम ज्ञानवान् ( अग्निः ) अग्रणी, नायक राजा और विद्वान् ( विभातीनां ) विविध गुणों से और शस्त्रास्त्र तेजों से चमकने वाली ( उषसाम् ) शत्रुओं को जलाने वाली सेनाओं के ( रत्नधेयम् ) पुरुष-रत्नों से धारण करने योग्य ( अग्रम् ) अग्र, प्रमुख भाग को ( प्रति अख्यत् ) प्रत्येक समय देखें । इसी प्रकार ( अग्निः ) विद्वान् नायक विविध गुणों से चमकने वाली ( उषसाम् ) कामना करने वाली कान्तिमती कन्याओं के रत्न धारण करने योग्य मुख भाग को ( प्रति अख्यत् ) देखे । हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप लोग ( सुकृतः ) उत्तम आचरण करने वाले पुरुष के ( दुरोणम् ) गृह को (यातम् ) जाओ । ( सूर्यः ) सूर्य के तुल्य (देवः) दानशील तेजस्वी विद्वान् पुरुष (ज्योतिषा सह ) अपने ज्ञान ज्योति के साथ ( उत् एति ) उदय को प्राप्त होता है ।

**ऊ॒र्ध्वं भा॒नुं स॑वि॒ता दे॒वो अ॑श्रेद्द्र॒प्सं दवि॑ध्वद्गवि॒षो न सत्वा॑ ।**
**अनु॑ व्र॒तं वरु॑णो यन्ति मि॒त्रो यत्सूर्यं॑ दि॒व्या॑ रो॒हय॑न्ति ॥ २ ॥**

भा०—( गविषः सत्वा न ) जिस प्रकार गौ की कामना करने वाला वृषभ ( द्रप्सं दविध्वत् ) सींगों पैरों से भूमि के धूलि को धुनता, उछालता है और जिस प्रकार ( गविषः सत्वा ) गौ अर्थात् पृथिवी की यात्रा करने वाला वलवान् पुरुष वा ( सत्वा ) गमनकर्त्ता पुरुष (द्रप्सं) आगे भूमि-भाग धूलि को ( दविध्वत् ) लताड़ता, उड़ाता है उसी प्रकार ( सत्वा ) वीर्यवान् और प्रयाण करने वाला वीर पुरुष ( गविषः ) भूमि राज्य की आकांक्षा करता हुआ, ( द्रप्सं ) भूगोल को ( दविध्वत् ) कंपावे वा ( द्रप्सं ) द्रुत गति से जाने वाले वा अच्छी प्रकार पालित पोषित वेतन द्वारा रक्षित योग्य सेना-बल को ( दविध्वत् ) चालित करे। जिस प्रकार सूर्य के उदय होने पर जल वा वायु भी अनुकूल कर्म करते हैं उसी प्रकार ( सविता देवः ) सूर्य के समान सेना का सञ्चालक विजिगीषु राजा ( ऊर्ध्वं ) सबसे ऊपर ( भानुं ) तेज को ( अश्रेत् ) धारण करे। ( यत् ) जब ( सूर्यं ) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को ( दिवि ) आकाश तुल्य विस्तृत भूमि के ऊपर ( आ रोहयन्ति ) विद्वान् लोग उत्तम राजसिंहासन पर स्थापित करते हैं तब ( वरुणः ) श्रेष्ठ प्रजाजन और ( मित्रः ) स्नेही, जीवनरक्षक प्रियजन भी उसके ( अनु ) अनुकूल होकर ( व्रतं यन्ति ) कर्म का आचरण करते हैं।

**यं सीमकृण्वन्तमसे विपृचे ध्रुवक्षेमा अनवस्यन्तो अर्थम्।**
**तं सूर्यं हरितः सप्त यह्वीः स्पशं विश्वस्य जगतो वहन्ति ॥३॥**

भा०—जिस प्रकार ( ध्रुवक्षेमाः ) स्थिर स्थिति वाले नित्य कारण तत्व स्वयं ( अर्थम् ) इस गतिशील संसार को ( अनवस्यन्तः ) प्रकाशित करने में असमर्थ रहते हुए भी ( तमसे विपृचे ) अन्धकार को दूर करने के लिये ( सीम् अकृण्वन् ) इस सूर्य को निर्माण करते हैं उसी प्रकार ( अर्थम् ) द्रव्यैश्वर्य और राष्ट्र को ( अनवस्यन्तः ) स्वयं रक्षा करने में असमर्थ ( ध्रुवक्षेमाः ) राष्ट्र में अपना स्थिर रूप से निवास करने वाले

प्रजागण ( तमसे ) प्रजा के दुःख देने वाले शत्रु के ( विपृचे ) दूर करने के लिये ( विपृचे तमसे ) विरोध करने वाले विद्वेषी दुःखदायी शत्रु के निवारण के लिये ( यं ) जिस तेजस्वी पुरुष को ( सीम् ) सर्व प्रकार शत्रु का अन्तकारी ( अकृण्वन् ) बना देते हैं ( तं ) उस ( सूर्यं ) सूर्य के समान तेजस्वी और ( विश्वस्य जगतः ) समस्त जगत् के ( स्पशं ) द्रष्टा और प्रबन्धक पुरुष को ( सप्त यह्वीः हरितः ) सात महती दिशाओं, सात अन्धकार नाशक किरणों के तुल्य ( यह्वीः ) बड़ी वा पुत्र के तुल्य (सप्त) सातों प्रकार की ( हरितः ) मनुष्य प्रजाएं ( वहन्ति ) धारण करती हैं। चार आश्रम और तीन वर्ण वा चारों वर्ण और तीन आश्रम, मिलकर ७ प्रकृति हैं। शूद्र सेवक स्वामी के साथ ही ग्रहण हो जाता है पृथक् नहीं। ब्रह्मचर्य वा सन्यास दोनों में से किसी एक का गैरज़िम्मेवार वा संगरहित होने से ग्रहण नहीं भी करने से तीन आश्रम हो जावेंगे। अथवा सात प्रकृतियां राजनीति में प्रसिद्ध हैं। अथवा (सप्त) सर्पणशील, व्यापक विस्तृत प्रजागण या सात दिशाओं वा द्वीपों के वासी प्रजागण (सप्त हरितः) सप्त हरित् हैं ॥

**वहि॑ष्ठेभिर्वि॒हर॑न्यासि॒ तन्तु॑मव॒व्यय॒न्नसि॑तं दे॒व वस्म॑ ।**
**दवि॑ध्वतो र॒श्मय॒ः सूर्य॑स्य॒ चर्मे॒वावा॑धु॒स्तमो॑ अ॒प्स्व१॒॑न्तः ॥ ४ ॥**

भा०—जिस प्रकार ( वहिष्ठेभिः ) जलादि का वहन करने वाले किरणों से ( तन्तुम् ) विस्तृत ( असितं ) श्यामवर्ण के ( वस्म ) आच्छादन करने वाले अन्धकार को ( विहरन् ) दूर करता हुआ सूर्य गति करता है उसी प्रकार हे ( देव ) तेजस्विन् राजन्! तू ( वहिष्ठेभिः ) दूर तक ढो लेजाने वाले अश्वों और रथ आदि साधनों से ( तन्तुम् ) विस्तृत वा प्रजा के समान ( वस्म ) वसने योग्य ( असितं ) अप्रबद्ध, राष्ट्र को ( अवव्ययन् ) अपने अधीन करता हुआ ( विहरन् ) विचरता हुआ ( यासि ) प्रयाण कर। ( अप्सु अन्तः ) अन्तरिक्ष में जिस प्रकार (दविध्वतः ) अन्धकार का नाश करने वाले ( सूर्यस्य रश्मयः ) सूर्य के किरण

( चर्म इव तमः ) देह को मृग-चर्म के समान आच्छादन करने वाले अन्धकार को ( अव अधुः ) नाश कर देते हैं उसी प्रकार ( दविध्वतः ) शत्रु को कंपा देने वाले ( सूर्यस्य ) सूर्यवत् तेजस्वी राजा के ( रश्मयः ) रश्मिवत् प्रबन्धकर्त्ता लोग ( अप्सु अन्तः ) आप्त प्रजाओं के बीच ( चर्म इव तमः ) चर्म के समान दुःखदायी शत्रु वा अविद्या अन्धकार को ( अव अधुः ) दबावें, दूर करें।

**अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न। कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् ॥ ५ ॥ १३ ॥**

भा०—बतलाओ कि ( अनायतः ) चारों तरफ कहीं से भी न बंधा हुआ, ( अनिबद्धः ) और न किसी एक स्थान पर ही कहीं बंधा हुआ ( उत्तानः ) सबसे ऊपर रहता हुआ ( अयम् ) यह सूर्य ( कथा न्यङ् न अवपद्यते ) क्यों नहीं नीचे आ गिरता। वह ( कया ) किस ( स्वधया ) अपने धारण करने वाली शक्ति से ( याति ) गति करता है और उसको ( कः ) कौन देखता है, वह ( दिवः ) प्रकाश का थामने वाला (समृतः) सर्वत्र व्याप्त होकर ( नाकं पाति ) आकाशस्थ सबको पालन करता है, इसी प्रकार राजा भी किसी विशेष नियम में न बद्ध होकर वा प्रजा के अति समीप रहकर भी ( अनिबद्धः ) विशेष नियन्त्रित न होकर वह ( उत्तानः ) सबसे उच्च आसन पर स्थित होकर भी ( कथा न न्यङ् अवपद्यते ) किसी रीति से नीचे न गिरे? वह ( कया याति ) किस नीति से चले, तो इसका उत्तर है वह ( स्वधया याति ) अपने राष्ट्र को और 'स्व' अर्थात् धनैश्वर्य को धारण पोषण करने वाली नीति से चले तो नहीं गिरता। और वह ( कः ददर्शः ) स्वयं समस्त कर्त्ता होकर राष्ट्र को देखे, वह ( दिवः स्कम्भः ) ज्ञानवाली राजसभा वा अपनी चाहने वाली पत्नी तुल्य वा विजयेच्छुक प्रजा वा सेना का (स्कम्भः) खम्भे के समान आधार

होकर (सम्-ऋतः) सम्यक् सत्य ज्ञान और सम्पूर्ण बल वा ऐश्वर्य से युक्त होकर ( नाकम् ) अत्यन्त सुख सम्पन्न राष्ट्र को ( पाति ) पालन करे। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

## [ १४ ]

वामदेव ऋषिः ॥ अग्निर्लिङ्गोक्ता वा देवता ॥ छन्दः—१ भुरिक्पंक्तिः । ३ स्वराट् पंक्तिः । २, ४ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ विराट्त्रिष्टुप् । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

**प्रत्य॒ग्निरु॒षसो॑ जा॒तवे॑दा॒ अख्य॑द्दे॒वो रोच॑माना॒ महो॑भिः ।**
**आ ना॑सत्योरुगा॒या रथे॑ने॒मं य॒ज्ञमुप॑ नो यात॒मच्छ॑ ॥ १ ॥**

भा०—जिस प्रकार ( अग्निः ) तेज से युक्त सूर्य ( देवः ) प्रकाशमान होकर ( महोभिः ) तेजों से ( रोचमानाः ) प्रकाशित होने वाली ( उषसः ) प्रभात वेलाओं को ( प्रति अख्यत् ) प्रकाशित करता है उसी प्रकार ( जातवेदाः ) धनों, ऐश्वर्यों का स्वामी ( अग्निः ) अग्रणी नायक ( देवाः ) दानशील, ( महोभिः ) बड़ी २ धन सम्पदाओं से (रोचमानाः) प्रकाशित होने वाली ( उषसः ) कान्तियुक्त, वा अपने स्वामी की चाहना करने वाली सेनाओं, प्रजाओं को, स्त्री को पति के तुल्य ( प्रति अख्यत् ) प्रेमपूर्वक देखे। और ( नासत्या ) वे दोनों परस्पर कभी असत्य व्यवहार न करते हुए सत्य वचन से बद्ध होकर राजा, प्रजा वा पति और पत्नी ( उरुगाया ) बहुत प्रशंसायुक्त और बहुत पराक्रमी होकर (रथेन) रमण करने योग्य साधन से ( नः ) हमारे ( इमं ) इस ( यज्ञम् ) परस्पर मैत्रीभाव और सत्संग को ( अच्छ यातम् ) प्राप्त हों।

**ऊ॒र्ध्वं के॒तुं स॑वि॒ता दे॒वो अ॑श्रे॒ज्ज्योति॒र्विश्व॑स्मै॒ भुव॑नाय कृ॒ण्वन् ।**
**आप्रा॒ द्यावा॑पृथि॒वी अ॒न्तरि॑क्षं॒ वि सूर्यो॑ र॒श्मिभि॒श्चेकि॑तानः ॥२॥**

भा०—( सविता देवः ) प्रकाशमान सूर्य जिस प्रकार ( विश्वस्मै भुवनाय ) समस्त उत्पन्न जगत् के लिये ( ज्योतिः कृण्वन् ) प्रकाश करता

हुआ ( ऊर्ध्वं ) सबसे ऊपर ( केतुं ) प्रकाश को ( अश्रेत् ) धारण करता है, और ( सूर्यः ) सूर्य जिस प्रकार (रश्मिभिः) अपनी किरणों से ( द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं ) आकाश भूमि और अन्तरिक्ष को ( आ अप्राः ) सब ओर पूर्ण कर देता है। उसी प्रकार ( सविता ) समस्त राष्ट्र का प्रेरक, सञ्चालक ( देवः ) तेजस्वी, दानशील राजा वा विद्वान् ( विश्वस्मै भुवनाय ) समस्त उत्पन्न प्रजाजनों के हितार्थ (ज्योतिः कृण्वन्) ज्ञान-प्रकाश प्रदान करता हुआ ( ऊर्ध्वं ) सबके ऊपर श्रेष्ठ (केतुं) ज्ञान को ( अश्रेत् ) स्वयं धारण करे। और ( वि चेकितानः ) विशेष रूप से स्वयं सबको देखता और ज्ञान करता हुआ ( रश्मिभिः ) अधीन शासकों द्वारा (द्यावा पृथिवी ) स्त्री पुरुषों विद्वान् और अविद्वान् और ( अन्तरिक्षं ) अपने भीतरी अन्तःकरण वा अन्तरंग जनों को ( आ अप्राः ) ज्ञान वा ऐश्वर्य से पूर्ण करे।

आवहन्त्यरुणीर्ज्योतिषागान्मही चित्रा रश्मिभिश्चेकिताना।
प्रबोधयन्ती सुवितायं देव्युषा ईयते सुयुजा रथेन ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार ( देवी ) प्रकाश से युक्त ( उषाः ) प्रभात वेला ( अरुणीः ) लाल २ कान्तियों को ( आवसन्ती ) सर्वत्र पहुंचाती हुई ( मही ) बड़ी ( चित्रा ) अद्भुत ( रश्मिभिः चेकिताना ) किरणों से समस्त प्राणियों को ज्ञानवान्, जागृत करती हुई और ( प्रबोधयन्ती ) अच्छी प्रकार जगाती हुई ( सुविताय ) सुख प्राप्ति के लिये ( सुयुजा ) उत्तम सहयोगी ( रथेन ) वेगवान् सूर्य के साथ ( ईयते ) आती है उसी प्रकार ( उषाः देवी ) पति को चाहने वाली, एवं कान्तिमती विदुषी स्त्री, देवी ( अरुणीः आवहन्ती ) आरक्त कान्तियों को धारण करती हुई ( मही ) आदरणीय ( चित्रा ) अद्भुत गुणोंवाली, ( चेकिताना ) स्वयं ज्ञानवती होकर ( रश्मिभिः ) किरणों से ( ज्योतिषा ) तेज से, ( सुविताय ) उत्तम ऐश्वर्य वा सुख प्राप्त करने वा उत्तम मार्ग से चलने के लिये

( प्रबोधयन्ती ) सबको ज्ञानयुक्त करती हुई ( सुयुजा रथेन ईयते ) उत्तम अश्वों से युक्त रथ से आवे ।

आ वां वहिष्ठा इह ते वहन्तु रथा अश्वास उषसो व्युष्टौ ।
इमे हि वां मधुपेयाय सोमा अस्मिन्यज्ञे वृषणा मादयेथाम् ॥४॥

भा०—हे ( वृषणा ) वीर्यवान्, एवं वीर्यनिषेक करने में समर्थ युवा स्त्री पुरुषो ! ( उषसः ) दिन के प्रभात वेला के समान ( वां ) तुम दोनों के बीच में ( उषसः ) कान्तिमती, प्रातः प्रभा के तुल्य पति की कामना करने वाली स्त्री के ( वि-उष्टौ ) विशेष कामना से युक्त होने पर ही ( ते ) वे नाना ( वहिष्ठाः ) भार वहन करने वाले ( रथाः अश्वासः ) रथ और अश्व गण ( वां वहन्तु ) तुम दोनों को देशदेशान्तर पहुंचावें । ( इमे हि सोमाः ) ये समस्त ऐश्वर्य और ओषधि आदि रस ( वां ) तुम दोनों के लिये ( मधुपेयाय ) मधुर जल और अन्न के तुल्य खान पान करने योग्य हैं । ( अस्मिन् यज्ञे ) इस यज्ञ, परस्पर दान प्रतिदान, सत्संग और मैत्री भाव में आप दोनों ( मादयेथाम् ) प्रसन्न, हर्षित होकर रहो ।

अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न ।
कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् ॥५॥१४॥

भा०—देखो व्याख्या (मं० ४ । १३ । ५ ॥ ) इति चतुर्दशो वर्गः ॥

## [ १५ ]

वामदेव ऋषिः ॥ १—६ अग्निः । ७, ८ सोमकः साहदेव्यः । ९, १० अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ४ गायत्री । २, ५, ६ विराड गायत्री । ३, ७, ८, ९, १० निचृद्गायत्री ॥ षडजः स्वरः ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

अग्निर्होता नो अध्वरे वाजी सन्परि णीयते ।
देवो देवेषु यज्ञियः ॥ १ ॥

भा०—( अध्वरे अग्निः ) यज्ञ में अग्नि के समान ( अध्वरे ) न नाश करने योग्य परस्पर सख्य आदि उत्तम कार्य में ( अग्निः ) विद्वान् पुरुष, नायक ( होता ) सब कार्यों का स्वीकार करने वाला ( वाजी ) ज्ञान, अन्न, जल आदि से युक्त ( देवः ) तेजस्वी दानशील, विजिगीषु ( यज्ञियः ) सत्संग, मैत्री आदि के योग्य वा यज्ञ, परमपूज्य प्रजापति पद के योग्य ( सन् ) सज्जन पुरुष प्राप्त हो तो ( देवेषु ) वह विद्वान् पुरुषों के बीच ( परिणीयते ) ऊपर के पद तक प्राप्त कराया जावे। आदर पूर्वक घर आदि में बुलाया और लाया जावे।

परि त्रिविष्ट्यध्वरं यात्यग्नी रथीरिव।
आ देवेषु प्रयो दधत् ॥ २ ॥

भा०—( अग्निः ) ज्ञानवान्, तेजस्वी पुरुष ( त्रिविष्टि अध्वरे ) तीनों प्रकार से प्रवेश करने योग्य यज्ञ वा हिंसारहित, उत्तम व्यवहार वा पद को ( रथीः इव ) महारथी के समान ( देवेषु ) विद्वानों में ( प्रयः ) प्रीतिकारक वचन ( दधत् ) प्रयोग करता हुआ ( परियाति ) प्राप्त होता है। महारथी ( देवेषु ) विजयकामी सैनिकों में ( प्रयः ) अन्न वेतनादि प्रदान करता हुआ ( त्रिविष्टि अध्वरं परियाति ) तीन प्रकार से प्रवेश करने योग्य युद्ध में प्रयाण करता है।

परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत्।
दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ ३ ॥

भा०—( वाजपतिः ) अन्न, ऐश्वर्य, संग्राम और बलों व ज्ञानों का पालक ( कविः ) क्रान्तदर्शी विद्वान् ( अग्निः ) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष ( दाशुषे ) दानशील प्रजाजन में ( रत्नानि ) रमणीय वचनों और ऐश्वर्यों को ( दधत् ) प्रदान करता हुआ ( हव्यानि ) ग्रहण करने योग्य अन्नों, एवं करों को भी ( परि अक्रमीत् ) प्राप्त करे। अथवा (हव्यानि) 'हव' अर्थात् युद्ध के योग्य शत्रु-बलों पर ( परि अक्रमीत् ) चढ़ाई करे।

और ( हव्यानि ) हव, यज्ञ, आदर सत्कार योग्य पदों वा पदस्थों की ( परि अक्रमीत् ) परिक्रमा करे उनको स्वयं प्राप्त करे वा आदर करे।

अयं यः सृञ्जये पुरो दैववाते समिध्यते।
द्युमाँ अमित्रदम्भनः ॥ ४ ॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार ( पुरः ) आगे ( दैववाते ) प्रकाशक वायु के संपर्क में ( समिध्यते ) अधिक प्रकाशित होता है उसी प्रकार ( यः ) जो ( द्युमान् ) तेजस्वी ( अमित्रदम्भनः ) शत्रु का नाश करने में समर्थ है ( अयं ) वह ( दैववाते ) देव अर्थात् विजिगीषु पुरुषों के दलों से प्राप्त होने योग्य ( सृञ्जये ) शत्रु-विजय कार्य में ( पुरः ) सबके आगे ( समिध्यते ) प्रकाशित, प्रदीप्त अग्नि के समान प्रज्वलित किया जावे। उसे लोग उत्तेजित और उत्साहित एवं युद्धोपकरण अधिकार आदि से सम्पन्न करें।

अस्य घा वीर ईवतोऽग्नेरीशीत मर्त्यः।
तिग्मजम्भस्य मीळ्हुषः ॥ ५ ॥ १५ ॥

भा०—( अस्य ) इस ( ईवतः ) गमन करने वाले, प्रयाणशील ( तिग्मजम्भस्य ) तीक्ष्ण, तेजस्वी मुख वाले, ( मीळ्हुषः ) शत्रु पर शस्त्रादि वर्षण करने में समर्थ मेघ के तुल्य ( अग्नेः ) अग्नि के तुल्य तेजस्वी, अग्रणी नायक ( वीरः ) वीर ( मर्त्यः ) शत्रु मारने में समर्थ पुरुष ही (ईशीत) ऐश्वर्य वा अधिकार का भागी हो। इति पञ्चदशो वर्गः॥

तमर्वन्तं न सानसिमरुषं न दिवः शिशुम्।
मर्मृज्यन्ते दिवेदिवे ॥ ६ ॥

भा०—लोग जिस प्रकार ( दिवे दिवे ) प्रतिदिन ( अर्वन्तं ) वेगवान् अश्व को ( मर्मृज्यन्ते ) खरखरे आदि से साफ़ करते हैं और अलंकारों से सजाते हैं और जिस प्रकार वैद्य ( अरुषं ) देह में लगे घाव

को नित्य प्रतिदिन ( मर्मृज्यन्ते ) साफ़ करते हैं और माता पिता जिस प्रकार ( शिशुम् ) वालक को नित्य प्रति साफ करते हैं उसी प्रकार विद्वान् लोग ( सानसिं ) सबके सेवन योग्य और दानशील, ( अर्वन्तं ) शत्रु पर वेग से चढ़ाई करने वाले ( अरुपम् ) दोप रहित, सूर्य के तुल्य लाल रंग के तेजस्वी ( दिवः शिशुम् ) भूमि के शासक आज्ञापक पुरुप को नित्यप्रति ( मर्मृज्यन्ते ) विद्वान् लोग शोधन स्वच्छ दोप रहित करते रहें। अथवा शास्त्र को ( दिवः ) ज्ञानप्रकाश से सुभूपित करें।

वोधद्यन्मा हरिभ्यां कुमारः साहदेव्यः।
अच्छा न हूत उदरं ॥ ७ ॥

भा०—( हूतः ) युद्ध में बुलाया जाकर ( यत् ) जब मैं ( अच्छ ) अभिमुख मुकावले पर ( न उत् अरम् ) नहीं उठ खड़ा होऊं तव ( साहदेव्यः ) देव विद्वान् वा विजिगीपु सैनिकों को साथ रखने वाले नायकों में उत्तम ( कुमारः ) शत्रुओं को वुरी तरह से मारने में समर्थ सेनापति ( मा ) मुझको ( हरिभ्याम् ) अश्वों से ( वोधत् ) मेरे कर्त्तव्यों का ज्ञान करावे। शिष्यपक्ष में—( हूतः ) उपदेश किया जाकर यदि मैं शिष्य अच्छी प्रकार ज्ञान न करूं, तो 'देव' अर्थात् विद्याभिलाषी वा विद्वान् गुरुओं के सहित रहने वाले विद्यार्थियों में कुशल ( कुमारः ) कुत्सित आचरण के लिये दण्ड देने वाला गुरु ( हरिभ्याम् ) मनोहारी और दोष-हारी प्रेम और दण्ड वा पठन अभ्यास आदि उपायों से ( मा उत् वोधत् ) मुझको सावधान करे और ज्ञान प्रदान करे।

उत त्या यजता हरी कुमारात्साहदेव्यात्।
प्रयता सद्य आ ददे ॥ ८ ॥

भा०—( उत् ) और मैं ( साहदेव्यात् ) सैनिक वर्ग के सहित नायकों में उत्तम कुशल ( कुमारात् ) कुत्सित शत्रुओं को मारने वाले वीर पुरुप ( त्या ) उन ( यजता ) परस्पर संग ( प्रयता ) अच्छी प्रकार प्रवद्ध,

प्रयत्नशील ( हरी ) रथ में लगने वाले अश्वों के तुल्य राष्ट्र वा सैन्य बल से चलने वाले दो प्रधान पुरुषों को ( सद्यः ) शीघ्र ही (आ ददे) स्वीकार करूं। शिष्यपक्ष में—( त्या यजता प्रयता हरी ) वे विद्यादाता, पूज्य, उत्तम यम नियम सम्पन्न विद्वान् आचार्य, उपदेशक वा आचार्य आचार्याणी, 'देव' विद्यार्थी जनों के साथ या विद्यादाता गुरु के साथ रहने वाले ( कुमारात् ) कुमार से प्रतिज्ञा ग्रहण करें और वह उनसे विद्या ग्रहण करे।

एष वां देवावश्विना कुमारः साहदेव्यः।
दीर्घायुरस्तु सोमकः ॥ ९ ॥

भा०—हे ( अश्विनौ देवौ ) समस्त विद्याओं में व्याप्त वा अश्व के तुल्य बलवान् और विद्यामार्ग में वेग से जाने वाले विद्यार्थी के स्वामी ( देवौ ) ज्ञान के प्रकाशक, विद्यादाता आचार्य आचार्याणी ( एषः ) यह ( वां ) तुम दोनों का (कुमारः) कुमार ( साहदेव्यः ) विद्याभिलाषी शिष्यों और विद्या के प्रकाशक गुरुओं के सदा साथ रहने वाला है। वह ( सोमकः ) विद्या में पुत्र के तुल्य, स्नातक होकर ( दीर्घायुः अस्तु ) दीर्घायु हो। हे ( देवौ अश्विनौ ) विजिगीषु राजा सेनापति! वीर पुरुषों सहित, शत्रुमारक यह ( सोमकः ) पदाभिषिक्त नायक गण दीर्घायु हो।

तं युवं देवावश्विना कुमारं साहदेव्यम्।
दीर्घायुषं कृणोतन ॥ १० ॥ १६ ॥

भा०—हे ( देवौ अश्विना ) विद्या पारंगत, विद्यादाता गुरुजनो! ( युवं ) आप दोनों मिलकर ( साहदेव्यं ) ज्ञानदाता गुरु के साथ रहने वाले ( तं ) उस ( कुमारं ) कुमार शिष्य को ( दीर्घायुषं कृणोतन ) दीर्घायु बनाओ। ब्रह्मचर्य पालन द्वारा उसे चिरंजीवी बनाओ। इसी प्रकार अश्वादि सैन्य के स्वामी सैन्यपति लोग विजिगीषु पुरुषों के साथ सहोद्योगी शत्रुहन्ता राजा को दीर्घायु करें। प्रयाण के समय, दो ( अश्विनौ ) घुड़सवार नायक के शरीर-रक्षक रूप से भी रहें। इति षोडशो वर्गः ॥

[ १६ ]

वामदेव ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ४, ६, ८, ९, १२, १९ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ त्रिष्टुप्। ७, १६, १७ विराट् त्रिष्टुप्। २, २१ निचृत्पंक्तिः। ५, १३, १४, १५ स्वराट् पंक्तिः। १०, ११, १८, २० भुरिक्पंक्तिः॥
विंशत्यृचं सूक्तम्॥

आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः।
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः॥ १॥

भा०—( ऋजीषी ) ऋजु सरल धर्म के मार्ग से स्वयं जाने और प्रजावर्ग वा सैन्यवर्ग को चलाने वाला ( सत्यः ) सज्जनों में श्रेष्ठ, वीर्यवान् ( मघवान् ) ऐश्वर्यवान्, शत्रुओं से कभी न मारे जाने हारा, वीर पुरुष ( नः ) हमें ( उप आयातु ) प्राप्त हो। और ( अस्य ) इसके ( हरयः ) अश्वों के समान वेग से जाने वाले मनुष्य, वीर पुरुष ( नः उपद्रवन्तु ) वेग से हमारे बीच राजकारण से आते, जाते हों, (तस्मै इत्) उसी की वृद्धि के लिये हम लोग ( सुदक्षम् ) उत्तम बलशाली, शत्रु को उत्तम रीति से दग्ध कर देने में समर्थ, ( अन्धः ) अन्न आदि ऐश्वर्य ( सुषुम ) उत्पन्न करें। वह ( गृणानः ) गुरु के तुल्य आज्ञाएं करता हुआ ( इह )-इस राष्ट्र में ( अभिपित्वं ) सब प्रकार से प्रजा के पालन का कार्य ( करते ) करे।

अव स्य शूराध्वनो नान्तेऽस्मिन्नो अद्य सवने मन्दध्यै।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म॥ २॥

भा०—हे ( शूर ) शूरवीर पुरुष! ( अद्य ) आज ( सवने ) ऐश्वर्य द्वारा अभिषेक करने वा अध्यापन के अवसर में ( अन्ते ) अन्त में (नः) हमें ( मन्दध्यै ) हर्षित आनन्द प्रसन्न होने के लिये ( अध्वनः अन्तेन ) मार्ग की समाप्ति पर अश्वों के समान ( अव स्य ) मुक्त कर। जिससे हम आनन्द विनोद प्राप्त कर सकें, ( वेधाः ) विद्वान् उपदेष्टा ( चिकितुषे )

ज्ञान प्राप्त करने वाले ( असुर्याय ) अज्ञान से युक्त विद्यार्थी के (मन्म) मनन करने योग्य ( उक्थम् ) वचन वेद मन्त्रादि का ( उशना इव ) कामनावान्, प्रीति युक्त वन्धु के तुल्य ( शंसाति ) अनुशासन वा प्रवचन करे। अध्यात्म में—( सवने ) परमेश्वरोपासना में या संसार में हमें परमेश्वर ( अध्वनः अन्ते ) संसार मार्ग के अन्त में परमानन्द में आनन्द लाभ करने के लिये मुक्त करे वह परम ज्ञानी प्रभु हम 'असुर्य' लोकवासी अज्ञानी को ज्ञान-वचन वेद का उपदेश करता है।

**क॒विर्न नि॒ण्यं वि॒दथा॑नि॒ साध॒न्वृषा॒ यत्सेकं॑ विपिपा॒नो अर्चा॑त्।**
**दि॒व इ॒त्था जी॑जनत्स॒प्त का॒रूनह्ना॑ चिच्चक्रुर्व॒युना॑ गृ॒णन्तः॑ ॥ ३ ॥**

भा०—( वृषा ) वर्षण करने वाला सूर्य ( यत् ) जिस प्रकार ( सेकं ) सेचन करने योग्य जल को ( विपिपानः ) विविध प्रकारों से पान करता हुआ और ( विदथानि निण्यं साधन् ) प्राप्त करने योग्य जलों को अन्तरिक्ष में गुप्त रूप से साधता हुआ ( वृषा ) मेघ जिस प्रकार ( सेकं विपिपानः ) सेचने योग्य जल की विशेष रूप से रक्षा करता हुआ ( अर्चात् ) पुनः प्रदान करता है उसी प्रकार मतिमान् पुरुष (निण्यं) गुप्त रूप से, शान्ति पूर्वक ( विदथानि साधन् ) नाना ज्ञानों को धनों के समान प्राप्त करता हुआ ( वृषा ) वाद में वलवान् मेघ वा सूर्य तुल्य ज्ञान प्रकाशक तेजस्वी होकर ( सेकं विपिपानः ) सेचन करने योग्य वीर्य की विशेष रूप से रक्षा करता हुआ ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ और ( सेकं ) विद्यार्थी जनों के प्रदान करने, अभिसेचन वा स्नान करने वाले, आत्मा को शुद्ध करने वाले ज्ञानरस को (विपिपानः) विशेष रूप से पान करता हुआ ( अर्चात् ) अपने गुरुजनों का सदा सत्कार करे, सूर्य जिस प्रकार ( सप्त दिवः ) सात तेजोमय किरणों को प्रकट करता है उसी प्रकार वह विद्वान् पुरुष भी ( दिवः ) ज्ञान में ( सप्त ) सात प्रकार के वा ज्ञान के मार्ग में ( सप्त ) तर्पण करने, आगे वढ़ने वाले ( कारून् ) क्रिया-

शील विद्वानों को ( जीजनन् ) विद्यादान देकर प्रकट करे। ( गृणन्तः ) उपदेश करने वाले गुरु और विद्याभ्यासी शिष्यजन ( अह्ना चित् ) दिन के तुल्य अविनाशी प्रकाश वेद से ( वयुना ) नाना ज्ञानों और कर्मों का ( चक्रुः ) सम्पादन करें। ( २ ) अध्यात्म में—कवि, जीव ( विदथानि ) कर्म फलों को प्राप्त करता है वह ( वृषा ) बलवान् धर्ममेघ होकर आनन्द-रस को पान करता हुआ ईश्वरार्चना करे और प्रकाशमान अपने सातों ज्ञान मार्गों को बलवान् करे। वे सातों उसको ज्ञान देने हारे हों (अह्ना) अविनाशी आत्मा के बल से ज्ञान लाभ करें।

**स्व१र्यद्वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः।**
**अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ॥४॥**

भा०—( यत् अर्कैः ) जिस प्रकार किरणों से ( सुदृशीकं स्वः वेदि ) उत्तम देखने और दिखानेवाला तेज, प्रकाश और तापयुक्त तेज प्राप्त होता है ( यत् ) और जिस प्रकार सूर्य के किरण दिन के समय ( महि ज्योतिः ) बड़ा भारी प्रकाश ( रुरुचुः ) प्रदीप्त करते हैं और वह ( अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे ) अन्धकारमय दुःखकर अंधेरों को नाश कर प्रकाशित करता है उसी प्रकार ( यत् अर्कैः ) जिसके उत्तम विचारों वा मन्त्रों से ( सुदृशीकम् ) उत्तम दर्शन करने योग्य ( स्वः ) ज्ञानप्रकाश और सुख (वेदि) प्राप्त होता है और ( यत् ) जिसके विचार ( वस्तोः ) अधीन बसे प्रजा वा शिष्य जन के लिये ( महि ज्योतिः रुरुचुः ) बड़ा ज्ञानप्रकाश प्रकाशित करते हैं वह ( नृतमः ) पुरुषोत्तम ( अभिष्टौ ) प्रार्थना करने पर ( नृभ्यः ) मनुष्यों को ( विचक्षे ) विविध प्रकार से उपदेश करे और ( अन्धा ) अन्धा बना देने वाले ( दुधिता ) दुःखदायी ( तमांसि ) अज्ञान अन्धकारों को ( चकार ) नाश करे।

**ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्यु१भे आ पप्रौ रोदसी महित्वा।**
**अतश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा भुवना बभूव ॥५॥१७॥**

भा०—जिस प्रकार ( इन्द्रः ) मेघ तमस् को विदारण करने वाला सूर्य ( अमितं ) अविनाशी और अनन्त प्रकाश को ( ववक्षे ) धारण करता है और ( महित्वा रोदसी आ पप्रौ ) महान् सामर्थ्य से भूमि और आकाश दोनों को तेज से पूर्ण करता है, ( यः विश्वा भुवना अभि बभूव ) जो समस्त लोकों में व्यापता है ( अस्य महिमा अतः विरेचि ) उसका महान् सामर्थ्य इस लोक से बहुत बड़ा है। उसी प्रकार ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता राजा ( अमितं ) अपरिमित और शत्रुओं से न नाश करने योग्य बल, सामर्थ्य ( ववक्षे ) धारण करता है ( इन्द्रः ) विद्वान् आचार्य (अमितं ववक्षे) अविज्ञात तत्व वा अविनाशी वेद-ज्ञान का प्रवचन करे। वह (ऋजीषी) ऋजु सरल मार्ग से प्रजाजनों वा शिष्यजनों को ले जाने हारा, धार्मिक ( महित्वा ) अपने महान् सामर्थ्य और पूज्यपद से ( रोदसी ) माता और पिता दोनों के पदों को स्वयं पूर्ण करता है। राजा और आचार्य दोनों प्रजा वा शिष्य के मा बाप के समान है।

प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ॥ रघुवंशे कालिदासः ॥

और ( यः ) जो ( विश्वा ) समस्त ( भुवना ) प्रजाओं को (अभि बभूव) अपने वश करता है ( अतः चित् ) इसी कारण ( अस्य ) इसका ( महिमा ) महान् सामर्थ्य (विरेचि) इस राष्ट्र से कहीं बढ़ कर होता है। इति सप्तदशो वर्गः ॥

विश्वा॑नि श॒क्रो नर्या॑णि वि॒द्वान॒पो रि॑रेच॒ सखि॑भि॒र्निका॑मैः।
अश्मा॑नं चि॒द्ये बि॑भि॒दुर्वचो॑भिर्व्र॒जं गोम॑न्तमु॒शिजो॒ वि व॑व्रुः ॥६॥

भा०—जिस प्रकार वायुगण ( वचोभिः ) गर्जनों से ( अश्मानं ) मेघ को ( बिभिदुः ) छिन्न भिन्न करते हैं और जिस प्रकार ( उशिजः ) कान्तिमान् किरणगण या विद्युतें (गोमन्तं व्रजं वि वव्रुः) किरणों से युक्त नित्य गतिशील सूर्य या गर्जना रूप वाणीयुक्त मेघ को घेरती है। और जिस प्रकार

( निकामैः सखिभिः ) खूब कान्तिमान् सहयोगी किरणों वा मरुतों द्वारा ( शक्रः ) शक्तिमान् सूर्य ( अपः रिरिचे ) जलों का अन्तरिक्ष से वर्षाता है उसी प्रकार ( ये ) जो विद्वान् शक्तिमान् पुरुष ( वचोभिः ) अपने उत्तम वचनों, आज्ञाओं और प्रवचनों, प्रज्ञाओं से (अश्मानं) प्रस्तर या मेघ के तुल्य दृढ़ प्रजा के भोक्ता राजा को भी ( विभिदुः ) भेद नीति से तोड़ डालते हैं और जो ( उशिजः ) धन, मान आदि की कामना करने वाले लोग ( गोमन्तं व्रजं ) गौओं से पूर्ण वाड़े के तुल्य ( गोमन्तं व्रजं ) भूमि के स्वामी, सर्वोपगम्य शत्रु के ऊपर जा पड़ने वाले प्रबल नायक को ( वि वव्रुः ) विशेष रूप से स्वीकार करते हैं उन ( निकामैः ) नित्य कामनावान् ( सखिभिः) मित्रवर्गों सहित ( विद्वान् ) ज्ञानी ( शक्रः ) शक्तिमान् राजा ( विश्वानि नर्याणि ) सब मनुष्यों के हित कार्यों को करे। और ( अपः रिरेच ) उत्तम २ कर्म करे।

**अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन्प्रावत्ते वज्रं पृथिवी सचेताः।**
**प्रार्णांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो ॥ ७ ॥**

भा०—जिस प्रकार ( वज्रं ) अन्धकार का निवारक सूर्य या वेगवान् विद्युत् ( अपः वव्रिवांसं ) जलों के आवरण करने वाले मेघ को (पराहन्) विनाश करता है और ( समुद्रियाणि अर्णांसि प्र ऐनोः ) आकाश के जलों को नीचे गिरा देता है और ( शवसा पतिः भवन् ) जल से समस्त संसार का पालक होता है उसी प्रकार हे ( शूर ) शूरवीर, हे ( धृष्णो ) शत्रुओं को घर्षण, पराजय करने हारे ! तू ( शवसा ) अपने बल से ( पतिः ) प्रजा का पालक ( भवन् ) होकर ( समुद्रियाणि अर्णांसि ) समुद्र के जलों के तुल्य सेना के दलों को ( प्र ऐनोः ) आगे बढ़ा और ( ते वज्रं ) तेरा वज्र, शस्त्रास्त्र बल ( वृत्रं ) बढ़ते हुए और ( अपः वव्रिवांसम् ) प्राप्त प्रजाओं वा राज्य कर्म को रोकते हुए शत्रु को ( परा अहन् ) दूर मार भगावे। और वह (सचेताः) समान चित्त वाला होकर (पृथिवी)

भूमि के समान सर्वाश्रय होकर ( प्र अवत् ) आगे बढ़े वा अच्छी प्रकार रक्षा करे अथवा तेरा शस्त्रास्त्र बल ही रक्षा करे और ( पृथिवी सचेताः ) समस्त पृथिवी की प्रजा समान चित्त होकर ( ते वज्रं प्रावत् ) तेरी शस्त्रास्त्र बल की रक्षा करे ।

**अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत्सरमा पूर्व्यं ते ।**
**स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥८॥**

भा०—जिस प्रकार ( अद्रिं दर्दः ) सूर्य, विद्युत् वा वायु मेघ को अपने तेज वा वेग से छिन्न भिन्न कर देता है ( सरमा ) वेग से ध्वनि करने वाली विद्युत् प्रथम प्रकट होती है। ( गोत्रा रुजन् ) मेघों को छिन्न भिन्न करता हुआ ( वाजम् आदर्षि ) अन्न वा जल को प्रदान करता है। इसी प्रकार हे ( पुरुहूत ) बहुतों से प्रशंसा करने योग्य वा बहुत सी प्रजाओं द्वारा शरण के लिये पुकारे जाने हारे ! राजन् ! ( यत् ) जो तू ( अद्रिं ) अभेद्य शत्रु को ( दर्दः ) विदीर्ण करता, और ( अपः ) आप्त प्रजाजनों का पालन करता है और ( ते ) तेरी ( सरमा ) वेग से शत्रु को उखाड़ फेंकने और मारने वाली सेना और ( सरमा ) उत्तम ज्ञान का उपदेश करने वाली वाणी ( ते ) तेरे ( पूर्व्यम् ) पूर्व विद्वानों वा पूर्वजों द्वारा बनाये अधिकार और राज्य-शासन कार्य को ( आविः भुवत् ) प्रकाशित करे। और तू ( अंगिरोभिः ) सूर्य की किरणों वा अग्नियों के समान तेजस्वी ज्ञान के प्रकाशक विद्वानों से ( गृणानः ) उपदेश किया जाता हुआ ( गोत्रा रुजन् ) पर्वतों वा मेघों को विद्युत् के तुल्य 'गोत्र' अर्थात् भूमि के पालक प्रतिपक्षी राजाओं को ( रुजन् ) तोड़ता हुआ, ( भूरिं वाजम् ) बहुत से ऐश्वर्य, संग्राम, परबल वा ऐश्वर्य को (आदर्षि) भेदता वा प्राप्त करता है ( सः नः नेता ) वह तू हमारा नायक हो।

**अच्छा कविं नृमणो गा अभिष्टौ स्वर्षाता मघवन्नाधमानम् ।**
**ऊतिभिस्तमिषणो द्युम्नहूतौ नि मायावानब्रह्मा दस्युरर्त ॥ ९ ॥**

भा०—हे ( नृमणः ) मनुष्यों के हितों और उत्तम नायक पुरुषों में अपना चित्त देने हारे ! हे ( मघवन् ) ऐश्वर्यवन् ! तू ( स्वर्षाता ) सुख, प्रकाश, धन और शत्रु को सन्ताप और अधीनों को आज्ञा वचन प्रदान करता हुआ, ( अभिष्टौ ) अभीष्ट सिद्धि के लिये ( नाधमानं कविं ) शरण याचना करते हुए क्रान्तदर्शी विद्वान् पुरुष को ( अच्छ गाः ) प्रभु के तुल्य प्राप्त हो और ( नाधमानं कविं अच्छ गाः ) विद्यैश्वर्य सम्पन्न विद्वान् को शिष्यवत् प्राप्त हो। अथवा ( गाः नाधमानं कविं अच्छ ) गौओं, भूमियों और वेद वाणियों या आज्ञाओं की याचना करते हुए विद्वान् तू दाता, गुरु वा शासक होकर प्राप्त हो। तू ( द्युम्नहूतौ ) धन की प्राप्ति कराने वाले संग्रामादि कार्य में ( तम् ) उसको ( ऊतिभिः ) रक्षाकारी सेनादि साधनों से ( अच्छ इषणः ) आगे बढ़ा। और ( मायावान् ) कुटिल मायावी ( अब्रह्मा ) अवेदज्ञ वा विशाल धन बल से रहित ( दस्युः ) प्रजा-नाशक शत्रु ( नि अर्त ) सर्वथा नष्ट हो।

आ द॑स्यु॒घ्ना मन॑सा या॒ह्यस्तं॒ भुव॑त्ते॒ कुत्सः॑ स॒ख्ये निका॑मः।
स्वे योना॒ नि ष॑दतं॒ सरू॑पा॒ वि वां॑ चिकित्सदृत॒चिद्ध॒ नारी॑ ॥१०॥१८॥

भा०—हे राजन् ! ऐश्वर्ययुक्त पुरुष ! तू सदा ( दस्युघ्ना मनसा ) प्रजाविनाशक, दुष्ट पुरुषों के नाश करने वाले चित्त और बल से, विज्ञान से सम्पन्न होकर तू ( अस्तं आ याहि ) अपने गृह को प्राप्त हो। ( कुत्सः ) उत्तम उपदेशों का करने वाला विद्वान् और शत्रुओं को काट गिराने में समर्थ वज्र अर्थात् शस्त्रास्त्र सम्पन्न सैन्य ( ते सख्ये ) तेरे मित्र भाव में ( निकामः ) पूर्ण कामना युक्त हो। उपदेष्टा विद्वान्, वा सैन्य बल और तू राजा वा सेनापति दोनों ( स्वे योनौ ) अपने २ स्थान में ( सरूपा ) रूप, कान्ति, अधिकार को धारण करते हुए ( नि सदतम् ) उच्चासन पर विराजो। ( ऋतचित् नारी ) सत्य वचन की प्रतिज्ञा करने वाली स्त्री जिस प्रकार ( वि चिकित्सत् ) विशेष रूप से विवेक करती और योग्य पुरुष

को प्राप्त होती है उसी प्रकार ( ऋतचित् नारी ) धन सञ्चय करने वाली नरों, मनुष्यों से युक्त, प्रजायुक्त पृथिवी और सत्य वचन से बद्ध नरों, नायक मनुष्यों से युक्त सेना, ( ह ) निश्चय से ( वां ) तुम दोनों को (वि चिकित्सत् ) विशेष रूप से आदर योग्य जाने । अथवा—(नारी मनसा दस्युघ्ना ) स्त्री वा सेना, प्रजा मन से बुरों का नाश करने वाली हो, तू उसको (आ याहि) प्राप्त हो । ( कुत्सः ) जो निन्द्य वा निन्दक, नीच पुरुष ( ते सख्ये निकामः ) तेरे साथ मित्रता करने में निकृष्ट इच्छा वाला हो वह ( अस्तं भुवत् ) उखड़ जाय । (२) हे स्त्री पुरुषो ! (वां) तुम दोनों में से ( नारी ) स्त्री ( सरूपा ऋतचित् सती वि चिकित्सत् ) पति के समान रूप कान्ति वाली और सत्य वचन एवं धन का सञ्चय करने वाली सती, लक्ष्मी होकर विशेष रूप से गृह कार्य जाने । तुम दोनों ( स्वे योनौ निषदतं ) समान रूप से अपने घर में रहो । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

**यासि॑ कुत्से॑न स॒रथ॑मव॒स्युस्तो॒दो वात॑स्य॒ हर्यो॒रीशा॑नः ।**
**ऋ॒ज्रा वाजं॒ न गध्यं॒ युयू॑षन्क॒विर्यदह॒न्पार्या॑य भूषा॑त् ॥ ११ ॥**

भा०—हे राजन् ! तू ( अवस्युः ) प्रजा की रक्षा करना चाहता हुआ, ( वातस्य ) प्रचण्ड वायु के तुल्य बलशाली शत्रु को मूल से उखाड़ देने और कंपा देने में समर्थ स्व सैन्य का ( तोदः ) सञ्चालक और पर-सैन्य का नाशक और ( हर्योः ) वेगवान् अश्वों के तुल्य स्व और पर राष्ट्र के नायकों का ( ईशानः ) स्वामी वा ( वातस्य हर्योः ईशानः ) वायु वेग से जाने वाले रथ के अश्वों का स्वामी होकर ( कुत्सेन ) वज्र वा शस्त्रास्त्र बल को लेकर ( सरथम् ) अपने रथ सैन्यों सहित ( यासि ) प्रयाण कर ( न ) जिस प्रकार ( गध्यं युयूषन् वाजं अहन् पार्याय भवति ) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को प्राप्त करने की इच्छा वाला पुरुष वेगवान् रथ को प्राप्त करता है और दूर स्थित मार्ग को पार करने में समर्थ होता है उसी प्रकार तू ( कविः ) क्रान्तदर्शी होकर ( ऋज्रा ) ऋजु, सरल, धर्मयुक्त

कार्यों को ( वाजं ) संग्राम, बल, वेग वा ऐश्वर्य और ( गध्यं ) ग्रहण करने योग्य पदार्थ को ( युयूषन् ) प्राप्त करना चाहता हुआ, ( अहन् ) प्राप्य उद्देश्य तक पहुंच और ( पार्याय भूषात् ) प्रजा पालन योग्य पद, ऐश्वर्य को प्राप्त करने और शत्रु संकट को पार करने में समर्थ हो।

कुत्साय शुष्णमशुषं नि बर्हीः प्रपित्वे अह्नः कुयवं सहस्रा।
सद्यो दस्यून्प्र मृण कुत्स्येन प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीके॥ १२॥

भा०—हे राजन्! हे सेनापते! तू ( कुत्साय ) वेदों के उपदेश करने वाले ज्ञानी पुरुष के उपकार के लिये वा निन्दित व्यवहार के दमन के लिये ( अशुषं ) सुखादि से रहित दुःख वा दुःखदायी और अन्यों द्वारा न शोषण होने वाले ( शुष्णं ) स्वपक्ष का शोषण करने वाले शत्रु को ( निबर्हीः ) विनाश कर। और ( अन्हः प्रपित्वे ) अविनाशी, बल प्राप्त हो जाने पर ( सहस्रा ) हज़ारों, ( कुयवम् ) कुत्सित यव अर्थात् निन्दित संगी या द्वेषी पुरुष को भी ( निबर्हीः ) विनाश कर और तू ( कुत्स्येन ) निन्दित जनों के योग्य, एवं शत्रु को काट गिराने वाले वज्र शस्त्रास्त्र युक्त सैन्य से ( सद्यः दस्यून् प्र मृण ) बहुत शीघ्र प्रजा के विनाशकों को आगे बढ़कर नाश कर। और ( अभीके ) समीप या संग्राम में विद्यमान ( चक्रं ) पर-सैन्य चक्र को ( सूरः ) सूर्य तुल्य तेजस्वी होकर ( प्र वृहतात् ) विनाश किया कर।

त्वं पिप्रुं मृगयं शूशुवांसमृजिश्वने वैदथिनाय रन्धीः।
पंचाशत्कृष्णा नि वपः सहस्रात्कं न पुरो जरिमा वि दर्दः॥१३॥

भा०—हे राजन्! ( त्वं ) तू ( वैदथिनाय ) यज्ञवान् वा विज्ञान और ऐश्वर्यवान् प्रजागण के सन्तान रूप ( ऋजिश्वने ) उत्तम सरल व्यवहारों से बढ़ने वाले, ऋजु, धर्म-मार्ग में चलने वाले इन्द्रियों से युक्त धर्मात्मा के हित के लिये ( पिप्रुं ) राष्ट्र में फैले हुए ( मृगयं ) दूसरों के

धनादि खोजने वाले (शुशुवांसं) बल में बढ़ने वाले दुष्ट पुरुष को (रन्धीः) अपने वस कर। और तू अपने (पञ्चाशत्) ५० (सहस्रा) हज़ार (कृष्णा) शत्रु बल का कर्षण करने में समर्थ सैन्यों को (नि वपः) स्थान २ पर रख, और शत्रु के इतने सैन्यों को निर्मूल कर। और (जरिमा) बुढ़ापा (अत्कं न) जिस प्रकार रूप को नाश कर देता है उसी प्रकार तू (पुरः) शत्रुओं के नगरों को (वि दर्दः) विविध प्रकारों से छिन्न भिन्न कर।

**सूर॑ उपाके तन्व१ं॒न्दधा॑नो॒ वि यत्ते॒ चेत्य॒मृत॑स्य॒ वर्पः॑। मृ॒गो न ह॒स्ती तवि॑षीमुषा॒णः सिं॒हो न भी॒म आयु॑धानि॒ बिभ्र॑त्॥ १४॥**

भा०—(सूरः उपाके) सूर्य के समीप जिस प्रकार (तन्वं दधानः) अपने विस्तृत रूप को मेघ धारण करता है तब उसका (अमृतस्य वर्पः चेति) जल का बना स्वरूप प्रकट होता है, वह (तविषीम्) बलवती विद्युत् को (उषाणः) प्रदीप्त करता हुआ (मृगः हस्ती न) शुद्ध श्वेत हस्ती के तुल्य वा (आयुधानि बिभ्रत्) विद्युत् प्रहारों को धारण करता हुआ (भीमः सिंहः न) भीषण सिंह के समान भासता है और जिस प्रकार (सूरः) स्वयं सूर्य भी (तन्वं दधानः) व्यापक प्रकाश या सूक्ष्म तेजोमय शक्ति को धारण करता हुआ और उसका (अमृतस्य वर्पः चेति) अविनाशी स्वरूप प्रकट होता है। वह (तविषीम् उषाणः) बड़ी बलवती पृथ्वी को किरणों से दग्ध करता हुआ, हस्तवान् किरणवान् होकर हाथी के तुल्य एवं किरणों से जलवायु को शुद्ध करता हुआ होने से 'मृग' है और शस्त्रों तुल्य किरणों को धारता हुआ भयानक सिंहवत् तेजस्वी है उसी प्रकार (यत्) जब (सूरः) तेजस्वी राजा, सेनापति (उपाके) प्रजा के समीप (तन्वं) तेजस्वी शरीर और विस्तृत सेना को (दधानः) धारण पोषण करता हुआ रहता है (अमृतस्य) शत्रुओं से न मारे जाने योग्य (ते) तेरा व तेरे सैन्य का (वर्पः) स्वरूप

( चेति ) प्रकट होता है, तभी वह ( तविषीम् ) बलवती, महती सेना को वस्त्र के समान ( उपाणः ) धारण करता हुआ ( मृगः हस्ती न ) हाथी पशु के समान विशाल बलवान् एवं ( हस्ती ) हनन साधनों से सम्पन्न होकर ( मृगः ) राज्य के कण्टक शोधन करने में समर्थ, और ( आयुधानि बिभ्रत् ) प्रहार करने योग्य शस्त्रास्त्रों और सैन्यों को धारण पोषण करता हुआ ( भीमः सिंहः नः ) भयंकर सिंह के समान ( वि चेति) प्रतीत होता है ।

**इन्द्रं कामा वसूयन्तो अग्मन्त्स्वर्मीळ्हे न सवने चकानाः ।**
**श्रवस्यवः शशमानास उक्थैरोको न रण्वा सुदृशीव पुष्टिः॥१५॥१९**

भा०—( कामाः ) ऐश्वर्यादि कामनाओं को करने वाले ( वसूयन्तः ) धनादि चाहने वाले ( स्वर्मीळ्हे ) सुख और तेज से युक्त संग्राम के तुल्य ( सवने ) शासन में ( चकानाः ) कान्तियुक्त, तेजस्वी पुरुष ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्ययुक्त वे ( उक्थैः ) उत्तम वचनों से ( शशमानासः ) स्तुति करते हुए ( श्रवस्यवः ) के श्रवण करने योग्य ज्ञान के अभिलाषी शिष्य के तुल्य स्वयं अन्न, यश की इच्छा करते हुए राजा को गुरुवत् ( अग्मन् ) प्राप्त हों वह राजा वा प्रजा परस्पर ( ओकः न ) गुरु गृह के समान हों और (रण्वा) रमणीय, रौनकदार ( सुदृशी इव ) उत्तम दर्शनीय एक सुलोचना स्त्री के तुल्य ( पुष्टिः ) पोषक सम्पदा के तुल्य हों । इत्येकोनविंशो वर्गः॥

**तमिद्व इन्द्रं सुहवं हुवेम यस्ता चकार नर्या पुरूणि ।**
**यो मावते जरित्रे गध्यं चिन्मक्षू वाजं भरति स्पार्हराधाः॥१६॥**

भा०—( यः ) जो ( ता ) उन २ नाना प्रकार के ( पुरूणि ) बहुत से (नर्या) मनुष्यों के हित के कार्य (चकार) करता है उस (सुहवं) उत्तम नाम वाले को ( इत् ) ही हम लोग ( इन्द्रं ) 'इन्द्र' ( हुवेम ) कहें वा उत्तम रीति से, सुगृहीत नाम से स्मरण करने योग्य ऐश्वर्यवान्

पुरुष को ही आदरपूर्वक बुलावें। और ( यः ) जो ( मावते जरित्रे ) मेरे तुल्य स्तुति करने वाले को ( गध्यं चित् ) ग्रहण करने योग्य (वाजं) ऐश्वर्य ( चित् ) भी ( मक्षू ) बहुत शीघ्र ( भरति ) प्रदान करता है। वह ( स्पार्हराधाः ) अभिलाषा करने योग्य धनों का स्वामी भी 'इन्द्र' ही कहाने योग्य है।

**तिग्मा यदन्तरशनिः पताति कस्मिञ्चिच्छूर मुहुके जनानाम्।**
**घोरा यदर्य समृतिर्भवात्यध स्मा नस्तन्वो बोधि गोपाः ॥१७॥**

भा०—हे ( शूर ) शूरवीर ! ( यद् अन्तः ) जिस के बीच में ( तिग्मा अशनिः ) तीक्ष्ण वज्राघात वा विद्युत् अस्त्र ( पताति ) पड़े, ऐसे ( जनानाम् ) मनुष्यों के ( कस्मिन् चित् मुहुके ) किसी भी युद्ध में और हे ( अर्य ) स्वामिन् ! ( यद् ) जब ( घोरा ) घोर, अति भयानक ( समृतिः ) संग्राम ( भवाति ) होता हो ( अध ) तब भी तू ( गोपाः ) रक्षा करने हारा, जितेन्द्रिय एवं वाणी और पृथिवी का रक्षक होकर (नः) हमारे ( तन्वः ) शरीरों को ( बोधि स्म ) अपने ज्ञान में रख अथवा ( नः तन्वः ) हमारी विस्तृत सेनाओं को सचेत कर।

**भुवोऽविता वामदेवस्य धीनां भुवः सखावृको वाजसातौ।**
**त्वामनु प्रमतिमा जगन्मोरुशंसो जरित्रे विश्वध स्याः ॥ १८॥**

भा०—हे ( विश्वध ) समस्त राष्ट्र वा विश्व को धारण करने हारे राजन् ! प्रभो ! विद्वन् ! तू (वामदेवस्य) उत्तम रीति से सेवन करने योग्य पदार्थों के दाता और उत्तम ज्ञानों के प्रकाशक दानी वा विद्वान् प्रजाजन की ( धीनां ) बुद्धियों और सत्कर्मों का ( अविता ) रक्षक और प्रेरक (भुवः) हो। तू ( वाजसातौ ) ऐश्वर्य को प्राप्त करने और दान करने के काल में वा युद्धादि में, उसका ( अवृकः ) चोर के छल कपटादि से रहित सच्चा ( सखा ) मित्र ( भुवः ) हो। हम ( त्वाम् प्रमतिम् अनु आ ज-

गन्म ) तुझ उत्तम ज्ञानवान् का अनुसरण करें। तू ( जरित्रे ) स्तुतिकर्त्ता वा अध्येता शिष्य को ( ऊरुशंसः स्याः ) वहुत सी विद्याओं का उपदेश करने वाला हो।

एभिर्नृभिरिन्द्र त्वायुभिष्ट्वा मघवद्भिर्मघवन्विश्व आजौ।
द्यावो न द्युम्नैरभि सन्तो अर्यः क्षपो मदेम शरदश्च पूर्वीः ॥१९॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! हे अज्ञाननाशक राजन्! विद्वन्! हे ( मघवन् ) ऐश्वर्यवन्! ( एभिः ) इन ( त्वायुभिः ) तुझे चाहने वाले, तेरे प्रेमी ( मघवद्भिः ) उत्तम धन सम्पन्न ( एभिः नृभिः ) इन नायक पुरुषों सहित हम ( विश्वे ) सब लोग ( आजौ ) युद्ध में ( द्युम्नैः द्यावः न ) तेजों सहित सूर्य किरणों के तुल्य धनों से सम्पन्न होकर ( अर्यः ) शत्रुओं को ( अभि सन्तः ) पराजित करते हुए ( पूर्वीः क्षपः शरदः च ) पूर्व की पुरातन और आगामी भी वहुत सी रातों और वर्षों तक ( मदेम ) हर्षयुक्त होकर रहे और आगे भी रहें। अर्थात् सब दिनों, सब वर्षों सुख से रहें।

एवेदिन्द्राय वृषभाय वृष्णे ब्रह्माकर्म भृगवो न रथम्।
नू चिद्यथा नः सख्या वियोषदसन्न उग्रोऽविता तनूपाः ॥२०॥

भा०—( भृगवः रथं न ) लोह आदि धातु को तपा कर नाना पदार्थ वनाने वाले, गतिशील साधनों को धारण करने वाले विद्वान् शिल्पी लोग जिस प्रकार ( रथम् ) वेग से जाने योग्य रथ को वना कर तैयार करते हैं ( एव इत् ) उसी प्रकार हम लोग ( वृषभाय ) वलवान् ( वृष्णे ) राजा के प्रवन्ध करने में कुशल, ( इन्द्राय ) ऐश्वर्यवान् पुरुष के लिये हम ( ब्रह्म अकर्म ) महान् ऐश्वर्य उत्पन्न करें, उस महान् सुखों के वर्षक प्रभु के लिये ( ब्रह्म ) वेद का मनन उच्चारण आदि करें। ( यथा ) जिससे ( नू चित् ) शीघ्र ही वह ( नः ) हमें ( सख्या ) हमारे मित्र गण से

( वि योषत् ) मिलाये रक्खे अथवा ( नू चित् नः सख्या वियोषत् ) हमारे साथ किये मित्रभावों को पृथक् न करे, न तोड़े। वह ( उग्रः ) बलवान् ( अविता ) रक्षक (नः) हमारे ( तनूपाः ) शरीरों का रक्षक ( असत् ) बना रहे।

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ।२१।२०।

भा०—( नु स्तुतः ) स्तुति करने योग्य और ( नु गृणानः ) अन्यों को उपदेश करता हुआ हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! तू ( नद्यः न ) जलों से नदियों के समान ( जरित्रे ) स्तुतिशील प्रजाजन और अध्ययनशील विद्यार्थी जन के हितार्थ ( इषं ) अन्न, वृष्टि एवं कामना को ( पीपेः ) पूर्ण कर। हे ( हरिवः ) मनुष्यों के स्वामिन् ! अश्वों के स्वामिन् सेनापते ! ( ते ) तेरे लिये ( नव्यं ) अति उत्तमोत्तम ( ब्रह्म ) ऐश्वर्य उत्पन्न ( अकारि ) किया जाय, हम लोग ( धिया ) ज्ञान वाली बुद्धि और कर्म द्वारा ( सदासाः ) भृत्यों सहित वा सदा ऐश्वर्य भोक्ता और दानशील होते हुए ( रथ्यः ) रथों के स्वामी होकर ( स्याम ) रहें। इति विंशो वर्गः ॥

## [ १७ ]

वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ पंक्तिः। ७, ९ भुरिक् पंक्तिः। १४, १६ स्वराट् पंक्तिः। १५ याजुषी पंक्तिः। निचृत्पंक्तिः। २, १२, १३, १७, १८, १९ निचृत् त्रिष्टुप्। ३, ५, ६, ८, १०, ११ त्रिष्टुप्। ४, २० विराट्त्रिष्टुप्॥ एकविंशत्यृचं सूक्तम्॥

त्वं महाँ इन्द्र तुभ्यं ह क्षा अनु क्षत्रं मंहना मन्यत द्यौः।
वृत्रं शवसा जघन्वान्त्सृजः सिन्धूँरहिना जग्रसानान्॥ १॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन्तः ! ( त्वं ) तू ( महान् ) गुणों और शक्तियों में महान्, पूजनीय है। ( क्षाः ) भूमिएं और भूमि

निवासी प्रजाएं और ( द्यौः ) ज्ञान प्रकाश से युक्त विद्वान्‌जन ( मंहना ) महान् होकर ( तुभ्यं क्षत्रं ) तुझे ही बल, वीर्य, राज्य को ( अनु मन्यत ) प्राप्त करने की अनुमति दें, तेरे राज्य को चाहें। सूर्य वा वायु जिस प्रकार ( शवसा ) बलपूर्वक तेज से ( वृत्रं जघन्वान् ) मेघ को प्रहार करता है, उसी प्रकार तू ( शवसा ) सैन्य बल से ( वृत्रं ) अपने बढ़ते शत्रु को ( जघन्वान् ) नाश करने हारा हो। और ( अहिना ) मेघ या सूर्य द्वारा ( जग्रसानान् ) किरणों द्वारा ग्रस्त हुई ( सिन्धून् ) बहने वाली जल-धाराओं को विद्युत् जिस प्रकार ( सृजः ) उत्पन्न करता है उसी प्रकार ( अहिना ) आक्रमणकारी शत्रु द्वारा ( जग्रसानान् ) वशीकृत ( सिन्धून् ) वेग युक्त सेनाओं को ( सृजः ) भगा देते हो अथवा ( अहिना ग्रसमानान् ) आगे बढ़ते बल वा धन बल से शत्रु सेनाओं को ग्रसती हुई स्व सेनाओं को सञ्चालित कर, वा ऐश्वर्य या मेघादि द्वारा अन्नादि प्राप्त करती हुई प्रजाओं को ( सृजः ) सन्मार्ग में चला।

**तव॑ त्वि॒षो जनि॑मन्रेजत॒ द्यौ रेज॒द्भूमि॑र्भि॒यसा॒ स्वस्य॑ म॒न्योः।**
**ऋ॒घा॒यन्त॑ सु॒भ्व१॒॑ः पर्व॑तास॒ आर्द॒न्धन्वा॑नि स॒रय॑न्त॒ आपः॑ ॥२॥**

भा०—हे ( जनिमन् ) उत्तम जन्म वाले! हे सब रत्नों और अन्नों को उत्पन्न करने वाली भूमि के स्वामिन्! राजन्! ( तव ) तेरे ( त्विषः ) सूर्यवत् कान्ति, तेज वा प्रताप से ( द्यौः रेजत ) आकाश कांपता है। और ( स्वस्य ) तेरे अपने ( भियसा ) भय से और ( मन्योः ) क्रोध से ( भूमिः ) भूमि ( रेजत् ) कांपे। ( सुभ्वः ) उत्तम २ वृष्टि, अन्नादि पदार्थों को उत्पन्न करने वाली भूमियां और उत्तम ओषधि आदि जनक ( पर्वतासः ) पर्वतों के तुल्य मेघ और उत्तम भूमियों के स्वामी, उत्तम सामर्थ्यवान् प्रजापालक जन ( ऋघायन्त ) तेरे बल से बाधित हों ( आर्दन् ) प्रजा की पीड़ाओं का नाश करें। वे ( धन्वानि ) निर्जल स्थलों की तरफ़ ( आपः ) जलों को ( सरयन्त ) प्राप्त करावें, नहर, झरने

आदि बहावें। ( २ ) परमेश्वर के पक्ष में—प्रभु के तेज से सूर्य चलता है, उसके भय से और ज्ञान, बल से भूमि चलती है।

भिनद्गिरिं शवसा वज्रमिष्णन्नाविष्कृण्वानः सहसान ओजः।
वधीद्वृत्रं वज्रेण मन्दसानः सरन्नापो जवसा हतवृष्णीः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार ( वज्रम् इष्णन् ) विद्युत् को प्रेरित करता हुआ सूर्य वा प्रबल वायु ( गिरिं भिनत् ) मेघ को छिन्न भिन्न करता है और ( वज्रेण वृत्रं वधीत् ) वज्र से सूक्ष्म जल मय मेघ को आघात करता है, और ( हतवृष्णीः ) ताड़ित हुए वर्षणशील मेघ से युक्त ( आपः जवसा सरन् ) जलधाराएं वेग से बह निकलती हैं। उसी प्रकार वीर सेनापति वा राजा ( सहसानः ) शत्रुओं को पराजित करता हुआ, और ( ओजः ) बल, पराक्रम प्रकट करता हुआ ( वज्रम् इष्णन् ) शस्त्रास्त्र बल को प्रेरित करता हुआ ( गिरिम् ) पर्वत तुल्य अचल और मेघ तुल्य शस्त्रास्त्रवर्षी, एवं स्व प्रजा के धनापहारी दुष्ट शत्रु को ( शवसा ) बल और ज्ञान के द्वारा ( भिनत् ) भेद नीति से तोड़ फोड़ डाले। ( मन्दसानः) स्वयं खूब प्रसन्न रहकर ( वज्रेण ) शस्त्रास्त्र बल से ( वृत्रं ) बाधक, नगररोधी और बढ़ते हुए शत्रु को ( वधीत् ) विनाश करे, दण्डित करे, और ( हतवृष्णीः ) मारे गये बलवान् पुरुषों के ( आपः ) रुधर प्रवाह और जलों के समान भय कातर सैन्य भी (जवसा) वेग से ( सरन् ) भागें।

सुवीरस्ते जनिता मन्यत द्यौरिन्द्रस्य कर्ता स्वपस्तमो भूत्।
य ईं जजान स्वर्यं सुवज्रमनपच्युतं सदसो न भूम ॥ ४ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार ( स्वर्यं ) आकाश से गिरने योग्य जल को और ( सुवज्रम् ) उत्तम विद्युत् को जो ( सदसः अनपच्युतम् न भूम ) अपने मेघ से न च्युत हो, और महान् सामर्थ्य युक्त हो उसको उत्पन्न करता है वह सूर्य स्वयं ( द्यौः ) तेजोयुक्त, ( सुवीरः ) उत्तम वीर्यवान्

( इन्द्रस्य कर्त्ता ) मेघ के जल विदारण समर्थ विद्युत् का उत्पादक और ( सु अपस्तमः ) उत्तम जलों वा कर्मों को उत्पन्न करने वाला और ( जनिता ) सब ओषधि अन्नादि का उत्पादक ( मन्यत ) माना जाता है उसी प्रकार हे राजन् ! ( यः ) जो पुरुष वा सेनानायक ( स्वर्यं ) शत्रुओं को संताप और घोर शब्द को उत्पन्न करने वाले ( ईं ) इस ( सदसः ) अपने स्थान वा पद से ( अनपच्युतम् ) न फिसलने वाले सुदृढ़, ( सुवज्रम् ) उत्तम शस्त्रास्त्र और सैन्य बल को ( भूम ) बहुत मात्रा में ( जजान ) उत्पन्न करता है ( सः ) वह ( सुवीरः ) उत्तम वीर पुरुषों से युक्त, (द्यौः) तेजस्वी, भूलोक ( ते इन्द्रस्य ) तुझ ऐश्वर्यवान् राजा का (जनिता) उत्पादक ( मन्यत ) माना जाने योग्य है। वही ( कर्त्ता ) कार्य करने में समर्थ ( सु अपस्तमः ) उत्तम कर्मों का करने वाला भी ( भूत् ) हो। हम भी उसके ( सदसः न भूम ) सभासद् के समान हों।

**य एक इच्च्यावयति प्र भूमा राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः।**
**सत्यमेनमनु विश्वे मदन्ति रातिं देवस्य गृणतो मघोनः ॥५॥२१॥**

भा०—जिस प्रकार ( इन्द्रः ) विद्युत् वा सूर्य ( एकः इत् भूम प्रच्यावयति ) अकेला ही बहुत जल को नीचे गिरा देता है और ( कृष्टीनां राजा ) जलादि खींचने वाले किरणों और लोकों को आकर्षण करने वाले बलों का ( राजा ) स्वामी है उसी प्रकार ( यः ) जो ( एक इत् ) अकेला ही ( भूम ) बहुत से शत्रु दल को ( प्र च्यावयति ) गिराता, संग्राम-भूमि से भगा देता है और ( भूम प्र च्यावयति ) बहुत से राज्यों को सञ्चालित करता है और जो ( कृष्टीनां ) कर्षणशील कृषक प्रजाओं और शत्रुओं का कर्षण, पीड़न करने वाले सैन्यों के बीच (राजा) उनका स्वामी ( पुरुहूत ) बहुतों से प्रशंसित है वही ( इन्द्रः ) सचमुच 'इन्द्र' अर्थात् अन्न का देने वाला और शत्रुओं को विदारण करने में समर्थ सेनापति है। ( विश्वे ) समस्त लोक ( सत्यम् ) सत्याचरणयुक्त, न्यायशील ( एनं )

इसको पाकर ही (अनु मदन्ति) उसके साथ हर्षित होते हैं और (मघोनः) ऐश्वर्यवान् (गृणतः) उत्तम उपदेष्टा (देवस्य) दानशील पुरुष के ही (रातिम्) दान को प्राप्त करके ही सब प्रसन्न होते हैं। इत्येकविंशो वर्गः॥

**स॒त्रा सोमा॑ अभवन्नस्य॒ विश्वे॑ स॒त्रा मदा॑सो बृह॒तो मदि॑ष्ठाः।**
**स॒त्राभ॑वो॒ वसु॑पति॒र्वसू॑नां॒ दत्रे॒ विश्वा॑ अधिथा इन्द्र कृ॒ष्टीः॥६॥**

भा०—(अस्य) इस राजा वा विद्वान् पुरुष के (सोमाः) पुत्र वा शिष्य एवं अधीन प्रेरित वा अभिषिक्त पदाधिकारी जन सब (सत्रा) सत्य व्यवहार से युक्त, ईमानदार (अभवन्) हों। और (विश्वे) सब प्रजाजन (सत्रा) एक साथ वा सत्य व्यवहार से (मदासः) स्वयं हर्षित होने वाले (बृहतः) बड़े (मदिष्ठाः) खूब आनन्द प्रसन्न हों। (वसूनां) राष्ट्र में वा लोक में बसी प्रजाओं के बीच में (वसुपतिः) सब जीवों और ऐश्वर्यों का स्वामी पुरुष भी (सत्रा अभवः) सत्य व्यवहारवान् हो। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् अन्न धनों के देनेहारे और शत्रुओं के नाशक राजन्! तू (दत्रे) दान योग्य ऐश्वर्य वा अन्न सुवर्णादि के प्राप्त करने के लिये (विश्वाः) सब प्रकार की (कृष्टीः) कृषि प्रधान प्रजाओं और शत्रुपीड़क सेनाओं को भी (अधिथाः) पालन पोषण कर।

**त्वम॑ध प्रथ॒मं जाय॑मा॒नोऽमे॒ विश्वा॑ अधिथा इन्द्र कृ॒ष्टीः।**
**त्वं प्रति॑ प्र॒वत॑ आ॒शया॑न॒महिं॒ वज्रे॑ण मघव॒न्वि वृ॑श्चः॥७॥**

भा०—हे राजन्! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं) तू (जायमानः) अपने बल पराक्रमों द्वारा प्रकट होकर सूर्य के तुल्य (प्रथमम्) सबसे प्रथम (अमे) भय के अवसर पर अथवा (विश्वाः कृष्टीः) समस्त प्रजाओं और सेनाओं का (अमे) गृह में पुत्रों को गृहपति के समान (अधिथाः) धारण पोषण कर (प्रवतः प्रति आशयानम्) उत्तम वा निम्न देशों में जाने वाले (अहिम्) मेघ को सूर्य के समान सर्पवत्

कुटिल वा मुकाबले पर आकर आघात करने वाले शत्रु को हे ( मघवन् ) ऐश्वर्यवन् ! पूज्य ! तू ( वज्रेण विवृश्चः ) विविध प्रकार से वृक्ष को कुठार के समान शस्त्रास्त्र बल से काट डाल ।

सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभं सुवज्रम् ।
हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः ॥८॥

भा०—हे प्रजावर्ग ! तुम लोग ( सत्राहणं ) सत्य, न्याय से असत्य अन्यायाचरण को नाश करने वाले, ( दधृषिं ) दुष्टों को गर्वरहित करने वाले, ( तुम्रम् ) स्व-सेना को अपने अधीन और पर सेना को परे चलाने वाले, ( इन्द्रं ) ऐश्वर्यवान् ( महाम् ) बड़े ( अपारं ) समुद्र के समान अपार, गम्भीर एवं अपरिमित बल विद्या से युक्त, (वृषभं) बलवान् (सुवज्रम् ) उत्तम शस्त्रास्त्र से सम्पन्न पुरुष को प्राप्त करें । ( यः ) जो (वृत्रं) अपने बढ़ते शत्रु को ( हन्ता ) दण्ड देता, ( उत ) और ( वाजंसनिता ) ऐश्वर्य का दान और यथायोग्य विभाग करता, और ( सुराधाः ) उत्तम धन से युक्त होकर ( मघानि दाता ) उत्तम धनों को प्रदान करता है वही ( मघवा ) मघवा, सच्चा ऐश्वर्यवान् है ।

अयं वृतश्चातयते समीचीर्य आजिषु मघवा शृण्व एकः ।
अयं वाजं भरति यं सनोत्यस्य प्रियासः सख्ये स्याम ॥ ९ ॥

भा०—( अयं ) यह ( वृतः ) मुख्य पद पर वरण किया जाकर ( समीचीः ) एक साथ आक्रमण करने वाली शत्रु सेनाओं को भी (एकः) अकेला ही (चातयते) विनाश करे । और यह विद्वान् आचार्य, (समीचीः) समान भाव से प्राप्त होने वाली ( वृतः ) गुरु को घेर बैठने वाली शिष्य पंक्तियों को ( चातयते ) शिक्षित करे । ( यः ) जो वीर पुरुष ( मघवा ) ऐश्वर्यवान् होकर ( एकः ) अकेला, अद्वितीय पराक्रमी ( आजिषु ) संग्रामों में ( शृण्वे ) सुना जाता है । ( अयं वाजं भरति ) वह ज्ञान, धनैश्वर्य को

धारण करता और अन्यों तक पहुंचाता है। ( यं सनोति ) जिसको सब कोई प्रजाजन कर, दान उपहार रूप में प्रदान करता है, ( अस्य सख्ये ) उसके मैत्रीभाव में हम ( प्रियासः ) प्रिय होकर ( स्याम ) रहें।

**अ॒यं शृ॑ण्वे॒ अध॒ जय॑न्नु॒त घ्नन्न॒यमु॒त प्र कृ॑णुते यु॒धा गाः।**
**य॒दा स॒त्यं कृ॑णु॒ते म॒न्युमिन्द्रो॒ विश्वं॑ दृ॒ळ्हं भ॑यत॒ एज॑द॒स्मात् १०।२२**

भा०—( अध ) और ( अयं जयन् ) यह विजय करता हुआ (उत) और ( अयम् घ्नन् ) शत्रुओं को दण्ड देता हुआ ( शृण्वे ) प्रख्यात हो। ( उत ) और ( अयम् युधा ) यह युद्ध द्वारा ( गाः ) भूमियों, उनकी निवासी प्रजाओं को भी ( युधागाः इव ) प्रहार से पशुओं के समान ( प्र कृणुते ) अपने वश करके उनको उत्तम बनावे ( यदा इन्द्रः ) जब ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता राजा ( सत्यं ) सत्य, न्याय के अनुकूल रहकर ( मन्युम् ) क्रोध ( कृणुते ) प्रकट करता है तब ( दृळहं विश्वे ) दृढ़, विश्व भी (अस्मात्) इससे (भयते) भय करता और (एजत्) कांपता है। इति द्वाविंशो वर्गः॥

**समिन्द्रो॒ गा अ॑जय॒त्सं हिर॑ण्या॒ सम॑श्वि॒या म॒घवा॒ यो ह॑ पू॒र्वीः।**
**ए॒भिर्नृभि॒र्नृत॑मो अ॒स्य शा॒कै रा॒यो वि॑भ॒क्ता स॑म्भ॒रश्च॒ वस्वः॑॥११॥**

भा०—( यः ) जो ( इन्द्रः ) शत्रुहन्ता सेनानायक ( गाः सम् अजयत् ) समस्त भूमियों को एक साथ विजय कर लेता है ( हिरण्या सम् अजयत् ) वह समस्त सुवर्णादि धनों को भी विजय करता है वह ( अश्विया ) अश्वों से युक्त सेनाओं को ( सम् अजयत् ) अच्छी प्रकार विजय करता है। और वह ( पूर्वीः ) अपने से पूर्व विद्यमान प्रजाओं को भी विजय करता है, वह ( नृतमः ) सब नायकों में श्रेष्ठ नायकोत्तम ( एभिः शाकैः नृभिः ) इन शक्तिशाली नायकों द्वारा ( अस्य रायः ) इस समस्त ऐश्वर्य का (विभक्ता) विभाग करने और विविध रूपों में सेवन करने वाला और ( वस्वः ) समस्त बसे राष्ट्र और ऐश्वर्य का ( सम्भरश्च ) अच्छी प्रकार धारण पोषण करने हारा होता है।

कियत्स्विदिन्द्रो अध्येति मातुः कियत्पितुर्जनितुर्यो जजान।
यो अस्य शुष्मं मुहुकैरियर्ति वातो न जूतः स्तनयद्भिरभ्रैः ॥१२॥

भा०—( यः ) जो ( मुहुकैः ) वार २ कार्य करते हैं ऐसे सहकारी पुरुषों सहित (अस्य) इस राष्ट्र के ( शुष्मं ) शत्रु शोषक वल को (इयर्ति) सञ्चालित करता और ( स्तनयद्भिः ) गर्जनाशील ( अभ्रैः ) मेघों से (जूतः ) अधिक वेगवान् ( वातः ) वायु के तुल्य है। ( यः ) जो ( जजान ) स्वयं उत्पन्न होता है वह ( इन्द्रः ) शत्रुहन्ता राजा ( मातुः ) माता के तुल्य इस पृथ्वी का ( कियत् स्वित् अधि एति ) कितना अंश प्राप्त करे और ( पितुः ) पालन करने वाले और ( जनितुः ) अन्नादि उत्पन्न करने वाले का ( कियत् ) कितना अंश हो यह विवेक करने योग्य वात है। ( २ ) परमेश्वर पक्ष में—( यः जजान ) जो जगत् को उत्पन्न करता है और ( मुहुकैः ) वार वार जगत् को वनाने वाले विकृतियुक्त कारणों से इस जगत् के वल को चलाता है। वह ( इन्द्रः ) इन्द्र परमेश्वर ( मातुः ) प्रकृति के और ( पितुः ) पालक सूर्य और ( जनितुः ) प्रकट कारक वायु वा जल के ( कियत् स्वित् अधि एति ) कितना २ अंश प्राप्त है। यह नहीं कहा जा सकता है।

क्षियन्तं त्वमक्षियन्तं कृणोतीयर्ति रेणुं मघवा समोहं।
विभञ्जनुरशनिमाँ इव द्यौरुत स्तोतारं मघवा वसौ धात् ॥१३॥

भा०—जो ( मघवा ) उत्तम धन से सम्पन्न होकर ( समोहं ) मोह से युक्त ( रेणुं ) किये अपराध को ( इयर्ति ) दूर करता है, वही तू ( क्षियन्तं ) गृह में रहने वाले को ( अक्षियन्तं कृणोति ) निवास रहित कर देता है, वह ( अशिनमान् द्यौः इवः ) विद्युत् से युक्त या सूर्य तेज के तुल्य ( विभञ्जनुः ) शत्रुओं के वल को तोड़ डालने वाला ( उत ) और ( स्तोतारं ) स्तुतिशील, विद्वान् उपदेष्टा को (वसौ) धनैश्वर्य में ( धात् ) स्थापित करे।

अयं चक्रमिषणत्सूर्यस्य न्येतशं रीरमत्ससृमाणम् ।
आ कृष्ण ईं जुहुराणो जिघर्ति त्वचो बुध्ने रजसो अस्य योनौ १४

भा०—( अयं ) यह ऐश्वर्यवान् पुरुष ( सूर्यस्य ) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के ( चक्रम् ) राज्य-चक्र वा सैन्य-चक्र को ( इषणत् ) चलावे । वह ( ससृमाणं ) वेग से जाने वाले ( एतशं ) अश्व सैन्य को ( रीरमत् ) युद्धादि क्रीड़ा का अभ्यास करावे । ( अस्य रजसः ) इस लोक के ( त्वचः ) त्वचा के समान संवरण करने वाले और वाणी या तेज के समान प्रकाशित करने वाले सामर्थ्य के ( बुध्ने ) आश्रय रूप ( योनौ ) स्थान वा पद में स्थित होकर अन्तरिक्ष में स्थित ( कृष्णः ) श्याम वर्ण का मेघ वा सूर्य रश्मियों द्वारा जलाकर्षक जिस प्रकार ( जुहुराणः ) वक्रगति से चलता हुआ (ईं जिघर्ति) जल को सर्वत्र सेचन करता है उसी प्रकार राजा ( कृष्णः ) सबका चित्त आकर्षण करता हुआ ( जुहुराणः ) वक्रगति से प्रत्यक्ष रूप से चेष्टा करता हुआ ( ईं जिघर्ति ) इसको सर्वत्र ऐश्वर्य से सेचन करे ।

असिक्न्यां यजमानो न होता ॥ १५ ॥ २३ ॥

भा०—जिस प्रकार ( यजमानः न ) यजमान दानशील वा ईश्वराराधन करने वाला पुरुष ( असिक्न्यां ) कृष्ण रात्रि में भी ( होता ) परमेश्वर का आह्वान करता है, उसका भजन करता है । उसी प्रकार राजा भी ( यजमानः ) प्रजाजन को अभय, ऐश्वर्यादि प्रदान करता हुआ ( असिक्न्यां ) रात्रिकाल में भी ( होता ) राष्ट्र को सुख देता और दुष्टों को दण्ड देता है । इसी प्रकार दानशील राजा ( असिक्न्याम् ) न सिंचने वाली भूमि में भी मेघ के तुल्य ( होता ) दानशील, जलादि के सेचन का प्रबन्धक हो । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ।
जनीयन्तो जनिदामक्षितोतिमा च्यावयामोऽवते न कोशम् ॥१६॥

भा०—( अवते न कोशम् ) कूप में से जल प्राप्त करने के लिये जिस प्रकार कोश अर्थात् जल निकालने वाले डोल को प्राप्त किया जाता है उसी प्रकार ( गव्यन्तः ) गौओं, वाणियों, ज्ञानरश्मियों की इच्छा करते हुए, ( अश्वायन्तः ) अश्वों की कामना करते हुए और ( वाजयन्तः ) अन्न, बल, ऐश्वर्य और ज्ञान की कामना करते हुए ( जनीयन्तः ) अपना उत्तम जन्म और सन्तानजनक स्त्री की कामना करते हुए हम ( विप्राः ) बुद्धिमान् लोग ( इन्द्रं ) ऐश्वर्ययुक्त, ( वृषणं ) बलवान्, मेघवत् सुखों के वर्षक, ( जनिदाम ) जन्मदाता एवं अपत्योत्पादक वधू के देने वाले और ( अक्षितोतिम् ) अक्षय रक्षा करने वाले रक्षक पुरुष को ( सख्याय ) मित्रभाव के लिये ( आच्यावयामः ) प्राप्त करें और अन्यों को प्राप्त करावें।

त्राता नो बोधि ददृशान आपिरभिख्याता मर्डिता सोम्यानाम्।
सखा पिता पितृतमः पितृणां कर्तेमु लोकमुशते वयोधाः ॥१७॥

भा०—वह परमेश्वर राजा वा आचार्य (नः) हमारा (त्राता) रक्षक, ( ददृशानः ) देखने हारा, साक्षी, (आपिः) बन्धु, ( अभिख्याता ) साक्षात् उपदेष्टा, ( सोम्यानाम् ) सौम्य गुणों से युक्त, उत्तम शिष्यों वा पुत्रों को ( मर्डिता ) सुख देने वाला, ( सखा ) सुहृत्, ( पिता ) पालक, ( पितृणाम् ) हमारे पालन करने वाले माता पिता, ससुर, चाचा आदि पूज्यों में भी सबसे ( पितृतमः ) अधिक बड़ा पूज्य पिता, ( कर्त्ता ) सबको बनाने वाला, ( वयोधाः ) जीवन, ज्ञान बल का देने वाला है। वह ( उशते ) कामना करने वाले को ( लोकम् ) उत्तम लोक, ज्ञान-दर्शन ( बोधि ) बतलावे। गुरु आत्मा का उपदेश करे, राजा लोक, प्रजाजन की खबर रक्खे। परमेश्वर ज्ञान-आलोक दे।

सखीयतामविता बोधि सखा गृणान इन्द्र स्तुवते वयोधाः।
वयं ह्या ते चकृमा सबाध आभिः शमीभिर्महयन्त इन्द्र ॥ १८॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! अज्ञाननाशक आचार्य ! तू (सखीयता ) अपना उत्तम मित्र चाहने वाले लोगों का ( अविता ) रक्षक और उत्तम ज्ञान से तृप्त करने वाला ( सखा ) परम मित्र ( बोधि ) जाना जाय। तू ( स्तुवते ) स्तुति प्रार्थना करने वाले को ( गृणानः ) उपदेश करता हुआ ( वयः ) ज्ञान, बल ( धाः ) प्रदान कर। ( वयम् ) हम लोग ( आभिः ) इन ( शमीभिः ) उत्तम शान्तिदायक कर्मों द्वारा ( महयन्तः ) तेरी पूजा करते हुए ( सबाधः ) दुःखी एवं विघ्न बाधा से पीड़ित होकर ( ते हि ) तुझे ही ( आचकृम ) सदा बुलावें या तू उनकी ( सबाधः ) बाधा सहित रहकर भी ( बोधि ) जान, उनकी ख़बर रख।

स्तुत इन्द्रो मघवा यद्ध वृत्रा भूरीण्येको अप्रतीनि हन्ति।
अस्य प्रियो जरिता यस्य शर्मन्नकिर्देवा वारयन्ते न मर्ताः ॥१९॥

भा०—( यत् ह ) जो ( एकः ) अकेला, अद्वितीय, ही (अप्रतीनि) बे मुकाबले के (भूरीणि) बहुत से (वृत्रा) मेघों के समान नाना विघ्नों को सूर्यवत् ( हन्ति ) विनाश करता है वह ( मघवा ) ऐश्वर्यवान् पुरुष ( इन्द्रः ) 'इन्द्र' रूप से ( स्तुतः ) स्तुति करने योग्य है। ( जरिता ) स्तुति करने वाला विद्वान् ( अस्य प्रियः ) इसको सदा प्रिय है। और ( यस्य शर्मन् ) जिसके शरण में रहने वाले को ( नकि देवाः ) न विद्वान् और ( न मर्त्ताः ) न साधारण मनुष्य ही वारण करते हैं। राजप्रिय पुरुष के तुल्य भगवत्प्रिय मनुष्य भी सर्वप्रिय हो जाता है।

एवा न इन्द्रो मघवा विरप्शी करत्सत्या चर्षणीधृदनर्वा।
त्वं राजा जनुषां धेह्यस्मे अधि श्रवो माहिनं यज्जरित्रे ॥ २० ॥

भा०—( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् राजा, अज्ञान नाशक आचार्य और प्रभु परमेश्वर ( एव ) ही ( नः ) हमारा ( मघवा ) ऐश्वर्यवान्, पूज्य स्वामी

है। वह ( चर्षणीधृत् ) सब मनुष्यों को धारण करने वाला ( अनर्वा ) प्रतिपक्षी अश्वादि से रहित, अपराधी, ( विरप्शी ) महान् ज्ञानोपदेष्टा होकर ( नः ) हमें ( सत्या करत् ) सत्य ज्ञान और अविनश्वर फल प्रदान करे। हे राजन्! विद्वन्! प्रभो! ( त्वं जनुषां ) तू जन्म लेने वालों में ( राजा ) सबका राजा है। तू ( अस्मे ) हमें और ( जरित्रे ) स्तुति करने वाले प्रार्थी को भी ( माहिनं ) बड़ा भारी ( श्रवः ) अन्न, ज्ञान आदि ( अधि धेहि ) प्रदान कर, हमारे लिये इन पदार्थों को रख।

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः॥२१॥२४॥

भा०—व्याख्या देखो सू० १६। मं० २१॥ इति चतुर्विंशो वर्गः॥

## [ १८ ]

वामदेव ऋषिः॥ इन्द्रादिती देवते॥ छन्दः—१, ८, १२ त्रिष्टुप्। ५, ६, ७, ९, १०, ११ निचृत्त्रिष्टुप्। २ पंक्तिः। ३, ४ भुरिक् पंक्तिः। १३ स्वराट् पंक्तिः॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम्॥

अयं पन्था अनुवित्तः पुराणो यतो देवा उदजायन्त विश्वे।
अतश्चिदा जनिषीष्ट प्रवृद्धो मा मातरममुया पत्तवे कः॥१॥

भा०—( अयं ) यह ( पन्थाः ) धर्म-मार्ग ( पुराणः ) सनातन से ( अनुवित्तः ) गुरु-परम्परा और वंश-परम्परा द्वारा प्राप्त किया जाता है, (यतः) जिससे (देवाः) नाना भोगों की वा एक दूसरे की कामना करने वाले सामान्य स्त्री पुरुष और ज्ञान प्रकाशक, ज्ञानप्रद विद्वान् पुरुष भी ( उत् अजायन्त ) उत्पन्न होते रहते हैं और उन्नति को प्राप्त करते रहते हैं। ( प्रवृद्धः ) बहुत उन्नत पद तक बढ़ा हुआ पुरुष भी ( अतः चित् ) इसी परम्परा प्राप्त धर्म मार्ग से ही ( आ जनिषीष्ट ) उत्पन्न होता है इसलिये ( अमुया ) इस मार्ग से चलते हुए ( मातरम् ) अपने को उत्पन्न

करने वाली माता वा अपने को ज्ञान देने वाले गुरुरूप माता को (पत्तवे) पहुंचने अर्थात् अपमानित करने का हे पुरुष! ( मा कः ) यत्न मत कर अर्थात् पुत्रादि उत्पादक परस्पर स्त्री पुरुष के सामान्य धर्म द्वारा माता से सन्तान उत्पन्न करने की चेष्टा न करे। इसी प्रकार गुरु को अपना शिष्यादि बनाने वा अपमान करने का यत्न न करे। बहुत बड़ा होकर भी उसके प्रति विनयशील ही होकर रहे। ( २ ) इसी प्रकार ( देवाः ) विजिगीषु लोग इसी पुरातन युद्ध मार्ग से उन्नत सिंहासन वा राज्यपद को प्राप्त होते हैं बड़ा आदमी भी इसी मार्ग से होता है, पर तो भी इस विग्रह मार्ग से अपने को राजा बनाने वाली ( मातरम् ) प्रजा को पददलित करने का यत्न न करे।

नाहमतो निरया दुर्गहैतत्तिरश्चता पार्श्वान्निर्गमाणि।
बहूनि मे अकृता कर्त्वानि युध्यै त्वेन सं त्वेन पृच्छै॥ २॥

भा०—( अहम् ) मैं जीव ( अतः ) इस पूर्वोक्त स्त्री पुरुषों के परस्पर संग द्वारा होने वाले मैथुन धर्म से उत्पन्न होने, जन्म लेने वा मरने के मार्ग से ( न निर् अय ) नहीं निकल सकता। ( तिरश्चता ) प्राप्त हुए वा तिर्यक् मार्ग से मनुष्योत्तर पशु पक्षी रूप से उत्पन्न होकर भी (एतत्) यह जन्म जीवन मार्ग ( दुर्गहा ) बड़े दुःख से, कष्ट से प्राप्त होने और बीतने योग्य होता है। इसलिये मैं चाहता हूं कि ( पार्श्वात् ) एक पासे से ( निः गमानि ) निकल जाऊं। अर्थात् जन्म मरण के तांते को छोड़कर किनारे हो जाऊं। चाहता हूं कि ( मे ) मुझे ( बहूनि ) बहुत से (कर्त्वानि ) कर्म ( अकृता ) नहीं करने पड़ें। वे विना किये ही रह जायं। इस जीवन में ( त्वेन युध्यै ) किससे लड़ें और ( त्वेन ) किस एक से ( सं पृच्छै ) भली प्रकार पूछें। जीवन-मार्ग के संग्राम में परस्पर युद्ध और पूछताछ लगी है। किससे लड़ें किससे विनयानुनय करें यह सब झमेला है। अच्छा है कि इस संसार-मार्ग के किनारे हो जायं। ( २ ) राज्य

पक्ष में—मैं इस मार्ग से न जाऊं। तिरछे मार्ग से कुटिलतापूर्वक जाने से यह मार्ग या राष्ट्र दुर्ग्राह्य है, वश में नहीं आ सकता। इस मार्ग में बहुत से न करने योग्य भी काम करने पड़ते हैं और एक से लड़े एक से, झुके एक से पूछे, आज्ञा ले इत्यादि का बड़ा प्रतिबंध है। क्या करें? राज्यों की सीमा लांघते समय या तो पूछो या लड़कर घुसो, चाहता हूं कि इस युद्ध-मार्ग से किनारे से ही निकल जाऊं। जहां तक हो सन्धि से ही काम निकल जावे।

परा॒य॒तीं मा॒तर॒मन्व॑चष्ट॒ न नानु॑ गा॒न्यनु॒ नू ग॑मानि।
त्वष्टु॑र्गृ॒हे अ॑पिब॒त्सोम॒मिन्द्र॑ः शत॒ध॒न्यं॑ च॒म्वोः॑ सु॒तस्य॑ ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् पुरुष ( परायतीं ) परलोक जाती हुई (मातरम् अनु अचष्ट) माता को देख कर मोहवश कहता है कि (न न अनुगानि) न मैं इसके पीछे ही चला जाऊं, न? अर्थात् चला ही जाऊं (अनु नु गमानि) क्यों चला जाऊं? न जाऊं। इस प्रकार तर्क से निर्धारण करके वह बाद में ( त्वष्टुः गृहे ) ज्ञान प्रकाशक गुरु और उत्पादक पिता के घर में ( चम्वोः सुतस्य ) माता पिता व पुत्र पद पर रहकर ( शतधन्यं सोमम् ) सैकड़ों धनों से युक्त ऐश्वर्य का (अपिवत् ) भोग करता है। उसी प्रकार ( इन्द्रः ) यह आत्मा जीव ( परायतीम् ) दूर जाती हुई ( मातरम् ) जगत् निर्माण करने वाली माता, प्रकृति को ( अनु अचष्ट ) विवेक पूर्वक देखे, ( न न अनुगानि ) क्यों न इसके पीछे अनुगमन करूं ( नु अनुगानि ) और क्यों इसके पीछे जाय, क्यों प्रकृति बन्धन में पडूं और क्यों न पडूं, ऐसा विवेक प्राप्त करके यह आत्मा ( त्वष्टा ) संसार के निर्माता प्रभु परमेश्वर के ( गृहे ) शरण में जाकर ( चम्वोः सुतस्य ) प्राण और अपान दोनों के बीच में उत्पन्न ( सोमम् ) अध्यात्म रस का पान करे। राज्यपक्ष में—( परायतीम् मातरम् अनु अचष्ट ) राजा अपने से परे जाती, विमुख मातृ तुल्य राष्ट्रशक्ति को भी अनुकूल करके कहे ( न न

अनुगानि ) तुम्हारे पीछे नहीं चलता ऐसा नहीं ( नु अनुगानि ) तुम्हारे कहे का अनुसरण ही करता हूं। इस प्रकार राष्ट्र के प्रजावर्ग का अनुनय करके ( चम्वोः ) स्व पक्ष और पर पक्ष दोनों सेनाओं के बीच ( सुतस्य ) संघर्ष से उत्पन्न राज्य के ( शतधन्यं ) सैकड़ों धनों से युक्त ( सोमम् ) ऐश्वर्य को (त्वष्टुः) तेजस्वी सूर्य के पद पर विराज कर ( अपिबत् ) उपभोग करे।

**किं स ऋधक्कृणवद्यं सहस्रं मासो जभार शरदश्च पूर्वीः ।**
**नही न्वस्य प्रतिमानमस्त्यन्तर्जातेषूत ये जनित्वाः ॥ ४ ॥**

भा०—( यं ) जिस ( सहस्रं ) सर्वातिशय बलशाली आत्मा को मूल प्रकृति ( मासः ) वर्ष के १२ मासों और ( पूर्वी शरदः ) पुरातन सब वर्षों प्रकृति माता अथवा स्वयं ( मासः ) जगत् को बनाने वाली और ( पूर्वीः शरदः च ) सब पूर्व पूर्व विद्यमान से नाश कारिणी शक्तियां ( जभार ) धारण करती हैं ( सः ) वह परम आत्मा ( किम् ) क्या २ ( ऋधक् ) विभूति युक्त महान् कार्य ( कृणवत् ) किया करता है। ( अस्य ) इसके ( प्रतिमानं ) मुकाबले का ( जातेषु अन्तः ) उत्पन्न हुए पदार्थों में से ( नहि नु अस्ति ) कोई नहीं है ( उत ) और (ये जनित्वाः) जो भविष्य में उत्पन्न होंगे उनमें से भी इसके बराबरी का कोई नहीं है। ( २ ) राष्ट्रपक्ष में—( यं सहस्रं ) जिस शत्रु पराजयकारी बलवान् पुरुष को (मासः) राष्ट्र के निर्माण करने वाली प्रजाएं और ( पूर्वीः शरदः ) पूर्व विद्यमान हिंसाकारिणी सेनाएं चन्द्र और सूर्य को मास और ऋतुओं के तुल्य ( जभार ) धारण करती हैं। ( किं स ऋधक् कृणवत् ) वह क्या बड़े २ कार्य करे कि अभी तक हुए और आगे होने वालों में भी उसकी बराबरी का कोई नहीं हो।

**अवद्यमिव मन्यमाना गुहाकरिन्द्रं माता वीर्येणा न्यृष्टम् ।**
**अथोदस्थात्स्वयमत्कं वसान आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ॥५॥२५॥**

भा०—( माता ) जगत् को निर्माण करने वाली प्रकृति ( इन्द्रं ) उस परम दर्शनीय महान् आत्मा को ( अवद्यम् इव ) वाणी से न कहने योग्य और ( वीर्येण ) समस्त संसार को विविध प्रकार से गति देने में समर्थ बल से ( नि ऋष्टं ) पूर्ण ( मन्यमाना ) मानती हुई ( गुहाकः ) उसके अपने भीतर अदृश्य रूप से धारण करती ( अथ ) और अनन्तर वह परमेश्वर ( स्वयं ) स्व अपने ही महान् सामर्थ्य से ( अत्कं वसानः ) तेज को धारण करता हुआ, तेजःस्वरूप सूर्य के तुल्य ( उत् अस्थात् ) सबसे ऊपर विद्यमान रहता है। और विश्व रूप से ( जायमानः ) प्रकट होता हुआ ( रोदसी आ अपृणात् ) आकाश और भूमि दोनों को पूर्ण करता और पालता है। ( २ ) मानकारिणी माता बल से युक्त पुत्र के तुल्य यह प्रजा भी ( अवद्यं ) प्रथम अवन्दनीय सा समझ कर उसको गर्भ के तुल्य अपने भीतर धारण किये रहती है। वह अपने ही तेज को धारण करता हुआ सूर्य के तुल्य उदय होता और ( रोदसी ) स्व और पर दोनों को पूर्ण करता है। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

**एता अर्षन्त्यलला॒भव॑न्तीर्ऋ॒ताव॑रीरिव सङ्क्रोश॑मानाः । एता वि पृ॑च्छ॒ किमि॒दं भ॑नन्ति॒ कमापो॒ अद्रिं॑ परि॒धिं रु॑जन्ति ॥ ६ ॥**

भा०—( ऋतावरीः इव ) जिस प्रकार जल से भरी हुई नदियां ( अलला भवन्तीः ) अव्यक्त ध्वनि से कलकल करती हुई जाती हैं और ( ऋतावरीः इव ) जिस प्रकार उषाएं ( अलला भवन्तीः ) पक्षियों की अव्यक्त ध्वनि करती हुई ( अर्षन्ति ) आती हैं उसी प्रकार ( एतत् ) ये ( ऋतावरीः ) 'ऋत' सत्य कारण परमेश्वर की शक्ति को धारण करने वाली सब विकृति में ( अलला भवन्तीः ) अति मनोहर ध्वनि करती हुई वा अद्भुत आश्चर्यजनक होती हुई ( अर्षन्ति ) प्रकट होती हैं, और ( संक्रोशमानाः ) बड़े प्रकट शब्दों से कुछ पुकार रही हैं। हे विद्वान् पुरुष ( एताः वि पृच्छ ) इनसे तू विशेष रूप से पूछ कि ये ( इदं किम्

भनन्ति ) यह क्या कह रही हैं। ( कम् ) क्या ( आपः ) जलधाराएं ( परिधिं ) अपने को धारण करने वाले मेघ वा पर्वत को स्वयं (रुजन्ति) तोड़ कर बाहर निकलती हैं ? और क्या ( आपः ) व्यापक उषाएं अपने धारक ( अद्रिं ) मेघ तुल्य अन्धकार को स्वयं तोड़ती हैं। उसी प्रकार क्या ( आपः ) ये समस्त प्राण एवं प्राणी गण ( अद्रिं ) पर्वतवत् अभेद्य ( परिधिम् ) अपने धारक इस स्थूल देह या जड़ प्रकृति तत्व को स्वयं ( रुजन्ति ) पीड़ित एवं भग्न करते हैं। नहीं, जिस प्रकार मेघ से जल-धाराओं को बहा देने में विद्युत्, उषाओं को प्रकट करने में सूर्य कारण है उसी प्रकार इन लोकों, प्राणों और प्राणियों के जड़ प्रकृति से उत्पन्न होने में परमात्मा और आत्मा चेतन कारण हैं। ये सब यही बात बतला रहे हैं। वही चेतन 'इन्द्र' है। ( २ ) राज्य में ( ऋतावरीः ) धन के बल पर चलने वाली अव्यक्त शब्द करने वाली सेनाएं ( संक्रोशमानाः ) शत्रु-पक्ष को ललकारती हुई जाती हैं। क्या बतलाती हैं, क्या वे ( आपः ) जल धारावत् जाने वाली प्रजाएं और सेनाएं स्वयं ( अद्रिं परिधिं ) पर्वतवत् तुंग परिकोट के तुल्य शत्रु बल या सर्वतोरक्षक ( अद्रिं = वज्रं ) शस्त्र बल को तोड़ सकती हैं ! नहीं, केवल सेनापति ही तोड़ सकता है।

किमु ष्विदस्मै निविदो भनन्तेन्द्रस्यावद्यं दिधिषन्त आपः।
ममैतान्पुत्रो महता वधेन वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून् ॥७॥

भा०—( अस्मै ) इस ( इन्द्रस्य ) महान् जगत् के द्रष्टा परमेश्वर के विषय में ( निविदः ) वेद की वाणियां ( किम् उ भनन्त ) क्या कहती हैं ? यही कि ( आपः ) प्रकृति के व्यापक सूक्ष्म परमाणु ( अस्मै ) इस परमेश्वर के ( अवद्यं ) न कथन करने योग्य, अलौकिक, अप्रतर्क्य सामर्थ्य को ( दिधिषन्त ) धारण करते हैं। ( मम पुत्रः ) मुझ प्रकृति का पुत्र अर्थात् मुझ से प्रकट होने वाला सब जीवों का त्राता परमेश्वर, ( महता वधेन ) बड़े भारी गतिशील शक्ति से ( वृत्रं )

सबको आवरण करने वाले कारण रूप 'तमस् वा सलिल' को (जघन्वान्) मेघ को विद्युत् के तुल्य ताड़ित करता हुआ, प्रेरित करता हुआ (सिन्धून्) जल प्रवाहों के तुल्य अनवरत वेग से जाने वाले रजः प्रवाहों, निहारिका-नदियों को ( असृजत् ) रचता और चलाता है। ( २ ) राज्य पक्ष में—इस राजा के समान विशेष ज्ञानी लोग क्या कहते हैं ? इसके अकथनीय रूप को ( आपः ) आप्त प्रजाएं और विद्वान्गण, मल को जलों के तुल्य स्वयं अपने में धारण करें। और ( वृत्रं ) बढ़ते शत्रुओं को प्रजा-माता का पुत्र सेनापति बड़े भारी शस्त्र बल से मार कर ( सिन्धून् ), वेग युक्त सैन्य दलों, प्रजा पुरुषों को सन्मार्ग में चलावे।

**ममच्चन त्वा युवतिः परास ममच्चन त्वा कुषवा जगार ।**
**ममच्चिदापः शिशवे ममृड्युर्ममच्चिदिन्द्रः सहसोदतिष्ठत् ॥ ८ ॥**

भा०—हे परमेश्वर ! ( ममत् चन युवतिः ) हर्षयुक्त युवती स्त्री के तुल्य प्रकृति तुझ से मिलती हुई या जड़ होने से पृथक् रहती हुई भी (परा आस) तुझ चेतन ब्रह्म से बहुत दूर, भिन्न ही रहती है। (कु-सवा) कुत्सित, निन्दित, दुःख से पूर्ण जगत्-सर्ग को उत्पन्न करने वाली वह प्रकृति ( ममत् चन ) हर्षयुक्त स्त्री के तुल्य ही ( त्वा जगार ) तुझे ही मानो निगले हुए है, अव्यक्त रूप में तुझे अपने भीतर छिपाए हुए है। ( आपः ) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु भी मानो ( ममत् चन ) हर्षित होकर ही ( शिशवे ) शिशु को माताओं के तुल्य सर्वव्यापक तुझको ही ( ममृड्युः ) प्रसन्न करते हैं। और तू ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् आत्मा भी ( ममत् चित् ) हर्षयुक्त पुरुष के तुल्य ( सहसा ) अपने परम, अतिशायी बल से ( उत् अतिष्ठत् ) सबके ऊपर विद्यमान है। राजा को उपदेश है। ( १ ) प्रमत्त स्त्री और मदयुक्त प्रजागण तुझको कर्त्तव्य से पराङ्मुख कर दे सकती हैं और ( कुषवा ) कुत्सित ऐश्वर्य या प्रेरणा युक्त, मद भरी स्त्री वा प्रजा भी ( त्वा जगार ) तुझे निगल जाय, नष्ट

कर दे। इसलिये उनसे सावधान रह। (२) हर्षयुक्त होते हुए आप्त जन तुझे प्रसन्न करें। तू हर्षयुक्त होकर बल पूर्वक उच्चासन पर विराज।

ममच्चन ते मघवन्व्यंसो निविविध्वाँ अप हनू जघान।
अधा निविद्ध उत्तरो बभूवाञ्छिरो दासस्य सं पिणग्वधेन॥९॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (ममत् चन) मदयुक्त होकर ही (व्यंसः) विविध स्कन्धों नाना सैन्य कटकों से बलशाली होकर कोई शत्रु (विविधान्) विविध प्रकार से ताड़ता हुआ यदि (ते) तेरे (हनू) हनन करने वाली दायें बायें दोनों ओर की सेनाओं को (अप जघान) विनाश करे तब तू (निविद्धः) खूब ताड़ित होकर उससे (उत्तरः) अधिक बलशाली (बभूवान्) होकर (दासस्य) प्रजा के नाश करने वाले उसके (शिरः) उत्तम अंग मुख्य भाग को (वधेन) शस्त्र बल से (सं पिणक्) अच्छी प्रकार पीस डाल।

गृष्टिः ससूव स्थविरं तवागामनाधृष्यं वृषभं तुम्रमिन्द्रं।
अरीळहं वत्सं चरथाय माता स्वयं गातुं तन्व इच्छमानम्॥१०॥

भा०—(गृष्टिः) गौ जिस प्रकार (वत्सं वृषभं ससूव) बछड़े और बलवान् बैल को जन्म देती है उसी प्रकार (गृष्टिः) सबको उपदेश करने वाली वेद वाणी (इन्द्रं) उस परमेश्वर को (स्थविरं) सबसे महान्, स्थिर ध्रुव (तवागाम्) सर्वशक्तिमान् (अनाधृष्यम्) सर्वविजयी, (तुम्रम्) सबका प्रेरक (अरीळहं) अविनाशी, (वत्सं) सबमें वसने वाले, (स्वयं गातुं) स्वयं अपने बल से व्यापने वाले (तन्वे) विस्तृत संसार को प्रकट करने के लिये (इच्छमानं) इच्छा रूप संकल्प करने वाले प्रभु को (चरथाय) कर्म फल प्रदान करने के लिये (ससूव) सर्वेश्वर रूप से बतलाती है। (२) और उक्त विशेषणों से युक्त (तन्वे) विस्तृत राष्ट्र के लिये (गातुम्) पृथिवी की कामना करने वाले राजा को

( चरथाय ) सर्वत्र विचरने के लिये ( ससूव ) ऐश्वर्यवान् पदाभिषिक्त करे ।

उत माता महिषमन्ववेनदमी त्वा जहति पुत्र देवाः ।
अथाब्रवीद्वृत्रमिन्द्रो हनिष्यन्त्सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व ॥११॥

भा०—और ( माता ) सबको उत्पन्न करने वाली यह माता पृथिवी ( महिषम् ) महान् ऐश्वर्य के भोक्ता पुरुष को ( अनु अवेनत् ) सदा अनुकूल होकर कामना करे, प्रार्थी हो ( त्वा ) तुझको देखकर हे ( पुत्र ) दुखों से त्राण करने वाले राजन् ! ( अमीदेवाः ) ये सब विजयेच्छुक वीर लोग ( त्वा ) तुझे ही ( जहति ) प्राप्त होते हैं । ( अथ ) अनन्तर ( वृत्रम् ) बढ़ते हुए शत्रु को ( हनिष्यन् ) मारने की इच्छा करता हुआ, ( इन्द्रः ) शत्रुहन्ता पुरुष मित्रगण को ( अब्रवीत् ) आज्ञा दे ! हे ( सखे ) मित्रगण ! हे ( विष्णो ) व्यापक शक्ति से युक्त ! तू (वितरं) अच्छी प्रकार (वि क्रमस्व) विक्रम कर । (२) इसी प्रकार माता 'प्रकृति' महान् उस प्रभु को चाहती है ये सब 'देव' पृथिवी, प्राण आदि उस आत्मा से भिन्न होकर प्रकट होते हैं । प्रभु जगत् के आवरक अव्यक्त को गति देता हुआ देहप्रवेशी जीव को उपदेश देता है कि तू विविध योनिमार्ग में संक्रमण कर । ( ३ ) माता अपने पूज्य गुरुभक्त पुत्र को चाहती है और कहती है कि यदि तू न पढ़ेगा तो विद्वान् जन तुझे त्याग देंगे । वह अज्ञान का नाश करना चाहता हुआ, आचार्य को बोले—हे सुहृद् विद्याव्यापक आचार्य ! तू ( वितरं ) विशेष रूप से दुःखतारक ज्ञान प्रारम्भ कर, ब्रह्म ज्ञान दे ।

कस्ते मातरं विधवामचक्रच्छयुं कस्त्वामजिघांसच्चरन्तम् ।
कस्ते देवो अधि मार्डीक आसीद्यत्प्राक्षिणाः पितरं पादगृह्य ॥१२॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् राजन् ! ऐसा तेरा कौनसा शत्रु है ( यत् ) जो ( पादगृह्य ) चरणों से पकड़ कर (ते पितरं) तेरे पालक पिता

को ( प्र अक्षिणाः ) अच्छी प्रकार नाश कर सके। और ( कः ) कौन है जो ( ते मातरम् ) तेरी माता को ( विधवाम् अचक्रत् ) विधवा, पति-हीन कर सके। ( चरन्तं ) विहार करते हुए और ( शयुं त्वाम् ) शयन करते हुए भी ( त्वाम् ) तुझको ( कः अजिघांसत् ) कौन नाश कर सकता है। और ( ते ) तेरे ( मार्डीके ) सुख देने वाले राज्य में ( कः देवः ) तुझसे दूसरा कौन ( देवः ) राज्याभिलाषी है जो ( अधि आसीत् ) अध्यक्ष पद पर स्थित हो सके। तू ही राज्यासन के योग्य है। तू पिताओं के चरण धोकर आशीर्वाद लेकर अपने शत्रुजनों को ( प्र अक्षिणाः ) विनाश कर। इसी प्रकार पिता और तुझ पर प्रहार करने वाले, तेरा आसन हरने वाले को भी तू नाश कर। (२) अध्यात्म में—जीव परमेश्वर का ज्ञान ग्रहण करके सब दुःखों को दूर करे। कम्पन या चेतन रहित जगन्निर्मातृ प्रकृति को ( कः ) प्रजापति ही जगत्स्वरूप में बनाता है। भोक्ता अज्ञानी आत्मा को वह प्रभु ज्ञान देता है। वही उसे परम सुख-मय मोक्ष में स्थापित करता है।

**अव॑र्त्या॒ शुन॑ आ॒न्त्राणि॑ पेचे॒ न दे॒वेषु॑ विविदे मर्डि॒तार॑म् ।**
**अप॑श्यं जा॒याममही॑यमाना॒मधा॑ मे श्ये॒नो मध्वा ज॑भार ॥१३॥२६॥५॥**

भा०—अध्यात्मदर्शी कहता है ( अवर्त्या ) जन्म मरण के व्यापार से रहित होकर मैं ( शुनः ) सुखस्वरूप होकर अथवा ( अवर्त्या ) पुनः इस संसार में न होने के निमित्त से ही ( शुनः ) शुख कर परमेश्वर के ( आन्त्राणि ) ज्ञान कराने वाले गुह्य साधनों को ( पेचे ) परिपक्व करूं। (देवेषु) पृथिवी सूर्यादि एवं विषय के अभिलाषी इन्द्रियों के बीच में मैं ( मर्डितारम् ) किसी को भी परम सुख देने वाला ( न विविदे ) नहीं पाता हूं। अथवा मैं अज्ञानी पुरुष (अवर्त्या) लाचार, अगतिक होकर (शुनः) कुत्ते के समान लोभी आत्मा के ( आन्त्राणि ) भीतरी आंतों के तुल्य इन ( आन्त्राणि ) ज्ञान साधन इन्द्रियों को ही ( पेचे ) परिपक्व किया उन

को तपःसाधना से वश किया और उन ( देवेषु ) विषयाभिलाषुक प्राणों में से एक को भी सुखप्रद नहीं पाया अनन्तर ( जायाम् ) इस संसार उत्पन्न करने वाली प्रकृति को भी मैंने ( अमहीयमाना ) महती परमेश्वरी शक्ति के तुल्य नहीं ( अपश्यम् ) देखा। इतना ज्ञान कर लेने के अनन्तर ( श्येनः ) ज्ञानस्वरूप प्रभु परमेश्वर ( मे ) मुझे ( मधु ) परम मधुर ब्रह्मज्ञान ( आजभार ) प्रदान करता है। ( २ ) राज्यपक्ष में—मैं प्रजाजन जब ( अवर्त्या ) दारिद्र्य प्रेरित होकर कुत्ते के भी आंतों का पकाता हूं और प्रमादी लोगों में किसी को भी सुखप्रद नहीं पाता, अपनी स्त्रियों तक की दुर्दशा होती देखूं उस समय (श्येनः) बाज़ के समान वीर पुरुष मेरी रक्षार्थ (मधु) उत्तम अन्न और शत्रुपीड़क बल प्राप्त करावे। इति षड्विंशो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

## अथ षष्ठोऽध्यायः ।

## [ १९ ]

वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २, ९ निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ५, ८ त्रिष्टुप् । ४, ६ भुरिक् पंक्तिः । ७, १० पंक्तिः । ११ निचृत्पंक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

**एवा त्वामिन्द्र वज्रिन्नत्र विश्वे देवासः सुहवास ऊमाः ।**
**महामुभे रोदसी वृद्धमृष्वं निरेकमिद्वृणते वृत्रहत्ये ॥ १ ॥**

भा०—हे ( इन्द्र ) शत्रुओं को हनन करने हारे! हे ( वज्रिन् ) शस्त्रास्त्र बल के स्वामिन्! ( अत्र ) इस राष्ट्र में (विश्वे) समस्त (देवासः) विद्वान्‌जन ( सुहवासः ) उत्तम नाम, वचन और ख्यातिमान् वा उत्तम यज्ञ, युद्धादि करने हारे वीर पुरुष ( ऊमाः ) रक्षक लोग ( वृत्रहत्ये ) बढ़ते हुए शत्रु को दण्डित करने के लिये ( उभे रोदसी ) राजा प्रजा दोनों वर्गों में ( महां वृद्धम् ) गुणों और शक्ति में महान् वृद्ध, पूजनीय (ऋष्वं)

सर्वश्रेष्ठ, सर्वद्रष्टा ( एकम् ) एक अद्वितीय जानकर ( त्वाम् एव ) तुझ को ( नि वृणते ) सब प्रकार से वरण करते हैं। ( २ ) इसी प्रकार सब विद्वान् जन, अद्वितीय प्रभु परमेश्वर को अज्ञान नाश के लिये वरण करते हैं।

अवासृजन्त जिव्रयो न देवा भुवः सम्राळिन्द्र सत्ययोनिः।
अहन्नहिं परिशयानमर्णः प्र वर्तनीररदो विश्वधेनाः ॥ २ ॥

भा०—( जिव्रयः देवाः न ) जीवन देने वाले सूर्य-किरण जब (अव असृजन्त ) नीचे भूतल पर आते हैं तब ( सम्राट् सत्ययोनिः ) देदीप्यमान सूर्य मेघ का उत्पादक होता है और वह (परिशयानम् अहिम् अहन् ) फैले हुए मेघ को आघात करता है ( अर्णः ) जल ( विश्वधेनाः वर्त्तनीः अरदः ) सबको तृप्त करने वाले जल-मार्गों को बना लेता है उसी प्रकार ( जिव्रयः ) विजयशील ( देवाः ) तेजस्वी पुरुष ( अव असृजन्त ) प्रयाण करें, और ( सत्ययोनिः ) सत्य न्याय का आश्रय रूप राजा ( भुवः ) इस भूमि का ( सम्राट् ) तेजस्वी महाराज हो। हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! तू ( परिशयानम् ) सर्वत्र फैले ( अहिम् ) सामने से आघात करने वाले, विघ्नकारी शत्रु को ( अहन् ) विनाश करे। और ( अर्णः ) जल के समान शीतल स्वभाव होकर तू ( विश्वधेनाः ) समस्त जगत को आनन्द से तृप्त करने वाले ( वर्त्तनीः ) सुखदायक मार्गों, न्याय-शासनों को ( प्र अरदः ) अच्छी प्रकार बना।

अतृप्णुवन्तं वियतमबुध्यमबुध्यमानं सुषुपाणमिन्द्र।
सप्त प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण वि रिणा अपर्वन् ॥ ३ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार ( वज्रेण ) तेज से ( आशयानम् अहिम् ) व्यापक मेघ को छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार हे राजन् ! ( अपर्वन् ) 'पर्व' अर्थात् पालन और पूर्ण बल से रहित अवसर में ( सप्त प्रवतः प्रति ) अधीनस्थ, नीचे के सातों प्रकृतियों को ( आशयानम् ) व्यापे हुए, सातों पर अधिकार किये हुए या सातों के प्रति प्रमाद से सोते हुए

और ( अतृष्णुवन्तम् ) विषय विलासों से तृप्त न होने वाले अति विषय विलासी, ( वियतम् ) विशृंखल अजितेन्द्रिय, ( अबुध्यम् ) अज्ञानी, ( अबुध्यमानं ) चेताने पर भी न चेतने वाले, ( सु-सु-पानम् ) खूब मदिरादि पान में मत्त वा ( सु-सुपानम् ) निरन्तर सोने वाले असावधान, शत्रु को हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! ( वज्रेण ) शस्त्रास्त्र बल से ( वि रिणाः ) विविध प्रकार से नाश कर।

अक्षोदयच्छवसा क्षाम बुध्नं वार्ण वातस्तविषीभिरिन्द्रः।
दृळ्हा न्यौभ्नादुशमान ओजोऽवाभिनत्ककुभः पर्वतानाम् ॥४॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य ( क्षाम ) खोखले ( बुध्नं ) आकाश को ( शवसा ) सूक्ष्म तेज से ( अक्षोदयत् ) भर देता है, ( न ) और जिस प्रकार ( वातः ) प्रबल वायु का झंकोरा ( तविषीभिः ) बलवती विद्युतों वा गतियों से ( वाः ) जल को छिन्न भिन्न कर बूंद २ कर देता है और ( पर्वतानाम् ) जिस प्रकार विद्युत् पर्वतों और मेघों के ( ककुभः ) शिखरों को ( अभिनत् ) तोड़ डालता है, उसी प्रकार ( ओजः उशमानः ) बल पराक्रम की कामना करने वाला ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान्, शत्रुविजयी राजा अपने शत्रु के ( क्षाम ) कृश, निर्बल ( बुध्नं ) राज्य प्रबन्ध, बन्धे मोर्चे, गढ़ और आधार को ( शवसा ) अपने बल से ( अक्षोदयत् ) चूरा २ कर दे। और ( वातः वार् न ) जलों को वायु के तुल्य (तविषीभिः) बलवती सेनाओं से बलवान् होकर ( वाः ) घेरने वाले शत्रु बल को नष्ट करे। ( दृढानि ) वह शत्रु के दृढ़, मज़बूत पुरों, और सैन्यों को ( औभ्नात् ) मटियामेट कर दे और ( पर्वतानाम् ) पर्वतों वा मेघों के समान दृढ़ और शस्त्रवर्षी शत्रु राजाओं के (ककुभः) श्रेष्ठ २ पुरुषों को ( अव-अभिनत् ) भेद नीति से तोड़ फोड़ कर नीचे गिरादे।

अभि प्र दद्रुर्जनयो न गर्भं रथा इव प्र ययुः साकमद्रयः।
अतर्पयो विसृत उब्जा ऊर्मीन्त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥५॥१॥

भा०—हे ( इन्द्र ) शत्रुहन्ताः ! ( जनये गर्भं न ) पुत्र को उत्पन्न करने वाली स्त्रियें जिस प्रकार अपने गर्भ से उत्पन्न बालक को लेने के लिये वेग से आगे बढ़ती हैं उसी प्रकार ( जनयः ) युद्ध के करने वाले ( गर्भम् अभि प्रदद्रुः ) मुख्य पद ग्रहण करने वाले, सैन्यों की वाग्डोर संभालने वाले को लक्ष्य करके आगे की ओर बढ़ें । और ( रथा इव ) रथों के समान वे ( अद्रयः ) अभेद्य एवं विशाल शस्त्रधर पुरुष ( साकं ) एक साथ ( प्रययुः ) प्रयाण करें । हे राजन् तू ( विसृतः ) विविध मार्गों वा प्रकारों से चलने वाली सेनाओं वा प्रजाओं को ( अतर्पयः ) अन्न वेतनादि से तृप्त कर । तू ( उर्म्मीन् ) ऊपर को उठने वाले वा प्रतिपक्ष को उखाड़ फेंकने वाले लोगों को ( उब्ज ) नमा, नीचा कर । (त्वं) तू ( वृतान् ) स्वीकार किये गये ( सिन्धून् ) महानदों के समान लम्बे शत्रु सैन्यों को (अरिणाः) नाश कर और अपने सैन्यों को सन्मार्ग पर चला । अथवा ( विसृतः तर्पय ) विविध छोटे नालों को जल से मेघों के तुल्य पूर्ण कर । धीरे जल प्रवाह नहर आदि को चला । इति प्रथमो वर्गः ॥

**त्वं म॒हीम॒वनिं॑ वि॒श्वधे॑नां तु॒र्वीत॑ये व॒य्या॑य॒ क्षर॑न्तीम् ।**
**अर॑मयो॒ नम॒सैज॒दर्णः॑ सुत॒र॒णाँ अ॑कृणोरिन्द्र॒ सिन्धू॑न् ॥ ६ ॥**

भा०—हे ( इन्द्र ) शत्रु हनन करने वाले राजन् ! तू ( महीम् ) बड़ी भारी ( विश्वधेनाम् ) सबको आनन्द-रस से तृप्त करने वाली ( अवनिं ) ज्ञान और रक्षा को देने वाली और ( तुर्वीतये ) शत्रुओं को हिंसा करने वाले और ( वय्याय ) रक्षा करने योग्य दोनों के लिये ( क्षरन्तीम् ) अन्न रस आदि गोमाता के समान क्षरण करती हुई, देती हुई वाणी और भूमि को ( नमसा ) विनय से और ( नमसा ) दुष्टों को नमाने वाले दण्ड से ( अरमयः ) प्रसन्न कर और जहां ( अर्णः ) जल ( एजत् ) चले उन ( सिन्धून् ) वेग से चलने वाले महानदों को और उनके सदृश वेगगामी सैन्यों को भी (सुतरणान्) सुख से पार करने योग्य (अकृणोः) बना ।

प्राग्रुवो नभन्वो३ न वक्वा ध्वस्रा अपिन्वद्युवतीर्ऋतज्ञाः ।
धन्वान्यज्रॉं अपृणक्तृषाणाँ अधोगिन्द्रः स्तर्यो३ दंसुपत्नीः ॥ ७ ॥

भा०—( इन्द्रः ) मेघ वा सूर्य जिस प्रकार वृष्टि द्वारा ( प्राग्रुवः ) प्रबल वेग से जाने वाली ( नभन्वः ) आकाश से आने वाली वा करारे तोड़ने वाली, ( वक्वा ) वक्रगति से जाने वाली ( ध्वस्राः ) नगरादि का ध्वंस करने वाली, ( ऋतज्ञाः ) जलोत्पादक नदियों को ( अपिन्वत् ) सींचता और पूर्ण करता है। उसी प्रकार वह राजा अग्रुवः आगे बढ़ने वाली ( नभन्वः ) शत्रुओं को मारने वाली ( वक्वा ) व्यूहादि से वक्रगति चलने वाली, ( ध्वस्राः ) शत्रुओं के किलों को तोड़ने वाली, ( ऋतज्ञाः ) सत्य प्रतिज्ञा वाली ( युवतीः ) स्त्रियों के तुल्य है उनको ( अपिन्वत् ) पूर्ण करे। इसी प्रकार ( इन्द्रः ) पुरुष ऐश्वर्यवान् होकर ( अग्रुवः ) विवाह के अवसर पर आगे २ चलने वाली, ( नभन्वः ) पुरुष को अपने प्रेम सम्बन्ध में बांधने वाली, ( वक्वा ) सुन्दर वचन बोलने वाली अथवा ( वक्वा ) वक्र, सुन्दर गति वाली, (ध्वस्राः) खेद नाश करने वाली अथवा ( ध्वस्राः = अध्वस्रा ) सन्मार्ग से चलने वाली ( ऋतज्ञाः ) सत्य प्रतिज्ञा वाली ( युवतीः ) स्त्रियों को ( प्र अपिन्वत् ) वस्त्र, भूषण अन्नादि से पुष्ट करे और वीर्यादि से निषिक्त करे। वह ( धन्वानि ) मरु वा सूखे स्थल देशों को मेघवत् ( ऋषाणान् अज्रान् ) पियासे मार्गगामी पथिकों को ( अपृणक् ) तृप्त करे। और ( दं-सु-पत्नीः ) शत्रु को दमन करने वाले या इन्द्रिय दमनशील वा कार्यकर्त्ता लोगों की पत्नियों को ( स्तर्यः ) गौओं के समान ( अधोक् ) पूर्ण करे और ( दंसुपत्नीः ) दान्त स्वामी को पालन करने वाली भूमियों को गौओं के तुल्य दुहे, उनसे कर आदि प्राप्त करे।

पूर्वीरुषसः शरदश्च गूर्ता वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून् ।
परिष्ठिता अतृणद्बद्बधानाः सीरा इन्द्रः स्रवितवे पृथिव्या ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य ( वृत्रं ) जगत् को घेरने वाले अन्धकार को ( जघन्वान् ) नाश करके ( पूर्वीः उषसः शरदः च ) सदा से चली आई उषाओं और शरत् आदि ऋतुओं को ( वि असृजत् ) विशेष रूप से प्रकट करता है और जिस प्रकार सूर्य वा विद्युत् ( वृत्रं जघन्वान् सिन्धून् वि असृजत् ) मेघ को आघात करके जलधाराओं को प्रकट करता है उसी प्रकार राजा ( वृत्रं जघन्वान् ) बढ़ते शत्रु वा विघ्नकारी बाधा को नाश करके ( पूर्वीः उषसः ) पूर्ण, धनादि से पूर्ण, प्रजा की पालक शत्रुओं को भस्म करने वाली और ( गूर्त्ताः ) उद्यमशील ( शरदः ) हिंसाकारिणी वीर सेनाओं को (वि असृजत् ) विविध प्रकार से चलावे और ( सिन्धून् ) वेग से चलने वाले नदों के समान सैन्य के रथों, अश्वों को सञ्चालित करे। ( इन्द्रः ) विद्युत् जिस प्रकार ( पृथिव्या ) भूमि पर ( स्रवितवे ) बहने के लिये ( सीराः अतृणत् ) नदियों को काटता है उसी प्रकार वह शत्रु-हन्ता राजा ( बद्धधानाः ) वधादि करने वाली ( परिस्थिताः ) चारों ओर खड़ी शत्रु-सेनाओं को ( पृथिव्या ) पृथिवी पर ( सीराः स्रवितवे ) रक्त की धाराएं बहाने के लिये ( अतृणत् ) मारे।

**व॒म्रीभिः॑ पु॒त्रम॒ग्रुवो॑ अदा॒नं नि॒वेश॑नाद्धरिव॒ आ ज॑भर्थ।**
**व्य१॒॑न्धो अ॑ख्य॒दहि॑माददा॒नो निर्भू॑दुख॒च्छित्सम॑रन्त॒ पर्व॑ ॥ ९ ॥**

भा०—हे ( हरिवः ) उत्तम अश्व सैन्यों के स्वामिन्! राजन् ( अग्रुवः ) नदियें जिस प्रकार ( वम्रीभिः ) छोटी २ लहरों से ( पुत्रं ) अपने ही पुत्र रूप तट वा तटस्थ वृक्ष को उसके ( निवेशनात् ) स्थान से हर लेती हैं उसी प्रकार तू भी ( अदानं ) कर आदि न देने वाले ( पुत्रम् ) पुत्र तुल्य प्रिय पुरुष को भी ( निवेशनात् ) उसके पद से ( आ जभर्थ ) च्युत कर। ( अहिम् ) सामने से आक्रमण करने वाले मेघ तुल्य शत्रु को भी ( अन्धः इव ) अपने अन्न या भोज्य के तुल्य आहार को ( वि अख्यत् ) देखे। और ( उखच्छित् ) शत्रु की गति को

काट देने वाले, उसका आक्रमण रोकने वाले ( पर्व ) पालक सैन्य को (आददानः) लेता हुआ वा ( उखच्छित् पर्व ) 'उखा' अर्थात् पात्रों को भेद कर तीव्र गति वेग से छेदन करने वाले तीर आदि अस्त्र से निकलने वाले 'पर्व' पोरू वाले वाणों, वन्दूक आदि अस्त्र को (आददानः) लेकर (निर्भूत्) बाहर निकल पड़े, और ( सम् अरन्त ) समर करे, युद्ध में जुट जावे। 'उखच्छित् पर्व' उखा हंडियां या दृढ़ पात्र में विस्फोटक पदार्थों को वन्द करके विपम घातक प्रयोग करने का वर्णन अथर्ववेद में आया है। 'पर्व' का अर्थ पोरु वाला काण्ड या शर है। वन्दूक, तोप, वाम्ब आदि सभी अस्त्र जो विस्फोटक पदार्थ के वल से अपने स्थान को भेदकर निकलें वे 'उखच्छित्' हैं। अथवा तीव्र गति से छेदन करने वाले तीर धनुर्धर सैन्य का उपलक्षण हैं।

**प्र ते पूर्वाणि करणानि विप्राविद्वाँ आह विदुषे करांसि।**
**यथायथा वृष्ण्यानि स्वगूर्तापांसि राजन्नर्याविवेषीः ॥ १० ॥**

भा०—हे ( विप्र ) विद्वन्! हे बुद्धिमान् पुरुष! (यथायथा) जिस जिस प्रकार से ( आविद्वान् ) समस्त विद्याओं का जानने वाला, वहुदर्शी विद्वान् ( ते विदुषे ) तुझ विद्या लाभ करने वाले के हितार्थ ( पूर्वाणि ) सनातन से चले आये, पूर्व विद्यमान (करणानि ) साधनों और (करांसि) करने योग्य कार्यों का ( आह ) उपदेश करे उसी प्रकार से हे ( राजन् ) राजन्! तू ( वृष्ण्यानि ) वल उत्पादक, वल से साध्य, ( स्वगूर्त्ता ) अपने ही उद्यम से साधने योग्य ( नर्या ) मनुष्यों के हितकारी ( अपांसि ) कर्मों को ( आ विवेषीः ) आदरपूर्वक स्वयं कर, चाह, और रक्षा कर।

**नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३न पीपेः। अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ ॥ २ ॥**

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! तू ( नू स्तुतः ) अन्यों से निरन्तर स्तुति करने योग्य और (गृणानः) अन्यों को उत्तम धर्म, न्यायानुकूल वचन

का उपदेश करता हुआ ( नद्यः न ) नदियें जिस प्रकार अपने तटपर बसे को अन्न आदि से पुष्ट करती हैं उसी प्रकार तू भी ( जरित्रे ) विद्वान् पुरुष को ( इषं ) अन्नादि से ( पीपेः ) पुष्ट कर। हे ( हरिवः ) उत्तम पुरुषों और अश्वों के स्वामिन्! ( ते ) तेरे लिये यह ( नव्यम् ) नया, उत्तम ( ब्रह्म ) ऐश्वर्य ( अकारि ) किया जाता है, हम तेरे अधीन ( धिया ) उत्तम कर्म और उत्तम बुद्धि से युक्त होकर ( सदासाः ) भृत्यादि सहित सुख से ( रथ्यः ) रथादि सम्पन्न होकर ( स्याम ) रहें। इति द्वितीयो वर्गः॥

## [ २० ]

वामदेव ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ३, ६ निचृत्त्रिष्टुप्। ४, ५ विराट् त्रिष्टुप्। ८, १० त्रिष्टुप्। २ पंक्तिः। ७, ९ स्वराट् पंक्तिः। ११ निचृत्पंक्तिः॥ एकादशर्चं सूक्तम्॥

**आ न इन्द्रो दूरादा न आसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः।**
**ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः सङ्गे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून्॥ १॥**

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (उग्रः) बलवान् ( नृपतिः ) सब मनुष्यों का पालक, ( वज्रबाहुः ) बाहुओं में शस्त्रास्त्र एवं बल वीर्य को धारण करने वाला ( समत्सु ) संग्रामों में ( ओजिष्ठेभिः ) अति पराक्रमशाली वीर पुरुषों द्वारा ( पृतन्यून् ) सेना लेकर युद्ध करने की इच्छा करने वाले बड़े २ सेनापतियों को ( संगे ) एक साथ प्रतिस्पर्धा में ( तुर्वणिः ) नाश करने हारा ( दूरात् आसात् ) दूर और समीप से भी ( अवसे ) हमारी रक्षा के लिये ( नः ) हमें ( यासत् ) प्राप्त हो।

**आ न इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छार्वाचीनोऽवसे राधसे च।**
**तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ॥ २॥**

भा०—( इन्द्रः ) परमैश्वर्यवान् राजा ( अवसे ) रक्षा और ( राधसे च ) धनैश्वर्य की वृद्धि के लिये ( अर्वाचीनः ) वर्त्तमान में भी

वा विनयपूर्वक ( हरिभिः ) उत्तम पुरुषों सहित ( नः अच्छ आयातु ) हमें प्राप्त हो। ( वज्री ) शस्त्रास्त्रों का स्वामी, बल वीर्यवान् ( मघवा ) धनैश्वर्य से सम्पन्न ( विरप्शी ) महान् आज्ञापक, ( वाजसातौ ) ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये ( नः ) हमारे ( इमं ) इस ( यज्ञं ) यज्ञ, परस्पर संगति, राज्य प्रबन्ध को ( अनु तिष्ठाति ) विधिपूर्वक चलावे।

**इमं यज्ञं त्वमस्माकमिन्द्र पुरो दधत्सनिष्यासि क्रतुं नः।**
**श्वघ्नीव वज्रिन्त्सनये धनानां त्वया वयमर्य आजिं जयेम ॥३॥**

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! ( त्वम् ) तू ( अस्माकम् ) हमारे ( इमं ) इस ( यज्ञं ) परस्पर के आदर सत्संग, मैत्रीभाव और राज्य-प्रबन्ध को ( पुरः दधत् ) सबके समक्ष धारण करे। इस प्रकार तू (नः) हमें ( क्रतुम् ) उत्तम प्रज्ञा या बुद्धि को ( सनिष्यसि ) प्रदान कर सकेगा। हे ( वज्रिन् ) वीर्य बल से युक्त! ( धनानां सनये ) ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के लिये ( वयम् ) हम सब ( अर्यः ) स्वामी होकर ( त्वया ) तेरे द्वारा ( श्वघ्नी इव ) कितव वा जुआरी के समान ( आजिम् ) स्पर्धा के लक्ष्य को ( जयेम ) विजय करें। 'श्वघ्नी' कितवो भवति। यास्कः निरुक्ते ५। ४। ३॥

**उशन्नु षु णः सुमना उपाके सोमस्य नु सुषुतस्य स्वधावः।**
**पा इन्द्र प्रतिभृतस्य मध्वः समन्धसा ममदः पृष्ठ्येन ॥ ४ ॥**

भा०—हे ( स्वधावः ) अन्न आदि ऐश्वर्य से युक्त! तू ( सुमनाः ) शोभनचित्त और उत्तम प्रशंसनीय ज्ञान से युक्त होकर ( नः ) हमारे समीप ( सुसुतस्य सोमस्य ) उत्तम रीति से पूजा आदरपूर्वक प्रदत्त ( सोमस्य ) ऐश्वर्य और ( प्रतिभृतस्य ) प्रत्येक पुरुष से धारण करने योग्य ( मध्वः ) मधुर अन्न का भी तू ही ( पाः ) पालन कर एवं उपभोग कर। और ( पृष्ठ्येन ) पीछे से वा आनन्द सेचक ( अन्धसा ) जीवनप्रद उस अन्न से तू ( संममदः ) अच्छी प्रकार हर्षित हो।

वि यो ररप्श ऋषिभिर्नवेभिर्वृक्षो न पक्वः सृण्यो न जेता ।
मर्यो न योषामभि मन्यमानोऽच्छा विवक्मि पुरुहूतमिन्द्रम् ५।३

भा०—( यः ) जिसकी ( नवेभिः ऋषिभिः ) नये अध्यापक, अध्येता, ज्ञानद्रष्टा पुरुष भी ( ररप्शे ) स्तुति करते हैं । जो ( पक्वः वृक्षः न ) पके वृक्ष के समान परिपक्व मधुर फलों को देने वाला और ( सृण्यः जेता न ) वेग से जाने वाली सेना, वा आयुधों के सञ्चालन में कुशल पुरुष के तुल्य ( जेता ) समरविजयी, ( योषाम् ) युवति को ( अभि मन्यमानः ) अपनी प्रिय मानने वाले ( मर्यः न ) पुरुष के समान अपनी प्रजा को अपना मानता हुआ हो । उस ( इन्द्रं ) ऐश्वर्यवान् ( पुरुहूतम् ) बहुतों से स्तुत्य पुरुष को ( अच्छ विवक्मि ) अच्छी प्रकार उपदेश कर वा उसको मैं बहुस्तुत्य 'इन्द्र' नाम से पुकारता हूं । इति तृतीयो वर्गः ॥

गिरिर्न यः स्वतवाँ ऋष्व इन्द्रः सनादेव सहसे जात उग्रः ।
आदर्ता वज्रं स्थविरं न भीम उद्नेव कोशं वसुना न्यृष्टम् ॥ ६ ॥

भा०—( यः ) जो ( गिरिः न ) मेघ या पर्वत के समान ( स्वतवान् ) अपने गुणों और ऐश्वर्यों से उन्नत ( ऋष्वः ) महान् ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता ( सनात् एव ) सदा से ( सहसे ) परभवकारी बल से ( उग्रः जातः ) अति उग्र, बलवान् ( जातः ) रूप से प्रसिद्ध होता है । और जो ( भीमः न ) अति भयंकर होकर ( स्थविरं ) अति स्थूल विशाल ( वज्रं ) बल एवं शस्त्रास्त्र का ( आदर्त्ता ) आदरपूर्वक स्वीकार करता है, और जो ( उद्ना कोशं इव ) जल से पूर्ण मेघ के तुल्य ( वसुना ) धनैश्वर्य से ( नि ऋष्टं ) पूर्ण ( कोशं ) ख़जाने को ( आदर्त्ता ) धारण करता है वह ( इन्द्रः ) 'इन्द्र' कहाने योग्य है । उसको मैं 'पुरुहूत इन्द्र' कहता हूं ।

न यस्य वर्ता जनुषा न्वस्ति न राधस आमरीता मघस्य ।
उद्वावृषाणस्तविषीव उग्रास्मभ्यं दद्धि पुरुहूत रायः ॥ ७ ॥

भा०—( यस्य ) जिसका ( जनुषा उ ) जन्म से ही ( वर्त्ता न अस्ति ) निवारण करने वाला कोई नहीं है और जिसके ( मघस्य ) पूज्य ऐश्वर्य और ( राधसः ) धन अन्नादि का भी ( आमरीता न ) नाश करने वाला नहीं। हे ( तविषीवः ) वलवती सेना के स्वामिन्! हे (उग्र) वलवन्! हे ( पुरुहूत ) बहुतों से स्तुत्य! तू ( उद्वावृषाणः ) उत्तम सुखों को मेघवत् वर्षाता हुआ या उत्तम पद पर राज्य-प्रबन्ध करता हुआ ( अस्मभ्यं ) हमें ( रायः ) नाना धनों को ( दद्धि ) प्रदान कर।

ई॒क्षे रा॒यः क्षय॑स्य चर्षणी॒नामु॒त व्र॒जम॑पव॒र्तासि॒ गोना॑म्।
शि॒क्षा॒न॒रः स॑मि॒थेषु॑ प्र॒हावा॒न्वस्वो॑ रा॒शिम॑भिने॒तासि॒ भूरि॑म् ॥८॥

भा०—तू ( चर्षणीनाम् ) मनुष्यों के ( क्षयस्य ) रहने के निवास-स्थान राष्ट्र को ( ईक्षे ) स्वयं देखता है। ( उत ) और ( गोनाम् ) गौओं, वाणियों और भूमियों के ( व्रजम् ) बीच जाने योग्य उत्तम पुर आदि या मार्गों को, गौओं के बाड़े को गोपाल के समान ( अपवर्त्तासि ) रक्षा करने वा खोलने वाला है। तू ( समिथेषु ) संग्रामों में (शिक्षा-नरः) सब मनुष्यों का शिक्षक, दण्ड नायक! और (प्रहावान्) प्रेरणा करने, विजय प्राप्त करने हारा और (वस्वः) धनैश्वर्य, राज्य में बसे प्रजाजन के ( भूरिम् राशिम् ) बहुत बड़े समूह का ( अभिनेता ) लाने और ले चलनेहारा उत्तम नायक ( असि ) है।

कया॒ तच्छृ॑ण्वे॒ शच्या॒ शचि॑ष्ठो॒ यया॑ कृ॒णोति॒ मुहु॒ का चि॑दृ॒ष्वः।
पु॒रु दा॒शुषे॒ विच॑यिष्ठो॒ अंहो॑ऽथा॑ दधाति॒ द्रवि॑णं जरि॒त्रे ॥ ९ ॥

भा०—( तत् ) वह राजा वा परमेश्वर ( शचिष्ठः ) सबसे अधिक बुद्धि, शक्ति और वाणी से युक्त ज्ञानमय, सर्व शक्तिमान् वाक् स्वरूप, ( कया शच्या ) किस वाणी, शक्ति और बुद्धि से युक्त है। उत्तर—( यया ) जिससे ( ऋष्वः ) वह महान् ( का चित् ) कई अनेक कार्य ( मुहु )

वार २ ( कृणोति ) करता है, और ( दाशुषे ) आत्मसमर्पण करने वा कर आदि देने वाले प्रजाजन और स्तुतिकर्त्ता विद्वान् धर्मोपदेष्टा के लिये ( पुरु अंहः ) बहुत सा पाप, अपराध ( विचयिष्ठः ) खूब दूर कर देता है, (अथ) और उसके बाद ( द्रविणं ) ऐश्वर्य भी (दधाति) प्रदान करता है।

**मा नो॑ मर्धी॒रा भ॑रा द॒द्धि तन्नः॒ प्र दा॒शुषे॒ दात॑वे॒ भूरि॒ यत्ते॑ ।**
**नव्ये॑ दे॒ष्णे श॒स्ते अ॒स्मिन्त॑ उ॒क्थे प्र ब्र॑वाम व॒यमि॑न्द्र स्तु॒वन्तः॑॥१०॥२१**

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! राजन् ! ( नः ) तू हमें ( मा ) मत ( मर्धीः ) विनाश कर । ( दातवे ) अपने को तेरे प्रति समर्पण करने वाले जन के लिये ( यत् ते ) जो तेरा ( दातवे ) देने योग्य ( भूरि ) बहुत सा है ( तत् आभर ) उसी को प्राप्त कर और (नः दद्धि) हमें प्रदान कर। ( अस्मिन् ) इस ( नव्ये ) अति उत्तम, ( देष्णे ) दान योग्य, ( शस्ते ) अति प्रशस्त ( ते ) तेरे ( उक्थे ) वचन में रहते हुए ( वयम् ) हम लोग ( स्तुवन्तः ) गुणानुवाद करते हुए, ( प्र ब्रवाम ) अच्छी प्रकार बतलावें।

**नू ष्टु॒त इ॑न्द्र॒ नू गृ॑णा॒न इषं॑ जरि॒त्रे न॒द्यो॒३॑ न पी॑पेः।**
**अका॑रि ते हरिवो॒ ब्रह्म॒ नव्यं॑ धि॒या स्या॑म र॒थ्यः॑ सदा॒साः ॥११॥४॥**

भा०—व्याख्या पूर्व सूक्त १९ । ११ में देखो ॥ इति चतुर्थो वर्गः ॥

## [ २० ]

वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ७, १० भुरिक् पंक्तिः । ३ स्वराड् पंक्तिः । ११ निचृत् पंक्तिः । ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ६, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ९ त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

**आ य॒ इन्द्रो॑ऽव॑स॒ उप॑ न इ॒ह स्तु॒तः स॑ध॒माद॑स्तु॒ शूरः॑ ।**
**वा॒वृ॒धा॒नस्तवि॑षी॒र्यस्य॑ पू॒र्वीर्द्यौर्न क्ष॒त्रम॒भिभू॑ति॒ पुष्या॑त् ॥ १ ॥**

भा०—( इह ) इस राष्ट्र में ( शूरः ) शूरवीर, शत्रुओं के नाश करने में कुशल ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान्, ( स्तुतः ) गुणों द्वारा प्रशंसित राजा ( नः ) हमारी ( अवसे ) रक्षा के लिये ( उप आयातु ) प्राप्त हो। वह ( वावृधानः ) बढ़ता हुआ भी ( नः ) हमारे साथ ( सधमात् अस्तु ) हर्षों में हर्षित होने वाला हो। ( यस्य ) जिसकी ( पूर्वीः ) पहले से विद्यमान वा बल कौशल पूर्ण, राष्ट्र पालन करने में कुशल, ( तविषीः ) सेनाएं हों और ( क्षत्रम् ) बल, वीर्य, पराक्रम, क्षात्र बल ( द्यौः नः ) सूर्य के प्रकाश के समान ( अभिभूति ) सबको परजित करने वाला होकर ( पुष्यात् ) स्वयं बढ़े और राष्ट्र को पुष्ट करे।

तस्येदिह स्तवथ वृष्ण्यानि तुविद्युम्नस्य तुविराधसो नॄन्।
यस्य क्रतुर्विदथ्यो३ न सम्राट् साह्वान् तरुत्रो अभ्यस्ति कृष्टीः॥२॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य का ( क्रतुः ) जलाकर्षण, वर्षण आदि कार्य और ( कृष्टीः अभि अस्ति ) कर्षक प्रजाओं को लक्ष्य कर सुखकारी होता है उसी प्रकार ( यस्य ) जिसका ( क्रतुः ) राज्य पालन आदि कर्म ( विदथ्यः ) यज्ञ, संग्राम, यश और श्री के लाभ के योग्य ( सम्राट् न ) सर्वत्र प्रकाशमान् सूर्य के तुल्य, ( साह्वान् ) सबको पराजित करने वाला, ( तरुत्रः ) दुःखों से तराने वाला ( कृष्टीः अभि अस्ति ) कर्षणशील, कृषिकर प्रजा के लिये अति सुखकारी और प्रजा का कर्षण अर्थात् पीड़न करने वाले दुष्टों को ( अभि अस्ति ) पराजित करने वाला होता है हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग ( तुविद्युम्नस्य ) बहुत से ऐश्वर्य के स्वामी, ( तुविराधसः ) बहुत से साधनों वाले ( तस्य इत् ) इसके ही ( वृष्ण्यानि ) प्रजा या सुखों की वर्षा और उनका प्रबन्ध करने वाले बलों और ( नॄन् ) उसके मुख्य नायकों के ( स्तवथ ) गुण वर्णन करो।

आ यात्विन्द्रो दिव आ पृथिव्या मक्षू समुद्रादुत वा पुरीषात्।
स्वर्णरादवसे नो मरुत्वान् परावतो वा सदनादृतस्य॥ ३॥

भा०—( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् पुरुष ( मरुत्वान् ) वायुगणों सहित ( दिवः ) आकाश से सूर्य के समान तेजस्वी होकर ( मक्षु ) शीघ्र (आयातु ) हमें प्राप्त हो, (पृथिव्याः) वह हमें भूमि से सुवर्णादि वा अग्नि के तुल्य ( आ ) प्राप्त हो, ( समुद्रात् ) अन्तरिक्ष से मेघ या विद्युत् के तुल्य प्राप्त हो, ( पुरीषात् ) जल में से विद्युत्वत् 'पुरीष' अर्थात् ऐश्वर्य में से प्राप्त हो। वह पुरुष ( स्वर्नरात् ) सूर्यवत् प्रतापी नायक समूह में से ( वा ) और ( परावतः ) दूरस्थ देश से और ( ऋतस्य सदनात् ) सत्य न्याय के परम स्थान से भी ( नः ) हमारे ( अवसे ) रक्षा आदि के लिये ( आयातु ) हमें प्राप्त हो।

**स्थूरस्य॑ रा॒यो बृ॑ह॒तो य ईशे॒ तमु॑ ष्टवाम वि॒दथे॒ष्विन्द्र॑म्।**
**यो वा॒युना॒ जय॑ति॒ गोम॑तीषु॒ प्र धृ॑ष्णु॒या नय॑ति॒ वस्यो॒ अच्छ॑॥४॥**

भा०—( यः ) जो वीर पुरुष ( बृहतः ) बड़े ( स्थूरस्य ) भारी ( रायः ) धनैश्वर्य का (ईशे) स्वामी है हम ( तम् उ इन्द्रम् ) उस शत्रु-हन्ता की ( विदथेषु ) संग्रामों के अवसरों में ( स्तवाम ) स्तुति करें। ( यः ) जो ( वायुना ) वायु के समान तीव्र गति से जाने वाले बल से ( गोमतीषु ) सेनाओं के आधार पर ( जयति ) विजय करता है और धृष्णुया ) शत्रुओं का पराजय, करने वाले सैन्यों को ( प्र नयत्ति ) आगे बढ़ाता और ( वस्यः ) अति श्रेष्ठ धन ( अच्छ ) प्राप्त कराता है।

**उप॒ यो नमो॒ नम॑सि स्तभा॒यन्निय॑र्ति॒ वाचं॑ ज॒नय॒न्यज॑ध्यै।**
**ऋ॒ञ्ज॒सा॒नः पु॑रु॒वार॑ उ॒क्थैरेन्द्रं॑ कृण्वीत॒ सद॑नेषु॒ होता॑॥५॥५॥**

भा०—( यः ) जो राजा ( नमसि ) अन्यों के आदर सत्कार, शत्रु नमाने का साधन बल और शस्त्रादि के आश्रय पर जो ( नमः ) स्वयं अन्यों के आदर सत्कार, शत्रु नमाने वाले बल आदि को ( स्तभयन् ) अपने वश करता हुआ ( यजध्यै ) दान देने, मैत्री करने और मेल सत्संग

करने के लिये (वाचं जनयन्) उत्तम वाणी को प्रकट करता हुआ (इयर्त्ति) अन्यों को प्रेरित करता है। वह (ऋञ्जसानः) अच्छी प्रकार सबको वश करता हुआ, (पुरुवारः) बहुतों से वरण करने योग्य और बहुत से शत्रुओं का वारण करने वाला, (होता) सब ऐश्वर्यों का दाता है उसको (सदनेषु) उत्तम पदों पर (इन्द्रं) ऐश्वर्य युक्त अध्यक्ष स्वामी (आ कृण्वीत) बनाओ। अथवा (सः उक्थैः इन्द्रं आ कृण्वीत) वह उत्तम उपायों से ऐश्वर्य उत्पन्न करे। इति पञ्चमो वर्गः ॥

**धिषा यदि धिषण्यन्तः सरण्यान्त्सदन्तो अद्रिमौशिजस्य गोहे।**
**आ दुरोषाः पास्त्यस्य होता यो नो महान्त्संवरणेषु वह्निः ॥ ६ ॥**

भा०—(यदि) जब (औशिजस्य) मान धनादि कामना करने वाले पुरुष के (गोहे) गृह में (सदन्तः) उत्तम पदों पर प्रतिष्ठा प्राप्त करते हुए दर्बारी लोग (अद्रिम्) शत्रुओं का नाश करने वाले और स्वयं न डरने वाले पुरुष को (धिषा) उत्तम बुद्धि या वाणी से (धिषण्यन्तः) स्तुति करते हुए (तम् सरण्यान्) उसको प्राप्त हों तो (यः) जो (नः) हमारे लिये (संवरणेषु) आच्छादित गूढ़ अन्धकार पूर्ण स्थानों में (वह्निः) अग्नि के समान तेजोमय होकर, नायक होकर हमें ले चलने हारा है। वह (पास्त्यसस्य) गृहों में वसी प्रजा के हितकारक, ऐश्वर्य (होता) देने वाला (दुरोषाः) दुस्तर क्रोध या तेज से युक्त होकर भी हमारे प्रति (दुरोषाः) क्रोध रहित होकर हमें (आ) प्राप्त हो।

**सत्रा यदीं भार्वरस्य वृष्णः सिषक्ति शुष्मः स्तुवते भराय।**
**गुहा यदीमौशिजस्य गोहे प्र यद्धिये प्रायसे मदाय ॥ ७ ॥**

भा०—जिस प्रकार (भार्वरस्य वृष्णः) सबके पालक पोषक सूर्य बल (सत्रा स्तुवते भराय) सचमुच स्तुतिकर्त्ता जीवनगण के भरण पोषण के लिये (ईं सिषक्ति) जल सेचन करता है उसी प्रकार (भार्वरस्य वृष्णः) समस्त राष्ट्र को भरण पोषण करने वाले, सबसे बलवान्

पुरुष का ( शुष्मः ) शत्रु को शोषण करने वाला बल वा उद्योग भी ( यत् ) जब ( ईं ) इस राष्ट्र को ( सिषक्ति ) प्राप्त होता है तो वह ( सत्रा ) सचमुच था साथ २ ( स्तुवते ) राजा से प्रार्थना करने वाले प्रजाजन के ( भराय ) भरण पोषण के लिये ही होना चाहिये। और ( औशिजस्य ) कान्तिमान् तेजस्वी राजा के ( गुहा ) बुद्धि में ( यत् ) जो भी विचार हों और ( यत् गोहे ) जो एकान्त स्थान में मन्त्रणा भी हों वे ( सत्रा ) सदा ( ईम् ) राष्ट्र के ( धिये प्र ) उत्तम कर्म करने के लिये, ( अयसे प्र ) उत्तम मार्ग पर बढ़ने के लिये और ( मदाय प्र ) सबके हर्ष सुख के लिये ( षिसक्ति ) प्राप्त हो।

**वि यद्वरां॑सि॒ पर्व॑तस्य वृ॒ण्वे पयो॑भिर्जि॒न्वे अ॒पां जवां॑सि।**
**वि॒दद्गौ॒रस्य॑ गव॒यस्य॒ गोहे॒ यदी॒ वाजा॑य सु॒ध्यो॒३॑ वह॑न्ति ॥८॥**

भा०—जिस प्रकार विद्युत् मेघ के द्वार को खोलता है तब जलों के वेगवान् स्रोतों को बढ़ा देता है उसी प्रकार ( यत् ) जब राजा ( पर्वतस्य ) पर्वत प्रदेश के ( वरांसि ) आवृत या घिरे हुए स्थानों को ( वि वृण्वे ) खोले तब उनमें एकत्र हुए ( पयोभिः ) जल-राशियों से (अपां) जलों के ( जवांसि ) वेग से बहने वाले प्रवाहों को ( जिन्वे ) बढ़ावे। और ( यदि ) जब ( सुध्यः ) उत्तम कर्मकर्त्ता लोग ( वाजाय ) अन्न प्राप्त करने के लिये ( वहन्ति ) खेत में हल बाहें तब ( गोहे ) अन्न को बचाने के लिये ( गौरस्य गवयस्य ) गौर, गवय हरिण और नीलगाय इन खेती नाश करने वाले पशु जातियों का (विदद्) भी ध्यान रक्खें। अथवा-( सुध्यः यदि वाजाय वहन्ति ) बुद्धिमान् लोग वेग वृद्धि के लिये रथादि चलावें तव ( गौरस्य गवयस्य विदत् ) हरिण और नीलगाय के जाति के पशु को भी प्राप्त करें और उनका उपयोग करे। पर्वतों के एकत्र जल ताल आदि के द्वारों को खोल कर कृषि के लिये राजा नहरें बहावे, वेगवान् रथ के लिये मृग, गवयादि का उपयोग करे। तिब्बत, लदाख, अमरीका, रूस

आदि देशों में नीलगाय, (जाक्) और अल्पाका, बारहसींगा आदि पशुओं से गाड़ी, बोझा आदि ढोने का कार्य लिया जाता है।

भद्रा ते हस्ता सुकृतोत पाणी प्रयन्तारा स्तुवते राध इन्द्र।
का ते निषत्तिः किमु नो ममत्सि किं नोदुदु हर्षसे दातवा उ ॥९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! हे सब के सुख अन्न आदि देने हारे! (ते हस्ता) तेरे दोनों हाथ (भद्रा) कल्याण और सुख करने वाले, भाग्यशाली, (उत) और (पाणी) दोनों बाहुएं (सुकृता) उत्तम काम करने में कुशल और (स्तुवते) विद्वान् उपदेष्टा पुरुष के उपकार के लिये (राधः) धनैश्वर्य (प्रयन्तारा) अच्छी प्रकार देने हारे हों। तू विचार कर कि (ते निपत्तिः का) तेरी उच्च पद पर क्या स्थिति है उसका क्या प्रयोजन? तू (दातवा) दान देने के लिये भला (किम् उ नो ममत्सि) क्योंकर न प्रसन्न हुआ करे और (किम् उ नो उद् हर्षसे उ) और क्यों न तू खूब हर्षित हो। अर्थात् तू बड़ा राजा है दान के कार्य में तुझे खूब प्रसन्न और हर्षयुक्त उत्साही बने रहना अच्छा है।

एवा वस्व इन्द्रः सत्यः सम्राड्ढन्ता वृत्रं वरिवः पूरवे कः।
पुरुष्टुत क्रत्वा नः शग्धि रायो भक्षीय तेऽवसो दैव्यस्य ॥ १० ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता, राजा (सत्यः) सज्जनों के बीच सज्जन, न्यायशील, सत्यधर्म का पालक, (वस्वः) ऐश्वर्य और राष्ट्र में वसी प्रजा का (सम्राट्) महाराजाधिराज, (वृत्रं हन्ता) मेघनाशक विद्युत् के तुल्य विघ्नकारी दुष्ट पुरुष को दण्डित करने वाला होकर (पूरवे) अपने ऐश्वर्य को पूर्ण करने और अपने बनाये राजनियमों को पालने वाले प्रजाजन की वृद्धि के लिये (वरिवः कः) नाना ऐश्वर्य उत्पन्न करे। हे (पुरुस्तुत) बहुतों से प्रशंसित उत्तम राजन्! (नः) हमें (क्रत्वा) हमारे काम और ज्ञान, योग्यता वा कर्म कौशल के अनुसार (रायः) धन या देने योग्य वेतनें (शग्धि) प्रदान कर। मैं प्रजाजन (ते) तुझ

( दैव्यस्य ) दानशील पुरुष के ( अवसा ) रक्षा और उत्तम व्यवहार का ( भक्षीय ) उपभोग करूं।

**नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्योॱन पीपेः।**
**अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥६॥२॥**

भा०—देखो व्याख्या पूर्व सूक्त २० । ११ में ॥ इति षष्ठो वर्गः । इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

## [ २२ ]

वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, १० निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् । ६, ७ त्रिष्टुप् । ८ भुरिक् पंक्तिः । ९ स्वराट् पंक्तिः । ११ निचृत् पंक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

**यन्न इन्द्रो जुजुषे यच्च वष्टि तन्नो महान्करति शुष्म्या चित्।**
**ब्रह्म स्तोमं मघवा सोममुक्था यो अश्मानं शवसा बिभ्रदेति ॥१॥**

भा०—( यत् इन्द्रः ) जो ऐश्वर्यवान् बलवान् पुरुष, राजा ( नः जुजुषे ) हमें प्रेम करता है ( यत् च वष्टि ) जो हमें चाहता है और ( यः ) जो ( शवसा अश्मानं ) जल सहित विद्युत् को धारण करने वाले मेघ के समान ( शवसा अश्मानं बिभ्रत् ) बल सहित वज्र या शस्त्रास्त्र सैन्य को धारण पोषण करता हुआ ( एति ) प्राप्त होता है ( तत् ) वह ( महान् ) बड़ा पूजनीय, ( शुष्मी ) बलवान् होकर ( नः ) हमारे लिये ( ब्रह्म ) वेद विज्ञान, बड़ा ऐश्वर्य, ( स्तोमं ) स्तुति योग्य बल वीर्य, ( सोमम् ) ऐश्वर्य, पुत्र सन्तान और ( उक्था ) उत्तम वचन ( आ करति चित् ) आदर पूर्वक प्रदान करे।

**वृषा वृषन्धिं चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो बाहुभ्यां नृतमः शचीवान्।**
**श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णां यस्याः पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥२॥**

भा०—( वृषा ) बलवान् ( उग्रः ) शत्रुओं में उद्वेग उत्पन्न करने

वाला, तेजस्वी शक्ति शाली ( नृतमः ) नायकों में सर्वश्रेष्ठ ( शचीवान् ) उत्तम शक्ति, प्रज्ञा और समर्थ शक्तिमती प्रजा का स्वामी, ( श्रिये ) अपनी प्रजा को आश्रय देने और शत्रु को सन्तप्त करने वाली राज्यलक्ष्मी की वृद्धि के लिये; ( ऊर्णाम् ) आच्छादन करने वाली ऊनकी बनी ( परुष्णीम् ) पर्व पर्व पर उग्र वस्त्र के समान ( ऊर्णाम् ) राष्ट्र को आच्छादन करने घेरने और व्यापने वाली, ( परुष्णीम् ) प्रति पर्व, स्थान २ पर शत्रु को संताप देने वाली, नाना पर्व अर्थात् विभागों से युक्त उस सेना और प्रजा को ( यस्याः ) जिसके ( पर्वाणि ) पालन करने वाले सामर्थ्यों या विभागों को ( सख्याय ) मैत्रीभाव की वृद्धि के लिये ( विव्ये ) चाहता और सुरक्षित करता है उसको ( उपमाणः ) बसाता और धारण करता हुआ ( वृपन्धि ) बलवान् पुरुषों को धारण करने वाले ( चतुरश्रिम् ) चार स्कन्धों वाले चतुरंग बल को ( बाहुभ्यां ) बाहुओं से ( अस्यन् ) चौधारे खड्ग के समान चलावे ।

यो देवो देवतमो जायमानो महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः ।
दधानो वज्रं बाह्वोरुशन्तं द्याममेन रेजयत्प्र भूम ॥ ३ ॥

भा०—( यः ) जो ( देवः ) दानशील, सूर्य के समान तेजस्वी ( देवतमः ) विजिगीषुओं में सर्वश्रेष्ठ, ( महद्भिः ) बड़े २ ( वाजेभिः ) अन्नादि ऐश्वर्यों, बलों और ( शुष्मैः ) शत्रुशोषक सैन्यों से (महः) महान्, पूज्य, और ( जायमानः ) प्रसिद्ध हो वह ( बाह्वोः ) बाहुओं में (उशन्तं) कान्ति से चमचमाते ( वज्रं ) खड्ग को ( दधानः ) धारण करता हुआ ( अमेन ) बल से ( द्याम् ) आकाश को सूर्य के समान प्रताप से (भूम) भूमि को ( रेजयत् ) कंपावे ।

विश्वा रोधांसि प्रवतश्च पूर्वीर्द्यौर्ऋष्वाज्जनिमन्नेजत क्षाः ।
आ मातरा भरति शुष्म्या गोर्नृवत्परिज्मन्नोनुवन्त वाताः ॥४॥

भा०—जिस प्रकार ( ऋष्वात् ) महान् परमेश्वर से (विश्वा रोधांसि)

समस्त उन्नत लोक और ( प्रवतः च ) अधो लोक ( पूर्वीः द्यौः क्षाः ) सनातन से चले आये आकाश और भूमि सब ( जनिमन् ) जन्म लेते हैं और वह उन सबको (रेजत) सञ्चालित करता है। उसी प्रकार (ऋष्वात्) महान् राजा से ( विश्वा रोधांसि ) नदी के उच्छृंखल प्रवाहों को रोकने वाले तटों के समान प्रजाओं को उच्छृंखलता से रोक देने वाले राज नियम और ( पूर्वीः ) सनातन से चली आने वाली निम्न या अधीन प्रजाएं और ( जनिमन् ) उत्पन्न हुए सब प्राणी, ( द्यौः क्षाः ) ज्ञानप्रकाशयुक्त, तेजस्वी, और भूमि में निवासी सामान्य प्रजाएं भी उसी से स्थिति लाभ करते और उसी से सञ्चालित होते हैं। वह ( शुष्मी ) बलवान् राजा ( गोः ) पृथिवी के ( मातरा ) राजा प्रजा दोनों वर्गों को ( आभरति ) पुष्ट करे। ( वाताः ) वायु के समान तीव्र बलशाली वीर और ज्ञानी पुरुष ( परिज्मन् ) आकाशवत् भूमि में ( नृवत् ) उत्तम सज्जन और नायक के तुल्य ( नोनुवन्त ) उत्तम शब्द, उपदेश और गर्जन तर्जनादि करें।

ता तू त॑ इन्द्र मह॒तो म॒हानि॒ विश्वे॑ष्वि॒त्सव॑नेषु प्र॒वाच्या॑।
यच्छू॑र धृष्णो धृ॒ष॒ता द॑धृ॒ष्वानहिं॒ वज्रे॑ण॒ शव॒साविवे॑षीः ॥५॥७॥

भा०—( यत् ) जब हे ( शूर ) शूरवीर ! तू ( धृषता ) शत्रु को पराजय करने में समर्थ ( वज्रेण ) बलवीर्य से ( अहिं ) सन्मुख आये शत्रु को ( दधृष्वान् ) पराजित करता हुआ ( शवसा ) बल से ( आविवेषीः ) राष्ट्र को व्याप लेता है, हे ( धृष्णो ) दृढ़ पुरुष ! ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! तब ( ते ) तुझ महान् शक्तिशाली पुरुष के ( विश्वेषु सवनेषु इत् ) समस्त ऐश्वर्य और राज्यशासनादि कार्यों में ( ता ) वे नाना ( महानि ) बड़े २ काम ही ( प्रवाच्या ) उत्कृष्ट रूप से कहे जाने योग्य होते हैं। इति सप्तमो वर्गः ॥

ता तू ते॑ स॒त्या तु॑विनृम्ण॒ विश्वा॒ प्र धे॒नवः॑ सिस्रते॒ वृष्ण॒ ऊध्नः॑।
अधा॑ ह॒ त्वद्वृ॑षमणो भिया॒नाः प्र सिन्ध॑वो॒ जव॑सा चक्रमन्त ॥६

भा०—हे ( तुविनृम्ण ) बहुत धनादि ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! ( ते ) तेरे ( नु ) तो निश्चय से ( ता ) वे नाना कार्य ( सत्या ) सत्य आचरण, न्यायानुसार धर्मानुकूल हों। (ते वृष्णः) वे सब सुख के वर्षण करने वाले, एवं बलवान् तेरे लिये ( विश्वा धेनवः ) समस्त वाणियें और प्रजागण गौओं के समान ( ऊध्नः ) स्तनमण्डल से दुग्ध के समान ( प्र सिस्रते ) खूब ऐश्वर्य प्रवाहित करें, तुझे दें। अन्तरिक्ष में विद्युतों के समान हे ( वृषमणः ) बलवान् पुरुष के समान दृढ़ चित्त वाले ! ( अध ह ) और निश्चय से ( त्वत् भियानाः ) तेरे से भयभीत होकर ( सिन्धवः ) महा नदों के तुल्य वेगवान् रथादि सैन्य ( जवसा ) वेग से ( प्र चक्रमन्त ) आगे बढ़ें, पराक्रम करें। ( २ ) अध्यात्म में इन्द्र आत्मा, 'सिन्धवः' प्राणगण।

अत्राह॑ ते हरिव॒स्ता उ॑ दे॒वीरवो॑भिरिन्द्र स्तवन्त॒ स्वसा॑रः।
यत्सी॒मनु॒ प्र मु॒चो ब॑द्बधा॒ना दी॒र्घामनु॒ प्रसि॑तिं स्यन्द॒यध्यै॑ ॥७॥

भा०—हे ( हरिवः ) उत्तम, विद्वान् पुरुषों और अश्वादि सैन्यों के स्वामिन् ! हे सूर्यवत् तेजस्विन् ! ( यत् ) जब तू ( अत्र ) इस राज्यकार्य में ( दीर्घां प्रसितिम् अनु ) बड़ी लम्बी, चिरकाल तक स्थिर रहने वाली राज्य प्रबन्ध-व्यवस्था के अनुकूल ( स्यन्दयध्यै ) वेग से आगे बढ़ने के लिये ( बद्बधानाः ) प्रबन्ध करने वाली वा प्रबन्ध में बंधी हुई समितियों और उत्तम प्रजाओं को ( सीम् अनु प्रमुचः ) सब प्रकार उनके मनोनुकूल मुक्त या स्वतन्त्र कर देता है तब ( ताः उ देवीः ) वे तुझे कामना करने वाली और ज्ञान-प्रकाश से युक्त प्रजाएं और विदुषी स्त्रियें भी ( स्वसारः ) परस्पर बहनों के समान प्रेम भाव से रहती हुई, और ( स्वसारः ) स्वयं अपने उद्देश्य तक पहुंचती हुई ( अवोभिः ) राज्य के रक्षण, अन्नादि पदार्थों और प्रेमयुक्त व्यवहारों द्वारा ( स्तवन्त ) तेरी प्रशंसा करती हैं।

पिपीळे अंशुर्मद्यो न सिन्धुरा त्वा शमी शशमानस्य शक्तिः ।
अस्मद्र्यक्शुशुचानस्य यम्या आशुर्न रश्मिं तुव्योजसं गोः ॥८॥

भा०—( मद्यः ) हर्षजनक ( अंशुः ) राज्य प्राप्त कराने वाला बल ( सिन्धुः न ) महानद के तुल्य ( त्वा आपिपीडे ) तुझे प्राप्त हो । और ( शशमानस्य ) उद्वेगों और उपद्रवों को शान्त करने वाले और उत्तम उपदेश करने वा शासन करने वाले और अधार्मिक जनों को उलंघन करने वाले प्रबल पुरुष की ( शक्तिः ) शक्ति और ( शमी ) कर्म भी (त्वा आ) तुझे प्राप्त हों । ( आशुः ) शीघ्रगन्ता पुरुष ( न ) जिस प्रकार ( गोः तुव्योजसं रश्मिं या मच्छति तथा ) वेग से जाने वाले अश्व वा वलीवर्द के बहुत बल युक्त रास को काबू रखता है उसी प्रकार ( आशुः ) राष्ट्र का भोक्ता राजा होकर तू भी ( शुशुचानस्य ) अतितेजस्वी ( गोः ) पृथिवी राष्ट्र के ( तुव्योजसं ) बहुत बल से साधने योग्य ( रश्मिम् ) रासों या बागडोर को ( अस्मद्र्यक् ) हमारे सन्मुख ( यम्याः ) निमन्त्रित कर ।

अस्मे वर्षिष्ठा कृणुहि ज्येष्ठा नृम्णानि सत्रा सहुरे सहांसि ।
अस्मभ्यं वृत्रा सुहनानि रन्धि जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्य ॥ ९ ॥

भा०—हे ( सहुरे ) सहनशील ! शत्रु पराजय करने हारे राजन् ! तू ( अस्मे ) हमारे ( सत्रा ) सदा अथवा वस्तुतः, ( वर्षिष्ठा ) बहुत और ( ज्येष्ठा ) खूब प्रशंसनीय ( नृम्णानि ) धन और ( सहांसि ) बल ( कृणुहि ) बना । ( अस्मभ्यं ) हमारे ( वृत्रा ) बढ़ते शत्रुओं को ( सुहनानि ) सुख से हनन करने योग्य कर और ( रन्धि ) उनका नाश कर । ( वधः वनुषः ) हत्या के साधन शस्त्रास्त्र को सेवने वाले ( मर्त्यस्य ) दुष्ट पुरुष को ( जहि ) दण्डित कर । अथवा—( वनुषः मर्त्यस्य वधः जहि ) मारने वाले मनुष्य के वधादि के साधनों का नाश कर ।

अस्माकमित्सु शृणुहि त्वमिन्द्रास्मभ्यं चित्राँ उप माहि वाजान् ।
अस्मभ्यं विश्वा इषणः पुरन्धीरस्माकं सु मघवन्बोधि गोदाः॥१०॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! ( त्वम् ) तू ( अस्माकम् इत् ) हमारे वचन अवश्य ( सु श्रृणुहि ) अच्छी प्रकार सुना कर। ( अस्मभ्यम् ) हमारे लिये ( चित्रान् ) आश्चर्यजनक अभूतपूर्व ( वाजान् ) ज्ञान धनैश्वर्य और बल ( उप माहि ) प्रदान कर। ( अस्मभ्यम् ) हमें ( विश्वाः ) सब प्रकार की ( पुरन्धीः ) बहुत से ज्ञानों को धारण करने वाली बुद्धियें और राष्ट्र को धारण करने वाली समृद्धिएं ( ईषणः ) दे और प्रेरित कर। तू ( गोदाः ) भूमि, वाणी, ज्ञान-रश्मि और गौ आदि पशुओं को देने हारे ( मघवन् ) ऐश्वर्यवन् ! तू ( अस्माकं ) हमें ( सु बोधि ) उत्तम रीति से जान और ज्ञानवान् बना।

**नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३न पीपेः।**
**अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ११।८॥**

भा०—व्याख्या देखो सू० १९। ११ ॥ इत्यष्टमो वर्गः ॥

## [ २३ ]

वामदेव ऋषिः ॥ १—७, ११ इन्द्रः। ८, १० इन्द्र ऋतदेवो वा देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ७, ८, ९ २ त्रिष्टुप्। ४, १० निचृत्त्रिष्टुप्। ५, ६ भुरिक् पंक्तिः। ११ निचृत्पंक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

**कथा महामवृधत्कस्य होतुर्यज्ञं जुषाणो अभि सोममूधः।**
**पिबन्नुशानो जुषमाणो अन्धो ववक्ष ऋष्वः शुचते धनाय ॥१॥**

भा०—( कस्य होतुः ) किस ज्ञान और धनादि देने वाले दानशील महापुरुष के ( महान् ) बड़े भारी ( यज्ञं ) सत्संग, मैत्रीभाव, उत्तम दान को (जुषाणः) प्रेमपूर्वक सेवन करता हुआ ( कथा ) किस प्रकार ( अवृधत् ) बढ़े? उत्तर—जैसे ( ऊधः पिबन् ) स्तनपान करता हुआ बालक बढ़ता है उसी प्रकार ( सोमम् अभि पिबन् ) सब तरफ़ से 'सोम' शान्ति

दायक ऐश्वर्य वा ओषधिरस और ज्ञान को पान करता हुआ बढ़े। वह ( उशानः ) ज्ञान ऐश्वर्यादि की कामना करता हुआ और ( जुषमाणः ) प्रेमपूर्वक सेवन करता हुआ ( ऋष्वः ) महान् होकर ( अन्धः ) उत्तम प्राण धारक अन्न को धारण करे। ( शुचते धनाय ) आत्मा को पवित्र करने वाले शुद्ध धन को प्राप्त करने के लिये ( ववक्षे ) ज्ञान का प्रवचन करे वा धनादि को प्राप्त करे। ( २ ) इसी प्रकार इन्द्र, आचार्य ( सोमं अभि पिबन् ) शिष्य का सब प्रकार से पालन करता हुआ श्रद्धादि से प्राप्त पवित्र धनादि के निमित्त ज्ञान का प्रवचन करे।

**को अ॒स्य वी॒रः स॑ध॒माद॑माप॒ समा॑नंश सुम॒तिभिः॒ को अ॒स्य।**
**कद॑स्य चि॒त्रं चि॑किते॒ कदू॒ती वृ॒धे भु॑वच्छशमा॒नस्य॒ यज्योः॑ ॥२॥**

भा०—( अस्य ) इसके ( सधमादम् ) साथ आनन्द प्रसन्न होने का अवसर ( कः ) कौन ( आप ) प्राप्त करता है। और ( अस्य ) इसके साथ ( सुमतिभिः ) उत्तम बुद्धियों, विज्ञान और विज्ञानवान् पुरुषों सहित ( कः समानंश ) कौन सत्संग करता है, मनुष्य जो उसका सत्संग और सहयोग भी करता है वह ( अस्य ) इसके ( चित्रं ) अद्भुत सामर्थ्य को ( कत् ) कब (चिकिते) जान पाता है, ( अस्य ) इस ( यज्योः ) सत्संग-योग्य, दाता, परम मित्र एवं ( शशमानस्य ) उत्तम गुणों में प्रशंसित और अन्यों को शासन करने वा शस्त्रादि का अभ्यास करने वाले पुरुष की ( ऊती ) रक्षा, ज्ञान और अन्यों को प्रसन्न करने के सामर्थ्य से ( वृधे ) वृद्धि प्राप्त करने के लिये ( कत् ) कब ( भुवत् ) समर्थ होता है।

**क॒था शृ॑णोति हू॒यमा॑न॒मिन्द्रः॑ क॒था शृ॒ण्वन्नव॑सामस्य वेद।**
**का अ॑स्य पू॒र्वीरुप॑मातयो ह क॒थैन॑माहुः॒ पपु॑रिं जरि॒त्रे ॥ ३ ॥**

भा०—(इन्द्र) ऐश्वर्यवान् शत्रु और अज्ञान का नाश करने वाला वीर राजा और विद्वान् आचार्य,( हूयमानम् ) अपने से स्पर्धा करने वाले शत्रु

के वचन और अपने प्रति दिये या सौंपे जाने वाले शिष्य के प्रति ( कथा शृणोति ) किस प्रकार श्रवण करे। और ( शृण्वन् ) सुनने वाला पुरुष ( अस्य ) इस राजा और विद्वान् के ( अवसाम् ) ज्ञानों और रथादि सामर्थ्यों को ( कथा वेद ) किस प्रकार जाने। ( अस्य ) इसकी (पूर्वीः) ऐश्वर्यों से पूर्ण, बहुतसी, पूर्वतः विद्यमान ( उपमातयः ) समीपस्थ शत्रु हननकारिणी और उसका अपना मान उत्पन्न करने वाली और सम्मति अनुमति देने वाली ( का ) सेना, प्रजा, और समितियें क्या २ हों, और विद्वान् की 'उपमाति' अर्थात् ज्ञान शक्तियां मान पद आदि क्या २ हों और ( एनम् ) इसको ( जरित्रे ) विद्वान् स्तुतिकर्त्ता पुरुष वा प्रजाजन के हितार्थ ( पपुरिम् ) पालक और पूरक ( कथा आहुः ) किस प्रकार कहते हैं। यह सब जानने योग्य बातें हैं। उनको जानकर राजा प्रजा, गुरु शिष्य परस्पर यथोचित व्यवहार करें।

कथा सबाधः शशमानो अस्य नशदभि द्रविणं दीध्यानः।
देवो भुवन्नवेदा म ऋतानां नमो जगृभ्वाँ अभि यज्जुजोपत् ॥४॥

भा०—( सबाधः ) बाधा अर्थात् नाना प्रकार की विघ्न बाधाओं से युक्त अथवा 'बाधा' विद्या विलोडन, अनुशीलन, ऊहापोह से युक्त ( शशमानः ) शम का अभ्यासी उत्तम अनुशासन प्राप्त करता हुआ विद्यार्थी ( दीध्यानः ) तेजस्वी होकर ध्यान धारणा का अभ्यास करता हुआ (अस्य द्रविणं ) इस राजा के ऐश्वर्य और गुरु वा प्रभु के ज्ञान-धन को ( कथा अभिनशत् ) किस प्रकार साक्षात् प्राप्त करे ? उत्तर—(नवेदाः देवः) बिलकुल न जानने वाला विद्या का इच्छुक शिष्य और ( नवेदाः ) सुवर्णादि धनों से रहित, निर्धन ( देवः ) धनाभिलाषी, ( यत् ) जब ( मे नमः ) मेरे लिये नमस्कार आदि आदर सत्कार को ( अभि जुजोषत् ) प्रेमपूर्वक आचरण करता है तब वह ( ऋतानां ) सत्य ज्ञानों और अन्नादि धनों को ( जगृभ्वान् ) ग्रहण करने वाला ( भुवत् ) हो जाता है।

कथा कद॒स्या उ॒षसो॒ व्यु॑ष्टौ दे॒वो मर्त॑स्य स॒ख्यं जु॑जोष ।
कथा कद॑स्य स॒ख्यं सखि॑भ्यो ये अ॒स्मिन्कामं॑ सु॒युजं॑ तत॒स्रे ५।९।

भा०—( देवः ) तेजस्वी, सर्व प्रकाशक प्रभु विद्वान् कामनाशील पुरुष ( मर्त्तस्य ) मनुष्य के ( सख्यं ) मित्र भाव को ( कथा ) किस प्रकार से और ( कत् ) कब ( जुजोष ) प्राप्त कर सकता है। उत्तर—( अस्याः ) इस ( उषसः ) प्रभात वेला के ( व्युष्टौ ) विशेष रूप से दीप्तिमान् होने पर अर्थात्—( १ ) देव परमेश्वर प्रातः वेला में भजन करने पर मनुष्य पर अनुग्रह करता है। ( २ ) दाता कन्या का देने वाला पुरुष कैसे कब सख्य सम्बन्ध प्राप्त करता है, उत्तर—( अस्याः उषसः व्युष्टौ ) कामनाशील कमनीय कन्या के विशेष अभिलाषा युक्त हो जाने पर। यदि कन्या बरको न चाहे तो ससुर जमाई का भी प्रेम सम्बन्ध नहीं हो सकता। ( ३ ) विद्वान् साधारण मनुष्य का कब और किस प्रकार सख्य प्राप्त करता है ( अस्याः उषसः व्युष्टौ ) इस पापनाशक, तेजस्विनी वाणी के विशेष रूप से प्रकाशित होने पर। ( ४ ) देव, तेजस्वी राजा कब और किस प्रकार मनुष्य प्रजा का सख्य प्रेम प्राप्त करता है उत्तर—(उपसः व्युष्टौ) शत्रु को दग्ध करने वाली सेनादि शक्ति के विशेष चमक जाने पर। ( ५ ) इसी प्रकार ( देवः ) सूर्य इस मनुष्य का कब और किस प्रकार से अधिक मित्रता या प्रेम का पात्र होता है ( उपसः व्युष्टौ ) प्रभात वेला के चमकने पर। उस समय प्राभातिक किरणें और वायु सब रोगनाशक स्वास्थ्य प्रद होने से सेवनीय हैं और वही मरणशील प्राणि के परम मित्र जीवन के सहायक हैं। ( ये ) जो ( अस्मिन् ) इसके आश्रय पर ही ( सुयुजं ) शुभ, उत्तम रीति से योग देने वाले ( कामं ) अभिलाषा को ( ततस्रे ) विस्तारित करते हैं उन ( सखिभ्यः ) मित्रों के लिये (कथा कत् अस्य सख्यं) किस प्रकार और कब मित्रभाव होता है ? उत्तर वही है ( उपसः व्युष्टौ ) प्रभात वेला के चमकने पर, कान्तिमती कन्या के

अभिलाषा करने पर पापदाहक वाणी के प्रकाश होने पर और प्रभात में।
इति नवमो वर्गः ॥

**किमादमत्रं सख्यं सखिभ्यः कदा नु ते भ्रात्रं प्र ब्रवाम।**
**श्रिये सुदृशो वपुरस्य सर्गाः स्व१र्ण चित्रतममिष आ गोः ॥६॥**

भा०—हे विद्वन्! स्वामिन्! प्रभो! (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (आत्) अनन्तर (ते) तेरा (किम् कदा सख्यम्) क्या और कब कैसा और किस समय मित्र भाव और किस समय (भ्रात्रं) भाईपने का सा स्नेह हम (प्र ब्रवाम) बतलावें। उत्तर—(अमत्रं) अपने सहवासी की रक्षा करने वाला, शत्रुओं को पीड़ित करने वाला (अमात्रम्) और असीम (अस्य) इस (सुदृशः) शोभन दृष्टि वाले, उत्तम दर्शनीय प्रभु का (वपुः) शरीर (श्रिये) श्री, शोभा और राज्यलक्ष्मी के धारण करने योग्य हों, और (अस्य सर्गाः) इसके सब उद्योग (स्वः सर्गाः न) सूर्य के उत्पादित समान जल का मेघादि के तुल्य हो। और (गोः) सबके गमन करने योग्य, उत्तम पुरुष की वाणी का स्वरूप भी (चित्रतमम्) अति आश्चर्य-जनक, (गोः इषे) सूर्य की रश्मि का स्वरूप जिस प्रकार अन्न और वृष्टि के लिये होता है उसी प्रकार (इषे) पृथ्वी पर अन्न की वृद्धि और प्रजाओं की कामना पूर्ण करने के लिये हो।

**द्रुहं जिघांसन्ध्वरसमनिन्द्रां तेतिक्ते तिग्मा तुजसे अनीका।**
**ऋणा चिद्यत्र ऋणया न उग्रो दूरे अज्ञाता उषसो बबाधे ॥७॥**

भा०—(उग्रः) शत्रुओं को नाश करने में अति बलवान् पुरुष (द्रुहं) द्रोहकारिणी, (ध्वरसम्) हिंसा करने वाली (अनिन्द्राम्) इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्यवान् राजा से रहित शत्रु सेना को (जिघांसन्) मारने या दण्ड देने की इच्छा करता हुआ, (तुजसे) प्रजा के पालन और शत्रु के नाश के लिये (तिग्मा अनीका) तीक्ष्ण स्वभाव के सैन्यों और शस्त्रास्त्रों को (तेतिक्ते) और अधिक तीक्ष्ण करे। (ऋणयाः ऋणा चित्) जिस प्रकार ऋण शेष करने वाला, अधमर्ण (ऋणा) लिये

ऋण रूप धनों का अन्त कर देता है उसी प्रकार ( नः ) हमारा ( उग्रः ) बलवान् राजा ( दूरे ) दूर विद्यमान ( अज्ञाता ) अज्ञात ( उषसः ) उषाओं को सूर्य के समान अज्ञात सन्ताप कारिणी शत्रु सेनाओं को भी ( बबाध ) पीड़ित करे।

**ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीर्ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति।**
**ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः ॥८॥**

भा०—( ऋतस्य ) सत्य ज्ञान वेद की ( शुरुधः ) अज्ञान को शीघ्र ही रोकने वाली (पूर्वीः) सनातन से चली आई, एवं ज्ञान से पूर्ण वाणियें ( सन्ति ) हैं। ( ऋतस्य धीतिः ) सत्य ज्ञान, वेद का अध्ययन, धारण और मनन ( वृजिनानि ) समस्त पापों को ( हन्ति ) नाश करता है। ( ऋतस्य ) सत्य ज्ञान की (श्लोकः) वेद वाणी, ( शुचमानः ) पवित्र करती हुई और स्वयं पवित्र, ( बुधानः ) उत्तम बोध प्रदान कराती हुई ( आयोः ) मनुष्य के ( बधिरा कर्णौ ) बहरे कानों को भी ( ततर्द ) छेद देती है और उनमें भी प्रवेश करती है अथवा ( वधिरा कर्णं ) बध, बन्धन कराने वाले शस्त्रादि साधनों को भी नाश करती है। ( २ ) 'ऋत' का अर्थ सत्य, न्याय, यज्ञ और परमेश्वर है। न्याय के उपलक्षण से न्यायाधिपति राजा भी 'ऋत' इस प्रकार न्यायवान् राजा की ( शुरुधः पूर्वीः सन्ति ) शत्रु को शीघ्र रोकने वाली सेनायें बहुत सी हों। उसकी (धीतिः) राष्ट्र धारण की शक्ति और प्रज्ञा पापों का नाश करे, उसकी वाणी, न्याय शासन सबको विज्ञापित करती हुई, सबको पवित्र करती हुई बहरे कानों के भी भीतर प्रवेश करे। 'शुरुधः' इति पदनाम। आशुरोधनात्, शुग्रोधनाद्वा ॥ 'ऋत' सत्य स्वरूप परमेश्वर की सनातन शक्तियां हैं, उसका ध्यान पापनाशक है उसकी वाणी और स्तुति वधिरों को भी ज्ञान प्रदान करती हैं। अथवा–'ऋतम्' इत्यन्ननाम। अन्न की क्षुधा निवारक और पालक बहुत सी शक्तियां हैं। अन्न का धारण पाप नाशक है, भूखे पाप करते हैं अन्न से

समृद्ध जनों में पाप नहीं आते। अन्न की वार्ता ही ( वधिरा ) वध करने वाले वा बंधन करने वाले ( कर्णा ) साधनों को भी ( ततर्द ) नाश करती है।

ऋतस्य॑ दृ॒ळ्हा ध॒रुणा॑नि सन्ति पु॒रूणि॑ च॒न्द्रा वपु॑षे॒ वपूं॑षि।
ऋ॒तेन॑ दी॒र्घमि॑ष॒णन्त॒ पृक्ष॑ ऋ॒तेन॒ गाव॑ ऋ॒तमा वि॑वेशुः॥ ९॥

भा०—( ऋतस्य ) सत्य के ( दृढ़ा ) दृढ़ ( धरुणानि ) धारक आश्रय ( सन्ति ) हुआ करते हैं और ( ऋतस्य वपुषे ) सत्याचरण करने वाले शरीरधारी के ( पुरूणि ) बहुत से ( चन्द्रा ) आह्लादजनक ( वपूंषि ) नाना सहयोगी बन्धुजनों के शरीर भी उसे प्राप्त होते हैं। (ऋतेन) सत्याचरण द्वारा बुद्धिमान् लोग (दीर्घम् पृक्षः) जल से अन्न के तुल्य दीर्घकाल तक अन्नादि जीवन और शान्ति सुख ( इषणन्त ) प्राप्त करते हैं। ( ऋतेन ) सत्य ज्ञान वा सत्याचरण से ( गावः ) वाणियें भी ( ऋतम् ) सत्य स्वरूप परमेश्वर को ( आ विवेशुः ) प्राप्त करती हैं। इसी प्रकार न्यायाचारी के आश्रय दृढ़ और उसके नाना सुन्दर रूप लोक में प्रकट होते हैं, उसीसे लोग दीर्घ ( पृक्षः ) सत्संग चाहते हैं उसीसे ( गावः ) गतिशील जन या प्राणी, न्याय, अन्न और सत्य ज्ञान को प्राप्त करते हैं।

ऋ॒तं येमा॑न ऋ॒तमिद्व॑नोत्यृ॒तस्य॒ शुष्म॑स्तुर॒या उ॑ ग॒व्युः।
ऋ॒ताय॑ पृ॒थ्वी ब॑हु॒ले ग॑भी॒रे ऋ॒ताय॑ धे॒नू प॑र॒मे दु॑हाते॥ १०॥

भा०—जिस प्रकार (ऋतं येमानः ऋतम् वनोति) जल को नियन्त्रण में रखने वाला शिल्पी वा कृषक शक्ति वा अन्न को प्राप्त करता है उसी प्रकार ( ऋतं ) सत्याचरण को ( येमानः ) नियम पूर्वक पालन करता हुआ ( ऋतम् इत् ) सत्य बल को ही ( वनोति ) चाहा करता है। (ऋतस्य शुष्मः) जल वा अन्न का बल जिस प्रकार ( तुरया गव्युः ) अति शीघ्र भूमि, इन्द्रिय और वाणी को प्राप्त होता है उसी प्रकार ( ऋतस्य शुष्मः ) सत्याचरण और धन का बल ( तुरया ) अति शीघ्र ही (गव्युः)

गो अर्थात् वाणी और पार्थिव सम्पदा की वृद्धि करता है। ( ऋताय ) अन्न और जल के उत्पन्न करने के लिये जिस प्रकार ( पृथ्वी ) भूमि और आकाश है उसी प्रकार ( ऋताय ) सत्य न्यायशील राजा के हितार्थ ( पृथ्वी ) भूमि और आकाश के समान विस्तृत ( बहुले ) बहुत ऐश्वर्य देने वाली ( गंभीरे ) गम्भीर राजवर्ग और प्रजावर्ग ( दुहाते ) नाना ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। और ( ऋताय ) यज्ञ के लिये जिस प्रकार ( परमे ) उत्तम दोनों ( धेनू ) वाणी और गौ ( दुहाते ) दूध और ज्ञान प्रदान करती हैं उसी प्रकार ( ऋताय ) जल युक्त, सत्य युक्त पुरुष और यज्ञादियुक्त राष्ट्र के लिये दोनों लोक, वाणी क्रिया और प्रजा और सेना दोनों ही ( परमे ) परम ( धेनू इव ) गौओं के तुल्य ( दुहाते ) सम्पदाएं प्रदान करती हैं।

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥१०॥

भा०—व्याख्या देखो पूर्वसूक्त ॥ इति दशमो वर्गः ॥

## [ २४ ]

वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ७ त्रिष्टुप् । ३, ९ निचृत्रिष्टुप् । ४ विराट् त्रिष्टुप् । २, ८ भुरिक् पंक्तिः । ६ स्वराट् पंक्तिः । ११ निचृत् पंक्तिः । १० निचृदनुष्टुप् ॥ इत्येकादशर्चं सूक्तम् ॥

का सुष्टुतिः शवसः सूनुमिन्द्रमर्वाचीनं राधस आ ववर्तत्।
ददिर्हि वीरो गृणते वसूनि स गोपतिर्निष्षिधां नो जनासः ॥१॥

भा०—( का ) वह कौनसी ( सुस्तुतिः ) उत्तम स्तुति है। जो ( शवसः ) बलों, सैन्यों के ( सूनुम् ) प्रेरक ( अर्वाचीनम् ) हमारे प्रति प्रबल, प्रिय ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्यवान् राजा वा प्रभु के प्रति

( राधसे ) हमें धनैश्वर्य की वृद्धि और आराधना के लिये ( आववर्त्तत् ) प्रवृत्त करे। अर्थात् राजा में ऐसे कौन से गुण हैं जिनको सुनकर हम भी धन की प्राप्ति के लिये ऐश्वर्यवान् राजा के पास जावें। और वह कौनसी प्रभु की कीर्त्ति है जो हमें आराधना के लिये भगवान् की ओर झुकाती है। हे ( जनासः ) मनुष्यो! ( सः ) वह ( नः ) हमारा ( निःष्पिधाम् ) बुरे मार्गों से हटाने वाले शासनों और शासकों, आचार मर्यादाओं की ( गोपतिः ) वाणी या आज्ञाओं, शास्त्र-वचनों का पालक है वही ( निष्पिधाम् ) सब शासकों में से सबसे ऊंचा ( गोपतिः ) भूमि का स्वामी है। ( सः गृणते ) वह विद्वान्, उपदेष्टा पुरुष को ( वसूनि ) समस्त ऐश्वर्यों को ( ददिः हि ) निश्चय से दान करनेहारा ( वीरः ) शूरवीर है।

स वृ॑त्रहत्ये॒ हव्यः॒ ईड्यः॒ स सुष्टु॑त इन्द्रः॒ सत्यरा॑धाः।
स याम॒न्ना म॒घवा॒ मर्त्या॑य ब्रह्मण्य॒ते सुष्व॑ये॒ वरि॑वो धात् ॥२॥

भा०—( सः ) वह ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता पुरुष ही, ( वृत्रहत्ये ) बढ़ते शत्रुओं के नाश करने के कार्य, संग्राम में ( हव्यः ) पुकारने योग्य है। (सः) वह ( ईड्यः ) स्तुति करने योग्य है। ( सः सुस्तुतः ) वह उत्तम रूप से प्रशंसित ( सत्यराधाः ) सत्य न्याय रूप धन का धनी हो। ( सः यामन् ) वह उत्तम मार्ग में चलने वाला ( ब्रह्मण्यते ) धर्म पूर्वक धन के चाहने वाले, ( सुष्वये ) ऐश्वर्य पाने के उद्योग करने वाले (मर्त्याय) मनुष्य को (वरिवः) नाना ऐश्वर्य ( आधात् ) प्रदान करता है।

तमिन्नरो॒ वि ह्व॑यन्ते समी॒के रि॑रि॒क्वांस॒स्तन्वः॑ कृण्वत॒ त्राम्।
मि॒थो यत्त्या॒गमु॒भया॑सो॒ अग्म॒न्नर॑स्तो॒कस्य॒ तन॑यस्य सा॒तौ ॥३॥

भा०—( यत् ) जिस ( त्यागम् ) दानशील पुरुष को लक्ष्य कर ( नरः ) नायक लोग और साधारण जन ( उभयासः ) दोनों ही एवं पक्ष प्रतिपक्ष दोनों लोग ( तोकस्य तनयस्य सातौ ) पुत्र पौत्र के निमित्त

धन, वेतनादि लाभ और परस्पर न्यायानुकूल विभाग के निमित्त (मिथः) परस्पर सह सम्मति करके ( अग्मन् ) जाते हैं। (रिरिक्वांसः) देहों और करादि धनों का त्याग करने वाले ( नरः ) वीर और प्रजाजन भी; ( समीके ) संग्राम में ( तम् इत् ) उसको ही ( वि ह्वयन्ते ) विविध प्रकारों से पुकारें और ( तन्वः ) अपने शरीर का ( त्राम् ) रक्षक भी उसी को ( कृणुत ) करें।

**क्रतूयन्ति क्षितयो योगे उग्राशुषाणासो मिथो अर्णसातौ।**
**सं यद्विशोऽववृत्रन्त युध्मा आदिन्नेम इन्द्रयन्ते अभीके ॥ ४ ॥**

भा०—हे ( उग्र ) बलवान् ! इन्द्र ! ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! स्वामिन् ! ( योगे ) योगाभ्यास काल में तुझे प्राप्त करने के लिये ( क्षितयः ) तेरे में ही निवास करने वाले योगीजन ( आशुषाणासः ) आदर पूर्वक अपने देह का शोषण करते हुए, तपस्वी ( अर्णसातौ ) ज्ञान और सुख को प्राप्त करने के लिये ( क्रतूयन्ति ) ज्ञान और कर्म का अनुष्ठान करते हैं। वे ( यत् ) जब ( विशः ) तेरे में प्रवेश करने वाले होकर ( युध्माः ) अपने भीतर। काम क्रोध आदि दुष्ट शत्रुओं से लड़ते हुए ( सं अववृत्रन्त ) सब प्रकार से घिर जाते हैं तब वे ( नेमे ) यम नियम का पालन करने हारे होकर ( अभीके ) युद्ध में ( इन्द्रयन्ते ) तुझ ऐश्वर्यवान् प्रभु की कामना करते हैं। ( २ ) इसी प्रकार ( क्षितयः ) राष्ट्र निवासी ( योगे ) परस्पर मिलकर सत्संग के अवसर पर ( अर्णसातौ ) धन, जल अन्नादि के लाभ और संविभाग के निमित्त ( मिथः आशुषाणासः ) परस्पर शीघ्रता करते हुए ( क्रतूयन्ति ) उत्तम प्रज्ञा, विवेक चाहते हैं। और ( यत् ) जब ( युध्माः ) परस्पर प्रहार करने वाली ( विशः ) प्रजाएं ( सं अववृत्रन्त ) परस्पर एक दूसरे को नीचे ऊपर कासा व्यवहार करें परस्पर को दबावें ( आत् इत् ) तब ही (नेमे) नियन्ता वा कुछ न्यायशील पुरुष (अभीके) अपने समीप (इन्द्रयन्ते) ऐश्वर्यवान् अर्थपति राजा को बनाना चाहते हैं। और उसकी स्थापना करते हैं।

आदिद्ध नेमं इन्द्रियं यजन्त आदित्पक्तिः पुरोळाशं रिरिच्यात्।
आदित्सोमो वि पपृच्यादसुष्वीनादिज्जुजोष वृषभं यजध्यै ५।११।

भा०—( आत् इत् ) अनन्तर ( नेमे ) कुछ जन ( ह ) निश्चय से ( इन्द्रियं ) इन्द्र, आत्मा के ऐश्वर्य को ( यजन्ते ) प्राप्त करते हैं और ( आदित् ) अनन्तर ( पक्तिः ) परिपाक जिस प्रकार ( पुरोडाशं ) उत्तम अन्न को ( रिरिच्यात् ) अधिक गुण सम्पन्न कर देता है उसी प्रकार ( पक्तिः ) ज्ञान और तप की परिपक्वता ( पुरोडाशं ) प्रस्तुत किये आत्मा को ( रिरिच्यात् ) अधिक शक्तिशाली बना देता है। ( आत् इत् ) और अनन्तर ( सोमः ) शरीर के ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला वीर्य या वीर्यवान् पुरुष ( असुष्वीन् ) प्राणों द्वारा चलने वाले इन्द्रियगण को ( वि पपृच्यात् ) विषय सम्पर्क से शिथिल करने में समर्थ होता है। ( आत् इत् ) उसके अनन्तर वह ( वृषभं ) अन्तःकरण सुखों की वर्षा करने वाले धर्म मेघ रूप प्रभु को ( यजध्यै ) उपासना करने और प्राप्त करने के लिये ( जुजोष ) प्रेमपूर्वक चाहने लगता है। ( २ ) राष्ट्रपक्ष में—नियन्ता लोग इन्द्र, राजा के राष्ट्र को सुसंगत सुव्यवस्थित करें। परिपाक उत्तम अन्न को और गुणकारी करे, खेती पके पर काटी जाय। ( असुष्वीन् ) प्राणी जनों को ( सोमः ) अन्न, ओषधिरस विशेष रूप से पुष्ट करे और लोग बलवान् ऐश्वर्यदाता, प्रबन्धक को प्राप्त करने में प्रेमभाव दर्शावें। इत्येकादशो वर्गः ॥

कृणोत्यस्मै वरिवो य इत्थेन्द्राय सोममुशते सुनोति।
सध्रीचीनेन मनसाविवेनन्तमित्सखायं कृणुते समत्सु ॥ ६ ॥

भा०—( यः ) जो ( इत्था ) वस्तुतः ( सोमम् ) अभिषेक, और ऐश्वर्य शासन की ( उशते ) कामना करने वाले ( इन्द्राय ) शत्रु नाशकारी, ऐश्वर्यवान्, राजा होने योग्य पुरुष ( सुनोति ) ऐश्वर्य का पद प्रदान करता है। और जो ( अविवेनन् ) अपनी विशेष कामना से रहित

होकर ही ( सध्रीचीनेन मनसा ) साथ लगे, सादर चित्त से ( समत्सु ) संग्रामों और हर्षादि के अवसरों में ( तम् इत् सखायं ) उसको ही अपना मित्र ( कृणुते ) बना लेता है वह ( अस्मै ) इसको ( वरिवः कृणोति ) ऐश्वर्य देता और अत्यन्त सेवा करता है। ( २ ) अध्यात्म में—परमेश्वर सर्वाप्तकाम होने से 'उशत्' है। उनके लिये जो अपने 'सोम' जीव को पुत्र वा शिष्य के समान सौंप देता है, वह उसको विभूति देता है, वह जीव स्वयं निष्काम होकर सहयोगी चित्त से उसको ही आनन्दानुभवों में मित्र बना ले।

य इन्द्राय सुनवत्सोममद्य पचात्पक्तीरुत भृज्जाति धानाः।
प्रति मनायोरुचथानि हर्यन्तस्मिन्दधद्वृषणं शुष्ममिन्द्रः॥ ७॥

भा०—( यः ) जो प्रजाजन ( इन्द्राय ) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता राजा वा सेनापति के लिये ( अद्य ) आज के समान सदा ( सोमम् ) अन्नादि ओषधिरस, ऐश्वर्य ( सुनवत् ) उत्पन्न करता है, ( पक्तीः पचात् ) परिपक्व करने योग्य बलवीर्य, विद्या, ज्ञान एवं अन्नादि भी उसी के लिये परिपक्व करे, ( उत ) और ( धानाः ) खीलों के समान राष्ट्र को धारण पोषण करने वाली शक्तियों को ( भृज्जाति ) और भी परिपक्व करता और पीड़ादायकों का सन्तप्त करता है, और ( मनायोः ) प्रशंसा की कामना करने वाले के ( उचथानि ) कहने योग्य वचनों की ( प्रतिहर्यन् ) कामना करता हुआ ( इन्द्रः ) वह शत्रुहन्ता, वीर पुरुष ( तस्मिन् ) उस प्रजाजन में, उसके आश्रय पर ही ( वृषणं ) अपने प्रबन्धकारी और ऐश्वर्य सुखों के देने वाले ( शुष्मं ) बल को धारण करता है।

यदा समर्यं व्यचेदघावा दीर्घं यदाजिमभ्यख्यदर्यः।
अचिक्रदद्वृषणं पत्न्यच्छा दुरोण आ निशितं सोमसुद्भिः॥ ८॥

भा०—( यदा ) जब ( ऋघावा ) शत्रुओं को नाश करने में समर्थ राजा ( समर्यम् ) मरने मारने वाले वीर पुरुषों के एकत्र होने योग्य संग्राम

को ( वि अचेत् ) विशेष रूप से जान ले ( अर्यः ) स्वामी होकर (यदा) जब वह (आजिम् दीर्घम्) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने के कार्य को भी लम्बा देर तक चलने वाला ( अभि अख्यत् ) देखे तब जिस प्रकार ( सोमसुद्भिः आनिशितं वृषणं पुरुषं पत्नी दुरोणे अच्छ अचिक्रदत् ) अन्न ओषधिरसों से पुष्ट करने वाले उपायज्ञों द्वारा तीक्ष्ण वा अधिक वलवान् किये गये, हृष्ट पुष्ट पुरुष को उसकी पत्नी प्रेम युक्त होकर बुलाती है उसी प्रकार ( सोमसुद्भिः ) ऐश्वर्यों को उत्पन्न करने वाले विद्वान् पुरुषों से ( आनिशितम् ) सब प्रकार से तीक्ष्ण तेजस्वी बनाये गये ( वृषणं ) बलवान् उत्तम प्रबन्धक पुरुष को ( दुरोणे ) अति उच्च पद पर ( पत्नी ) पत्नी के समान राष्ट्रैश्वर्य की पालक और ऐश्वर्यवर्धक प्रजा ( अच्छ ) आदर पूर्वक ( अचिक्रदत् ) बुलावे, स्थापित करे।

**भूयसा वस्नमचरत्कनीयोऽविक्रीतो अकानिषं पुनर्यन्।**
**स भूयसा कनीयो नारिरेचीद्दीना दक्षा वि दुहन्ति प्र वाणम् ॥९॥**

भा०—राजा ( भूयसा ) बहुत बड़े भारी कार्य से भी ( कनीयः ) अति स्वल्प ( वस्नम् अचरत् ) मूल्य प्रजा से प्राप्त करे। वह (पुनः यन्) वार २ प्रयाण करता हुआ भी ( अविक्रीतः ) प्रजा से वेतन द्वारा अपने आप न बेचा जाकर ( अकानिषम् ) अति दीप्तियुक्त होवे। ( सः ) वह प्रजा का रक्षक, राजा (भूयसा) बहुत से बल या त्याग से ( कनीयः ) राष्ट्र के छोटे से छोटे अंश को भी (न अरिरेचीत्) त्याग न करे, अथवा— प्रजा के बहुत बड़े भाग से अति अल्प अंश को बढ़ने न दे। क्योंकि (दीनाः) गरीब और ( दक्षाः ) चतुर अमीर लोग सभी उसके ( वाणम् ) ऐश्वर्य वा आज्ञा को (वि प्र दुहन्ति) विविध प्रकारों से भरते, पूर्ण करते रहते हैं।

**क इमं दशभिर्ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः।**
**यदा वृत्राणि जङ्घनदथैनं मे पुनर्ददत् ॥ १० ॥**

भा०—(मम) मुझ प्रजा के ( इमं इन्द्रं ) इस ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता

राजा वा सेनापति को ( दशभिः ) दश ( धेनुभिः ) गौओं के तुल्य दसों पृथिवियों से या दस गुणा भूमि से भी ( कः ) कौन ( क्रीणाति ) ख़रीद सकता है। ( यदा वृत्राणि जंघनत् ) वह जब बढ़ते शत्रुओं की सेनाओं को मार चुकता है वा नाना ऐश्वर्य प्राप्त करता है ( अथ ) उसके बाद ( एनं ) इसको ( मे ) मुझ प्रजा को ( पुनः ददत् ) फिर वापस दे देता है। इसी प्रकार राजा भी कहता है ( मे इमं इन्द्रम् ) मेरे इस राष्ट्र रूप ऐश्वर्य को ( कः दशभिः धेनुभिः क्रीणाति ) कौन दसों भूमियों से भी ख़रीद सकता है यह राष्ट्र जब ( वृत्राणि जंघनत् ) वृद्धिशील ऐश्वर्यों को प्राप्त होता है तब २ यह ( एनं ) इस ऐश्वर्य को वह राष्ट्र ( मे पुनः ददत् ) मुझे ही बार २ सौंप देता है। इति द्वादशो वर्गः ॥

**नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।**
**अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासः ॥११॥१२॥**

भा०—व्याख्या देखो पूर्व सूक्त मं० ११ ॥

## [ २५ ]

वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ निचृत् पंक्तिः । २, ८ स्वराट् पंक्तिः । ४, ६ भुरिक् पंक्तिः । ३, ५, ७ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

**को अद्य नर्यो देवकाम उशन्निन्द्रस्य सख्यं जुजोष ।**
**को वा महेऽवसे पार्याय समिद्धे अग्नौ सुतसोम ईट्टे ॥ १ ॥**

भा०—(कः) कौन (अद्य) वर्त्तमान में ( नर्यः ) मनुष्यों वा नायक पुरुषों में सर्वोत्तम, सबका हितकारी है। [उत्तर]—जो ( उशन् ) उत्तम कामना से युक्त होकर सबको चाहता हुआ ( इन्द्रस्य ) ऐश्वर्यवान् प्रभु के ( सख्यं ) प्रेम भाव का ( जुजोष ) सेवन करता है। [ प्रश्न ]—( वा ) और ( कः ) कौनसा पुरुष ( महे अवसे ) बड़ी रक्षा करने में समर्थ है। [ उत्तर ]—जो ( पार्याय ) पार पहुंचाने में समर्थ पुरुष के लिये

( समिद्धे अग्नौ ) अग्नि के प्रदीप्त हो जाने पर ( सुतसोमः ) 'सोम' अर्थात् ऐश्वर्य उत्पन्न करके ( ईट्टे ) ऐश्वर्य प्राप्त करता है ।

**को नानाम वचसा सोम्याय मनायुर्वा भवति वस्त उस्राः ।**
**क इन्द्रस्य युज्यं कः सखित्वं को भ्रात्रं वष्टि कवये क ऊती ॥२॥**

भा०—( सोम्याय ) 'सोम' अर्थात् उत्तम ऐश्वर्यों के योग्य और ज्ञानशान्ति आदि गुणों से युक्त शिष्य पुत्रादि के हितकारी गुरु के आदरार्थ ( वचसा ) वचन द्वारा ( कः नानाम ) कौन विनीत होता है ? और ( कः ) कौन पुरुष ( मनायुः ) ज्ञान की कामना करता ? ( कः ) कौन पुरुष (उस्राः) किरणों को सूर्य के तुल्य, गौओं को गोपालक के तुल्य, उत्तम अन्नदात्री भूमियों को राजा के तुल्य ( वस्ते ) आच्छादित करता है, उनमें रहता और उनका पालन करता है ? ( कः ) कौन ( इन्द्रस्य ) ऐश्वर्यवान्, अज्ञानहन्ता गुरु के ( युज्यं ) सहयोग और सौहार्द की ( वष्टि ) कामना करता है ? (कः) कौन ( सखित्वं वष्टि ) उसके मित्र-भाव की कामना करता है, ( कः भ्रात्रं वष्टि ) कौनउसके साथ भाई-चारा करना चाहता है ? ( कवये ) क्रान्तदर्शी विद्वान् को ( ऊती ) रक्षा, ज्ञान आदि साधन के लिये ( कः वष्टि ) कौन चाहता है ? [ उत्तर ] (मनायुः) ज्ञान का इच्छुक, होकर ( यः उस्राः वस्ते ) जो वेद वाणियों के ग्रहणार्थ गुरु के अधीन वास करता है ।

**को देवानामवो अद्या वृणीते क आदित्याँ अदितिं ज्योतिरीट्टे ।**
**कस्याश्विनाविन्द्रो अग्निः सुतस्यांशोः पिबन्ति मनसाविवेनम् ॥३॥**

भा०—( अद्य ) आज वर्त्तमान में ( देवानाम् ) ज्ञान, ऐश्वर्य के देने वाले गुरुजनों की ( अवः ) रक्षा को ( कः वृणीते ) कौन वरण करता है ? ( आदित्यान् कः ) १२ हों मासों के समान 'अदिति' सूर्य तुल्य तेजस्वी पुरुषों से उत्पन्न विद्वानों और ( अदितिं ) अदीन, अखण्ड

विद्यावान् तेजस्वी गुरु को ( कः वृणीते ) कौन वरण करता है ? (अश्विनौ) स्त्री और पुरुष ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान्, ज्ञानवान् और ( अग्निः ) अग्रणी नायक, अग्नि तुल्य तेजस्वी पुरुष ( कस्य सुतस्य अंशोः ) अभिषिक्त, विद्या-निष्णात, पुत्रवत् प्रिय, अपने ही किरण के तुल्य किसके अन्नादि का (अवि वेनं ) निष्काम होकर ( मनसा ) प्रिय चित्त से ( पिबन्ति ) पान करते हैं ? उत्तर—( यः ज्योतिः ईट्टे ) जो शिष्यवत् ज्योति, ज्ञान प्रकाश प्राप्त करना चाहता है ।

**तस्मा॑ अ॒ग्निर्भार॑तः॒ शर्म॑ यंस॒ज्ज्योक्प॑श्या॒त्सूर्य॑मु॒च्चर॑न्तम् ।**
**य इन्द्रा॑य सु॒नवा॒मेत्याह॒ नरे॒ नर्या॑य॒ नृत॑माय नृ॒णाम् ॥ ४ ॥**

भा०—( यः ) जो ( नरे ) सबके प्रणेता ( नर्याय ) सब मनुष्यों के हितकारी एवं उनमें सबसे कुशल, ( नृतमाय ) सब नायकों के बीच में सबसे कुशल, ( नृणां नृतमाय ) सब नायकों के बीच में सबसे श्रेष्ठ पुरुषोत्तम, (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् शत्रु का नाश करने वाले राजा के तुल्य अज्ञान के नाशक गुरु के लिये ही (सुनवाम) उत्तम ऐश्वर्य उत्पन्न करें वा उसके ज्ञान का सम्पादन करें ( इत्याह ) इस प्रकार की प्रतिज्ञा करता है और जो (ज्योक्) चिरकाल तक (उत् चरन्तं सूर्यम्) ऊर्ध्व आकाश में विचरते हुए सूर्य के तुल्य गुरु को सदा ( पश्यात् ) आदर भाव से देखता है ( तस्मै ) उसको ( भारतः ) सर्व मनुष्यों का हितकारी (अग्निः) अग्नि के तुल्य तेजस्वी ज्ञानवान् पुरुष वा प्रभु ( शर्म ) शरण और सुख ( यंसत् ) प्रदान करता है । ( २ ) जो प्रजागण अपने सर्वश्रेष्ठ राजा के लिये ही अन्नादि ऐश्वर्य उत्पन्न करने की प्रतिज्ञा करें उसको सूर्यवत् उन्नत देखें ( भारतः ) प्रजाहितैषी तेजस्वी राजा उस प्रजा को शरण दे । (३) इसी प्रकार जो मनुष्य परमेश्वर की पूजा करने का व्रत करता है और सूर्यवत् सर्वोपरि व्यापक मानता वह प्रभु सर्वव्यापक उसको सुख देता है ।

**न तं जि॑नन्ति ब॒हवो॒ न द॒भ्रा उ॒र्व॑स्मा॒ अदि॑तिः॒ शर्म॑ यंसत् ।**
**प्रि॒यः सु॒कृत्प्रि॒य इन्द्रे॑ मना॒युः प्रि॒यः सु॑प्रा॒वीः प्रि॒यो अ॑स्य सो॒मी॥५॥१३॥**

भा०—( दभ्राः न ) अल्प वीर्य के ( वहवः ) बहुत से भी जिस प्रकार बलवान् पुरुष को नहीं पराजय करते उसी प्रकार ( वहवः ) बहुत से ( दभ्राः ) हिंसक शत्रु भी ( तं न जिनन्ति ) उसको नहीं जीत सकते, ( अस्मा ) उसको ( अदितिः ) सूर्य के तुल्य गुरु ( उरु ) बहुत अधिक ( शर्म यंसत् ) सुख शरण प्रदान करे। ( अस्य ) उसका ( सुकृत् ) उत्तम कर्म करने और उत्तम आचरण करनेवाला ( प्रियः ) प्रिय होता है ( इन्द्रे ) अज्ञाननाशक गुरु के अधीन रहकर ( मनायुः ) ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा वाला शिष्य ( अस्य प्रियः ) उसको प्रिय होता है। ( सुप्रावीः ) उत्तम रीति से वीर्य रक्षा करने वाला जितेन्द्रिय ( सोमी ) वीर्यवान् शिष्य ( अस्य प्रियः ) उसका प्रिय होता है। ( २ ) उस पुरुष को बहुत से शत्रु भी नाश नहीं कर सकते जिस को अखण्ड शक्ति प्रजा वा राजा शरण देता है। सदाचारी, ज्ञान का और वीर्य का उत्तम रक्षक और ऐश्वर्यवान् पुरुष उस राजा वा प्रभु को प्रिय हो। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

**सुप्राव्यः प्राशुषाळेष वीरः सुष्वेः पक्तिं कृणुते केवलेन्द्रः।**
**नासुष्वेरापिर्न सखा न जामिर्दुष्प्राव्योऽवहन्तेदवाचः ॥ ६ ॥**

भा०—राजा ( एषः ) वह ( सुप्राव्यः ) उत्तम रीति से प्रजा को पालन करने में कुशल, ( प्राशुषाट् ) शीघ्र गामी शत्रुओं को पराजय करने वाला, (वीर) शूरवीर, ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् होकर ( सुष्वे ) उत्तम रीति से अन्नादि ऐश्वर्य उत्पन्न करने वाले प्रजाजन के हित के लिये ( केवला ) अकेला ( पक्तिं ) सूर्य के तुल्य अन्नादि का परिपाक, शत्रुओं का परिताप ( कृणुते ) करता है। वह ( असुष्वेः ) ऐश्वर्य अन्नादि उत्पन्न करने वाले निकम्मे मनुष्य का ( न आपिः ) न बन्धु है, ( न सखा ) न मित्र है, (न जामिः) न भाई है। वह (अवाचः) अयोग्य निन्दित वाणी बोलने वाले पुरुष का ( अव-हन्ता ) नाशकारी होकर ( दुष्प्राव्यः ) दुःख से प्राप्त करने योग्य है।

न रेवता पणिना सख्यमिन्द्रोऽसुन्वता सुतपाः सं गृणीते ।
आस्य वेदः खिदति हन्ति नग्नं वि सुष्वये पक्तये केवलो भूत् ॥७॥

भा०—( रेवता ) धनवान् ( असुन्वता ) राज्य के निमित्त ऐश्वर्य उत्पन्न न करने वाले ( पणिना ) व्यापारी के साथ (सुतपाः) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र का पालक ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् राजा ( सख्यं ) मित्रभाव की ( न संगृणीते ) प्रतिज्ञा नहीं करता । (अस्य) ऐसे लोभी धनी के (वेदः) धन को वह (आ खिदति) छीन लेता है, ऐसे (नग्नं) स्तुति-वाणी से रहित या वाणी पर स्थिर न रहने वाले असत्यवादी निर्लज्ज को (हन्ति) दण्ड देता है । (सुष्वये) राजा के ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाले, प्रजाजन के हित के लिये वह राजा (केवलः) अकेला ही, (पक्तये) उत्तम अन्नादि समृद्धि के लिये और शत्रु सन्ताप के लिये ( वि भूत् ) विविध प्रकार से समर्थ होता है ।

इन्द्रं परेऽवरे मध्यमास इन्द्रं यान्तोऽवसितास इन्द्रम् ।
इन्द्रं क्षियन्त उत युध्यमाना इन्द्रं नरो वाजयन्तो हवन्ते ८।१४॥

भा०—( परे ) उत्तम, बहुत ज्ञानी जन, ( अवरे ) निकृष्ट कोटि के अल्प ज्ञानी और ( मध्यमासः ) बीच की श्रेणी के लोग ( इन्द्रं हवन्ते ) इन्द्र, ऐश्वर्यवान् प्रभु को ही पुकारते हैं । ( यान्तः ) वे प्रयाण करते हुए और ( अवसितासः ) स्थिर निश्चय वाले भी उसी ( इन्द्रं हवन्ते ) 'इन्द्र' शत्रुहन्ता पुरुष की याद करते हैं, ( क्षियन्तः ) राष्ट्र में निवास करने वाले ( उत ) और ( युद्ध्यमानाः ) युद्ध करने हारे और ( वाजयन्तः नरः ) युद्ध, ऐश्वर्य, ज्ञान और बल का सम्पादन करने वाले ( नरः ) वीर नायक जन भी ( इन्द्रं हवन्ते ) ऐश्वर्यवान् शत्रु दल के विदारक वीर पुरुष को ही पुकारते हैं । ( २ ) सभी राजा के समान परमेश्वर की उपासना करते हैं । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

## [ २६ ]

वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ पंक्तिः । २ भुरिक् पंक्तिः । ३, ७ स्वराट् पंक्तिः । ४ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ स्वराट् त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जेऽहं कविरुशना पश्यता मा॥ १॥

भा०—परमेश्वर कहता है—( अहं मनुः अभवम् ) मैं मननशील समस्त चराचर का ज्ञाता हूं। ( अहं सूर्यः च ) मैं सूर्य के समान स्वयं प्रकाश सबका प्रेरक हूं, मैं ( कक्षीवान् ) समस्त लोकों में व्यापक प्रबन्ध कर्तृशक्ति का स्वामी हूं। मैं ( विप्रः ) मेधावी, विशेष रूप से संसार को पूर्ण करने और ज्ञान, कर्मफल का दाता, ( ऋषिः अस्मि ) सबका द्रष्टा, ज्ञान का प्रकाशक विद्वान् हूं। ( अहम् ) मैं ( आर्जुनेयं ) विद्वान् पुरुष से बनाये ( कुत्सं ) शस्त्रास्त्र के तुल्य सब विघ्ननाशक और ऋजु मार्ग पर चलने वाले एवं स्तुतियों के करनेवाले विद्वान् भक्त को ( ऋञ्जे ) अपनाता हूं। ( अहं ) मैं ( कविः ) क्रान्तदर्शी ( उशनाः ) सबको प्रेम से चाहने वाला हूं ( मा ) मुझ को ( पश्यत ) साक्षात् करो। परमात्मा इन गुणों से युक्त है। उसके अनुकरण में उसकी गुणों की उपासना करता हुआ प्रार्थना करे ( अहं मनुः अभवम् ) मैं ज्ञानी होऊं, सूर्यवत् तेजस्वी होऊं, सर्व विद्यावाहिनी बुद्धि का स्वामी, मन्त्रद्रष्टा, विद्वान् होऊं। मैं वीर जनोचित शस्त्र और धर्मात्मोचित ज्ञान स्तुति की साधना करूं। मैं क्रान्त-दर्शी और सर्वप्रिय होऊं।

अहं भूमिमददामार्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन्॥ २॥

भा०—( अहं ) मैं परमेश्वर ( अर्याय भूमिम् अददाम ) आर्य, श्रेष्ठ पुरुष को 'भूमि' प्रदान करता हूं, मैं राजा श्रेष्ठ पुरुष के हाथ में भूमि दान करूं। मैं गृहपति भूमि रूप कन्या को भी भले के हाथ दूं। मैं परमेश्वर ( दाशुषे मर्त्याय ) दानशील मनुष्य के हाथ ( वृष्टिम् अददाम् ) नाना समृद्धि-वर्षा प्रदान करता हूं। मैं राजा करप्रद राजा के प्रति ऐश्वर्य

खुले हाथ दूं। ( अहम् ) मैं ही ( वावशानाः ) कामना करने वाले ( अपः ) लिङ्ग शरीरों, प्राणों और वायु और जलों को ( अनयम् ) इस संसार में लाता और चलाता हूं। ( देवासः ) सूर्यादि लोक और ज्ञानी विद्वान् और कामनाशील जीव ( मम ) मेरे ( केतम् अनु आयन् ) ज्ञान वा बुद्धि का अनुसरण करते हैं। ( २ ) जीव वा राजा प्रार्थना करें—मैं सशब्द जलधाराओं को वा सकाम प्रजाजनों को सत्-मार्ग पर चलाऊं, विद्वान् और विजिगीषु मेरे ज्ञान और बुद्धि का अनुगमन करें।

**अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं नव साकं नवतीः शम्बरस्य।**
**शततमं वेश्यं सर्वताता दिवोदासमतिथिग्वं यदावम् ॥ ३ ॥**

भा०—( अहम् ) मैं ( सर्वताता ) सर्वत्र जगत् में ( शततमं ) सौवें वर्ष में वर्त्तमान ( दिवोदासम् ) प्रकाश के देने वाले सूर्य के तुल्य तेजस्वी ( अतिथिग्वम् ) व्यापक किरणों के तुल्य वाणी को प्रसार करने वाले पुरुष को ( यद् आवम् ) जब पालन करता हूं तब ( शम्वरस्य ) शान्ति चाहने वाले उस जीव के ( नवतीः नव पुरः ) ९९ संख्या वाली पूर्ण वर्षों को (साकं) एक साथ ही ( वि ऐरम् ) विशेष रूप से सञ्चालित कर चुकता हूं। मनुष्य की सौ वर्ष की आयु का भोग भी परमेश्वर के ही हाथ है। अथवा—इस मन्त्र में आत्मा स्वयं कहता है कि ( शम्वरस्य ) शान्ति सुखमय अध्यात्म आनन्द का रोकने वाली ९९ नाड़ियों को एक ही साथ दूर किया, प्रकाश ज्ञानदाता व्यापक किरण वाले सूर्य वा तेजस्वी ( वेश्यं ) वेश अर्थात् उत्तम पद पर वा देह में प्रविष्ट १०० वें आत्मा को मैंने प्राप्त किया।

**प्र सु ष विभ्यो मरुतो विरस्तु प्र श्येनः श्येनेभ्य आशुपत्वा।**
**अचक्रया यत्स्वधया सुपर्णो हव्यं भरन्मनवे देवजुष्टम् ॥ ४ ॥**

भा०—( आशुपत्वा श्येनः यथा श्येनेभ्यः विभ्यः प्र सु विः ) जिस प्रकार वेग से गति करने वाला 'श्येन' अर्थात् बाज़ नामक पक्षी अन्य

बाज़ जाति के पक्षियों की अपेक्षा उत्तम कोटि का पक्षी गिना जाता है वह ( सुपर्णः अचक्रया स्वधया देवजुष्टम् हव्यं स्वधया मनवे भरत् ) उत्तम पक्षों से युक्त होकर अपनी चक्र रहित स्वधा अर्थात् अपने आकाश में थामे रखने की क्रिया से ही मननशील पुरुष को विद्वानों द्वारा सेवित, ग्रहण करने योग्य विज्ञान प्रदान करता है उसी प्रकार हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! ( श्येनः ) श्येन के आकार का बड़ा भारी आकाशयान ( प्र आशुपत्वा ) खूब वेग से जाने हारा हो, जो ( श्येनेभ्यः विभ्यः ) अन्य श्येनाकार, उत्तम वेगवान् पक्षियों और आकाशयानों से भी अधिक (प्र सु अस्तु) उत्तम कोटि का सिद्ध हो । ( यत् ) जो ( सुपर्णः ) गति करने के उत्तम साधनों से युक्त होकर (अचक्रया) विना चक्र के ही (स्वधया) अपने को आकाश में थामे रखने की शक्ति से ( देवजुष्टं हव्यं ) उत्तम विद्वानों से प्राप्त करने योग्य ऐश्वर्य ( मनवे ) ज्ञानी शिल्पी को ( हरत् ) प्राप्त करावे । ( २ ) अध्यात्म में—'श्येन' आत्मा वा परमात्मा अन्य गतिमान् 'श्येन' प्राणों वा जीवों की अपेक्षा उत्तम है । 'अचक्रा स्वधा' अन्य करण सामग्री से रहित होकर भी स्वसत्ता को धारण करने वाली चिति शक्ति से 'मन्ता' मन वा आत्मा को 'हव्यं' भोग्य ज्ञान, सुख दुःखादि या परमानन्द सुख को प्राप्त कराता है । जो इन्द्रियादि वा विद्वानों से सेवने योग्य होता है । ( ३ ) बाज़ के वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाला सेनापति भी 'श्येन' है वह सबसे बढ़कर रहे । वह उत्तम रथ वाहनादि से युक्त होकर 'सुपर्ण' है । वह चक्राकार व्यूह के विना ही ( स्वधया ) अपनी सेना से राजा को 'हव्यं' विजययोग्य ऐश्वर्य प्राप्त करावे ।

**भर॒द्यदि॒ विरतो॒ वेवि॑जानः प॒थोरु॒णा मनो॑जवा असर्जि ।**
**तूयं॑ ययौ॒ मधु॑ना सो॒म्येनो॒त श्रवो॑ विविदे श्ये॒नो अत्र॑ ॥ ५ ॥**

भा०—( यदि ) जिस प्रकार ( विः श्येनः ) वेग से युक्त पक्षी बाज, ( अतः वेविजानः ) इस पृथिवी लोक से पक्षों को कंपाता हुआ

( हरत् ) वेग से गमन करता है और ( उरुणा पथा मनोजवाः असर्जि ) बड़े भारी आकाश-मार्ग से मन के समान वेगवान् हो जाता है और ( तूयं ययौ ) बहुत शीघ्र ही चला जाता है और ( श्रवः विविदे ) ख्याति प्राप्त करता या श्रवण योग्य शब्द उत्पन्न करता है उसी प्रकार (यदि) जब (श्येनः) ज्ञानवान् पुरुष ( विः ) तेजस्वी, वा (विः) संसार के सुखों का भोक्ता होकर (वेविजानः) उद्विग्न होकर उनको कंपादे, फाड़दे, अवधूत, असंग हो जावे वा (विरतः) विषयों से विरत हो जावे और ( उरुणा पथा ) महान् ज्ञानमार्ग से ( भरत् ) गति करे तब वह ( मनोजवाः असर्जि ) मन से ही यथा संकल्पित लोकों को जाने में समर्थ हो जाता है। वह ( सोम्येन मधुना ) परमानन्द सुख देने वाले मधुर ज्ञान द्वारा ( तूयं ययौ ) शीघ्र ही उस पद तक पहुंचता है। वह (श्येनः) उत्तम गति प्राप्त करके ( अत्र ) वहां ( श्रवः ) श्रवण योग्य परम ज्ञानमय ब्रह्म को प्राप्त करता है। (३) राजा के पक्ष में—( वे विजानः ) स्व और पर दोनों पक्षों को कंपाता हुआ पक्षी के समान जब जाता है तब वह मनोवेग से जाने वाली सेनाओं को पैदा करे। ( सोम्येन मधुना ) ऐश्वर्य प्राप्त करने योग्य सैन्यबल वा ओषध्यादि से युक्त अन्नादि सहित वेग से आगे बढ़े। (अत्र) इस लोक में ( श्रवः विविदे ) यश और ऐश्वर्य प्राप्त करे। और ( श्येनः ) प्रशंसनीय आचरण वाला प्रसिद्ध हो।

ऋजीपी श्येनो ददमानो अंशुं परावतः शकुनो मन्द्रं मदम्।
सोमं भरद्दादृहाणो देवावान्दिवो अमुष्मादुत्तरादादाय ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार ( ऋजीपी श्येनः शकुनिः अंशुं ददमानः मन्द्रं मदं सोमम् भरत् ) सीधी गति से जाने वाला श्येन नाम पक्षी वेग को धारण करता हुआ अतिस्तुत्य मद और वीर्य को धारण करता है। उसी प्रकार ( ऋजीपी ) सरल, धर्म के मार्ग से जाने वाला ( श्येनः ) उत्तम आचारणवान् ज्ञानी पुरुष ( परावतः ) उस परम पद पर स्थित प्रभु से

( अंशुं दद्मानः ) उत्तम ज्ञान के प्रकाश को स्वयं धारण करता और अन्यों को प्रदान करता हुआ ( शकुनः ) अपने को उन्नत पद पर पहुंचाने में समर्थ, शक्तिमान्, शान्तिमान्, शमदम का अभ्यासी पुरुष ( मन्द्रं ) अति आनन्दजनक, प्रशंसनीय ( मदम् ) हर्ष और ( सोमं ) ऐश्वर्य, विभूति, ज्ञान और वीर्य को ( अमुष्मात् ) उस ( उत्तरात् ) सबसे उत्कृष्ट परम प्रभु से ( आदाय ) प्राप्त करके ( भरत् ) धारण करता है और स्वयं ( दद्हाणः ) उत्तरोत्तर दृढ़ और ( देववान् ) किरणों से युक्त सूर्य के तुल्य तेजस्वी और 'देव' विद्वानों, विद्या के इच्छुक शिष्यों और इन्द्रियों का भी स्वामी हो जाता है। ( २ ) राष्ट्र में—न्याय के सरल मार्ग से जाने और राष्ट्र को पालन और उपभोग करने वाला राजा 'ऋजीपी' है, वाज के समान बलशाली होने से 'श्येन' है वह ( परावतः अंशुं दद्मानः ) दूर देश से भी कर लेता हुआ ऐश्वर्य धारण करे, अपने से उत्तम ज्ञानी विजीगीपु से सहाय लेकर अपने को दृढ़ और वीर योद्धाओं का स्वामी बनावे।

**आदा॑य श्ये॒नो अ॑भर॒त्सोमं॑ स॒हस्रं॑ स॒वाँ अ॒युतं॑ च सा॒कम्।**
**अत्रा॒ पुर॑न्धिरजहा॒दरा॑ती॒र्मदे॒ सोम॑स्य मू॒रा अमू॑रः ॥ ७ ॥ १५ ॥**

भा०—( श्येनः यथा सोमम् अभरत् ) वाज़ पक्षी जिस प्रकार वेग और वीर्य को धारण करता है, ( मदे अरातीः अजहात् ) बल के गर्व में शत्रुओं को मारता है उसी प्रकार ( श्येनः ) वाज़ के तुल्य, वेग से शत्रु पर आक्रमण करने में समर्थ राजा, ( साकम् ) अपने साथ ( सहस्रं अयुतं च सवान् आदाय ) हज़ारों और लाखों अधीन सैन्यों और ऐश्वर्यों को लेकर ( सोमम् ) राष्ट्र को धारण करे। ( अत्र ) इस राष्ट्र में रहकर ( पुरन्धिः ) समस्त राष्ट्र को एक पुर के समान धारण करे और स्वयं ( अमूरः ) कभी मोही, प्रमादी न होकर, ( मूराः ) मूढ़ ( अरातीः ) शत्रु सेनाओं को ( सोमस्य मदे ) ऐश्वर्य के दमन करने के निमित्त (अज-

हात् ) प्राणों से वियुक्त करे, मारे । (२) अध्यात्म में—ज्ञानी पुरुष वीर्य सम्पादन करके सहस्रों ऐश्वर्य प्राप्त करे, वह परमानन्द के सुख में मोह रहित होकर समस्त भीतरी शत्रु रूप काम क्रोधादि मोह युक्त वासनाओं का त्याग करें । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

## [ २७ ]

वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ५ निचृच्छकरी ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

**गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा ।**
**शतं मा पुर आयसीररक्षन्नध श्येनो जवसा निरदीयम् ॥ १ ॥**

भा०—जीव का वर्णन करते हैं । ( अहम् ) मैं जीव ( गर्भे ) गर्भ में ( नु सन् ) प्राप्त होकर ही ( एषां ) इन ( देवानां ) चक्षु, श्रोत्र आदि इन्द्रियों के ( विश्वा ) समस्त ( जनिमानि ) प्रादुर्भावों, प्रकट रूपों को ( अनु अवेदम् ) अपने अनुकूल विषयों के ग्रहण करने में सहायक साधन रूप से प्राप्त करता हूं । ( आयसीः पुरः ) राजा को लोह वा सुवर्ण की बनी दृढ़ नगरियों के समान ( मा ) मुझ जीव को ( शतं ) सैकड़ों (आयसीः) आगमन और निर्गमन, आवागमन से युक्त, या चेतना से युक्त ( शतं पुरः ) सैकड़ों इच्छा पूर्त्ति करने वाली देह रूप नगरियां ( अरक्षन् ) रक्षा किया करती हैं । (अध) और मैं (श्येनः) उत्तम, प्रशंसनीय गति वाला और ज्ञानयुक्त होकर, घोंसले से बाज़ के समान वा नगर से प्रयाण करने वाले वीर राजा के समान ( जवसा ) बड़े वेग से ( निर्-अदीयम् ) निकल जाया करता हूं, मैं देहबन्धन को छोड़ कर निकल जाता और मुक्त हो जाता हूं । राष्ट्रपक्ष में—( एषां देवानां गर्भे नु सन् एषां विश्वा जनिमानि अवेदम् ) इन विजियेच्छुक लोगों के बीच में उनको वश

करने के कार्य में रहकर उनके सब सामर्थ्यों को मैं प्राप्त करूं। सैकड़ों दृढ़ नगरी मेरी रक्षा करें मैं वेग से शत्रु पर धावा करूं।

**न घा स मामप जोषं जभाराभीमास त्वक्षसा वीर्येण।**
**ईर्मा पुरन्धिरजहादरातीरुत वाताँ अतरच्छूशुवानः ॥ २ ॥**

भा०—( सः ) वह परमेश्वर ( जोषं ) संसार को सेवन करते हुए ( माम् ) मुझको ( न घ अप जहार ) अपवर्ग की ओर कभी नहीं ले जाता। अथवा—( जोषं ) प्रीति युक्त मुझ जीव को वह प्रभु कभी (अप जभार) कुमार्ग में नहीं ले जाता ( ईम् ) प्रत्युत मैं उस परमेश्वर को लक्ष्य करके ( त्वक्षसा ) और तेजस्वी ( वीर्येण ) बल पराक्रम या तप से ( ईम् अभि आस ) उसकी ओर होता और उसका साक्षात् करता हूं। अथवा—वह परमेश्वर ( त्वक्षसा वीर्येण ) इस जगत् की रचना करने वाले, तेजो युक्त बल वीर्य से ( अभि आस ) सब प्रकार और सब ओर से व्याप रहा है। वह ( ईर्मा ) सब जगत् का सञ्चालक, ( पुरन्धिः ) राजा के तुल्य इस समस्त विश्व को पुर के समान धारण करने वाला प्रभु ( अरातीः ) समस्त दुःखादि देने वाले शत्रुओं, बाधाओं या पीड़ाओं को ( अजहात् ) छुड़ा देता है, ( उत् ) और ( शूशुवानः ) वही महान् पुरुष ( वातान् ) इन प्राणों को ( अतरन् ) प्रदान करता है अथवा—( ईर्मा ) देह का सञ्चालक यह जीव ( पुरन्धिः ) देह को पुरवत् धारण करता हुआ ( अरातीः ) काम क्रोधादि सुख न देने वाले शत्रुओं को ( अजहात् ) छोड़ दे। और ( शूशुवानः ) स्वयं शक्ति से बढ़ता हुआ ( वातान् उत ) इन प्राणों को भी युद्ध में बलवान् वीरों को प्रबल राजा के तुल्य ( अतरत् ) तर जावे, उनके बन्धनों से पार हो जावे। ( २ ) राष्ट्रपक्ष में—( सः ) वह राजा मुझ प्रजाप्रेमी जनको ( न घ अप जभार ) अपहरण न करे न लूटे, वह मुझे शत्रुनाशक तीक्ष्णवीर्य, बल पराक्रम से व्यापे, शत्रु को पराजय करे, वह ( ईर्मा ) राज्य सञ्चालक, पुरपति, शत्रुओं को दूर करे,

स्वयं बढ़ता हुआ वायु वेग से आक्रमण करने वाले वीरों को बढ़ावे और ऐसे शत्रुओं से स्वयं अधिक बलवान् हो।

अव॒ यच्छ्ये॒नो अस्व॑नी॒दध॒ द्योर्वि यद्यदि॒ वा त॑ ऊ॒हुः पुर॑न्धिम्।
सृ॒जद्यद॑स्मा॒ अव॑ ह क्षि॒पज्ज्यां कृ॒शानु॒रस्ता॒ मन॑सा भुर॒ण्यन् ॥३॥

भा०—( यत् ) जिस जीव को ( श्येनः ) उत्तम प्रशंशनीय गमन, आचरण और ज्ञान तप वाला पुरुष वा प्रभु ( द्योः ) प्रकाशमय ज्ञान का (अव अस्वनीत् ) अपने अधीन रख कर उपदेश करता है ( यत् यदि ) और जब जिस ( पुरन्धिम् ) देहधारक जीव को (अतः) इस संसार बन्धन से (ते ऊहुः) वे ज्ञानी जन ऊपर उठा लेते हैं और (कृशानुः) अग्नि के तुल्य सब पापों को भस्म कर देने वाला, गुरु या प्रभु (मनसा) ज्ञान के बल से उस (भुरण्यन् ) इस जीव का पालन करता है। (अस्ता यथा ज्यां क्षिपत्-अव सृजत् ) धनुर्धर जिस प्रकार डोरी चलाता और वाण फेंकता है उसी प्रकार ( अस्ता ) सब दुःखों बन्धनों को दूर फेंक देने वाला गुरु या प्रभु ( अस्मै ) इस जीव की (ज्यां ) हानि करने वाली अविद्या को ( क्षिपत् ) दूर करता हुआ (अव सृजत् ) उसे बन्धनों से मुक्त करता है। (२) राष्ट्र-पक्ष में—( श्येनः यत् द्योः अव अस्वनीत् ) आक्रमक बलवान् राजा जब विजय का डंका बजाता हुआ घोषणा करे। उसको जब अश्व आदि यान नगर से बाहर लेजाते हैं तब ( अस्मै कृशानुः ) उसका तेजस्वी सेनापति ( अस्ता ) अस्त्र चालक, सैन्यगण (मनसा पुरण्यन्) चित्त से आगे बढ़ता और उसकी रक्षा करता हुआ (अव सृजत् ) वाणों को फेंके (ज्यां अव क्षिपत् ) धनुष की डोरी वा शत्रु नाशकारिणी सेना को आगे बढ़ावे, शत्रु की नाशक सेना को नाश करे, वा ( ज्यां अव क्षिपत् ) शत्रु की भूमि को आक्रमण कर वश करले।

ऋ॒जि॒प्य ई॒मिन्द्रा॑वतो॒ न भु॒ज्युं श्ये॒नो ज॑भार बृह॒तो अधि॒ ष्णोः।
अ॒न्तः प॑तत्पत॒त्र्य॑स्य प॒र्णमध॒ याम॑नि॒ प्रसि॑तस्य॒ तद्वेः ॥ ४ ॥

भा०—( श्येनः भुज्युं न ) वेगवान् अश्व जिस प्रकार अपने पालक पुरुप को अपने ऊपर चढ़ा कर ले जाता है उसी प्रकार ( ऋजिप्यः ) धर्मात्मा पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ ( श्येनः ) उत्तम रीति से गमन, प्रयाण और आचरण करने वाला अध्यात्म ज्ञानी ( बृहतः ) बड़े भारी ( स्नोः ) आनन्द वर्षण करने वाले ( इन्द्रवतः ) ऐश्वर्य युक्त परम पद से ( ईम् ) इस ( भुज्युं ) भोक्ता जीव को ही ( अधि जभार ) धारण करता है, ( अध ) उसके अनन्तर ( यामनि ) संयम मार्ग से ( प्रसितस्य ) अति सुसंयत और उत्तम शुक्लकर्मा हुए ( वेः ) कान्तिमान् ( अस्य ) इसका ( पतत्रि ) इधर उधर जाने वाला ( पर्णं ) भीतरी साधन मन या अन्तःकरण ( वेः पर्णम् ) सूर्य की किरण के समान ( तत् ) उस परमात्म तत्व की ओर ही ( पतत् ) चला जाता है। ( २ ) राष्ट्रपक्ष में—धर्मात्मा, सदाचारी, बलवान् राजा इस भोग्य राष्ट्र को ऐश्वर्य युक्त ( स्नोः ) दयायुक्त पद से धारण करे। ( अस्य अन्तः पतत्रि पर्णम् ) उस तेजस्वी राष्ट्र के प्रवद्ध क़ानून में संयत राजा का भी वेगवान् रथ और पालन बल वा शासन पत्र उस राष्ट्र के भीतर चले।

**अधं श्वेतं कुलशं गोभिरक्तमापिप्यानं मघवा शुक्रमन्धः।**
**अध्वर्युभिः प्रयतं मध्वो अग्रमिन्द्रो मदाय प्रति धत्पिबध्यै**
**शूरो मदाय प्रति धत्पिबध्यै ॥ ५ ॥ १६ ॥**

भा०—जिस प्रकार ( मघवा इन्द्रः ) जलप्रद सूर्य ( गोभिः अक्तम् शुक्रम् अन्धः आपिप्यानं श्वेतं कलशं मध्वः अग्रम् पिबध्यै प्रति धत् ) किरणों से व्यक्त हुए जल को और अन्न बढ़ाने वाले मेघ को और जल के श्रेष्ठ अंश को पान कराने के लिये धारण करता है उसी प्रकार ( शूरः ) शूरवीर, ( मघवा ) ऐश्वर्यवान् ( इन्द्रः ) शत्रुहन्ता राजा ( गोभिः अक्तम् ) ज्ञानवाणियों द्वारा प्रकाशित होने वाले ( श्वेतं ) शुभ्र, स्वच्छ, ( कलशं ) १६ कलाओं से युक्त, इस आत्मा को ( आपिप्यानं ) तृप्त या वृद्धि करने

वाले ( शुक्रम् ) तेजो युक्त वीर्य और ( अन्धः ) जीवन धारण करने वाले अन्न को और ( अध्वर्युभिः प्रयतम् ) नाश न होने वाले प्राणों और विद्वानों द्वारा प्रदान किये हुए (मध्वः अग्रम्) ब्रह्म ज्ञान के श्रेष्ठ स्वरूप को (मदाय) हर्ष, परमानन्द प्राप्ति के लिये (पिबध्यै) और उसके उपभोगके लिये (प्रति धत्) प्रतिक्षण धारण करे। वह (मदाय पिबध्यै प्रति धत्) हर्षवृद्धि और उपभोग के लिये ही धारग करे ( २ ) उसी प्रकार शूरवीर राजा, उत्तम भूमियों और शासन वाणियों से प्रकट हुए, शुद्ध सदाचार युक्त राष्ट्र रूप ऐश्वर्य से पूर्ण कलशवत् राष्ट्र को जल, अन्न और विद्वानों द्वारा मधुर ज्ञान को सबके सुख और उपभोगार्थ प्रतिक्षण धारण करे। इति षोडशो वर्गः॥

## [ २८ ]

वामदेव ऋषिः॥ इन्द्रासोमौ देवते॥ छन्दः—१ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ विराट् त्रिष्टुप्। ४ त्रिष्टुप्। २ भुरिक् पंक्तिः। ५ पंक्तिः॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

**त्वा युजा तव तत्सोम सख्य इन्द्रो अपो मनवे सस्रुतस्कः।**
**अहन्नहिमरिणात्सप्त सिन्धूनपावृणोदपिहितेव खानि॥ १॥**

भा०—हे ( सोम ) ऐश्वर्ययुक्त प्रजाजन! हे राष्ट्र! ( त्वा युजा ) तुझ सहायक से और ( तव सख्ये ) तेरे मित्रभाव में रहकर ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् राजा ( मनवे ) मनुष्यमात्र के हितार्थ सूर्य जिस प्रकार जल धाराएं बरसाता है उसी प्रकार ( सस्रुतः अपः कः ) जलों को उत्तम रसों से बहने वाला बनावे, नहरें खोले। ( अहिम् ) मेघ को सूर्यवत्, विघ्नकारी शत्रु आदि वा रुकावट को या सर्पवत् कुटिल जन को ( अहन् ) दण्ड दे। ( सप्त सिन्धून् ) चलने वाले वेगवान् अश्वों और अश्वसैन्यों को ( अरिणात् ) चलावे, ( अपि-हिता इव ) ढकी हुई सी ( खानि ) इन्द्रियों को जिस प्रकार आत्मा देह में प्रकट करता है उसी प्रकार ( अपिहिता इव खानि ) ढके हुए उन्नति के द्वारों को ( अप अवृणोत् )

अच्छी प्रकार खोल देवे। (२) अध्यात्म में—सोम, ओषधि आदि रस के सहाय से विद्वान् पुरुष मनुष्य के देह के रुधिरादि प्रवाहों को उत्पन्न करे। रोग को नाशे, सातों प्राणों को गति दे, इन्द्रियच्छिद्रों और रोम-कूपों को स्वच्छ, मल रोधादि से रहित करे।

त्वा युजा नि खिदत्सूर्यस्येन्द्रश्चक्रं सहसा सद्य इन्दो।
अधि ष्णुना बृहता वर्तमानं महो द्रुहो अप विश्वायु धायि ॥२॥

भा०—हे (इन्दो) दयार्द्र हृदय! चन्द्र के समान कान्ति और ऐश्वर्य से युक्त प्रजाजन! (इन्द्रः) वायु वा विद्युत् जिस प्रकार जल की सहायता से सूर्य के ज्योतिर्मण्डल को हीनकान्ति बना देता है उसी प्रकार (त्वा युजा) तुझ सहायक से ही (इन्द्रः) शत्रुओं का नाश करने हारा, विद्युत् के समान गर्जन, छेदन भेदन शील, वायु के तुल्य शत्रु-वृक्षों को कंपाने हारा, वलवान् पुरुष (सूर्यस्य) सूर्य के तुल्य तेजस्वी राजा के भी (चक्रं) राज्य-चक्र को (सहसा) अपने शत्रुविजयी सैन्यवल से (सद्यः) अति शीघ्र (नि खिदत्) विलकुल हीन दीन कर सकता है। और (बृहता) बहुत बड़े (स्नुना) उपरिस्थित वा दूर २ तक फैलाने वाले सैन्य वल से (अधि वर्त्तमानं) ऊपर अध्यक्ष रूप से कार्य करने वाले (द्रुहः) द्रोही शत्रु के (महः) वड़े (विश्वायु) सर्व जीवन सामर्थ्य, सर्वत्रगामी वल को भी (अप धायि) दूर हटा देने में समर्थ होता है।

अहन्निन्द्रो अदहदग्निरिन्दो पुरा दस्यून्मध्यन्दिनादभीके।
दुर्गे दुरोणे क्रत्वा न यातां पुरू सहस्रा शर्वा नि बर्हीत् ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य के तुल्य शत्रुहन्ता राजा (अभीके) संग्राम में (मध्यन्दिनात्) मध्याह्न काल के ताप के समान असह्य प्रताप से (दस्यून्) दुष्ट, प्रजा-नाशक पुरुषों को (अहन्) विनाश करे और वह हे (इन्दो) दयार्द्रस्वभाव, ऐश्वर्यवन् विद्वन् एवं प्रजाजन! (अग्निः)

अग्नि के तुल्य तेजस्वी, अग्रणी नायक भी उसी प्रकार दुष्ट पुरुषों को (अदहत्) भस्म करे। (दुरोणे) घर में (क्रत्वा) यज्ञ से जिस प्रकार मनुष्य (यातां) पीड़ादायक (पुरू सहस्रा शर्वा) बहुत से हज़ारों हिंसाकारी, रोग बाधाओं का नाश करता है (न) उसी प्रकार (दुर्गे) गढ़ में स्थित होकर (क्रत्वा) अपनी प्रज्ञा और कर्म कौशल से ही (यातां) प्रयाण करने वाले पीड़ादायक शत्रुओं के (पुरु सहस्रा शर्वा) अनेक हज़ारों हिंसाकारी सैन्यों वा शस्त्राघातों को (नि वर्हीत्) निवारण करता है। एकः शतं योधयति। पञ्चतन्त्र॥

**विश्वस्मात्सीमधमाँ इन्द्र दस्यून्विशो दासीरकृणोरप्रशस्ताः।**
**अबाधेथाममृणतं नि शत्रूनविन्देथामपचितिं वधत्रैः॥ ४॥**

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे शत्रुओं का नाश करने वाले राजन्! तू (सीम्) सूर्य के तुल्य होकर (दस्यून्) प्रजा का नाश करने वाले (अधमान्) नीच पुरुषों को (विश्वस्मात्) समस्त राष्ट्र से पृथक् (अकृणोः) कर और उनको दण्ड दे। और (विशः) प्रजाओं को (दासीः अकृणोः) दानशील बना। और (अप्रशस्ताः) जो उत्तम आचार व्यवहार वाली नहीं हैं उनको भी (दासीः विशः अकृणोः) कर देने वाली तथा राष्ट्र में बसने योग्य प्रजा बना। हे विद्वन्! हे राजन्! तुम दोनों मिलकर (शत्रून् नि अबाधेथाम्) शत्रुओं को खूब पीड़ित करो (वधत्रैः) वधकारी शस्त्रों से (नि अमृणतं) खूब मारो और (अपचितिं) पूजा, सत्कार को (अविन्देथाम्) प्राप्त करो।

**एवा सत्यं मघवाना युवं तदिन्द्रश्च सोमोर्वमश्व्यं गोः।**
**आदर्दृतमपिहितान्यश्ना रिरिचथुः क्षाश्चित्ततृदाना॥ ५॥ १७॥**

भा०—हे (सोम) अन्नादि समृद्धि के उत्पन्न करने वाले प्रजाजन! (इन्द्रः च) और ऐश्वर्यवान् राजा (युवं) आप दोनों (मघवाना)

ऐश्वर्य से युक्त होकर ( गोः ) वाणी के ( तत् ) उस ( सत्यं ) सत्य ज्ञान को और ( गोः ) पृथिवी के ( तत् ) उस ( ऊर्वम् ) शत्रुहिंसक ( अश्व्यम् ) घोड़ों के बने सैन्य को ( आदर्दतम् ) आदरपूर्वक स्वीकार करो और ( क्षाः चित् ) भूमियों को प्रजाहिंसक शत्रु-सेनाओं को ( ततृदाना ) कृषि, खनि और युद्ध द्वारा खोदते और तोड़ते हुए ( अक्षा ) नाना प्रकार के भोग्य अन्न सुवर्णादि ऐश्वर्यों को (रिरिचथुः ) प्राप्त करो। इति सप्तदशो वर्गः ॥

## [ २६ ]

वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, २ त्रिष्टुप् । ५ स्वराट् पंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

आ नः स्तुत उप वाजेभिरूती इन्द्र याहि हरिभिर्मन्दसानः ।
तिरश्चिदर्यः सवना पुरूण्याङ्गूषेभिर्गृणानः सत्यराधाः ॥ १ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! आप ( मन्दसानः ) हर्षयुक्त होकर ( वाजेभिः ) बलवान् वीरपुरुषों और ( हरिभिः ) विद्वान् पुरुषों से ( स्तुतः ) प्रशंसित होकर ( ऊती ) रक्षण आदि सामर्थ्यसहित ( नः उप याहि ) हमें प्राप्त हों । और तू ( अर्यः ) सबका स्वामी ( सत्यराधाः ) सत्य ऐश्वर्यवान्, न्यायशील होकर ( आंगूषेभिः ) उत्तम स्तुतियों और उपदेशों द्वारा ( गृणानः ) स्तुति और उपदेश युक्त होता हुआ, ( पूरूणि सवना ) बहुत से ऐश्वर्यों को ( तिरः चित् ) आदरपूर्वक हमें प्राप्त हो ।

आ हि ष्मा याति नर्यश्चिकित्वान्हूयमानः सोतृभिरुप यज्ञम् ।
स्वश्वो यो अभीरुर्मन्यमानः सुष्वाणेभिर्मदति सं ह वीरैः ॥२॥

भा०—( चिकित्वान् नर्यः ) मनुष्यों में उत्तम ज्ञानी पुरुष ( सोतृभिः ) ऐश्वर्य उत्पन्न करने और अभिषेक आदि करने वाले पुरुषों सहित

( हूयमानः ) आदरपूर्वक स्तुति को प्राप्त होता हुआ ( आयाति स्म हि ) सदैव आता और ( यज्ञं ) राजा प्रजा के परस्पर संगत व्यवहार और मैत्री, समागम सख्यभाव को ( उपयाति ) प्राप्त होता है। ( यः ) जो (सु-अश्वः) उत्तम अश्व सैन्य से युक्त होकर ( अभीरुः ) शत्रु से भय नहीं करता वह ( मन्यमानः ) आदर सत्कार को प्राप्त करता हुआ ( सुस्वानेभिः ) उत्तम हर्ष ध्वनि युक्त ( वीरैः ) वीर पुरुषों सहित ( ह ) निश्चय से ( सं मदति ) खूब हर्ष आनन्द लाभ करता है।

श्रावयेदस्य कर्णा वाजयध्यै जुष्टामनु प्र दिशं मन्दयध्यै ।
उद्वावृषाणो राधसे तुविष्मान्करन्न इन्द्रः सुतीर्थाभयं च ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वन् ! आचार्य ! उपदेशक ! तू ( अस्य ) इस वीर पुरुष के ( कर्णा ) दोनों कानों को ( वाजयध्यै ) ज्ञान सम्पन्न करने के लिये ( मन्दयध्यै ) और खूब हर्षित करने के लिये ( जुष्टां ) विद्वान् सत्पुरुषों से सेवित, प्रजा द्वारा प्रेम युक्त ( दिशम् ) ज्ञान दिशा को अनुगमन करके लिये ( अनु श्रावय प्र श्रावय) अनुकूल और उत्तम उपदेश कर। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा ( उद् वावृषाणः ) ऊर्ध्व स्थित मेघ के समान प्रजा पर सुखों की वर्षा करता हुआ एवं उत्तम पद पर स्थित बलवान् प्रबन्धक, ( तुविष्मान् ) बलवान् पुरुष ( नः ) हमारे ( राधसे ) धन और आराध्य सुख के प्राप्त करने और बढ़ाने के लिये, हमारे राष्ट्र में ( सुतीर्था ) दुःखों से पार उतारने वाले आचार्य, ब्रह्मचर्य, सत्य भाषणादि युक्त विद्वानों, विद्यामठों और सेतु आदि ( करत् ) बनावे और ( अभयं च ) प्रजा को चौर, व्याघ्रादि भय से रहित ( करत् ) करे।

अच्छा यो गन्ता नाधमानमूती इत्था विप्रं हवमानं गृणन्तम् ।
उप त्मनि दधानो धुर्या३शून्त्सहस्राणि शतानि वज्रबाहुः ॥४॥

भा०—( यः ) जो ( त्मनि ) अपने अधीन ( सहस्राणि शतानि ) हज़ार २ और सौ २ के दल-बद्ध ( आशून् धुर्या ) वेग से जाने वाले

धुरा ढोने योग्य अश्वों और धुरन्धर पुरुषों को ( दधानः ) धारण और उनको भृत्य रूप से भरण पोषण करता हुआ ( वज्रवाहुः ) बाहुओं में बलवीर्य, शस्त्रास्त्रादि धारता हुआ, (इत्था) सत्य न्यायानुकूल (नाधमानं) अधिकार याचना करते हुए ( ऊती ) रक्षा के निमित्त ( गृणन्तं हवमानं) स्तुति और प्रार्थना करते हुए ( विप्रं ) विद्वान् पुरुष को ( अच्छ गन्ता ) प्राप्त होता है, वह राजा प्रजा को अभय करे ।

त्वोतासो मघवन्निन्द्र विप्रा वयं ते स्याम सूरयो गृणन्तः ।
भेजानासो बृहद्दिवस्य राय आकाय्यस्य दावने पुरुक्षोः ॥५॥१८॥

भा०—हे ( मघवन् ) ऐश्वर्यवन्! राजन्! हे ( मघवन् ) उत्तम धन के स्वामिन्! ( त्वा उतासः ) तेरे द्वारा सुरक्षित ( वयं ) हम ( विप्राः ) विद्वान् और ( सूरयः ) विद्याओं को प्रकाशित करने वाले होकर ( गृणन्तः स्याम ) उत्तम ज्ञानों का उपदेश करने वाले हों । अथवा ( ते गृणन्तः स्याम ) तेरी स्तुति करने वाले हों । हम ( भेजानासः ) तेरा भजन, सेवन करते हुए ( आकाय्यस्य ) अतिस्तुत्य, एवं सब प्रकार से काया देह को सुखदायी ( बृहद्-दिवस्य ) अति प्रकाशयुक्त ( पुरुक्षोः ) बहुत से अन्नादि से युक्त ( रायः ) धन ज्ञान के ( दावने ) देने वाले ( ते ) तेरे हितैषी हों । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

## [ ३० ]

वामदेव ऋषिः ॥ १—८, १२—२४ इन्द्रः । ९—११ इन्द्र उषाश्च देवते ॥ छन्दः—१, ३, ५, ६, ११, १२, १६, १८, १९, २३ निचृद्गायत्री । २, १०, ७, १३, १४, १५, १७, २१, २२ गायत्री । ४, ६ विराड् गायत्री । २० पिपीलिकामध्या गायत्री । ८, २४ विराडनुष्टुप् ॥ चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायाँ अस्ति वृत्रहन् ।
नकिरेवा यथा त्वम् ॥ १ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! हे ( वृत्रहन् ) बढ़ते शत्रु और बाधक विघ्नों के नाश करने वाले राजन् ! हे प्रभो ! ( त्वत् उत्तरः नकिः ) तुझ से बढ़कर, तेरा प्रतिपक्षी कोई नहीं ( त्वत् ज्यायान् नकिः अस्ति ) तुझ से बड़ा भी कोई नहीं। ( यथा त्वम् ) जैसा तू है वैसा तेरे सदृश भी ( नकिः एव ) कोई नहीं है।

सत्रा ते अनु कृष्टयो विश्वा चक्रेव वावृतुः।
सत्रा महाँ असि श्रुतः॥ २॥

भा०—( सत्रा ) बलवान् और सत्य न्याय से युक्त ( ते ) तेरे ( अनु ) अधीन रहने वाली ( विश्वाः कृष्टयः ) समस्त मनुष्य प्रजाएं और शत्रुपीड़न करने वाली सेनाएं भी ( चक्रा इव ) गाड़ी में लगे पहियों के समान ( ववृतुः ) तेरे अनुकूल होकर चलें। तू भी ( सत्रा ) सत्य व्यवहार से ही ( महान् ) महान्, पूज्य और ( श्रुतः ) प्रसिद्ध ( असि ) है।

विश्वे चनेदना त्वा देवास इन्द्र युयुधुः।
यदहा नक्तमातिरः॥ ३॥

भा०—हे ( इन्द्र ) शत्रुहन्तः ! (विश्वे चन देवासः) सभी विजयेच्छुक लोग ( अना त्वा ) तुझ जीवनदायक को प्राप्त कर ( युयुधुः ) युद्ध करें ( यत् ) जिससे ( अहा नक्तम् ) दिन रात तू शत्रुओं को ( आ अतिरः ) सब तरफ़ नाश करे।

यत्रोत बाधितेभ्यश्चक्रं कुत्साय युध्यते।
मुषाय इन्द्र सूर्यम्॥ ४॥

भा०—( यत्र ) जिस संग्राम में (बाधितेभ्यः) शत्रुओं से पीड़ित प्रजाजनों और ( युद्धयते ) युद्ध करने वाले ( कुत्साय ) शस्त्रास्त्र से युक्त सैन्य के हितार्थ हे ( इन्द्र ) शत्रुहन्तः ! तू ( सूर्यम् ) सूर्य के समान

तेजस्वी ( चक्रं ) पर सैन्य चक्र को ( मुषायः ) संहार कर और अपने सैन्य चक्र की रक्षा कर ।

यत्र देवाँ ऋघायतो विश्वाँ अयुध्य एक इत् ।
त्वमिन्द्र वनूँरहन् ॥ ५ ॥ १९ ॥

भा०—और ( यत्र ) जिस संग्राम में ( ऋघायतः ) हिंसा करने वाले ( विश्वान् देवान् ) समस्त विजिगीषु वीर पुरुषों को ( एकः इत् ) तू अकेला ही (अयुध्यः) लड़, लड़ा लेने में समर्थ है वह ( त्वम् ) तू ही हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! ( वनून् ) अधार्मिक शत्रुओं को ( अहन् ) विनाश कर । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

यत्रोत मर्त्याय कमरिणा इन्द्र सूर्यम् ।
प्रावः शचीभिरेतशम् ॥ ६ ॥

भा०—( यत्र ) जिस संग्राम में हे ( इन्द्र ) शत्रुनाशक ! तू ( मर्त्याय ) प्रजा पुरुषों और शत्रु-मारक सैन्य जन के हितार्थ ( सूर्यम् ) सूर्य के समान तेजस्वी राजचक्र को भी ( अरिणाः ) सञ्चालित करे वहां ( शचीभिः ) सेनाओं और आज्ञा वा शासनवाणियों द्वारा ( एतशम् ) अपने अश्व, सैन्य समृद्ध राष्ट्र को ( प्रावः ) अच्छी प्रकार रक्षा कर ।

किमादुतासि वृत्रहन्मघवन्मन्युमत्तमः ।
अत्राह दानुमातिरः ॥ ७ ॥

भा०—( वृत्रहन् ) हे आवरणकारी अन्धकारों वा मेघों के तुल्य नगरादि को रोधने वाले शत्रुओं और विघ्नों का नाश करने वाले राजन् ! ( आत् उत किम् ) और क्या ! आप तो ( मन्युमत्तमः असि ) सबसे अधिक मन्यु अर्थात् दुष्टों पर कोप धारण करने वाले हो, ( अत्र अह ) निश्चय से इस राष्ट्र में आप ( दानुम् अतिरः ) दानशील राष्ट्र को बढ़ाओ और प्रजा के छेदक भेदक दस्यु को नाश करो ।

एतद्घेदुत वीर्य१मिन्द्र चकर्थ पौंस्यम् ।
स्त्रियं यद्दुर्हणायुवं वधीर्दुहितरं दिवः ॥ ८ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) सूर्यवत् तेजस्विन् ! ( एतत् घ इत् उत ) और यह भी तू ही ( पौंस्यम् ) पुरुषोचित ( वीर्यम् ) बल वीर्य पराक्रम ( चकर्थ ) कर ( यत् ) कि जिस प्रकार सूर्य ( दिवः दुहितरं ) प्रकाश से उत्पन्न उषा को प्राप्त होता वा उसका नाश करता है उसी प्रकार तू भी ( दुर्हणायुवं ) बड़ी कठिनता से नाश करने योग्य प्रबल शत्रुनायक की कामना करने वाली ( स्त्रियं ) संघात बना कर आक्रमण करने वाली शत्रु सेना को ( वधीः ) विनाश कर और ( दिवः ) शत्रु विजिगीषा को ( दुहितरं ) पूर्ण करने वाली ( दुर्हणायुवं ) कठिनता से वध योग्य, प्रबल नायक को चाहने वाली ( स्त्रियं ) प्रबल संघात वाली स्वसेना को ( दिवः दुहितरं ) कामना को पूर्ण करने वाली स्त्री के समान ही प्रिय जानकर पति के तुल्य ( वधीः ) तू प्राप्त कर । हन हिंसागत्योः । अत्र श्लेषमुखेना--र्थद्वयमप्युपयुज्यते ॥

दिवश्चिद् घा दुहितरं महान्महीयमानाम् ।
उषासमिन्द्र सं पिणक् ॥ ९ ॥

भा०—( दिवः दुहितरं चित् उषासं सं पिणक् ) जिस प्रकार सूर्य महान् प्रकाश से उत्पन्न, प्रकाश को दोहन करने या देने वाली उषा को अच्छी प्रकार छितरा वितरा देता, धूली के समान आकाश भर में फैला देता और प्रकट कर देता है उसी प्रकार हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन्तः ! तू ( दिवः ) विजय की कामना करने वाले राजा की ( दुहितरं ) समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली ( महीयमानाम् ) अति विशाल, पूज्य ( उषासम् ) शत्रु को भस्म करने वाली कान्तिमती, तेजस्विनी पर-सेना को ( सं पिणक् ) अच्छी प्रकार पीस कर चूर्ण कर, नष्ट कर और स्व-सेना को ( सं पिणक् ) अच्छी प्रकार खण्ड २ करके दूर

तक फैला, प्रकाशित करे। राजा प्रेमपूर्वक स्वसेना को नियन्त्रित कर युद्धादि कार्यों में उससे खूब काम ले अथवा ( सं पिणक् = संपृणक् वर्णव्यत्ययः ) अच्छी प्रकार उससे संपर्क बनाये रहे।

अपोषा अनसः सरत्सम्पिष्टादह बिभ्युषी।
नि यत्सीं शिश्नथद्वृषा ॥ १० ॥ २० ॥

भा०—जब ( वृषा ) सुखों का वर्षक, बलवान् सूर्य ( सीम् ) सब प्रकार से, सब ओर से ( शिश्नथत् ) व्याप लेता है, प्रकाश की किरणें फेंकता है, तब जिस प्रकार ( संपिष्टात् अनसः बिभ्युषी अप सरत् ) टूटते फूटते रथ से भयभीत वधू निकल भागे उसी प्रकार वह उषा भी ( संपिष्टात् ) खूब सञ्चूर्णित और सर्वतो व्याप्त ( अनसः ) जीवनप्रद सूर्य रूप रथ से ही ( अप सरत् ) निकल भागती है। उसी प्रकार ( वृषा ) शत्रुओं पर अनवरत वाणों, शस्त्रास्त्रों की वर्षा वाला और सेना और राष्ट्र का उत्तम प्रबन्ध करने हारा बलवान् राजा ( यत् ) जब ( सीम् ) सब ओर से ( शिश्नथत् ) पर सेना को निष्पीड़ित करके शिथिल, लाचार कर देता है तो वह ( उषा ) दाहकारिणी सेना ( सम्पिष्टात् अनसः) अच्छी प्रकार चूर्णित शकट रथादि व्यूह से ( बिभ्युषी ) भय करती हुई ( अप सरत् ) भाग जाती है। ( २ ) अध्यात्म में—उषा चिति शक्ति, वृषा प्रभु, धर्ममेघ, 'अनः' देह। इति विंशो वर्गः ॥

एतदस्या अनः शये सुसम्पिष्टं विपाश्या।
ससार सीं परावतः ॥ ११ ॥

भा०—( अस्याः ) इस सन्मुख खड़ी शत्रु सेना का ( अनः ) शकट रथादि समूह वा शकट के तुल्य सुदृढ़ व्यूह ( विपाश्या ) विविध रूप से पाटने वाली अपनी सेना से ( सुसंपिष्टं शये ) खूब चूर्णित, छिन्न भिन्न होकर, निश्चेष्ट होकर पड़ जाय, तब वह ( परावतः ) दूर २ देशों को ( ससार ) भाग जाय। ( २ ) अध्यात्म में 'विपाशी' मुक्ति।

उत सिन्धुं विबाल्यं वितस्थानामधि क्षमि ।
परि ष्ठा इन्द्र मायया ॥ १२ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! तू ( मायया ) अपने बुद्धि बल से ( अधि क्षमि ) पृथ्वी पर ( वितस्थानाम् ) विविध प्रकारों से स्थिति प्राप्त करने वाली प्रजा को ( विबाल्यं ) विविध बल कार्य करने में समर्थ ( सिन्धुं ) वेग से युक्त महानद के तुल्य सैन्य समुद्र के (अधि परि स्थाः) ऊपर अध्यक्ष रूप से स्थित हो । और विविध देशों में जाने वाली नदी और बल से जाने वाले नदों पर भी वश कर ।

उत शुष्णस्य धृष्णुया प्र मृक्षो अभि वेदनम् ।
पुरो यदस्य संपिणक् ॥ १३ ॥

भा०—हे राजन् ! ( यत् ) जो तू ( अस्य ) इस शत्रु के ( पुरः ) नगरों को ( संपिणक् ) नष्ट करे ( उत ) और ( शुष्णस्य ) शत्रु के शोषक बल का ( धृष्णुया ) धर्षक होकर ( वेदनम् ) धन को भी ( अभि प्रमृक्षः ) बलात् विजय कर ।

उत दासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि ।
अवाहन्निन्द्र शम्बरम् ॥ १४ ॥

भा०—सूर्य, वायु या विद्युत् जिस प्रकार ( बृहतः पर्वतात् दासं कौलितरं शम्बरं अधि अवाहन् ) बड़े भारी मेघ या पर्वत से जलप्रद मेघ या जल को विताड़ित करता है उसी प्रकार हे ( इन्द्र ) शत्रु के हनन करने वाले ! तू ( उत ) भी ( बृहतः पर्वतात् अधि ) बड़े भारी पालक पुरुषों के पोरु २ से बने दण्डबल वा सैन्य के भी ऊपर विद्यमान अध्यक्ष, ( दासं ) दानशील और अपने प्रजा वा सैन्य को नाश करने वाले ( कौलितरम् ) कुल अर्थात् नाना जन समूह गृह परिवारों में श्रेष्ठ (शम्ब-

रम् ) शान्ति के नाशक उपद्रवी शत्रु को ( अव अहन् ) नीचे गिरा कर मार, पदच्युति का दण्ड दे।

उत दासस्य वर्चिनः सहस्राणि शतावधीः।
अधि पञ्च प्रधीरिव ॥ १५ ॥ २१ ॥

भा०—( उत ) और ( वर्चिनः ) अन्न, धन, सम्पदावान् ( दासस्य ) प्रजा के नाशकारी शत्रु के ( सहस्राणि ) हज़ारों और ( शता ) सैकड़ों सैन्यों को भी ( अवधीः ) विनाश कर और ( दासस्य ) दानशील, सेवकतुल्य और ( वर्चिनः ) धनधान्य से समृद्ध प्रजाजन वा राष्ट्र की ( सहस्राणि शता पञ्च ) हज़ारों और सैकड़ों पांचों प्रकार के जनों को ( प्रधीः इव ) नाभि के चारों अलग परिधियों के समान रक्षकों के तुल्य ( अधि अवधीः ) अध्यक्ष होकर प्राप्त हो, उनका पालन कर। अध्यात्म में 'पञ्चप्रधी' पांच इन्द्रियें हैं। राष्ट्र में पञ्चजन। इत्येकविंशो वर्गः ॥

उत त्यं पुत्रमग्रुवः परावृक्तं शतक्रतुः।
उक्थेष्विन्द्र आभजत् ॥ १६ ॥

भा०—( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् पुरुष ( उक्थेषु ) प्रशंसनीय कार्यों में ( उत ) भी ( त्यं ) उस ( अग्रुवः पुत्रम् इव ) अग्रगण्य, विवाहित पत्नी के पुत्र के तुल्य उत्तम जानकर ( अग्रुवः ) अग्रगामिनी सेना के ( पुत्रम् ) दुःखों से बहुतों को त्राण करने वाले, ( परावृक्तं ) स्वयं व्यसनों से रहित पुरुष को ( आभजत् ) प्राप्त करे।

उत त्या तुर्वशायदू अस्नातारा शचीपतिः।
इन्द्रो विद्वाँ अपारयत् ॥ १७ ॥

भा०—( शचीपतिः ) सेना और व्यवस्थापक वाणी का पालक ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् ( विद्वान् ) ज्ञानवान् वा राज्यश्री को लाभ करने वाला पुरुष ( तुर्वश-यदू ) धर्म, अर्थ, काम मोक्ष चतुर्वर्गों की कामना करने वाले यत्नशील प्रजास्थ स्त्री पुरुष दोनों वर्गों को जो ( अस्नातारौ ) स्नात,

अभिषिक्त या कृतकृत्य न हुए हों अथवा ( तुर्वश-यदू ) शत्रुओं को मारने वाले क्षत्रिय और उद्यमशील व्यवसायी क्षत्रिय और वैश्य दोनों, जो पदाभिषिक्त न हुए हों उन दोनों को ( अपारयत् ) पालन करे और संकट से पार करके कृतकृत्य करे। वेद वाणी का विद्वान् पुरुष आचार्य ( तुर्वशा-यदू ) शीघ्र इन्द्रियों के वशकारी जितेन्द्रिय और विद्याभ्यास में यत्नवान् दोनों प्रकार के विद्यार्थी जनों को जो विद्याव्रत स्नातक न हुए उनको ( अपारयत् ) विद्या और व्रत के पार करे।

उत त्या सद्य आर्या सरयोरिन्द्र पारतः।
अर्णाचित्ररथावधीः ॥ १८ ॥

भा०—( उत ) और हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! ( अर्णा-चित्ररथा ) जल में चित्र विचित्र आश्चर्यजनक रथ चलाने वाले ( आर्या ) श्रेष्ठ आचार वाले ( त्या ) उन दोनों मित्र और शत्रु जनों को भी ( सरयोः पारतः ) प्रशस्त वेग से जाने वाले सैन्यबल के पालक व पूर्ण सामर्थ्य से ( अवधीः ) विनाश कर और ( २ ) हे विद्वन्! ( आर्या ) उत्तम सु-स्वभाव ( अर्णा-चित्ररथा ) जल सागर के तुल्य विज्ञान में चित्र विचित्र रूप से रमण करने वा वेग से जाने वाले दोनों प्रकार के विद्यार्थी जनों को ( सद्यः ) शीघ्र ही ( सरयेः ) उत्तम ज्ञान से युक्त वेद ज्ञान के ( पारतः ) पार ( अवधीः ) पहुंचा।

अनु द्वा जहिता नयोऽन्धं श्रोणं च वृत्रहन्।
न तत्ते सुम्नमष्टवे ॥ १९ ॥

भा०—हे ( वृत्रहन् ) आवरणकारी अज्ञान और विघ्न को नाश करने हारे और शत्रुनाशक राजन्! यदि तू ( अन्धं ) लोचनहीन, अज्ञानी, प्रजा के दुःखों के न देखने वाले, प्रजा के सुख दुःखों की उपेक्षा करने वाले, असमीक्ष्यकारी और ( श्रोणं च ) बहरे, प्रजा की पीड़ायुक्त चींख पुकारों को न सुनने वाले ( द्वा ) दोनों प्रकार के ( जहिता ) प्रजा

को त्यागने वाले दुष्ट राजा और प्रजा दोनों वर्गों को (अनुनयः) अपने अनुकूल करके सन्मार्ग पर चलावे तो (ते) तेरे (तत्) अपूर्व (सुम्नम्) सुखयुक्त राष्ट्र और यश को (न अष्टवे) कोई भी प्राप्त न कर सके अथवा—हे पुरुष ! यदि अन्धों और बहरों को, जिनको बन्धुओं ने छोड़ दिया है, सन्मार्ग दिखावे तो यह पुण्य कार्य तेरा अन्यों के द्वारा भोगने को न हो, वह तुझे अद्वितीय पुण्य हो।

शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत् ।
दिवोदासाय दाशुषे ॥ २० ॥ २२ ॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य जिस प्रकार (दिवोदासाय) प्रकाश के इच्छुक प्रजा के लिये (अश्मन्मयीनां पुराम् शतं वि आस्यत्) मेघों से बनी जलधाराओं को नीचे गिरा देता है, उसी प्रकार (दाशुषे) करादि देने वाले (दिवः दासाय) भूमि का सेवन करने वाले प्रजा के उपकार के लिये (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (अश्मन्मयीनां) पत्थरों की बनी, दृढ़ (पुरां) शत्रु नगरियों को (वि आस्यत्) विविध प्रकार से तोड़ फोड़ दे। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

अस्वापयद्दभीतये सहस्रा त्रिंशतं हथैः ।
दासानामिन्द्रो मायया ॥ २१ ॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रु हनन करने वाला राजा, (मायया) अपनी शक्ति और बल से (दासानां) प्रजा के नाश करने वाले शत्रुओं के (त्रिशतं सहस्रा) तीन सौ हजार [३००,०००] सैन्यों को (दभीतये) विनाश करने के लिये (हथैः) दूर तक व्यापने वा हनन करने वाले अस्त्रों, शस्त्रों और अन्यान्य साधनों से (अस्वापयत्) सुला दे, पृथ्वी पर गिरा दे।

स घेदुतासि वृत्रहन्त्समान इन्द्र गोपतिः ।
यस्ता विश्वानि चिच्युषे ॥ २२ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) शत्रुओं के नाश करने हारे (इन्द्र)

ऐश्वर्यकारक ! राजन् ! ( यः ) जो तू ( ता ) उन ( विश्वानि ) सब शत्रु-सैन्यों को ( चिच्युषे ) रणस्थान से विचलित करता और स्वसैन्यों को सञ्चालित करता है, ( सः उ उत ) वह तू निश्चय से ( समानः ) सूर्य-वत् तेजस्वी, माननीय, निष्पक्षपात ( गोपतिः ) भूमि का स्वामी (असि) है। ( २ ) इन्द्र गोपति वेदवाणी का स्वामी विद्वान् समस्त अज्ञानों को दूर करता है।

उत नूनं यदिन्द्रियं करिष्या इन्द्र पौंस्यम्।
अद्या नकिष्टदा मिनत्॥ २३॥

भा०—( उत ) और हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! ( यत् ) जो तू (पौंस्यम्) सब मनुष्यों के बीच, उनके हितकर, पुरुषोचित (इन्द्रियं) बल, सामर्थ्य और ऐश्वर्य ( करिष्याः ) करता है ( नूनं ) निश्चय से ( तत् उसको ( अद्य ) वर्त्तमान में भी ( नकिः आमिनत् ) कोई नाश नहीं कर सकता।

वामंवामं त आदुरे देवो ददात्वर्यमा।
वामं पूषा वामं भगो वामं देवः करूळती॥२४॥२३॥

भा०—हे ( आदुरे ) सब ओर शत्रुओं के नाश करने वाले ! अथवा हे आदर करने योग्य राजन् ! ( अर्यमा ) शत्रुओं का नियन्ता, और सर्वस्वामिवत् मान पाने योग्य न्यायकारी शासक, ( देवः ) ज्ञान और सत्य न्याय का देने वाला पुरुष ( ते ) तुझे ( वामं-वामं ददातु ) सब उत्तम २ ऐश्वर्य प्रदान करे। ( पूषा देवः ) सर्वपोषक प्रजाजन, वा कर संग्राहक अध्यक्ष वा पृथ्वी का प्रबन्धक भी ( ते वामं ददातु ) तुझे उत्तम ऐश्वर्य दे और ( भगः ) ऐश्वर्य का स्वामी सुख, कल्याण का कर्त्ता अध्यक्ष भी तुझे ( वामं ददातु ) कमनीय, सेवन योग्य ऐश्वर्य प्रदान करे। और वे तीनों अध्यक्षजन ( करूळती ) कटे दांतों वाले हों अर्थात् राजा के कर आदि ऐश्वर्य में से स्वयं काट कर खाने वाले न हों। न्यायाधीश,

कराध्यक्ष और कोषाध्यक्ष तीनों ही ऐसे हों जो अर्थदण्ड, कर और कोष के द्रव्य को न खा सकें। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

## [ ३१ ]

वामदेव ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ७, ८, ९, १०, १४ गायत्री। २, ६, १२, १३, १५ निचृद्गायत्री। ३ त्रिपाद्गायत्री। ४, ५ विराड्गायत्री। ११ पिपीलिकामध्या गायत्री॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा।
कया शचिष्ठया वृता॥ १॥

भा०—हे प्रभो! राजन्! तू (कया ऊती) किस रक्षा, ज्ञान और तृप्तिकारक साधन से और (कया) किस (शचिष्ठया) सब से उत्तम शक्ति, वाणी और बुद्धि से और (कया वृता) किस व्यवहार से (नः) हमारे लिये (चित्रः) अद्भुत गुण, कर्म स्वभाव वाला, आदर सत्कार, पूजा योग्य, (सदावृधः) सदा स्वयं बढ़ने और अन्यों को बढ़ाने हारा और (सखा) सब का मित्र (आभुवत्) रूप से विद्यमान हो। उत्तर—(कया) सुखप्रद रक्षा, वाणी और व्यवहार से।

कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः।
दृळ्हा चिदारुजे वसु॥ २॥

भा०—हे राजन्! हे प्रभो! (कः) वह कौन है जो (सत्यः) सज्जनों का हितैषी, उन सब से उत्तम (मदानां) आनन्दकारक पदार्थों और (अन्धसः) अन्नादि का (मंहिष्ठः) अत्यन्त दानशील होकर (त्वा मत्सत्) मुझे आनन्द उल्लास से युक्त करता है। और (दृढा) शत्रु के दृढ़ दुर्गों और (वसु) नाना धनों को (आरुजे) तोड़ने और प्राप्त करने के लिये (चित्) भी उत्साहित करता है। उत्तर—(सत्यः) सत्य न्याय।

अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् ।
शतं भवास्यूतिभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रभो ! तू ( ऊतिभिः ) रक्षाओं और ज्ञानों से और तृप्तिकारक, सुखजनक क्रियाओं से ( सखीनाम् ) मित्र और ( जरितृणाम् ) स्तुति करने वाले ( नः ) हम लोगों का तू ( शतं ) सैकड़ों प्रकारों से और सौ बरस तक (अविता) रक्षक (अभि भवासि) बना रह ।

अभी न आ ववृत्स्व चक्रं न वृत्तमर्वतः ।
नियुद्भिश्चर्षणीनाम् ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार अश्व ( अर्वतः ) गतिशील रथ के ( वृत्तम् चक्रम् न अभि आवर्तयति ) दृढ़ चक्र को चलाने में समर्थ है उसी प्रकार हे राजन्! तू (चर्षणीनाम्) ज्ञान सत्य के देखने वाले विद्वानों और हलादि कर्षक प्रजाओं के और (नः वृत्तं चक्रम्) हमारे दृढ़ चक्र, राष्ट्र और राजचक्र को ( अभि आ ववृत्स्व ) अच्छी प्रकार संचालित कर ।

प्रवता हि क्रतूनामा हा पदेव गच्छसि ।
अभक्षि सूर्ये सचा ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—और ( हि ) निश्चय से हे राजन् ! हे प्रभो ! ( क्रतूनां ) यज्ञों, उत्तम बुद्धि और कर्मों के ( प्रवता ) निम्न, विनययुक्त वा उत्तम मार्ग से (पदा-इव) पैरों के सदृश ज्ञान द्वारा (आ गच्छसि) प्राप्त हो और ( सूर्ये ) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के अधीन ( सचा ) सदा साथ रहकर मैं (अभक्षि) सदा भोग करूं वा तेरा भजन करूं। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

सं यत्त इन्द्र मन्यवः सं चक्राणि दधन्विरे ।
अध त्वे अध सूर्ये ॥ ६ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! ( यत् ) जो ( ते ) तेरे (मन्यवः) मननशील पुरुष ( सं दधन्विरे ) एक साथ मिल कर धारण करते

हैं और ( यत् ) जो भी वे ( चक्राणि ) करने योग्य कर्मों को ( सं दधन्विरे ) एक साथ अपने ऊपर उठाते हैं वे (अध त्वे) भी तेरे ही आश्रय-तेरे ही अधीन रहकर करते हैं, ( अध सूर्ये ) और जिस प्रकार सूर्य में किरणें स्थित होकर वे ताप और प्रकाश धारते हैं उसी प्रकार वे सूर्य-सदृश पुरुष तेरे अधीन रहकर ज्ञान और कर्मों को धारण करें।

उत स्मा हि त्वामाहुरिन्मघवानं शचीपते।
दातारमविदीधयुम् ॥ ७ ॥

भा०—( उत ) और ( हि ) भी हे ( शचीपते ) प्रज्ञा कर्म शक्ति और सेना के पालक ! स्वामिन् ! राजन् ! विद्वन् ! आत्मन् ! ( त्वाम् ) तुझ को विद्वान् लोग ( दातारम् ) दानशील ( मघवानम् ) ऐश्वर्यवान् और ( अविदीधयुम् ) भूतादि में द्रव्यनाश न करने वाला ही ( आहुः ) बतलाते हैं। वैसा ही वे अन्यों को रहने का उपदेश करते हैं।

उत स्मा सद्य इत्परि शशमानाय सुन्वते।
पुरू चिन्मंहसे वसु ॥ ८ ॥

भा०— ( उत स्म ) और हे राजन् ! तू ( सद्यः इत् ) शीघ्र ही, (शशमानाय) अन्यों को उत्तम वचनों का अनुशासन या शिक्षा करने वाले, स्वयं प्रशंसित आचारवान्, विद्यावान् ( सुन्वते ) अन्यों को और स्वयं भी ज्ञान और धनैश्वर्य का सम्पादन करने कराने वाले को ( परि ) आदरपूर्वक ( पुरु वसु ) बहुत सा जीवनोपयोगी धन ( मंहसे ) प्रदान करता है, एवं तू किया कर।

नहि ष्मा ते शतं चन राधो वरन्त आमुरः।
न च्यौत्नानि करिष्यतः ॥ ९ ॥

भा०—हे राजन् ! ( आमुरः ) चारों ओर से आघात करने वाले और रोग पीड़ादिजनक लोग ( ते शतं चन राधः ) तेरे सैकड़ों ऐश्वर्यों को भी ( नहि वरन्त स्म ) कभी निवारण नहीं कर सकते वा नहीं प्राप्त कर

सकते, ( च्यौत्नानि ) नाना बल कार्यों को (करिष्यतः) करना चाहने वाले तेरे बलों को भी वे नहीं रोक सकते।

अस्माँ अवन्तु ते शतमस्मान्त्सहस्रमूतयः।
अस्मान्विश्वा अभिष्टयः॥ १० ॥ २५ ॥

भा०—हे राजन्! हे विद्वन्! ( ते शतं ऊतयः ) तेरे सैकड़ों शिक्षा और ज्ञान के कर्म ( अस्मान् अवन्तु ) हमारी रक्षा करें, हमें प्राप्त हों, हमें उज्ज्वल करें, और हमें आनन्द प्रसन्न करें। (ते सहस्रम् ऊतयः अस्मान् अवन्तु) तेरी सहस्रों रक्षाएं, विद्याएं, और चालें हमारी रक्षा करें, ज्ञान दें और (ते विश्वाः अभिष्टयः अस्मान् अवन्तु) तेरी समस्त उत्तम अभिलाषाएं और प्रेरणाएं और उत्तम मैत्री, सख्यादि हमें पालन करें। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

अस्माँ इहा वृणीष्व सख्याय स्वस्तये।
महो राये दिवित्मते॥ ११ ॥

भा०—हे राजन्! विद्वन्! तू ( इह ) इस संसार में ( अस्मान् ) हमको ( सख्याय ) मित्रता, ( स्वस्तये ) सुखपूर्वक कल्याण जीवन और ( महः दिवित्मते राये ) बड़े भारी न्याय, प्रकाश आदि से युक्त, समुज्ज्वल धन सम्पदादि की प्राप्ति और वृद्धि के लिये ( वृणीष्व ) मित्र, भृत्य और सहायक रूप से स्वीकार कर।

अस्माँ अविड्ढि विश्वहेन्द्र राया परीणसा।
अस्मान्विश्वाभिरूतिभिः॥ १२ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! ज्ञानवन्! तू ( अस्मान् ) हमें ( विश्वहा ) सदा, ( परीणसा राया ) बहुत सी धन-सम्पदा से (अविड्ढि) युक्त कर और ( विश्वाभिः ऊतिभिः अस्मान् अविड्ढि ) सब प्रकार की रक्षाकारिणी सेनाओं सहित हम में प्रवेश कर, हम में बस।

अस्मभ्यं ताँ अपा वृधि व्रजाँ अस्तेव गोमतः।
नवाभिरिन्द्रोतिभिः॥ १३ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! हे विद्वन्! तू ( नवाभिः ऊतिभिः ) नये २ रक्षा साधनों और नई २ आविष्कृत विद्याओं से ( अस्मभ्यं ) हमारे उपकार के लिये ( तान् ) उन ( गोमतः ) गौओं के ( व्रजान् ) वाड़ों के तुल्य रश्मियों, ज्ञान-वाणियों और भूमियों के समूहों को (अस्ता इव ) गृहों के समान ( अप वृधि ) खोल दे, प्रकट कर।

अस्माकं धृष्णुया रथो द्युमाँ इन्द्रानपच्युतः।
गव्युरश्वयुरीयते ॥ १४ ॥

भा०—हे राजन्! विद्वन्! ( अस्माकं ) हमारा ( धृष्णुया ) शत्रुओं को पराजय करने वाला, दृढ़, ( द्युमान् ) दीप्ति युक्त (अनपच्युतः) नाश से रहित ( गव्युः ) उत्तम गमन साधनों और ( अश्वयुः ) उत्तम शीघ्रगामी, अश्वादि, यन्त्रकलादि से युक्त ( रथः ) रथ और काम क्रोध को जीतने वाला, तेजोयुक्त अविनाशी, धर्म मार्ग में दृढ़, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रियों का स्वामी ( रथः ) रसस्वरूप, वा देह से देहान्तर जाने वाला आत्मा ( ईयते ) अच्छी प्रकार से गमन करे, जाना जावे।

अस्माकमुत्तमं कृधि श्रवो देवेषु सूर्य।
वर्षिष्ठं द्यामिवोपरि ॥ १५ ॥ २६ ॥

भा०—हे ( सूर्य ) सूर्य के समान तेजस्विन्! सूर्य जिस प्रकार ( वर्षिष्ठं द्याम् उपरि करोति ) प्रचुर जल वर्षाने वाला प्रकाश सर्वोपरि रहकर करता है उसी प्रकार तू भी ( अस्माकं ) हमारा ( उत्तमं श्रवः ) उत्तम ज्ञान, यश, ऐश्वर्य और ( देवेषु ) विद्वानों और धनाभिलाषियों के बीच में ( वर्षिष्ठं द्याम् ) सर्वोत्तम कामना ( कृधि ) पूर्ण कर। इति षड्विंशो वर्गः ॥

[ ३२ ]

वामदेव ऋषिः ॥ १—२२ इन्द्रः। २३, २४ इन्द्राश्वौ देवते ॥ १, ८, ९, १०, १४, १६, १८; २२, २३ गायत्री। २, ४, ७ विराड्गायत्री। ३, ५,

६, १२, १३, १५, १६, २०, २१ निचृद्गायत्री। ११ पिपीलिकामध्या गायत्री। १७ पादनिचृद्गायत्री। २४ स्वराडार्ची गायत्री॥ चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम्॥

आ तू न॑ इन्द्र वृत्रहन्नस्माक॑मर्धमा ग॑हि।
महान्महीभि॑रूतिभि॑ः॥ १॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे विद्वन्! हे (वृत्रहन्) शत्रुओं, विघ्नों और अज्ञान के नाश करने हारे! तू (नः) हमें (तु) शीघ्र ही प्राप्त हो और (महीभिः ऊतिभिः महान्) बड़ी रक्षा कारिणी शक्तियों से महान् तू (अस्माकम् अर्धम्) हमारे समीप, हमारे समृद्ध राष्ट्र को (आगहि) प्राप्त हो।

भृमि॑श्चिद् घासि तूतु॑जिरा चि॑त्र चि॒त्रिणी॒ष्वा।
चि॒त्रं कृ॑णोष्यू॒तये॑॥ २॥

भा०—हे (चित्र) पूजनीय! हे अद्भुत गुण-कर्म-स्वभाव! तू (भृमिः) भ्रमणशील (चित्) होकर भी (चित्रिणीषु) आश्चर्यजनक कार्य करने वाली वा चित्र विचित्र, विविध सेनाओं और प्रजाओं में (तूतुजिः) सबका पालक होकर (ऊतये) रक्षा, गमन, कान्ति, स्वामित्व, धन प्राप्ति, दान, प्रजा वृद्धि आदि कार्यों के लिये (चित्रं) विविध प्रकार का धन ज्ञान और बल (दधासि) धारण कर और (चित्रं कृणोषि) अद्भुत कार्य भी कर।

द॒भ्रेभि॑श्चि॒च्छशी॑यांसं॒ हं॑सि॒ व्राध॑न्त॒मोज॑सा।
सखि॑भि॒र्ये त्वे सचा॑॥ ३॥

भा०—हे राजन्! (दभ्रेभिः) अल्प संख्य वा अल्प बल वाले (सखिभिः) मित्रों से मिलकर (ओजसा) पराक्रम से (शशीयांसं) धर्म मर्यादा और तेरी भूमि सीमा को लांघकर जाने वाले (व्राधन्तं) प्रजा के नाश करने वाले दुष्ट पुरुष को तू (दभ्रेभिः) हिंसा करने में

कुशल उन ( सखिभिः ) मित्रों सहित ( ये त्वा सचा ) जो तेरे अधीन तेरे सदा साथ रहते हैं ( ओजसा ) अपने बल पराक्रम से ( हंसि ) दण्डित कर। 'दस्त्रेभिः सखिभिः ओजसा' इत्यादि पद दीपक न्याय से उभयत्र लग सकते हैं। अर्थात् दल बल सहित शत्रु के साथ जुटकर परास्त कर।

वयमिन्द्र त्वे सचा वयं त्वाभि नोनुमः।
अस्माँ अस्माँ इदुदव॥ ४॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! हे शत्रुहन्तः! ( वयम् ) हम लोग ( त्वे सचा ) तेरे अधीन समवाय बनाकर रहें। ( वयं ) हम ( त्वा अभि नोनुमः) तुझे आदर नमस्कार करें। तू (अस्मान् अस्मान् इत् ) हम सब को बार २ ( उत् अव ) उत्तम रीति से रक्षा कर और उन्नत पद पर पहुंचा। हमें उत्कण्ठित होकर चाहा कर।

स नश्चित्राभिरद्रिवोऽनवद्याभिरूतिभिः।
अनाधृष्टाभिरा गहि॥ ५॥ २७॥

भा०—हे ( अद्रिवः ) पर्वतों के तुल्य दानशील और दृढ़ पुरुषों के स्वामिन्! तू ( सः नः ) वह ( चित्राभिः ) अद्भुत, विविध, ( अनवद्याभिः ) अनिन्दित, ( अनाधृष्टाभिः ) शत्रुओं से पराजित न होने और धर्षण वा अपमानित न होने योग्य ( ऊतिभिः ) रक्षाकारिणी सेनाओं, कामनायोग्य विभूतियों और तृप्तिकारक सुखसम्पदाओं और समृद्धिकारक प्रिय प्रजाओं सहित ( नः ) हमें (आ गहि) प्राप्त हो। इति सप्तविंशो वर्गः॥

भूयामो षु त्वावतः सखाय इन्द्र गोमतः।
युजा वाजाय घृष्वये॥ ६॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! ( त्वावतः ) तेरे सदृश ( गोमतः ) भूमि, वाणी और इन्द्रियों से सम्पन्न, तेजस्वी सूर्यवत् प्रकाशमान् पुरुष

के हम लोग ( घृष्वये वाजाय ) प्रतिपक्षियों से संघर्ष करने और बल, ऐश्वर्य, ज्ञान और संग्राम विजय के लिये ( युजः सु भूयामो ) सदा अच्छे सहायक, सहयोगी होवें।

त्वं ह्येक ईशिष इन्द्र वाजस्य गोमतः।
स नो यन्धि महीमिषम् ॥ ७ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! विद्वन्! आत्मन्! ( त्वं हि ) तू ही निश्चय से ( एकः ) अकेला, अद्वितीय ( गोमतः वाजस्य ) पृथिवी, वाणी इन्द्रियादि पशु सम्पदा से युक्त ( वाजस्य ) ऐश्वर्य, ज्ञान, बल, अन्न आदि का ( ईशिषे ) स्वामी है। (सः) वह तू (नः) हमें ( महीम् इषम् ) बड़ी भारी अन्न आदि सम्पदा ( यन्धि ) प्रदान कर और ( नः इषम् यंधि ) हमारी सेना को संयत कर।

न त्वा वरन्ते अन्यथा यद्दित्ससि स्तुतो मघम्।
स्तोतृभ्य इन्द्र गिर्वणः ॥ ८ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! हे ( गिर्वणः ) उत्तम वाणियों द्वारा सेवनीय, स्तुत्य, प्रार्थनीय राजन्! प्रभो! विद्वन्! ( यत् ) क्योंकि तू ( स्तुतः ) प्रशंसित होकर ही ( स्तोतृभ्यः ) स्तुति करने वाले विद्वानों को ( मघम् ) ऐश्वर्य ( दित्ससि ) प्रदान करता है, इसलिये लोग (त्वा) तुझे ( अन्यथा ) और किसी प्रयोजन से ( न वरन्ते ) नहीं वरण करते, वे दान ग्रहणार्थ ही याचना करते हैं।

अभि त्वा गोतमा गिरानूषत प्र दावने।
इन्द्र वाजाय घृष्वये ॥ ९ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यप्रद! राजन्! विद्वन्! (घृष्वये वाजाय) अति घर्षण को प्राप्त, वादविवादादि से परिष्कृत, ( वाजाय ) वेग, बल, विद्युतादि शक्ति, प्रदीप्त धन और शुद्ध ज्ञान और अन्न के प्राप्त करने के

लिये ( गोतमाः ) उत्तम भूमि के स्वामी, वाणी के ज्ञाता और विद्वान् पुरुष एवं बैलों वाले कृषक जन ( दावने ) दान प्राप्त करने के लिये ( गिरा ) वाणी से ( त्वा अभि ) तुझे लक्ष्य करके ( प्र अनूषत ) खूब स्तुति करते हैं ।

प्र ते वोचाम वीर्या३ या मन्दसान आरुजः ।
पुरो दासीरभीत्य ॥ १० ॥ २८ ॥

भा०—हे राजन् ! सेनापते ! ( याः ) जिन ( दासीः ) राष्ट्र के नाशकारी शत्रु की ( पुरः ) नगरियों को ( अभीत्य ) आक्रमण करके ( मन्दसानः ) अति प्रसन्नता पूर्वक ( आ अरुजः ) सब तरफ़ों से तोड़ दे हम विद्वान् जन ( ते ) तेरे उन ( वीर्या ) बल पराक्रम के कार्यों को ( प्र वोचाम ) अच्छी प्रकार वर्णन करें, तुझे उनका उपदेश, प्रवचन करें । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

ता ते गृणन्ति वेधसो यानि चकर्थ पौंस्या ।
सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ ११ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! हे ( गिर्वणः ) वाणी द्वारा प्रार्थना करने या सेवने, सत्कार करने योग्य राजन् ! विद्वन् ! ( सुतेषु ) पुत्रों के तुल्य, ऐश्वर्ययुक्त, अभिषेक द्वारा प्राप्त राष्ट्रों में ( यानि पौंस्या ) जिन पौरुष युक्त कर्मों को तू ( चकर्थ ) करे ( वेधसः ) विद्वान् लोग ( ता ) उन २ तेरे नाना कर्मों का ( ते गृणन्ति ) तुझे उपदेश करें ।

अवीवृधन्त गोतमा इन्द्र त्वे स्तोमवाहसः ।
ऐषु धा वीरवद्यशः ॥ १२ ॥

भा०—जिस प्रकार ( गोतमाः सूर्ये मेघे वा स्तोमवाहसः अवीवृधन्त सः एषु यशः आदधाति) उत्तम गौ, बैल आदिवाले किसान सूर्य या मेघ के निमित्त वा आश्रय रहकर स्तुति करते और प्रचुर अन्न पाते हैं और वह उनमें उत्तम अन्न देता है उसी प्रकार हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! (स्तोम-वाहसः ) स्तुतियों, उत्तम प्रजा समूहों, बलवीर्यों को धारण करने वाले

विद्वान् ( गोतमाः ) भूमि, वाणी के स्वामी जन ( त्वे ) तेरे आश्रित रह कर ( अवीवृधन्त ) बढ़ें और तू ( एषु ) उनमें ( वीरवत् यशः ) वीर पुरुषों से युक्त यश, अन्न ( आ धाः ) धारण करा।

यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्र साधारणस्त्वम्।
तं त्वा वयं हवामहे ॥ १३ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! राजन्! प्रभो! ( यः ) जो (त्वं) तू ( शश्वतां चित् ) अनादि सनातन से चले आये सत् तत्वों में परमेश्वर के तुल्य पहले से चली आई बहुत सी प्रजाओं के बीच ( साधारणः असि ) सबको समान रूप से निष्पक्षपात होकर धारण करने हारा है (तं त्वा ) उस तुझको ( वयं ) हम ( हवामहे ) पुकारते स्तुति करते और राजा रूप से स्वीकार करते हैं।

अर्वाचीनो वसो भवास्मे सु मत्स्वान्धसः।
सोमानामिन्द्र सोमपाः ॥ १४ ॥

भा०—हे ( वसो ) राष्ट्र में समस्त प्रजागण को बसाने हारे राजन्! हे शिष्यों को अपने अधीन बसाने वाले आचार्य! हे देह में वसने हारे आत्मन्! ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! हे द्रष्टः! तू ( सोमपाः ) अन्नादि ओषधि के तुल्य समस्त ऐश्वर्यों का पान, उपभोग करने हारा, सोमवत् प्रजाओं वा शिष्यों का पालक है। तू ( अर्वाचीनः ) हमें प्राप्त होकर ( अस्मे ) हमारे ( अन्धसः ) अन्न और ( सोमानाम् ) ऐश्वर्यों के उपभोग से (सु मत्स्व) अच्छी प्रकार आनन्द लाभ कर।

अस्माकं त्वा मतीनामा स्तोम इन्द्र यच्छतु।
अर्वागा वर्तया हरी ॥ १५ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! ( मतीनां ) मननशील, मतिमान् ( अस्माकं ) हम लोगों के वा हम में से मतिमान् पुरुषों का ( स्तोमः )

समूह वा उनका स्तुतियुक्त उत्तम वचन ( त्वा ) तुझे ( यच्छतु ) नियम में बांधे। तू ( हरी ) राष्ट्र स्त्री-पुरुष दोनों वर्गों को रथ में लगे अश्वों के तुल्य ( अर्वाग् आ वर्त्तय ) मर्यादा में चला।

पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः।
वधूयुरिव योषणाम् ॥ १६ ॥ २९ ॥

भा०—हे राजन्! तू (नः) हमारे (पुरोळाशं) आदर सत्कार पूर्वक दिये और उत्तम रीति से बनाये अन्न को (घसः) उपभोग कर। और (वधूयुः इव) वधू प्राप्त करने की कामना वाला पुरुष जिस प्रकार (योषणाम्) प्रेम युक्त स्त्री को प्रेम से स्वीकार करता है उसी प्रकार तू भी ( नः ) हमारी (गिरः च) वाणियों को भी (जोषयासे) स्वीकार कर। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः॥

सहस्रं व्यतीनां युक्तानामिन्द्रमीमहे।
शतं सोमस्य खार्यः ॥ १७ ॥

भा०—हम ( युक्तानां ) जुते हुए ( व्यतीनां ) विशेष वेग से जाने वाले अश्वों और नियुक्त वेतन पर रक्खी रक्षा करने वाली सेनाओं, भोगादि प्राप्त करने वाली प्रजाओं के बीच ( सहस्रं ) सर्व सहनशील, बलवान् ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्यवान् राजा या राज्य की हम ( ईमहे ) याचना करते हैं कि ( सोमस्य ) ओषधि अन्नादि के ( खार्यः शतं ) सैकड़ों मन हमें प्राप्त हों।

सहस्रा ते शता वयं गवामा च्यावयामसि।
अस्मत्रा राध एतु ते ॥ १८ ॥

भा०—हे राजन्! धनाधिपते! ( ते ) तेरी ( सहस्रा शता गवाम् ) हज़ारों, सैकड़ों गौओं, भूमियों और वाणियों को ( वयम् ) हम लोग ( आ च्यावयामसि ) प्राप्त करें। ( ते ) तेरा ( राधः ) ऐश्वर्य ( अस्मत्रा एतु ) हमें प्राप्त हो। हमारे ऊपर तेरा ऐश्वर्य निर्भर हो।

दश ते कुलशानां हिरण्यानामधीमहि ।
भूरिदा असि वृत्रहन् ॥ १९ ॥

भा०—हे ( वृत्रहन् ) विघ्नकारी, बढ़ते शत्रु, विघ्नों और अज्ञानों को नाश करने हारे ! राजन् एवं विद्वन् ! तू (भूरिदाः असि) बहुत देनेहारा है । ( ते ) तेरे ( हिरण्यानां ) हित और रमणीय, धनपूर्ण ( कलशानां दश ) दश कलशों के सदृश हितकारी मनोहर वेदवाणियों, दश मण्डलों को हम ( अधीमहि ) धारण करें, स्वाध्याय कर मनन और चिन्तन करें ।

भूरिदा भूरि देहि नो मा दभ्रं भूर्या भर ।
भूरि घेदिन्द्र दित्ससि ॥ २० ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! तू ( घ ) निश्चय से ( भूरि दित्ससि ) बहुतसा ऐश्वर्य हमें देना चाहा करता है । तू ( भूरिदाः ) बहुत धन ज्ञानादि का प्रदाता होकर ( नः ) हमें ( भूरि देहि ) बहुत दे, ( मा दभ्रं ) स्वल्प धन एवं पीड़ादायक धन मत दे । ( भूरि आ भर ) बहुत २ ऐश्वर्य, ज्ञान प्राप्त करा ।

भूरिदा ह्यसि श्रुतः पुरुत्रा शूर वृत्रहन् ।
आ नो भजस्व राधसि ॥ २१ ॥

भा०—हे ( शूर वृत्रहन् ) शूरवीर, विघ्नकारी दुष्टों के नाश करने हारे ! तू ( भूरिदा हि ) बहुत ऐश्वर्यादि देने हारा ( श्रुतः असि ) प्रसिद्ध है । तू ( नः ) हमें ( राधसि ) अपने धन में (आ भजस्व) स्वीकार कर, हमें भी उसमें भागी बना ।

प्र ते बभ्रू विचक्षण शंसामि गोषणो नपात् ।
माभ्यां गा अनु शिश्रथः ॥ २२ ॥

भा०—हे ( विचक्षण ) विशेष ज्ञान को देखने हारे ! हे (गो-सनः)

वेदवाणी और पृथिवी के दान करने हारे ! हे (नपात्) स्वयं न गिरने और अन्यों को न गिरने देने हारे ! ( ते ) तेरे ( बभ्रू ) सबको भरण पोषण करने वाले विद्वान् दया शील स्त्री पुरुषों की, माता पिताओं की और अश्व-वत् राष्ट्ररथ को लेजाने वालों की ( प्रशंसामि ) खूब प्रशंसा करता हूं तू ( आभ्याम् ) इन दोनों से शिक्षित होकर ( गाः ) वाणियों और राष्ट्र की भूमियों वा गौओं के तुल्य धनादि के देने वाली प्रजाओं के प्रति ( मा अनु शिश्नथः ) अपने को शिथिल मतकर। और प्रजाओं को भी शिथिल, उदासीन और स्नेहहीन मत होने दे।

कनीनकेव विद्रधे नवे द्रुपदे अर्भके।
बभ्रू यामेषु शोभते ॥ २३ ॥

भा०—( यामेषु ) गमन करने योग्य मार्गों में जिस प्रकार ( बभ्रू ) लाल रंग के दो घोड़े (अर्भके द्रुपदे विद्रधे शोभते) छोटे से दृढ़ खूंटे में बंधे शोभा पाते हैं उसी प्रकार ( यामेषु ) यम नियम के पालन के कार्यों में ( बभ्रू ) तेजस्वी स्त्री पुरुष वर्ग, शिष्य और आचार्य दोनों ( अर्भके ) छोटे ( विद्रधे ) दृढ़ ( नवे ) नये, अतिस्तुत्य ( द्रुपदे ) खूंटे के तुल्य स्थिर व्रत में ( शोभेते ) शोभा पाते हैं और वे दोनों ( कनीनका-इव ) आँखों की दो पुतलियों के समान परस्पर प्रेम अनुराग से युक्त भी हों ( २ ) इसी प्रकार ( यामेषु ) राष्ट्र संयमन आदि कार्यों में राजा प्रजा भी परस्पर मिली आँखों की पुतलियों के तुल्य इस नये, दृढ़, बालवत् पोषणीय, राज्य कार्य में एक दूसरे के पोषक हों। (३) गृह में स्त्री पुरुष अनुरक्त पुतलियों के सदृश एक छोटे से धर्म या बालक रूप खूंटे से बन्धे रहकर भी आठों पहरों ( बभ्रू ) एक दूसरे के पोषक और रक्त वर्ण, सुप्रसन्न चित्त बने रहकर शोभा देते हैं।

अरं म उस्रयाम्णेऽरमनुस्रयाम्णे।
बभ्रू यामेष्वस्रिधा ॥ २४ ॥ ३० ॥ ६ ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन्! आपके (बभ्रू) राष्ट्र का भरण पोषण करनेवाले शासक वर्गों की दोनों श्रेणियें सधे अश्वों के समान (यामेषु) गमन योग्य उत्तम मार्गों में (अस्त्रिधा) प्रजा के हिंसक न हों। और वे (उस्रयाम्णे) बैलों से जाने वाले या (अनुस्रयाम्णे) बिना बैलों से जाने वाले मुझ प्रजाजन का भी (अरम्) बहुत २ सुख देने वाले हो। उसी प्रकार किरणों से युक्त, उससे विरहित शीतोष्ण देश में भी वे (बभ्रू) मेरे पालने वाले हों। इति त्रिंशो वर्गः॥ इति तृतीयोऽनुवाकः। इति षष्ठोऽध्यायः समाप्तः॥
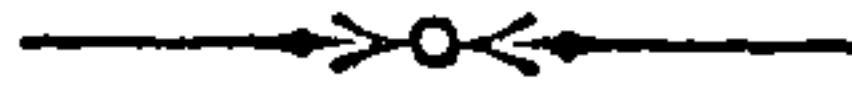
# अथ सप्तमोऽध्यायः

## [ ३३ ]

वामदेव ऋषिः॥ ऋभवो देवता॥ छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप्। २, ४, ५, ११ त्रिष्टुप्। ३, ६, १० निचृत्त्रिष्टुप्। ७, ८ भुरिक् पंक्तिः। ९ स्वराट् पंक्तिः॥

**प्र ऋभुभ्यो दूतमिव वाचमिष्य उपस्तिरे श्वैतरीं धेनुमीळे।**
**ये वातजूतास्तरणिभिरेवैः परि द्यां सद्यो अपसो बभूवुः॥१॥**

भा०—जिस प्रकार (अपसः) क्रियाशील गतिशील जलादि के परमाणु (तरणिभिः) गति देने वाले (एवैः) साधनों, सूर्य किरणादि से और (वातजूताः) वायु से प्रेरित होकर (द्यां परि बभूवुः) आकाश में चढ़ जाते हैं उसी प्रकार जो (अपसः) कर्म करने वाले मनुष्य (तरणिभिः) संकटों से पार उतारने वाले (एवैः) दूर तक या उद्देश्य तक पहुंचा देने वाले साधनों या सहायकों से युक्त होकर (वातजूताः) वायु के समान प्रबल शक्तिमान् और ज्ञानवान् पुरुषों द्वारा प्रेरित होकर (सद्यः) शीघ्र ही (द्यां परि बभूवुः) ज्ञान को प्राप्त होते हैं जो बलवान्

राजशक्ति से प्रेरित होकर (द्यां) भूमि को प्राप्त करते हैं मैं उन (ऋभुभ्यः) सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाले शिक्षित मनुष्यों के हितार्थ (दूतम् इव वाचम्) वाणी को दूत के समान (इष्ये) कहता हूं। और (उपस्तिरे) उसके अभिप्राय को सर्वत्र फैलाने के लिये (श्वैतरीं) अति शुद्ध ज्ञानमयी (धेनुम्) ज्ञान धारण करने वाली वाणी और बुद्धि को (ईडे) प्राप्त होऊं और उसको अन्यों के प्रति प्रस्तुत करूं।

यदारमक्रन्नृभवः पितृभ्यां परिविष्टी वेषणा दंसनाभिः ।
आदिद्देवानामुप सख्यमायन्धीरासः पुष्टिमवहन्मनायै ॥ २ ॥

भा०—(ऋभवः) सत्य ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित होने वाले विद्वान् जन (यदा) जब (पितृभ्याम्) माता और पिता से उनकी (परिविष्टी) परिचर्या और (वेषणा) विद्या प्राप्ति की साधना, और (दंसनाभिः) उत्तम कर्मों द्वारा (अरम्) बहुत अधिक (अक्रन्) परिश्रम करते हैं (आत् इत्) तभी वे (देवानाम्) विद्वान्, विद्या आदिदाता गुरु जनों के (सख्यम्) मित्रभाव को प्राप्त करते हैं और वे (धीरासः) बुद्धिमान्, ध्यान धारणा वाले होकर (मनायै) मनन करने योग्य विद्या की (पुष्टिम्) वृद्धि को (अवहन्) धारण करते हैं। (२) अध्यात्म में—'ऋभु' प्राण हैं।

पुनर्ये चक्रुः पितरा युवाना सना यूपेव जरणा शयाना ।
ते वाजो विभ्वाँ ऋभुरिन्द्रवन्तो मधुप्सरसो नोऽवन्तु यज्ञम् ॥३॥

भा०—(पुनः) और (ये) जो (यूपा इव) 'यूप' अर्थात् स्तम्भों के समान दृढ़ (युवानौ पितरौ) युवा माता पिता को (सना) उत्तम दानशील, (जरणा) जीर्ण, वृद्ध और (शयाना) मृत्युशय्या पर सोने वाला (चक्रुः) कर देते हैं अर्थात् जो माता पिता की वृद्धावस्था और मृत्यु पर्यन्त सेवा करते हैं (ते) वे (वाजः) बलवान्, ज्ञानवान्,

( विभ्वा ) बड़े भारी ज्ञान से वा व्यापक, शक्तिमान् परमेश्वर के अनुग्रह से युक्त, ( ऋभुः ) और ऋत, सत्य ज्ञान से प्रकाशित, अति तेजस्वी ये सभी ( इन्द्रवन्तः ) ऐश्वर्यवान्, ज्ञानवान्, गुरु आदि अज्ञान नाशक जनों वाले, ( मधु-प्सरसः ) मधुर, सौम्यमुख एवं मधु, ज्ञान और उत्तम अन्न जल का उपयोग करने वाले, सात्विक पुरुष ( नः यज्ञम् अवन्तु ) हमारे यज्ञ, मैत्रीभाव, सत्संगति, ज्ञान, धनादि के दानादान और गुरु जनों के पूजा सत्कार आदि कर्मों की ( अवन्तु ) रक्षा करें। (२) राष्ट्र में तीन प्रकार के मुख्य व्यक्ति हों (१) 'वाज' जो बलवान् हों, ( २ ) विभ्वा विशेष सामर्थ्य और ऐश्वर्यवान्, सत्तावान्, (३) 'ऋभु' सत्य न्यायवान् वे सब अपने अपने ऊपर इन्द्र राजा को धारण करें। मधु मक्खियों से संगृहीत मधु के तुल्य समस्त प्रजा से संगृहीत करके उसपर ही अपना उपयोग वेतनादि प्राप्त करें। वे राष्ट्र के राजा प्रजा व्यवहार, संगति आदि की रक्षा करें।

**यत्सं॒वत्स॑मृ॒भवो॒ गाम॑र॒क्षन्यत्सं॒वत्स॑मृ॒भवो॒ मा अपि॑शन् ।**
**यत्सं॒वत्स॒मभ॑र॒न्भासो॑ अ॒स्यास्ता॑भि॒ः शमी॑भिरमृत॒त्वमा॑शुः ॥४॥**

भा०—( यत् ) जिन कर्मों से ( ऋभवः ) सत्य ज्ञान से युक्त विद्वान् जन ( संवत्सम् गाम् ) बछड़े से संयुक्त गौ के समान कहने योग्य अभिप्राय, वाच्य अर्थ से युक्त वाणी की ( अरक्षन् ) रक्षा करते हैं और ( ऋभवः ) सत्यज्ञान के द्वारा अधिक सामर्थ्यवान् होने वाले विद्वान्जन ( यत् ) जिन उपायों से ( संवत्सम् ) वन्दन करने या कहने योग्य, तत्व के सहित वर्त्तमान् ( माः ) प्रजाओं, ज्ञानों को ( अपिंशन् ) प्रकट करते हैं और ( यत् ) जिन उपायों से ( अस्याः ) इस वेद वाणी की ( भासः ) नाना अर्थ प्रकाशक कान्तियों को ( संवत्सम् ) उत्तम प्रकार से कहने योग्य गुरु के अधीन रहकर प्राप्त करने योग्य तत्व ज्ञान सहित ( अभरन् ) धारण करते हैं ( ताभिः ) उन

( शमीभिः ) शान्तिदायक तप, वैराग्य, स्वाध्याय आदि कर्मों से विद्वान् लोग ( अमृतत्वम् ) अमृतस्वरूप मोक्ष को प्राप्त करते हैं। ( २ ) राष्ट्र में 'ऋत' सत्य न्याय के प्रकाशक जन (संवत्सम् ) राष्ट्र में बसे प्रजाजन सहित भूमि की रक्षा जिन उपायों से करें, उन सहित राष्ट्र-निर्माण करने वाली ज्ञान समितियों को बनावें, इस भूमि के तेजोयुक्त रत्नादि पदार्थों को उनके ज्ञाता सहित भरण करें, उन कर्मों द्वारा वे परम सुख प्राप्त करें और शत्रु रोगादि से मृत्यु को दूर कर दीर्घायु का भोग करें।

ज्येष्ठ आह चमसा द्वा करेति कनीयान्त्रीन्कृणवामेत्याह।
कनिष्ठ आह चतुरस्करेति त्वष्ट्र ऋभवस्तत्पनयद्वचो वः ॥५॥१॥

भा०—( ज्येष्ठः ) सबसे श्रेष्ठ पुरुष ( आह ) कहता है कि ( द्वा चमसा करः ) अर्थ और काम इन ही भोग करने योग्य दो पुरुषार्थों का सम्पादन करो ( इति ) बस, और ( कनीयान् ) उससे अधिक दीप्तिमान् पुरुष ( आह ) कहता है कि ( त्रीन् कृणवाम इति ) हम लोग धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थों का सम्पादन करें। ( कनिष्ठः आह ) सबसे अधिक दीप्तिमान् तेजस्वी पुरुष कहता है कि ( चतुरः करः इति ) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों को सम्पादन करो। ( त्वष्टा ) समस्त विश्व का बनाने वाला, अज्ञान का नाशक तेजस्वी गुरु हे ( ऋभवः ) सत्य ज्ञान और उत्तम ऐश्वर्य से खूब प्रकाशित, और सामर्थ्य युक्त पुरुषो! ( वः ) आप लोगों के ( तत् वचः ) उस वचन की ( पनयत् ) प्रशंसा करे। इति प्रथमो वर्गः ॥

धर्मार्थावुच्यते श्रेयः कामार्थौ धर्म एव च।
अर्थ एवेह वा श्रेयस्त्रिवर्ग इति तु स्थितिः। मनु० २। २२४ ॥

बुभूक्षून् प्रत्युपदेशो न मुमूक्षून्। मुमुक्षूणां तु मोक्ष एव श्रेयान् इति षष्ठे वक्ष्यते। इति कुल्लूकभट्टः।

सत्यमूचुर्नर एवा हि चक्रुरनु स्वधामृभवो जग्मुरेताम्।
विभ्राजमानाँश्चमसाँ अहेवावेनत्त्वष्टा चतुरो ददृश्वान् ॥ ६ ॥

भा०—( नरः ) मनुष्य ( सत्यम् ऊचुः ) सत्य बोलें ( एव हि ) उसी प्रकार वे ( सत्यम् अनु चक्रुः ) सत्य ज्ञान के अनुसार ही कर्म करें। ( ऋभवः स्वधाम् ) अति प्रकाशमान सूर्य के किरण जिस प्रकार जल को ग्रहण करते हैं उसी प्रकार ( ऋभवः ) 'ऋत' अर्थात् सत्य ज्ञान, तेज और ऐश्वर्य से प्रकाशित होने वाले विद्वान् जन ( एताम् स्वधाम् ) इस सत्यमयी 'स्वधा' आत्मा की धारण पोषण शक्ति को ( जग्मुः ) प्राप्त हों। ( ददृश्वान् ) सत्य का दर्शन करने वाला ( त्वष्टा ) सूर्यवत् तेजस्वी विद्वान् पुरुष ( अह एव ) निश्चय से, सदा ही ( चतुरः चमसान् ) भोग करने योग्य धर्म अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों को ही मेघ के तुल्य, भोग्य पदार्थों के दाता, अन्नवत् और ( विभ्राजमानान् ) विशेष कान्ति से चमकते हुए देखें और उनकी ( अवेनत् ) कामना करे।

द्वादश द्यून्यदगोह्यस्यातिथ्ये रणन्नृभवः ससन्तः।
सुक्षेत्राकृण्वन्ननयन्त सिन्धून्धन्वातिष्ठन्नोषधीर्निम्नमापः ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार से ( अगोह्यस्य आतिथ्ये ) प्रत्यक्ष प्रकाशमान् सूर्य के आधिपत्य में ( ससन्तः ऋभवः ) विद्यमान प्रकाश की किरणें ( द्वादश द्यून् रणन् ) १२ हों मास रौनकदार बनाते हैं, ( सुक्षेत्रा अकृण्वन् ) खेतों को उत्तम कर देते हैं, (सिन्धून् अनयन्) जलधाराएं प्राप्त कराते हैं, और जिस प्रकार ( धन्व ओषधीः अतिष्ठन् ) स्थल में ओषधियां और ( निम्नम् आपः ) नीचे भाग में जल चले जाते हैं उसी प्रकार ( ऋभवः ) सत्य ज्ञान, ऐश्वर्य और बड़े विक्रम तेज से प्रकाशित होने वाले या बहुसंख्यक विद्वान् जन, ( अगोह्यस्य ) सूर्यवत् तेजस्वी, चिरकाल तक अप्रकट रूप से न रह सकने वाले, स्वयं अपने गुणों से प्रकाशमान पुरुष के ( आतिथ्ये ) अतिथिवत् आदर सत्कार में वा आधिपत्य में

(ससन्तः) सुख से रहते हुए (द्वादश द्यून्) १२ मास के दिनों में (रणन्) आनन्द प्रसन्न हों, (सुक्षेत्राणि) उत्तम २ क्षेत्र (अकृण्वन्) बनावें। उनमें (सिन्धून्) जल प्रवाहों को (अनयन्त) ले जावें, (धन्व) स्थल भाग पर (ओषधीः) अन्नादि ओषधियें (अतिष्ठन्) खड़ी हों और (आपः निम्नम्) गहरे तालाब आदि स्थान में जल जमा रहें (२) अध्यात्म में—जिसको ढांप न सके ऐसा अपरिमित प्रभु 'अगोह्य' है। ऋभु जीव उसके पूजा सत्कार में १२ हों मास प्रसन्न होकर सुख से रहते हैं, वे स्तुति प्रार्थना व ज्ञानविद्या का अभ्यास करें। अपने उत्तम आत्मा वा देहों को प्राप्त करें, जन्म सफल करें, (सिन्धून्) प्राणों को और नाड़ियों को व्यवस्था में रक्खें।

रथं ये चक्रुः सुवृतं नरेष्ठां ये धेनुं विश्वजुवं विश्वरूपाम्।
त आ तक्षन्त्वृभवो रयिं नः स्ववसः स्वपसः सुहस्ताः ॥८॥

भा०—(ये) जो विद्वान् पुरुष (सुवृतं) सुख से चलने योग्य सुखपूर्वक वर्त्तने वाला, (नरेष्ठां) ले जाने वाले चक्र या अश्वादि के तुल्य प्रधान नायक पुरुष पर आश्रित वा मनुष्यों के बैठने योग्य (रथं) रथ और उसके समान राष्ट्र को (चक्रुः) बनाते हैं। और (ये) जो (धेनुं) गौ के तुल्य कामदुघा, (विश्वजुवं) सब प्रकार के ज्ञानों से युक्त और (विश्वरूपाम्) सब प्रकार के पदार्थों का वर्णन करने वाली वाणी को (चक्रुः) प्रकट करते हैं (ते) वे (ऋभवः) सत्य ज्ञान से सुशोभित और सत्य ज्ञान के प्रकाशक विद्वान् लोग (सु-अवसः) उत्तम रक्षादि साधन से युक्त (सु-अपसः) उत्तम कर्म करने वाले, (सुहस्ताः) उत्तम हाथों वाले, सिद्धहस्त, कर्मकुशल होकर शिल्पियों के तुल्य (नः) हमारे लिये (रयिं) नाना ऐश्वर्य (आ तक्षन्तु) उत्पन्न करें।

अपो ह्येषामजुषन्त देवा अभि क्रत्वा मनसा दीध्यानाः।
वाजो देवानामभवत्सुकर्मेन्द्रस्य ऋभुक्षा वरुणस्य विभ्वा ॥९॥

भा०—(देवः) दानशील, धनादि देने वाले पुरुष (क्रत्वा) कर्म

और ( मनसा ) ज्ञान से ( दीध्यानः ) चमकते हुए ( एषाम् ) इन शिल्पी आदि विद्वानों के ( अपः ) कर्मों को ( अभि अजुषन्त ) प्रेमपूर्वक स्वीकार करें। (वाजः) बलवान्, ऐश्वर्यवान् और अन्नादिसमृद्ध ( सुकर्मा ) उत्तम कर्मकुशल पुरुष ( देवानाम् ) इनकी कामना करने वाले विद्वानों वा प्रजाओं के पालन में ( अभवत् ) समर्थ हो। और (ऋभुक्षाः) महान् तेजस्वी होकर रहने वाला पुरुष ( इन्द्रस्य ) शत्रुहन्ता सेनापति वा राजा के पद पर स्थित हो। ( विभ्वा ) व्यापक शक्ति, विशेष सामर्थ्य से युक्त पुरुष (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ और दुष्टों के वारण करने के पद पर नियुक्त हो।

ये हरी॑ मे॒धयो॒क्था मद॑न्त॒ इन्द्रा॑य च॒क्रुः सु॒युजा॒ ये अश्वा॑।
ते रा॒यस्पोषं॒ द्रवि॑णान्य॒स्मे ध॒त्त ऋ॑भवः क्षे॒मय॑न्तो॒ न मि॒त्रम् १०

भा०—( ये ) जो विद्वान् पुरुष ( मेधया ) अपनी बुद्धि से और ( उक्था ) उत्तम वचनों से ( मदन्तः ) स्वयं हर्षित होते हुए (इन्द्राय) ऐश्वर्य वृद्धि के लिये ( हरी ) रथादि ले चलाने में समर्थ अग्नि जलों को भी ( अश्वा ) अश्वों के समान ( सुयुजा ) रथादि में लगने योग्य (चक्रुः) बना लेते हैं, और जो ( हरी अश्वा सुयुजा चक्रुः ) ऐश्वर्य वृद्धि के लिये स्त्री पुरुष दोनों को रथ के अश्वों के समान उत्तम रीति से सहयोगी साथी बनाते हैं। ( ते ) वे ( ऋभवः ) सत्यज्ञानी विद्वान् लोग ( मित्रं न ) मित्र के तुल्य ( क्षेमयन्तः ) कल्याण, क्षेम की कामना करते हुए ( अस्मे ) हमारे लिये, हमें ( रायस्पोषं ) ऐश्वर्य की पुष्टि और ( द्रविणानि ) नाना धन ( धत्त ) प्रदान करें।

इ॒दाह्नः॑ पी॒तिमु॒त वो॒ मदं॑ धु॒र्न ऋ॒ते श्रा॒न्तस्य॑ स॒ख्याय॑ दे॒वाः।
ते नू॒नम॒स्मे ऋ॑भवो॒ वसू॑नि तृ॒तीये॑ अ॒स्मिन्त्सव॑ने दधात ।११।२॥

भा०— ऋभवः ) विद्वान् लोग ( वः ) आप लोगों को ( अह्नः ) दिन में सूर्य के किरणों के तुल्य ( पीतिम् उत मदम् ) उत्तम जल और

हर्षदायी और तृप्तिकारक अन्न ( धुः ) प्रदान करें। क्या ( देवाः ) विद्वान् पुरुष मेघ सूर्यादि के समान ( ऋते ) अन्न, ऐश्वर्य और सत्य ज्ञान के लिये ( श्रान्तस्य ) श्रम करने वाले पुरुषार्थी के ( सख्याय ) मित्रभाव के लिये नहीं होते हैं ? होते ही हैं। ( ते ) वे ( ऋभवः ) महान् तेजस्वी लोग, ( अस्मिन् ) इस ( तृतीये ) तीसरे, सर्वोत्कृष्ट ( सवने ) ऐश्वर्ययुक्त, उच्च पद में या 'तृतीय सवन' अर्थात् आयु के तृतीय भाग, ५० से ऊपर के वयस् में स्थित होकर भी ( नूनम् ) निश्चय से ( अस्मे ) हमें ( वसूनि ) नाना ऐश्वर्य ( दधात ) प्रदान करें। इति द्वितीयो वर्गः ॥

## [ ३४ ]

वामदेव ऋषिः ॥ ऋभवो देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप्। २ भुरिक् त्रिष्टुप्। ४, ६, ७, ८, ९ निचृत् त्रिष्टुप्। १० त्रिष्टुप्। ३,११ स्वराट् पंक्तिः। भुरिक् पंक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

ऋभुर्विभ्वा वाज इन्द्रो नो अच्छेमं यज्ञं रत्नधेयोप यात।
इदा हि वो धिषणा देव्यह्नामधात्पीतिं सं मदा अग्मता वः ॥१॥

भा०—( ऋभुः ) सत्य ज्ञान, बल और न्यायादि से प्रकाशमान् ( विभ्वा ) व्यापक सामर्थ्य से युक्त ( वाजः ) बलवान् अन्नों का स्वामी और ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता पुरुष ये सब भी ( इयं ) इस ( नः यज्ञं ) हमारे यज्ञ, परस्पर के सत्संग, मैत्रीभाव, दान-प्रतिदान के कार्य को ( रत्न-धेया ) रमणीय, ज्ञान, सुख और ऐश्वर्य तथा वृद्धि के लिये ( उप यात ) प्राप्त हों। हे विद्वान् पुरुषो ! ( वः ) आप लोगों की ( धिषणा ) मति और वाणी ( देवी ) ज्ञान देने और तत्वों को प्रकाशित करने में समर्थ होकर ( अह्नाम् ) दिनों में सूर्य की दीप्ति के तुल्य बहुत दिनों तक ( पीतिम् अधात् ) ज्ञानरस का पान करे और ( मदाः )

आनन्द और आत्मा के तृप्ति योग ( वः सम् अग्मत ) आप लोगों को सदा प्राप्त होवें ।

**विदानासो जन्मनो वाजरत्ना उत ऋतुभिर्ऋभवो मादयध्वम् ।**
**सं वो मदा अग्मत सं पुरन्धिः सुवीरामस्मे रयिमेरयध्वम् ॥२॥**

भा०—हे ( ऋभवः ) सत्य ज्ञान से चमकने वाले विद्वान् पुरुषो ! आप लोग ( जन्मनः ) जन्म से ( विदानासः ) ज्ञान लाभ करते हुए ( उत ) और ( वाजरत्नाः ) बल, ज्ञान, ऐश्वर्यादि के 'रत्न' अर्थात् रमण करने योग्य उत्तम सुख प्राप्त करते हुए ( ऋतुभिः ) ज्ञानवान् पुरुषों सहित वा ( ऋतुभिः ) वसन्तादि ऋतुओं के अनुसार ( मादयध्वम् ) स्वयं और अन्यों को भी प्रसन्न करो । ( वः मदाः सम् अग्मत ) आप लोगों को सब प्रकार के हर्षकर ऐश्वर्य प्राप्त हों और ( वः पुरंधिः ) आप लोगों को पुरादि धारण करने वाला राजा, वा गृहादि धारण करने वाली स्त्री प्राप्त हो । आप लोग ( अस्मे ) हमें (सुवीराम् रयिम् ) उत्तम वीरों और पुत्रों से युक्त ऐश्वर्य को ( आ ईरयध्वम् ) सब प्रकारों से प्राप्त कराओ ।

**अयं वो यज्ञ ऋभवोऽकारि यमा मनुष्वत्प्रदिवो दधिध्वे ।**
**प्र वोऽच्छा जुजुषाणासो अस्थुरभूत विश्वे अग्रियोत वाजाः ॥३॥**

भा०—हे ( ऋभवः ) सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने और बड़ा होने वाले विद्वान् पुरुषो ! ( वः ) आप लोगों का ( अयम् ) यह ( यज्ञः ) परस्पर विद्या ऐश्वर्यादि का दान-प्रतिदान, सत्संग, मैत्री और ईश्वरोपासना आदि ( अकारि ) किया जावे ( यम् ) जिसको आप लोग स्वयं (प्रदिवः) सदा वा उत्तम ज्ञान-प्रकाश उत्तम कामना और व्यवहारों से युक्त होकर ( मनुष्वत् ) मननशील पुरुष के तुल्य ( आ दधिध्वे ) सब प्रकार से धारण करो । हे ( वाजाः ) ज्ञानैश्वर्य-बलों से युक्त पुरुषो ! ( वः ) आप लोगों में से जो उस यज्ञ को ( अच्छ ) उत्तम रीति से आदरपूर्वक

( जुजुषाणासः ) प्रेम पूर्वक सेवन और स्वीकार करते हुए ( प्र अस्थुः ) उन्नति की ओर बढ़ते हैं ( विश्वे ) वे सभी ( अग्रिया उत वाजाः अभूत) अग्र, मुख्य पद के योग्य हो जाते हैं ।

**अभूदु वो विधते रत्नधेयमिदा नरो दाशुषे मर्त्याय ।**
**पिबत वाजा ऋभवो ददे वो महि तृतीयं सवनं मदाय ॥ ४ ॥**

भा०—हे ( नरः ) नायक तुल्य उत्तम पुरुषो ! हे ( वाजाः ) बलवान्, ज्ञानवान् ऐश्वर्यवान् पुरुषो ! हे ( ऋभवः ) सत्य ज्ञान और तेज से प्रकाशित होने वाले विद्वान् तेजस्वी पुरुषो ! (विधते) उत्तम श्रेष्ठ काम करने वाले, उत्तम रीति से सेवा करने वाले और ( दाशुषे ) ज्ञान आदि देने वाले, ( मर्त्याय ) मनुष्य के लिये तो ( वः ) आप लोगों का ( रत्नधेयम् ) समस्त रत्न, रमणीय पदार्थों का दान ( अभूद् उ ) होना चाहिये । मैं परमेश्वर वा मुख्य पुरुष जो कुछ ( वः ददे ) आपको ज्ञान धनैश्वर्यादि प्रदान करूं आप लोग उस ( महि ) अति पूजनीय ( तृतीयं ) सबसे उत्कृष्ट ( सवनं ) ऐश्वर्य को ( मदाय ) अपने हर्ष आनन्द की वृद्धि के लिये ( पिबत ) उत्तम रस के तुल्य पान करो। उसका रसास्वाद लेते हुए उसका उपयोग करें और उससे तृप्त, सुखी और पुष्ट होवे ।

**आ वाजा यातोप न ऋभुक्षा महो नरो द्रविणसो गृणानाः ।**
**आ वः पीतयोऽभिपित्वे अह्नामिमा अस्तं नवस्व इव ग्मन् ॥५॥३॥**

भा०—हे ( वाजाः ) विज्ञान ऐश्वर्य और बल से युक्त ( ऋभुक्षाः ) और गुणों से महान् पुरुषो ! आप लोग (महः) अति उत्तम (द्रविणसः) धन विद्या का ( गृणानाः ) उपदेश करते हुए ( नः उप यात ) हमें प्राप्त होवें । ( अह्नाम् अभि-पित्वे ) दिनों के समाप्ति के अवसर में ( इमा ) ये ( पीतयः ) उत्तम दुग्ध आदि पान करने योग्य पदार्थ ( अस्तं नवस्वः इव ) नये २ सुख प्राप्त करने वाले लोग जैसे घर को आते हैं वा नव-

प्रसूता गौएं जैसे आप से आप गृह को आजाती हैं वैसे तुम्हें ( आ ग्मन् ) नित्य प्राप्त हों। इति तृतीयो वर्गः ॥

**आ नपातः शवसो यातनोपेमं यज्ञं नमसा हूयमानाः।**
**सजोषसः सूरयो यस्य च स्थ मध्वः पात रत्नधा इन्द्रवन्तः ॥६॥**

भा०—जिस प्रकार ( नमसा हूयमानाः ) अन्न द्वारा आहुति प्राप्त करके देह में प्राण गण ( शवसः नपातः यज्ञं यान्ति ) देह के बल को न गिरने देने वाले होकर जीवन यज्ञ को या आत्मा को प्राप्त हैं वे ( इन्द्र-वन्तः मध्वः पिबन्ति ) इन्द्र आत्मा से युक्त होकर मधुर अन्न का उपभोग करते हैं, उसी प्रकार हे ( सूरयः ) सूर्य के तुल्य तेजस्वी विद्वान् पुरुषो ! आप लोग ( नमसा ) आदर सत्कार पूर्वक ( हूयमानाः ) बुलाये जाकर, आदर सत्कार पूर्वक दान दिये जाकर और परस्पर सत्कारपूर्वक प्रतिस्पर्द्धा—एक दूसरे से गुणों में अधिक बढ़ने की इच्छा—करते हुए और ( शवसः नपातः ) अपने बल वीर्य को न गिरने देते हुए, स्खलित न करते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए ( इमं यज्ञम् ) इस श्रेष्ठ कर्म, यज्ञ, परस्पर संगति, दान-प्रतिदान, अध्ययन, अध्यापन मैत्री, सौहार्द आदि को ( उप-यातन ) प्राप्त करो। ( सजोषसः ) परस्पर समान प्रीतियुक्त होकर ( इन्द्रवन्तः ) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, अज्ञाननाशक विद्वान् से युक्त होकर वा स्वयं 'इन्द्रवान्' अर्थात् आत्मवान् और ऐश्वर्यवान् होकर ( यस्य च ) जिसके पास से आप लोग ( मध्वः ) मधुर ज्ञान रस का ( पात ) पान करें ( तस्य ) उसको ( रत्नधाः स्थ ) उत्तम २ ऐश्वर्य देने वाले होवो।

**सजोषा इन्द्र वरुणेन सोमं सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः।**
**अग्रेपाभिर्ऋतुपाभिः सजोषा ग्नास्पत्नीभी रत्नधाभिः सजोषाः ७**

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! हे ज्ञानवन् ! तू ( वरुणेन ) उत्तम पुरुषार्थ और श्रेष्ठ पुरुष से ( सजोषाः ) समान प्रीति युक्त होकर

( सोमं पाहि ) ओषधि, अन्नादि पदार्थ, ऐश्वर्य और ज्ञान का उपभोग कर और इनका पालन कर। हे ( गिर्वणः ) वाणियों द्वारा स्तुति योग्य वा ज्ञान वाणियों को अन्य शिष्यों को विभक्त करने वा देने हारे विद्वान् पुरुष ! तू ( मरुद्भिः ) वायुओं के तुल्य गतिशील, तीव्र बुद्धियुक्त, अनालसी शिष्यों से ( सजोषाः ) समान प्रीसि युक्त होकर (सोमं पाहि) ज्ञान की रक्षा कर। राजा वायु तुल्य वलवान् शत्रु-कम्पी सैन्यों से मिल-कर राष्ट्र-ऐश्वर्य की रक्षा करें। हे ऐश्वर्यवन् ! तू ( अग्रेपाभिः ) आगे के मुख्य पदों का पालन करने वाले और ( ऋतु-पाभिः ) सत्य ज्ञान, सत्य धर्मों वाले, और प्राणों के पालक और 'ऋतु' अर्थात् वर्ष के वसन्तादि, नाना विभागों के तुल्य प्रजा का पालन करने वाले शासकों से (सजोषाः) प्रीसियुक्त होकर और ( रत्नधाभिः ) रमणीय रत्नों को धारण करने वाली ( ग्नाः-पत्नीभिः ) गमन करने योग्य, उत्तम पत्नियों और ऐश्वर्यधारक, प्रयाण करने में कुशल राष्ट्र की पालक सेनादि शक्तियों से ( सजोषाः ) समान प्रीतियुक्त होकर ( सोमं पाहि ) तू गृहस्थ के तुल्य अन्नादिवत् ऐश्वर्य का उपभोग और पालन कर।

**स॒जोष॑स आदि॒त्यैर्मा॑दयध्वं स॒जोष॑स ऋभवः॒ पर्व॑तेभिः।**
**स॒जोष॑सो॒ दैव्ये॑ना सवि॒त्रा स॒जोष॑सः॒ सिन्धु॑भीरत्न॒धेभिः॑ ॥ ८ ॥**

भा०—हे ( ऋभवः ) विद्वान्, महान् पुरुषो ! आप लोग (आदित्यैः स जोष सः मादयध्वम् ) सूर्य के समान तेजस्वी, परस्पर आदान-प्रति-दान में कुशल व्यापारियों वा 'अदिति' अर्थात् पृथिवी के स्वामियों वा १२ मासों के सुखों से युक्त होकर आनन्द-लाभ करो। आप लोग ( पर्वतेभिः ) पर्वतों के समान अचल और मेघों के तुल्य उदार, दानशील, शस्त्रवर्षी वीरों के साथ ( सजोपसः मादयध्वम् ) समान प्रीतियुक्त होकर हर्षित होओ। आप लोग ( दैव्येन सवित्रा सजोपसः मादयध्वम् ) देव, प्रकाशमान पिण्डों के वीच उत्तम प्रकाशयुक्त सविता सूर्य के तुल्य ज्ञान

के अभिलाषुक शिष्यों के हितकारी, आचार्य वा तेजस्वी विद्वान् के साथ प्रीतियुक्त होकर प्रसन्न रहो। और आप लोग ( रत्नधेभिः सिन्धुभिः सजोषसः मादयध्वम् ) समुद्रों के समान रत्नों के धारण और प्रदान करने वाले उत्तम गम्भीर पुरुषों से प्रीतियुक्त आनन्दित होकर रहो।

**ये अश्विना ये पितरा य ऊती धेनुं ततक्षुर्ऋभवो ये अश्वा।**
**ये अंसत्रा य ऋधग्रोदसी ये विभ्वो नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥९॥**

भा०—(ये) जो (ऋभवः) सत्य ज्ञान से प्रकाशित होकर विद्वान् लोग (अश्विनौ) सूर्य चन्द्र के तुल्य वा रात्रि दिन के समान जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों को ( ततक्षुः ) तैयार करते हैं। (ये पितरा) जो विद्वान् पुरुष माता और पिता दोनों की ( ततक्षुः ) सेवा करते हैं ( ये ऊती धेनुं ततक्षुः ) जो अपनी रक्षा और ज्ञान, तृप्ति और तेजस्विता के लिये गौ के तुल्य वाणी और पृथ्वी का अभ्यास और रक्षण करते हैं। ( ये अश्वा ) जो उत्तम अश्वों को तैयार करते हैं, जो (अंसत्रा) कन्धों को बचाने वाले कवच बनाते हैं, (ये ऋधक् रोदसी चक्रुः) जो आकाश और पृथ्वी दोनों का यथार्थ रूप से ज्ञान करते और ( ये ) जो ( विभ्वः नरः ) सामर्थ्यवान् पुरुष ( सु-अपत्यानि चक्रुः ) उत्तम सन्तानों को उत्पन्न करते हैं वे 'ऋभु' कहाने योग्य हैं। और वे ही अग्रगण्य मुख्य पदों का उपभोग करते हुए हमें उत्तम ज्ञान और ऐश्वर्य दें।

**ये गोमन्तं वाजवन्तं सुवीरं रयिं धत्थ वसुमन्तं पुरुक्षुम्।**
**ते अग्रेपा ऋभवो मन्दसाना अस्मे धत्त ये च रातिं गृणन्ति ॥१०॥**

भा०—( ये ) जो लोग ( गोमन्तम् ) गौ आदि पशु और पृथ्वी आदि से युक्त ( वाजवन्तं ) अन्नादि से युक्त, ( सुवीरम् ) उत्तम वीर रक्षकों से युक्त और ( वसुमन्तम् ) उत्तम बसने बसाने वाले राजा प्रजादि जीव वर्गों से युक्त ( पुरुक्षुम् ) बहुत से अन्न सस्यादि से सम्पन्न ( रयिम् ) ऐश्वर्य को ( धत्थ ) आप लोग धारण करते हैं ( ते ) वे आप

लोग ( ऋभवः ) उत्तम, सत्य ज्ञान और न्याय से प्रकाशित होने वाले हो। और ( ये च रातिं गृणन्ति ) जो दानधर्म का उपदेश करते हैं या दानशील प्रजा शिष्यादि को सदुपदेश करते हैं। वे आप लोग ( अग्रेपाः ) आगे से रक्षा करने वाले प्रमुख ( मन्दसानाः ) स्वयं आनन्द प्रसन्न और औरों को आनन्दित करते हुए ( अस्मे ) हमारे निमित्त ( रयिं धत्त ) ऐश्वर्य प्रदान करें।

**नापा॑भूत न वो॑ऽतीतृषामानिः॑शस्ता ऋभवो य॒ज्ञे अ॒स्मिन्।**
**समिन्द्रे॑ण मद॑थ॒ सं म॒रुद्भिः॒ सं राज॑भी रत्न॒धेया॑य देवाः॥११॥४॥**

भा०—हे ( ऋभवः ) सत्य ज्ञान और तेज के बल पर महान् सामर्थ्यवान् पुरुषो ! आप लोग ( न अप भूत ) हमसे दूर मत हुआ करें। ( अस्मिन् यज्ञे ) इस परस्पर सुसंगत, आदर सत्कार, मैत्रीभावादि से पूर्ण व्यवहार में आप सब लोग ( अनिःशस्ताः ) अनिन्दित हों। ( वः ) आप लोगों को ( न अतीतृषाम ) कभी न तरसावें। आप लोग (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् राजा और ( मरुद्भिः ) वायुवत् बलवान् पुरुषों सहित ( सं मदथ ) अच्छी प्रकार आनन्दित होवो। हे ( देवाः ) दानशील पुरुषो ! आप लोग ( रत्न-धेयाय ) उत्तम रमणीय धन लेने की इच्छा करो तो ( राजभिः ) राजा के समान पुरुषों सहित ( सं मदथ ) अच्छी प्रकार हर्ष अनुभव करो। इति चतुर्थो वर्गः॥

## [ ३५ ]

वामदेव ऋषिः॥ ऋभवो देवता॥ छन्दः—१, २, ४, ६, ७, ९ निचृत् त्रिष्टुप्। ८ त्रिष्टुप्। ३ भुरिक् पंक्तिः। ५ स्वराट् पंक्तिः॥ नवर्चं सूक्तम्॥

**इ॒होप॑ यात शवसो नपातः॒ सौध॑न्वना ऋभवो॒ माप॑ भूत।**
**अ॒स्मिन्हि वः॒ सव॑ने रत्न॒धेयं॒ गम॒न्त्विन्द्र॒मनु॒ वो मदा॑सः॥१॥**

भा०—हे ( सौधन्वनाः ) उत्तम धन की आकांक्षा एवं सेवन करने वाले स्वच्छ, अन्तरिक्ष में किरणों के समान, उत्तम भूमिभाग के स्वामी जनो ! हे उत्तम धनुष आदि अस्त्रों को धारण करने वालो ! उत्तम वीर्य बलयुक्त, पराक्रमशील पुरुषो ! हे ( ऋभवः ) सत्य ज्ञान, तेज, न्याय से प्रकाशित होने वालो, बहुत अधिक समर्थ और बहुत संख्या में विद्यमान प्रजा और सेना के पुरुषो ! आप लोग ( शवसः ) बलवान् और (नपातः) अपने को-अपने पक्ष को नीचे न गिरने देने वाले होकर ( इह उपयात ) इस राष्ट्र में प्राप्त होओ। ( अस्मिन् सवने ) इस राज्य कार्य में ही (वः) आप लोगों का ( रत्न-धेयम् ) उत्तम धनैश्वर्य है। और ( वः मदासः ) आप लोगों के सब हर्ष, सुखादि भी ( इन्द्रम् अनु गमन्तु ) ऐश्वर्य युक्त-जन वा राष्ट्र के अनुसार ही प्राप्त हों। उसके अधीन हों, उच्छृंखल न हों।

आगन्नृभूणामिह रत्नधेयमभूत्सोमस्य सुषुतस्य पीतिः।
सुकृत्यया यत्स्वपस्या चँ एकं विचक्र चमसं चतुर्धा ॥ २ ॥

भा०—( यत् ) जिस कारण से ( सुकृत्यया स्वपस्यया ) उत्तम आचरण और शोभन कर्मों को करने की प्रवृत्ति से ही विद्वान् लोग ( एकं चमसं ) सुख प्राप्तिरूप एक पुरुषार्थ को ही ( चतुर्धा ) चार प्रकार का (वि चक्र) विभाग या परिणाम कर देते हैं। जैसे शिल्पी लोग एक ही रथ को उत्तम क्रिया कौशल से चार प्रकार का बना देते हैं जिससे यह रथ ऊपर, नीचे, बीच में और तिरछा भी गति कर सकता है। इससे ( ऋभूणाम् ) सत्य के बल से समर्थ विद्वानों का ( इह ) इस जगत् में ( रत्नधेयम् आ अगन् ) ऐश्वर्य प्राप्त होता है। और ( सु-सुतस्य सोमस्य ) उत्तम रीति से उत्पादित ऐश्वर्य का ( पीतिः ) पान, उपभोग व पालन भी अन्न ओषध्यादि वा प्रजा के समान धर्मानुसार ही (अभूत्) हो। राजाओं का एक चमस अर्थात् उपभोगपात्र प्रजा वा राष्ट्र, वर्ण भेद से चार प्रकार का हो जाता है, शत्रुसैन्य को निगल जाने वाला सैन्य

रथ, गज, वाजि, पदाति भेद से चार प्रकार का चतुरंग हो जाता है, मेघ से उत्पन्न जल का रश्मियों द्वारा चार प्रकार का परिणाम होता है कन्द-मूल फूल फलादि जीव शरीर और जल, विद्युत्, अन्न, ओषधि है।

व्यकृणोत चमसं चतुर्धा सखे वि शिक्षेत्यब्रवीत।
अथैत वाजा अमृतस्य पन्थां गणं देवानामृभवः सुहस्ताः ॥३॥

भा०—हे (ऋभवः) विद्वान् सत्यज्ञानी पुरुषो! आप लोग (एकं) एक (चमसं) चमस, उपभोग्य पात्र को (चतुर्धा वि अकृणोत) चार रूपों में प्रकट करो। और ज्ञान प्राप्त करने के लिये आप (सखे वि शिक्ष इति अब्रवीत) हे मित्र विशेष ज्ञान प्राप्त कर इस प्रकार कहा करो। (अथ) इस प्रकार ज्ञान प्राप्त कर लेने के अनन्तर आप लोग हे (ऋभवः) सत्य ज्ञान से प्रकाशित और (सुहस्ताः) उत्तम कर्मकुशल! हे (वाजाः) ज्ञान, बल, ऐश्वर्यादि से युक्त पुरुषो! (अमृतस्य पन्थाम्) अमृत आत्मतत्व ज्ञान के मार्ग को और (देवानां गणम्) उत्तम दानशील, ज्ञानप्रकाशक विद्वानों को भी (एत) प्राप्त होवे। जैसे एक मेघ किरणों द्वारा चार रूपों में छिन्न भिन्न हो जाता है उसी प्रकार विद्वान्जन एक प्रजासंघ को चार वर्णों में, एक जीवन को चार आश्रमों में और एक चमस-कर्म यज्ञ को होत्र आदि भेद से चार भेद में और एक प्रकृति तत्व को अग्नि, जल, पृथिवी, वायु रूप से विकृत, एक पुरुषार्थ को चार पुरुषार्थों में, एक सैन्य को चार अंगों में और एक ईश्वरीय ज्ञान वेद को ऋक्, साम, यजु, ब्रह्म, इन चार प्रकारों में उपदेश करें।

किंमयः स्विच्चमस एष आस यं काव्येन चतुरो विचक्र।
अथा सुनुध्वं सवनं मदाय पात ऋभवो मधुनः सोम्यस्य ॥४॥

भा०—चमस का स्वरूप—(एषः चमसः) यह पूर्वोक्त 'चमस' (किंमयः स्वित्) किस पदार्थ का बना हुआ (आस) है (यं) जिसको (काव्येन) क्रान्तदर्शी विद्वानों का कौशल (चतुरः) चार रूपों में

( वि चक्र ) विभक्त या परिणत कर देता है। हे ( ऋभवः ) ज्ञानवान् पुरुषो! आप लोग ( मदाय ) आनन्द लाभ के लिये, ( सवनं ) उत्तम ऐश्वर्य, कार्यसिध्यर्थ कर्म, यज्ञ, अपत्यादि ( सुनुध्वं ) उत्पन्न करो और ( मधुनः सोम्यस्य पात ) सोम, परमानन्द से युक्त मधुर ब्रह्म रस वा अन्नादि का पान, उपभोग करो। प्रश्न—यह पूर्वोक्त चमस किस पदार्थ का बना? कैसा है? उत्तर—चमस 'किं-मय' है अर्थात् तुच्छ बल को उखाड़ फेंकने वाला सैन्य, तुच्छ अज्ञान का नाशक ज्ञानस्वरूप, 'किं' प्रश्न के योग्य ब्रह्म ज्ञान का उपदेशप्रद 'वेद' है।

शच्याकर्त पितरा युवाना शच्याकर्त्त चमसं देवपानम्।
शच्या हरी धनुतरावतष्टेन्द्रवाहावृभवो वाजरत्नाः ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—हे ( ऋभवः ) सत्य, न्याय, ज्ञान से प्रकाशवान् पुरुषो! हे (वाज-रत्नाः) ज्ञान, अन्नैश्वर्यादि रमणीय पदार्थों के स्वामियो! आप लोग ( शच्या ) शची, शक्तिशालिनी बुद्धि, वाणी, शक्ति और सेनादि के बल से ही ( चमसं ) भोगयोग्य या भोगप्रद पदार्थ राष्ट्रादि को ( देवपानम् ) विद्वान्, विजिगीषु आदि से उपभोग करने योग्य ( कर्त्त ) करो। और आप लोग ( शच्या ) वाणी और बुद्धि के बल से ही ( इन्द्रवाहौ हरी ) ऐश्वर्यवान् राजा को वहन करने, उसको अपने पर धारण करने वाले अश्वों के तुल्य सन्मार्ग पर चलने वाले स्त्री पुरुषों को ( धनुतरौ अतष्ट ) शीघ्रगामी बनाते हो। ( २ ) शिल्पी लोग भी वेगवान् रथ कृत्रिम अश्वादि को बुद्धि से बनावें, उत्तम २ वस्त्र बनावें, सूर्य की किरणें जल वायु को जगत् का पालक और अन्न को प्राणदायक बनाते हैं, प्रकाश ताप को तीव्र वेगगामी करते हैं। इति पञ्चमो वर्गः ॥

यो वः सुनोत्यभिपित्वे अह्नां तीव्रं वाजासः सवनं मदाय।
तस्मै रयिमृभवः सर्ववीरमा तक्षत वृषणो मन्दसानाः ॥ ६ ॥

भा०—हे ( ऋभवः ) सत्य ज्ञान के प्रकाशक, हे ( वृषणः ) बलवान् सुखों के वर्षक, हे (वाजासः) बलवान् ज्ञानवान् पुरुषो ! हे (मन्दसानाः) हर्षानन्द लाभ के इच्छुक जनो ! ( यः ) जो ( अह्नाम् अभि-पित्वे ) दिनों के अवसान में ( वः ) आप लोगों के लिये ( तीव्रं ) अति उत्तम, सर्वातिशायी, ( सवनं ) ऐश्वर्य ( मदाय ) आनन्द हर्ष लाभ के लिये ( सुनोति ) उत्पन्न करता है ( तस्मै ) उसकी वृद्धि के लिये आप लोग भी ( सर्व-वीरम् ) समस्त प्रकार के वीरों, पुत्रों और प्राणों से युक्त ( रयिम् ) ऐश्वर्य को ( आ तक्षत ) उत्पन्न करो।

प्रातः सुतमपिबो हर्यश्व माध्यन्दिनं सवनं केवलं ते।
समृभुभिः पिबस्व रत्नधेभिः सखीँर्यां इन्द्र चकृषे सुकृत्या ॥७॥

भा०—हे ( हर्यश्व ) तीव्र वेगवान् अश्वों के स्वामिन् ! हे जलहरण-शील किरणों से प्रकाश फैलाने वाले सूर्यवत् तेजस्विन् ! तू ( प्रातः ) प्रातःकाल जीवन वा राज्यप्राप्ति के प्रारम्भ काल में ( सुतम् अपिबः ) देह में उत्पन्न बल वीर्य का पालन और ऐश्वर्य का उपभोग कर। ( ते ) तेरा ( सवनं ) उत्तम ऐश्वर्य ( माध्यन्दिनं ) मध्याह्न समय के प्रखर सूर्य के समान ( केवलं ) सबसे अद्वितीय हो। उस समय ( रत्नधेभिः ऋभुभिः ) उत्तम प्रकाशयुक्त किरणों से जिस प्रकार सूर्य जल का पान करता है उसी प्रकार तू भी ( रत्नधेभिः ) हे आचार्य ! रत्नरूप वीर्य को धारण करने वाले तेजस्वी शिष्यों और हे राजन् ( यान् ) जिनको तू ( सुकृत्या ) उत्तम कर्म से अपना ( सखीन् चकृषे ) सखा, मित्र बना लेता है ( रत्न-धेभिः ) ऐश्वर्यों वा रत्नों को धारण करने वाले उन ( ऋभुभिः ) तेजस्वी पुरुषों सहित ( सवनं सं पिबस्व ) ज्ञान का पान और ऐश्वर्य का उपभोग कर।

ये देवासो अभवता सुकृत्या श्येना इवेदधि दिवि निषेद।
ते रत्नं धात शवसो नपातः सौधन्वना अभवतामृतासः ॥८॥

भा० —( ये ) जो ( देवासः ) उत्तम सुख की कामना करने वाले विद्वान् पुरुष ( सुकृत्या ) उत्तम आचरण से ( श्येनाः इव ) तीव्र पक्षियों के समान ऊंचे चढ़ने वाले, उत्तम पद या मार्ग की ओर जाने वाले प्रशंसनीय आचरण ( अभवत ) हो जाते हैं वे (दिवि अधि) ज्ञानमय प्रभु परमेश्वर में, मोक्ष में, ज्ञानमय प्रकाश में और पृथिवी के ऊपर ( निषेदुः ) आदर से विराजते हैं। हे ( शवसः नपात् ) बल वीर्य का नाश न होने देने हारे बलवान्, ज्ञानवान् पुरुषो ! वा बल वा ज्ञान द्वारा उत्पन्न वीरो ! विद्वान् शिष्यो ! हे ( सौधन्वनाः ) उत्तम धनुर्धरो ! उत्तम मनोभूमि पर आरूढ साधको ! ( ते ) वे आप लोग ( रत्नं धात ) रमणीय, वीर्य का धारण पालन करो, ऐश्वर्य को धारो और ( अमृतासः ) अविनाशी, मुक्त, दीर्घजीवी, दृढ़ ( अभवत ) होओ।

**यत्तृतीयं सवनं रत्नधेयमकृणुध्वं स्वपस्या सुहस्ताः।**
**तदृभवः परिषिक्तं व एतत्सं मदेभिरिन्द्रियेभिः पिबध्वम् ॥९॥६॥**

भा०—हे ( सुहस्ताः ) उत्तम हनन साधनों से सम्पन्न वीरो ! हे उत्तम कर्म करने में कुशल हाथों वा विघ्ननाशक साधनों वाले ! सिद्ध हस्त विद्वानो ! आप लोग ( स्वपस्या ) उत्तम कर्म करने की इच्छा से ( यत् ) जब ( तृतीयं ) तीसरे सर्वश्रेष्ठ कोटि के ( रत्न-धेयम् ) रमणीय वीर्य धारण के कार्य अर्थात् ४८ वर्ष के ब्रह्मचर्य को ( अकृणुध्वम् ) कर लो इसी प्रकार व हे वीरो ! अब तुम सव श्रेष्ठ ऐश्वर्य को प्राप्त करलो ( तत् ) तब हे ( ऋभवः ) विद्वानो ! हे वीरो ! सत्य, न्याय से शोभा पाने वालो ! ( वः ) तुम्हारा ( एतत् ) यह ( परि सिक्तम् अस्तु ) सन्तानार्थ निषिक्त हो और ऐश्वर्य समस्त राज्य में प्रजा की वृद्धि के लिये मेघ के जल के तुल्य सर्वोपकारार्थ दान दिया जाय। और आप लोग स्वयं ( इन्द्रियेभिः मदेभिः ) इन्द्र आत्मा के द्वारा प्राप्त अध्यात्म आनन्दों से ( सं पिबध्वम् ) उसका उपभोग और पालन करो। हे वीरो ! तुम उस

ऐश्वर्य को ( इन्द्रियेभिः मदेभिः ) इन्द्रियों के दमनों सहित वा इन्द्र, राजा द्वारा प्रदत्त तृप्तिकारक भोजन वेतनादि रूप से उसका उपभोग करो। इति षष्ठो वर्गः ॥

## [ ३६ ]

वामदेव ऋषिः ॥ ऋभवो देवता ॥ छन्दः—१, ६, ८ स्वराट् त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप् । २, ३, ४, ५ विराट् जगती । ७ जगती ॥ नवर्चं सूक्तम्

**अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो३ रथस्त्रिचक्रः परि वर्तते रजः ।
महत्तद्वो देव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्यथ ॥१॥**

भा०—जिस प्रकार ( अनश्वः अनभीपुः त्रिचक्रः रथः ) विना अश्व, विना लगाम का तीन चक्रों का रथ जो ( रजः परि वर्त्तते ) सर्वत्र लोकों वा अन्तरिक्ष में घूम सके वह ( उक्थ्यः ) स्तुति योग्य, उत्तम होता है और उससे शिल्पियों की बड़ी भारी प्रशंसा होती है उसी प्रकार हे ( ऋभवः ) विद्वान् मेधावी पुरुषो ! ( रथः ) रमण करने वाला आत्मा वा यह रथ रूप देह उसी प्रकार ( अनश्वः ) अश्व के सदृश बाह्य गति-साधन से रहित वा स्वयं आत्मा, ( अनश्वः ) भोक्ता न होकर, (अनभीपुः) लगाम आदि बाह्य नियन्त्रण साधनों से रहित, ( त्रिचक्रः ) मन, ज्ञाने-न्द्रिय, कर्मेन्द्रिय अथवा मन, प्राण और विज्ञान इन तीन कारकों से युक्त होकर ( रजः परिवर्त्तते ) लोकान्तरों में वा प्रकृति के रजस्तत्व को प्राप्त होकर देहादि से आवृत होता है । ( यत् च ) जो आप लोग ( द्याम् पृथिवीम् च पुष्यथ ) सूर्य-रश्मियों के समान आकाश व पृथिवी, ज्ञान-वान् पुरुषों और सामान्य लोकों को भी पुष्ट करते हैं ( तत् ) वह ( वः ) आप लोगों के ( देव्यस्य ) विद्वानों के योग्य ज्ञान की ( महत् ) बड़ा भारी ( प्रवाचनम् ) उत्तम ख्याति और उपदेश है ।

रथं ये चक्रुः सुवृतं सुचेतसोऽविह्वरन्तं मनसस्परि ध्यया।
ताँ ऊ न्व१स्य सवनस्य पीतय आ वो वाजा ऋभवो वेदयामसि ॥२॥

भा०—( ये ) जो ( सुचेतसः ) उत्तम चित्त वाले और उत्त ज्ञानवान् होकर ( मनसः परि ध्यया ) मन के विशेष चिन्तना वा ज्ञान विशेष अभ्यास से ( अवि-ह्वरन्तं ) कुटिल गति से न जाने वाले (सुवृत, उत्तम रीति से चलने वाले (रथं चक्रुः) रथ को बनाते हैं। अध्यात्म में— जो उत्तम ज्ञानवान् और शुभ चित्त से युक्त ज्ञानी पुरुष ( ध्यया ) संध्या अर्थात् ध्यान के अभ्यास से ( मनसः परि ) मन से भी परे विद्यमान ( अवि-ह्वरन्तं ) अकुटिल, ऋजु (सुवृतं) उत्तम आचारवान् ( रथं ) रस-स्वरूप आत्मा को ( चक्रुः ) बना लेते हैं उसकी साधना करते हैं। हे (ऋभवः ) सत्य ज्ञानप्रकाश से प्रकाशित होने वाले विद्वान् पुरुषो ! हे (वाजाः) बलवान् ऐश्वर्यवान् पुरुषो ! (तान् उ नु वः) उन आप लोगों को (अस्य सवनस्य पीतये) इस ऐश्वर्य के उपभोग के लिये ( आ वेदयामसि ) निवेदन वा प्रार्थना करते हैं।

तद्वो वाजा ऋभवः सुप्रवाचनं देवेषु विभ्वो अभवन्महित्वनम्।
जिव्री यत्सन्ता पितरा सनाजुरा पुनर्युवाना चरथाय तक्षथ ॥३॥

भा०—हे ( वाजाः ) ऐश्वर्य, बल से युक्त हे ( ऋभवः ) सत्य ज्ञान और तेजों से युक्त ! हे ( विभ्वः ) विशेष ऐश्वर्य वा विद्यादि से युक्त विद्वान् जनो ! ( यत् ) जो तुम लोग ( जिव्री ) जरावस्था को प्राप्त ( सन्ता ) हुए ( सना जुरा ) तप, दान आदि से वृद्ध ( पितरा ) माता पिता वा उनके तुल्य वृद्ध पुरुषों को ( चरथाय ) ज्ञान वितरण और जीवन यापन के लिये ( पुनः युवाना तक्षथ ) पुनः युवाओं के तुल्य अधिक सामर्थ्य और उत्साह से युक्त, शक्तिमान् बना देते हो (वः) आप लोगों का ( तत् ) वही (सु-प्र-वाचनम् ) उत्तम ख्याति और उत्तम विद्या-

भ्यास है और वही आप लोगों का ( देवेषु ) विद्वान् विद्यादाताओं के बीच ( महित्वनम् ) महान् कर्त्तव्य है ।

एकं वि चक्र चमसं चतुर्वयं निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिः ।
अथा देवेष्वमृतत्वमानश श्रुष्टी वाजा ऋभवस्तद्व उक्थ्यम् ॥४॥

भा०—अध्यात्म में—हे ( वाजाः ऋभवः ) वल धारण करने वाले और ऋत अर्थात् अन्न से उत्पन्न होने और चमकने वाले प्राणो ! ( वः तत् उक्थ्यम् ) आप लोगों का यही वचनीय, स्तुतियोग्य कर्म है कि आप लोग ( एकं चमसं चतुर्वयं विचक्र ) बाह्य पदार्थों के भोगने वाले एक अन्तःकरण को चार २ शाखा वाला प्रकट कर देते हो, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार ये एक ही अन्तःकरण के चार रूप प्राणशक्ति से ही होते हैं । अथवा—प्राणों द्वारा ही एक भोग्य जीवन 'चतुर्वय' अर्थात् चार अवस्थाओं वाला हो जाता है, बाल, यौवन, सम्पूर्णता ( किञ्चित्-परिहाणि ) वार्धक्य । और आप प्राणगण ( धीतिभिः ) ध्यान और धारणाओं द्वारा ( चर्मणः ) चर्म आदि की बनी जिह्वा, तालु, मुखादि अवयवों से ( गाम् निर् अरिणीत ) व्यक्त वाणी को प्रकट करते हो । ( अथ ) और (देवेषु) बाह्य विषयों के ज्ञान की कामना करने वाले इन्द्रियों में ( श्रुष्टी ) अति शीघ्रतापूर्वक, वा अन्न द्वारा ( अमृतत्वम् ) चैतन्य ( आनश ) प्राप्त कराते हो । ( २ ) विद्वान् एक राष्ट्र को ४ भागों में बांटते हैं, भूमि को गोचर्म से विभक्त करते, [ 'गो चर्म' एक माप है जैसे एक वर्ग गज ], विद्वानों और वीरों में दीर्घ जीवन उत्पन्न करते हो यह आपका बड़ा महत्त्व का कार्य है ।

ऋभुतो रयिः प्रथमश्रवस्तमो वाजश्रुतासो यमजीजनन्नरः ।
विभ्वतष्टो विदथेषु प्रवाच्यो यं देवासोऽवथा स विचर्षणिः ॥५॥७॥

भा०—( वाजश्रुतासः ) ज्ञान को श्रवण करने वाले और अन्नादि ऐश्वर्यों से प्रसिद्ध होने वाले विद्वान् एवं वीर ( नरः ) नायक, अग्रगण्य जः

(यम्) जिस ऐश्वर्य को (अजीजनन्) उत्पन्न करते हैं वह (रयिः) ऐश्वर्य (ऋभुतः) महान् सत्य ज्ञान से प्रकाशित गुरु वा प्रभु से प्राप्त होकर (प्रथमश्रवस्तमः) सबसे श्रेष्ठ और सबसे उत्तम श्रवण करने योग्य वेद है। (सः) वह वेदाख्य ज्ञान (विचर्षणिः) विविध गूढ़ रहस्य को दिखाने वाला है। (यं) जिसको हे। (देवासः) विद्वान् पुरुषो! आप लोग (अवथ) रक्षा करते हो और वह (विभ्वतष्टः) विशेष सामर्थ्यवान् पुरुषों वा व्यापक परमेश्वर द्वारा प्रकट किया है। और (विदथेषु) यज्ञों और ज्ञान प्राप्ति के अवसरों पर (प्र-वाच्यः) गुरु द्वारा शिष्यों के प्रति प्रवचन द्वारा उपदेश करने योग्य होता है। इति सप्तमो वर्गः॥

**स वाज्यर्वा स ऋषिर्वचस्यया स शूरो अस्ता पृतनासु दुष्टरः।**
**स रायस्पोषं स सुवीर्यं दधे यं वाजो विभ्वाँ ऋभवो यमाविषुः ६**

भा०—(यत्) जिसको (वाजः विभ्वा ऋभवः) बलवान्, ऐश्वर्यवान् पुरुष विशेष सामर्थ्य और विद्यावान् पुरुष और ज्ञान तेज, और सत्य के बल से तेजस्वी पुरुष (आविषुः) रक्षा करते, प्राप्त होते, ज्ञानादि से पूर्ण करते हैं (सः वाजी) वह ऐश्वर्यवान् (अर्वा) अश्व के समान बलवान्, अन्यों को उद्देश्य तक पहुंचाने वाला और शत्रुओं का नाशक होता है। (वचस्यया ऋषिः) उत्तम वाणी और स्तुति से मन्त्रार्थों का देखने वाला (सः) वह (शूरः) शूरवीर, (अस्ता) अस्त्रों से शत्रु को पराजय करने वाला, (पृतनासु दुः-तरः) सेनाओं के बीच कठिनता से विजय करने योग्य होता है। (सः रायः पोषं दधे) ऐश्वर्य की समृद्धि को धारण करता और (सः सु-वीर्यं दधे) वह उत्तम वीर्य, बल को धारण करता है।

**श्रेष्ठं वः पेशो अधि धायि दर्शतं स्तोमो वाजा ऋभवस्तं जुजुष्टन।**
**धीरासो हि ष्ठा कवयो विपश्चितस्तान्व एना ब्रह्मणा वेदयामसि ७**

भा०—हे ( वाजाः ) बलवान् और बुद्धि में तीव्र वेग वाले शिष्य जनो ! हे ( ऋभवः ) सत्य-ज्ञान से प्रकाशित होने वालो ! जिसके द्वारा ( वः ) आप लोगों को ( श्रेष्ठं पेशः ) सबसे उत्तम स्वरूप ( दर्शतं ) दर्शनीय ( धायि ) धारण किया जाय और जिससे तुम्हारे बीच उत्तम, सर्वश्रेष्ठ ( स्तोमः धायि ) वेदोपदेश स्थिर किया जा सके, आप लोग ( तं जुजुष्टन ) उसको प्रेम से सेवा किया करो। और जो लोग (धीरासः) धीर पुरुष, ध्यानवान् और ( कवयः ) विद्वान्, क्रान्तदर्शी ( विपश्चितः ) ज्ञानों कर्मों को जानने वाले मेधावी हैं ( तान् ) उनको लक्ष्य करके हम ( वः ) आप लोगों को ( एना ब्रह्मणा ) इस वेद ज्ञान, ब्रह्मचर्यादि के निमित्त ( आवेदयामसि ) बतलावें और आप लोग भी ( धीरासः कवयः स्थ ) वीर और विद्वान् हो जाओ।

**यूयमस्मभ्यं धिषणाभ्यस्परि विद्वांसो विश्वा नर्याणि भोजना।**
**द्युमन्तं वाजं वृषशुष्ममुत्तममा नो रयिमृभवस्तक्षता वयः॥८॥**

भा०—हे ( विद्वांसः ऋभवः ) विद्वान् महोदयो ! ( यूयं ) आप लोग ( धिषणाभ्यः परि ) बुद्धियों से विचार कर ( विश्वा नर्याणि भोजनानि तक्षत ) सब प्रकार के लोकोपकारक भोजनों और भोग्य पदार्थों का निर्माण करो। और ( द्युमन्तं वाजं ) तेजस्वी प्रकाशयुक्त ज्ञान, बल और ( वृषं शुष्मम् ) बलवान् पुरुषों के बल रूप ( उत्तमं रयिम् ) उत्तम ऐश्वर्य को भी तैयार करो।

**इह प्रजामिह रयिं रराणा इह श्रवो वीरवत्तक्षता नः।**
**येन वयं चितयेमात्यन्यान्तं वाजं चित्रमृभवो ददा नः॥९॥८॥**

भा०—( ऋभवः ) सत्य, न्याय और तेज विद्यादि से प्रकाशित होने वाले विद्वान् पुरुषो ! आप लोग ( इह ) इस राष्ट्र में ( प्रजाम् ) उत्तम प्रजा को ( रराणाः ) प्रदान करते हुए ( इह रयिं रराणाः ) इस लोक में उत्तम ऐश्वर्य देते हुए और ( इह श्रवः रराणा ) इस लोक में

उत्तम अन्न और ज्ञान का पान करते हुए (नः तक्षत) हमें व्यवस्थित और उत्तम बनाओ। और (येन) जिससे (वयम्) हम लोग (अन्यान् अति) और सबको अतिक्रमण करके (चितयेम) ज्ञानवान् होवें। और (तं चित्रं वाजं) उस, अद्भुत वा पूज्य ज्ञान और ऐश्वर्य को (नः दद) हमें प्रदान करो। इत्यष्टमो वर्गः॥

## [ ३७ ]

वामदेव ऋषिः॥ ऋभवो देवता॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप्। ३, ८ निचृत् त्रिष्टुप्। ४ पंक्तिः॥ ५, ७ अनुष्टुप्॥ ६ निचृदनुष्टुप्॥ अष्टर्चं सूक्तम्॥

**उप नो वाजा अध्वरमृभुक्षा देवा यात पथिभिर्देवयानैः।**
**यथा यज्ञं मनुषो विक्ष्वा३सु दधिध्वे रण्वाः सुदिनेष्वह्नाम्॥१॥**

भा०—हे (वाजाः) बलवान् पुरुषो! हे (ऋभुक्षाः) बड़े लोगो! हे (देवाः) दानशील विद्वान् लोगो! आप लोग (देवयानैः पथिभिः) विद्वानों से जाने योग्य उत्तम मार्गों और गमन साधन रथादि से (नः) हमारे (अध्वरं) हिंसारहित और किसी से न नाश होने वाले यज्ञ और दृढ़ राष्ट्र को (उप यात) प्राप्त होओ। और आप लोग (मनुषः रण्वाः) मननशील और रमणीय, मनोहर आचरण करते हुए (अह्नाम् सु-दिनेषु) दिनों के बीच उत्तम दिनों में (आसु विक्षु) इन प्रजाओं में (यथा) यथावत् (दधिध्वे) परस्पर के दान प्रतिदान, लेन देन, संगति, मैत्री आदि को धारण करो, स्थापित किये रहो।

**ते वो हृदे मनसे सन्तु यज्ञा जुष्टासो अद्य घृतनिर्णिजो गुः।**
**प्र वः सुतासो हरयन्त पूर्णाः क्रत्वे दक्षाय हर्षयन्त पीताः॥२॥**

भा०—हे विद्वान् लोगो! (वः) आप लोगों के (ते) वे (यज्ञाः) यज्ञ आदि उत्तम कर्म, परस्पर के मित्रतादि के भाव एवं दान सत्कार आदि

सत्कर्म और पूजनीय पुरुष भी, ( अद्य ) वर्त्तमान में ( घृतनिर्णिजः ) घृत वा जलादि के संसर्ग से शुद्ध पवित्र और ( जुष्टासः ) प्रेमपूर्वक सेवन करने योग्य होकर ( गुः ) प्राप्त हों। और वे ( हृदे मनसे सन्तु ) हृदय को प्रिय और मन, विचारशील चित्त को भी सन्तुष्ट करने वाले हों। हे विद्वान् पुरुषो ! ( वः ) आप लोगों के ( सुतासः ) उत्पन्न किये सन्तान और ऐश्वर्य सब ( पूर्णाः ) पालित पोषित और गुणों से पूर्ण होकर ( वः हरयन्त ) तुम्हारी कामना करें, तुम्हें प्रेम से चाहें। और वे (पीताः) पिये जाकर वा पालित, सुरक्षित रहकर ( क्रत्वे दक्षाय ) उत्तम ज्ञान, कर्म और बल उत्साह की वृद्धि के लिये ( हर्षयन्त ) सदा प्रसन्न चित्त होकर रहें, अन्यों को ज्ञान-उत्साहादि से प्रसन्न करें।

**त्र्युदायं देवहितं यथा वः स्तोमो वाजा ऋभुक्षणो ददे वः।**
**जुह्वे मनुष्वदुपरासु विक्षु युष्मे सचा बृहद्दिवेषु सोमम् ॥ ३ ॥**

भा०—हे ( वाजाः ) ज्ञानवान् ( ऋभुक्षणः ) महान् तेजस्वी पूज्य पुरुषो ! ( वः ) आप लोगों का ( स्तोमः ) वचन समूह, स्तुति उपदेश ( यथा ) जिस प्रकार ( त्रि-उदयं देव-हितं ददे ) तीनों प्रकार के अभ्युदय के देने वाले विद्वानों के हितकारी सुख का प्रदान करता है, उसी प्रकार मैं भी ( स्तोमः ) स्तुतिकर्त्ता, प्रवक्ता होकर तीनों अभ्युदयकारी हितवचन ( वः ददे ) आप लोगों को दूं। और जिस प्रकार ( मनुष्वत् ) मननशील विद्वान् के सदृश ( उपरासु विक्षु ) समीप बसी प्रजाओं के बीच मैं ( सोमम् जुह्वे ) अन्नादि पदार्थ दूं उसी प्रकार ( बृहद्-दिवेषु ) बड़े २ ज्ञानवान् पुरुषों के बीच में मैं ( सचा ) संगत होकर ( युष्मे सोमं जुह्वे ) आप लोगों को भी अन्न, ऐश्वर्यादि प्रदान करूं।

**पीवो अश्वाः शुचद्रथा हि भूतायः शिप्रा वाजिनः सुनिष्काः।**
**इन्द्रस्य सूनो शवसो नपातोऽनु वश्चेत्यग्रियं मदाय ॥ ४ ॥**

भा०—हे (इन्द्रस्य सूनो) ज्ञानवान्, विद्वान् और बलवान् शत्रुहन्ता

राजा के पुत्र के समान प्रिय ! और हे (शवसः नपातः) बल और ज्ञान के द्वारा अपने आपको उससे बांधने वाले वा बल का नाश न होने देने वाले शिष्य एवं सैनिक वीर पुरुषो ! आप लोग ( पीवो अश्वाः ) खूब हृष्ट पुष्ट अश्वों वाले, ( शुचद्रथाः ) कान्तिमान् रथों वाले, ( अयः-शिप्राः वाजिनः ) मुख में वा नाक पर लोहे वा सोने की बनी लगाम वा पट्टी को धारण करने वाले वेगवान् अश्वों के तुल्य वीर भी ( अयः-शिप्राः वाजिनः ) स्वर्णादि के बने कुण्डलादि आभूषणों को गण्डस्थल पर धारण करने वाले और बलवान्, ऐश्वर्यवान् ( सुनिष्काः ) कण्ठ में उत्तम सुवर्ण पदकादि धारण करने वाले, ( भूत हि ) हुआ करें। इसी प्रकार आचार्य के अधीन शिष्यगण बलवान् इन्द्रियों वाले, शुद्ध पवित्र देह वाले, ज्ञानमय वेद को मुख में धारण करने वाले, ज्ञानवान् उत्तम निष्काम कर्म करने वाले हों। ( वः ) वह आप लोगों के बीच ( अग्रियम् ) आगे का मुख्य पद ( अनु मदाय ) अनुकूल रहकर हर्ष प्राप्त करने के लिये ( चेति ) जाना जाता है। हे विद्वानो ! ( वः अग्रियं मदाय अनुचेति ) आप लोगों का अग्रिम ब्रह्मचर्य आश्रम इन्द्रिय-दमन के लिये उपयुक्त जाना जाता है।

ऋभुमृ॑भुक्षणो र॒यिं वाजे॑ वा॒जिन्त॑मं॒ युज॑म्।
इन्द्र॑स्वन्तं हवामहे सदा॒सात॑मम॒श्विन॑म् ॥ ५ ॥ ९ ॥

भा०—हे ( ऋभुक्षणः ) महोदयो ! हम लोग ( वाजे ) ज्ञान और बल के कार्य में, संग्रामादि के निमित्त ( ऋभुम् रयिम् ) बहुत अधिक ऐश्वर्य को प्राप्त करें। और ( ऋभुम् ) बहुत अधिक तेजस्वी, सत्य, ज्ञान, तेज से चमकने वाले, ( रयिं ) ऐश्वर्यवान् ( वाजिन्तमम् ) उत्तम वेगवान् अश्वादि साधनों के स्वामी, ( युजम् ) सबके संयोजक, सबके चित्तों का समाधान करने वाले, ( इन्द्रस्वन्तं ) ऐश्वर्य के स्वामी, सदा दानशील, ( अश्विनम् ) उत्तम अश्वों के स्वामी को ( हवामहे ) प्राप्त करें। इसी

प्रकार श्रेष्ठ ज्ञानी, सब शंकाओं के समाधाता, सदा ज्ञानप्रद, उत्तम जितेन्द्रिय, इन्द्र पदयुक्त पुरुष को ज्ञान प्राप्ति के लिये स्वीकार करें। इति नवमो वर्गः ॥

सेदृभवो यमवथ यूयमिन्द्रश्च मर्त्यम्।
स धीभिरस्तु सनिता मेधसाता सो अर्वता ॥ ६ ॥

भा०—हे ( ऋभवः ) विद्वान्, तेजस्वी पुरुषो! ( यम् मर्त्यम् ) जिस मनुष्य को ( यूयम् इन्द्रः च अवथ ) तुम और ऐश्वर्यवान् राजा रक्षा करते हैं या चाहते हैं वस्तुतः (सः इत्) वही श्रेष्ठ है। वही (धीभिः) उत्तम प्रज्ञा और कर्मों से ( सनिता ) सत्यासत्य का विवेक करने वाला, अन्यों को ज्ञानैश्वर्य देने वाला ( अस्तु ) हो और ( मेधसाता ) पवित्र यज्ञ के करने, पवित्र अन्न के देने और धर्म के संग्राम में ( सः ) वही ( अर्वता ) उत्तम ज्ञान, उत्तम ऐश्वर्य और उत्तम अश्व के सहित हो।

वि नो वाजा ऋभुक्षणः पथश्चितन यष्टवे।
अस्मभ्यं सूरयः स्तुता विश्वा आशास्तरीषणि ॥ ७ ॥

भा०—हे ( वाजाः ) ज्ञान और बल से युक्त ( ऋभुक्षणः ) गुणों में महान् और ( स्तुताः सूरयः ) प्रशंसित विद्वान् पुरुषो! आप लोग ( यष्टवे ) दान, मैत्री, सत्संग, देवपूजन आदि सत्कर्म करने के लिये उत्तम २ (पथः चितन) मार्गों का उपदेश करो, जानो। और (अस्मभ्यं) हम में (तरीषणि) संसार-सागर से पार उतरने का सामर्थ्य और (विश्वा आशाः) हमारी समस्त उत्तम आकांक्षाओं को पूर्ण करो। अथवा—सब दिशाओं को बलपूर्वक पार कर जाने के सामर्थ्य का उपदेश करो।

तं नो वाजा ऋभुक्षण इन्द्र नासत्या रयिम्।
समश्वं चर्षणिभ्य आ पुरु शस्त मघत्तये ॥ ८ ॥ १० ॥

भा०—हे ( वाजाः ) दानशील, ऐश्वर्यवान् लोगो! हे (ऋभुक्षणः) बड़े लोगो! हे ( इन्द्र ) शत्रुहन्तः! हे ( नासत्या ) असत्याचरण न

करने हारे सभापति, न्यायपति ! आप लोग (नः चर्षणिभ्यः) हम लोगों को (तं अश्वं रयिं) उस महान् धन की (सम् आ शस्त) अच्छी प्रकार प्रशंसा व उपदेश करें। जो (पुरु) बहुतों को पालन करने में समर्थ और (मघत्तये) उत्तम धन दान करने के लिये हो। इति दशमो वर्गः ॥

## [ ३८ ]

वामदेव ऋषिः ॥ १ द्यावापृथिव्यौ । २–१० दधिक्रा देवता ॥ छन्दः—१, ४ विराट् पंक्तिः । ६ भुरिक् पंक्तिः । २, ३ त्रिष्टुप् । ५, ८, ९, १० निचृत् त्रिष्टुप् । ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

उतो हि वां दात्रा सन्ति पूर्वा या पूरुभ्यस्त्रसदस्युर्नितोशे ।
क्षेत्रासां ददथुरुर्वरासां घनं दस्युभ्यो अभिभूतिमुग्रम् ॥ १ ॥

भा०—(या) जिन उत्तम पदार्थों को (त्रसदस्युः) दुष्ट पुरुषों को भयभीत करने वाला और भयभीत शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाला वीर सेनापति (नितोशे) प्रदान करता है हे (द्यावा-पृथिव्यौ) राजा और प्रजाजनो ! वे (दात्रा) दान योग्य (पूर्वा) पूर्व विद्यमान सभी पदार्थ (वाम् हि) निश्चय से तुम दोनों के ही हैं। क्योंकि, आप दोनों ही (क्षेत्रासां उर्वरासां घनं ददथुः) रणक्षेत्र वा कृषि क्षेत्रों को प्राप्त करने वाली और श्रेष्ठ धन प्रद भूमि को प्राप्त कराने वाला शत्रुनाशक सैन्यबल प्रस्तुत करते हो। आप दोनों ही (दस्युभ्यः) प्रजानाशक दुष्ट पुरुषों को नाश करने के लिये (उग्रम् घनं) उग्र आयुध और (अभिभूतिम् ददथुः) पराजय प्रदान करते हो।

उत वाजिनं पुरुनिष्षिध्वानं दधिक्रामु ददथुर्विश्वकृष्टिम् ।
ऋजिप्यं श्येनं प्रुषितप्सुमाशुं चर्कृत्यमर्यो नृपतिं न शूरम् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार स्त्री पुरुष (वाजिनं दधिक्राम् श्येनम् आशुं ददथुः)

वेगवान्, वलवान्, पीठ पर लेकर चलने वाले, उत्तम चाल वाले, तीव्र वेगवान् अश्व को पालते पोसते हैं उसी प्रकार राजा-प्रजावर्ग भी ( वाजिनम् ) ऐश्वर्यवान्, वलवान्, (पुरु-निः-षिध्वानं ) वहुत से शत्रुओं को परे हटा देने वाले, ( दधिक्राम् ) राष्ट्र को धारण करने वाले, सर्वातिशायी वल से आगे वढ़ने वाले, ( विश्वकृष्टिं ) समस्त कृषक और शत्रुकर्षक प्रजाओं, सेनाओं के स्वामी ( ऋजिप्यं ) सरल धार्मिक जनों के पालकों में उत्तम, ( श्येनम् ) श्येन पक्षी के समान वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाले वा उत्तम आचरणवान्, उत्तम ज्ञानयुक्त ( प्रुषित-प्सुम् ) स्निग्ध सात्विक और परिपक्क पदार्थों के भोजन करने वाले, ( आशुं ) वेगवान्, चुस्त, ( चर्कृत्यम् ) कार्य करने में कुशल वा ( अर्यः शूरं ) शत्रुओं के प्रति शूरवीर ( नृपतिं न ) प्रजास्थ पुरुषों के पालक के तुल्य नायकों के भी पालक पुरुष को ( ददथुः ) सव ऐश्वर्य प्रदान करें और अपने ऊपर धारण करें ।

**यं सीमनु प्रवतेव द्रवन्तं विश्वः पूरुर्मदति हर्षमाणः ।**
**पड्भिर्गृध्यन्तं मेधयुं न शूरं रथतुरं वातमिव ध्रजन्तम् ॥ २ ॥**

भा०—जिस प्रकार ( पड्भिः द्रवन्तं रथतुरं विश्वः हर्षमाणः मदति ) पैरों से दौड़ते हुए रथ में लगे तेज अश्व को देखकर सभी प्रसन्न होकर उसकी प्रशंसा करते हैं उसी प्रकार ( प्रवता इव द्रवन्तं ) नीचे मार्ग से वेग से वहते जल के समान ( सीम् द्रवन्तं पड्भिः ) गमन साधनों से सब तरफ द्रुतगति से जाने वाले ( गृध्यन्तं ) अन्य राष्ट्रों की विजय कामना करते हुए ( मेधयुं न शूरं ) संग्राम के इच्छुक, उत्साही शूरवीर के सदृश और ( ध्रजन्तम् ) वेग से जाने वाले ( वातम् इव ) वायु के समान ( रथ-तुरम् ) रथ से वेग से जाने वाले महारथी को राजा प्रजा दोनों धारण करें और उसको देख प्रसन्न हों ।

यः स्मारुन्धानो गध्या समत्सु सनुतरश्चरति गोषु गच्छन् ।
आविर्ऋजीको विदथा निचिक्यत्तिरो अरतिं पर्याप आयोः ॥४॥

भा०—( यः ) जो ( समत्सु ) संग्रामों में ( गध्या ) परस्पर मिलने वाले उभय पक्ष के वीरों को ( आरुन्धानः ) सब प्रकार से रोकता रहता है और जो ( सनुतरः चरति ) सबसे अधिक दानशील वा विवेकी होकर आचरण करता है, जो ( गोषु गच्छन् ) भूमियों और ज्ञान वाणियों में विचरता हुआ, (आविः-ऋजीकः) सरल धर्म मार्गों को साक्षात् प्रकट करता हुआ ( विदथा विचिक्यत् ) नाना ज्ञानों और धनों को खूब अच्छी प्रकार जान लेता और प्राप्त कर लेता है, वह पुरुष ( आपः आयोः अरतिम् परि-तिरः ) आप्त पुरुष या प्राप्त प्रजाजन के दुःखों को दूर करता है ।

उत स्मैनं वस्त्रमथिं न तायुमनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु ।
नीचायमानं जसुरिं न श्येनं श्रवश्चाच्छा पशुमच्च यूथम् ॥५॥११॥

भा०—(भरेषु = हरेषु वस्त्रमथिं तायुम् न अनुक्रोशन्ति) चोरियों के होने पर जिस प्रकार वस्त्रादि पदार्थों को बलात् हर ले जाने वाले चोर को लक्ष्य कर के लोग नाना प्रकार से कोसते उसी प्रकार ( भरेषु ) संग्राम के कार्यों में ( क्षितयः ) राष्ट्रवासी लोग ( वस्त्रमथिं ) रहने के मकान आदि वास योग्य पदार्थों के नाश करने वाले चोरवत् ( एनं ) इस राजा को भी ( अनुक्रोशन्ति ) बुरा भला कहा करते हैं और ( श्येनं न जसुरिं ) पक्षियों का नाश करने वाले श्येन पक्षी के तुल्य वेग से (श्रवः) अन्न और ( पशुमत् च यूथम् ) पशुओं से समृद्ध रेवड़ को ( अच्छ ) लक्ष्य करके ( नीचायमानं ) नीचता का आचरण करने वाले ( जसुरिं ) श्येनवत् प्रजा पर आक्रमण करने वाले हिंसक राजा को भी (अनु क्रोशन्ति) उसके कार्यों के लिये प्रजाजन बुरा भला कहते हैं। स्तुतिपक्षमें— वस्त्रहर चोर के समान ( वस्त्रमथिं ) ढांपलेने वाले मेघ को किरणों से मथने वाले, सूर्यवत् आवरणकारी, शत्रु सैन्य का मथन करने वाले ( एनं

अभि ) इस विजयी राजा को देखकर संग्रामों में ( क्षितयः ) राष्ट्र वासी प्रजाजन ( अनु क्रोशन्ति ) उसके अनुकूल होकर उसकी स्तुति करते हैं। इसी प्रकार ( श्येनं ) प्रशंसनीय ज्ञान और कर्माचरण वाले ( नीचायमानं ) नीचे झुकने वाले, विनयशील और ( श्रवः ) श्रवणयोग्य ज्ञान और कीर्त्ति तथा ( पशुमत् यूथम् ) पशुओं से युक्त यूथ, वा विषयों के देखने वाले चक्षु आदि इन्द्रिय गणों को लक्ष्य कर के भी उसकी ही स्तुति करते हैं। इत्येकादशो वर्गः ॥

उत स्मासु प्रथमः संरिष्यन्नि वेवेति श्रेणिभी रथानाम्।
स्रजं कृण्वानो जन्यो न शुभ्वा रेणुं रेरिहत्किरणं ददश्वान् ॥६॥

भा०—( उत स्म ) और ( आसु ) जो सेनाओं के बीच ( रथानां श्रेणिभिः ) रथों की पंक्तियों सहित ( सरिष्यन् इव ) शत्रु पर आक्रमण करने की इच्छा करता हुआ ( नि वेवेति ) सब प्रकार से तमतमाता है और जिस प्रकार सूर्य ( जन्यः ) प्रकट होता ( जन्यं ) सब जनों का हितकर ( शुभ्वा ) अति शोभायमान रूप से ( किरणं ददश्वान् ) किरणों को प्रदान करता हुआ ( स्रजं कृण्वानः ) सर्ग वा व्यापक किरणों को प्रकट करता हुआ, (रेणुं) रेणु (रेरिहत्) रेणु २ व्याप लेता है। वा जिस प्रकार ( किरणं ददश्वान् शुभ्वा स्रजं कृण्वानः जन्यः रेणुं रेरिहत् ) मुंह में लगे लोहखण्ड वा लगाम को चबाता हुआ, श्वेत, सजासजाया, माला पहने घोड़ा धूल उड़ाता या चाटता है उसी प्रकार प्रतापी राजा, ( जन्यः ) सब जनों में श्रेष्ठ, सर्वहितकारी, सबसे अधिक उत्तम रूप से प्रकट होने वाला, ( शुभ्वा ) शोभायमान, शुभ गुणकर्मसम्पन्न और ( स्रजं कृण्वानः ) माला धारण करके ( जन्यः न ) वधू के अभिलाषी वर के तुल्य सज धज कर ( किरणं ददश्वान् ) तेज को धारण करता हुआ वा शत्रु को तितर बितर कर देने वाले शस्त्रास्त्र वर्ग को धारण करता हुआ, ( रेणुं रेरिहत् ) अपने सैन्य द्वारा धूलि को उड़ावे, अथवा रेणु अर्थात् हिंसक दुष्ट और तुच्छ जन को नाश करे।

उत स्य वाजी सहुरिर्ऋतावा शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
तुरं यतीषु तुरयन्नृजिप्योऽधि भ्रुवोः किरते रेणुमृञ्जन् ॥ ७ ॥

भा०—( वाजी सहुरिः समर्ये तन्वा शुश्रूषमाणाः तुरंयतीषु तुरयन् ऋजुम् ऋञ्जन् भ्रुवोः अधिकुरुते ) जिस प्रकार वेगवान् अश्व सहनशील होकर संग्राम में अपने शरीर से सेवा करता हुआ वेग से जाने वाली सेनाओं के बीच वेग से जाता हुआ, धूल उड़ाता हुआ, अपने भौंहों के ऊपर भी धूल डाल लेता है उसी प्रकार ( स्यः ) जो ( वाजी ) ऐश्वर्य-वान्, बलवान् और ज्ञानवान् पुरुष ( ऋतावा ) अन्न, धन तेज और ज्ञान से सम्पन्न होकर ( समर्ये ) संग्राम में और उत्तम, समान पुरुषों के सहयोग में, अन्तेवासी या और सुहृदों के बीच ( तन्वा ) अपने देह से ( शुश्रूषमाणः ) देश वा गुरु आदि की शुश्रूषा करता हुआ, वेदादि सत् शास्त्रों के श्रवण करने की इच्छा करता हुआ, (तुरं यतीषु) वेग से जाने वाली सेनाओं और प्रयत्नशील प्रजाओं के बीच ( तुरं तुरयन् ) वेगवान् रथादि साधनों का वेग से चलाता हुआ, ( रेणुम् ऋञ्जन् ) धूलि के समान तुच्छ शत्रु-दल को वश करता हुआ ( भ्रुवोः अधि ) भौंहों के सञ्चालन मात्र से, आंख के इशारे भर से, उन पर भौंहों के वक्र क्रोधभाव दर्शानेमात्र से ( अधि किरते ) उनपर खूब शास्त्रास्त्र वर्षा करता है।

उत स्म॒स्य तन्यतोरिव द्योर्ऋघायतो अभियुजो भयन्ते ।
यदा सहस्रमभि षीमयोधीद्दुर्वर्तुः स्मा भवति भीम ऋञ्जन् ॥८॥

भा०—( द्योः तन्यतोः इव ) जिस प्रकार चमचमाती घातक बिजुली से लोग डरते हैं उसी प्रकार ( अस्य ) उस ( द्योः ) विजयशील, ( ऋघायतः ) शत्रु की हिंसा करने हारे, ( अभियुजः ) आमक्रणकारी सेना-पति से शत्रु लोग ( भयन्ते ) भय करते हैं ! ( यदा ) जब वह ( सीम् ) सब ओर स्थित ( सहस्रम् ) समस्त हज़ारों शत्रु सैन्यों के मुक़ाबले पर

( अभि अयोधीत् ) डट कर सब पर प्रहार करता और सब से एक साथ युद्ध करता है, तब वह ( ऋञ्जन् ) शत्रुओं को वश करता हुआ (दुर्वर्तुः) कठिनता से वरण करने योग्य और ( भीमः ) अति भयंकर (भवति स्म ) हो जाता है ।

**उत स्मास्य पनयन्ति जना जूतिं कृष्टिप्रो अभिभूतिमाशोः ।**
**उतैनमाहुः समिथे वियन्तः परा दधिक्रा असरत्सहस्रैः ॥ ९ ॥**

भा०—( उत ) और जिस प्रकार ( जनाः कृषिप्रः जूतिं पनयन्ति ) लोग कर्षण करने योग्य रथादि को पूर्ण करने वाला उसको अंगभूत होकर जुते हुए अश्व के वेग को कार्य व्यवहार में लाते और उसकी स्तुति करते हैं और जिस प्रकार ( आशोः अभिभूतिम् ) व्यापक विद्युत् के सर्वत्र व्यापन गुण को विद्वान् जन कार्य में लाते और वर्णन करते हैं और जिस प्रकार (वि यन्तः) विविध मार्गों वा उपायों से जाने वाले लोग ( समिथे-एनम् आहुः ) प्राप्त होने पर कहते हैं कि वह (दधिक्राः सहस्रैः परा असरत् ) धारण करके ले चलने में समर्थ विद्युत् या अश्वादि हजारों मील के वेगों से दूर तक जाने में समर्थ होता है उसी प्रकार ( जनाः ) लोग (उत) भी (अस्य) इस (कृष्टिप्रः) 'कृष्टि' अर्थात् जनों और राष्ट्रवासी प्रजा जनों को ऐश्वर्य समृद्धि से पूर्ण करने हारे राजा के ( जूतिम् ) वेगयुक्त आक्रमणकारिणी वेगवती सेना की और (आशोः) अति वेगवान् शीघ्रकारी इसके ( अभिभूतिम् ) शत्रु पराजयकारी सामर्थ्य की ( पनयन्ति ) स्तुति करते और उसका सदुपयोग करते हैं । और ( वियन्तः ) विविध मार्गों और चालों से जाने वाले वीर लोग ( समिथे ) संग्राम के अवसर पर एनम् आहुः ) उसके विषय मे कहते हैं कि ( दधिक्राः ) सबको अपने वश में धारण करके शत्रु पर आक्रमण करने में समर्थ वीर पुरुष ही ( सहस्रैः ) शत्रु पर विजय प्राप्त करने वाले सहस्रों वा बलवान् सैन्यों सहित ( परा असरत् ) दूर तक आक्रमण करने में समर्थ है ।

आ द॒धि॒क्राः शव॑सा॒ पञ्च॑ कृ॒ष्टीः सूर्य॑ इव॒ ज्योति॑षा॒पस्त॑तान ।
स॒ह॒स्र॒साः श॑त॒सा वा॒ज्यर्वा॑ पृ॒णक्तु॒ मध्वा॒ समि॒मा वचां॑सि १०।१२

भा—( सूर्य इव ज्योतिषा अपः ततान ) सूर्य जिस प्रकार प्रकाश या तेज के बल से जलमय मेघों को विस्तारित करता है, उसी प्रकार ( दधिक्राः ) राष्ट्र को धारण करके शत्रु पर आक्रमण करने या उसको रथवत् चलाने में कुशल पुरुष ( शवसा ) अपने बल से ( पञ्च कृष्टीः ) पांचों प्रजाजनों को ( आ ततान ) विस्तृत करे और वश करे। वह ( सहस्र-साः ) सहस्रों को देने वाला और ( शत-साः ) सैकड़ों का दाता, ( वाजी ) अन्न, ज्ञान, ऐश्वर्यादि का स्वामी ( अर्वा ) शत्रुहिंसक होकर भी ( इमा वचांशि ) इन वचनों को ( मध्वा ) मधुर गुण से ( सं मृणक्तु ) युक्त करे। ( २ ) ज्ञान धारण करके अन्यों को उपदेश करने से विद्वान् पुरुष भी 'दधिक्राः' है। वह ज्ञान ज्योति से सबको व्यापे, वचनों के मधुर ज्ञान से युक्त करे। इति द्वादशो वर्गः ॥

## [ ३९ ]

वामदेव ऋषिः ॥ दधिक्रा देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ४ स्वराट् पंक्तिः । ६ अनुष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

आ॒शुं द॑धि॒क्रां तमु॒ नु ष्ट॑वाम दि॒वस्पृ॑थि॒व्या उ॒त च॑र्किराम ।
उ॒च्छन्ती॒र्मामु॒षस॑ः सूदय॒न्त्वति॒ विश्वा॑नि दुरि॒तानि॑ पर्ष॑न् ॥ १ ॥

भा०—(आशुं) वेगवान् (दधिक्राम्) धारण करके पीठ पर लेकर चलने में समर्थ अश्व के तुल्य ( दिवः पृथिव्याः दधिक्राम् ) आकाश और भूमि दोनों को धारण करने वाले और चलाने वाले ( तम् अनु ) उस परमे की ही निश्चय से हम स्तुति करें ( उत ) और ( तम् अनु चर्किर उसके गुणों को सर्वत्र फैलावें। (उच्छन्तीः) अन्धकार को दूर करती हुई

( उषसः ) प्रभात वेलाओं के समान ज्ञान-दीप्तियां और धार्मिक अग्नियें ( माम् सूदयन्तु ) मुझे अपना रस प्रदान करें, और वे मुझे ( विश्वानि दुरितानि पर्षन् ) समस्त बुराइयों से पार करें। ( २ ) राष्ट्रपक्ष में—राष्ट्र का धारक, सञ्चालक विद्वान् 'दधिक्रा' है। राजा जो तेजस्वी ज्ञानवान् पुरुषों और सामान्य भूमि निवासी प्रजा दोनों को धारण करता है, शत्रु दाहक सेनाएं मुझ राष्ट्र प्रजा को ऐश्वर्य दें और सब दुःखदायी संकटों से पार करें। अथवा उत्तरार्ध मन्त्र राजा का सेनाओं या प्रजाओं के प्रति है, कि वे प्रभात-वेला के समान ( उच्छन्तीः ) मनोभावों को प्रकट करती हुई ( माम् सूदयन्तु ) मुझ राजा का अभिषेक करें, और सब पापों से पार करें।

महश्चर्कर्म्यर्वतः क्रतुप्रा दधिक्राव्णः पुरुवारस्य वृष्णः।
यं पूरुभ्यो दीदिवांसं नाग्निं ददथुर्मित्रावरुणा ततुरिम् ॥ २ ॥

भा०—( दधि-क्राव्णः ) ज्ञानैश्वर्य के धारक विद्वानों की कामना करने वाले ( पुरु-वारस्य ) बहुत सों से वरण करने योग्य (वृष्णः) मेघवत् प्रजा पर सुखों की वृष्टि करने वाले पुरुष के ( अर्वतः ) विद्वानों और ( क्रतुप्राः ) उसके ज्ञानों कौर यज्ञों को पूर्ण करने वाले ( महः ) बड़े २ पुरुषों की मैं सेवा ( चर्कर्मि ) सेवा करता हूं अथवा, मैं ज्ञानपूरक पुरुष, उस महान् शत्रुहिंसक की सेवा करूं ( यं ) जिसको ( मित्रावरुणा ) दिन रात जिस प्रकार सूर्य को धारण करते और प्राण उदान जिस प्रकार देह में आत्मा को धारण करते हैं उसी प्रकार मित्र और वरुण, न्यायपति और सेनापति दोनों ( दीदिवांसं ) तेजस्वी ( अग्निन् ) अग्नि के तुल्य, और ( ततुरिम् ) शीघ्र कार्यकारी, अप्रमादी पुरुष अग्रणी नायक रूप से ( पूरुभ्यः ) समृद्ध प्रजाजनों के हितार्थ ( ददथुः ) देते हैं।

यो अश्वस्य दधिक्राव्णो अकारीत्समिद्धे अग्ना उषसो व्युष्टौ।
अनागसं तमदितिः कृणोतु स मित्रेण स वरुणेना सजोषाः ॥३

भा०—( यः ) जो पुरुष ( अश्वस्य ) विद्याओं में व्यापक, बलवान्

( दधिक्राव्णः ) व्रत धारण करने वालों को आगे के सत्पथ पर चलाने वाले परमेश्वर वा आचार्य की ( अग्नौ समिद्धे ) अग्नि के प्रज्वलित होने पर और ( उषसः व्युष्टौ ) उषा के समान जीवन के प्रभात, बाल्यकाल के खिलने के अवसर में ( अकारीत् ) सेवा और शुश्रूषा करता है ( तम् ) उसको ( अदितिः ) माता पिता व बन्धुवर्ग वा ब्रह्मचर्य का अखण्ड व्रती वा सूर्यवत् तेजस्वी विद्वान् ( अनागसं ) पापरहित ( कृणोतु ) करे और वह ( मित्रेण ) मित्र, स्नेही वर्ग और श्रेष्ठ पुरुषों के साथ ( सजोषाः ) प्रेमपूर्वक रहता है। ( २ ) परमेश्वर पक्ष में—दधिक्रावा अदिति मित्र वरुण सब प्रभु के नाम हैं, अग्नि प्रज्वलित कर यज्ञ में और प्रभात वेला में उस व्यापक सबके धारक प्रभु की उपासना करता है, अखण्ड प्रभु उसको आपद्-रहित करता है वह परमेश्वर मित्र, और वरणीय रूप से प्रेम करता है।

दधिक्राव्ण इष ऊर्जो महो यदमन्महि मरुतां नाम भद्रम्।
स्वस्तये वरुणं मित्रमग्निं हवामह इन्द्रं वज्रबाहुम् ॥ ४ ॥

भा०—( यत् ) जिस ( दधिक्राव्णः ) विश्व के धारक पञ्चमहाभूतों को भी धारण करने वाले परमेश्वर की ( इषः ) सर्वप्रेरक शक्ति और ( ऊर्जः ) बल का ( भद्रम् नाम ) कल्याणकारी स्वरूप हम ( मरुताम् ) प्राणों के बीच वा विद्वानों के बीच ( अमन्महि ) ज्ञान करें उसी ( वरुणं मित्रम् अग्निम् इन्द्रं वज्र-बाहुम् ) सर्वश्रेष्ठ, सबके मित्र, सबके प्रकाशक, सर्वैश्वर्यवान्, ज्ञान से समस्त अज्ञान का नाश करने वाले परमेश्वर को हम ( स्वस्तये ) अपने कल्याण के लिये ( हवामहे ) स्तुति करें। ( २ ) अन्नादि के स्वामी, पराक्रमी राष्ट्रधारक नायकों के भी सञ्चालक पुरुष के सर्व-सुखकारी स्वरूप को हम पहचानें। उस सर्वश्रेष्ठ, सबके मित्र, नायक, तेजस्वी, ऐश्वर्यवान् सर्वशक्तिधर को हम प्रजाजन अपने कल्याण के लिये स्वीकार करें।

इन्द्रमिवेदुभये वि ह्वयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।
दधिक्रामु सूदनं मर्त्याय ददथुर्मित्रावरुणा नो अश्वम् ॥ ५ ॥

भा०—( उद् ईराणाः ) उद्योग करने वाले और ( यज्ञम् उपप्रयन्तः ) यज्ञ को, वा उपास्य इष्ट देव की उपासना करने वाले वा युद्धोपयोगी संघ बना कर स्थित प्रजाजन ( उभये ) दोनों ही ( इन्द्रम् इव इत् ) उस ऐश्वर्यवान् परमेश्वर और उसके समान अन्य ऐश्वर्यवान् को ही ( वि ह्वयन्ते ) विविध प्रकार से पुकारते, याद करते और स्पर्धा करते हैं । और ( मित्रा वरुणा ) हे दिन और रात्रि के तुल्य मित्र और वरुण, सर्व स्नेही और सर्व श्रेष्ठ पुरुषो ! आप दोनों ही ( नः ) हमारे ( मर्त्याय ) मनुष्य मात्र के कल्याण के लिये ( सूदन् उ ददथुः ) सब प्रकार के सुख समृद्धि के दाता वा अभिषेक योग्य ( दधिक्राम् ) सर्व-धारण कर्त्ता अध्यक्षों से बढ़कर और उनके सञ्चालक पुरुष को हमें (ददथुः) प्रदान करो ।

दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ६ ॥ १३ ॥

भा०—मैं ( दधिक्राव्णः ) न्याय मार्ग पर चलने वाले वा सर्व-धारक सर्वचालक, ( जिष्णोः ) सर्वविजयी ( अश्वस्य ) सर्वव्यापक, सबके उत्तम गुणों के धारक, (वाजिनः) ज्ञानवान्, ऐश्वर्यवान्, ईश्वर और राजा के ( अकारिषं ) उपासना और आज्ञा का पालन करूं । वह ( नः ) हमारे ( मुखा ) चक्षु आदि इन्द्रिय रूप मुख्य अंगों को ( सुरभि करत् ) उत्तम कर्म करने में समर्थ, दृढ़ ( करत् ) करे । और ( नः ) हमारे (आयूंषि) जीवनों की (प्र तारिषत्) खूब वृद्धि करे । इति त्रयोदशो वर्गः॥

## [ ४० ]

वामदेव ऋषिः ॥ १-४ दधिक्रावा । ५ सूर्यश्च देवता ॥ छन्दः—१ निचृत् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ३ स्वराट् त्रिष्टुप् । ४ भुरिक् त्रिष्टुप् । ५ निचृज्जगती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

दुधिक्राव्ण इदु नु चर्किराम विश्वा इन्मामुषसः सूदयन्तु ।
अपामग्नेरुषसः सूर्यस्य बृहस्पतेराङ्गिरसस्य जिष्णोः ॥ १ ॥

भा०—हम प्रजागण ( दधिक्राव्णः ) विश्व को धारण करने वाले मूल कारणों को प्रेरित करने वाले परमेश्वर के समान ( इत् उ ) ही सदा राष्ट्रधारक अध्यक्षों के सञ्चालक राजा के गुणों को सर्वत्र फैलावें । राजा चाहे कि ( विश्वाः इत् ) समस्त ( उषसः ) चाहने वाली, कामनाशील प्रजाएं और तेजस्विनी सेनाएं ( माम् ) मुझ राजा का ( सूदयन्तु ) अभिषेक करें, ऐश्वर्यों से सेच कर वृक्षवत् बढ़ावें । और हम ( अपाम् ) आप्त-जनों के ( अग्नेः ) अग्रणी, तेजस्वी विद्वान् के ( उषसः ) कान्तिमती वा कामनावाली विदुषी स्त्री या शत्रुदाहक सेना के, ( सूर्यस्य ) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के, और (बृहस्पतेः) बड़े भारी राष्ट्र पालक और वेदज्ञ विद्वान् के और ( आङ्गिरसस्य ) प्राणों के बीच स्थित आत्मवत् मुख्य तेजस्वी पुरुष के और ( जिष्णोः ) विजयशील पुरुष के ( चर्किराम ) गुणों को सर्वत्र फैलावें । ( २ ) परमेश्वर पक्ष में—उसके गुणों को फैलावें सब नये दिन मुझे बढ़ावें । ( अपाम् ) सब में व्यापक ( अग्नेः ) सबके प्रकाशक ( उषसः ) सब पापों के दाहक ( सूर्यस्य ) सूर्यवत् स्वयं प्रकाश, तेजोमय ( बृहस्पतेः ) महान् ब्रह्माण्ड के पालक ( आङ्गिरसस्य ) तेजस्वियों में अति तेजस्वी, ( जिष्णोः ) सर्वातिशायी परमेश्वर के गुणों का हम स्तवन करें और अन्यों को भी उपदेश दें ।

सत्वा भरिषो गविषो दुवन्यसच्छ्रवस्यादिष उषसस्तुरण्यसत् ।
सत्यो द्रवो द्रवरः पतङ्गरो दधिक्रावेषमूर्जं स्वर्जनत् ॥ २ ॥

भा०—परमेश्वर और राजा के समान गुण हैं । वह प्रभु परमेश्वर ( सत्वा ) सर्वव्यापक, ( भरिषः ) सबको धारण पोषण करने वाला, ( गविषः ) ज्ञान वाणियों को प्रेरणा करने वाला, ( दुवन्यसत् ) अपने

सेवक भक्तजनों को चाहने वाला ( तुरण्यसत् ) अति वेग से जाने वाले विद्युत् प्रकाशादि पदार्थों में भी व्यापक है, वह ( इषः ) अन्नों वृष्टियों और ( उषसः ) प्रभात वेलाओं के सूर्य के तुल्य ( इषः ) समस्त कामना और ( उषसः ) पापनाशक, ज्ञान प्रकाशों को प्रदान करे। वह (सत्यः) समस्त सत् कारणों में विद्यमान, सत्य स्वरूप ( द्रवः ) सर्व व्यापक, रस के समान सब में वहता हुआ, ( द्रवरः ) समस्त द्रव पदार्थों वा स्नेहादि रसों का भी प्रदाता, ( पतङ्गरः ) सदा गतिशील वायु, अग्नि आदि में भी शक्ति को देने वाला, ( दधिक्रावा ) जगत् के धारक तत्वों का चलाने और सबको स्वयं धारण कर समस्त जगत् को चलाने वाला है। वह हमें ( इषम् ) अन्न, उत्तम इच्छा ( ऊर्जम् ) बल और ( स्वः ) सुख और परम उपदेश ( जनत् ) उत्पन्न करे। ( २ ) राजा ( सत्वा ) बलवान्, प्रजा पालक, भूमियों का शासक, सेवकों के बीच स्थित ( इषः ) सेनाओं और चाहने वाली उत्तम प्रजाओं को वेग से चलाने वाला, ( सत्यः ) सज्जनों में सर्वोत्तम, सत्य न्यायपरायण ( द्रवरः ) दयार्द्र, ( द्रवरः ) स्नेह से दान देने वाला, ( पतङ्गरः ) वायु वा अग्निवत् प्रकाश वा जीवन का दाता, ( दधिक्रावाः ) धारक अध्यक्षों का सञ्चालक हो। वह ( इषम् ऊर्जं स्वः जनत् ) राष्ट्र में अन्न, बल और सुख शान्ति उत्पन्न करे।

**उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनु वाति प्रगर्धिनः।**
**श्येनस्येव ध्रजतो अङ्कसं परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः॥३॥**

भा०—( तुरण्यतः वेः पर्णं न ) जिस प्रकार वेग से जाने वाले पक्षी वा बाण का पंख उसके पीछे वायु-वेग से जाते हैं उसी प्रकार ( अस्य ) इस ( द्रवतः ) वेग से शत्रु पर चढ़ाई करते हुए ( तुरण्यतः ) अति शीघ्रगामी अश्वों से आगे बढ़ते हुए, ( प्रगर्धिनः ) अति उत्तमता से राष्ट्र को लेने की कांक्षा करते हुए (वेः) कान्तिमान तेजस्वी इस राजा के (उत स्म) भी ( पर्णम् अनु वाति ) अनुकूल पालक बल, सैन्य आदि चले। (ध्रजतः

श्येनस्य इव अङ्कसं ) वेग से जाते हुए श्येन के जिस प्रकार छाती के ऊपर ( पर्णम् ) पंख चिपट जाते हैं उसी प्रकार ( श्येनस्य ) प्रशंसनीय प्रयाण करने वाले वा उत्तम आचरणशील ( ध्रजतः ) वेग से आगे बढ़ते हुए, ( दधिक्राव्णः ) धारक पोषकों के सञ्चालक और ( ऊर्जा सह ) बल पूर्वक ( तरित्रतः ) स्वयं पार हो जाने और राष्ट्र को भी संकट से पार उतारने वाले पुरुष के ( अंकसं परि ) लक्षणानुसार, पदानुसार ही (पर्णं) पालक बल सैन्यादि हों ( २ ) इसी प्रकार ( द्रवतः प्रगर्धिनः वे पर्णं अनु वाति ) शरीर से शरीरान्तर में जाने वाले कामनाशील जीव के 'पर्णं' गमन साधन, कर्म, धर्माधर्म उसके साथ जाता है। (ऊर्जा सह तरित्रतः ) ब्रह्म ज्ञान के साथ संसार बन्धनों से पार उतरते हुए के (श्येनस्य ध्रजतः) अति वेग से जाने वाले ज्ञानी पुरुष का ( अङ्कसं परि ) ज्ञान सर्वोपरि रहता है।

उत स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो अपिकक्ष आसनि।
क्रतुं दधिक्रा अनु संतवीत्वत्पथामङ्कांस्यन्वापनीफणत् ॥ ४ ॥

भा०—( ग्रीवायां बद्धः अपिकक्षे आसनि बद्धः वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ) गर्दन, कमर और मुंह में बंधा हुआ वेगवान् अश्व जिस प्रकार शीघ्रता से ले जाने वाले सवार को वेग से ले जाता है। वा (क्षिपणिं तुरण्यति) सञ्चालनी कशा को देखकर वह वेग से भागता है। उसी प्रकार (स्यः वाजी) वह ज्ञानवान् जीव ( ग्रीवायां बद्धः ) निगलने वाली भोग कामना वा गर्दन, (अपिकक्षे) पार्श्व और (आसनि) मुख आदि देहावयवों में बद्ध होकर भी (क्षिपणिं) सब अज्ञान बन्धनों को दूर फेंक देने वाली ज्ञान मुद्रा को प्राप्त कर (तुरण्यति) वेग से आगे बढ़ता है। और जिस प्रकार ( दधिक्राः अनु सं तवीत्वत् ) अपनी पीठ पर लेकर चलने वाला अश्व बराबर वेग में चलता रहता है और ( पथाम् अंकसि ) मार्गों के सब चिह्नों को पार कर जाता है उसी प्रकार ( दधिक्राः ) ध्यान वेग से आगे बढ़ने वाला ज्ञानी

पुरुष ( क्रतुम् अनु संतवीत्वत् ) कर्म और प्रज्ञा के अनुसार आगे बढ़े और ( पथाम् ) ज्ञान मार्गों के ( अंकासि ) स्वरूपों को ( अनु आ पनीफणत् ) क्रम से प्राप्त करे और बराबर आगे बढ़ता जाय ।

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ॥५॥१४॥

भा०—वह आत्मा कैसा है । ( हंसः ) हंस के समान नीर क्षीरवत् सत्यासत्य का विवेकी और स्वयं बन्धनों का नाशक, ( शुचि-सद् ) शुद्धस्वरूप में विद्यमान, ( अन्तरिक्ष-सत् ) वायु के तुल्य अन्तरिक्ष या *अन्तरात्मा चित्त के भी भीतर विद्यमान*, ( होता ) सुख दुःखों का भोक्ता, ( वेदिषद् ) वेदि में होता के तुल्य सुख दुःख प्राप्त कराने वाली देह भूमि में विराजमान, ( अतिथिः ) अतिथि के समान घर से घर में घूमने वाले परिव्राजकवत्, ( दुरोण-सद् ) गृह में गृहपति के तुल्य विराजने वाला, (नृ-सद्) नायकों में मुख्याध्यक्ष के तुल्य देह के नेता प्राणगण में विराजमान, ( वर-सद् ) वरण करने योग्य अन्न के तुल्य परम श्रेष्ठ ब्रह्म में विराजमान, ( व्योम-सद् ) आकाश में स्थित सूर्य वा वायु के तुल्य, विविध रक्षा से युक्त परमेश्वर की शरण में विद्यमान, ( अब्जाः ) जलों में अनायास प्रकट कमलवत् प्राणों में शक्ति रूप से प्रकट, (गोजाः) गौओं में गो-रस और किरणों में प्रकाश के तुल्य ज्ञानेन्द्रियों में ज्ञान रूप से प्रकट, ( ऋतजाः ) सत्य में स्थित, ( अद्रिजाः ) मेघों में जलवत् अखण्ड ब्रह्म में स्थित, स्वयं ( ऋतम् ) अन्न के तुल्य ज्ञानमय ब्रह्म का लाभ करे । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

## [ ४१ ]

वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ५, ९, ११ त्रिष्टुप् । २, ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ६ विराट् त्रिष्टुप् । ७ पंक्तिः । ८, १० स्वराट् पंक्तिः ॥
एकादशं सूक्तम् ॥

इन्द्रा को वां वरुणा सुम्नमाप स्तोमो हविष्माँ अमृतो न होता।
यो वां हृदि क्रतुमाँ अस्मदुक्तः पस्पर्शदिन्द्रावरुणा नमस्वान् ॥१॥

भा०—हे ( इन्द्रावरुणा ) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन्तः ! हे वरण करने योग्य और दुःखों के वारण करने हारे जनो ! ( वाम् ) तुम दोनों में से ( कः ) कौन ऐसा है जो ( स्तोमः ) स्तुति करने योग्य ( हविष्मान् ) अन्नादि ग्राह्य पदार्थों का स्वामी, ( होता न ) दानशील के समान (अमृतः) अमर, दीर्घजीवी होकर ( सुम्नम् ) सुख वा उत्तम रीति से मनन करने योग्य ज्ञान को ( आप ) प्राप्त करे। वा स्तुत्य, अन्नादि समृद्ध, दाता, दीर्घजीवी होकर ( वां सुम्नम् आप ) तुम दोनों के सुख आनन्द को कौन प्राप्त करता है ? [ उत्तर ] ( यः ) जो ( क्रतुमान् ) कर्म और ज्ञान से युक्त ( नमस्वान् ) अन्नादि दातव्य पदार्थों और नमस्कार, सत्कार आदि साधनों से विनयशील होकर हे ( इन्द्रा-वरुणा ) इन्द्र और वरुण ! हे अज्ञाननाशक हे दुःखवारक विद्वानो ! ( वां हृदि ) आप दोनों के हृदय में ( पस्पर्शत् ) स्पर्श करे, हृदय में हृदय मिलाकर एक चित्त, प्रिय, प्रेमपात्र हो जावे वह ( अस्मद् उक्तः ) हम से भी प्रशंसा-योग्य होता है। इन्द्र और वरुण गुरुजन हैं। [ प्रश्न ] उनके विद्यानन्द वा ज्ञान को कौन आयुष्मान् त्यागी ( स्तोमः ) स्तुत्य, उपदेष्टव्य शिष्य प्राप्त कर सकता है ! [ उत्तर ] जो ( नमस्वान् ) अति विनयशील प्रज्ञा-वान् एवं क्रियावान् होकर उनके हृदय में स्पर्श करे, उनके चित्त को पकड़ ले। वही उनके मननयोग्य ज्ञान को प्रात करता है। गुरु शिष्य दोनों हृदय स्पर्श करके एक दूसरे का चित्त ग्रहण करते हैं ऐसी 'पद्धति' वेदा-रम्भ काल में होती है। ( २ ) ऐश्वर्यवान् होने से 'इन्द्र' पुरुष है। वरण करने से पतिंवरा स्त्री 'वरुण' है। प्रश्न है कि आप दोनों में से कौन स्तुत्य, अन्नादि का स्वामी दीर्घायु, त्यागी होकर सुख पाता है। [ उत्तर ] आप दोनों में से जो प्रज्ञावान्, क्रियावान्, अन्नादि से युक्त और

सत्कार विनयादि से युक्त एक दूसरे का हृदय स्पर्श कर लें वही आप दोनों में से सुख पा सकता है। इस प्रकार स्त्री पुरुषों में से दोनों विवाह में परस्पर हृदय स्पर्श करते हैं। प्रेमी रहकर ही वे एक दूसरे का सुख पा सकते हैं। गुरु शिष्य दोनों में सूर्यवद् गुरु 'इन्द्र' और वरण करने से शिष्य 'वरुण' है। राजा 'इन्द्र' और वरण करने से प्रजा 'वरुण' है। सूर्य 'इन्द्र' पृथ्वी वा जल 'वरुण' है। दिन 'इन्द्र' रात्रि वरुण है। प्राण 'इन्द्र' और अपान 'वरुण' है। अध्यात्म मे प्राणवान का सुख वह अन्नवान् भोक्ता आत्मा वा साधक पाता है जो ज्ञानवान् क्रियाक्षम होकर 'हृदय' यन्त्र पर वश करता है।

इन्द्रा॑ ह॒ यो वरु॑णा च॒क्र आ॒पी दे॒वौ मर्तः॑ स॒ख्याय॒ प्रय॑स्वान् ।
स ह॑न्ति वृ॒त्रा स॑मि॒थेषु॒ शत्रू॒नवो॑भिर्वा म॒हद्भिः॒ स प्र शृ॑ण्वे ॥२॥

भा०—हे ( इन्द्र-वरुणा ) पूर्व कहे प्रकार के इन्द्र और वरुण ! ऐश्वर्ययुक्त एवं वरण करने योग्य और एक दूसरे का वरण करने वाले जनो ! हे ( ( देवौ ) ज्ञान के प्रकाश, विद्या एवं सत्संग के अभिलाषी जनो ! आप दोनों को ( यः ) जो ( मर्त्तः ) मनुष्य. ( सख्याय ) मित्र भाव की वृद्धि के लिये ( प्रयस्वान् ) अति उत्तम रीति से यत्नवान् होकर आप दोनों को ( आपी चक्रे ) एक दूसरे को प्राप्त करने वाला वन्धु वनाता है ( सः ) वह ( समिथेषु शत्रून् ) संग्रामों में शत्रुओं और परस्पर मिलने के अवसरों में ( वृत्रा ) विघ्नों को ( हन्ति ) विनाश करता है और ( सः ) वही ( महद्भिः अवोभिः ) बड़े २ रक्षाकारी साधनों, ज्ञानों, और अन्नादि तृप्तिकारक उपायों से ( प्र श्रृण्वे ) खूब प्रसिद्ध हो जाता है।

इन्द्रा॑ ह॒ रत्नं॒ वरु॑णा धेष्ठ॒त्था नृभ्यः॑ शशमा॒नेभ्य॒स्ता ।
यदी॒ सखा॑या स॒ख्याय॒ सोमैः॑ सु॒तेभिः॑ सु॒प्रय॑सा मा॒दयै॑ते ॥ ३ ॥

भा०—हे ( इन्द्रा वरुणा ) पूर्वोक्त इन्द्र और वरुण ! ऐश्वर्यवन् ! और एक दूसरे को प्रेम से स्वीकार करने वाले स्त्री पुरुषो ! राजा प्रजा-

जनो ! ( ता ) वे आप दोनों ! ( शशमानेभ्यः नृभ्यः ) उत्तम ज्ञान का अनुशासन या उपदेश करने वाले विद्वान् पुरुषों और प्रधान नायकों को ( रत्नं ) उत्तम रत्न, रमण करने योग्य ज्ञान अन्न आदि का ( धेष्ठा ) देने वाले होओ। ( यदि ) जब कि साथ ही आप दोनों ( सखाया ) एक दूसरे के मित्र रहते हुए ( सोमैः ) उत्पन्न किये हुए ( सुतेभिः ) पुत्रों सहित, और उत्पन्न किये ऐश्वर्यों सहित ( सुप्रयसा ) उत्तम प्रयत्न और उत्तम अन्नादि से ( मादयैते ) स्वयं आनन्द लाभ करो और औरों को भी सुखी करो।

**इन्द्रा युवं वरुणा दि्द्युमस्मिन्नोजिष्ठमुग्रा नि वधिष्टं वज्रम्।**
**यो नो दुरेवो वृकतिर्दभीतिस्तस्मिन्मिमाथामभिभूत्योजः ॥४॥**

भा०—हे ( इन्द्रा वरुणा ) शत्रु हनन करने वाले, हे दुष्टों के निवारण करने वाले ( युवं ) आप दोनों ! ( उग्रा ) बलवान् होओ। और ( यः ) जो ( नः ) हम में से, ( दुरेवः ) दुराचारी, दुष्ट कर्म करने वाला, ( वृकतिः ) चोर वा भेड़िये के समान छली, ( दभीतिः ) हत्याकारी हो ( अस्मिन् ) उस पर ( दिद्युम् ) चमकता ( ओजिष्ठं वज्रम् ) अति तेजस्वी शस्त्र ( नि वधिष्टम् ) प्रहार करो। और ( तस्मिन् ) उस पर ही ( अभिभूति ओजः ) परपराजयकारी पराक्रम भी ( मिमाथाम् ) करो। और अध्यात्म में ओजिष्ठ वज्र, तप, ज्ञान, वैराग्य है।

**इन्द्रा युवं वरुणा भूतमस्या धियः प्रेतारा वृषभेव धेनोः।**
**सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ५।१५॥**

भा०—हे ( इन्द्रा वरुणा ) ऐश्वर्यवन् और वरण करने योग्य जनो ! ( धेनोः वृषभा इव प्रेतारा ) जिस प्रकार वीर्य सेचन में समर्थ वृषभ गौ को प्राप्त करते हैं और ( सा गौः यवसा इव गत्वी सहस्रधारा पयसा दुहीयत् ) वह गौ अन्न भुस आदि से युक्त होकर सहस्रों धार वाली होकर

दूध से घर को भरपूर करती, बहुत दूध दुहाती है और जिस प्रकार (धेनोः प्रेतारा वृषभा इव) अपने में धारण करने वा दो बलवान् बैलगाड़ी के आगे आकर जुड़ते हैं और ( मही गौः ) बड़ी गाड़ी ( सहस्रधारा ) सहस्रों अन्नादि पदार्थों को धारण करने वाली होकर ( पयसा नः दुहीयत् ) अन्न से घर भर देती है । उसी प्रकार ( धेनोः ) समस्त ज्ञानों को धारण करने, सब आनन्द रसों का पान कराने वाली (धियः) धारणावती बुद्धि और वाणी को ( प्रेतारौ ) प्राप्त करने वाले और उसके प्रकृष्ट, सर्वोत्तम रहस्य तक पहुंचाने वाले ( युवं भूतम् ) आप दोनो होवो । ( सा ) वह (मही) अति पूज्य ( गौः ) अर्थों का ज्ञान कराने वाली वाणी और भूमि ( यवसौ इव ) प्रत्येक तत्व को पृथक् २ विवेक से ( गत्वी ) प्राप्त होकर ( सहस्रधारा ) सहस्रों वाणियों से युक्त होकर ( पयसा ) पोषक ज्ञान रस से ( नः दुहीयत् ) हमें पूर्ण करे । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

तोके हिते तनय उर्वरासु सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये ।
इन्द्रा नो अत्र वरुणा स्यातामवोभिर्दस्मा परितक्म्यायाम् ॥६॥

भा०—जिस प्रकार ( परितक्म्यायाम् ) रात्रि काल व्यतीत हो जाने पर ( दृशीके ) दर्शनीय प्रकाश के देने में ( उर्वरासु ) बहुत अधिक वरणीय प्रभात वेलाओं में ( सूरः अवोभिः दस्मो भवति ) सूर्य प्रदीप्तियों सहित अन्धकार का नाश करने वाला होता है और जिस प्रकार ( परितक्म्यायाम् ) अन्नाभाव से सर्वत्र कष्ट साध्य संकट वेला में ( पौंस्ये ) पुरुषों के हितकारी अन्न प्रदान करने में ( उर्वरासु वृषणः च ) उर्वरा, अन्नोत्पादक भूमियों में वर्षणशील मेघ ( अवोभिः दस्मा भवति ) तृप्तिकारक अन्नों द्वारा संकट क्षुधा, अकाल आदि का नाश करने वाला होता है उसी प्रकार हे ( इन्द्रा वरुणा ) सूर्यवत् शत्रुहन्तः ! मेघवत् सब कष्टों के वारक ! राजा अमात्यजनो ! ( उर्वरासु ) अन्नोत्पादक भूमियों और प्रजोत्पादक दाराओं, ऐश्वर्योत्पादक प्रजाजनों और ज्ञानाङ्कुरोत्पादक शिष्य-मतियों में,

( दृशीके ) दर्शनीय, ज्ञान, प्रकाश ( पौंस्ये ) दर्शन बल, पौरुष और ( तोके हिते तनये ) हितकारी पुत्र पौत्र आदि के रक्षा के निमित्त भी ( परितक्म्यायाम् ) सब तरफ़ कष्टापन्न दशा में भी ( अत्र ) इस राष्ट्र में ( अवोभिः ) राष्ट्र की रक्षा करने वाले सैन्यादि साधनों से ( दस्मा ) विघ्नों और शत्रुओं के नाश करने वाले ( स्याताम् ) होवो । ( २ ) स्त्री पुरुष, पति पत्नी, सूर्य और मेघवत् वीर्यवान् और निषेक समर्थ हों, पुरुष उर्वरा दाराओं में दर्शनीय, वीर्ययुक्त पुमान् पुत्र संतति के निमित्त आधीन करें और रोगादि की कष्ट दशा में भी वे दोनों गृहों में रहकर समस्त ( अवोभिः ) अन्न आदि रक्षा तृप्ति आदि के साधनों से दुःखों का नाश करते रहें ।

युवामिद्ध्यवसे पूर्व्याय परि प्रभूती गविषः स्वापी ।
वृणीमहे सख्याय प्रियाय शूरा मंहिष्ठा पितरेव शम्भू ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार ( प्रियाय ) प्रिय पुत्र को प्राप्त करने के लिये ( पितरा इव ) माता और पिता ( प्रभूती ) उत्तम धन धान्यादि से सम्पन्न, ( स्वापी ) उत्तम रीति से, आदर पूर्वक एक दूसरे को प्राप्त होने वाले उत्तम बन्धु ( मंहिष्ठा ) अति दानशील, ( शंभू ) एक दूसरे के कल्याणकारक होकर ( सख्याय भवतः ) परम सखिभाव, प्रेम भाव निभाने के लिये होते हैं उसी प्रकार हम लोग ( गविषः ) वाणियों और उत्तम भूमियों को प्राप्त करने की इच्छा वाले शिष्य और वीर जन ( पूर्व्याय अवसे ) पूर्व जनों से प्राप्त किये ज्ञान की प्राप्ति और पूर्व राजाओं से स्थापित राष्ट्र-रक्षा के लिये ( प्रभूती ) उत्तम सामर्थ्यवान् , ( स्वापी ) प्रजा के प्रति उत्तम बन्धु, ( मंहिष्ठा ) अति दानशील, ( शंभू ) शान्ति-दायक, कल्याणकारी ( शूरा ) शूरवीर ( युवाम् ) तुम दोनों गुरु, उप-देशक और राजा और अमात्य को ( प्रियाय सख्याय ) अतिप्रिय, प्रीति

कारक मित्र भाव की वृद्धि के लिये (परि वृणीमहे) सब प्रकार से स्वीकार करते, वरण करते वा घेर कर बैठते हैं।

**ता वां धियोऽवसे वाजयन्तीराजिं न जग्मुर्युवयूः सुदानू।**
**श्रिये न गाव उप सोममस्थुरिन्द्रं गिरो वरुणं मे मनीषाः ॥८॥**

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! हे वरण योग्य श्रेष्ठ पुरुषो! जिस प्रकार सेनाएं (आजिं न जग्मुः) संग्राम को लक्ष्य करके आगे बढ़ती हैं उसी प्रकार हे (सुदानू) उत्तम दानशील पुरुषो! (वां) आप दोनों की (धियः) बुद्धियें और क्रियाएं (युवयूः) और आप दोनों को प्रेम से चाहने वाली (धियः) आप दोनों की पोषक प्रजाएं भी (अवसे) रक्षा के लिये (वाजयन्तीः) अन्नादि ऐश्वर्य से युक्त होकर (आजिं जग्मुः) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले और सब ओर विजयशील पुरुष को प्राप्त हों। और जिस प्रकार (गावः सोमम् श्रिये न) गो-दुग्ध अधिक कान्ति उत्पन्न करने के लिये सोम आदि ओषधि को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (गावः) भूमियें और गो-पशु आदि सम्प्रदाएं (श्रिये) अधिक ऐश्वर्य वृद्धि के लिये (सोमम् उप आस्थुः) ऐश्वर्यवान् वा अभिषिक्त राजा को प्राप्त हों। और (गावः) ज्ञान वाणियें (सोमम्) सोम्य ब्रह्मचारी शिष्य को उसकी तेज सम्पत्ति बढ़ाने के लिये प्राप्त हों। (मे) मेरी (गिरः) वाणियें और (मे मनीषाः) बुद्धियां भी (इन्द्रं वरुणं उप अस्थुः) ऐश्वर्यवान् और सर्व दुःखहारी राजा और प्रभु को प्राप्त हों, उसकी उपासना, स्तुति करें।

**इमा इन्द्रं वरुणं मे मनीषा अग्मन्नुप द्रविणमिच्छमानाः।**
**उपेमस्थुर्जोष्टार इव वस्वो रघ्वीरिव श्रवसो भिक्षमाणाः ॥ ९ ॥**

भा०—जैसे (वस्वः) धन को (जोष्टारः) चाहने वाले सेवक लोग (इन्द्रं उप अस्थुः) ऐश्वर्यवान् पुरुष के पास उपस्थित होते हैं और जिस

प्रकार ( रध्वी ) लघु अवस्था वाली प्रजाएं, कुमार कुमारी, ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणियें ( श्रवसः भिक्षमाणाः ) अन्न वा श्रवण योग्य ज्ञान की याचना करती हुईं ( इन्द्रं ) अज्ञाननाशक तत्वदर्शी के पास पहुंचती हैं उसी प्रकार ( मे ) मेरी ( इमाः ) ये ( मनीषाः ) मन की इच्छाएं, ( द्रविणम् ) ज्ञान की ( इच्छमानाः ) कामना करती हुईं ( इन्द्रं वरुणम् ) परमैश्वर्यवान् और सबसे वरण करनेयोग्य सर्वश्रेष्ठ प्रभु एवं आचार्य को ( अग्मन् ) प्राप्त हों। ( २ ) राष्ट्रपक्ष में—( वस्वः ) राष्ट्र में वसने वाली प्रजाएं और (रध्वीः) वेग से जाने वाली सेनाएं भी और (मनीषाः) मननशील विद्वान् मनस्वी प्रजाएं ( जोष्टारः ) प्रेम से सेवा करने वाली होकर (श्रवसः भिक्षमाणाः द्रविणम्-इच्छमानाः) अन्न और ऐश्वर्य की कामना करती हुईं ( इमम् इन्द्रं वरुणं उप अस्थुः ) इस ऐश्वर्यवान् श्रेष्ठ, सर्व वरणीय, शत्रुवारक राजा वा सेनापति को प्राप्त हों। (३) जिस प्रकार याचक धनी से धन और शिष्य गुरु से ज्ञान की याचना करते हैं उसी प्रकार हमारे चित्त वा बुद्धियां भगवान् से ज्ञान, धन और यश, अन्नादि की याचना करें।

अश्व्यस्य त्मना रथ्यस्य पुष्टेर्नित्यस्य रायः पतयः स्याम।
ता चक्राणा ऊतिभिर्नव्यसीभिरस्मत्रा रायो नियुतः सचन्ताम् १०

भा०—हम लोग ( अश्व्यस्य ) अश्वों से युक्त और ( रथ्यस्य ) रथों से युक्त ( पुष्टेः ) पोषक ( नित्यस्य रायः ) नित्य, चिरस्थायी, धन के ( त्मना ) स्वयं अपने सामर्थ्य से ( पतयः ) पालक, स्वामी, ( स्याम ) होवें। (ता) वे दोनों स्त्री पुरुष ( नव्यसीभिः ) नये से नये ( ऊतिभिः ) रक्षा साधनों से ( चक्राणा ) काम करने वाले हों। और ( अस्मत्रा ) हमें ( नियुतः रायः ) लक्षों धन ( सचन्ताम् ) प्राप्त हों।

आ नो बृहन्ता बृहतीभिरूती इन्द्र यातं वरुण वाजसातौ।
यद्दिद्यवः पृतनासु प्रक्रीळान्तस्य वां स्याम सनितार आजेः॥११॥१६

भा०—हे ( इन्द्र वरुण ) ऐश्वर्यवन्! हे सर्वश्रेष्ठ! हे शत्रुहन्तः हे शत्रुवारक! आप दोनों ( वृहन्ता ) बड़े शक्तिशाली हो। आप दोनों ( वाजसातौ ) संग्राम, अन्न और ऐश्वर्य के लाभ वा विभाग के अवसर में ( नः आयातम् ) हमें प्राप्त होओ। ( यत् ) जब ( दिद्यवः ) चमचमाते शस्त्र और शस्त्रधारी सैनिक लोग एवं विद्याविनय-सम्पन्न जन ( पृतनासु ) सेनाओं और मनुष्यों के बीच ( प्रकीळान् ) नाना उत्कृष्ट युद्ध क्रीड़ाएं करें तब ( तस्य वां आजेः ) आप दोनों के उस संग्राम के हम ( सनितारः ) भागी ( स्याम ) होवें। इति षोडशो वर्गः॥

## [ ४२ ]

त्रसदस्युः पौरुकुत्स्य ऋषिः॥ १—६ आत्मा। ७—१० इन्द्रावरुणौ देवते॥ छन्दः—१, २, ३, ४, ६, ६ निचृत्त्रिष्टुप्। ७ विराट् त्रिष्टुप्। ८ भुरिक् त्रिष्टुप्। १० त्रिष्टुप्। ५ निचृत् पंक्तिः॥ दशर्चं सूक्तम्॥

**मम द्विता राष्ट्रं क्षत्रियस्य विश्वायोर्विश्वे अमृता यथा नः।**
**क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः॥ १॥**

भा०—राजा के कर्त्तव्य। ( विश्वायोः ) सब मनुष्यों के स्वामी ( क्षत्रियस्य ) बलवान् क्षत्रिय का ( राष्ट्रम् ) राष्ट्र अर्थात् ( द्विता ) राजा प्रजा दोनों ऐसे रहें ( यथा ) जिससे ( नः ) हमारे ( विश्वे ) सब लोग ( अमृताः ) दीर्घायु अमर हों। ( देवाः ) दानशील, विजिगीषु और धनार्थी लोग ( वरुणस्य ) सब दुःखों के वारक, एवं सबसे उत्तम वरण करने योग्य प्रधान पुरुष के ( क्रतुं ) ज्ञान और उपदिष्ट कर्म को (सचन्ते) एक मत होकर स्वीकार करें, उसका अनुकरण करें और ( उपमस्य ) समीपस्थ (वव्रेः) सुरूप वा मुझे राजा वरण करने वाले ( कृष्टेः ) प्रजाजन का मैं ( राजामि ) राजा बनूं। उनके द्वारा मैं शोभा प्राप्त करूं। अथवा

( उपमस्य वव्रेः ) समीपस्थ शत्रुवारक ( कृष्टेः ) शत्रु को कर्षण, पीडन करने में समर्थ वा हृदयहारी बल के द्वारा मैं (राजामि) खूब प्रदीप्त होऊं।

**अहं राजा वरुणो मह्यं तान्यसुर्याणि प्रथमा धारयन्त।**
**क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥ २ ॥**

भा०—( अहं वरुणः ) मैं सबसे श्रेष्ठ, सबके द्वारा प्रधान वरे जाने योग्य, प्रजा के सब दुःखों और शत्रुओं को वारण करने और सब में ऐश्वर्य का उचित विभाग करने वाला ( राजा ) राजा होऊं। ( मह्यम् ) मेरे लिये ही ( देवाः ) सब मनुष्य प्रजाएं कर देने वाले और विजयोत्सुक, एवं विद्वान् लोग ( तानि ) उन २ नाना प्रकार के ( असुर्याणि ) जीवन देने और प्राण शक्ति में रमनेवाले बलवान् पुरुषों के योग्य ( प्रथमा ) श्रेष्ठ २ धनैश्वर्यों, बलों और ज्ञानों को ( अधारयन्त ) धारण करें। वे ( वरुणस्य क्रतुं सचन्ते ) अपने वृत राजा के कार्य और मति के साथ सहमति करके रहें। मैं ( उपमस्य वव्रेः ) समीपस्थ प्रिय वरणशील ( कृष्टेः ) शत्रुपीड़क, भूमि कृषक दोनों प्रकार की प्रजा का (राजामि) राजा बनूं। ( २ ) परमेश्वर सर्वश्रेष्ठ होने से वरुण है। उसके ही बलों को सब सूर्य अग्नि आदि धारण करते हैं। वह सब रूपवान् देहावृत जीवों के बीच शोभता है।

**अहमिन्द्रो वरुणस्ते महित्वोर्वी गभीरे रजसी सुमेके।**
**त्वष्टेव विश्वा भुवनानि विद्वान्त्समैरयं रोदसी धारयं च ॥ ३ ॥**

भा०—( अहम् ) मैं ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् ( वरुणः ) सर्वश्रेष्ठ वरण करने योग्य सर्वसंकट निवारक होकर ( ते ) उन दोनों ( ऊर्वी ) विशाल, ( गभीरे ) गम्भीर, (सुमेके) उत्तम रीति से एक दूसरे का सेचन, अभिषेक वा वृद्धि करने वाले ( रजसी ) दोनों लोकों को ( त्वष्टा इव रोदसी ) आकाश और भूमि को सूर्य के तुल्य ( महित्वा ) महान् साम-

र्य से ( ऐरयम् ) सञ्चालित करूं और ( विश्वा भुवनानि ) समस्त कार्यों को जानता हुआ ( धारयं च ) धारण करूं । ( २ ) परमेश्वर ही इन्द्र, वरुग है वही महान् सुरक्षित, भूमि आकाश दोनों को महान् सामर्थ्य से चलाता और धारण करता है ।

**अ॒हम॒पो अ॑पिन्वमु॒क्षमा॑णा धा॒रय॒ं दिवं॒ सद॑न ऋ॒तस्य॑ ।**
**ऋ॒तेन॑ पु॒त्रो अदि॑तेर्ऋ॒तावो॒त त्रि॒धातु॑ प्रथय॒द्वि भूम॑ ॥ ४ ॥**

भा०—( अहम् ) मैं राजा ही (उक्षमाणाः अपः) सेचन करने वाले जलों को सूर्यवत्, राष्ट्र की वृद्धि करने वाली आप्त प्रजाओं को ( अपिन्वम् ) सेचन करता हूं, उनकी भी वृद्धि करता हूं । और ( ऋतस्य ) ऋत, सत्यन्याय के ( सदने ) आसन पर स्थित होकर मैं ( दिवं ) इस पृथ्वी को वा प्रजा के प्रकाशमान व्यवहार और तेज को ( धारयम् ) धारण करता हूं । ( अदितेः ) माता के ( पुत्रः ) पुत्र के समान अखण्ड शासन वाली भूमि का पुत्र, उसके दुःखों को पुत्र के समान दूर करने वाला होकर ( ऋतेन ) सत्य न्याय के बल से और धनैश्वर्य से ही (ऋतावा ) सत्य का स्वामी और ऐश्वर्य का स्वामी होकर ( त्रिधातु भूम वि प्रथयत् ) तीन धातु के नाना प्रकार के द्रव्यों को विविध प्रकार से प्रचरित करे । 'आत्मा' अहंकारवान् देह को बढ़ाने वाले ( अपः ) प्राणों को बलवान् करता है ( ऋतस्य ) अन्न के आश्रय पर ( दिवं ) कामना या इच्छाशक्ति को धारण करता है । ( अदितेः ) अखण्ड अविनाशी आत्मा का पुत्र, प्राण ( ऋतेन ) अन्न के द्वारा पुष्ट होकर ( त्रिधातु ) तीन धातु वात पित्त कफ से बने शरीरों को विविध प्रकार से प्रकट करता है । ( ३ ) परमेश्वर जल बरसाने वाले जलों को अन्तरिक्ष से बरसाता है, वह सत्य के बल पर ( दिवं ) सूर्य को धारण करता है । अविनाशी शक्ति का रक्षक प्रभु सत्य और तेज, जल और अन्न से ज्ञानवान्, बल-

वान् ऐश्वर्यवान् होकर त्रिगुणात्मक संसार वा कारण प्रकृति को विविध रूप से फैलाता, प्रकट करता है।

**मां नरः स्वश्वा वाजयन्तो मां वृताः समरणे हवन्ते ।**
**कृणोम्याजिं मघवाहमिन्द्र इयर्मि रेणुमभिभूत्योजाः ॥५॥१७॥**

भा०—( सु-अश्वाः ) उत्तम अश्वों, अश्व सैन्यों के स्वामी ( नरः ) नेता नायक लोग ( वाजयन्तः ) ऐश्वर्य, बल और अन्न की कामना करते हुए ( वृताः ) अपने अधीन प्रजाजनों से वरण किये जाकर ( सम्-अरणे ) संग्राम और एकत्र होने के स्थान में ( मां हवन्ते ) मुझको पुकारते, मुझे आदर पूर्वक प्रधान पद पर स्वीकर करते हैं। ( अहम् ) मैं ( मघवा ) उत्तम धनैश्वर्य का स्वामी, प्रभु होकर (आजिम् कृणोमि) संग्राम करता हूं। और ( अहम् ) मैं ( अभिभूत्योजाः ) समस्त ऐश्वर्यों और पराक्रमों का स्वामी, दुष्ट शत्रुओं को पराजय करने वाले पराक्रम का करने वाला ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् राजा होकर ( रेणुम् ) प्रजा के नाशकारी शत्रु को धूल के समान उड़ा देता हूं और ( रेणुम् इयर्मि ) धूलि के कणों के तुल्य अगणित प्रजाजन को वा सैन्यों को प्राप्त करता हूं। ( २ ) मुझ परमेश्वर को सब लोग एकत्र होकर स्मरण करते हैं। मैं सर्वविजयी विजय प्रदान करता, समस्त ( रेणुम् ) लोकों और धूलि के कण २ में व्याप्त हूं। इति सप्तदशो वर्गः ॥

**अहं ता विश्वा चकरं नकिर्मा दैव्यं सहो वरते अप्रतीतम् ।**
**यन्मा सोमासो ममदन्यदुक्थोभे भयेते रजसी अपारे ॥ ६ ॥**

भा०—मैं राजा ही ( ता ) उन नाना ( विश्वा ) समस्त कार्यों को ( चकरम् ) करता हूं। और ( अप्रतीतं ) किसी से मुकाबला न किया जाकर ( मां ) मुझको और मेरे ( दैव्यं सहः ) विजिगीपु राजा के योग्य शत्रु पराजयकारी बल को ( नकिः वरते ) कोई भी वारण नहीं करता।

और ( यत् ) जिस ( मा ) मुझको ( सोमासः ) नाना ऐश्वर्य और ( यत् ) जिसको ( उक्था ) नाना स्तुति वचन ( ममदन् ) हर्षित करते हैं उस मुझ से ( उभे ) दोनों ( अपार ) अपार, अगणित ( रजसी ) स्वपक्ष परपक्ष के सैन्य और प्रजाजन ( भयेते ) भय करते हैं। ( २ ) मैं परमेश्वर समस्त लोकों को बनाता। मैं 'विश्वकर्मा' हूं। मेरे (अप्रतीतं) अप्रज्ञात, देव, सूर्यादि में विद्यमान बल और स्वरूप को सब सर्वोपरि मानते हैं, उसकी स्पर्द्धा कोई नहीं करता, सब उत्पन्न पदार्थ जीवादि और सब स्तुति मुझे प्रसन्न करते, दोनों अपार आकाश और भूमि मुझ से भय करते हुए मेरी शक्ति से चल रहे हैं।

विदुष्टे विश्वा भुवनानि तस्य ता प्र ब्रवीषि वरुणाय वेधः।
त्वं वृत्राणि शृण्विषे जघन्वान्त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥७॥

भा०—हे राजन्! ( ता विश्वा भुवनानि ) वे नाना समस्त उत्पन्न पदार्थ राष्ट्र के उत्पन्न जीवगण को ( तस्य ते विदुः ) उस तेरे ही अधीन जानते हैं। हे ( वेधः ) राज्यकर्त्तः! हे विद्वन्! तू (वरुणाय) सब कष्टों के वारक सर्वश्रेष्ठ, सर्व वरणीय राजा को ( ता ) इन नाना कार्यों को ( प्र ब्रवीषि ) अच्छी प्रकार उपदेश कर। हे राजन्! (त्वं) तू ( वृत्राणि ) बढ़ते शत्रुओं को और विघ्नों को ( जघन्वान् ) मारता हुआ और सब धनों को प्राप्त करता हुआ मेघों को आघात करते हुए वज्र के तुल्य ( शृण्विषे ) सर्वत्र सुना जाय। ( त्वं ) तू हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! शत्रुनाशक! ( वृतान् ) सुरक्षित या व्यवहारकुशल ( सिन्धून् ) वेगवान् अश्वादि सैन्यों व मेघस्थ जलों को विद्युत् के तुल्य ( अरिणाः ) प्रेरित कर। ( २ ) परमेश्वर पक्ष में—विद्वान् लोग सब लोक उस परमेश्वर के ही जानते हैं। वह परमेश्वर विधाता ही उन सब ज्ञानों का श्रेष्ठ जनों को उपदेश करता है। वही विघ्नों, दुष्टों का नाश करता सुना जाता है, वही वेगवान् नदों, समुद्रादि को चला रहा है।

**अस्माकमत्र पितरस्त आसन्त्सप्त ऋषयो दौर्गहे बध्यमाने ।**
**त आयजन्त त्रसदस्युमस्या इन्द्रं न वृत्रतुरमर्धदेवम् ॥ ८ ॥**

भा०—( दौर्गहे ) शत्रु जिसको बड़ी कठिनता से विजय कर सके ऐसे किले या राष्ट्र के ( बध्यमाने ) बंध जाने, प्रबंध द्वारा सुव्यवस्थित करने पर ( सप्त ऋषयः ) देह में शिरस्थ प्राणों के तुल्य सात प्रकार के (ते ऋषयः) वे आप्त विद्वान् पुरुष ही ( अत्र ) इस राष्ट्र में ( अस्माकम् ) हमारे ( पितरः ) पालक ( आसन् ) होते हैं। ( ते ) वे ही ( त्रसदस्युम् ) दस्युओं को भयभीत करने वाले और भयभीत शत्रुओं को उखाड़ देने वाले ( अस्याः इन्द्रं न ) इस भूमि के स्वामी सूर्य के तुल्य तेजस्वी ( वृत्रतुरम् ) विघ्नकारी गणों के नाशक ( अर्धदेवम् ) राष्ट्र के समृद्ध अंश की कामना वाले वा सबके बरावर राष्ट्र का आधा अंश लेने हारे बलवान् पुरुष को ( आ अयजन्त ) आदर पूर्वक प्राप्त करते हैं। (२) अध्यात्म में—दौर्गह देह है। उसमें जीव बद्ध है उसके सातों शिरस्थ प्राण ऋषि हैं। वे ही आत्मा की उपासना स्वामिवत् करते हैं।

**पुरुकुत्सानी हि वामदाशद्धव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।**
**अथा राजानं त्रसदस्युमस्या वृत्रहणं ददथुरर्धदेवम् ॥ ९ ॥**

भा०—हे ( इन्द्रा वरुणा ) इन्द्र ऐश्वर्यवन् ! हे वरुण, सर्वश्रेष्ठ ! सब संकटों और शत्रुओं के वारण करने हारे ! ( पुरुकुत्सानी ) बहुत से वज्रधर सैनिकों को ले जाने वाली बड़ी भारी सेना ( हव्येभिः ) स्वीकार करने योग्य नमस्कार आदि आदर वचनों और अन्नों द्वारा ( वाम् अदाशत् ) आप दोनों को आदर प्रदान करती है। ( अथ ) उसके बाद आप दोनों भी ( त्रसदस्युं ) दुष्ट शत्रुओं को भयकारी ( वृत्रहणं ) विघ्नकारियों के नाशक ( अर्ध-देवम् ) आधे जगत् के प्रकाशक सूर्यवत् तेजस्वी, वा समृद्ध राष्ट्र के इच्छुक ( राजानम् ) सर्वप्रकाशक

राजा को ( अस्या ) इस भूमि के शासनार्थ पति रूप से ( ददथुः ) प्रदान करता है।

**राया वयं ससवांसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः।**
**तां धेनुमिन्द्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीम् १०।१८।**

भा०—( गावः यवसेन ) गौ आदि पशु बुस आदि से जिस प्रकार खूब प्रसन्न और तृप्त होते हैं। उसी प्रकार ( वयं ) हम लोग ( देवाः ) दानशील, तेजस्वी, विद्वान् पुरुष ( हव्येन ) दान देने वा लेने योग्य ज्ञान वा धन आदि से ( राया ) ऐश्वर्य से ( ससवांसः ) सुखपूर्वक रहते हुए ( मदेम ) सुखी हों। हे उक्त दोनों विद्वान् जनो ! ( युवं ) आप दोनों ( विश्व-हा ) सर्वदा, ( इन्द्रा वरुणा ) इन्द्र और वरुण ( अनपस्फुरन्तीम् ) न तड़पती गौ के समान कष्टों से पीड़ित न होती हुई ( तां धेनुम् ) उस सर्वैश्वर्य-दुघा, प्रजा, भूमि और उत्तम दृढ़ निश्चय प्रज्ञा को देने वाली वाणी को ( धत्तम् ) धारण पोषण करो और अन्यों को प्रदान करो। इत्यष्टादशो वर्गः॥

## [ ४३ ]

पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रावृषी॥ अश्विनौ देवते॥ छन्दः—१, त्रिष्टुप्। २, ३, ५, ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप्। ४ स्वराट् पंक्तिः॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

**क उ श्रवत्कतमो यज्ञियानां वन्दारु देवः कतमो जुषाते।**
**कस्येमां देवीममृतेषु प्रेष्ठां हृदि श्रेषाम सुष्टुतिं सुहव्याम्॥ १॥**

भा०—स्त्री पुरुषों के उत्तम गुणों का वर्णन करते हैं। ( कः उ श्रवत् ) कौन है जो स्तुतियों और उत्तम वाणियों को श्रवण करता है। और ( यज्ञियानां ) यज्ञ अर्थात् दान, मान, सत्कार और देववत् पूजा के योग्य पुरुषों में से ( कतमः ) कौन दानशील वा कामनाशील, विज-

येच्छुक, है जो ( वन्दारु ) वन्दना योग्य, उत्तम स्तुति वचन को (जुषाते) प्रेमपूर्वक स्वीकार करता है। और ( अमृतेषु ) दीर्घजीवी, अमृत, अमरण-धर्मा पुरुषों में से ( कस्य ) किसके ( हृदि ) हृदय में ( प्रेष्ठाम् ) अति प्रिय ( सुस्तुतिम् ) उत्तम स्तुति से युक्त ( सु-हव्याम् ) उत्तम रीति से आदरपूर्वक ग्रहण करने योग्य ( देवीम् ) शुभ कामना वाली विदुषी स्त्री को ( भ्रेषाम ) लगावें अर्थात् उत्तम सुशील, कन्यारत्न को किसकी हृदयंगमा प्रियतमा बनावें।

को मृळाति कतम आगमिष्ठो देवानामु कतमः शम्भविष्ठः।
रथं कमाहुर्द्रवदश्वमाशुं यं सूर्यस्य दुहितावृणीत ॥ २ ॥

भा०—( यम् ) जिसको ( सूर्यस्य ) सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष की ( दुहिता ) पुत्री, उषा या प्रभात वेला के समान कान्तिमती, उज्ज्वल गुण-रूप वाली कन्या ( अवृणीत ) पति रूप से वरण करे। ऐसे ( कम् ) किस ( द्रवद्-अश्वम् ) अति तीव्र वेग से जाने वाले अश्वों से युक्त ( रथम् ) रथ के समान ( द्रवत्-अश्वम् ) द्रुत, प्रेम-पूर्ण आत्मा वाले ( रथं ) रमण योग्य पुरुष को ( आहुः ) विद्वान् लोग बतलाते हैं। ( कः मृळाति ) कौन पुरुष कन्या को सुख देने में समर्थ है, ( कतमः ) कौनसा ( आ-गमिष्ठः ) आने वालों में सबसे श्रेष्ठ, आदर योग्य है, ( देवानाम् उ ) कन्या को चाहने वाले विद्वान् वरों में से भी ( कतमः ) कौनसा ( शं-भविष्ठः ) सबसे अधिक कल्याण और सुख को देने वाला है। यह निर्णय करके उसी पुरुष को कन्या वरण करे।

मक्षू हि ष्मा गच्छथ ईवतो द्यूनिन्द्रो न शक्तिं परितक्म्यायाम्।
दिव आजाता दिव्या सुपर्णा कया शचीनां भवथः शचिष्ठा ॥३॥

भा०—( परितक्म्यायाम् ) रात्रि के व्यतीत हो जाने पर जिस प्रकार (इन्द्रः) सूर्य ( ईवतः द्यून् ) गुज़रते हुए गतिशील प्रकाशों को प्राप्त होता

और (शक्तिं न) उत्तरोत्तर शक्तिवान् (शक्तिं गच्छति) अधिक सामर्थ्य को भी प्राप्त करता है। उसी प्रकार हे वर, वधू! हे स्त्री पुरुषो! आप दोनों भी ( ईवतः द्यून् ) आगामी दिवसों में ( परितक्म्यायाम् ) सब तरफ़ से कष्ट वा उपहास वाली सृष्टि में या वेला में ( मक्षू हि ) शीघ्र ही ( शक्तिं गच्छथः स्म ) अधिकाधिक शक्ति को प्राप्त करो। कितनी ही संकट दशा हो वा लोक-हंसाई हो तो भी आप दोनों उत्तरोत्तर शक्ति प्राप्त करते जाओ। आप दोनों ( दिव्या सुपर्णा ) सूर्य से उत्पन्न दिव्य दो रश्मियों के तुल्य ( दिवः आ जाता ) एक दूसरे की कामना से आदरपूर्वक एक दूसरे के आश्रय पर रहते हुए। ( दिव्या सुपर्णा ) दिव्य कान्तियुक्त शुभ, सुखकारी पालन शक्ति से युक्त होकर ( शचीनां ) उत्तम शक्तियों, वाणियों और बुद्धियों के बीच में भी ( कया ) अति सुखमयी मति या वाणी से ( शचिष्ठा ) अतिशय शक्ति और वाणी से युक्त, सबसे श्रेष्ठ ( भवथः ) होकर रहो। शक्ति युक्त होने से स्त्री पुरुष दोनों 'शची' हैं, वे उत्तम वाणी, मति होने से सब स्त्री पुरुषों में उत्तम होवें।

**का वां भूदुपमातिः कया न आश्विना गमथो हूयमाना।**
**को वां महश्चित्त्यजसो अभीक उरुष्यतं माध्वी दस्रा न ऊती॥४॥**

भा०—हे वर वधू! विवाहित स्त्री पुरुषो! ( वां ) तुम दोनों की ( का ) कौनसी ( उपमातिः भूत् ) उपमा हो। हे (अश्विना) एक दूसरे के लिये 'अश्व' अर्थात् भोक्ता आत्मा से युक्त वा शुभ गुणों से युक्त स्त्री पुरुषो! या उत्तम अश्वों पर आरूढ़ वर वधू! आप दोनों ( कया ) किस वाणी से ( हूयमाना ) स्तुति किये जाकर ( नः आगमथः ) हमें प्राप्त होते हो। हमारे बीच में प्रेमपूर्वक रहो। ( वां ) आप दोनों के बीच में ( कः ) कौन ( महः चित् त्यजसः ) सबसे बड़ा पूज्य त्यागी है। आप दोनों ( माध्वी ) मधुर वचनों वा गुणों से युक्त ( दस्रा ) दुःखों के नाशक

होकर ( नः उती ) हमें अपने ज्ञान, रक्षा, अन्नादि तृप्तिकारक साधन से ( अभीके ) समीप रहकर ( उरुष्यतम् ) रक्षा करो ।

**उरु वां रथः परि नक्षति द्यामा यत्समुद्रादभि वर्तते वाम् ।**
**मध्वा माध्वी मधु वां प्रुषायन्यत्सीं वां पृक्षो भुरजन्त पक्वाः ॥५॥**

भा०—( वां ) आप दोनों का ( रथः ) रथ ( द्याम् ) पृथिवी को ( उरु नक्षति ) खूब व्यापे, भूमि पर वेग से चले, और ( यत् ) जो ( वाम् ) तुम दोनों का रथ ( समुद्राद् अभि आ नक्षत् ) समुद्र तक भी जावे । विद्वान् लोग ( माध्वी ) मधुर गुणों से युक्त (वां ) आप दोनों पर ( मध्वा ) मधुर अन्न से ( मधु प्रुषायन् ) मधुर पदार्थों की वृष्टि करें । ( वाम् ) आप दोनों को ( पृक्षः ) प्रेम से सम्बद्ध जन ( सीम् ) सब ओर से प्राप्त हों और ( पक्वाः वां सीं भुरजन्त ) परिपक्व ज्ञान वाले विद्या-वयो-वृद्ध जन आप दोनों को सब ओर से प्राप्त हों । इसी प्रकार अन्न फल, समृद्धियां भी प्राप्त हों ।

**सिन्धुर्ह वां रसया सिञ्चदश्वान्घृणा वयोऽरुषासः परि ग्मन् ।**
**तदू षु वामजिरं चेति यानं येन पती भवथः सूर्यायाः ॥ ६ ॥**

भा०—( सिन्धुः ) नदी वा समुद्र के समान ज्ञानप्रवाह और गंभीर अगाध ज्ञान वाला पुरुष ( वां ) आप दोनों को ( रसया ) उत्तम वाणी से ( असिञ्चत् ) अभिषिक्त करे, विद्वान् बनाकर स्नातक बनावे । और ( वयः ) कान्तिमान्, रक्षाकारी ( अरुषासः ) दोषरहित, दीप्ति-युक्त जन ( घृणा ) दीप्ति और स्नेह से (परि ग्मन् ) किरणों के तुल्य तुम्हें प्राप्त हों और ( वाम् ) तुम दोनों का ( यानं ) गमन-साधन रथादि वा संसार मार्ग का गमन ( तत् उ ) उसी प्रकार पूर्वप्राप्त शिक्षानुसार, ( अजिरं ) शीघ्रतायुक्त वा हानिरहित ( सुचेति ) जाना जाय । (येन) जिससे आप दोनों ( सूर्यायाः ) सूर्य की कान्ति के सदा ( पती भवथः )

परिपालक होकर रहो। कभी हीन आचारवान् होकर कलङ्कित न होकर सदा तेजस्वी बने रहो। सूर्य की कान्ति सत्यता है। सदा सचाई पर दृढ़ रहो।

इ॒हेह॒ यद्वां॑ सम॒ना प॑पृ॒क्षे सेयम॒स्मे सु॑म॒तिर्वा॑जरत्ना।
उ॒रु॒ष्यतं॑ जरि॒तारं॑ यु॒वं ह॑ श्रि॒तः कामो॑ नासत्या युव॒द्रिक् ॥७॥१९॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! ( इह इह ) इस जगत् में स्थान २ पर ( यत् ) जो व्यवहार, वाणी वा ( सुमतिः ) उत्तम ज्ञान वाली बुद्धि, ( समना वां ) समान चित्त वाले तुम दोनों को ( पपृक्षे ) सुसंगत करे, परस्पर प्रेम से सम्बद्ध कर मिलाये रक्खे ( सा इयम् ) वह यह शुभ मति ( अस्मे ) हमें भी प्राप्त हो। हमारे कल्याण के लिये हो। हे ( वाज-रत्ना ) ज्ञान, अन्न, ऐश्वर्यादि में रमण करने वाले स्त्री पुरुषो! ( युवं ) आप दोनों ( जरितारं ) उपदेष्टा विद्वान् पुरुष की ( उरुष्यतम् ) सदा रक्षा करो। हे ( नासत्या ) कभी असत्याचरण न करने वाले स्त्री पुरुषो! दोनों की ( कामः ) परस्पर की कामना ( युवद्रिक् श्रितः ह ) आप दोनों में एक दूसरे को सदा प्राप्त होकर एक दूसरे पर आश्रित हो। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

## [ ४४ ]

पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रावृषी। अश्विनौ देवते छन्दः—१, ३, ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप्। ५ विराट् त्रिष्टुप्। भुरिक् पंक्तिः॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

तं वां॒ रथं॑ व॒यम॒द्या हु॑वेम पृथु॒ज्रय॑मश्विना॒ सङ्ग॑तिं॒ गोः।
यः सू॒र्यां वह॑ति वन्धु॒रा॒युर्गिर्वा॑हसं पु॒रु॒तमं॑ वसू॒युम्॥१॥

भा०—हे ( अश्विना ) पूर्वोक्त रूप से अश्व अर्थात् अपनी इन्द्रियों को उत्तम अश्वों के समान अपने वश करने वाले पुरुषो! ( अद्य ) आज

( वयम् ) हम लोग ( वाम् ) आप दोनों के ( तम् ) उस ( रथम् ) रथ और रथ के तुल्य इस देह का ( हुवेम ) उत्तम रीति से वर्णन करें जो ( पृथुज्रयाम् ) अति विस्तृत गति वाला, बहुत काल तक जीने में समर्थ ( गोः सम्-गतिम् ) वाणी और इन्द्रियों से चिरकाल तक अच्छी प्रकार से युक्त रहे । और ( वन्धुरायुः सूर्याम् ) आधार काष्ठ वाला रथ जिस प्रकार 'सूर्या' अर्थात् कान्तिमती नव वधू को अपने में धारण करता है उसी प्रकार जो देह रूप रथ ( वन्धुर युः ) उत्तम २ भोगों की कामना करता हुआ भी ( सूर्याम् ) सूर्य की उषाकालिक प्रसन्न मुख कान्ति को ( वहति ) धारण करे और जो ( गिर्वाहसम् ) वाणी को धारण करने वाले ( पुरु-तमम् ) 'पुरु' अर्थात् इन्द्रियों में सर्वश्रेष्ठ, ( वसूयुम् ) देह में बसे इन्द्रियों के स्वामी आत्मा को भी, वधूसहित वर के समान चिरकाल तक धारण करें ।

**युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः ।**
**युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत्ककुहासो रथे वाम् ॥२॥**

भा०—हे ( दिवः नपाता ) परस्पर की कामना से एक दूसरे को बांधने वालो ! वा हे ज्ञान और परस्पर कामना को न गिरने देने वाले सदाप्रिय स्त्री पुरुषो, दम्पति जनो ! हे ( अश्विना ) अश्ववत् इन्द्रियों के स्वामी, जितेन्द्रिय ! स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों ( देवता ) दिव्य गुणों से युक्त, लेन देन, परस्पर इच्छा पूर्ति आदि कार्यों में कुशल होकर (शचीभिः) अपनी शक्तियों से ( तां ) उस ( श्रियम् ) लक्ष्मी को ( वनथः ) प्राप्त करो और ( यत् ) जब ( ककुहासः ) उत्तम अश्व ( रथे ) रथ में लगाकर ( वां वहन्ति ) तुम दोनों को वहन करते हैं ( वा उत्तम श्रेष्ठ जन वा सर्व दिशावासी जन तुमको ( रथे ) रमणीय कार्य में धारण करें तब ( पृक्षः ) अन्नादि से तुल्य आपस के उत्तम सम्पर्क, सम्बन्ध, स्नेह आदि ( युवोः ) तुम दोनों के ( वपुः ) शरीरों को ( सचन्ते ) सुखकर हों ।

को वाम॒द्या क॑रते रा॒तह॑व्य ऊ॒तये॑ वा सुत॒पेया॑य वा॒र्कैः ।
ऋ॒तस्य॑ वा व॒नुषे॑ पू॒र्व्याय॒ नमो॑ येमा॒नो अ॑श्विना व॑वर्तत् ॥३॥

भा०—हे ( अश्विना ) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! ( वाम् ) तुम दोनों में से ( अद्य ) आज ( कः ) कौन ( रातहव्यः ) दान देने योग्य अन्नादि उपभोग, और उत्पन्न पुत्रादि के पालन के लिये ( करते ) यत्न करता है। ( ऋतस्य ) सत्य ज्ञान, बल, धनादि के ( पूर्व्याय ) पूर्व विद्वानों से निर्धारित किये ( वनुषे ) विभाग और सेवन के लिये ( कः ) कौन ( करते ) यत्न करता है और ( कः येमानः ) कौन यम नियम पालक आप दोनों को या आप दोनों में से (नमः आ ववर्तत्) उत्तम अन्न, आदर आदि का व्यवहार करे। वह परस्पर के कर्त्तव्य अवश्य जानते रहो।

हि॒र॒ण्यये॑न पुरुभू॒ रथे॑ने॒मं य॒ज्ञं ना॑स॒त्योप॑ यातम् ।
पिबा॑थ॒ इन्मधु॑नः सो॒म्यस्य॒ दध॑थो॒ रत्नं॑ विध॒ते जना॑य ॥ ४ ॥

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्य आचरण न करने वाले, सत्य प्रतिज्ञा वाले स्त्री पुरुषो ! (हिरण्ययेन रथेन) लोह सुवर्णादि से जटित रथ से जिस प्रकार उत्तम परिषदादि में जाते हैं उसी प्रकार आप दोनों भी (इमं यज्ञम्) इस परस्पर के संगति से बने गृहस्थ रूप पवित्र यज्ञ को ( हिरण्ययेन ) परस्पर हितकारी और रमणीय आचरण से बने ( रथेन ) एक दूसरे को रमाने वाले व्यवहार से ( उपयातम् ) प्राप्त होवो। (सोमस्य) सोम अर्थात् उत्तम सन्तान के निमित्त ( मधुनः ) मधुर दुग्ध, अन्न आदि ओषधि का ( पिवाथः ) पान करो। और ( विधते जनाय ) कर्त्ता पुरुष के वंश में सञ्चालन के लिये ( रत्नं ) दोनों मिल कर पुत्र 'रत्न' को ( दधथः ) आधान वा धारण करो।

आ नो॑ यातं दि॒वो अच्छा॑ पृथि॒व्या हि॑र॒ण्यये॑न सु॒वृता॒ रथे॑न ।
मा वा॑म॒न्ये नि य॑मन्देव॒यन्तः॒ सं यद्द॒दे नाभिः॑ पू॒र्व्या वा॑म् ॥५॥

भा०—जिस प्रकार ( हिरण्ययेन सुवृता रथेन दिवः पृथिव्याः यतः ) राजा अमात्य या राजा रानी उत्तम सुवर्णादि से सुशोभित, उत्तम रीति से चलने वाले रथ से आकाश और पृथिवी के मार्ग से जाते हैं उसी प्रकार हे स्त्री-पुरुषो ! आप दोनों भी ( हिरण्ययेन ) हितकारी और मनोहारी ( सुवृता ) आदरणीय उत्तम आचार से युक्त ( रथेन ) शुभ व्यवहार से ( दिवः पृथिव्याः ) ज्ञान मार्ग से और पृथिवी के मार्ग से ( नः अच्छ आ यातम् ) हमें प्राप्त होवो । तुम दोनों का ( यत् ) जो ( पूर्व-नाभिः ) पूर्व विद्यमान माता पिता गुरुजनादि द्वारा बनाया सम्बन्ध ( सं ददे ) तुम दोनों को एकत्र बांध रहा है ( वाम् ) आप दोनों के उस प्रेम दाम्पत्य सम्बन्ध को (देवयन्तः) नाना कामनाओं से प्रेरित (अन्ये) अन्य, स्वार्थी लोग ( मा नियमन् ) न रोकें, विच्छिन्न, विघ्नयुक्त न करें ।

नू नो र॒यिं पु॑रु॒वीरं॑ बृ॒हन्तं॒ दस्रा॒ मिमा॑थामु॒भये॑ष्व॒स्मे ।
नरो॒ यद्वा॑मश्विना॒ स्तोम॒माव॒न्त्सध॑स्तुतिमाजमी॒ळ्हासो॑ अग्मन् ॥६॥

भा०—हे ( दस्रा ) परस्पर के कष्टों को दूर करने वाले ( अश्विना ) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों ( अस्मे ) हमारी वृद्धि और कल्याण के लिये ( उभयेषु ) राजा प्रजा वा स्त्री-वर्ग और पुरुष-वर्ग दोनों के निमित्त ( पुरुवीरं ) बहुत से वीरों वा पुत्रों से युक्त ( बृहन्तं रयिं नु मिमाथाम् ) बहुत बड़ा ऐश्वर्य उत्पन्न करो । ( यत् ) क्योंकि ( आजमीढासः नरः ) 'अज' अर्थात् अविनाशी आत्माओं में वा दुष्ट वृत्तियों को परे फेंकने वाले जितेन्द्रियों में मेघ तुल्य ज्ञान की वृष्टि करने वाले विद्वान् लोग ( वाम् ) तुम दोनों के लिये ( स्तोमं ) उत्तम उपदेश ( आवन् ) करते और ( सह स्तुतिं आ अग्मन् ) एक साथ ही स्तुति उपदेश, धर्म आदि का विधान करते हैं ।

इ॒हेह॒ यद्वां॑ सम॒ना प॑पृ॒क्षे सेयम॒स्मे सु॑म॒तिर्वा॑जरत्ना ।
उ॒रु॒ष्यतं॑ जरि॒तारं॑ यु॒वं ह॑ श्रि॒तः कामो॑ नासत्या युव॒द्रिक् ॥७।२०॥

भा०—व्याख्या देखो पूर्व सूक्त की ७ वीं ऋचा । इति विंशो वर्गः ॥

## [ ४५ ]

वामदेव ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ३, ४ जगती । ५ निचृज्जगती । ६ विराड् जगती । २ भुरिक् त्रिष्टुप् । ७ निचृत्त्रिष्टुप् । सप्तर्चं सूक्तम् ॥

**एष स्य भानुरुदियर्ति युज्यते रथः परिज्मा दिवो अस्य सानवि । पृक्षासो अस्मिन्मिथुना अधि त्रयो दृतिस्तुरीयो मधुनो वि रप्शते ॥ १ ॥**

भा०—गृहस्थ पक्ष में—( भानुः सानवि उत् इयर्ति ) जिस प्रकार प्रकाशमान सूर्य पर्वत के शिखर पर से ऊपर उगता है, उसी प्रकार (एषः—स्यः ) यह वह ( भानुः ) तेजस्वी पुरुष ( उत् इयर्ति ) उदय को प्राप्त हो। और जिस प्रकार (दिवः परिज्मा रथः) भूमि पर वेग से जाने वाला रथ जोड़ा जाता है उसी प्रकार ( अस्य ) इसका ( रथः ) रमणशील उत्तम आत्मा या गृहस्थ रूप रथ भी ( दिवः ) उसकी कामना करने वाली स्त्री के प्रति ( परिज्मा ) जाने वाले ( सानवि ) उन्नत कर्त्तव्य पालन के निमित्त, उच्च उद्देश्य से ( युज्यते ) जुड़े । ( अस्मिन् ) इस गृहस्थ रूप रथ में ( पृक्षासः ) परस्पर सम्बद्ध, स्नेह से युक्त ( त्रयः ) तीन ( मिथुनाः ) परस्पर जुड़े हुए जन ( अधि रप्शते ) विराजते हैं और ( तुरीयः ) चौथा ( दृतिः ) मेघ के समान ज्ञान का वर्षक, विद्वान् पुरुष ( मधुनः ) अन्नवत् ज्ञान का ( विरप्शते ) विविध प्रकार से उपदेश करता है । अथवा वह ( मधुनः दृतिः ) मधुर मधु वा जल से भरे चर्मपात्र के समान ज्ञान से पूर्ण सर्वोपरि विराजे । 'त्रयः मिथुनाः'—त्रिष्वपि पदार्थेषु मिथुनशब्दस्तैत्तिरीयके दृश्यते । माता पिता पुत्रस्तदेतन्मिथुनमिति । तै० ब्रा० १।६।३॥ गृहस्थ में गृहपति के आश्रय तीन जन माता, पिता, पुत्र हैं उसपर चौथा 'दृति' अर्थात् मेघ के तुल्य सर्वोपकारक परिव्राजक वा विद्वान् पुरोहित वा आचार्य है । जिस प्रकार सूर्य ऊपर उठे तो जल,

वायु, तेज तीनों मिलते हैं और मेघ चौथा सम्पन्न होता है उसी प्रकार राजा वा गृहपति उदय हो माता, पिता, पुत्र और राजा प्रजा और ऐश्वर्य विराजते और चौथा विद्वान् पापनाशक और राष्ट्र में सेनापति शत्रु-विदारक सर्वोपरि विराजता है।

उद्वां पृक्षासो मधुमन्त ईरते रथा अश्वास उषसो व्युष्टिषु।
अपोर्णुवन्तस्तम आ परीवृतं स्व१र्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः॥२॥

भा०—जिस प्रकार ( उषसः व्युष्टिषु ) प्रभात वेला के प्रकट होने की वेलाओं में ( मधुमन्तः ) तेज से वा आदित्य से युक्त ( रथाः ) रसोत्पादक ( अश्वासः ) आशुगामी, आकाश में फैलने वाले किरण ( परिवृतम् तमः ) चारों तरफ फैले अन्धकार को ( आ अप ऊर्णुवन्तः ) सर्वत्र दूर करते हुए और ( शुक्रम् ) शुद्ध प्रदीप्त (स्वः) प्रकाश (आ तन्वन्तः) फैलाते हुए ( उद् ईरते ) प्रकट होते हैं उसी प्रकार हे गृहस्थ स्त्री पुरुषो! ( उषसः वि-उष्टिषु ) उषाकाल अर्थात् जीवन की प्रभात वेला के विविध प्रकार से प्रकट होते हुए, ब्रह्मचर्य, विद्याभ्यास आदि के काल में ( वाम् ) तुम दोनों के हितार्थ ( मधुमन्तः ) उत्तम ज्ञान से सम्पन्न ( पृक्षासः ) मेघ तुल्य ज्ञानाभिषेक करने वाले ( रथाः ) रथवत् ज्ञान मार्ग में दूर तक ले जाने वाले रम्य-स्वभाव ( अश्वासः ) शुभ गुणों से व्याप्त, अश्व वा सूर्य के समान बलवान् तेजस्वी ज्ञानी पुरुष ( परीवृतं ) चारों तरफ घिरे ( तमः ) शोक दुःख और अज्ञान को ( अप ऊर्णुवन्तः ) दूर करते हुए ( शुक्रं न स्वः ) वीर्य, बल वा जलवत् ज्ञानोपदेश को भी ( आ तन्वन्तः ) सर्वत्र फैलाते हुए ( रजः उत् ईरते ) समस्त लोकों या राजस भावों के भी ऊपर उठते हैं। ( २ ) इसी प्रकार गृहस्थ उषावत् कमनीय कन्या के विविध गृहस्थोचित कामनाओं व व्यवहारों के उदय होने पर ( पृक्षासः मधुमन्तः ) मधुर गुणयुक्त अन्न ( तमः अपोर्णुवन्तः शुक्रं तन्वन्तः रजः उत् ईरते ) खेद वा भूख आदि दुःख दशा

को दूर करते हुए, वीर्य बल उत्पन्न करते हुए सब राजस भावों के ऊपर उठें, सत्व को उत्पन्न करें।

**मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिरुत प्रियं मधुने युञ्जाथां रथम्।**
**आ वर्तनिं मधुना जिन्वथस्पथो दृतिं वहेथे मधुमन्तमश्विना॥३॥**

भा०—हे ( अश्विना ) अश्वों, इन्द्रियों के स्वामी, जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों ( मधुपेभिः आसभिः ) अन्न, जल को पान करने के अभ्यासी मुखों से ( मध्वः ) नाना मधुर जल और अन्नों का ही ( पिबतम् ) पान करो। इसी प्रकार ( मधुपेभिः आसभिः ) मधुर, सत्य ज्ञान को प्राप्त करने वाले ( आसभिः ) मुखों अर्थात् कान, आंख, नाक आदि ज्ञान-ग्रहणशील द्वारों से ( मधु ) ज्ञान को प्राप्त करो। ( उत ) और ( मधुने ) अन्न के प्राप्त करने के लिये जिस प्रकार रथ, गाड़ी आदि जोड़ी जाती है उसी प्रकार ( मधुने ) सत्य ज्ञान को प्राप्त करने के लिये ( प्रियं रथम् ) अति प्रिय, रसस्वरूप और परम रमणीय आत्मा को योग द्वारा समाहित वा परस्पर प्रेमवश मिलाये रक्खो। और ( मधुना ) जल और अन्न से जिस प्रकार ( पथः वर्तनिं आजिन्वथः ) मार्ग को तैयार कर लिया जाता है, उसी प्रकार ( मधुना ) वेद ज्ञान से ( पथः ) संसार मार्ग में ( आ वर्तनिं ) वार २ के आवागमन को (जिन्वथः) वश करो। जिस प्रकार यात्रा में ( अश्विनौ ) रथ पर स्थित स्वामी-स्वामिनी वा स्वामी-सारथी दोनों ( मधुमन्तं दृतिं वहेथे ) अन्न वा जल से भरे पात्रों को रखते हैं जिससे मार्ग के भूख प्यास की निवृत्ति होती है उसी प्रकार विद्वान् जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष ( मधुमन्तं ) उत्तम ज्ञान से युक्त ( दृतिम् ) सब संकटों और संशयों के काटने वाले शास्त्र वेद का ( वहेथे ) धारण किया करें।

**हंसासो ये वां मधुमन्तो अस्रिधो हिरण्यपर्णा उहुव उषर्बुधः।**
**उदप्रुतो मन्दिनो मन्दिनिस्पृशो मध्वो न मक्षः सवनानि गच्छथः ४**

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! जिस प्रकार ( वां ) तुम दोनों के (हंसासः) अश्व ( मधुमन्तः ) मधुर रूप और अति वेग से युक्त, ( अस्त्रिधः ) अपीड़ित, ( हिरण्यपर्णाः ) सुवर्ण लोहादि के बने पक्षो, वा चलने के साधन ( उहुवः ) शकट गाड़ी आदि को ढोने वाले होवें उसी प्रकार ( वां ) आप दोनों के हितार्थ ( हंसासः ) राजहंसों के समान स्वच्छ, निर्लेप, शुद्धाचारवान्, अहंकार आदि दोनों से युक्त जितेन्द्रिय सदा (मधुमन्तः) मधुर आत्मज्ञान और वेदज्ञान से सम्पन्न हों । वे ( अस्त्रिधः ) कभी पीड़ित न हों, वे सदा ( हिरण्यपर्णाः ) हितकारी और रमणीय पालन और ज्ञान साधनों से युक्त, वा सुवर्ण के सदृश कान्तिमान् पांख वाले राजहंसों के समान, ( हिरण्यपर्णाः ) हिरण्य अर्थात् आत्मा की शक्ति का ज्ञान वा पालन करने वाले, ( उहुवः ) अन्यों को सन्मार्ग पर ले जाने वाले, ( उषर्बुधः ) प्रभात काल, ब्राह्म मुहूर्त्त में जागने वाले और जीवन के उषाकाल, शैशव वा कौमार काल में ज्ञानार्जन करने वाले, ( उदप्रुतः ) जल से और ज्ञान से स्नान करने वाले, ( मन्दिनः ) सदा हृष्ट प्रसन्न, ( मन्दि-निः-स्पृशः ) आनन्दमय परमेश्वर को योग द्वारा प्राप्त करने वाले हों । ( मध्वः मक्षः न ) मधु मक्खी जिस प्रकार मधु को प्राप्त करती है उसी प्रकार आप लोग भी ( मध्वः ) ज्ञान के (सवनानि) नाना ऐश्वर्यों और ज्ञान-यज्ञों को ( गच्छथः ) प्राप्त किया करो ।

**स्व॒ध्व॒रासो॒ मधु॑मन्तो अ॒ग्नय॑ उ॒स्रा ज॑रन्ते॒ प्रति॒ वस्तो॑र॒श्विना॑ ।**
**यन्नि॒क्तह॑स्तस्त॒रणि॑र्विचक्ष॒णः सोमं॑ सु॒षाव॒ मधु॑मन्त॒मद्रि॑भिः ॥५॥**

भा०—( यत् निक्तहस्तः तरणिः अद्रिभिः मधुमन्तं सोमं सुषाव ) जिस प्रकार शुद्ध किरणों वाला सूर्य मेघों द्वारा मधुर रस से युक्त ओषधि गण को सींचता है, और जिस प्रकार ( निक्तहस्तः विचक्षणः अद्रिभिः मधुमन्तं सोमं सुषाव ) यज्ञ में शुद्ध पवित्र हाथों वाला विद्वान् अध्वर्यु शिलाखण्डों से मधुर रस युक्त सोम रस को बनाता है, उसी प्रकार

( यत् ) जब ( निक्तहस्तः ) शुद्ध पवित्र साधनों से युक्त, ( तरणिः ) संसार-मार्ग से पार जाने में समर्थ ( विचक्षणः ) विशेष ज्ञानवान्, विद्वान् पुरुष ( अद्रिभिः ) मेघवत् उदार गुरुजनों से वा पर्वत के समान अभेद्य व्रतादि साधनों से ( मधुमन्तं सोमम् ) ज्ञान सम्पन्न आत्मा को (सुषाव) ज्ञान से अभिषिक्त निष्णात वा ऐश्वर्य सम्पन्न कर लेता है, तब हे ( अश्विना ) शुभ गुणों से युक्त जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! ( प्रति वस्तोः ) प्रति दिन ( सु-अध्वरासः ) उत्तम यज्ञ के करने वाले, दृढ़ ( मधुमन्तः ) ज्ञान-सम्पन्न ( अग्नयः ) उत्तम ज्ञानी, तेजस्वी पुरुष, ( उस्राः ) किरणों के तुल्य प्रकाशवान् होकर ( जरन्ते ) उपदेश करें ।

आ॒के॒नि॒पासो॒ अह॑भि॒र्दवि॑ध्वतः॒ स्व१॒र्ण शु॒क्रं त॒न्वन्त॒ आ रजः॑ ।
सूर॑श्चि॒दश्वा॑न्युयुजा॒न ई॑यते॒ विश्वाँ॒ अनु॑ स्व॒धया॑ चेतथस्प॒थः॥६॥

भा०—( चित् ) जिस प्रकार ( सूरः अश्वान् युयुजानः ईयते ) सूर्य अपने व्यापक किरणों को सर्वत्र फैलाता हुआ आकाश में गति करता है, और (अहभिः दविध्वतः आकेनिपासः रजः स्वः न शुक्रं आतन्वन्तः भवन्ति) दिन के समयों में तीव्र वेग से आने वाले समीप २ गिरने वा जल पान करने वाले किरण ही अति दीप्त ताप के तुल्य या सूर्य के समान ही उज्ज्वल प्रकाश वा जल को उत्पन्न करते हैं, ( स्वधया अनु विश्वान् चेतयन्ति ) अन्न और जल से सबको चेतना देते हैं उसी प्रकार ( सूरः ) तेजस्वी, विद्वान् पुरुष ( अश्वान् ) अश्वों, अश्ववान् रथों और विद्यादि शुभ गुणों से युक्त शिष्यों को और अध्यात्म में अपने इन्द्रियगण को ( युयुजानः ) सत्-कार्य में नियुक्त करता और योग से वश करता हुआ ( ईयते ) आगे बढ़ता है । और ( आकेनिपासः ) समीप में रहने वा समस्त सुख-मय ब्रह्मानन्द का पान करने वाले ( दविध्वतः ) पाप मलादि को दूर करने वाले बलवान्, अवधूतपाप्मा पुरुष ( अहभिः ) दिनों दिन ( स्वः न ) ज्ञानोपदेश के समान ( शुक्रं ) वीर्यरक्षा, ब्रह्मचर्य और शुक्र शुद्धाचार

को और ( रजः ) तेज को ( आतन्वन्तः ) सर्वत्र अनुष्ठान करते हैं। ( अनु ) उनके अनुकूल रहकर ही हे नर-नारी जनो ! आप लोग भी ( स्वधया ) ज्ञान, शक्तिसम्पन्न होकर ( विश्वान् पथः ) समस्त कर्त्तव्य-मार्गों को ( चेतथः ) जानो।

**प्र वा॑मवोचमश्विना धियन्धा रथः॒ स्वश्वो॑ अ॒जरो॒ यो अस्ति॑। येन॑ स॒द्यः परि॒ रजां॑सि या॒थो ह॒विष्म॑न्तं त॒रणिं॑ भो॒जमच्छ॑ ॥७।२१।४**

भा०—जिस प्रकार ( रथः धियन्धाः सु-अश्वः अजरः ) रथ, नाना गति को धारण करने वाला, उत्तम अश्व से युक्त और दृढ़ हो ( येन सद्यः रजांसि परि याथः ) जिससे रथी सारथी बहुत से लोकों, देशों को पारकर लेते हैं, वह ( हविष्मान् तरणिः भोजः ) नाना ग्राह्य पदार्थों से युक्त, वेग-गामी, सुरक्षा से युक्त होता है, विद्वान् शिल्पी उसकी रचना का अश्व के स्वामियों को उपदेश करता है उसी प्रकार हे ( अश्विना ) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! ( यः ) जो ( रथः ) अति रमण करने योग्य आनन्दमय आत्मा ( धियं-धाः ) धारणावती बुद्धि और कर्मों का धारण करने वाला, ( सु-अश्वः ) उत्तम मन इन्द्रियों से युक्त, ( अजरः ) अविनाशी, जरा से रहित और वाणी द्वारा न कथन करने योग्य, अवाच्य (अस्ति) है (येन) जिसके द्वारा ( सद्यः ) शीघ्र ही ( रजांसि ) समस्त लोकों, समस्त राजसविकारों को ( परियाथः ) आप पारकर सकते हो, मैं विद्वान् पुरुष उस ( हविष्मन्तं ) भक्तिमान् ( तरणिं ) सबको भवसागर से पार उतारने में समर्थ, ( भोजम् ) सबके पालक और स्वयं ऐश्वर्य के भोक्ता आत्मा को ही (अच्छ) लक्ष्य करके ( वाम् ) आप दोनों को ( प्र अवोचम् ) उपदेश करूं। एकोनविंशो वर्गः ॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

## [ ४६ ]

वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रवायू देवते ॥ छन्दः—१ विराड् गायत्री। २, ५, ६ ७ गायत्री। ४ निचृद्गायत्री ॥ षडर्चं सूक्तम् ॥

अग्रं पिबा मधूनां सुतं वायो दिविष्टिषु ।
त्वं हि पूर्वपा असि ॥ १ ॥

भा०—हे ( वायो ) वायु के समान बलवान् और स्वतः ज्ञानवान्, अप्रमाद-आलस्य रहित पुरुष ! ( त्वं ) तू (हि) निश्चय से ( पूर्वपाः ) पूर्व नियत धर्मों और पूर्ण ज्ञानी और पूर्व विद्यमान माता पिता गुरु आदि का पालक ( असि ) हो । तू ( दिविष्टिषु ) ज्ञान-प्रकाश, कामनादि के प्राप्ति, ज्ञान आदि कार्यों में ( सुतं ) उत्तम रीति से उत्पन्न किये ( मधूनां अग्रं ) अन्नों, जलों और ज्ञानों में से उत्तम अन्न जल, ज्ञान आदि का ( पिब ) पान कर ।

शतेना नो अभिष्टिभिर्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः ।
वायो सुतस्य तृम्पतम् ॥ २ ॥

भा०—हे ( वायो ) ज्ञानवान् एवं बलवान् पुरुष ! हे ( इन्द्र) ऐश्वर्यवन् और शत्रुहन्तः ! तुम दोनों ( सुतस्य ) उत्पन्न, ऐश्वर्यमय राष्ट्र को प्राप्त कर तृप्त होवो । हे ( वायो ) बलवान् पुरुष ! तू ( नियुत्वान् ) नियुक्त, अधीन, नाना अश्वारोही सैनिकों का स्वामी और ( इन्द्र-सारथिः ) ऐश्वर्यवान् पुरुष का सारथि के समान सहायक होकर ( नः ) हमें (शतेन अभिष्टिभिः) सैकड़ों अभिलषित कार्यों से राष्ट्र का उपभोग कर ।

आ वां सहस्रं हरय इन्द्रवायू अभि प्रयः ।
वहन्तु सोमपीतये ॥ ३ ॥

भा०—हे ( इन्द्र-वायू ) ऐश्वर्यवन् ! हे वायुवद् बलवान् पुरुष ! ( वां ) आप दोनों के ( सोमपीतये ) राष्ट्रैश्वर्य के उपभोग और पालन के लिये ( सहस्रं हरयः ) सहस्रों मनुष्य ( प्रयः ) अन्न आदि तृप्तिकारक पदार्थ ( अभि वहन्तु ) प्राप्त करावें ।

रथं हिरण्यवन्धुरमिन्द्रवायू स्वध्वरं ।
आ हि स्थाथो दिविस्पृशम् ॥ ४ ॥

भा०—हे ( इन्द्र-वायू ) ऐश्वर्यवन् ! हे बलवन् ! दोनों आप ( हिरण्य-वन्धुरम् ) लोह सुवर्ण आदि से बने, जड़े, दृढ़ आश्रयकाष्ठ से युक्त (दिवि-स्पृशं) पृथ्वी पर स्पर्शमात्र करने वाले, वा चलते समय न गड़ने वाले, वा वेग से आकाश से बात करने वाले ( स्वध्वरं ) उत्तम रीति से भीतर बैठे पुरुष पर बाहर का आघात, लगने आदि की आशंका से रहित, सुरक्षित, दृढ़ ( रथं ) रथ पर ( आ स्थाथः ) आदरपूर्वक बैठा करो। और सर्वत्र यात्रा किया करो। 'दिव्' शब्द से पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाश तीनों का ग्रहण होता है इसलिये तीनों स्थानों में चलने वाले दृढ़ यानों का वर्णन कर दिया।

रथेन पृथुपाजसा दाश्वांसमुप गच्छतम्।
इन्द्रवायू इहा गतम् ॥ ५ ॥

भा०—हे ( इन्द्र-वायू ) ऐश्वर्यवन् ! हे बलवन् राजन् ! सेनापते ! आप दोनों ( पृथु-पाजसा रथेन ) बड़े भारी बलशाली, बड़े विस्तृत पाद रूप चक्रों से युक्त, वेगवान् रथ से ( दाश्वांसम् ) दानशील प्रजाजन को ( उप गच्छतम् ) प्राप्त हो और ( इह आगतम् ) इस राष्ट्र में आया जाया करो।

इन्द्रवायू अयं सुतस्तं देवेभिः सजोषसा।
पिबतं दाशुषो गृहे ॥ ६ ॥

भा०—हे ( इन्द्र-वायू ) राजन् ! हे बलवन् ! हे सेनापते ! (अयं) यह ( सुतः ) उत्पन्न पुत्रतुल्य ऐश्वर्ययुक्त प्रजाजन है। आप दोनों सूर्य और वायु के तुल्य ( स-जोषसा ) समान भाव से प्रीतियुक्त होकर ( देवेभिः ) विद्वान्, विजियेच्छुक ब्राह्मणों और क्षत्रियों सहित (दाशुषः) करादि देने वाले प्रजावर्ग के ( गृहे ) गृह के समान राष्ट्र में रहते हुए ( तं पिबतम् ) उसका उपभोग और पालन करो।

इह प्रयाणमस्तु वामिन्द्रवायू विमोचनम् ।
इह वां सोमपीतये ॥ ७ ॥ २२ ॥

भा०—हे ( इन्द्र-वायू ) विद्युत् वा सूर्य और पवन के समान तेजस्वी और बलवान् राजा और अमात्य, राजा वा सेनापति, नर नारी युगल जनो ! ( इह ) इस स्थान वा काल में ( वां ) आप दोनों का (प्रयाणं) उत्तम रीति से जाना (अस्तु) हो और ( इह विमोचनम् ) इस स्थान में आप दोनों का अश्वादि को रथ से पृथक् करने का स्थान हो। और ( इह ) इस स्थान में ( वां ) आप दोनों का ( सोमपीतये ) ऐश्वर्य, सुखादि भोगने वा अन्न जलादि पान करने के लिये स्थान हो । राजा, अमात्य, नरनारी आदि सभी का, जाने, विश्राम करने खाने आदि सभी का स्थान और काल नियमपूर्वक विभक्त होना चाहिये । इसी प्रकार आचार्य 'इन्द्र' है तो वायुवत् अप्रमादी, सर्वत्र जा २ कर विद्या ग्रहण करने वाले शिष्यगण 'वायु' हैं । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

## [ ४७ ]

वामदेव ऋषिः ॥ १ वायुः । २—४ इन्द्रवायू देवते ॥ छन्दः—१, ३ अनुष्टुप् । ४ निचृदनुष्टुप् । २ भुरिगुष्णिक् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥ १ ॥

भा०—हे ( वायो ) वायु के समान सर्वोपकारक, बलवान् एवं ज्ञानवान् पुरुष वा प्रभो ! आचार्य ! मैं ( दिविष्टिषु ) ज्ञानप्रकाशक प्राप्त करने की साधनाओं में लगकर ( शुक्रः ) अति शुद्ध, तेजस्वी और जल के समान पवित्र और ( शुक्रः ) ब्रह्मचर्यादि से बल-वीर्यवान् होकर ( ते मध्वः अग्रं ) तेरे ज्ञान के सर्वोत्तम भाग को ( अयामि ) प्राप्त

करूं। हे (देव) सर्वप्रकाशक, ज्ञान बल आदि के देने वाले! तू (स्पार्हः) अति स्पृहा, प्रेम वा अभिलाषा करने योग्य है। तू (सोमपीतये) शिष्य के पालन, एवं अन्नादि रसों के उपभोग के लिये (नियुत्वता) अश्वों से युक्त रथ से और विजितेन्द्रिय चित्त से (आयाहि) हमें प्राप्त हो। शिक्षण कार्य में आचार्य गुरु आदि को जितेन्द्रिय होना आवश्यक है।

इन्द्रश्च वायवेषां सोमानां पीतिमर्हथः।
युवां हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् ॥ २ ॥

भा०—(इन्द्रः च वायो) हे इन्द्र! अज्ञान के नाशक, हे बलवान् और ज्ञानवान् पुरुष! आप दोनों (एषां सोमानां) इन सौम्य भाव के शिष्यों की (पीतिम् अर्हथः) पालना करने योग्य हो। (आपः न) जल जिस प्रकार (सध्रयक्) एक साथ ही (निम्नम्) नीचे के प्रदेश में आ बहते हैं इसी प्रकार (इन्दवः) द्रुतगति से आने वाले, प्रेमार्द्रहृदय शिष्य जन (युवां हि यन्ति) तुम दोनों को अवश्य प्राप्त हों। ज्ञान धनादि का दाता 'इन्द्र' और बल आदि का शिक्षक 'वायु'। इसी प्रकार राजा 'इन्द्र' और सेनापति 'वायु'। प्रेरणा योग्य सैनिक वा पदाभिषिक्त माण्डलिक और अन्नवत् प्रजा रूप सोम का पालन करें। वे आश्रय, रक्षा और वृत्ति से प्रेरित होकर स्वभावतः उनको प्राप्त होते हैं।

वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती।
नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ॥ ३ ॥

भा०—हे (वायो इन्द्रः च) हे महाबल सेनापते और हे राजन्! तुम दोनों (शुष्मिणा) बलवान् और (शवसः) सैन्य बल के पालक और (नियुत्वन्तः) नियुक्त हज़ारों लाखों सैन्य जनों सहित (सरथं) रथ सहित (नः ऊतये) हमारी रक्षा और (सोमपीतये) राष्ट्र-ऐश्वर्य के पालन और उपभोग के लिये (आ यातम्) आदरपूर्वक आओ।

या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा ।
अस्मे ता यज्ञवाहसेन्द्रवायू नि यच्छतम् ॥४॥२३॥

भा०—हे ( नरा ) उत्तम नायक युगल ! हे (इन्द्रवायु) ऐश्वर्यवन् ! हे वलवान् पुरुष ! हे ( यज्ञवाहसा ) परस्पर सत्संग मैत्रीभाव, दान-प्रतिदान आदि व्यवहार को धारण करने वालो ! ( या ) जो ( वां ) आप दोनों के ( पुरु-स्पृहः ) वहुतों को प्रिय और वहुत से धनों की चाहना करने वाले, (नियुतः) अधीन नियुक्त लक्षों जन, अश्वादि हैं ( ता ) उन सवको ( अस्मे ) हमारे कल्याण के लिये ( नि यच्छतम् ) नियम में सुव्यस्थित रक्खो । अध्यात्म में—सूर्य और वायु, अग्नि तत्व और प्राण; इन दो प्रभु की शक्तियों के रूप में प्रभु का स्मरण है । सोम जीवगण हैं । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

## [ ४८ ]

वामदेव ऋषिः ॥ वायुर्देवता ॥ छन्दः—१ निचृदनुष्टुप् । २ अनुष्टुप् । ३, ४, ५ भुरिगनुष्टुप् । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

विहि होत्रा अवीता विपो न रायो अर्यः ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार ( विपः न ) वुद्धिमान् ( अर्यः ) स्वामी या वैश्य जन ( रायः ) धनों की ( वेति ) रक्षा करता है उसी प्रकार हे ( वायो ) ज्ञानवान् और वलवान् पुरुष ! विद्वान् आचार्य और राजन् ! तू भी ( विपः ) वुद्धिमान् और शत्रुओं का कंपाने हारा, पाप-मलों को कम्पित कर त्यागने वाला ( अर्यः ) इन्द्रियगण और प्रजाओं का स्वामी होकर ( अवीताः ) अरक्षित ( होत्राः ) ग्रहण करने और आश्रय देने योग्य, भोग्य पदार्थों के समान उपभोग करने योग्य प्रजाओं की ( विहि ) रक्षा कर । हे आचार्य ! तू ( होत्राः अवीताः ) अगतिक, अज्ञानी अप्र-

दीप्त शिष्यवत् स्वीकार करने योग्य शिष्यों को ( विहि ) ज्ञान दीप्ति से प्रकाशित कर । ( सुतस्य पीतये ) प्रजा वा शिष्य जन को पुत्रवत् पालन करने और राष्ट्रैश्वर्य को ओषधि रस के तुल्य उपभोग करने के लिये ( चन्द्रेण रथेन ) आह्लादकारी रमणीय रथ और उपदेश से ( आ याहि ) प्राप्त हो ।

निर्युवाणो अशस्तीर्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ २ ॥

भा०—हे ( वायो ) वायु के समान शत्रुओं को उखाड़ देने में समर्थ बलवान् ! तू ( इन्द्र-सारथिः ) ऐश्वर्यवान् राजा को सहायक बना कर ( चन्द्रेण रथेन ) सुवर्ण के बने रथ एवं सर्वाह्लादक, सर्वप्रिय व्यवहार से ( नियुत्वान् ) अपने अधीन नाना नियुक्त सैन्यों, अश्वों और भृत्यादि का स्वामी होकर ( अशस्तीः ) परस्पर हिंसा न करने वाली सौम्य स्वभाव, ( निर्युवाणः ) बलवान् पुरुषों से रहित वा नाना युवकों से युक्त प्रजाओं को ( सुतस्य पीतये ) ऐश्वर्य के उपभोग और रक्षा के लिये ( आ याहि ) प्राप्त कर ।

अनु कृष्णे वसुधिती येमाते विश्वपेशसा ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ ३ ॥

भा०—( कृष्णे ) एक दूसरे का आकर्षण करने वाले ( वसुधिती ) बसने वाले और बसने योग्य लोकों को धारण करने वाले (विश्व-पेशसा) समस्त विश्व के रूप आकाश और पृथिवी दोनों को जिस प्रकार वायु व्यापता है उसी प्रकार हे ( वायो ) वायु के तुल्य व्यापक सामर्थ्य से युक्त बलवान् पुरुष ! ( कृष्णे ) राष्ट्र में कृषि करने वाली और शत्रु का कर्षण और पीड़न करने वाली ( विश्वपेशसा ) सब प्रकार के द्रव्यों को धारण करने वाली ( वसुधिती) बसे जनों को अन्न से और रक्षा से पालन

पोषण करने वाली होकर ( अनुयेमाते ) एक दूसरे के अनुकूल होकर नियम व्यवस्था में रहें। और तू ( सुतस्य पीतये ) उन दोनों को ऐश्वर्य के उपभोग और पुत्रवत् उनके पालन के लिये कटिबद्ध होकर ( चन्द्रेण रथेन आयाहि ) सुवर्ण लोहादि के बने रथ से सर्वाह्लादक रमणीय, सर्वप्रिय व्यवहार से उन दोनों को प्राप्त हो, अपने वश कर।

वहन्तु त्वा मनोयुजो युक्तासो नवतिर्नव।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ ४ ॥

भा०—हे ( वायो ) बलवान्, वृक्षों को वायुवत्, शत्रुओं को निर्मूल करने में समर्थ पुरुष ! (त्वा) तुझको (नवतिः नव) ९९ या ९ × ९० = ८१० ( युक्तासः ) नियुक्त अधीन भृत्य, ( मनोयुजः ) तेरे साथ मनोयोग देकर ( त्वा वहन्तु ) तुझको अपने ऊपर अध्यक्ष रूप से धारण करें। तू १०० में से एक अध्यक्ष हो, तू शताध्यक्ष हो अथवा ९० की ९ टुकड़ियों के ९ अध्यक्षों सहित दसवां अध्यक्ष होकर सहस्राध्यक्ष वा सहस्र सैन्यपति हो। तू ( सुतस्य पीतये चन्द्रेण रथेन आयाहि ) राष्ट्रैश्वर्य के रक्षार्थ, धनैश्वर्य से युक्त रथ सैन्य से वा आह्लादक रम्य व्यवहार से राष्ट्र को प्राप्त हो।

वायो शतं हरीणां युवस्व पोष्याणाम्।
उत वा ते सहस्रिणो रथ आ यातु पाजसा ॥५॥२४॥

भा०—पूर्वोक्त कथन को विशद करते हैं। हे ( वायो ) वायुवत् शत्रूच्छेदक राजन् ! तू ( पोष्याणां ) पोषण करने योग्य वेतन-बद्ध भृत्य ( हरीणां ) मनुष्यों के ( शतं ) सौ के दल को ( युवस्व ) मिलाकर रख और उनपर शासन कर। (उत वा) और ( सहस्रिणः ) हज़ारों के स्वामी (ते) तेरा (रथः) रथ वा रथ-सैन्य (पाजसा) बलपूर्वक (आया तु) आवे। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

## [ ४९ ]

वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्राबृहस्पती देवते । छन्दः—निचृद्गायत्री । २, ३, ४, ५, ६ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

**इदं वामास्ये हविः प्रियमिन्द्राबृहस्पती ।**
**उक्थं मदश्च शस्यते ॥ १ ॥**

**भा०**—हे (इन्द्रा-बृहस्पती) ऐश्वर्यवन् इन्द्र ! राजन् ! हे बृहती वेद वाणी के पालक विद्वान् पुरुषो ! (वाम् आस्ये) आप दोनों के 'आस्य' अर्थात् मुख में ( इदं ) यह ( प्रियं ) प्रिय, तृप्तिकारक ( हविः ) उपादेय अन्न ग्राह्य वचन, ज्ञान, (प्रियम् उक्थं) और प्रिय, प्रीतिकारक वचन (मदश्च) और तृप्तिकारक हर्ष और ( दमः ) दम, दमन का अभ्यास ( शस्यते ) प्रशंसा करने योग्य हो । क्षत्रिय के पास उत्तम ऐश्वर्य और दमन बल हो, ब्राह्मण के पास उत्तम सात्विक अन्न, ज्ञानमय वचन और जितेन्द्रियता हो ।

**अयं वां परि षिच्यते सोम इन्द्राबृहस्पती ।**
**चारुर्मदाय पीतये ॥ २ ॥**

**भा०**—हे ( इन्द्रा-बृहस्पती ) ऐश्वर्यवन् ! हे महान् राष्ट्र वा बड़े भारी बल के पालक, बड़ी वाणी वेद के पालक राजन्, विद्वन् ! ( अयं सोमः ) यह राष्ट्रमय ऐश्वर्य और सोम्यस्वभाव युक्त शिष्य ( वाम् ) आप दोनों के अधीन रहने हारा होकर ( परि षिच्यते ) पात्र में जल के तुल्य परिषेक या अभिषेक, स्नान द्वारा आदर किया जाता है, राजा का अभिषेक और विद्याव्रती को स्नातक बनाया जाता है, वह ( मदाय ) आनन्द लाभ और इन्द्रिय-दमन अर्थात् ब्रह्मचर्य के निमित्त और (पीतये) राष्ट्र के उपभोग के लिये और व्रत के पालन के लिये ( चारुः ) उत्तम व्रताचरण करने में कुशल हो ।

आ न॑ इन्द्राबृहस्पती गृहमिन्द्र॑श्च गच्छतम् ।
सो॒म॒पा सोम॑पीतये ॥ ३ ॥

भा०—हे ( इन्द्रा बृहस्पती ) ऐश्वर्यवन् ! हे वाणी के पालक जनो ! हे राजन्, विद्वन् ! आप दोनों ( सोमपा ) ऐश्वर्य और उत्तम ज्ञान का उपभोग या पान करने वाले राष्ट्र और शिष्य का पालन करने वाले हो । ( इन्द्रः च ) ऐश्वर्यवान् पुरुष और ज्ञानद्रष्टा विद्वान् दोनों ही आप ( सोमपीतये ) ज्ञान और ऐश्वर्य के पान और राष्ट्र और शिष्य के पालन वा अन्नादि प्राप्त करने के लिये ( नः गृहम् ) हमारे गृह को ( आ गच्छतम् ) आइये ।

अ॒स्मे इ॑न्द्राबृहस्पती र॒यिं ध॑त्तं श॒त॒ग्विन॑म् ।
अश्वा॑वन्तं स॒ह॒स्रिण॑म् ॥ ४ ॥

भा०—हे ( इन्द्रा-बृहस्पती ) ऐश्वर्यवन् राजन् ! बृहती सेना, प्रजा वा वेदवाणी के पालक और स्वामिन् विद्वन् ! (अस्मे) हमें ( शतग्विनं ) सैकड़ों भूमियों, गौ और वेदवाणियों से युक्त ( अश्वावन्तं ) अश्वों, अश्व सेना और उत्तम, सुयश, इन्द्रिय-दमन युक्त ( सहस्रिणं ) सहस्रों ऐश्वर्यों सहस्र ज्ञानों, सामवेद युक्त वा बलवान् महाव्रत रूप ( रयिं ) ऐश्वर्य का ( धत्तं ) पालन और धारण कराओ। 'शतग्वी' 'सहस्री' दोनों पद शतर्चि, सहस्रों मन्त्र युक्त वेद ज्ञान के उपलक्षक हैं ।

इन्द्रा॒बृह॒स्पती व॒यं सु॒ते गी॒र्भिर्ह॑वामहे ।
अ॒स्य सोम॑स्य पी॒तये ॥ ५ ॥

भा०—हे ( इन्द्रा-बृहस्पती ) ऐश्वर्यवन् ! हे वेदज्ञ विद्वन् ! ( अस्य सोमस्य पीतये ) इस 'सोम' के पान, उपभोग और राष्ट्र वा शिष्य आदि के पालन के लिये, ( वयम् ) हम ( गीर्भिः ) स्तुतियों और वाणियों द्वारा ( सुते ) अभिषिक्त हो जाने पर या उसके निमित्त आप दोनों को ( हवामहे ) आदरपूर्वक बुलावें ।

सोम॑मिन्द्राबृहस्पती पि॒बतं॑ दा॒शुषो॑ गृ॒हे ।
मा॒दये॑था॒ तदो॑कसा ॥ ६ ॥ २५ ॥

भा०—हे ( इन्द्रा-बृहस्पती ) ऐश्वर्यवन् ! हे वेदज्ञ विद्वान् ! वा बृहत् = महान् राष्ट्र के पालक बलाध्यक्ष ! आप दोनों ( दाशुषः ) आत्म समर्पक शिष्य वा प्रजाजन के ( गृहे ) गृह में ( सोमं ) उत्तम अन्नादि ऐश्वर्य का उपभोग और गृह में उत्पन्न पुत्र या शिष्य का (पिबतं) पालन करो । और ( तदोकसा ) उसके आश्रय स्थान में रहकर ही ( मादयेथाम् ) दोनों हर्षित होवो, अन्यों को हर्षित करो । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

## [ ५० ]

वामदेव ऋषिः ॥ १—६ बृहस्पतिः । १०, ११ इन्द्राबृहस्पती देवते ॥ छन्दः— १—३, ६, ७, ९ निचृत्त्रिष्टुप् । ५, ४, ११ विराट् त्रिष्टुप् । ८, १० त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

यस्त॒स्तम्भ॒ सह॑सा॒ वि ज्मो अन्ता॒न्बृह॒स्पति॑स्त्रिषध॒स्थो रवे॑ण ।
तं प्र॒त्नास॒ ऋष॑यो॒ दीध्या॑नाः पु॒रो विप्रा॑ दधिरे म॒न्द्रजि॑ह्वम् ॥१॥

भा०—प्रथम परमेश्वर और आचार्य वा विद्वान् पुरोहित का वर्णन करते हैं । (यः) जो परमेश्वर (सहसा) बलपूर्वक ( ज्मः अन्तान् ) पृथिवी के पर्यन्त भागों को ( रवेण ) अपनी आज्ञा से ( तस्तम्भ ) वश करता है वही ( त्रि-सधस्थः ) तीनों लोकों में व्यापक ( बृहस्पतिः ) महान् पालक, परमेश्वर है । ( तं ) उस ( मन्द्र-जिह्वम् ) आनन्ददायक, वेद-वाणी के स्वामी परमेश्वर को ( प्रत्नासः ) पूर्व के वेदार्थ-द्रष्टा ( विप्राः ऋषयः ) मेधावी ऋषिजन ( दीध्यानाः ) प्रकाशित करते वा ध्यान करते हुए ( पुरः दधिरे ) अपने समक्ष साक्षी रूप से स्थापित करते रहते हैं ।

( २ ) इसी प्रकार जो पुरुष बल से पृथिवी के सीमान्त भागों को भी वश करे वह ( त्रि-सधस्थः ) तीनों शक्तियों में समान रूप से स्थित होकर ( बृहस्पतिः ) बड़े राष्ट्र का पालक पुरुष 'बृहस्पति' है। ( तं मन्द्र-जिह्वं ) उस सबको सन्तुष्ट आनन्दित करने वाली वाणी के वक्ता राजा को (प्रत्नासः ऋषयः ) वृद्ध विद्वान् जन ( दीध्यानाः ) अधिक तेजस्वी, उज्ज्वल रूप से प्रतिष्ठित करते हुए ( पुरः दधिरे ) सबसे आगे प्रमुख पद पर स्थापित करें। ( ३ ) इसी प्रकार जो वेदज्ञ विद्वान् अपने ( रवेण ) आदेश से भूमि के प्रान्तों तक का शासन करे वा ( ज्मः अन्तान् तस्तम्भ ) वाणी के ही सिद्धान्तों को स्थिर रूप से कहे उत्तम ( ऋषयः ) तर्क वितर्कशील ( दीध्यानाः ) अर्थ का प्रकाश करते हुए ( विप्राः ) मेधावी शिष्यजन, उस आनन्दप्रद, सुखद वाणी के वक्ता विद्वान् को ( पुरः दधिरे ) समक्ष गुरु पद पर वा पुरोहित रूप से स्थापित करें।

धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे।
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ॥ २ ॥

भा०—( ये ) जो ( धुनेतयः ) कंपा देने वाली, दिल दहला देने वाली चालें वा चेष्टाएं करने वाले क्रूर या वीर जन ( मदन्तः ) हर्ष और तृप्ति अनुभव करते हुए ( नः ) हमारे बीच में ( सुप्रकेतम् ) उत्तम ज्ञानवान् पूज्य, पुरुष को ( अभि ततस्रे ) प्राप्त कर सतावें या उसके चारों ओर रहें तब हे ( बृहस्पते ) वेद वाणी के पालक विद्वन्! और बड़े राष्ट्र के पालक राजन्! तू (पृषन्तं) प्रेम स्नेह से सबको मेघ के समान सुख सेचन करते हुए ( सृप्रम् ) आगे बढ़ने वाले ( अदब्धं ) न नाश हुए, ( ऊर्वं ) दुष्टों के नाश करने वाले, ( अस्य ) उक्त ज्ञानवन् पुरुष के ( योनिम् ) आश्रय रूप गृह, क्षात्र बल की ( रक्षतात् ) रक्षा कर।

बृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ३

भा०—हे ( बृहस्पते ) बड़े ज्ञान वाणी और बड़े राष्ट्र के पालक ! विद्वन् ! एवं राजन् ! ( या ) जो (ते) तेरी ( परमा ) सर्वोत्कृष्ट ( परावत् ) दूर देश तक व्यापने वाली नीति, मर्यादा या सीमा है, ( अतः ) उसके भीतर जो ( ऋतस्पृशः ) सत्य धर्म पालन करने वाले वा धन, अन्न आदि उत्पन्न करने वाले ( ते आ निषेदुः ) तेरे अधीन, तेरे समीप, माण्डलिक आदि बसें वा आकर विराजें वे ( खाताः ) खने गये (अवताः) कूपों के समान गंभीर, (अद्रिदुग्धाः) पर्वत के तुल्य अप्रकम्प, शस्त्र बल द्वारा वा मेघवत् दयार्द्र विद्वान् पुरुषों द्वारा दोहे वा पूर्ण किये जाकर ( तुभ्यं ) तेरे लिये ( मध्वः ) मधुर अन्न और धन की ( विरप्शम् ) महान् राशि को ( अभितः ) सब ओर से ( श्चोतन्ति ) प्रदान करें। जिस प्रकार खने गये कूप, तड़ाग आदि मेघ वा गिरि पर्वतादि की धारा से पूर्ण होकर बहुत जल देते हैं उसी प्रकार बड़े राष्ट्र पालक को उसके राज्य की सीमा के भीतर के धनी, कृषक, व ज्ञानी लोग भी शस्त्र-बल, प्रेम, कर आदि के वश होकर वा मेघों और विद्वानों करके अन्न ज्ञानादि से पूर्ण होकर राजा के भी अन्नादि धन की वृद्धि करें। इसी प्रकार हे विद्वान् पुरुष ! जो ज्ञान की परम सीमा है वहां तक पहुंचे हुए धर्मात्मा लोग भी तेरे लिये कूपादि के तुल्य आदर-पूर्ण होकर मधुर ज्ञान रस की बड़ी राशि प्रदान करें।

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन्।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमांसि ॥ ४ ॥

भा०—( बृहस्पतिः ) बड़े भारी ज्ञान का पालक वेद और वेदज्ञ विद्वान् स्वयं ( प्रथमं जायमानः ) सबसे प्रथम सर्वोत्कृष्ट प्रकट होता हुआ, ( महः ज्योतिषः ) बड़े भारी प्रकाश के ( परमे व्योमन् ) परम स्थान ज्ञानकोटि में स्थित है। वह ( सप्त-आस्यः ) सात छन्द रूप सात मुखों वाला, ( तुवि-जातः ) बहुत से विद्वानों में प्रकट, एवं प्रसिद्ध

होकर ( रवेण ) शब्द, उपदेश द्वारा ( सप्त-रश्मिः ) सात रश्मियों वाले सूर्य के समान ज्ञान प्रकाश को फैलाता हुआ, ( तमांसि ) सब अविद्या अन्धकारों को ( अधमत् ) विनाश करे। ( २ ) परमेश्वर सबसे प्रथम विद्यमान, बड़े तेज के परम कोटि पर है। उसके सात दिशा सात मुख हैं, वह बड़े शब्द, वेद ज्ञान से सब अज्ञानों को दूर करता है। (३) बड़े राष्ट्र का पालक तेज से सर्वोच्च हो। राजनीतिगत सात प्रकृति उसके सात मुख हैं। वह सूर्यवत् तेजस्वी होकर आवरक शत्रु सैन्यों के समान दूर करे। ( ४ ) अध्यात्म में सात प्राण सात 'आस्य' हैं।

**स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण।**
**बृहस्पतिरुस्त्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद्वावशतीरुदाजत् ॥५॥२६॥**

भा०—राष्ट्रपालक राजा और वेदज्ञ विद्वान् का पृथक् २ कर्त्तव्य एक ही मन्त्र से बतलाते हैं। ( सः बृहस्पतिः ) वह बड़े भारी राष्ट्र का पालक ( सु-स्तुभा ) उत्तम रीति से शत्रुहिंसा करने में समर्थ, (ऋक्वता) वाणी के पालक ( गणेन ) सैन्य दल से और ( सु-स्तुभा ) उत्तम रीति से कंपाने वाले, ( ऋक्वता ) उत्तम वाणी से युक्त ( रवेण ) आज्ञा से ( फलिगं वलं रुरोज ) फल वाले, शस्त्रों सहित आक्रमण करने वाले बलशाली, नगररोधी शत्रु का भंग करे। और ( हव्य-सूदः ) अन्न रत्न आदि उपादेय ऐश्वर्य को प्रचुर मात्रा में देने वाली ( उस्त्रियाः ) नाना भोग देने वाली, ( वावशतीः) निरन्तर कामनाशील, प्रजाओं और सेनाओं को ( कनिक्रदत् ) खूब गर्जता हुआ, घोषणा करता हुआ ( उत् आजत् ) उत्तम रीति से गौ आदि पशु संघ के समान अधीन कर उत्तम मार्ग से चलावे। विद्वान् वेदज्ञ क्या करे? वह भी (सु-स्तुभा ऋक्वता गणेन) उत्तम स्तुतियुक्त ऋचाओं वाले मन्त्र के समूह से और ( रवेण ) उनके घोष से ( फलिगं वलं ) भेद बुद्धि से व्यापने वाले आवरक मोह कामादि अज्ञान को तोड़ डाले। और ( हव्य-सूदः वावशतीः उस्त्रियाः कनिक्रदद् उदा-

जत् ) ज्ञान रस के देने वाली सुन्दर वाणियों का अध्ययन करता हुआ उनका उत्तम रीति से ज्ञान प्राप्त करे और अन्यों को ज्ञान प्रदान करे ।

**एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।**
**बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६ ॥**

भा०—हम लोग ( एव ) इस प्राकर ( पित्रे ) सर्वपालक ( विश्व-देवाय ) समस्त विश्व के प्रकाशक, सब को जीवन, अन्न, ऐश्वर्य देने वाले, सबके उपास्य देव ( वृष्णे ) सब सुखों के वर्षक, सर्व-प्रबन्धक, सबसे महान् पुरुष परमेश्वर की ( यज्ञैः ) यज्ञों, सत्संगों से और ( नमसा ) नमस्कार पूर्वक और ( हविर्भिः ) उत्तम अन्नों और वचनों से ( विधेम ) भक्ति करें । इस प्रकार सर्व पालक, सब से अधिक विद्वान् पितृतुल्य, आचार्य ज्ञानवर्षक की और सब के दाता, पालक पितृतुल्य राजा की हम सत्संगों, नमस्कारों और भेटों आदि से सेवा करें । हे ( बृह-स्पते ) बड़े राष्ट्र और ज्ञान के पालक ( वयं ) हम ( सु-प्रजाः ) उत्तम प्रजा से युक्त ( वीरवन्तः ) उत्तम वीरों वा पुत्रों से युक्त और ( रयीणां पतयः ) ऐश्वर्यों के स्वामी ( स्याम ) होवें ।

**स इद्राजा प्रतिजन्यानि विश्वा शुष्मेण तस्थावभि वीर्येण ।**
**बृहस्पतिं यः सुभृतं बिभर्ति वल्गूयति वन्दते पूर्वभाजम् ॥ ७ ॥**

भा०—( सः इत् ) वह परमेश्वर ही (राजा) राजा के समान सर्व विश्व का स्वामी, सर्वप्रकाशक और तेजोमय स्वप्रकाश, ( शुष्मेण ) सर्व शोषक, प्रखर तेज और ( वीर्येण ) सब गति देने वाले बल से ( विश्वा ) समस्त ( प्रतिजन्यानि ) प्रत्यक्ष उत्पन्न होने वाले पदार्थों में ( अधि तस्थौ ) व्यापक है । ( यः ) जो परमेश्वर ( सु-भृतम् ) उत्तम रीति से विश्व के पोषक ( बृहस्पतिम् ) बड़े ब्रह्माण्ड के पालक सूर्यादि लोक को भी (बिभर्त्ति) धारण करता है और ( पूर्वभाजं ) सब से पूर्व के विद्यमान उपार्जित ज्ञानों

को सेवन करने वाले विद्वान् पुरुष को भी ( वल्गूयति ) उपदेश करता और ( वन्दते ) उसको चाहता है इसी प्रकार ( यः ) जो राजा ( सुभृतं बृहस्पतिं बिभर्त्ति ) बहुत बड़े जनराष्ट्र के पालक, उत्तम पोषक पुरुष को धारण करता है ( पूर्वभाजं वल्गूयति वन्दते च ) पूर्व विद्यमान वृद्ध पुरुषों के सेवने योग्य धर्मात्मा ज्ञानी पुरुष का सत्कार और स्तुति अभिवादन करता है, जो सब प्रतिपक्षी जनों के संग्रामों पर शत्रु-क्षोभक बल से वश करता है ( स इत् राजा ) वही राजा होने योग्य है।

स इत्क्षेति सुधित ओकसि स्वे तस्मा इळा पिन्वते विश्वदानीम्। तस्मै विशः स्वयमेवा नमन्ते यस्मिन्ब्रह्मा राजनि पूर्व एति॥ ८॥

भा०—( सः इत् ) वह परमेश्वर राजा के समान ( स्वे ) अपने ( सुधिते ओकसि ) सुरक्षित जगत्-रूप स्थान वा महान् आकाश में ( क्षेति ) निवास करता है, व्यापक है ( तस्मै ) उसकी ( विश्वदानीम् ) सदा ( इडा ) वेद वाणी ( पिन्वते ) सब पर ज्ञान का वर्षण करती और सबको अन्न वा भूमिवत् पुष्ट करती है। ( तस्मै ) उसके आदर के लिये (विशः)सभी प्रजाएं ( स्वयम् एव ) आप से आप ही (नमन्ते) प्रेम और भक्ति से झुकते हैं। ( यस्मिन् ) जिस (राजनि) स्वप्रकाशक, सर्वप्रकाशक परमेश्वर में ( पूर्वः ब्रह्मा ) अनादि, सब से प्रथम, सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी वेदज्ञ विद्वान् ( एति ) प्राप्त होता है। (२) राजा के पक्ष में—जिस राजा के रहते हुए वेदज्ञ विद्वान् पूर्व, सर्वश्रेष्ठ होकर उत्तम पद पाता है। जो स्वरक्षित देश में निवास करता है उसको ( इडा ) सब भूमियां पुष्ट करती हैं, सब प्रजाएं उसके आगे झुकती हैं।

अप्रतीतो जयति सं धनानि प्रतिजन्यान्युत या सजन्या।
अवस्यवे यो वरिवः कृणोति ब्रह्मणे राजा तमवन्ति देवाः॥ ९॥

भा०—( यः ) जो परमेश्वर राजा के तुल्य ही ( अवस्यवे ब्रह्मणे )

रक्षा चाहने वाले ब्रह्मज्ञानी पुरुष को ( वरिवः कृणोति ) धन प्रदान करता है जो ( राजा ) स्वयं सूर्यवत् सब का प्रकाशक है ( तम् ) उसको सब ( देवाः ) देव, विद्वान् गण प्रकाशक किरणों के तुल्य (अवन्ति) प्राप्त होते हैं और उसका ज्ञान और उसको प्रेम करते हैं। वह स्वयं ( अप्रतीतः ) प्रत्येक साधारण पुरुष से वा प्रत्यक्ष इन्द्रियों से नहीं जाना जाता है, तो भी ( प्रति-जन्या या स-जन्या धनानि ) वह प्रत्येक उत्पन्न होने वाले और समान, एक साथ रहने वाले जीवों के हितकारी समस्त ऐश्वर्यों को (सं जयति ) अच्छी प्रकार वश करता है। ( २ ) राजा के पक्ष में—जो ( अप्रतीतः ) किसी से मुक़ाबला न किया जाकर, अद्वितीय बलशाली राजा होकर ( प्रति-जन्या स-जन्या धनानि सं जयति ) प्रतिपक्षी और समान कोटि के जनों के धनों का विजय करता है। ( अवस्यवे ब्रह्मणे वरिवः कृणोति ) रक्षार्थी ब्राह्मण वर्ग का आदर करता है, ( देवाः ) दानशील व्यवहारज्ञ, सम्पन्न जन और विजयेच्छुक सैन्य गण ( तम् अवन्ति ) उसकी रक्षा करते वा उसकी शरण जाते हैं।

इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन्यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू ।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् ॥ १० ॥

भा०—( इन्द्रः च बृहस्पते ) हे इन्द्र ऐश्वर्यवन् ! हे वेदवाणी और महान् राष्ट्र के पालक! आप दोनों (अस्मिन् यज्ञे) इस परस्पर संग, सेवन, सहयोग और राज्यकार्य में ( मन्दसाना ) हर्ष, प्रसाद अनुभव करते हुए ( वृषण्वसू ) ज्ञान धन आदि के वर्षाने वाले और बलवान् प्रबन्धक पुरुष को राज्य में बसाने वाले एवं बसे प्रजा जनों के बीच स्वयं बलवान् होकर ( सोमं पिबतं ) पुत्र वा शिष्यवत् राज्य का पालन करें। और ओषधिरस के समान अति स्वल्प मात्रा में और गुणकारी रूप से ( पिबतं ) उसका उपभोग करो। आप दोनों ( अस्मे ) हमें ( सर्ववीरं ) सब प्रकार के वीरों और पुत्रों से युक्त ( रयिं ) धन को ( नि यच्छतम् ) प्रदान करो और

हमारे उक्त राष्ट्र धन की नियम व्यवस्था करो, उसको नष्ट न होने दो। और (स्वाभुवः) स्वयं आपसे आप उत्पन्न होने वाले (इन्दवः) ऐश्वर्य और प्रेमयुक्त समृद्ध प्रजाजन (वां विशन्तु) तुम दोनों को प्राप्त करें, आप दोनों के अधीन रहें। अध्यात्म में—इन्द्र जीव, बृहस्पति प्रभु, वे दोनों वसु अर्थात् लोकों और प्राणों में सुख आनन्दादि का वर्षण करने से 'वृषणवसू' हैं।

बृह॑स्पत इन्द्र॒ वर्ध॑तं नः॒ सचा॒ सा वां॑ सुम॒तिर्भू॑त्व॒स्मे।
अ॒वि॒ष्टं धियो॑ जिगृ॒तं पुर॑न्धीर्जज॒स्तम॒र्यो व॒नुषा॒मरा॑तीः॥११॥२७॥७

भा०—हे (बृहस्पते) वेदविद्या के पालक! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुनाशक राजन्! आप दोनों (सचा) सत्यपूर्वक सदा साथ रह कर (नः वर्धतम्) हमें बढ़ाओ। (वां) आप दोनों की (सा) वह, उत्तम (सु-मतिः) शुभ मति, ज्ञान वा उत्तम ज्ञान वाली परिषद् (अस्मे) हमारे हित के लिये (भूतु) होवे। आप लोग (धियः) प्रजा और कर्मों तथा राष्ट्र की धारक प्रजाओं को (अविष्टम्) पालन करो (पुरं-धीः) देहवत् पुर को धारण करने वा बहुत से ऐश्वर्य और ज्ञानों के धारण करने वाली प्रजाओं वा सेनाओं को, (जिगृतम्) सदा सचेत, सावधान बनाओ और उत्तम उपदेश किया करो। और आप दोनों (अर्यः) स्वामी के तुल्य होकर वा (वनुषाम्) संविभाग करने योग्य ऐश्वर्यों वा करों को (अरातीः) न देने वाली (अर्यः) शत्रुसेनाओं को (जजस्तम्) विनाश किया करो। इति सप्तविंशो वर्गः॥ इति सप्तमोऽध्यायः॥

## अथाष्टमोऽध्यायः

## [ ५१ ]

वामदेव ऋषिः॥ उषा देवता॥ छन्दः—१, ५, ८ त्रिष्टुप्। ३ विराट् त्रिष्टुप्। ४, ६, ७, ९, ११ निचृत्-त्रिष्टुप्। २ पंक्तिः। १० भुरिक्-पंक्तिः॥ एकादशर्चं सूक्तम्॥

इदमु त्यत्पुरुतमं पुरस्ताज्ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्थात् ।
नूनं दिवो दुहितरो विभातीर्गातुं कृणवन्नुषसो जनाय ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार ( पुरुतमं ) सबसे अधिक आकाश देश को पूरने वाला सूर्य प्रकाश ( पुरस्तात् ) प्राची दिशा में ( वयुनावत् ) सब ज्ञानों, कर्मों से युक्त, सर्वप्रकाशक होकर ( तमसः अस्थात् ) रात्रि के अन्धकार में से ऊपर उठता है और ( दिवः दुहितरः विभातीः उपसः ) देदीप्यमान सूर्य की कन्याओं के समान, वा प्रकाश से जगत् को पूरने और प्रकाश देने वाली, स्वप्रकाश युक्त उषा-वेलाएं (जनाय गातुं कृणवत् ) मनुष्यों के लिये पृथिवी को प्रकट करती हैं उसी प्रकार (इदम् उ) यह (त्यत् ) वह प्रसिद्ध ( पुरुतमं ) समस्त विद्याओं से सब से अधिक पूर्ण (ज्योतिः) सर्व ज्ञान-प्रकाशक, वेदमय तेज है, जो ( तमसः ) दुःखदायी अज्ञान से भिन्न, (पुरस्तात् ) सबसे पूर्व विद्यमान, सब से श्रेष्ठ और ( वयुना-वित् ) उत्तम ज्ञान और कर्मोपदेश से युक्त होकर ( अस्थात् ) सदा के लिये स्थिर है । ( नूनं ) निश्चय से ( दिवः ) सर्व ज्ञानमय, प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की (दुहितरः) कन्याओं के तुल्य, वा उससे उत्पन्न अथवा ज्ञान रस की प्रदान करने वाली, (विभातीः ) विविध ज्ञानों का प्रकाश करने वाली, (उषसः) पापों को दग्ध करने वाली वेद वाणियां ( जनाय ) समस्त मनुष्य मात्र के लिये ( गातुं ) जानने योग्य ज्ञान और मार्ग को ( कृणवत् ) प्रकट कर देती हैं ।

अस्थुरु चित्रा उषसः पुरस्तान्मिता इव स्वरवोऽध्वरेषु ।
व्यू व्रजस्य तमसो द्वारोच्छन्तीरव्रञ्छुचयः पावकाः ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार ( अध्वरे ) यज्ञ में ( मिताः इव स्वरवः ) गड़े हुए वा माप कर बनाये गये यूपांश स्थिर होते हैं और जिस प्रकार (अध्वरेषु) यज्ञों के निमित्त ( स्वरवः ) अति तेज से युक्त ( मिताः इव ) परिमित काल तक स्थिर ( चित्राः उषसः ) अद्भुत, सुन्दर उषाएं ( पुरस्तात् )

पूर्व दिशा में (अस्थुः) प्रकट होती हैं और वे (शुचयः) शुद्ध, (पावकाः) पवित्र होकर (व्रजस्य तमसः द्वारा उच्छन्तीः) वर्जनेयोग्य रात्रि के अन्धकार वा अन्धकार से ढके गृह के द्वारों को प्रकट करती हुई (वि अव्रन्) व्याप लेती हैं उसी प्रकार (चित्राः) अद्भुत रूप, गुण, कर्म, स्वभाव और उत्तम आभूषण, वस्त्रादि से सुन्दर, चित्र विचित्र, (उषसः) कान्ति, कामना से युक्त कमनीय, (पुरस्तात्) आगे (मिताः इव) विद्या से ज्ञानयुक्त, (स्वरवः) उत्तम तेजस्विनी, विदुषी कन्याएं (अध्वरेषु) हिंसा से रहित, श्रेष्ठ यज्ञों में (व्रजस्य तमसः उच्छन्तीः) गृह के अन्धकारयुक्त द्वारों को प्रकाशित करती हुई (शुचयः) शुद्ध स्वच्छाचारवाली, (पावकाः) पवित्र एवं शोधक यज्ञ अग्नि, आर्त्तवादि से शुद्ध होकर (वि अव्रन्) विशेष रूप से पति का वरण करें। और हे ब्रह्मचारी तुम भी ऐसी ही कमनीय कन्याओं का वरण किया करो। (२) वेदवाणियों के पक्ष में—वेदवाणियां पूज्य होने से चित्र हैं, स्वयंप्रकाश एवं शब्दमय होने से 'स्वरु' हैं। 'व्रज' अर्थात् ज्ञान और कर्ममय मार्गों वा द्वारों को प्रकाशित करती हैं।

उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान्राधोदेयायोषसो मघोनीः।
अचित्रे अन्तः पणयः ससन्त्वबुध्यमानास्तमसो विमध्ये ॥ ३ ॥

भा०—(पणयः) स्तुतिकर्त्ता लोग जो (अबुध्यमानाः) स्वयं स्तुति पाठ का ज्ञान नहीं करते हैं वे जिस प्रकार (तमसः अचित्रे विमध्ये) ज्ञानरहित अन्धकार के बीच में (ससन्तु) सोते हैं, मग्न रहते हैं उसी प्रकार (पणयः) स्तुत्य स्त्रियां और व्यवहारवान् गृहस्थ जन भी (अबुध्यमानाः) रात्रि काल में न जागती हुई (तमसः) अन्धकार के (अचित्रे मध्ये) चेतना रहित गाढ़ निद्रा के बीच (ससन्तु) सोते हैं जिस प्रकार (उषसः) प्रातः वेलाएं (उच्छन्तीः) प्रकट होती हुई (भोजान् चितयन्त) भोक्ता प्राणियों को जगाती हैं उसी प्रकार (उषसः मघोनीः) कान्तियुक्त श्रीसम्पन्न स्त्रियां वा समृद्ध प्रजाएं भी (उच्छन्तीः)

विशेष रूप से गुणों को प्रकट करती हुई ( राधो-देयाय ) धनों के दान के लिये ( भोजान् ) अपने पालक पतियों रक्षक वा राजाओं को ( चितयन्त ) सदा सचेत करती रहें। उनको ऐश्वर्य दान के लिये चेताती रहें।

कुवित्स देवीः सनयो नवो वा यामो बभूयादुषसो वो अद्य।
येना नवग्वे अङ्गिरे दशग्वे सप्तास्ये रेवती रेवदूष ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार ( उषसः यामः सनयः अद्य नवः वा कुविद् भवति ) उषा का अतिपुरातन भी गमनमार्ग प्रत्येक आज के दिन नया हो जाता है उसी प्रकार हे ( देवीः उषसः ) उत्तम, कमनीय पतिप्रिय देवियो ! ( वः ) आप लोगों का ( यामः ) प्राप्त करने वाला वा विवाह करने वाला पति ( कुवित् ) महान्, ( सनयः ) रथ के समान सनातन मार्ग से चलने वाला, ( नवः ) नव तरुण ही ( बभूयात् ) हो। ( येन ) जिससे आप लोग ( नवग्वे ) नव अर्थात् स्तुत्य वाणियों वा सदा तरुण इन्द्रिय गण से युक्त, (दशग्वे) दशों दिशाओं में भूमि के स्वामी वा दशों इन्द्रियों के दमनकारी, जितेन्द्रिय (अंगिरे) अग्नि वा सूर्य के तुल्य तेजस्वी वा प्राण के समान ( सप्तास्ये ) मुख पर सातों प्राण, आंख, नाक, कान मुखादि अंग, एवं उनकी अविकल शक्तियों से युक्त पति के अधीन रह कर ( रेवतीः ) स्वयं धन सम्पन्न होकर ( रेवत् ) सम्पन्न जीवन की ( ऊष ) कामना करो, सुख से रहो। फलतः पति दृष्टिहीन, बधिर, गूंगा, आदि न हो, उसकी वाणी उत्तम ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय आदि भी सब ठीक हों। ( २ ) वेदवाणियों का 'याम' गन्तव्य परम वेद्य पद 'ब्रह्म' नव अर्थात् स्तुत्य है और 'सनय' अर्थात् सनातन है। वह वाणियां जितेन्द्रिय, अविकल पुरुष में प्रकट होती हैं।

यूयं हि देवीर्ऋतयुग्भिरश्वैः परिप्रयाथ भुवनानि सद्यः।
प्रबोधयन्तीरुषसः ससन्तं द्विपाच्चतुष्पाच्चरथाय जीवम् ॥५॥१॥

भा०—( देवीः उषसः ससन्तं जीवं प्रबोधयन्तीः यथा ऋतयुग्भिः

अश्वैः भुवनानि परि प्रयान्ति ) जिस प्रकार प्रकाश से युक्त प्रभात बेलाएं सोते हुए जीव गण को जगाती हुई तेजयुक्त किरणों से समस्त लोकों में दूर २ तक चली जाती हैं उसी प्रकार हे (उषसः देवीः) पति आदि की कामना करने वाली देवियो ! गृह-पत्नियो ! ( यूयं ) आप लोग भी ( ऋतयुग्भिः-अश्वैः ) वेगयुक्त अश्वों से दूर २ के स्थानों तक, (ऋतयुग्भिः अश्वैः) सत्य मार्ग से युक्त भोक्ता या उत्तम गुणों से युक्त अश्ववत् बलवान् पति जनों से युक्त होकर ( सद्यः ) शीघ्र ही ( भुवनानि ) उत्तम २ गृहों को ( परि प्र-याथ ) प्राप्त होवो । वहां ( उषसः ) प्रभात वेलाओं के समान ही ( द्वि-पात् ) दोपाये, भृत्यों और बन्धुजनों तथा ( चतुष्पात् ) चौपाये गौ आदि पशु ( ससन्तं ) सोते हुए ( जीवं ) जीवगण को ( चरथाय ) कर्म करने के लिये (प्र-बोधयन्तीः) जगाती रहो । इसी प्रकार हे पुरुषो ! तुम भी (ऋतयुग्भिः अश्वैः) बलयुक्त अंगों से युक्त होकर (देवीः परिप्रयाथ) उत्तम कामना युक्त स्त्रियों को प्राप्त करो । (२) वेदवाणियां ऋतयुग् अश्व, अर्थात् सत्य में समाहित चित्त वाले विद्याव्याप्त विद्वान् द्वारा सर्वत्र फैलाई जाती हैं । सोते हुए अज्ञानी जनों को उत्तम बोध देती हैं । इति प्रथमो वर्गः॥

**क्व स्विदासां कतमा पुराणी यया विधाना विदधुर्ऋभूणाम् ।**
**शुभं यच्छुभ्रा उषसश्चरन्ति न वि ज्ञायन्ते सदृशीरजुर्याः ॥ ६ ॥**

भा०—जिस प्रकार ( शुभ्राः उषसः शुभं चरन्ति ) दीप्तिमती प्रभात वेलाएं दीप्ति युक्त उज्वल प्रकाश करती हैं, वे सब (सदृशीः सत्यः अजुर्याः) एक समान रहकर पुरानी नहीं मालूम होतीं और ( आसां कतमा पुराणी ) उन उषाओं के बीच में कौन सी पुरानी है और ( क्व-स्वित् ) वह वेला कहां रहती है ? ( यया ) जिससे ( ऋभवः ) प्रकाश से दीप्त किरणें अपने ( विधाना विदधुः ) नाना प्रकाश, ताप आदि कर्म करते हैं उसी प्रकार ( यत् ) जो ( शुभ्राः ) दीप्तियुक्त, आभूषण एवं लावण्य, तेज आदि से उज्ज्वल, ( उषसः ) कान्तिमती उत्तम कन्याएं ( अजुर्याः ) वयस और

बल वीर्य की हानि न करती हुई, ब्रह्मचारिणी रहकर ( सदृशीः ) बल वीर्य में अपने पतियों के तुल्य रहकर (शुभ्रं) शुभ, विवाहादि शोभा युक्त कार्य करती हैं। वे ( न विज्ञायन्ते ) विपरीति नहीं जानी जातीं। ( आसां पुराणी कतमा ) उनमें से कौन श्रेष्ठ वा आयु में बड़ी है ( यया ) जिसके साथ विद्वान जन् ( ऋभूणां ) विद्वानों के बनाये ( विधाना विदधुः ) यज्ञादि अनेक अनुष्ठानों को ( क्वस्विद् ) किस २ दशा में और कहां २ ( विदधुः ) करते हैं। अर्थात् ब्रह्मचारिणी स्त्रियें सदृश पति को प्राप्त होकर बलवती, दीर्घायु सर्वत्र साथ देने वाली हों। ( २ ) वेदवाणियां भी ज्ञानमय होने से शुभ्र हैं, वे उत्तम ज्ञान देती हैं। पुरातन हैं। जिससे विद्वान् यज्ञादि अनुष्ठान नाना स्थानों पर करते रहते हैं। सब से पुरानी कौन २ यह नहीं जाना जासकता। सब सदृश हैं, वे रूप से 'अजुर्या' नित्य हैं।

ता घा ता भ॒द्रा उ॒षसः॑ पु॒रासु॑रभि॒ष्टिद्यु॑म्ना ऋ॒तजा॑तसत्याः।
यास्वी॑जा॒नः श॑शमा॒न उ॒क्थैः स्तु॒वञ्छंस॑न्द्र॒विणं॑ स॒द्य आप॑॥७॥

भा०—जिस प्रकार ( उषसः ) प्रभात बेलाएं (भद्राः) सुखकारिणी, ( अभिष्टि-द्युम्ना ) सर्वप्रकार फैलने वाले प्रकाश से युक्त, ( ऋत-जात-सत्याः ) तेज से सत्य पदार्थों का प्रकाश करने वाली होती हैं। ( यासु ईजानः उक्थैः शशमानः स्तुवन् शंसन् सद्यः द्रविणम् आप ) जिनमें प्रातः यज्ञ अर्थात् वेदमन्त्रों से ईश्वर की स्तुति करने वाला, स्तुतिशील वेदमन्त्रपाठी पुरुष शीघ्र ही अभीष्ट धन और ज्ञान प्राप्त करता है उसी प्रकार जो ( उषसः ) कमनीय उत्तम कन्याएं भी ( पुरा ) पूर्व जीवन में ( अभिष्टि द्युम्नाः ) इच्छानुसार धनैश्वर्य प्राप्त करने वाली ( ऋतजात-सत्याः ) 'ऋत' अर्थात् यज्ञ और धर्ममार्ग में सत्यप्रतिज्ञा को प्रकट करने वाली होती हैं ( ताः ) वही निश्चय से ( भद्राः ) उत्तम सुख-कारिणी और कल्याणकारिणी, सौभाग्यवती होती हैं। ( यासु ) जिन्हों में

वा जिन्हों के संग (ईजानः) यज्ञ करता हुआ, जिन्हों में अपने सर्वस्व को देता हुआ, वा जिन्हों से संगति करता हुआ (शशमानः) शमादि साधनों का अभ्यासी वा प्रशंसित पुरुष ( उक्थैः ) उत्तम वचनों से ( स्तुवन् ) उनकी स्तुति ( शंसम् ) और प्रशंसा करता हुआ, ( सद्यः ) शीघ्र ही (द्रविणं) ऐश्वर्य (आप) प्राप्त करता है। विद्वान् पुरुष ऐसी उत्तम स्त्रियों से ही गृहाश्रम का सम्पादन करे। (२) वेदवाणी पक्ष में—वे इष्ट सत्य का प्रकाश करतीं और वेदद्वारा सत्य को प्रकट करती हैं। जिनसे यज्ञ करता हुआ, सूक्तों से स्तुति कीर्त्तन करता हुआ विद्वान् ऐश्वर्य प्राप्त करता है।

**ता आ चरन्ति समना पुरस्तात्समानतः समना पप्रथानाः।**
**ऋतस्य देवीः सदसो बुधाना गवां न सर्गा उषसो जरन्ते ॥८॥**

भा०—(देवीः उषसः गवां सर्गाः न सदसः बुधानाः) तेज युक्त जगत् की प्रकाशक उषाएं गौओं अर्थात् रश्मियों की बनी हुई, गृहों को चमकाती हुई ( ऋतस्य जरन्ते ) सत्य प्रकाशमान सूर्य की कथा कहती हैं, ( समना ) एक साथ मिलकर आगे ( पुरस्तात् आ चरन्ति ) पूर्व दिशा में फैलती हैं उसी प्रकार ( ताः ) वे ( उषसः ) कमनीय, सुन्दर, उत्तम कामना वाली स्त्रियां ( पुरस्तात् सबके समक्ष ( समना ) एक चित्त होकर ( समानतः ) अपने समान गुण वाले पुरुषों से ( समना ) संगत एवं समानयुक्त होकर (पप्रथानाः) अपने उत्तम गुण, रूप, वैभव और प्रजाओं का विस्तार करती हुईं, ( देवीः ) उत्तम स्त्रियें ( सदसः बुधानाः ) उपस्थित सभ्य जनों को सम्बोधन करती हुईं ( गवां सर्गाः न ) उस समय प्रतिज्ञा-वाणियों को उत्पन्न करने वाले उत्तम वक्ताओं के तुल्य ( ऋतस्य जरन्ते ) सत्य प्रतिज्ञावचन युक्त वेद मन्त्रों का ( गवां सर्गाः न ) वाणियों के उत्पादक विद्वानों के तुल्य ही ( जरन्ते ) उच्चारण करें। ऐसी ज्ञान वाली, उदात्त गुणवती कन्याओं से विवाह करें। ( २ ) वेदवाणियां भी

ज्ञानवती होने से 'स-मना' हैं। वे प्रथम गुरु के समीप स्थित शिष्यों को ज्ञान का बोध कराती हैं।

ता इन्न्वे३व सम॑ना समा॒नीरमी॑तवर्णा उ॒षस॑श्चरन्ति ।
गू॒हन्ती॒रभ्व॒मसि॑तं॒ रुश॑द्भिः शु॒क्रास्त॒नूभि॒ः शुच॑यो रुचा॒नाः ॥९॥

भा०—जिस प्रकार ( उषसः समानीः अमीतवर्णाः समना चरन्ति ) उषाएं एक रूप से अपने रूप रंग का नाश न करती हुईं एक समान आगे बढ़ती हैं। और ( रुशद्भिः रुचानाः शुचयः शुक्राः अभ्वं असिते गूहन्तीः ) दीप्तियों से चमकती हुईं स्वयं उज्ज्वल शुद्ध रूप से रात्रि के कृष्ण अन्धकार के साथ मानों आलिंगन करती हैं उसी प्रकार ( ताः ) वे ( समनाः ) स्त्रियां अपने पतियों के साथ समान चित्तवाली ( समानीः ) पतियों के समान गुण, रूप, मान आदर से युक्त, ( अमीत-वर्णाः ) अपने वर्ण धर्म का लोप न करने वाली ( उषसः ) कान्ति युक्त और पतियों की हृदय से कामना करने वाली, ( शुचयः ) शुद्ध चरित्र, ( रुशद्भिः ) कामना और कान्ति से युक्त, उज्ज्वल ( तनूभिः ) देहों से ( रुचानाः ) अन्यों को रुचि कर वा मनोहर प्रतीत होती हुई ( असितं ) अन्य से न बंधे हुए, अपने से एकमात्र सम्बन्ध (अभ्वम्) एवं विद्या, कुल, गुण और बल में बड़े आदरणीय पति को ( गूहन्तीः ) अंगीकार करती हुईं ( चरन्ति ) सदाचार से वर्तें (ताः इत् नु) उनको ही विवाह में ग्रहण करें। ( २ ) वेदवाणियों के पक्ष में—वे सब को, समान रूप से ज्ञान देने से 'समना' हैं, शुद्ध पवित्र हैं, उत्तम यज्ञों से स्वयं (शुक्राः) प्रापक शुक्र, शुद्ध रूप है जिनमें अज्ञानियों की कृति नहीं मिल पाई। वे ( अमीतवर्णाः ) अनश्वर अक्षर संनिवेश वाली, नित्य हैं, वे ( असितं अभ्वं ) बन्धनरहित महान् परमेश्वर को अपने उज्ज्वल रूपों से बतलाती हुईं ( चरन्ति ) गुरु से शिष्य को प्राप्त होती हैं।

र॒यिं दि॑वो दुहितरो विभा॒तीः प्र॒जाव॑न्तं यच्छता॒स्मासु॑ देवीः ।
स्यो॒ना॒दा वः॑ प्रति॒बुध्य॑माना॒ः सु॒वीर्य॑स्य॒ पत॑यः स्याम ॥ १० ॥

भा०—( दिवः दुहितरः विभातीः देवीः रयिं यच्छन्ति ) प्रकाश को देने वाली वा सूर्य की कन्याओं के तुल्य उषाएं प्रकाश प्रदान करती हैं उसी प्रकार हे ( दिवः दुहितरः ) कामनाओं को पूर्ण करने वाली ( विभातीः ) विशेष कान्ति से युक्त हे (देवीः) उत्तम स्त्रियो ! आप (अस्मासु) हमें ( प्रजावन्तम् ) प्रजा, पुत्रादि से युक्त ( रयिम् ) ऐश्वर्य ( यच्छत ) प्रदान करो। ( स्योनात् ) सुख युक्त गृह से ( वः ) आप लोगों को अपना अभिप्राय ( प्रतिबुध्यमानाः ) भली प्रकार जान व जना कर वा उत्तम रीति से शिक्षित करके ही हम लोग ( सुवीर्यस्य ) उत्तम वीर्य और बल के ( पतयः ) बालक ( स्याम ) हों। ( २ ) वेदवाणियां ज्ञान प्रदान करने से 'दिवः दुहिता' हैं। अर्थ प्रकाशक होने से 'देवी' हैं। वे (स्योनात्) आनन्दमय प्रभु से प्राप्त होकर हमें प्रत्येक पदार्थ का ज्ञान करावें और हम ( सुवीर्यस्य पतयः ) उत्तम वीर्य के पालक, ब्रह्मचारी हों।

तद्वो॑ दिवो दुहितरो विभा॒तीरुप॑ ब्रुव उषसो य॒ज्ञके॑तुः।
व॒यं स्या॑म य॒शसो॒ जने॑षु॒ तद् द्यौश्च॑ ध॒त्तां पृ॑थि॒वी च॑ दे॒वी॥११॥२॥

भा०—जिस प्रकार ( यज्ञकेतुः दिवः दुहितरः विभातीः उषसः उपब्रूते ) यज्ञ का जानने हारा, वा उपास्य प्रभु को जानने वाला योगी ज्ञान प्रकाश का देने वाली, सूर्य की कन्या के तुल्य दीप्तियुक्त उषाओं और विशोका प्रज्ञाओं को लक्ष्य कर स्तुति करते हैं। उसी प्रकार ( यज्ञकेतुः ) परस्पर सत्संग, मान-आदर, सत्कार और परस्पर दान-प्रतिदान को भली प्रकार जानने वाला, होकर मैं ( दिवः दुहितरः ) कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ, ( विभातीः ) विविध गुणों से प्रकाश युक्त, ( उषसः ) कमनीय ( वः ) आप देवी जनों को वा आपके सम्बन्धों में ( तत् उप ब्रुवे ) वह वचन कहता हूं जिससे ( वयं ) हम सब ( जनेषु ) मनुष्यों के बीच ( यशसः ) यशस्वी ( स्याम ) हों। ( तत् ) मेरे कहे उस वचन को (द्यौः च) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष और ( देवी पृथिवी च ) पृथिवी

के समान सुख, सन्तान, अन्नादि देने वाली सर्वाश्रय स्त्री दोनों ( धत्तां ) धारण करें और एक दूसरे को उस प्रकार का प्रतिज्ञा वचन प्रदान करें और पालन करें। ( २ ) वेदवाणियों के उच्चारण से यज्ञ का और उपास्य देव परमेश्वर का ज्ञानी पुरुष उपासन करें, उस ब्रह्म की उपासना करें। हम सब में यशस्वी हों। उसी परम ब्रह्म की शक्ति को सूर्य और पृथिवी भी धारण करते हैं। इति द्वितीयो वर्गः ॥

## [ ५२ ]

वामदेव ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ४, ६ निचृद्गायत्री। ५, ७ गायत्री ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः।
दिवो अदर्शि दुहिता ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (दिवः दुहिता) सूर्य की कन्या के समान वा तेज से आकाश और भूमि को भर देने वाली उषा ( सूनरी = सु-नरी ) उत्तम रीति से सूर्य की अग्रगामिनी होकर ( जनी ) सब पदार्थों को प्रकट करती हुई, अन्धकार को दूर करती हुई ( प्रति अदर्शि ) प्रत्यक्ष सबको दिखाई देती है उसी प्रकार ( स्या ) वह ( जनी ) उत्तम सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ वा ( जनी ) स्त्री, (सू-नरी) उत्तम नायिका होकर ( स्वसुः परि ) अपनी अन्य भगिनी जन के समीप या उनसे भी अधिक ( वि उच्छन्ती ) विविध प्रकार से शोकादि खेदों को हरती और गुणों को प्रकट करती हुई ( दिवः ) कामना युक्त पतिकी मनोकामना को (दुहिता) पूर्ण करने वाली होकर ( प्रति अदर्शि ) दिखाई दे।

अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी।
सखाभूदश्विनोरुषाः ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार ( उषा ) उषा, प्रभात वेला ( अश्विनोः )

दिन और रात्रि के बीच में उनकी ( सखा ) मित्र, सखी के तुल्य या उनके आख्यान वा नाम से उषा का ग्रहण होता है। वह ( ऋतावरी ) तेज से युक्त ( गवां माता ) किरणों को माता के समान जनने वाली, ( अरुषी ) तेजस्वी, ललाई लिये हुए, ( अश्वा इव ) घोड़ी के तुल्य ( चित्रा ) अद्भुत रूप वाली होती है। उसी प्रकार ( उषाः ) गृहस्थ में बसने वाली, वा पति की नित्य कामना करने वाली, स्त्री भी ( अश्विनोः ) देह के भोक्ता इन्द्रिय रूप अश्वों के स्वामी जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषों में (सखा-अभूद्) मित्र के तुल्य एक ही समान नाम और कीर्त्ति से कहलाने योग्य है। अर्थात् दम्पति में पति के नाम से ही स्त्री को बुलाया जाना उचित है। वह ( ऋतावरी ) सत्य व्यवहार वाली, व्यवहार में सच्ची, ( गवां माता ) उत्तम वेदवाणियों की जानने वाली, वा ( गवां माता ) गौ आदि पशुओं को भी माता के समान स्नेह से पालन करने वाली वा गौ से उत्पन्न दुग्ध, घृत, नवनीत, क्षीर, पायस आदि पदार्थों को उत्तम रीति से बनाने में कुशल हो। वह ( अरुषी ) आरक्त, स्वस्थ, एवं राग से रञ्जित, प्रेम से युक्त और पति वा सन्तान के प्रति रोष से रहित हो। वह ( अश्वा इव ) शीघ्र-गामिनी घोड़ी के समान गृहस्थ रथ को वा अश्व-जाति के बलवान् पुरुष के तुल्य बल वीर्य सामर्थ्य वाली, ( चित्रा ) अद्भुत गुण कर्म स्वभाव वाली ज्ञान, मान, आदर से युक्त हो।

उ॒त सखा॑स्य॒श्विनो॑रु॒त मा॒ता गवा॑मसि।
उ॒तोषो॒ वस्व॒ ई॑शिषे ॥ ३ ॥

भा०—( उत ) और हे ( उषः ) प्रभात वेला के समान तू पूर्वोक्त प्रकार से ( अश्विनोः सखा असि ) दिन रात्रिवत् मिथुन युगल में से सखा, मित्रतुल्य सहायक है। ( उत ) और ( गवां माता असि ) गौओं की मातृवत् पालक, दूध, खीर, मलाई, मठा, मखन, घी आदि पदार्थों

की उत्पादक और ज्ञान युक्त वाणियों की जानने वाली हो। ( उत वस्वः ) धन और बसने योग्य घर की तू ( ईशिषे ) मालिकन हो।

यावयद्द्वेषसं त्वा चिकित्वित्सूनृतावरि।
प्रति स्तोमैरभुत्स्महि ॥ ४ ॥

भा०—हे ( चिकित्वित् ) उत्तम रीति से बालकों को ज्ञान कराने वाली, और उनको रोगादि से मुक्त करने हारी! हे ( सुनृतावरि ) उत्तम वचन बोलने वाली और उत्तम अन्न की स्वामिनी! हम (स्तोमैः) उत्तम २ प्रशंसा वचनों से ( यवयद्-द्वेषसं ) द्वेष के भावों और द्वेष करने वाले अप्रिय, अप्रीतिजनक पदार्थों और पुरुषों को दूर करने वाली ( त्वा प्रति अभुत्स्महि ) तुझको प्रत्येक कार्य का बोध करावें।

प्रति भद्रा अदृक्षत गवां सर्गा न रश्मयः।
ओषा अप्रा उरु ज्रयः ॥ ५ ॥

भा०—जब ( उषाः उरु-ज्रयः आ अप्राः ) प्रभात वेला, उषा बहुत तेज को पूर्ण करती है तब जिस प्रकार ( भद्राः गवां सर्गाः न ) सुख-दायिनी, कल्याणकारिणी गौओं वा वाणियों की रचना के तुल्य ( रश्मयः प्रति अदृक्षत ) रश्मियें देखने में आती हैं उसी प्रकार जब, ( उषा ) पति की प्रिया, कमनीय गुणों से युक्त स्त्री ( उरु ) बहुत ( ज्रयः ) तेज, वीर्य को ( आ अप्राः ) आदरपूर्वक धारण कर लेती है तब ( गवां ) जंगम सन्तानों की ( सर्गाः ) नाना सृष्टियां भी ( रश्मयः न ) उषाकी किरणों के तुल्य ही ( भद्राः ) सुखदायिनी, कल्याण गुण से युक्त ( प्रति अदृक्षत ) देखी जाती हैं। पति पत्नी के प्रेमपूर्वक निषेक द्वारा गर्भ आहित होने पर सन्तान उज्वल गुणयुक्त, उत्तम होती हैं।

आपप्रुषी विभावरि व्यावर्ज्योतिषा तमः।
उषो अनु स्वधामव ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार ( विभावरी आपप्रुषी तमः ज्योतिपा वि आवः, अनु स्वधाम् अवति ) कान्ति से युक्त प्रभात वेला, उषा, व्यापती हुई या प्रकाश से अन्धकार को दूर करती है और अपने पीछे 'स्वधा' अर्थात् अपने को धारण करने वाले सूर्य को भी सुरक्षित रखती और प्रकट करती है उसी प्रकार हे ( विभावरि ) विशेष कान्ति से युक्त एवं विशेष विचार और क्रिया शक्ति से सम्पन्न स्त्री ! तू ( ज्योतिषा ) अपने ज्ञान-प्रकाश से (आ-पप्रुषी) सर्वत्र पूर्ण करती हुई ( तमः वि आवः ) शोक और दुःखों के अन्धकार को दूर कर । और हे ( उपः ) कान्तिमति कमनीये ! तू ( स्व-धाम् ) अपने धारक, वा स्व अर्थात् धनैश्वर्य के धारक पति के ( अनु-अव ) अनुकूल होकर उसका अनुगमन कर, उसकी आज्ञाकारिणी हो । वा ( स्वधाम् अनु अव ) अनुकूल अन्नादि पदार्थ की रक्षा कर ।

आ द्यां तनोषि रश्मिभिरान्तरिक्षमुरु प्रियम् ।
उषः शुक्रेण शोचिषा ॥ ७ ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार ( उषा शुक्रेण शोचिषा रश्मिभिः द्याम् अन्तरि-क्षम् उरु च आतनोति ) प्रभात वेला शुद्ध कान्ति से और किरणों से प्रकाश को विशाल अन्तरिक्ष में फैलाती है उसी प्रकार हे ( उपः ) कमनीय स्त्री ! विदुषि ! तू भी ( शुक्रेण ) शुद्ध ( शोचिषा ) प्रकाश से और ( रश्मि-भिः ) उत्तम किरणों वा प्रेम-बन्धनों से ( द्याम् ) अपने कमनीय और ( अन्तरिक्षम् ) अपने अन्तःकरण में बसे ( उरु ) बहुत अधिक ( प्रियं ) प्रिय पति को ( आ तनोषि ) आदरपूर्वक स्वीकार कर, उसमें व्याप ।

'उषा' सूर्य की वह तीव्र तापयुक्त शक्ति है जो दाह या प्रचण्ड ताप उत्पन्न करती है । उसके दृष्टान्त से तेजस्वी राजा की प्रचण्ड शक्ति का वर्णन भी इस सूक्त में किया गया है । ताप शक्ति का वर्णन जैसे—( १ ) प्रकाश की उत्पादक, पूरक, प्रकाश किरणों से स्वतः उत्पन्न होने वाली होने से 'दिवः दुहिता' है । (२) अति घाम वा ताप के

अनन्तर जल उत्पन्न होने से गतिमान जल रूप सर्गों की उत्पादक होने से (गवां माता) है। इसी से (ऋतावरी) जलोत्पादक वा अन्नोत्पादक भी है। (३) वही वसु, सूर्य की तीव्र शक्ति होने से स्वामिनी है। (४) नाना रोगहारक होने से ताप शक्ति 'चिकित्वत्' है। अप्रीतिकारक, रोगकारी कीटाणुओं को नाश करने से 'यवयद्-द्वेषस्' है। उसकी प्रतीति हमें (स्तोमैः) बहुत से किरणगणों से होती है। (५) वह ताप शक्ति (उरु-ज्रयः) बहुत अधिक जीर्णकारी रोगहर शोषक ताप को धारती है, उसके बाद ही सुखकारक वृष्टि जल उत्पन्न होते हैं। (६) वही पहले (तमः आपप्रुषी) तेज से काले बादलों को उत्पन्न कर (स्वधाम्) अन्न जल को उत्पन्न करती है। वही ताप शक्ति (शोचिषा) तेज से और (शुक्रेण) जल से और रश्मियों से आकाश, अन्तरिक्ष और भूतल को पूर्ण करती है। इति तृतीयो वर्गः॥

## [ ५३ ]

वामदेव ऋषिः॥ सविता देवता॥ छन्दः—१, ३, ६, ७ निचृज्जगती॥ २ विराड् जगती। ४ स्वराड् जगती। ५ जगती॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

**तद्देवस्य॑ सवि॒तुर्वार्यं॑ म॒हद्वृ॑णीमहे॒ असु॑रस्य॒ प्रचे॑तसः।**
**छ॒र्दिर्येन॑ दा॒शुषे॒ यच्छ॑ति॒ त्मना॒ तन्नो॑ म॒हाँ उद॑यान्दे॒वो अ॒क्तुभिः॑॥१॥**

भा०— जिस प्रकार (असुरस्य) प्राणों के देने वाले (सवितुः देवस्य वार्यम् महत्) प्रकाशवान् सूर्य का जलों के उत्पन्न करने में समर्थ बड़ा भारी तेज है। (येन छर्दिः यच्छति) जिस तेज से वह स्वयं सबको गृह या आश्रय देता है और स्वयं भी (देवः अक्तुभिः महान् उद् अयान्) वह सूर्य प्रकाश युक्त किरणों से सब दिन स्वयं उदय को प्राप्त होता है उसी प्रकार हम लोग भी (प्र-चेतसः) उत्तम ज्ञानवान् (असुरस्य) सब के प्राणों के दाता वा शत्रुओं को वायु के तुल्य उखाड़ देने वाले

( सवितुः ) सर्वोत्पादक ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी, ( देवस्य ) प्रभु, राजा वा विजिगीषु के ( तत् महत् वार्यम् ) उस महान् शत्रुवारक और वरण करने योग्य बल ऐश्वर्य का ( वृणीमहे ) वरण करें प्राप्त करें ( येन ) जिससे वह ( त्मना ) स्वयं ( दाशुषे ) कर आदि देने वाले प्रजा जन को ( छर्दिः-यच्छन्ति ) गृह के समान शरण प्रदान करता है। वह ( देवः ) विजिगीषु, व्यवहारकुशल, विद्वान् पुरुष ( अक्तुभिः ) प्रकाशक, कमनीय गुणों से ( महान् ) महान्, आदर योग्य होकर दिनों दिन ( उत् अयान् ) उदय को प्राप्त हो और ( नः तत् यच्छति ) हमें भी वही ऐश्वर्य और तेज प्रदान करे।

दि॒वो ध॒र्त्ता भुव॑नस्य प्र॒जाप॑तिः पि॒शङ्गं॑ द्रा॒पिं प्रति॑ मुञ्चते क॒विः।
वि॒च॒क्ष॒णः प्र॒थय॑न्नापृ॒णन्नु॒र्व॑जीजनत्सवि॒ता सु॒म्नमु॒क्थ्य॑म् ॥ २ ॥

भा०—( प्रजापतिः ) प्रजा का पालक परमेश्वर और प्रजा के द्वारा ऐश्वर्य प्राप्त करने वाला, प्रजापालक राजा और विद्यासम्बन्ध से प्रजापति आचार्य, सूर्य के तुल्य ही ( दिवः धर्त्ताः ) ज्ञान, प्रकाश और विजय कामना को धारण करता हुआ ( भुवनस्य ) 'भुवन' समस्त लोकों का पालनकर्त्ता है। वह ( कविः ) क्रान्तदर्शी, अन्तर्यामी होकर भी सेनापतिवत् ( पिशङ्गं ) पीले, उज्वल ( द्रापिं ) सुवर्णमय कवच के तुल्य उज्वल स्वप्रकाशमय रूप को ( प्रतिमुञ्चते ) धारण करता है। वह ( विचक्षणः ) विविध पदार्थों, लोकों और विद्याओं का द्रष्टा ( उरु ) विस्तृत ज्ञान वा जगत् को ( प्रथयत् ) फैलाता हुआ, ( आपृणन् ) सबको पूर्ण एवं पालन करता हुआ ( सुम्नम् ) सुखकारी ( उक्थम् ) प्रशंसा योग्य ज्ञान-प्रवचन को भी ( अजीजनत् ) उत्पन्न करता है। ( २ ) सेनापति वा राजा सुखकर वचन वा आज्ञा देता है, राष्ट्र को फैलाता और पालता है वह सुवर्णमय उज्ज्वल कवच को पहनता है। प्रति पूर्वो मुचिर्धारणे। यथा तमग्रीवः प्रत्यमुञ्चत्। अधारयद् इत्यर्थः।

आप्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्मणे। प्र बाहू अस्राक्सविता सवीमनि निवेशयन्प्रसुवन्नक्तुभिर्जगत् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (दिव्या पार्थिवा रजांसि आ अप्रात्) आकाश और पृथिवी के समस्त लोकों, स्थानों को व्याप लेता है, वह (देवः) प्रकाशमान सूर्य (अक्तुभिः जगत् सवीमनि निवेशयन् सविता बाहू अस्राक्) अपने प्रकाशक और वर्षक रश्मियों और मेघों से जगत् को प्रकाश और ऐश्वर्य में स्थापित करता और प्रेरित करता हुआ अपनी बाहुतुल्य दोनों शक्तियों को आगे निरन्तर प्रकट करता है उसी प्रकार (देवः) तेजोमय, सर्व सुखों का दाता और सब ज्ञानों का प्रकाशक, प्रभु परमेश्वर (दिव्यानि रजांसि) आकाश में स्थित समस्त तेजोमय सूर्यों, समस्त अग्निमय लोकों और (पार्थिवा रजांसि) पृथिवी रूप, जीवसर्ग के आश्रय योग्य लोकों को (आ अप्राः) सब प्रकार से पूर्ण कर रहा है। वह (सविता) सर्वोत्पादक परमेश्वर (जगत्) इस जगत् को (अक्तुभिः) प्रकट करने, वर्षाने और चमकाने वाले ज्ञान, जल, और अग्नि, प्रकाश आदि साधनों से (सवीमनि) अपने शासन, जगद्-उत्पादन के कार्य में (निवेशयन्) स्थापित करता हुआ और (प्र-सुवन्) आगे भी निरन्तर उसको उत्पन्न करता हुआ अपने धारक और उत्पादक दोनों (बाहू) शक्तियों को दो बाहुओं के तुल्य (प्र अस्राक्) बराबर प्रकट करता जाता है और (स्वाय-धर्मणे) और अपने ईश्वरीय धर्म-व्यवस्था को प्रकट करने के लिये वह (देवः) सर्व-ज्ञान-प्रकाशक प्रभु (श्लोकं कृणुते) वेद-वाणी को प्रकट करता है। (२) राजा अपने राष्ट्र के धर्म या कानून-व्यवस्था के लिये धर्मशास्त्र को प्रकट करता है, अपने शासन में सब जगत् को बसाता और चलाता है और (बाहू प्र अस्राक्) दोनों बाहुओं अर्थात् ब्रह्म, क्षत्र दोनों को आगे बढ़ावे।

अदा॑भ्यो॒ भुव॑नानि प्र॒चाक॑शद्व्र॒तानि॑ दे॒वः स॑वि॒ताभि र॑क्षते ।
प्रास्रा॑ग्बा॒हू भुव॑नस्य प्र॒जाभ्यो॑ धृ॒तव्र॑तो म॒हो अज्म॑स्य राजति ४

भा०—जिस प्रकार सूर्य (भुवनानि प्र-चाकशत्) समस्त लोकों को प्रकाशित करता है। (व्रतानि अभि रक्षते) सबके व्रतों, कर्मों की रक्षा करता है, (महः अज्मस्य राजति) बड़े भारी जगत् में स्वयं चमकता है उसी प्रकार परमेश्वर (अदाभ्यः) स्वयं कभी भी नाश को प्राप्त नहीं होकर अविनाशी, (देवः) सब सुखों का दाता, (सविता) सर्वोत्पादक है वह (भुवनानि प्र-चाकशत्) समस्त लोकों, उत्पन्न जन्तुओं को अच्छी प्रकार प्रकाश और ज्ञान, वा चेतना से प्रकाशित करता है। वही (व्रतानि) सब कर्त्तव्यों की (अभिरक्षते) रक्षा करता है। इसी कारण (धृत-व्रतः) सब व्रतों का धारण करने वाला, (अज्मस्य भुवनस्य) आकाश में संचालित, संसार के बीच (राजति) राजा के तुल्य विराजता है। और (भुवनस्य प्र-जाभ्यः) समस्त जगत् की प्रजाओं के लिये (बाहू) पिता के तुल्य दोनों बाहुओं को (प्र अस्राक्) आगे बढ़ाता है। प्रकाशक और व्रतपालक, जीवनदायक दोनों बाहुएं पिता परमात्मा की हैं। (२) राजा भी सबके व्रतों, धर्मों और कर्त्तव्यों को प्रकाशित करे और उन धर्मों की रक्षा करे। तभी वह धृतव्रत होता है। वह प्रेम और पालन के दोनों बल पिता की बाहुओं के तुल्य प्रजाओं के हितार्थ फैलावे।

त्रिर॒न्तरि॑क्षं सवि॒ता म॑हित्व॒ना त्री रजां॑सि परि॒भूस्त्रीणि॑ रोच॒ना ।
ति॒स्रो दिवः॑ पृथि॒वीस्ति॒स्र इ॑न्वति त्रि॒भिर्व्र॒तैर॒भि नो॑ रक्षति॒ त्मना॑ ५

भा०—(सविता) सूर्य के समान तेजस्वी और सब का उत्पादक परमेश्वर (परिभूः) सर्वव्यापक है। वह (अन्तरिक्षं) भीतर बाहर व्याप्त आकाश को भी (त्रिः) तीनों प्रकारों से (इन्वति) व्यापता है वह अपने (महित्वना) महान् सामर्थ्य से, (रजांसि) समस्त लोकों को

( त्रिः ) तीन बार वा तीनों प्रकार के लोकों को ( त्रीणि रोचना ) तीन प्रकार के तेजस्वी, दीप्तिमान् पदार्थों और ( तिस्रः ) तीनों प्रकार के ( दिवः ) तेजों को और ( तिस्रः पृथिवीः ) तीनों प्रकार की भूमियों को ( इन्वति ) व्यापता है। वह ( त्रिभिः ) तीन प्रकारों के ( व्रतैः ) कर्मों वा नियमों से ( त्मना ) स्वयं ( नः ) हमें ( अभि रक्षति ) सब प्रकार से रक्षा करता है। तीन प्रकार के अन्तरिक्ष—महान् आकाश, मध्याकाश और हृदयाकाश। तीन प्रकार के रजस् या लोक–ऊर्ध्व लोक, मध्य लोक भूलोक वा सात्विक, राजस वा तामस जन। तीन प्रकार के रोचन पदार्थ, सूर्य, चन्द्र अग्नि वा सूर्य, अग्नि, विद्युत् तीन। (दिवः) प्रकाश अर्थात् रक्त नील, पीत। तीन प्रकार के व्रत सृष्टि, स्थिति, संहार। तीन भूमियें सूर्य, वायु वा अन्तरिक्ष और यह भूमि। ( २ ) इसी प्रकार राजा आकाश, गृह और भूगर्भ में प्रवेश कर सके, उत्तम मध्यम निकृष्ट श्रेणियों के लोकों को वश करे, धन, ज्ञान और प्रजाजन तीनों को प्राप्त करे, तीनों तेज प्रभुसत्ता, जनसत्ता और मन्त्रसत्ता तीनों शक्तियों को प्राप्त करे और तीन पृथिवी सम, वन, पर्वत तीनों पर राज्य करे। तीन व्रत, अत्मसंयम, जनसंयम, और अरिसंयम तीनों प्रकार की व्यवस्थाओं से राष्ट्र की रक्षा करे।

**बृहत्सु॑म्नः प्रस॒वीता॑ नि॒वेश॑नो॒ जग॑तः स्था॒तुरु॒भय॑स्य॒ यो व॒शी।**
**स नो॑ दे॒वः स॑वि॒ता शर्म॑ यच्छत्व॒स्मे क्षया॑य त्रि॒वरू॑थ॒मंह॑सः ॥६॥**

भा०—वह परमेश्वर ( बृहत्सुम्नः ) बड़े भारी सुख आनन्द का स्वामी ( प्रसवीता = प्रसविता ) समस्त संसार को उत्तम रीति से उत्पन्न करने, शासन करने और सञ्चालन करने हारा, ( निवेशनः ) सब को यथास्थान स्थापित करने वाला, ( जगतः ) जंगम, गतिशील चर और ( स्थातुः ) स्थिर, अचल स्थावर ( उभयस्य ) दोनों प्रकार की सृष्टि को ( यः-वशी ) जो वश करने वाला है, ( सः ) वह ( देवः सविता ) सब का दाता, सर्वोत्पादक, प्रभु ( नः शर्म यच्छतु ) हमें सुख प्रदान करे। और

( अस्मे ) हमारे ( क्षयाय ) निवास के लिये ( अंहसः ) पाप और आघात से ( त्रि-वरूथम् ) विविध प्रकारों से बचाने में समर्थ गृह वा शरण ( यच्छतु ) प्रदान करे । ( २ ) राजा भी राष्ट्र को ( निवेशनः ) बसाने वाला स्थावर, जंगम सब सम्पत्ति का वशकर्त्ता, प्रजा को सुख दे और निवास के त्रिविध तापवारक और पापवारक गृह वा शरण प्रदान करे ।

**आगन्देव ऋतुभिर्वर्धतु क्षयं दधातु नः सविता सुप्रजामिषम् ।**
**स नः क्षपाभिरहभिश्च जिन्वतु प्रजावन्तं रयिमस्मे समिन्वतु ७।४**

भा०—( देवः सविता ) प्रकाशमान् सूर्य जिस प्रकार ऋतुओं द्वारा बसे जगत् को बढ़ाता है । उत्तम प्रजा और अन्न देता, दिन और रात हमारी वृद्धि करता है उसी प्रकार ( देवः ) सब सुखों को देने और समस्त सूर्यादि को प्रकाशित करने वाला (सविता) सबका उत्पादक और सञ्चालक परमेश्वर ( क्षयं ) जगत् में बसे सर्ग को ( ऋतुभिः ) प्राणों के बल से ( वर्धतु ) बढ़ावे । वह ( क्षपाभिः अहभिः च ) दिन और रात सदा ( नः जिन्वतु ) हमें बढ़ावे । और ( अस्मे ) हमें ( प्रजावन्तं ) उत्तम सन्तति से युक्त ( रयिम् सम् इन्वतु ) ऐश्वर्य प्रदान करे । ( २ ) देव अर्थात् राजा ( ऋतुभिः ) सदस्यों और राज-बन्धुओं सहित आवे, राष्ट्र को बसावे । हमारी उत्तम प्रजा और सेना का पालन करे । ( अहभिः क्षपाभिः ) न मरने वाले वीरों शत्रु-नायकों और क्षयकारिणी सेनाओं से विजय करे, बढ़े, हमें उत्तम प्रजायुक्त धन दे । इति चतुर्थो वर्गः ॥

## [ ५४ ]

वामदेव ऋषिः ॥ सविता देवता ॥ छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप् । २ निचृत्-त्रिष्टुप् । ३, ४, ५ स्वराट् त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप् । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

**अभूद्देवः सविता वन्द्यो नु न इदानीमह्न उपवाच्यो नृभिः ।**
**वि यो रत्ना भजति मानवेभ्यः श्रेष्ठं नो अत्र द्रविणं यथा दधत् १**

भा०—( देवः ) स्वयं ज्ञानवान् ज्ञानों, धनों और सुखों का दाता, (सविता) सूर्य के समान तेजस्वी, ऐश्वर्यवान् राजा, परमात्मा और विद्वान् आचार्य ( नु ) निश्चय से ( नः ) हमारा ( वन्द्यः ) स्तुति योग्य ( अभूत् ) हो। वह (अन्हः) दिन के ( इदानीम् ) इस काल में भी ( नृभिः ) श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा ( उपवाच्यः ) उपासना और स्तुति करने योग्य है। ( यः ) जो ( मानवेभ्यः ) समस्त मननशील पुरुषों और शिष्यों के हितार्थ ( रत्ना ) नाना रत्न, उत्तम ऐश्वर्य, सुखप्रद ज्ञान ( वि भजति ) विविध प्रकार से विभक्त करता है। वही प्रभु, राजा और आचार्य ( नः ) हमें और हमारे बीच ( श्रेष्ठं द्रविणं ) सब से उत्तम ऐश्वर्य ( यथा ) यथा-पूर्व, यथाकर्म और यथायोग्य ( दधत् ) प्रदान करे।

दे॒वेभ्यो॒ हि प्र॑थ॒मं य॒ज्ञिये॑भ्योऽमृत॒त्वं सु॒वसि॑ भा॒गमु॑त्त॒मम्।
आदिद्दा॒मानं॑ सवित॒र्व्यू॑र्णुषेऽनूची॒ना जी॑वि॒ता मानु॑षेभ्यः ॥ २ ॥

भा०—हे ( सवितः ) सर्व जगत् के उत्पादक परमेश्वर ! तू ( यज्ञियेभ्यः देवेभ्यः) यज्ञ, उपासना और भक्ति करने में श्रेष्ठ, विद्वान्, तेजस्वी, पुरुषों के हितार्थ ( उत्तमम् भागम् ) सबसे उत्तम सेवन करने योग्य, ( अमृतत्वं ) अमृतस्वरूप, मोक्ष, सुख ( सुवसि ) प्रदान करता है। और ( आत् इत् ) अनन्तर ( दामानं ) दानशील राजा, जीवित चित्त वाले तपस्वी, एवं अपने को प्रभु के प्रति सौंप देने वाले पुरुष को ( वि ऊर्णुषे) विविध प्रकार से अच्छादित करता है. और ( मानुषेभ्यः ) समस्त मनन-शील पुरुषों के हितार्थ ( अनूचीना जीविता ) अनुकूल सुखप्रद जीवन प्रदान करता है।

अचि॑त्ती॒ यच्च॑कृ॒मा दैव्ये॒ जने॑ दी॒नैर्दक्षैः॒ प्रभू॑ती पूरुष॒त्वता॑।
दे॒वेषु॑ च सवित॒र्मानु॑षेषु च॒ त्वं नो॒ अत्र॑ सुवता॒दना॑गसः ॥ ३ ॥

भा०—हे परमात्मन् ! हे राजन् ! हम लोग ( अचित्ती ) विना ज्ञान

के, स्वयं ( दीनैः ) वेतनादि देने योग्य भृत्यों और ( दक्षैः ) कुशल पुरुषों और ( प्रभूती ) प्रचुर विभूतिमान् और ( पुरुषत्वता ) बहुत से पुरुषों से युक्त सैन्य से भी हम ( दैव्ये जने ) विद्वानों में कुशल वा ईश्वर-भक्त और राजा से नियुक्त ( जने ) पुरुष के प्रति और ( देवेषु ) विद्वानों और ( मानुषेषु ) साधारण मनुष्यों के ऊपर भी ( यत् ) जो अपराध करें हे ( सवितः ) सर्वोत्पादक प्रभो ! सञ्चालक राजन् ! ( त्वं ) तू ( नः ) हमें ( अत्र ) इस अवसर में ( अनागसः ) अपराध रहित ( सुवतात् ) कर । राजा अज्ञान से किये अपराधों को क्षमा करे, शेषों पर यथोचित दण्ड देकर प्रजा को अपराधों से रहित करे ।

**न प्रमिये सवितुर्दैव्यस्य तद्यथा विश्वं भुवनं धारयिष्यति ।**
**यत्पृथिव्या वरिमन्ना स्वङ्गुरिर्वर्ष्मन्दिवः सुवति सत्यमस्य तत् ॥४॥**

भा०—( यथा ) जिस प्रकार ( दैव्यस्य ) प्रकाशमान 'देव' अर्थात् किरणों वा प्रकाशों के स्वामी ( सवितुः ) सूर्य का ( तत् ) वह महान् सामर्थ्य ( न प्रमिये ) कभी नाश को प्राप्त नहीं होता, ( यत् ) जो ( विश्वं भुवनं धारयिष्यति ) समस्त संसार को बराबर धारण करता और भविष्य में भी धारण करता रहेगा, जो (पृथिव्याः वरिमन्) भूमि के विशाल पृष्ठ पर और (दिवः वर्ष्मन्) आकाश के भी वर्षणकारी मेघ में (सु-अंगुरिः) उत्तम उंगुलियों वाले, उत्तम साधनों वाले, पुरुष के समान उत्तम प्रकाशवान् किरणों से सम्पन्न सूर्य ( सुवति ) जल और अन्न को उत्पन्न करता है ( अस्य तत् सत्यम् ) उसका यह सब सामर्थ्य सत्य है । उसी प्रकार ( दैव्यस्य सवितुः ) सूर्यादि के स्वामी, सर्वोत्पादक परमेश्वर का ( तत् न प्रमिये ) वह महान् सामर्थ्य भी कभी नाश को प्राप्त नहीं होता ( यत् विश्वं भुवनं ) जो समस्त उत्पन्न जगत् को धारण करता और आगे भी करेगा । ( यत् ) और जो ( पृथिव्या वरिमन् दिवः वर्ष्मन् ) भूमि और आकाश के महान् पृष्ठ पर (सुअङ्गुरिः ) उत्तम हस्तवान्, कुशल शिल्पी

के समान ( आ सुवति ) मेघ, अन्न, जीवगण सूर्यादि लोक ( आसुवति ) सब को उत्पन्न करता है ( तत् अस्य सत्यम् ) वह सब परमेश्वर का बनाया जगत् और उत्पादक सामर्थ्य 'सत्य' है, मिथ्या नहीं और सत् कारण प्रकृति, जीव और ब्रह्म इनके द्वारा उत्पन्न होता है।

**इन्द्र॑ज्येष्ठान्बृ॒हद्भ्यः॒ पर्व॑तेभ्यः॒ क्षयाँ॑ एभ्यः सुवसि प॒स्त्याव॑तः।**
**यथा॑यथा प॒तय॑न्तो विये॒मिर ए॒वेव॑ त॑स्थुः सवितः स॒वाय॑ ते॥५॥**

भा०—हे परमेश्वर ! हे राजन् ! ( बृहद्भ्यः ) बड़े २ ( पर्वतेभ्यः ) मेघों को जिस प्रकार सूर्य ( पस्त्यावतः इन्द्रज्येष्ठान् क्षयान् सुवति ) जल धाराओं से युक्त विद्युद्, वायु आदि बड़े २ शक्तिमान तत्वों वाले अन्तरिक्षादि प्रदेश प्रदान करता है उसी प्रकार तू भी ( पर्वतेभ्यः ) प्रजा के पालनकारी सामर्थ्यों से युक्त ( बृहद्भ्यः ) बड़े, बड़े ( एभ्यः ) इन पुरुषों को ( इन्द्रज्येष्ठान् ) राजा वा सेनापति आदि सर्वश्रेष्ठ पदों से युक्त नाना (पस्त्यावतः) निवास गृहों से युक्त ( क्षयान् ) स्थान उत्तम पद (सुवाति) प्रदान करता है। हे ( सवितः ) सूर्यवत् तेजस्विन् ! राजन् ! वे ( पतयन्तः ) प्रजा के पालक, सेनापाल, अश्वपाल, पशुपाल, वनपाल आदि नाना अध्यक्ष पदों पर कार्य करते हुए ( यथायथा ) जैसे २ भी ( वि येमिरे ) विशेष प्रकार से प्रजा का नियन्त्रण वा व्यवस्थापन करते हैं ( एवएव ) उसी २ प्रकार ( ते ) वे सब ( ते ) तेरे ही ( सवाय ) शासन और ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये ( तस्थुः ) विराजें।

**ये ते॒ त्रिरह॒न्त्सवितः स॒वासो॑ दि॒वेदि॑वे॒ सौभ॑गमासु॒वन्ति॑।**
**इन्द्रो॒ द्यावा॑पृथि॒वी सिन्धु॑र॒द्भिरा॑दि॒त्यैर्नो॒ अदि॑तिः॒ शर्म॑ यंसत् ६।५**

भा०—हे ( सवितः ) सर्वशासक ! ऐश्वर्यवन् ! राजन् वा प्रभो ! ( ये ) जो ( सवासः ) उत्तम ऐश्वर्यवान् ! अभिषिक्त पदाधिकारी लोग ( दिवे दिवे ) दिनों दिन ( त्रिः ) तीन बार वा तीनों प्रकार से ( ते ) तेरे

( सौभगम् ) सुखदायी ऐश्वर्य को ( आसुवन्ति ) सब प्रकार से बढ़ाते हैं उन ( आदित्यैः ) बारह मासों से सूर्य के तुल्य ( इन्द्रः ) तेजस्वी शत्रुहन्ता और ( अद्भिः सिन्धुः न ) जलों से पूर्ण महानद, सागर वा आकाश के तुल्य वेगवान् विशाल और सौख्य वृष्टि आदि का दाता ( अदितिः ) अदीन अखण्डित शासक और ( द्यावापृथिवी ) सूर्य, भूमि के तुल्य माता पिता होकर ( नः ) हमें तू ( शर्म यंसत् ) सुख शरण प्रदान कर ( २ ) ये सब उत्पन्न पदार्थ परमेश्वर के ऐश्वर्य की वृद्धि करते हैं । वह प्रभु हमें सुख शरण दे ।

## [ ५५ ]

वामदेव ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २, ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ५ भुरिक् पंक्तिः । ६, ७ स्वराट् पंक्तिः । ८, ९ विराड्गायत्री । १० गायत्री ॥

**को वस्त्राता वसवः को वरूता द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नः ।**
**सहीयसो वरुण मित्र मर्तात्को वोऽध्वरे वरिवो धाति देवाः ॥१॥**

भा०—हे ( वरुण ) श्रेष्ठ पुरुष ! हे सब के स्नेहिन् ! मृत्यु से बचाने हारे ! हे ( वसवः ) राष्ट्र में बसने वाले जनो ! ( वः ) आप लोगों मे से ( कः ) कौन आप लोगों का ( त्राता ) रक्षक है । और ( कः ) कौन ( वरूता ) आप लोगों को अपनाने और विभाग कर २ रखने वाला है हे ( द्यावाभूमी) आकाश वा सूर्य और भूमि के समान आकाश जल, अन्न और आश्रय देने वाले माता और पिता ! हे (अदिते) अनुल्लंघनीय आज्ञा वाले माता पिता ! आप दोनों ( नः ) हमें ( सहीयसः मर्तात् ) बहुत बलवान् मनुष्य से ( त्रासीथाम् ) बचावें । हे ( देवः ) विद्वान् और दानशील पुरुषो ! ( अध्वरे ) यज्ञादि कार्य में ( कः ) कौन आप लोगों को ( वरिवः धाति ) धनैश्वर्य प्रदान करता है ।

प्र ये धामा॑नि पू॒र्व्याण्यर्चा॒न्वि यदु॒च्छान्वि॑यो॒तारो॒ अमू॑राः ।
वि॒धा॒तारो॒ वि ते द॑धु॒रज॑स्रा ऋ॒तधी॑तयो रुरुचन्त द॒स्माः ॥२॥

भा०—( ये ) जो ( पूर्व्याणि ) अपने पूर्व पुरुषों से प्राप्त किये (धामानि) जन्म, नाम, स्थानों, पदों को ( प्र अर्चान् ) आदर पूर्वक देखते हैं और ( यत् ) जो उनको ( वि उच्छान् ) विविध प्रकारों से प्रकट करते हैं ( ते ) वे (वि-योतारः) विविध प्रकारों के संकटों से छुड़ाने वाले ( अ-मूराः ) मोहरहित, ज्ञानवान्, (वि-धातारः) विविध कर्मों को करने वाले ( अजस्राः ) अहिंसक ( ऋत-धीतयः ) सत्य व्रतों को धारण करने वाले होकर ( वि दधुः ) विविध कर्म करते और वे (दस्माः) दुःखों के नाशक होकर ( रुरुचन्त ) सब के चित्तों को भले लगते हैं और सबकी दृष्टियों में तेजस्वी सूर्यवत् चमकते, शोभा पाते हैं ।

प्र प॒स्त्या३मदि॑तिं॒ सिन्धु॑म॒र्कैः स्व॒स्तिमी॑ळे स॒ख्याय॑ दे॒वीम् ।
उ॒भे यथा॑ नो॒ अह॑नी नि॒पात॑ उ॒षासा॒नक्ता॑ कर॒ताम॑द॑ब्धे ॥ ३ ॥

भा०—मैं ( पस्त्याम् ) साक्षात् गृहस्वरूप, ( अदितिम् ) माता स्वरूप, ( सिन्धुम् ) प्रेम सम्बन्ध से बांधने वाली, (सख्याय ) मित्र भाव के लिये ( स्वस्ति ) सुख कल्याण करने वाली, स्त्री का ( अर्कैः ) आदर सत्कार युक्त वचनों से ( ईळे ) सत्कार-सन्मान करूं । जिससे ( नः ) हमारे बीच में ( उषासा-नक्ता ) दिन रात्रि के समान कामना युक्त स्त्री और अव्यक्त भाव वाला पुरुष ( उभे ) दोनों ही ( अहनी ) जीवन में पीड़ित, दुखी न रहते हुए ( अदब्धे ) अहिंसित, चिरजीव होकर ( नि-पातः ) एक दूसरे की नित्य रक्षा करते रहें ।

व्य॑र्य॒मा वरु॑णश्चेति॒ पन्था॑मि॒षस्पतिः॑ सुवि॒तं गा॒तुम॒ग्निः ।
इन्द्रा॑विष्णू नृ॒वदु॒ षु स्तवा॑ना॒ शर्म॑ नो यन्त॒मम॑वद्वरू॑थम् ॥ ४ ॥

भा०—( अर्यमा ) दुष्टों को संयम में रखने वाला जितेन्द्रिय और

न्यायशील ( वरुणः ) श्रेष्ठ पुरुष ( पन्थाम् ) मार्ग को ( विचेति ) विशेष रूप से जनाता है। और ( इषः पतिः अग्निः ) अग्नि के समान तेजस्वी अग्रणी, नायक अन्न का स्वामी और कामनाओं का पालक होकर ( सुवितं ) सुख से चलने योग्य ( गातुम् ) मार्ग और ( सुवितम् गातुम् ) सुख सौभाग्य से सम्पन्न भूमि को ( विचेति ) प्राप्त करे, भली प्रकार जाने। ( इन्द्र-विष्णू ) ऐश्वर्यवान् और व्यापक सामर्थ्य वाले विद्युत् और वायु के तुल्य दीप्ति और बल से युक्त स्त्री पुरुष ( नृवत् ) नायकों के तुल्य ( नः ) हमारे बीच में ( सु स्तुवाना ) उत्तम स्तुति के पात्र होते हुए ( अमवत् ) सुख सामग्री और सहायकों से युक्त ( वरूथम् ) गृह और (शर्म) शरण ( यन्तम् ) प्राप्त करें और उसकी व्यवस्था करें।

आ पर्वतस्य मरुतामवांसि देवस्य त्रातुरव्रि भगस्य।
पात्पतिर्जन्यादंहसो नो मित्रो मित्रियादुत न उरुष्येत् ॥५॥६॥

भा०—मैं वधू ( मरुताम् ) वायुओं के तुल्य बलवान् विद्वान् पुरुषों के बीच ( पर्वतस्य ) मेघ के समान पालक, सुखों के देने वाले, एवं स्थिर (देवस्य) कामना करने करने वाले, तेजस्वी, सुखदाता ( भगस्य ) उत्तम ऐश्वर्यवान् ( त्रातुः ) दुःखों से पालन करने वाले तुझ पुरुष के (अवांसि) रक्षाओं, प्रिय पदार्थों और अन्नों को मैं ( अव्रि ) वरण करती हूं। वह ( मित्रः ) मित्र के तुल्य अति स्नेही ( पतिः ) पति, पालक ( नः ) हमें ( जन्यात् ) आगे होने वाले या जन समूह में होने वाले ( अंहसः ) पाप और दुःख से ( पात् ) बचावे। ( उत ) और वह ( मित्रियात् ) मित्र जनों से होने वाले दुराचारादि अकर्म से भी ( उरुष्येत् ) रक्षा करे।

नू रोदसी अहिना बुध्न्येन स्तुवीत देवी अप्येभिरिष्टैः।
समुद्रं न संचरणे सनिष्यवो घर्मस्वरसो नद्यो३ अप व्रन् ॥ ६ ॥

भा०—( न ) जिस प्रकार ( संचरणे ) चलने में ( सनिष्यवः ) जल को विभक्त कर लेने वाली ( नद्यः ) नदियें ( घर्म-स्वरसः ) बहते जलों से पूर्ण होकर, दूर जाकर ( समुद्रम् अप व्रन् ) समुद्र को ही वरण करती हैं। उसी प्रकार ( सनिष्यवः ) नाना द्रव्य, एवं ऐश्वर्य को चाहने वाली, ( नद्यः ) नदियों के तुल्य सुख समृद्धि से युक्त स्त्रियें भी ( संचरणे ) समान पद पर आचरण करने वा साथ मिल कर धर्मानुष्ठान करने के लिये ( समुद्रं ) समुद्र के समान गंभीर एवं अपार उदार पुरुष के प्रति ( घर्म-स्वरसः ) अति दीप्त उज्वल स्वर से प्रसन्नता युक्त होकर ( अप-व्रन् ) उसके प्रति अपने प्रेम भाव प्रकट करें और लोग ( अप्येभिः इष्टैः ) आप्त जनों के योग्य इष्ट उत्तम वचनों और आदर सत्कारों से और ( बुध्न्येन अहिना ) आकाश में स्थित मेघ या सूर्य के तुल्य शान्तिप्रद वा तेजस्वी वर के मिष से (रोदसी नु) आकाश और पृथिवी के तुल्य वर वधू दोनों की ही ( स्तुवीत ) स्तुति करें।

**दे॒वैर्नो॑ दे॒व्यदि॑ति॒र्नि पा॑तु दे॒वस्त्रा॒ता त्रा॑यता॒मप्र॑युच्छन्।**
**न॒हि मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्य धा॒सिमर्हा॑मसि प्रमि॒यं॒ सान्व॒ग्नेः॥ ७॥**

भा०—( देवी ) उत्तम गुणों से युक्त स्त्री ( अदितिः ) अखण्ड चरित्र रहती हुई ( नः ) हमें ( देवैः ) अपने उत्तम गुणों से, किरणों से सूर्य के तुल्य ( नि पातु ) गृह जनों को पालन करे। ( देवः ) कामनावान् व्यवहारज्ञ पुरुष (त्राता) पालक होकर (अप्र-युच्छन् ) किसी प्रकार प्रमाद न करता हुआ ( त्रायताम् ) सब बन्धुजन की पालना करे। हमें भी ( मित्रस्य ) स्नेही मित्र ( वरुणस्य ) सर्वश्रेष्ठ और ( अग्नेः ) अग्नि के समान ज्ञान प्रकाश से युक्त पुरुष के ( सानु धासिम् ) उपभोग योग्य और दान देने योग्य धारक पोषक अन्न आदि वृत्ति को ( प्रमियं नहि अर्हामसि ) कभी नाश न करना चाहिये।

अग्निरीशे वसव्यस्याग्निर्महः सौभगस्य ।
तान्यस्मभ्यं रासते ॥ ८ ॥

भा०—( अग्निः ) अग्नि के समान तेजस्वी, ज्ञानवान् अग्रणी नायक पुरुष ( वसव्यस्य ) गृहों में वसने वाले लोगों के अति हितकारी ऐश्वर्य का ( ईशे ) स्वामी हो। वह ( अग्निः ) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष ( महः सौभगस्य ) बड़े उत्तम सौभाग्य का ( ईशे ) स्वामी हो। वह (तानि) उन धनों और सौभाग्यों का ( अस्मभ्यं ) हमें ( रासते ) प्रदान करे।

उषो मघोन्या वह सूनृते वार्या पुरु ।
अस्मभ्यं वाजिनीवति ॥ ९ ॥

भा०—हे ( उषः ) उषावत् कमनीय कान्ति से युक्त विदुषि ! हे ( मघोनि ) उत्तम धन समृद्धि से सम्पन्न ! हे ( सूनृते ) उत्तम ज्ञान और वाणी बोलने और उत्तम अन्न उपयोग करने हारी ! हे ( वाजिनी-वति ) बलशालिनी शक्ति वा क्रिया तथा ज्ञान युक्त विद्या से युक्त तू ( अस्मभ्यम् ) हमें ( पुरु ) बहुत से ( वार्या ) वरण करने योग्य ऐश्वर्य ( आ वह ) प्राप्त करा।

तत्सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
इन्द्रो नो राधसा गमत् ॥ १० ॥ ७ ॥

भा०—( सविता ) सबका उत्पादक सूर्यवत् तेजस्वी ( भगः ) ऐश्वर्यवान्, (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, सब दुःखों व कष्टों का वारक (मित्रः) सब का स्नेही, प्रजा को मरने से बचाने वाला, ( अर्यमा ) न्यायकारी और शत्रुओं को नियम में रखने वाला, ( इन्द्रः ) विद्युत् और वायु के समान बलवान्, ऐश्वर्यवान् पुरुष (तत्) उन उन नाना प्रकार के (राधसा) कार्य साधक धनसहित ( सु गमत् ) सुखपूर्वक प्राप्त हो। इति सप्तमो वर्गः ॥

## [ ५६ ]

वामदेव ऋषिः ॥ द्यावापृथिव्यौ देवते ॥ छन्दः—१, २, त्रिष्टुप् । ४ विराट् त्रिष्टुप् । ३ भुरिक् पंक्तिः ॥ ५ निचृद्गायत्री । ६ विराड् गायत्री । ७ गायत्री ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

**म॒ही द्यावा॑पृथि॒वी इ॒ह ज्येष्ठे॑ रु॒चा भ॑वतां शु॒चय॑द्भिर॒र्कैः ।**
**यत्सीं॒ वरि॑ष्ठे बृह॒ती वि॑मि॒न्वन्रु॒वद्धो॒क्षा प॑प्रथा॒नेभि॒रेवैः॑ ॥ १ ॥**

भा०—( इह ) इस संसार में जिस प्रकार ( द्यावापृथिवी मही शुचयद्भिः अर्कैः रुचा ज्येष्ठे भवताम् ) सूर्य और पृथिवी दोनों बड़ी होकर पवित्रकारी तेजों से कान्ति से सर्वोत्तम होते हैं । उसी प्रकार सूर्य-पृथिवी-वत् पुरुष और स्त्री, ( मही ) गुणों में आदरणीय होकर ( शुचयद्भिः अर्कैः ) पवित्र करने वाले वेदमन्त्रों और अन्नों से और ( रुचा ) कान्ति और उत्तम रुचि से ( ज्येष्ठे ) सब से उत्तम ( भवताम् ) होकर रहें । और जिस प्रकार ( उक्षा ) जल सेचन करने और सब को धारण करने वाला मेघ ( वरिष्ठे बृहती विमिन्वन् पप्रथानेभिः एवैः रुवत् ) बड़ी २ सूर्य पृथिवी उन दोनों को व्यापता हुआ व्यापक तेजों और वायुओं द्वारा ध्वनित करता है उसी प्रकार ( उक्षा ) ज्ञान धाराओं का सब पर समान भाव से सेचन करने वाला विद्वान् पुरुष ( यत् ) जो ( सीम् ) सब प्रकार से ( वरिष्ठे बृहती ) सब से अधिक वरणीय, बड़े २ दोनों स्त्री और पुरुष को ( विमिन्वन् ) विशेष रूप से ज्ञानवान् करता हुआ ( पप्रथानेभिः ) अति विस्तृत ( एवैः ) ज्ञानों वा अर्थज्ञापक वचनों से ( रुवत् ) उपदेश करे । ( २ ) इसी प्रकार प्रजा वा राजा भी पृथिवी सूर्य के तुल्य समृद्धि-ऐश्वर्य और परस्पर की रुचि से युक्त हों । बलवान् राजा वा नेता उभय पक्षों को आज्ञापक शासनों से आदेश करे ।

देवी देवेभिर्यजते यजत्रैरमिनती तस्थतुरुक्षमाणे ।
ऋतावरी अद्रुहा देवपुत्रे यज्ञस्य नेत्री शुचयद्भिरर्कैः ॥ २ ॥

भा०—सूर्य और पृथिवी के समान वर और वधू, स्त्री और पुरुष दोनों ( देवी ) स्वयं उत्तम गुणों के प्रकाशक, उत्तम व्यवहारों की कामना करने वाले, ( यजत्रैः देवेभिः ) सत्संगयोग्य, दानशील, और आदरणीय, पूज्य विद्वानों के साथ सदा ( यजते ) सत्संग करने वाले ( अमिनती ) एक दूसरे की वा सन्तानों और परस्पर गृहीत सद्व्रतों को पीड़ित न करते हुए ( उक्षमणे ) परस्पर निषेक आदि व्यवहार करते, एक दूसरे को बढ़ाते और गृहस्थभार का वहन करते हुए ( तस्थतुः ) स्थिर होकर रहें। वे दोनों ( ऋत-वरी ) सत्य, ज्ञान और धनके मालिक न होकर, (अद्रुहा) एक दूसरे का प्रोत्साहन करते हुए, (देव-पुत्रे) उत्तम विद्वान् माता पिता और आचार्य के पुत्र वा शिष्य होकर (शुचयद्भिः ) पवित्र कारक ( अर्कैः ) मन्त्रों, तेजों और अन्नों से ( यज्ञस्य नेत्री तस्थतुः ) परस्पर के समर्पण वा संग से बने गृहस्थ कर्म के नायक होकर विराजें। ( २ ) इसी प्रकार का व्यवहार राजा प्रजा भी करें।

स इत्स्वपा भुवनेष्वास य इमे द्यावापृथिवी जजान ।
उर्वी गभीरे रजसी सुमेके अवंशे धीरः शच्या समैरत् ॥ ३ ॥

भा०—( सः इत् सु-अपाः ) वह परमेश्वर ही शुभ कर्म करने वाला, विश्वकर्मा होकर ( भुवनेषु ) समस्त लोकों में ( आस ) विद्यमान, व्यापक है ( यः इमे ) जो इन दोनों ( द्यावा पृथिवी ) सूर्य पृथिवी को ( जजान ) उत्पन्न करता है। और ( सः इत् ) वह ही ( धीरः ) सब की बुद्धियों में रमण करने वाला, समस्त संसार को धारण करने वाला है, जो ( उर्वी ) इन दोनों विशाल, ( गभीरे ) गंभीर ( सुमेके ) सुरूप, सुसम्बद्ध, ( अवंशे ) वंशादि स्थूल आधार के विना ही रहने वाले

( रजसी ) दोनों लोकों को ( शच्या ) अपनी बड़ी भारी शक्ति से ( सम् ऐरत् ) भली प्रकार चला रहा है। ( २ ) उसी प्रकार समस्त लोकों में वही (सु-अपाः) उत्तम आचारवान् पुरुष ही है जो इन वर वधू पुरुष स्त्री को ( जजान ) परस्पर विवाहित करे। वे इन गंभीर ( रजसी ) एक दूसरे का वा सबका मनोरंजन करने वाले रागयुक्त, ( सुमेके ) उत्तम रीति से वीर्यसेचन में समर्थ वा सुन्दर स्वरूप ( अवंशे ) आगे की सन्तान रूप वंश परम्परा से रहित, निःसन्तान दोनों को ( धीरः ) बुद्धिमान् विद्वान् ( शच्या ) वेदवाणी से ( सम् ऐरत् ) एक साथ सुसंगत कर सन्मार्ग पर सञ्चालित करे। दोनों विवाहित कर सत्पथ पर चलावे।

नू रोदसी बृहद्भिर्नो वरूथैः पत्नीवद्भिरिषयन्ती सजोषाः।
उरूची विश्वे यजते नि पातं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥४॥

भा०—( नु ) निश्चय से स्त्री और पुरुष दोनों ( रोदसी ) सूर्य पृथिवी के तुल्य एक दूसरे को रोकने वाले, प्रेमपूर्वक वचन कहने वाले, और एक दूसरे के प्रेमवश, सुखों, दुःखों हर्षों और विषादों में एक दूसरे के लिये रोने वा रुलाने वाले होवो। वे दोनों (सजोषाः) समान नीति भाव से प्रीति युक्त होकर ( बृहद्भिः ) बड़े बड़े, ( पत्नीवद्भिः ) पालक स्त्री पत्नी, वा मालिकन से युक्त ( वरूथैः ) गृहों से ( इषयन्ती ) बहुत अन्नादि संग्रह करते हुए ( उरूची ) बहुत ऐश्वर्यों को प्राप्त करते हुए ( यजते ) परस्पर संगत रह कर ( विश्वे ) एक दूसरे के हृदय में प्रविष्ट होकर ( नि पातं ) प्रजाओं, पशुओं और भृत्यों का पालन करें। जिससे हम लोग ( धिया ) बुद्धि और धारण पोषण आदि उत्तम कर्म से ( रथ्यः ) उत्तम रथादि से युक्त और ( सदासाः ) उत्तम सेवकों से युक्त ( स्याम ) हों।

प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे।
शुची उप प्रशस्तये ॥ ५ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों सूर्य और पृथिवी के समान ही ( द्यवी ) ज्ञान वा हर्ष प्रकाश से एक दूसरे को स्तुति गुणों से प्रकाशित करने वाले, एक दूसरे की कामना करने वाले और ( शुची ) एक दूसरे के प्रति स्वच्छ, सद् विचारवान्, ईमानदार होकर रहो। ( वां ) आप दोनों को ( अभि ) लक्ष्य करके हम लोग ( उप-स्तुतिं प्र भरामहे ) कथोपकथन, दृष्टान्त प्रतिदृष्टान्त से उपदेश प्रस्तुत करते हैं। और (प्र-शस्तये) आप लोगों की कीर्त्ति के लिये हम ( उप-स्तुतिं प्र-भरामहे ) वे सब उत्तम वचन कहते हैं। आप दोनों उस पर आचरण करो।

पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः ।
ऊह्याथे सनादृतम् ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य और पृथिवी दोनों एक दूसरे को अपने ( तन्वा पुनाने ) विस्तृत तेज और जल से पवित्र करते ( स्वेन दक्षेण राजथः ) अपने २ दाहक तेज प्रकाश और भीतरी अग्नि के बल से प्रकाशित होते वा राजा रानी के तुल्य आचरण करते हैं और ( सनात् ) सनातन काल से, सृष्टि के आरम्भ से अनन्त काल तक (ऋतम् ऊह्याथे) इस जगत् को वा तेज, जल वा अन्न को धारण करते हैं वा परस्पर के संग रूप यज्ञ को धारते हैं। उसी प्रकार स्त्री और पुरुष दोनों ( मिथः ) एक दूसरे को ( तन्वा ) शरीर से सम्पर्क द्वारा ( पुनाना ) पवित्र करते हुए ( स्वेन दक्षेण ) अपने विद्या, बुद्धि और धन बल से ( राजथः ) शोभा पावें। और ( सनात् ) सनातन से प्राप्त ( ऋतम् ) सत्य ज्ञान वेद, पैतृक धन और धार्मिक सत्य व्यवहार को ( ऊह्याथे ) धारण करो।

मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम् ।
परि यज्ञं नि षेदथुः ॥ ७ ॥ ८ ॥

भा०—वे दोनों ( मही ) एक दूसरे के प्रति और अन्यों की दृष्टि में भी आदर योग्य होकर ( तरन्ती ) एक दूसरे के सहाय से सब कष्टों को

पार करते हुए ( ऋतम् ) अन्न, धन, ज्ञान और तेज को ( पिप्रती ) पूर्ण रूप धारण करते हुए ( मित्रस्य ) परस्पर के स्नेह करने वाले अपने सहचर व्यक्ति को ( साधथः ) प्राप्त हों, एक दूसरे को साधें, एक दूसरे का कार्य करें। और ( यज्ञं परि ) यज्ञ में परिक्रमा करके ( नि सेदथुः ) विराजें। इत्यष्टमो वर्गः ॥

## [ ५७ ]

वामदेव ऋषिः ॥ १—३ क्षेत्रपतिः। ४ शुनः। ५, ८ शुनासीरौ। ६, ७ सीता देवता ॥ छन्दः—१, ४, ६, ७ अनुष्टुप्। २, ३, ८ त्रिष्टुप्। ५ पुर-उष्णिक् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि।
गामश्वं पोषयित्न्वा स नो मृळातीदृशे ॥ १ ॥

भा०—( क्षेत्रस्य ) निवास करने योग्य गृह, वीज वपन करने योग्य क्षेत्र के तुल्य गृहपत्नी के ( पतिना ) पालक, ( हितेन ) स्थापित हितकारी एवं प्रेम, कर्त्तव्य में बद्ध के सदृश पुरुष से ही ( वयम् ) हम ( गाम् ) गौ, भूमि, इन्द्रियों और गवादि पशु गण, ( अश्वं ) कर्मेन्द्रिय अश्वादि साधन और ( पोषयित्नु ) पोषक धन, अन्नादि सब ( जयामसि ) प्राप्त करते हैं ( सः ) वह ( नः ) हमें ( ईदृशे ) ऐसे पद पर विराज कर ( आ मृडाति ) सब प्रकार से सुखी करे।

क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृळयन्तु ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार क्षेत्र का स्वामी कृषक व जमींदार, भूस्वामी अन्न समृद्धि को प्राप्त करता और औरों को देता है उसी प्रकार हे ( क्षेत्रस्य पते ) स्त्री गृह आदि निवास योग्य पदार्थों के पालक पुरुष ! ( पयः धेनुः इव ) गौ को दूध के तुल्य ( अस्मासु ) हमें ( मधुमन्तम् ऊर्मम् ) मधुर

अन्न, वचन आदि से युक्त उत्तम आनन्द को ( धुक्ष्व ) प्रदान कर। वह ( घृतम्-इव सु-पूतम् ) घी के तुल्य उत्तम रीति से छने हुए शुद्ध पवित्र ( मधु-श्चुतम् ) मधुर सुख देने वाले उत्तम पदार्थ को प्रदान कर और (नः) हमें ( ऋतस्य पतयः ) सत्य ज्ञान वेद और धनैश्वर्य के पालक, सत्य वचन और अन्न के पालक जन ( मृडयन्तु ) सुखी करें।

मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम्।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥ ३ ॥

भा०—( नः ) हमारे लिये ( ओषधीः ) ओषधि गण ( मधुमतीः सन्तु ) मधुर गुण वाली हों। ( द्यावः ) सब भूमियें ( मधुमतीः सन्तु ) अन्नों से युक्त हों। ( आपः मधुमतीः सन्तु ) जल धाराएं, नदियें सब मधुर जल वाली हों। ( नः अन्तरिक्षं मधुमत् अस्तु ) हमारे लिये अन्तरिक्ष मधुर जल से युक्त हो। ( नः क्षेत्रस्य पतिः ) हमारे खेत का पालक और हमारे में से स्त्रियों, गृहों के पालक पुरुष ( मधुमान् अस्तु ) अन्नों से युक्त हों। हम ( अरिष्यन्तः ) किसी की हिंसा न करते हुए ( एतं अनु चरेम ) गृहपति के अनुकूल होकर रहें, उसकी आज्ञा में और उसकी सुविधानुसार रहें। क्षेत्रस्य पतिः—क्षेत्रं क्षियतेर्निवासकर्मणः तस्य पाता पालयिता वा तस्यैषा भवति। क्षेत्रस्य पतिनेत्यादि० निरु० १०। २। १॥

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम्।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ॥ ४ ॥

भा०—( वाहाः ) हल वाहने वाले बैल, अश्व आदि पशु ( शुनं ) सुखपूर्वक हल चलावें, ( नरः शुनं कृषन्तु ) मनुष्य भी सुखपूर्वक हल वाहें। ( लाङ्गलं शुनं कृषतु ) हल भी सुख से क्षेत्र को खोदे। ( वरत्राः ) रस्सियां ( शुनं ) सुखपूर्वक ( बध्यन्ताम् ) पशुओं को बांधी जावें। हे पुरुषो ! तू ( अष्ट्राम् ) चाबुक को भी ( शुनं ) सुखपूर्वक ( उत्

इङ्गय ) चला । अध्यात्म में—वाह इन्द्रिय गण, नर आत्मा, लाङ्गल चित्त, वरत्रा शुभ वासनाएं ।

**शुनासीराविमां वाचं जुषेथां यद्दिवि चक्रथुः पयः ।**
**तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥ ५ ॥**

भा०—हे ( शुनासीरौ ) 'शुन' सुखप्रद अन्नादि पदार्थ और 'सीर' अर्थात् हल के स्वामी क्षेत्रपति और भृत्य, भर्त्तव्य स्त्री पुत्र, सेवकादि जनो ! आप दोनों ( यत् ) जो ( दिवि ) भूमि पर ( पयः ) पोषणकारी अन्न को आकाश में जल को सूर्य और वायु के तुल्य ( चक्रथुः ) उत्पन्न करते हो वे दोनों ( इमां ) इस ( वाचम् ) वाणी को ( जुषेथाम् ) प्रेमपूर्वक कार्य व्यवहार में लाओ । और ( तेन ) उससे ( माम् ) मुझ प्रजाजन को भी ( उप सिञ्चतम् ) जल से वृक्षादि के समान अन्नादि से बढ़ाओ ।

**अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा ।**
**यथा नः सुभगाससि यथा नः सुफलाससि ॥ ६ ॥**

भा०—हे ( सीते ) हल के अग्रभाग, फाली ! हे ( सु-भगे ) उत्तम ऐश्वर्यवति ! तू ( अर्वाची ) भूतल के नीचे जाने हारी ( भव ) हो । ( त्वा वन्दामहे ) तेरे ऐसे गुणों का हम वर्णन करें ( यथा ) जिससे तू ( नः सुभगा अससि ) सुख सौभाग्य देने वाली हो और ( यथा-नः सुफला अससि ) जिस प्रकार तू हमें उत्तम अन्न समृद्धि रूप फल देने वाली हो । हल की फाली से उत्तम रूप से खेत जोतने पर ही फसल की उत्तमता निर्भर है । इसलिये हल की फाली के नाना गुणों का अनुशीलन करना चाहिये । (२) गृह पक्ष में—हे ( सीते = सिते ) प्रेमपाश में बद्ध एवं शुभ्र गुणों से युक्त ! ( सुभगे ) सौभाग्यवति स्त्री ! तू ( अर्वाची भव ) हमारे प्रति आकृष्ट हो ( त्वा वन्दामहे ) तेरे गुण वर्णन और सत्कार करें । जिससे उत्तम ऐश्वर्य और अंग, उत्तम रूप और कुल युक्त और उत्तम

सन्तान वाली हो। स्त्री के उत्पादक अंगों का दोषरहित होना ही सन्तान की उत्तमता में कारण है। प्रेम से बंधने वाली स्त्री सीता है। सुखपूर्वक सेवने, पति को सुख देने और कल्याण गुणों से युक्त स्त्री 'सुभगा' है।

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषानु यच्छतु।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥ ७ ॥

भा०—( इन्द्र ) ऐश्वर्यवान् पुरुष वा भूमि में जल देने वाला, भूमि को हल से विदारण करने वाला कृषक जन ( सीतां निगृह्णातु ) हल की फाली को अच्छी प्रकार दबाकर पकड़े। ( ताम् ) इस हल की फाली को ( पूषा ) भूमि ( अनु यच्छतु ) अनुकूल होकर ग्रहण करे। तब ( सा ) वह भूमि ( पयस्वती ) जल और अन्न से पूर्ण होकर ( उत्तराम् उत्तराम् समाम् ) उत्तरोत्तर प्रतिवर्ष ( दुहाम् ) दूध को गौ के समान अन्नादि समृद्धि को प्रदान करती है। ( २ ) इन्द्र ऐश्वर्यवान्, बलवान् पुरुष प्रिय स्त्री का पाणि ग्रहण करे, पोषक पति उसके अनुकूल होकर ( यच्छतु ) विवाह करे। वह ( पयस्वती ) उत्तम अन्न और दुग्धवती होकर आगे के वर्षों में प्रजा सन्तानादि से गृह को पूर्ण करे।

शुनं नः फाला वि कृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहैः।
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम् ८।९

भा०—( नः फालाः ) हमारी हल की फालियां ( भूमिं ) भूमि को ( शुनं ) सुखपूर्वक ( वि कृषन्तु ) विविध प्रकार आड़े बांके खोदें। ( कीनाशाः ) किसान लोग ( वाहैः ) बैलों और घोड़ों से ( शुनम् ) सुखपूर्वक (यन्तु) चलें। ( पर्जन्यः) मेघ ( मधुना ) मधुर अन्न से और ( पयोभिः ) जलों से पूर्ण होकर बरसे। और ( शुनासीराः ) सुखपूर्वक हल चलाने वाले कृषक स्त्री पुरुष ( शुनम् ) सुखप्रद अन्न (अस्मासु) हम सब प्रजाओं के बीच ( धत्तम् ) धारण करें और दें। इति नवमो वर्गः ॥

## [ ५८ ]

वामदेव ऋषिः ॥ अग्निः सूर्यो वाऽपो वा गावो वा घृतं वा देवताः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् । २, ८, ९, १० त्रिष्टुप् । ३ भुरिक् पंक्तिः । ४ अनुष्टुप् । ६, ७ निचृदनुष्टुप् । ११ स्वराट् त्रिष्टुप् । ५ निचृदुष्णिक् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

**समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारदुपांशुना सममृतत्वमानट् ।**
**घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥ १ ॥**

भा०—जिस प्रकार ( समुद्रात् मधुमान् ऊर्मिः उत् आरत् ) समुद्र से जलमय तरंग ऊपर आता है उसी प्रकार ( समुद्रात् ) समुद्र के तुल्य अति विशाल महान् आकाश से ( मधुमान् ऊर्मिः ) तेजोमय, शक्तिमय, ऊपर गति करने वाला सूर्य ( उत् आरत् ) उदय को प्राप्त होता है । उसी प्रकार ( समुद्रात् ) जलमय समुद्र से ( मधुमान् ऊर्मिः ) जल से भरा तरंगवत् मेघ भी ( उत् आरत् ) ऊपर उठता है । प्रजागण के समुद्र से ( मधुमान् ) शत्रुकंपन और शत्रु-संतापक बल से युक्त ( ऊर्मिः ) सर्वोपरि उनको उन्मूलन करने वाला वीर पुरुष ( उत् आरत् ) उदय को प्राप्त होता है । जिस प्रकार समुद्र से उठा जल ( अंशुना ) सूर्य के किरण-समूह से ( अमृतत्वं ) अमृत रूप जलभाव वा अन्नभाव को ( सम-आनट् ) प्राप्त कर लेता है उसी प्रकार मेघ भी बरसकर अमृत अन्न वा जल में परिणत होता है । सूर्य भी अपने किरण से 'अमृत' अर्थात् जीवन रूप में बदल जाता है । ( यत् ) जो ( घृतस्य ) जल, घृत वा तेज का ( गुह्यं नाम अस्ति ) गुप्त, अप्रकट स्वरूप है, अग्नि में पड़ा घी जिस प्रकार प्रकाशयुक्त अग्नि आदि की ज्वाला बन जाता है आकाश का जल जिस प्रकार विद्युत् की ज्वाला रूप से प्रकट होता है उसी प्रकार ( घृतस्य ) तेज का ( गुह्यं नाम ) गुप्त, व्यापक रूप ( यत् अस्ति ) जो है वह ( देवानाम् ) सूर्य आदि प्रकाशवान् पदार्थों की ( जिह्वा ) रसादि

ग्रहण करने की शक्ति रूप है। ( अमृतस्य नाभिः ) जिस प्रकार जल प्राण वा जीवन को बांधने वाला है उसी प्रकार वह तेज भी जीवन को बांधने वाला है। घृतादि के पक्ष में—वे पदार्थ ( अमृतस्य नाभिः ) दीर्घ जीवन के मूल आश्रय हैं। परमेश्वर, गृहपति, जीवन, मेघ आदि पक्षों की स्पष्टता के लिये देखो (यजुर्वेद अ० १७। मं० ८९)। (२) ज्ञानपक्ष में—समुद्र के समान गंभीर गुरु विद्वान् से ( मधुमान् ऊर्मिः ) ज्ञानमय या ऋग्वेदमय उत्तम ज्ञान वा शब्दमय शास्त्र प्रकट होता है वह ( अंशुना ) शिष्य के साथ मिलकर अमृत, चिरस्थायी हो जाता है। वा वह व्यापक ब्रह्म के साथ मिलकर मोक्ष का सा सुख देता है। ( घृतस्य ) प्रकाशमय ज्ञान का ( गुह्यं ) बुद्धि में स्थित जो रूप है वह (देवानां जिह्वा) इन्द्रिय गण के बीच वा विद्वानों की वाणी से प्रकट होता है और वही ज्ञान ( अमृतस्य नाभिः ) मोक्ष का आश्रय है।

वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यास्मिन्यज्ञे धारयामा नमोभिः।
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुःशृङ्गोऽवमीद् गौर एतत् ॥ २ ॥

भा०—जिस ज्ञान को (चतुः-शृङ्गः) अज्ञान के नाशकारी चार वेद-मय ज्ञानों को धारण करता हुआ ( ब्रह्मा ) वेदज्ञ पुरुष ( शस्यमानम् ) गुरु से उपदेश किये हुए को ( उप शृणवत् ) गुरु के समीप बैठकर श्रवण करता है और जिसको ( चतुः-शृंगः ) चार सींगों वाले मृग के तुल्य, अन्धकार रूप अज्ञान के नाशक एवं ( गौरः ) उत्तम वेदवाणी में रमण करने वाला विद्वान् ही ( अवमीत् ) धाराप्रवाह से उपदेश करे। ( अस्मिन् यज्ञे ) इस प्रकार के 'यज्ञ' अर्थात् परस्पर के पवित्र सत्संग और ब्रह्म ज्ञानमय वेद के दान-प्रतिदान कर्म द्वारा हम ( घृतस्य ) इस ज्ञान को ( प्र ब्रवाम ) सदा अच्छी रीति से अन्यों को उपदेश करें और स्वयं भी ( नमोभिः ) बड़ों के प्रति आदर-सत्कार, सेवा-शुश्रूषा, भेट

पूजा अन्न-दक्षिणादि द्वारा ( धारयाम ) धारण करें। यज्ञ, घृत के पक्ष में—हम ज्ञान-घृत का वह उत्तम स्वरूप जानें जिसको अन्नों सहित यज्ञ में प्राप्त करें। यज्ञ में पढ़े मन्त्रों को ब्रह्मा श्रवण करे। चतुर्वेदविद् विद्वान् वा चतुर्वेद रूप चार अंगों से युक्त वाङ्मय यज्ञशील मृगवत् है, वह वेद का उपदेश करे या घृत का अग्नि में आहुति दें।

**च॒त्वारि॒ शृङ्गा॒ त्रयो॑ अस्य॒ पादा॒ द्वे शी॒र्षे स॒प्त हस्ता॑सो अ॒स्य।**
**त्रिधा॑ ब॒द्धो वृ॑ष॒भो रो॑रवीति म॒हो दे॒वो मर्त्याँ॒ आ वि॑वेश ॥३॥**

भा०—यज्ञपुरुष वा वेदविद् विद्वान् का वर्णन करते हैं ( अस्य ) इस के ( चत्वारि शृङ्गा ) चार सींग हैं, ( अस्य त्रयः पादाः ) इसके तीन पाद अर्थात् चरण हैं। ( द्वे शीर्षे ) दो सिर हैं। ( अस्य हस्तासः ) सप्त ) इसके हाथ सात हैं। वह ( त्रिधा बद्धः ) तीन प्रकार से बंधा है वह ( वृषभः रोरवीति ) बरसते मेघ के तुल्य वा बलवान् सांड के समान ऋषभ स्वर से ( रोरवीति ) शब्द करता है, वह ( महः देवः ) महान् विद्वान् ( मर्त्यान् आविवेश ) मनुष्यों के बीच में प्रवेश करता है। अज्ञान नाशक चार वेद चार शृंग के समान हैं। ऋग्, यजुः और साम गान ये तीन प्रकार के उसके तीन चरण हैं, अभ्युदय और निःश्रेयस् ये दो सिर हैं, मुख्य ध्येय हैं। पांच ज्ञानेन्द्रिय और अन्तःकरण और आत्मा ये हाथ अर्थात् साधन हैं। वह वाणी, कर्म्म और मन तीनों के नियमों में बंधा है। (२) यज्ञमय पुरुष के पक्ष में—निरुक्त यास्क के अनुसार चार वेद चार सींग, तीन सवन तीन चरण हैं, सात हाथ सात छन्द, दो सिर दो सिरे प्राय-णीय और उदयनीय। वह मन्त्र, ब्राह्मण और कल्प, तीनों से बद्ध है वह सर्वसुखवर्षी यज्ञ सब मनुष्यों को प्राप्त है। प्राणमय आत्मा पक्षमें—अन्तः करण चतुष्टय ४ सींग, मन, वाणी, काय तीन पाद, प्राण उदान दो सिर, सात शीर्षगत अंग सात हाथ, शिर, कण्ठ, नाभि, तीन स्थान पर बद्ध है। वह बलवान् प्राण सब में विद्यमान है। सूर्य पक्ष में क्रम से—चार दिशा,

तीन चातुर्मास्य ऋतु, दो अयन, सात मास; तीन लोकों में बद्ध होकर संवत्सर रूप होकर व्याप रहा है। राजा, यज्ञ, शब्द, आत्मा, परमात्मा आदि पक्षों में विवरण देखो ( यजु० अ० १७। ८१ )।

त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन्।
इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेनादेकं स्वधया निष्टतक्षुः ॥ ४ ॥

भा०—( पणिभिः ) व्यवहारकुशल विद्वान् पुरुषों ने जिस प्रकार घी को ( त्रिधा हितम् ) तीन भेदों से प्राप्त किया है। दूध, दही और घी और ( देवासः ) घृत के इच्छुक, विद्वान् जन उस ( घृतम् ) घृत अर्थात् द्रवीभूत ( गवि ) गोदुग्ध में ही ( गुह्यमानं ) छुपे हुए पदार्थ को ( अनु अविन्दन् ) अनुकूल साधनों से प्राप्त कर लेते हैं। जिस प्रकार ( पणिभिः ) विद्वानों द्वारा तीनों रूपों से धारण किये गये ( देवासः ) सूर्य के रश्मिगण या विद्वान् गण ( गवि गुह्यमानं ) सूर्य या रश्मियों में छुपे हुए ( घृतं ) तेज को ( अनु अविन्दन् ) अनुकूल साधनों से प्राप्त करते हैं उसी प्रकार ( पणिभिः ) उपदेष्टा और अभ्यासकर्त्ता शिष्य जनों द्वारा ( त्रिधा हितम् ) ऋग्, यजुष्, सामगान इन तीन भेदों से व्यवस्थित, ( घृतम् ) आहुति में पड़कर अग्नि को चमकाने वाले घृत के समान शिष्य गण के ज्ञानयुक्त आत्मा को चमकाने वाले ( देवासः ) अर्थप्रकाशक गुरु जन विद्या के इच्छुक शिष्य जन ( गवि गुह्यमानं ) वेद वाणी में निगूढ़ रूप से विद्यमान, ज्ञान को ( अनु अविन्दन् ) लक्षण प्रमाणों द्वारा परीक्षा कर विवेकपूर्वक ग्रहण करें और जिस प्रकार ( एकं ) एक 'घृत' अर्थात् जल को ( इन्द्रः जजान ) जलप्रद मेघ उत्पन्न करता है, ( सूर्यः एकं ) सूर्य एक प्रकार के वाष्प रूप जल को मेघ रूप में प्रकट करता है, वायु गण मिलकर ( स्वधया ) अपने पोषण बल से वा जल के द्वारा या अन्न रूप में ( वेनात् ) कान्तिमय विद्युत्, चन्द्र या सूर्य से ही प्राप्त करते हैं। उसी प्रकार एक ज्ञान को ( इन्द्रः जजान ) साक्षात् द्रष्टा

ऋषि जन प्रकट करते, ज्ञान करते हैं। ( सूर्यः एकं जजान ) एक प्रकार के ज्ञान को सूर्य के समान अर्थ प्रकाशक विद्वान् जानता वा प्रकट करता है। और ( एकं ) एक प्रकार ज्ञान को ( वेनात् ) कान्तिमय तेजस्वी जन से (स्वधया) आत्मा के धारणा शक्ति या उपासना द्वारा ( निः स्ततक्षुः ) प्राप्त करते हैं।

**एता अर्षन्ति हृद्यात्समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे। घृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्ये आसाम् ॥५॥१०॥**

भा०—जिस प्रकार (समुद्रात्) आकाश वा मेघ से ( घृतस्य धाराः अर्षन्ति ) जल की धाराएं आती हैं और वे ( शत-व्रजाः ) सैकड़ों मार्गों से बहती हैं। और ( आसाम् मध्ये ) इनके बीच में ( हिरण्ययः वेतसः ) सुवर्ण के रंग का चमकता हुआ दण्ड के समान विद्युत्-दण्ड दिखाई देता है उसी प्रकार ( एता ) ये ( घृतस्य ) गुरु से शिष्य के प्रति बहने वाले वा आत्मा, अन्तःकरण को प्रकाशित करने वाले ज्ञानप्रकाश की ( धाराः ) वाणियें ( हृद्यात् ) हृदय के ( समुद्रात् ) अगाध समुद्र से ( अर्षन्ति ) निकलती हैं और वे ( शत-व्रजाः ) सैकड़ों अर्थों का अवगम वा बोध कराती हैं। वे ( रिपुणा ) राग-द्वेष आदि मल से युक्त, मलिन, चित्त, द्रोही व्यक्ति से ( अवचक्षे ) साक्षात् करने के योग्य नहीं हैं। उनका अर्थ गुरुद्रोही व्यक्ति नहीं समझ सकता। और मैं ( आसाम् ) उनके (मध्ये) बीच में ( हिरण्ययः ) घृत की धाराओं के बीच अग्नि-ज्वाला के समान प्रकाशित होकर स्वयं भी सर्वहितकारी, सबको सुखी करने वाला (वेतसः) तेजस्वी, ज्ञानवान् होकर ( अभि चाकशीमि ) उनको साक्षात् करूं और उनका अन्यों के प्रति प्रकाश करूं।

**सम्यक्स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः।
एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगा इव क्षिपणोरीषमाणाः ॥ ६ ॥**

भा०—ये ( धेनाः ) वाणियां (अन्तः) भीतर अन्तःकरण में (हृदा) हृदय और (मनसा) मन से ( पूयमानाः ) पवित्र होती हुई (सरितः न) नदियों के समान ( सम्यक् ) भली प्रकार अर्थ का प्रकाश करती हुई ( स्रवन्ति ) वहती हैं, अनायास बाहर आती हैं। ( घृतस्य ) अर्थ का प्रकाश करने वाले स्वप्रकाश ज्ञान के ( एते ऊर्मयः ) तरंग, उल्लास, ( ऊर्मयः इव ) जल तरङ्गों के समान ही ( क्षिपणोः ईषमाणाः ) प्रेरक गुरु से प्रेरित होकर ऐसे ( अर्षन्ति ) वेग से निकलती हैं जैसे (क्षिपणोः) व्याध से ( ईषमाणाः ) भयभीत हुए ( मृगाः इव ) मृग जिस प्रकार वेग से भागते हैं।

सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः।
घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ७

भा०—( सिन्धोः इव घृतस्य धाराः ) जिस प्रकार नदी के जल की धाराएं ( यह्वाः शूघनासः प्राध्वने पतयन्ति ) बड़ी होकर वेग से जाती हुई गमन करती हैं, उसी प्रकार ( घृतस्य धाराः ) अर्थप्रकाशक ज्ञान की वाणियां भी ( शू-घनासः ) वेग से निकलती हुई, ( यह्वाः ) अर्थ में गम्भीर, ( वात-प्रमियः ) ज्ञानवान् पुरुष से अच्छी प्रकार उपदेश की हुई ( प्र-अध्वने ) उत्कृष्ट मार्ग में ले जाने के लिये ( पतयन्ति ) प्रभु के समान आचरण करती हैं, स्वामिवत् उन्नत मार्ग में चलने का आदेश करती हैं। और जिस प्रकार ( अरुषः वाजी न ) अति रुचिर वर्ण का वेगवान् अश्व ( काष्ठाः भिन्दन् ) दिशाओं को पार करता हुआ ( ऊर्मिभिः पिन्वमानः ) तरंगों से परिपुष्ट होता हुआ जाता है उसी प्रकार ( वाजी ) ज्ञानैश्वर्य से सम्पन्न पुरुष ( अरुषः ) दीप्तिमान् एवं रोग आदि से रहित ( काष्ठाः ) काष्ठों को अग्नि के तुल्य वा कुठार के समान ( काष्ठाः ) कुत्सित चित्त वृत्तियों को ( भिन्दन् ) छिन्न भिन्न करता हुआ (ऊर्मिभिः) उन्नत वासनाओं से ( पिन्वमानः ) बढ़ता हुआ ( प्राध्वने ) उत्तम मार्ग,

मोक्ष के लिये ( पतयति ) प्रयाण करता है। ( २ ) उसी प्रकार (घृतस्य धाराः ) तेज और उत्कृष्ट ज्ञान के धारण करने वाले ( यह्वाः ) महान् पुरुष ( वात-प्रमियः ) ज्ञानतत्व के उपदेष्टा, ( शू-घनासः ) अति शीघ्रता से आगे बढ़ते वा बाधाओं को दूर करते हुए सिन्धु की धाराओं के समान ही ( प्र-अध्वने पतयन्ति ) उत्तम २ मार्ग में सेनानायकों के तुल्य वीरता से आगे बढ़ते हैं।

**अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्य१ः स्मयमानासो अग्निम्।**
**घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥८॥**

भा०—( समना-इव ) वर या प्रियतम पति के साथ एक चित्त, ( कल्याण्यः योषाः स्मयमानासः ) सुन्दर मङ्गल चिह्नों से अलंकृत, मुसकराती हुईं सुप्रसन्न स्त्रियां ( अग्निम् अभि प्रवन्त ) अग्नि के चारों ओर गति करती, फेरे लेती हैं। और ( ताः ) उनको ( जातवेदः जुषाणः हर्यति ) प्रेमयुक्त, ज्ञानवान् वा धनवान् वर कामना करता है। और जिस प्रकार ( घृतस्य धाराः अग्निम् अभि प्रवन्त ) घी की धाराएं यज्ञ में अग्नि के प्रति पड़ती हैं (ताः समिधः नसन्त) वे समिधाओं को प्राप्त होती हैं। और ( ताः जातवेदः हर्यति ) उनको अग्नि स्वीकार करता है। उसी प्रकार ( घृतस्य धाराः ) अर्थप्रकाशक ज्ञान की वाणियें ( समना ) उत्तम मनन करने योग्य ज्ञान से युक्त, ( कल्याण्यः ) विश्व का कल्याण करने वाली, ( स्मयमानासः ) हर्ष उत्पन्न करती हुईं, ( अग्निम् अभि ) विनयशील पुरुष का साक्षात् ( प्रवन्त ) प्राप्त होती हैं। वे ( समिधः ) अच्छी प्रकार प्रकाशित होने वाले शिष्यों को. वा वे स्वयं अच्छी प्रकार प्रकाशित होती हुईं ( नसन्त ) प्राप्त होती हैं। ( ताः ) उनको ( जातवेदाः ) ज्ञानवान् पुरुष ( जुषाणः ) सेवन करता हुआ ( हर्यति ) सदा कामना करता है।

**कन्या इव वहतुमेतवा उ अञ्ज्यञ्जाना अभि चाकशीमि।**
**यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत्पवन्ते ॥९॥**

भा०—( यत्र सोमः सूयते ) जहां सोम नाम ओषधि का सवन होता है अर्थात् सोमयाग होता है, ( यत्र यज्ञः ) वा जहां यज्ञ होता है वहां ( कन्याः-इव ) जिस प्रकार कन्याएं (अञ्जि अञ्जानाः) अपने कान्ति-युक्त रूप और आभूषणादिक को प्रकट करती हुईं ( वहतुम् एतवा ) विवाहकर्त्ता प्रिय पति को प्राप्त करने के लिये ( तत् अभि पवन्ते ) यज्ञ में सबके समक्ष आती हैं और जिस प्रकार सोमयाग-यज्ञादि में ( घृतस्य धाराः अञ्जि अञ्जानाः ) घी की धाराएं कान्ति सी चमकती हुईं ( वहतुम् ) घृत लेने वाले अग्नि को प्राप्त होती हैं। उसी प्रकार ( यत्र सोमः सूयते ) जहां सौम्य गुण युक्त शिष्य विद्या के गर्भ से उत्पन्न होता है ( यत्र यज्ञः ) जहां ज्ञान का दान और प्रतिग्रह है ( तत् ) वहां ( घृतस्य धाराः ) ज्ञान की वाणियां ( अञ्जि अञ्जानाः ) अपना अर्थ-प्रकाशक रूप प्रकट करती हुईं ( वहतुम् एतवा ) वहन या धारण करने में समर्थ शिष्य को प्राप्त होने के लिये ( तत् अभि पवन्ते ) उसके प्रति जाती हैं, मैं उनका (अभि चाकशीमि ) प्रकाशित करूं और साक्षात् करूं।

**अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।**
**इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ॥ १० ॥**

भा०—हे विद्वान् लोगो ! हे उत्तम शिष्यगण ! आप लोग ( सुस्तुतिम् ) उत्तम स्तुति वा उपदेश को ( अभि अर्षत ) गुरु के समक्ष बैठ कर प्राप्त करो और उसी प्रकार ( गव्यम् ) गो दुग्ध के तुल्य आप लोग ( गव्यम् ) वाणी के भीतर विद्यमान ज्ञान प्राप्त करो। और ( आजिम् ) उत्तम लक्ष्य को प्राप्त करो। आप विद्वान् लोग ( अस्मासु ) हम में ( भद्रा द्रविणानि ) कल्याणकारी, सुखप्रद ज्ञान-ऐश्वर्य ( धत्त ) प्राप्त कराइये। ( इमं ) इस ( यज्ञं ) परस्पर के ज्ञान दान को हमें (देवता) आप देव, विद्वान् गण ( नयत ) प्राप्त कराइये। ( घृतस्य धाराः ) अग्नि

पर घृत की धाराओं के तुल्य ज्ञान की वाणियां ( मधुमत् ) मधुर ज्ञान से युक्त होकर ( पवन्ते ) हमें पवित्र करें और प्राप्त हों ।

धामन्ते विश्वं भुवनमधि श्रितमन्तः समुद्रे हृद्य१न्तरायुषि ।
अपामनीके समिथे य आभृतस्तमश्याम मधुमन्तं त ऊर्मिम् ॥ ११ ॥ ११ ॥ ५ ॥ ४ ॥

भा०—हे परमेश्वर ( ते धामन् ) तेरे आश्रय पर ( विश्वं भुवनम् अधिश्रितम् ) समस्त जगत् स्थित है । और ( ते ) तेरा ( यः ) जो महान् प्रेरक बल ( समुद्रे अन्तः ) समुद्र के भीतर, ( हृदि ) हृदय में, (आयुषि अन्तः ) जीवन के निमित्त प्राण में, ( अपाम् अनीके ) जलों के संघात में और ( समिथे ) जीव गण के संग्राम में ( आभृतः ) प्रकट होता है, हम लोग तेरे ( ते ) उस ( ऊर्मिम् ) महान् प्रेरक ( मधुमन्तं ) ज्ञान, अन्न, तेज, बल आदि सम्पन्न महान् शक्ति को ( अश्याम ) प्राप्त करें, जाने । इत्येकादशो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

* इति चतुर्थं मण्डलं समाप्तम् *

——>o<——

# अथ पञ्चमं मण्डलम्

[ १ ]

बुधगविष्ठिरावात्रेयावृषी ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, ११, १२ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ७, १० त्रिष्टुप् । ५, ८ स्वराट् पंक्तिः । ९ पंक्तिः ॥
द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (आयतीम् इव धेनुम्) आती हुई गौ का आश्रय करके (जनानाम् अग्निः समिधा प्रति अबोधि) मनुष्यों का यज्ञाग्नि जगता है उसी प्रकार (उषासम् आयतीम्) आती हुई कान्तियुक्त उषा, प्रभात वेला को देखकर (जनानां) मनुष्यों के बीच में उनकी (समिधा) समिधा से यज्ञाग्नि (प्रति अबोधि) प्रत्येक गृहमें जगे, अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति प्रातः सूर्योदय वेला में यज्ञ करे और इसी प्रकार (आयतीम् धेनुम्-इव उषासम्) आदरपूर्वक प्रकट होती हुई, ज्ञान-रस को देने वाली मातृ-तुल्य गुरुवाणी को उद्देश्य करके इसको लेने के अभिप्राय से (जनानां) उत्पन्न या प्रकट हुए शिष्य जनों की (समिधा) समिधा से (अग्निः-प्रति अबोधि) आचार्य का अग्नि प्रतिदिन और प्रत्येक शिष्य द्वारा जगना चाहिये। वा (जनानां मध्ये समिधा अग्निः) नव उत्पन्न पुत्रवत् शिष्यों के बीच गुरु रूप अग्नि प्रति प्रभात वेला में स्वयं समान तेज से सूर्यवत् उपदेश द्वारा ज्ञान करे (प्रति उपासम् अबोधि) प्रति दिन प्रकाश करे। जिस प्रकार (यह्वाः इव) बड़े २ वृक्ष (वयाम्

उज्जिहानाः ) शाखाओं को दूर २ तक ऊंची ओर फैलाते हुए ( नाकम्-अच्छ प्र सिस्रते ) आकाश की ओर खूब ऊंचे बढ़ जाते हैं और जिस प्रकार ( यह्वा भानवः ) बड़े सूर्य किरण ( वयाम् प्र उज्जिहानाः ) कान्ति को विस्तारते हुए ( नाकं प्र सिस्रते ) आकाश में खूब दूर २ तक फैल जाते हैं उसी प्रकार ( यह्वाः ) बड़े आदमी ( भानवः ) कान्ति से चमकते हुए तेजस्वी, विद्वान् पुरुष और कुल भी ( वयाम् ) अपनी शाखा प्रशाखा सम्पत्ति आदि वा वेद की गुरूपदेश से प्राप्त शाखा प्रशाखा को भी ( प्र-उत्, जिहानाः ) अच्छी प्रकार फैलाते वा उत्तम पात्र में प्रदान करते हुए ( नाकम् अच्छ ) सब दुःखों से रहित स्वर्ग वा मोक्ष लोक को ( प्र-सिस्रते ) प्राप्त हों। ( २ ) गृहपक्ष में—गौ के समान ( आयतीम् ) आदरपूर्व विवाहबन्धन में बंधती हुई ( उपासम् ) कमनीय कान्ति वाली वधू को प्राप्त करने के लिये जनों के बीच आवसथ्याग्नि जले, बड़ी उमर के तेजस्वी ब्रह्मचारी लोग सन्तति, शाखा-प्रशाखा फैलाते हुए सूर्यवत् वा वृक्षवत् उच्च आकाश वा मोक्ष, स्वर्गादि उत्तम पद लोक वा प्रतिष्ठा को प्राप्त करें। ( ३ ) इसी प्रकार ( अग्निः ) सूर्य उषा को आगे करके जैसे तेज से चमकता है उसी प्रकार ( अग्निः ) ज्ञानी आचार्य ( धेनुम् ) वाणी को आगे करके उत्तम तेज से चमके।

**अबो॑धि॒ होता॑ य॒जथा॑य दे॒वानू॒र्ध्वो अ॒ग्निः सु॒मनाः॑ प्रा॒तर॑स्थात्।**
**समि॑द्धस्य॒ रुश॑ददर्शि॒ पाजो॑ म॒हान्दे॒वस्तम॑सो॒ निर॑मोचि ॥ २ ॥**

भा०—जिस प्रकार ( अग्निः ) प्रकाशस्वरूप अग्नि वा सूर्य (ऊर्ध्वः) सब से ऊंचे पद पर विराजता है, ( होता ) प्रकाशदाता वा मेघादि द्वारा जलदाता होकर ( देवान् यजथाय ) इच्छुक प्राणियों को वा प्रकाशादि किरणों को देने के लिये ( अबोधि ) प्रकाशित होता है। उसी प्रकार ( सुमनाः ) उत्तम ज्ञानवान् ( अग्निः ) अग्नि वा सूर्यवत् तेजस्वी ( होता ) ज्ञान के देने और लेने हारा (देवान् यजथाय) विद्या के अभिलाषी शिष्य

जनों के प्रति विद्यादि देने और सत्संग करने के लिये ( अबोधि ) स्वयं ज्ञानवान् हो। वह सूर्य के तुल्य ही ( प्रातः ) जीवन के प्रभात काल, ब्रह्मचर्य आश्रम में ( ऊर्ध्वः ) उन्नत ( अस्थात् ) स्थिति प्राप्त करे। ( समिद्धस्य ) विद्या, व्रत आदि से तेजस्वी हुए उसका ( रुशत् पाजः ) अति उज्ज्वल बल वीर्य ( अदर्शि ) सूर्य के तेज के समान सब को दीखे। वह ( महान् ) गुणों में महान्, आदरयोग्य होकर ( देवः ) विद्या का दाता और विद्या का अभिलाषी गुरु वा शिष्य होकर ( तमसः ) अविद्यान्धकार से ( निर् अमोचि ) स्वयं और अन्यों को भी मुक्त करे।

**यदीं गुणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः।**
**आद्दक्षिणा युज्यते वाजयन्त्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः॥ ३॥**

भा०—जिस प्रकार ( शुचिः अग्निः ) दीप्तिमान् यज्ञाग्नि वा सूर्य ( शुचिभिः गोभिः ) दीप्तियुक्त किरणों से ( अङ्क्ते ) प्रकट होता, चमकता है, और ( गणस्य ) समस्त पदार्थों वा प्राणियों के बीच ( रशनाम् ) व्याप्त शक्ति वा अन्न को ( अजीगः ) ग्रहण करता, वश करता है, और ( आत् ) उसके अनन्तर ( वाजयन्ती ) उत्साह उत्पन्न करने वाली, यज्ञ में ( दक्षिणा ) दक्षिणा और भूमि में अन्न समृद्धि ( युज्यते ) प्राप्त होती है और ( उत्तानाम् ) उत्तान पड़ी अन्नशालिनी भूमि को वह स्वयं सूर्य ( ऊर्ध्वः ) उच्च स्थान अन्तरिक्ष में स्थिर रहकर ( जुहूभिः ) रस ग्रहण करने वाली किरणों और जल देने वाली मेघ-मालाओं से ( अधयत् ) खूब रस पान स्वयं करता और इसको कराता है उसी प्रकार ( अग्निः ) तेजस्वी राजा वा ज्ञानवान् विद्वान् गुरु और विनीत शिष्य, ( शुचिभिः गोभिः ) शुद्ध पवित्र वेद-वाणियों और निष्पाप इन्द्रियों से युक्त होकर स्वयं ( शुचिः ) तेजस्वी, शुद्ध, पवित्र होकर ( अङ्क्ते ) तेजस्वी होता और विद्या से स्नान करता है, ( यत् ईम् ) और जब वह इस (गणस्य) शिष्य गण वा साधारण जनसमूह, सैन्य समूह की नायकवत् ( रशनाम् )

बागडोर को ( अजीगः ) अपने वश में करता है ( आत् ) तभी ( वाजयन्ती ) ऐश्वर्य, युद्ध-सामर्थ्य और ज्ञान को समृद्ध करती हुई ( दक्षिणा ) बलवती क्रियाशक्ति, (युज्यते ) प्राप्त होती है। इस दशा में वह ( ऊर्ध्वः ) सबसे उत्कृष्ट पद पर स्थित एवं सावधान होकर (उत्तानाम्) उत्तान उत्सुक भूमि, राष्ट्र की प्रजा या ऊपर हाथ जोड़े शिष्य मण्डली को (जुहूभिः) वाणियों द्वारा ( अधयत् ) शासन करे, ज्ञानोपदेश करे। इसी प्रकार शिष्यगण भी (उत्तानाम्) उत्तम या गुरु के कण्ठ से उद्गत वेदवाणी को (जुहूभिः) ज्ञान-ग्रहणकारिणी मानस वृत्तियों और मुखगत वाणियों से ( अधयत् ) ज्ञान का पान करें, ग्रहण करें।

**अ॒ग्निम॑च्छा॑ दे॒व॒य॒तां मनां॑सि॒ चक्षूं॑षीव॒ सूर्ये॒ सं च॑रन्ति।**
**यदीं॒ सुवा॑ते उ॒षसा॒ विरू॑पे श्वे॒तो वा॒जी जा॑यते॒ अग्रे॒ अह्ना॑म् ॥४॥**

भा०—( उषसा विरूपे ) भिन्न २ रूप के दिन और रात्रि जिस प्रकार ( सुवाते ) उत्पन्न करते हैं और ( अह्नाम् अग्रे ) दिनों के पूर्व भाग में ( श्वेतः ) श्वेत सूर्य ( जायते ) उत्पन्न होता है, उसी प्रकार ( यत् ) जब ( उषसा ) एक दूसरे को भलीभांति चाहने वाले (विरूपे) भिन्न २ रूप के या विशेष कान्तियुक्त, सुरूप माता पिता ( ईं सुवाते ) इस पुत्र को उत्पन्न करते हैं तब ( अह्नाम् अग्रे ) जीवन के दिनों के पूर्व भाग में ( वाजी जायते ) बलयुक्त पुत्र उत्पन्न होता है। और इसी प्रकार जब (उषसा विरूपे) विविध रूपों से युक्त पाप अज्ञान के दाहक, आचार्य और सावित्री (ईं सुवाते) इस शिष्य को उत्पन्न करते हैं तब भी (अह्नां अग्रे) दिनों के पूर्व भाग में सूर्य के तुल्य, जीवन के प्रथम भाग में (श्वेतः वाजी जायते ) शुद्ध, आचारवान्, ज्ञानयुक्त, बलवान् शिष्य उत्पन्न होता है। उसी प्रकार विद्वान् और अविद्वानों के बीच ( श्वेतः वाजी ) सूर्यवत् तेजस्वी, संग्रामविजयी बलवान् राजा उत्पन्न होता है। ( देवयतां चक्षूंषि इव ) प्रकाश की किरणों की कामना करने वाले मनुष्यों की आंखें जिस प्रकार ( सूर्ये सं-

चरन्ति ) सूर्य के आधार पर आगे बढ़ती हैं उसी प्रकार ( देवयतां ) ज्ञान प्रकाश की कामना करने वाले पुरुषों के ( मनांसि ) मन भी ( अग्निम् ) अग्रणी, ज्ञानी, विद्वान्, तेजस्वी पुरुष और परमेश्वर को (अच्छ संचरन्ति) भली प्रकार प्राप्त होते हैं ।

जनिष्ट हि जेन्यो अग्रे अह्नां हितो हितेष्वरुषो वनेषु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानोऽग्निर्होता नि षसादा यजीयान् ॥ ५ ॥

भा०—( अह्नां अग्रे ) दिनों के पूर्व भाग में जिस प्रकार ( अरुषः ) उज्ज्वल वर्ण से युक्त ( अग्निः ) सूर्य और अग्नि ( वनेषु हितः ) किरणों और काष्ठों में स्थित होकर ( जेन्यः हि ) सर्व विजयी और उत्पन्न या प्रादुर्भाव होने के सामर्थ्य से युक्त होकर ( जनिष्ट ) प्रकट होता है, और वह (सप्त रत्ना) सातों प्रकार के उत्तम प्रकाश युक्त किरणों, सात प्रकार की ज्वालाओं को (हितेषु) हितैषियों में (दधानः) धारण कराता है उसी प्रकार (जेन्यः) विजयशील, ( अरुषः ) रोषरहित, तेजस्वी, ब्रह्मचारी ( अह्नां अग्रे ) जीवन के पूर्व भाग में ( वनेषु ) वनों वा वनस्थों के बीच में ( हितः ) परिपालित होकर ( जनिष्ट ) विद्या में जन्म ग्रहण करता है ( हितेषु ) हितकारी और राज्य के ( वनेषु हितः ) विभाग करने योग्य, ऐश्वर्यों या प्राप्तव्यपदों पर स्थापित होकर ( अह्नां अग्रे ) अहन्तव्य, प्रजाओं और बलवान् पुरुषों के मुख्य पद पर स्थित होकर प्रादुर्भूत होता है। वह ( अग्निः ) सर्वाग्रणी ज्ञानी ( दमे दमे ) घर २ में ( यजीयान् ) अति दानशील और ( होता ) सबसे कर वा विज्ञान का गृहीता होकर ( सप्त-रत्ना दधानः ) सातों प्रकार के रमणीय, रत्न, अन्न आदि, वा शिरोगत चक्षु, नाक, कान मुख आदि प्राणगण और सातों रत्न, ऐश्वर्यादि को ( दधानः ) वश वा धारण करता हुआ (नि ससाद) स्थिरता से विराजे ।

अग्निर्होता न्यसीदद्यजीयानुपस्थे मातुः सुरभा उ लोके ।
युवा कविः पुरुनिःष्ठ ऋतावा धर्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्धः ६।१२

भा०—( यजीयान् ) विद्या ऐश्वर्य आदि का अच्छी प्रकार देने वाला एवं सत्संग करने योग्य ( अग्निः ) ज्ञानवान्, विद्वान् और तेजस्वी पुरुष और विनयशील शिष्य ( मातुः उपस्थे ) माता की गोद में बालक के समान ( मातुः उपस्थे ) पृथिवी के ऊपर वा ज्ञानवान् आचार्य के समीप ( सुरभौ लोके उ ) और उत्तम कर्म आचरण करने वाले लोक समूह में ( नि असीदत् ) विराजे। और वह ( युवा ) जवान, बलवान् ( कविः ) क्रान्तदर्शी, विद्वान् ( पुरुनिःष्ठः ) इन्द्रियों के बीच निष्ठावान्, जितेन्द्रिय और पालनीय प्रजाजनों के बीच स्थिर होकर ( ऋतावा ) सत्य ज्ञान, अन्न और न्यायशासन से युक्त होकर ( कृष्टीनां धर्त्ता ) विषयों में खैंचने वाले इन्द्रियगण और कृषक प्रजाजनों का धारक पालक होकर ( उत मध्ये-इद्धः ) उनके बीच में प्रदीप्त अग्नि वा सूर्य के समान तेजस्वी होकर ( नि असीदत् ) विराजे। इति द्वादशो वर्गः॥

**प्र णु त्यं विप्रमध्वरेषु साधुमग्निं होतारमीळते नमोभिः।**
**आ यस्ततान रोदसी ऋतेन नित्यं मृजन्ति वाजिनं घृतेन॥७॥**

भा०—जिस प्रकार लोग ( अध्वरेषु साधुम् ) यज्ञों में, कार्य साधक अग्नि को लोग ( नमोभिः ईडते ) अन्नों, हव्यों से वा नमस्कार युक्त वचनों से स्तुति करते हैं और ( घृतेन मृजन्ति ) अन्नादि चरुसम्पन्न अग्नि को घी से चमका देते हैं उसी प्रकार ( अध्वरेषु ) हिंसा से रहित, प्राणियों के पालनादि उत्तम कर्मों में ( साधु ) क्रियाकुशल ( त्यं ) इस ( विप्रम् ) विद्वान् ( अग्निं ) सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी ( होतारम् ) सबको वश करने और ऐश्वर्य, अधिकार पद आदि के देने वाले पुरुष को लोग ( नमोभिः ) नमस्कार वचनों से ( ईडते ) आदर करें, जिस प्रकार अग्नि वा सूर्य ( ऋतेन रोदसी आ ततान ) जल वा तेज से आकाश और पृथिवी को पूर्ण करता है उसी प्रकार ( यः ) जो ( रोदसी ) माता पिता और राजा प्रजा दोनों को ( ऋतेन ) सत्य ज्ञान, अन्न वा प्रजा, न्याय-शासन

द्वारा (आ ततान) स्थिर बनाये रखता है उस (वाजिनं) बलवान्, ज्ञानी, ऐश्वर्यवान् पुरुष को लोग भी (घृतेन) घृत आदि पोषक पदार्थ, ज्ञान आदि प्रकाश से (नित्यं) सदा (मृजन्ति) परिष्कृत, अलंकृत करें। (२) ज्ञानवान् सर्वैश्वर्य के दाता अग्नि, परमेश्वर की लोग अर्चना करें। जो सत्यमय तेज से दोनों लोकों को फैलाता है उस नित्य, ज्ञानमय प्रभु को स्नेह से वा तेज से ही हृदय में (मृजन्ति) शुद्ध करते, उसका विवेक करते हैं।

मार्जाल्यो॑ मृज्यते॒ स्वे दमू॑नाः कविप्रश॒स्तो अति॑थिः शि॒वो नः।
स॒हस्र॑शृङ्गो वृष॒भस्तदो॑जा॒ विश्वाँ॑ अग्ने॒ सह॑सा॒ प्रास्य॒न्यान् ॥८॥

भा०—(मार्जाल्यः) सबको शोधने हारा, सूर्य वा अग्नि जिस प्रकार (दमूनाः) सबको प्रकाश देता हुआ (स्वे मृज्यते) अपने प्रकाश के आधार पर परिशुद्ध रहता, उसे शोधने के लिये अन्य शोधक की आवश्यकता नहीं है, उसी प्रकार (मार्जाल्यः) अन्यों को ज्ञान-दीक्षा आदि से पवित्र करने वाला (कवि-प्रशस्तः) विद्वान्, कान्तदर्शी पुरुषों से प्रशंसित और शिक्षित, (दमूनाः) दानशील एवं जितेन्द्रियचित्त होकर (स्वे मृज्यते) अपने ही आप पवित्र होता है, वह अपने आप ही सद् गुणों से अलंकृत होता है। वह (नः अतिथिः) हम सबका पूज्य और (शिवः) मङ्गलकारी हो। वह तू (सहस्रशृङ्गः) सहस्रों सींगों के तुल्य किरणों से युक्त सूर्य के समान तेजस्वी (वृषभः) बलवान् मेघ के तुल्य सुखों का वर्षक और (तदोजः) अपने पराक्रम से सम्पन्न होकर हे (अग्ने) तेजस्विन्! अग्रणी नायक! (सहसा) अपने सर्वोपरि बल से (अस्मान्-प्र असि) अन्य अपने से भिन्न वा विपरीत सबसे उत्कृष्ट हो। (२) परमेश्वर स्वयंप्रकाश, स्वतः शुद्ध पवित्र होकर अन्यों का पावन है अतः 'मार्जाल्य' है। विद्वान् उसकी स्तुति करते हैं। सर्वातिशायी होने से 'अतिथि'

है, मङ्गलमय होने से 'शिव' है। वह सब अन्यों से उत्कृष्ट है, वह ( तदोजः ) स्वयं ओजः-स्वरूप है।

प्र सुद्यो अग्ने अत्येष्यन्यानाविर्यस्मै चारुतमो बभूथ।
ईळेन्यो वपुष्यो विभावा प्रियो विशामतिथिर्मानुषीणाम् ॥ ९ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष ! तू ( अन्यान् ) अन्यों को ( सद्यः ) शीघ्र ही ( प्र एषि ) पार कर उनसे बढ़ जाता और ( अति एषि ) उनको अतिक्रमण कर जाता है। और ( यस्मै ) जिसके उपकार के लिये तू ( चारु-तमः ) सबसे उत्तम, सुन्दर वा देश-देशान्तर में चलने हारा होकर प्राप्त ( बभूथ ) होता है वह भी तेरे साथ ( ईडेन्यः ) वाणी द्वारा सत्कार करने योग्य, ( वपुष्यः ) उत्तम शोभा युक्त, (विभावा) विविध कान्ति से युक्त और ( मानुषीणाम् विशाम् ) मननशील, मानव प्रजाओं का ( प्रियः अतिथिः ) प्रिय, अतिथि के तुल्य सर्वोपरि पद पर स्थित होजाता है।

तुभ्यं भरन्ति क्षितयो यविष्ठ बलिमग्ने अन्तित ओत दूरात्।
आ भन्दिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्धि बृहत्ते अग्ने महि शर्म भद्रम् १

भा०—हे ( यविष्ठ ) अति बलवान् ! अति युवा पुरुष ( तुभ्यम् ) तेरे हितार्थ ( क्षितयः ) राष्ट्र में बसे वा नाना भूमि निवासी प्रजाजन, नाना देश ( अन्तितः उत दूरात् ) समीप और दूर से भी ( बलिम् ) कर वा भोज्य, भोग्य, अन्न ऐश्वर्यादि समृद्धि ( भरन्ति ) लाते और देते हैं। तू ( भन्दिष्ठस्य ) अति कल्याण प्रिय जन को ( सुमतिम् ) उत्तम ज्ञान का ( चिकिद्धि ) सब प्रकार से उपदेश कर। हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! ( ते ) तेरा ( शर्म ) गृह ( बृहत् ) बड़ा ( महि ) पूज्य और ( भद्रम् ) सुखकर, कल्याणकारी हो।

आद्य रथं भानुमो भानुमन्तमग्ने तिष्ठ यजतेभिः समन्तम्।
विद्वान्पथीनामुर्व१न्तरिक्षमेह देवान्हविरद्याय वक्षि ॥ ११ ॥

भा०—हे ( भानुमः ) सूर्य के तुल्य तेजस्विन्! हे ( अग्ने ) अग्नि के तुल्य प्रकाशक, अग्रणी पुरुष! नायक! तू (अद्य) आज ( यजतेभिः ) उत्तम रीति से सुसंगत अश्वादि से युक्त ( समन्तम् ) सर्वाङ्ग-सुदृढ़ ( रथम् ) रथपर (आ तिष्ठ) विराज। सूर्य जिस प्रकार जलादि ग्रहण करने के लिये अपनी किरणों को विशाल अन्तरिक्ष पार करके भी पृथिवी तक भेजता है तू ( विद्वान् ) ज्ञानवान् होकर ( पथीनाम् ) मार्गों के ( उरु-अन्तरिक्षम् ) बड़े भारी अन्तर या फासले को लांघकर ( देवान् ) विद्वान् ज्ञानी पुरुषों को ( हविः-अद्याय ) अन्न और ज्ञानादि प्राप्त करने के लिये ( आ वक्षि ) दूर २ देशों में ले जा।

अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे।
गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत् १२।१३

भा०—हम लोग ( मेध्याय ) पवित्र वा उत्तम अन्नादि सत्कार और सत्संग के योग्य, ( कवये ) क्रान्तदर्शी, ज्ञानवान्, मेधावी, ( वृषभाय ) बलवान्, मेघवत् निष्पक्षपात होकर ज्ञान के देने वाले ( वृष्णे ) बलिष्ठ पुरुष के लिये ( वन्दारु वचः ) वन्दनायोग्य, वचन नमस्कार आदि सदा ( अवोचाम ) कहा करें। जिस प्रकार ( गविष्ठिरः ) रश्मियों पर स्थित पुरुष (दिवि अग्नौ इव स्तोमम् रुक्मम् उरु व्यञ्चम् अश्रेत्) आकाश में स्थित सूर्य में उत्तम विशाल विविध दिशागामी प्रकाश को प्रकट करता है उसी प्रकार (गविष्ठिरः) वेदवाणी के निमित्त स्थिर चित्त होने वाला शिष्य जन ( नमसा ) आदर युक्त वचनों सहित (अग्नौ) ज्ञानवान्, मार्गदर्शी आचार्य के अधीन रहकर (उरु) विशाल ( व्यञ्चम् ) विविध यज्ञों को दर्शाने वाले ( रुक्मम् ) रुचि कर (स्तोमं) वेदमन्त्र समूह को ( अश्रेत् ) प्राप्त करे।
इति त्रयोदशो वर्गः ॥

# [ २ ]

कुमार आत्रेयो वृशो वा जार उभौ वा। २, ६ वृशो जार ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥
छन्दः—१, ३, ७, ८ त्रिष्टुप्। ४, ५, ९, १० निचृत्त्रिष्टुप्। ११ विराट् त्रिष्टुप्। २ स्वराट् पांक्तिः। ६ भुरिक् पंक्तिः। १२ निचृदतिजगती॥
द्वादशर्चं सूक्तम्॥

**कुमारं माता युवतिः समुब्धं गुहा बिभर्ति न ददाति पित्रे।**
**अनीकमस्य न मिनज्जनासः पुरः पश्यन्ति निहितमरतौ॥ १॥**

भा०—आचार्य, शिष्य राजा और पृथिवी का वर्णन माता पुत्र के दृष्टान्त से करते हैं। जिस प्रकार (युवतिः माता) जवान माता ( समुब्धं ) सम्पूर्णांग ( कुमारं ) बालक को (गुहा ) गृह या अपने गर्भ में (बिभर्ति) धारण पोषण करती है और स्नेह वश ( पित्रे न ददाति ) पालन पोषाणार्थ पिता को नहीं देती उसी प्रकार ( माता ) सर्वोत्पादक पृथिवी ( कुमारं ) शत्रुजनों को बुरी तरह से मारने वाले ( समुब्धम् ) समुन्नत, सर्वाङ्ग पुरुष को (गुहा बिभर्ति) अपने गूढ स्थानों में धारण करती है और उसे ( पित्रे ) पालक पिता वा कृषकादि के अधीन नहीं ( ददाति ) देती, उस प्रकार ( माता ) ज्ञानवान् मातृवत् पूज्य शिष्य को योग्य बना देने वाला आचार्य भी (समुब्धं कुमारं) अच्छी प्रकार विद्या से पूर्ण कुमार शिष्य को भी ( गुहा बिभर्त्ति ) अपने ही गर्भ के तुल्य सुरक्षित विद्या गर्भ वा अधीनता में धारण करता है, उसको (पित्रे) उसके पालक, माता पिता के हाथ नहीं सौंपता। (अस्य) सुरक्षित राजा और व्रती कुमार के (अनीकम्) सैन्य बल और तेज को भी (जनासः) साधारण जन ( न मिनत् ) नाश नहीं कर सकते। प्रत्युत वे भी ( अरतौ ) अरमण योग्य, असह्य रूप में संग्रामादि के अवसर या विपत्ति काल में उसको ही (पुरः) आगे अग्रणी पद पर ( निहितम् ) स्थित ( पश्यन्ति ) देखते हैं।

कमेतं त्वं युवते कुमारं पेषी विभर्षि महिषी जजान।
पूर्वीर्हि गर्भः शरदो ववर्धापश्यं जातं यदसूत माता॥ २॥

भा०—जिस प्रकार कोई (पेषी) पति के पास जाने वाली स्त्री, पति से संगता, वा दूध पान कराने वाली स्त्री ((कुमारं बिभर्त्ति) बालक को गर्भ में धारण करती और बाद में उसे पोषण करती है। (यत् माता असूत तत् जातं पश्यन्ति) और जब गर्भस्थ बालक को माता जानती है तब उत्पन्न बालक को सब कोई देखते हैं और वह (पूर्वीः शरदः ववर्ध) अपने पूर्व अर्थात् प्रारम्भ की आयु के वर्षों में बढ़ता है उसी प्रकार हे (युवते) विद्या बल आदि का मिश्रण करने हारी माता के तुल्य पृथिवी! (त्वम्) तू (एतं) इस (कं) किसी (कुमारं) शत्रुओं को बुरी तरह से मारने वाले वीर पुरुष को भी (पेषी सती बिभर्षि) अति दान-शील होकर धारण करती है और फिर (महिषी सती) तू उसकी रानी के तुल्य होकर ही (जजान) उसको उत्पन्न करती है। तू (माता) माता के तुल्य होकर (यत् असूत) उसको जब उत्पन्न करती है तब मैं प्रजाजन भी (जातं) उत्पन्न बालक के तुल्य ही प्रकट रूप में प्रसिद्ध, रूप गुणों में विख्यात हुआ (अपश्यं) देखूं। वह (गर्भः) राष्ट्र को वश करने में समर्थ नव राजा भी नवजात शिशु के तुल्य ही (पूर्वीः शरदः-हि ववर्ध) अपने प्रथम वर्षों में खूब बढ़े। (२) इसी प्रकार यत्नशील कुमार अतिज्ञानदात्री वेदमाता कुमार को धारण करती। माता के तुल्य पैदा करती है। उसको विद्वान् देखते हैं वह अपने पूर्व के प्रथम २५ वर्षों तक वृद्धि को प्राप्त हो।

हिरण्यदन्तं शुचिवर्णमारात्क्षेत्रादपश्यमायुधा मिमानम्।
ददानो अस्मा अमृतं विपृक्वत्किं मामनिन्द्राः कृणवन्ननुक्थाः ३

भा०—जिस प्रकार (क्षेत्रात्) मूल स्थान, काष्ठ से (शुचिवर्णं हिरण्यदन्तं) शुद्ध वर्ण वाले स्वर्णतुल्य दन्त के समान ज्वाला युक्त अग्नि को

सब देखते हैं अथवा जिस प्रकार ( क्षेत्रात् ) उत्पन्न होने के स्थान रूप माता के शरीर से उत्पन्न हुए ( हिरण्यदन्तं ) चमकती धातु चांदी के तुल्य दन्त वाले ( शुचिवर्णं ) शुद्ध कान्तिमान् रंगवाले सुन्दर बालक को प्रेम से लोग देखते हैं उसी प्रकार मैं प्रजाजन भी ( क्षेत्रात् ) युद्ध क्षेत्र के ( आरात् ) दूर और समीप ( आयुधा मिमानं ) नाना अस्त्रों शस्त्रों को चलाते हुए ( हिरण्यदन्तं ) लोह के बने शस्त्र वाले, ( शुचिवर्णम् ) शुद्ध, उज्ज्वल वर्ण वाले, राजा वा नायक को ( अपश्यम् ) देखूं। वह सदा ( अस्मा ) इस प्रजाजन के ( विपृक्वत् ) पापादि को दूर करने वाले वीर वा विद्वान् पुरुषों से युक्त ( अमृतं ) अविनाशी बल वा ऐश्वर्य ( ददानः ) देता रहा करे। तब ( माम् ) मेरे प्रति ( अनुक्थाः ) अशिक्षित, अप्रशस्त ( अनिन्द्राः ) ऐश्वर्य और उत्तम शत्रुहन्ता राजा से रहित, शत्रु जन ( किं कृणवन् ) क्या बिगाड़ कर सकते हैं। 'विपृक्-वत्'—विपृचौ वि मा पाप्मना पृङ्क्तम्। इति यजुः ॥

क्षेत्रा॑दपश्यं सनु॒तश्चर॑न्तं सु॒मद्यू॒थं न पु॒रु शोभ॑मानम्।
न ता अ॑गृभ्र॒न्नज॑निष्ट॒ हि षः पलि॑क्नी॒रिद्यु॑व॒तयो॑ भवन्ति ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार ( क्षेत्रात् चरन्तं शोभमानं बालकं ) अपने उत्पत्ति क्षेत्र मातृ-शरीर से उत्पन्न हुए पुत्र को बाहर आते लोग देखते हैं और उसको ( न ताः अगृभ्रन् ) माताएं जब अधिक काल तक गर्भ में धारण नहीं कर सकतीं और ( सः हि सुमत् अजनिष्ट ) वह स्वयं ही अनायास उत्पन्न होता है, इसी प्रकार ( युवतयः पलिक्नीः इत् भवन्ति ) युवति माताएं भी बच्चा जनते २ स्वयं ही वृद्धा होजाती हैं इसी प्रकार ( क्षेत्रात् ) युद्ध क्षेत्र से ( सनुतः ) छुपे २, सुरक्षित रूप में ( पुरु शोभमानं ) बहुत अधिक शोभा से युक्त ( यूथं न ) सैन्य वा गौओं के समूह के समान ही ( चरन्तं ) विचरते हुए वीर पुरुष को मैं प्रजाजन ( अपश्यम् ) देखूं। उसको ( ताः ) वे परराष्ट्र की सेनाएं भी ( न अगृभ्रन् )

पकड़ न सकें। और उसकी निज प्रजाएं (पलिक्नीः इत्) वृद्धाओं के के समान निर्बल रहकर भी (युवतयः भवन्ति) युवतियों के समान हृष्ट पुष्ट होजावें। और इसी प्रकार पर-सेनाएं (युवतयः पलिक्नीः इत् भवन्ति) जवान, हृष्ट पुष्ट भी वृद्धा के समान निर्बल एवं वृद्ध होजावें।

**के मे मर्यकं वि यवन्त गोभिर्न येषां गोपा अरणश्चिदास। य ईं जगृभुरव ते सृजन्त्वाजाति पश्व उप नश्चिकित्वान् ॥ ५ ॥**

भा०—जिस प्रकार (येषां) जिन लोगों के बीच (गोपाः) अरणः नु आस) जितेन्द्रिय पुरुष नहीं होता है उन मनुष्यों को सम्पत्तियों से च्युत करते हैं उसी प्रकार (येषां) जिनके बीच कोई भी (गोपाः) भूमिपति (अरणः चित्) और स्वामी भी (न आस) नहीं है वे (के) कौन हैं जो (मे) मुझ राष्ट्रवासी प्रजाजन के (मर्यकं) मनुष्यों या रक्षक पुरुष को (गोभिः) भूमियों से (वि च्यवन्त) पृथक् कर सकते हैं। (ये ईम्) जो शत्रुगण उसको (जगृभुः) पकड़ भी लेते हैं (अव सृजन्तु) उससे दबकर वे छोड़ दें। वह (चिकित्वान्) ज्ञानी (नः) हमें (पश्वः) पशुपाल के समान रक्षक होकर (उप अजाति) सदा हमारे समीप रह कर हमें सन्मार्ग में चलावे।

**वसां राजानं वसतिं जनानामरातयो नि दधुर्मर्त्येषु। ब्रह्माण्यत्रेरव तं सृजन्तु निन्दितारो निन्द्यासो भवन्तु ॥६॥१४॥**

भा०—(मर्त्येषु) मनुष्यों के बीच में (अरातयः) अपना धन दूसरों को उपभोग के लिये न देने वाले लोग जिन (ब्रह्माणि) बहुत धनों को (नि दधुः) गाड़ कर, गुप्त रूप से रक्खें वे नाना धन और (अत्रेः) स्वयं भी धन का उपभोग न करने वाले कंजूस या केवल संग्रही के धन वा (अत्रेः ब्रह्माणि) विविध तापों और एषणाओं से मुक्त, त्यागी संन्यासी पुरुष के धन और वेद के ज्ञानोपदेश (वसां जनानां) राष्ट्र में बसने वाले

जनों के बीच ( राजानम् ) राजा और उनके ( वसतिं ) नगर वा गृह के समान बसाने वाले आश्रयदाता पुरुष को ( अवसृजन्तु ) सब प्रकार के बन्धनों से छुड़ावें । और (तं निन्दितारः) उस राजा की निन्दा करने वाले लोग (निन्द्यासः) निन्दा करने योग्य (भवन्तु) हों। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

शुनश्चिच्छेपं निदितं सहस्राद्यूपादमुञ्चो अशमिष्ट हि षः ।
एवास्मदग्ने वि मुमुग्धि पाशान्होतश्चिकित्व इह तू निषद्य ॥७॥

भा०—राजा का कर्त्तव्य । जिस प्रकार हे राजन् ! हे परमात्मन् ! तू ( शुनःशेपं चित् ) सुख के प्राप्त करने वाले ( नि-दितम् ) खूब कर्म वंधनों से बंधे या निन्दित जीव को भी ( सहस्रात् ) सहस्रों वा अति दृढ़, मोहजनक बन्धन से (अमुञ्चः) मुक्त कर देते हो ( हि ) क्योंकि वह ( अशमिष्ट हि ) स्तुति करता वा प्राकृतिक भोगों और पापाचारों से शान्त, उपरत हो जाता है । ( एव ) इसी प्रकार हे ( अग्ने ) ज्ञान प्रकाशक वा प्रकाशस्वरूप प्रभो ! और अग्नि के तुल्य तेजस्वी राजन् ! हे ( होतः ) ज्ञान और ऐश्वर्य-पदाधिकार देने वाले ! हे ( चिकित्वः ) ज्ञानवन् , औरों के चेताने वा अन्यों के भवरोग और राष्ट्र के शत्रु वा दुष्ट पुरुषों को रोगों के तुल्य ही दूर करनेहारे ! तू ( इह तु ) यहां इस न्यायासन पर ( नि-सद्य ) सर्वोपरि विराज कर ( अस्मत् ) हम से ( पाशान् ) बन्धनों को ( वि मुमुग्धि ) विशेष रूप से दूर कर ।

हृणीयमानो अप हि मदैयेः प्र मे देवानां व्रतपा उवाच ।
इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम् ॥८॥

भा०—हे ( अग्ने ) नायक ! अग्रणी ! राजन् ! ( हृणीयमानः ) क्रोध या तिरस्कार करता हुआ तू ( मत् ) मुझ से ( हि ) कभी ( अप ऐयेः ) तू परे, कुमार्ग में भी जा सकता है । इसलिये जो ( देवानां ) विद्वानों के ( व्रत-पाः ) व्रतों, कर्त्तव्यों का पालन करने करानेहारा (विद्वान्

इन्द्रः ) ज्ञानवान्, तत्वद्रष्टा, न्यायशासक पुरुष ( मे प्रोवाच ) मुझे सत्कर्मों का उपदेश करता है वह ही ( त्वा अनुचचक्ष ) तुझे भी तेरे अनुकूल कर्त्तव्यों का उपदेश करे। ( तेन अनु शिष्टः ) उससे अनुशासित होकर ( अहम् आ अगाम् ) मैं आगे, आदर पूर्वक बढ़ता हूं। प्रजाओं के उत्तम शासक शिक्षक विद्वान् ही राजाओं के भी शासक वा शिक्षक होने चाहियें। जो दोनों को उत्पथ जाने से रोकें। मदवश राजा उत्पथ हो जावे तो प्रजा उसको विद्वान् इन्द्र, न्यायाधीश से ही दण्ड दिला सकती है।

**वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा।**
**प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षसे विनिक्षे॥ ९॥**

भा०—( अग्नि ) अग्नि वा सूर्य जिस प्रकार ( बृहता ज्योतिषा वि भाति ) बड़े भारी प्रकाश से चमकता और ( महित्वा ) बड़े भारी सामर्थ्य से (विश्वानि आविः कृणुते) सब पदार्थों को प्रकट कर देता है उसी प्रकार ( अग्निः ) अग्रणी नायक और विद्वान् पुरुष ( बृहता ) बड़े भारी ( ज्योतिषा ) ज्ञान और तेज से ( वि भाति ) विविध प्रकार से चमके और ( महित्वा ) अपने महान् सामर्थ्य से ( विश्वानि ) सब सत्य ज्ञानों और ज्ञातव्य पदार्थों को प्रकाशित करे। वह ( महित्वा ) महान् तेजः-प्रभाव से ही ( अदेवीः ) देव, सूर्यवत् तेजस्वी, विद्वान् उत्तम पुरुषों से भिन्न बुरे लोगों की ( दुरेवाः ) दुःखदायक और दुर्गम ( मायाः ) छल कपटादियुक्त अन्धकार से होने वाली दुश्चेष्टाओं को ( सहते ) पराजित करता है, उनको चलने या सफल होने नहीं देता, और वह ( शृङ्गे ) प्रकट और अप्रकट अपने दुष्टों के नाशकारी साधनों को ( रक्षसे ) विघ्नकारी पुरुषों के (विनिक्षे) विनाश करने के लिये (शिशीते) तीक्ष्ण करे।

**उत स्वानासो दिवि षन्त्वग्नेस्तिग्मायुधा रक्षसे हन्तवा उ।**
**मदे चिदस्य प्र रुजन्ति भामा न वरन्ते परिबाधो अदेवीः॥१०॥**

भा०—( उत ) और ( अग्नेः ) ज्ञानवान् और तेजस्वी पुरुष के ( स्वानासः ) उपदेश भरे वचन, उपदेष्टा जन और आज्ञा वचन अग्नि के चटचटा शब्दों के तुल्य ( दिवि ) ज्ञान के निमित्त ( सन्तु ) हों। और उसके ( तिग्मायुधाः ) तीक्ष्ण शस्त्रों को धारण करने वाले, वीर पुरुष ( रक्षसे ) दुष्ट पुरुष के हनन करने के लिये ही ( सन्तु ) हों। ( अस्य मदे ) इसके दमनकारी शासन में स्थित ( भामाः ) क्रोधयुक्त वीर जन (अदेवीः परिबाधः ) बुरे आदमियों की खड़ी की हुई बाधा और विघ्नकारी चेष्टाओं को ( प्र रुजन्ति ) खूब कुचल डालें और बाधक सेनाएं उसको ( न वरन्ते ) निवारण न कर सकें।

एतं ते स्तोमं तुविजात विप्रो रथं न धीरः स्वपा अतक्षम्।
यदीदग्ने प्रति त्वं देव हर्याः स्वर्वतीरप एना जयेम ॥ ११ ॥

भा०—हे ( तुविजात ) बहुतों में प्रसिद्ध, कीर्त्तिमान् प्रभो! राजन्! ( सु-अपाः न ) उत्तम कर्म कुशल, कारीगर जिस प्रकार ( रथं ) उत्तम सुसम्बद्ध रथ बनाता है उसी प्रकार ( ते ) तेरे लिये ( एतं ) इस ( स्तोमं ) उपदेश युक्त स्तुत्य वचन को मैं ( विप्रः ) विद्वान् ( धीरः ) ध्यानवान् बुद्धिमान् पुरुष ( अतक्षम् ) प्रकट करता हूं। हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् प्रभो! हे तेजस्विन्! राजन्! हे ( देव ) देव! ( यदि इत् ) यदि ( त्वं ) तू ( प्रति हर्याः ) इसे स्वीकार करे तो हम ( स्वर्वतीः ) नाना सुखों से युक्त ( अपः ) ज्ञानों, कर्मों और आप्त प्रजाओं को भी ( एना ) इस उत्तम उपदेश द्वारा ( जयेम ) विजय करें। उन पर वश करें और उनके हृदय खींचलें।

तुविग्रीवो वृषभो वावृधानोऽशत्र्वर्यः समजाति वेदः।
इतीममग्निममृता अवोचन्बर्हिष्मते मनवे शर्म यंसद्धविष्मते मनवे शर्म यंसत् ॥ १२ ॥ १५ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि ( वेदः अशत्रु सम् अजाति ) तेज को बिना रोकके समस्त रूपों से सब ओर फेंकता है। उसी प्रकार ( तुवि-ग्रीवः ) बहुत सी गर्दनों, अर्थात् राज्यभार वाहक धुरन्धर समर्थ पुरुषों से सहायवान् होकर ( वृषभः ) बलवान् अग्रणी ( अर्यः ) स्वामी पुरुष ( अशत्रु ) शत्रुरहित, निष्कण्टक शत्रु के ( वेदः ) धनैश्वर्य को ( सम्-अजाति ) समान रूप से प्रदान करता है । ( इति ) इसी कारण से ( इमम् ) उस पुरुष को ( अमृताः ) दीर्घायु, वृद्ध जन ( अग्निम् अवोचन् ) 'अग्नि' कहते हैं वह ( बर्हिष्मते ) वृद्धिशील प्रजा के स्वामी ( मनवे ) मननशील पुरुष को ( शर्म यंसत् ) सुख शरण प्रदान करता है। और ( हविष्मते ) अन्नादि से समृद्ध ( मनवे ) पुरुष को ( शर्म यंसत् ) सुख प्रदान करता है। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

## [ ३ ]

वसुश्रुत आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ निचृत्पंक्तिः। ११ भुरिक् पंक्तिः। २, ३, ५, ६, १२ निचृत्-त्रिष्टुप्। ४, १० त्रिष्टुप्। ६ स्वराट् त्रिष्टुप् ७, ८ विराट् त्रिष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

त्वम॑ग्ने॒ वरु॑णो॒ जाय॑से॒ यत्त्वं मि॒त्रो भ॑वसि॒ यत्समि॑द्धः ।
त्वे विश्वे॑ सहसस्पुत्र दे॒वास्त्वमिन्द्रो॑ दा॒शुषे॒ मर्त्या॑य ॥ १ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक ! अग्नि के तुल्य तेजस्विन् ! राजन् ! ज्ञानवन् गुरो ! हे परमेश्वर ! ( यत् ) क्योंकि तू ( वरुणः ) सर्व-श्रेष्ठ, सब कष्टों का निवारक ( जायसे ) है। और ( यत् ) जो तू ( समिद्धः ) अति दीप्त, उत्तेजित और उग्र होकर भी ( मित्रः भवसि ) सबका स्नेही और सबको मरने से बचाने वाला ही बना रहता है। इस-लिये हे ( सहसः पुत्र ) बलवान् पुरुष के पुत्र वा बल की एकमात्र मूर्त्ति ! तू ( विश्वे देवाः ) सब विद्वान् और नाना कामनावान् जन

( त्वे ) तेरे ही पर आश्रित रहते हैं। ( त्वम् ) तू भी ( दाशुषे मर्त्याय ) कर आदि देने वाले वा आत्मसमर्पक मनुष्य के लिये ( इन्द्रः ) उसके विघ्नों का नाशक और सूर्य वा मेघ के तुल्य ऐश्वर्य का दाता है।

त्वम॑र्य॒मा भ॑वसि॒ यत्क॒नीनां॒ नाम॑ स्वधाव॒न्गुह्यं॑ बिभर्षि।
अ॒ञ्जन्ति॑ मि॒त्रं सुधि॑तं॒ न गोभि॒र्यद्दम्प॑ती॒ सम॑नसा कृ॒णोषि॑ ॥२॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! राजन्! जिस प्रकार अग्नि ( कनीनां अर्यमा ) कान्तियुक्त सुन्दर आभूषण वस्त्रादि से युक्त, सौभाग्यवती एवं पति की कामना करने वाली कन्याओं का 'अर्यमा' अर्थात् स्वामी के तुल्य न्यायानुसार योग्य पात्र में देने वाला होता है उसी प्रकार हे राजन्! तू भी ( कनीनां ) तेजस्विनी सेनाओं और ऐश्वर्य एवं रक्षा चाहने वाली प्रजाओं का ( अर्यमा ) न्यायकारी स्वामी और शत्रुओं का नियन्ता ( भवसि ) होता है। हे ( स्वधावन् ) आत्मशक्ति, और स्व अर्थात् धनादि धारण करने वाली शक्ति के स्वामिन्! पत्नी के गुप्त भाषणादि को धारण करने में समर्थ पति के तुल्य ही तू स्वयं ( गुह्यं ) बुद्धि और रक्षा के अनुकूल अपने ( नाम ) शत्रु नमाने के बल को भी ( बिभर्षि ) धारण करता है। ( सुधितं ) सुखपूर्वक आसन पर बैठे ( मित्रं ) अर्थात् स्नेहयुक्त पुरुष के प्रति कन्या के बन्धुजन जिस प्रकार ( गोभिः न ) गौके दुग्ध रस मधु आदि द्वारा (अञ्जन्ति) अपना आदर भाव प्रकट करते हैं और जिस प्रकार ( सुधितं ) अच्छी प्रकार कुण्ड में आहुति किये अग्नि को ( गोभिः अञ्जन्ति ) गो-दुग्ध के विकार रूप घृतों से अधिक प्रदीप्त करते हैं उसी प्रकार ( सुधितम् ) उत्तम रीति से स्थापित ( मित्रं ) सर्वस्नेही, सबको मृत्यु से बचाने वाले राजा को ( गोभिः ) गोदुग्ध दधि मधु आदि वा, उत्तम वाणियों, गवादि पशु सम्पदाओं और भूमियों से ( अञ्जन्ति ) आदर सत्कार युक्त करें। ( यत् ) क्योंकि तू ही ( दम्पती ) पति और पत्नी को ( समनसा ) आवसथ्य अग्नि के तुल्य एक मन वाला ( कृणोषि ) करता है।

यदि राजा की व्यवस्था न हो तो पति-पत्नी सम्बन्ध भी स्थिर न रह सके अन्यत्र भी वेद मन्त्रों में—सं जास्पत्यं सुयमम् आ कृणुष्व । यजु० ॥ हे राजन् ! पति-पत्नी के सम्बन्ध को सुदृढ़ कर ।

तव॑ श्रि॒ये म॒रुतो॑ मर्जयन्त॒ रुद्र॒ यत्ते॒ जनि॑म॒ चारु॑ चि॒त्रम् ।
प॒दं यद्विष्णो॑रुप॒मं नि॒धायि॒ तेन॑ पासि॒ गुह्यं॒ नाम॒ गोना॑म् ॥ ३ ॥

भा०—हे ( रुद्र ) दुष्टों को रुलाने वाले, उनको भस्मसात् करने और उनको मर्यादा में रोक रखने हारे तेजस्विन् ! जिस प्रकार ( मरुतः अग्नेः चित्तं जनिम श्रिये मर्जयन्त ) वायुगण अग्नि के अद्भुत रूप को और अधिक शोभा वा कान्ति की वृद्धि के लिये अधिक प्रदीप्त कर देते हैं उसी प्रकार ( मरुतः ) विद्वान् और वायुवद् बलवान् पुरुष ( यत् ते ) जो तेरा ( चारु) सुन्दर ( चित्रम् ) अद्भुत ( जनिम ) जन्म या देह है उसको ( श्रिये ) ऐश्वर्य, शोभा की वृद्धि के लिये और अधिक ( मर्जयन्त ) अभिषेक, अलंकार आदि द्वारा शुद्ध पवित्र और अलंकृत करें । ( यत् ) जिस कारण ( ते पदम् ) तेरा पद, ( विष्णोः उपमं ) व्यापक, तेजस्वी सूर्य और वायु के तुल्य ( निधायि ) निहित है इस कारण ( तेन ) उस पद या अधिकार से तू ( गोनाम् गुह्यं ) किरणों के गुप्त रूप को सूर्यवत् और मेघस्थ जलधाराओं के गुप्त रूप को आकाशस्थ वायु के तुल्य ही ( गोनाम् ) भूमियों और उनमें बसी प्रजाओं के (गुह्यं नाम ) गुप्त, वश-कारक बल को ( पासि ) पालन कर ।

तव॑ श्रि॒या सु॒दृशो॑ देव दे॒वाः पु॒रू दधा॑ना अ॒मृतं॑ सपन्त ।
होता॑रम॒ग्निं मनु॑षो॒ नि षे॑दुर्दश॒स्यन्त॑ उ॒शिजः॒ शंस॑मा॒योः ॥ ४ ॥

भा०—हे ( देव ) तेजस्विन् ! हे ऐश्वर्य के देने हारे ! हे देव ! ( सुदृशः देवाः ) अच्छी प्रकार तत्व को देखने वाले विद्वान् पुरुष ( तव श्रिया ) तेरी सेना, शोभा और ऐश्वर्य से ही ( पुरु अमृतं दधानाः )

बहुत प्रकार के अमृत, अन्न, जल और उत्तम प्रजा और दीर्घ जीवन को धारण करते हुए ( सपन्त ) समवाय बना कर, मिलकर रहें ॥ ( आयोः ) दीर्घ जीवन की ( उशिजः ) कामना करने वाले ( मनुषः ) मनुष्य गण ( शंसम् ) अति प्रशंसनीय वचन और पुरस्कार योग्य द्रव्य को ( दशस्यन्तः ) आदर पूर्वक प्रदान करते हुए ( होतारम् ) सर्वैश्वर्य के दाता ( अग्निम् ) तेजस्वी, अग्रणी नायक को प्राप्त होकर स्वयं भी ( नि सेदुः ) उत्तम आसनों वा अपने २ पदों पर विराजें ।

**न त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान्न काव्यैः पुरो अस्ति स्वधावः ।**
**विशश्च यस्या अतिथिर्भवासि स यज्ञेन वनवद्देव मर्तान् ॥५॥**

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! हे तेजस्विन् ! राजन् ! (त्वत् पूर्वः ) तेरे से पूर्व, तेरे से उत्कृष्ट दूसरा कोई ( होता ) दान देने और प्रजाओं को अपने अधीन रखकर अपनाने वाला ( न अस्ति ) नहीं है । और हे (स्वधावः) ऐश्वर्य और अन्न के स्वामिन् ! ( त्वत् यजीयान् ) तेरे से अधिक बड़ा सत्संग योग्य और ( काव्यैः ) विद्वानों के किये उत्तम स्तुति-वचनों द्वारा सत्कार, प्रशंसा और उपदेशों के द्वारा आदर योग्य सत्पात्र भी ( न अस्ति ) नहीं है । ( च ) और ( यस्याः विशः ) जिस प्रजा का भी तू ( अतिथिः भवासि ) अतिथि के तुल्य पूज्य और अध्यक्ष रूप से शासक होता है ( सः ) वह तू हे ( देव ) तेजस्विन् ! हे दातः ! ( यज्ञेन ) दान, सत्संग द्वारा ही उस प्रजा के ( मर्त्तान् ) मनुष्यों को ( वनवत् ) अपना ऐश्वर्य समान रूप से विभक्त कर देता है ।

**वयमग्ने वनुयाम त्वोता वसूयवो हविषा बुध्यमानाः ।**
**वयं समर्ये विदथेष्वह्नां वयं राया सहसस्पुत्र मर्तान् ॥६॥१६॥**

भा०—हे ( सहसः पुत्र ) बल के स्वरूप ! हे शक्ति के पालक ! ( अग्ने ) अग्रणी नायक तेजस्विन् ! ( वसूयवः ) धनों की कामना करते हुए और ( हविषा ) करने योग्य उत्तम भक्ष्य और उत्तम वचन से

( बुध्यमानाः ) ज्ञानवान् होते हुए ( वयम् ) हम लोग ( त्वा ऊताः ) तेरे द्वारा रक्षित होकर (वनुयाम) ऐश्वर्यों का भोग और दान किया करें। और ( वयं ) हम लोग ( समर्ये ) संग्राम में और ( विदथेषु ) यज्ञों और ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति और ग्रहण, दान आदि कार्यों में ( अह्नाम् ) सब दिनों ( वनुयाम ) लगे रहें। और ( वयं ) हम लोग ( राया ) धनैश्वर्य के बल पर ( मर्त्तान् ) सब प्रकार के मनुष्यों को सेवक, सहायक आदि रूपों में ( वनुयाम ) प्राप्त करते रहें।

**यो न आगो अभ्येनो भरात्यधीदघमघशंसे दधात।**
**जही चिकित्वो अभिशस्तिमेतामग्ने यो नो मर्चयति द्वयेन ॥७॥**

भा०—( यः ) जो पुरुष ( नः ) हमारे बीच में ( एनः ) अपराध ( अभि भराति ) करे राजा ( अघशंसे ) उस पापाचारण करने वाले चौर पुरुष पर (अघम् अधि दधात) खूब कठोर दण्ड दे। हे (चिकित्वः) तत्वज्ञ, राज्य से रोगों के तुल्य दुष्टों को दूर करने हारे! (नः) हमारे बीच ( यः ) जो भी ( द्वयेन ) बाहर और भीतर, प्रकाश और अप्रकाश दोनों रीति से ( नः मर्चयति ) हमें पीड़ित करता है तू उनकी ( एताम् अभिशस्ति ) इस प्रकार सब ओर की हिंसा वा फौज़दारी को ( जहि ) दण्डित कर।

**त्वामस्या व्युषि देव पूर्वे दूतं कृण्वाना अयजन्त हव्यैः।**
**संस्थे यदग्न ईयसे रयीणां देवो मर्तैर्वसुभिरिध्यमानः ॥ ८ ॥**

भा०—( व्युषि पूर्वे दूतं अग्निं कृण्वानाः हव्यैः अयजन्त, इध्यमानः वसुभिः संस्थे अग्निः ईयसे ) जिस प्रकार विभोर काल में वृद्धजन संताप-जनक अग्नि को उत्पन्न करते हुए घृत अन्नादि हवियों से यज्ञ करते हैं और वह अपने बसने योग्य काष्ठों से चमकता हुआ अग्नि गृह में प्राप्त किया जाता है उसी प्रकार हे ( अग्ने ) अग्निवत् अग्रणी नायक! हे ( देव ) तेजस्विन्! ( अस्याः ) इस प्रजा के ( वि-उषि ) विशेष प्रबल कामना

होजाने पर (पूर्वे) पूर्व विद्यमान, वृद्ध प्रजाजन ( त्वाम् ) तुझ को (दूतं) परिचर्या योग्य और शत्रुसंतापक प्रतापी ( कृण्वानाः ) बनाते हुए (हव्यैः) उत्तम ग्राह्य ऐश्वर्यों से ( अयजन्त ) तेरा आदर सत्कार करते हैं ( यत् ) जो तू ( देवः ) दानशील वा तेजस्वी होकर ही ( वसुभिः ) धनैश्वर्यों और राष्ट्र में बसे प्रजाजनों ( मर्त्तैः ) और शत्रुमारक वीर पुरुषों से ( इध्यमानाः ) बहुत तेजस्वी होकर ( रयीणां संस्थे ) ऐश्वर्यों के एक-मात्र आश्रय रूप इस राष्ट्र में ( ईयसे ) प्राप्त है ।

**अव॑ स्पृधि पि॒तरं॒ योधि॑ वि॒द्वान्पु॒त्रो यस्ते॑ सहसः सून ऊ॒हे ।**
**क॒दा चि॑कित्वो अ॒भि च॑क्षसे॒ नोऽग्ने॑ क॒दाँ ऋ॑त॒चिद्या॑तयासे ॥९॥**

भा०—( सहसः सूनो ) बलवान् ब्रह्मचर्यपूर्वक बलवीर्य के पालक पिता के पुत्र के तुल्य वा राष्ट्रपालक, शत्रुमारक बल, सैन्य के सञ्चालक राजन् ! ( अहं ते ऊहे ) मैं तेरे लिये सदा यह विचार करता हूं कि ( यः ) जो तू ( पुत्रः ) पुत्र या बहुतों का पालक है वह तू ( विद्वान् ) विद्वान् होकर ( कदा ) कब ( पितरं ) अपने पालक पिता को पुनः देखना (अव स्पृधि) चाहेगा और (कदा अव योधि) कब उनको कष्टों से छुड़ावेगा । हे (चिकित्वः) ज्ञानवन् ! तू (नः अभिचक्षसे) हमें कब उत्तम उपदेश करेगा और ( ऋतचित् सन् कदा नः यातयासे ) सत्य ज्ञान का संचय करने हारा तू हमें तेजस्वी सूर्य के तुल्य कब सन्मार्ग पर चलावेगा । ( २ ) इसी प्रकार हे राजन् ! (सहसः सूनो) बल सैन्य के प्रेरक, चालक ( अग्ने) नायक ! ( यः ) जो ( पुत्रः ) पुत्र के समान प्रजाजन ( त्वां पितरं विद्वान् ) तुझे अपने पिता के तुल्य जानता हुआ ( सं अव स्पृधि ) तुझे खूब चाहता है और ( त्वां अव योधि ) तुझे सब संकटों से दूर रखता है वह ( ते कदा ऊहे ) तुझे कब अपने ऊपर अध्यक्ष रूप से धारण करे । तू हमें कब २ देखे और कब २ सन्मार्ग पर चलावे । ( ३ ) अथवा—इसकी उभयथा योजना है । (हे सहसः सूनो ! यः ते पुत्रः प्रजाजनः त्वां पितरं

विद्वान् अव स्पृधि स्पर्धते, अव योधि च दुःखात् पृथक् कुरुते यः च ऊहे करादि भारं वहति। तमेव हे राजन्! त्वं पितरं स्वपालकं प्रजाजनं पुत्रः पुत्रवत् सन् अवस्पृधि आपूरय, अव योधि शत्रुभिः सह युध्यस्व, संकटाद्वा मोचय) जो तेरा पुत्र तुल्य प्रजाजन तुझे पिता तुल्य जानता हुआ तुझे चाहता है, तुझे संकट से परे रखता है, तेरे शासन को अपने ऊपर रखता है, हे राजन्! तू भी अपने पालक उस प्रजाजन को उसके पुत्र के तुल्य ही पूर्ण कर वा चाह, उसके लिये शत्रुओं से लड़ वा संकट दूर कर। तू (कदा) कभी हमें देखा कर और (कदा) कभी २, समय २ पर (ऋतचित्) सत्य न्याय का ज्ञापक होकर (नः यातयासे) हमें सन्मार्ग पर चला।

भूरि॒ नाम॒ वन्द॑मानो दधाति पि॒ता व॑सो॒ यदि॒ तज्जो॒षया॑से।
कु॒विद्दे॒वस्य॒ सह॑सा चका॒नः सु॒म्नम॒ग्निर्व॑नते वावृ॒धानः॥ १०॥

भा०—हे (वसो) वसो! राष्ट्र को बसाने वाले राजन्! (यदि) यदि तू (तत्) उस (नाम) बड़े कान्तियुक्त नाम वा शत्रु को नमाने वाले बल को (जोषयासे) चाहे तो (पिता) पालक पिता जिस प्रकार पुत्र का उत्तम नाम रखता है उसी प्रकार (पिता) पालक प्रजाजन भी (भूरि) बहुत २ तेरी स्तुति करता और आदरपूर्वक विनय भाव दर्शाता हुआ तेरे (भूरि नाम दधाति) बहुत से राजा, नृप, भूपति आदि नाम रख देता है और स्वयं भी (भूरि नाम) बहुत सा शत्रुनमनकारी बल धारण करता है। (अग्निः) अग्रणी तेजस्वी नायक (कुवित्) बहुधा (देवस्य) अपने को चाहने वाले और कर आदि देने वाले देशवासी जन के (सुम्नम्) सुख की (चकानः) कामना करता हुआ स्वयं भी (वावृधानः) बराबर बढ़ता हुआ (वनते) स्वयं भी सुख को प्राप्त करता और औरों को भी देता है। इसी प्रकार हे वसो! हे प्रजाजन! यदि तू चाहे तो तेरा (पिता) पालक राजा स्तुति प्राप्त करके तेरे

बहुत से स्वरूपों वा नाम अर्थात् बलों वा पदों को धारण करता है। अर्थात् प्रजा की इच्छानुसार राजा अपने सैन्यादि बढ़ावे।

**त्वम॑ङ्ग ज॑रि॒तारं॑ यविष्ठ॒ विश्वा॑न्यग्ने दुरि॒ताति॑ पर्षि।**
**स्ते॒ना अ॑दृश्रन्रि॒पवो॒ जना॒सोऽज्ञा॑तकेता वृजि॒ना अ॑भूवन् ॥११॥**

भा०—( अङ्ग अग्ने ) हे ज्ञानवन्! तेजस्विन्! अग्नि के तुल्य प्रताप वाले! हे ( यविष्ठ ) बलिष्ठ! खूब तरुण! ( त्वं ) तू ( विश्वानि ) सब प्रकार के ( दुरिता ) पापाचारों और दुर्गम संकटों को ( अति ) पार करके ( जरितारं ) उपदेष्टा विद्वान् पुरुष को ( पर्षि ) पालन कर। जो ( स्तेनाः ) चोर और ( रिपवः ) शत्रुगण ( अदृश्रन् ) दिखाई दें। और जो ( अज्ञातकेताः ) अज्ञात कुलशील, अज्ञात स्थान में रहने वाले, वा ज्ञान शून्य ( जनासः ) मनुष्य होते हैं वे भी ( वृजिनाः ) वर्जन करने योग्य ही ( अभूवन् ) होते हैं। उनसे भी अपने स्तुतिकर्त्ता, सपक्ष प्रजाजन की रक्षा करे। ( २ ) इसी प्रकार अग्नि आचार्य ( जरितारं ) विद्या पढ़ने वाले शिष्य की हर प्रकार से रक्षा करे। बहुत से लोग ठग, चोर, पापी अज्ञानी होते हैं जो बालकों को ठगते वा गिराते हैं।

**इ॒मे यामा॑सस्त्व॒द्रिग॑भूव॒न्वस॑वे वा॒ तदिदागो॑ अवाचि।**
**नाहा॒यम॒ग्निर॒भिश॑स्तये नो॒ न रीष॑ते वावृधा॒नः परा॑दात् १२।१७**

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! राजन् वा आचार्य! (इमे) ये (यामासः) यम नियमों के पालक शिष्यजन और शरण में जाने वाले वा नियम-व्यवस्था में बद्ध प्रजाजन वा नियमबद्ध सैन्य गण ( वसवे ) बसे राष्ट्र में वा अन्तेवासी के हितार्थ वा बसाने वाले राजा वा आचार्य के ही निमित्त वा ( वसवे ) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये ही ( त्वद्-रिक् अभूवन् ) तेरे ही से यत्नशील, तेरे ही अधीन होते हैं। अतः ( तत् इत् आगः ) वह सब अपराध ( वसवे ) प्रजा को बसाने वाले का ही ( अवाचि )

कहाजाता है। इसलिये ( अयम् अग्निः ) वह अग्रणी नेता पुरुष ( नः ) हमें ( अभिशस्तये ) परस्पर हिंसा आदि अपराध के लिये हिंसा करने वाले के हाथ ( न परा दात् ) न त्यागदे और स्वयं ( वावृधानः ) बढ़ता हुआ भी हमें ( रीपते न परा दात् ) हिंसक के हाथों न सौंप दे। इति सप्तदशो वर्गः॥

## [ ४ ]

वसुश्रुत आत्रेय ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, १०, ११ भुरिक् पंक्तिः। स्वराट् पंक्तिः। २, ६ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप्। ५ त्रिष्टुप्॥ एकादशर्चं सूक्तम्॥

त्वाम॑ग्ने वसु॑पतिं वसू॑नाम॒भि प्र म॑न्दे अध्व॒रेषु॑ राजन्।
त्वया॒ वाजं॑ वाज॒यन्तो॑ जयेमा॒भि ष्या॑म पृत्सु॒तीर्मर्त्या॑नाम् ॥१॥

भा०—हे ( अग्ने ) तेजस्विन्! ज्ञानवन्! हे ( राजन् ) हे प्रकाशमान राजन्! ( वसूनां ) वसे जनों के बीच ( वसुपतिम् ) धनपति ( त्वाम् ) तुझ को मैं ( अध्वरेषु ) यज्ञों में अग्निवत् हिंसारहित प्रजा पालनादि कार्यों में स्थित देख कर ( प्र मन्दे ) तेरे गुणानुवाद करता हूं। हम प्रजाजन ( त्वया ) तुझ द्वारा ( वाजं वाजयन्त ) संग्राम विजय करते हुए ( जयेम ) विजय प्राप्त करें। और ( मर्त्यानाम् ) हमें मारने वाले मनुष्यों की ( पृत्सुतीः ) सेनाओं को हम ( अभि स्याम ) पराजित करें।

ह॒व्य॒वाळ॒ग्निर॒जरः॑ पि॒ता नो॑ वि॒भुर्वि॒भावा॑ सु॒दृशी॑को अ॒स्मे।
सु॒गा॒र्ह॒प॒त्याः समि॒षो॑ दिदीह्यस्म॒द्र्य१॒॑क्सं मि॑मीहि॒ श्रवां॑सि ॥२॥

भा०—( हव्यवाट् ) ग्रहण करने योग्य ऐश्वर्यों को धारण करने वाला ( अग्निः ) अग्रणी अग्निवत् तेजस्वी पुरुष ( अजरः ) कभी नाश न होने वाला ( नः पिता ) हमारा पालक हो। वह ( विभुः ) विशेष सामर्थ्य-

वान् ( विभावा ) दीप्तिमान् ( सुदृशीकः ) उत्तम द्रष्टा, उत्तम अध्यक्ष ( अस्मे ) हमारे कल्याण के लिये हो। वह तू हे राजन्! ( सुगार्हपत्याः ) उत्तम गृहपति के योग्य ( इषः ) अन्नों को ( सं दिदीहि ) प्रदान कर। और ( अस्मद्र्यक् ) हमें प्राप्त होने वाले ( श्रवांसि ) अन्नों और ज्ञानों को ( सं मिमीहि ) अच्छी प्रकार सेचन कर, बढ़ा। (२) परमेश्वर अजर, अमर, पालक, व्यापक, तेजःस्वरूप, उत्तम इष्ट है। वह हमें कामनाएं, ज्ञान अन्नादि देता है।

विशां कविं विश्पतिं मानुषीणां शुचिं पावकं घृतपृष्ठमग्निम्।
नि होतारं विश्वविदं दधिध्वे स देवेषु वनते वार्य्याणि ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो! आप लोग ( कविं ) क्रान्तदर्शी ( शुचिं ) शुद्ध, स्वच्छ आचारणवान्, ईमानदार, धार्मिक, तेजस्वी, (पावकं) पवित्र करने वाले, ( घृतपृष्ठम् ) तेज और स्नेह से पूर्ण रूप वाले ( अग्निं ) अग्नि के तुल्य तेजस्वी, ( होतारं ) दानशील, ( विश्वविदम् ) सर्वज्ञानी पुरुष को ( विशां ) प्रजाओं का ( विश्पतिं ) प्रजापति ( दधिध्वे ) बनाओ। ( सः ) वह ही ( वार्याणि ) नाना उत्तम ऐश्वर्य ( देवेषु ) विद्वानों और विजिगीषुओं और कामनावान् पुरुषों में (वनते) यथोचित रूप से विभाग करता है। ( २ ) परमेश्वर सर्वज्ञ, प्रजापति, शुद्ध, पवित्र, पतितपावन, तेजोमय है, वही सब सूर्यादि में अन्धकार-निवारक तेज देता है।

जुषस्वाग्न इळया सजोषा यतमानो रश्मिभिः सूर्यस्य।
जुषस्व नः समिधं जातवेद आ च देवान्हविरद्याय वक्षि ॥४॥

भा०—जिस प्रकार ( सूर्यस्य रश्मिभिः यतमानः ) सूर्य की किरणों से प्रयत्नवान् वा क्रियावान् होकर अग्नि ( समिधं ) काष्ठ को ग्रहण करता और ( हविः-अद्याय ) चरु आदि को भस्म करने के लिये ( देवान् वहति ) किरणों वा ज्वालाओं को धारण करता है उसी प्रकार हे ( अग्ने )

अग्नि के तुल्य शत्रुओं को प्रखर प्रताप से भस्म करने हारे ! तू ( इडया ) वाणी और भूमिवासिनी प्रजा से ( सजोषाः ) समान रूप से सेवित एवं प्रेमयुक्त होकर ( सूर्यस्य रश्मिभिः ) सूर्य की रश्मियों के तुल्य अपने अधीन शासकों सहित ( यतमानः ) सदा यत्न करता हुआ ( नः समिधं जुषस्व ) हमारे सहयोगी तेज, बल, ओज, पराक्रम को भी प्राप्त कर और हे ( जातवेदः ) ऐश्वर्य से युक्त पुरुष ! तू ( नः ) हमारे ( हविः-अद्याय ) खाने योग्य अन्नादि पदार्थों को प्राप्त करने के लिये ( नः ) हममें से ( देवान् ) तेजस्वी पुरुषों को ( जुषस्व ) प्रेम से ग्रहण कर और उनको ( वक्षि च ) अपने ऊपर ले, अर्थात् उनका पालन पोषण अपने पर ले।

जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान्।
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्या शत्रूयतामा भरा भोजनानि॥५॥१८

भा०—जिस प्रकार गृह में अग्नि यज्ञ को प्राप्त होता है और सब दोषों को दूर करके भोजन प्राप्त करता है उसी प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन्! विनयशालिन् ! तू ( दमूनाः ) जितेन्द्रिय और ( जुष्टः ) हमारे प्रेमपात्र, ( अतिथिः ) अतिथि के तुल्य पूज्य, एवं सबको अतिक्रमण करके सर्वोपरि विराजमान ( विद्वान् ) विद्वान्, ज्ञानी होकर ( दुरोणे ) गृह में ( नः ) हमारे ( इमं यज्ञम् ) इस आदर-सत्कार, भेंट आदि को ( उपयाहि ) प्राप्त कर। और (विश्वाः अभि-युजः ) समस्त आक्रमण करने वाली सेनाओं को ( वि-हत्य ) विविध उपायों से दण्डित करके, मार कर ( शत्रूयताम् ) शत्रुओं के समान व्यवहार करने वालों के ( भोजनानि ) खाने और रक्षा करने के साधनों और शस्त्रास्त्रों को भी ( आ भर ) छीन ला।

इत्यष्टादशो वर्गः॥

वधेन दस्युं प्र हि चातयस्व वयः कृण्वानस्तन्वे३ स्वायै।
पिपर्षि यत्सहसस्पुत्र देवान्त्सो अग्ने पाहि नृतम वाजे अस्मान्॥६

भा०—हे ( सहसः पुत्रः ) शत्रुपराजयकारी, देशपालक बलवान्

पिता के पुत्र के समान स्वयं उस द्वारा सुरक्षित और संवर्धित राजन् ! तू ( वधेन ) शस्त्र बल से (दस्युं) नाशकारी दुष्ट पुरुष को ( प्र चातयस्व ) अच्छी प्रकार नाश कर । और ( स्वायै तन्वे ) अपने शरीर का ( वयः कृण्वानः ) बल खूब बढ़ाता हुआ ( यत् ) जो तू ( देवान् पिपर्षि ) कामना युक्त, व्यवहारवान् और युद्ध-विजयेच्छु लोगों को पालन करता, ( सः ) वह तू हे (नृतम) श्रेष्ठ पुरुष ! ( अग्ने ) हे तेजस्विन् ! ( अस्मान् ) हमें ( वाजे ) संग्राम में ( पाहि ) पालन कर ।

**व॒यं ते॑ अग्न उ॒क्थैर्वि॑धेम व॒यं ह॒व्यैः पा॑वक भद्रशोचे ।**
**अ॒स्मे र॒यिं वि॒श्ववा॑रं॒ समि॑न्व॒ास्मे विश्वा॑नि॒ द्रवि॑णानि धेहि ॥७॥**

भा०—हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक ! ( वयः ) हम ( उक्थैः विधेम ) उत्तम वचनों से तेरी स्तुति करें । हे ( पावक ) राज्य को पापों से रहित, पवित्र करने हारे ! हे ( भद्रशोचे ) कल्याणकारी तेज वाले ! ( वयं ) हम ( ते ) तेरी ( हव्यैः ) अन्न धन आदि उत्तम पदार्थों से परिचर्या करें । तू ( अस्मे ) हमें ( विश्ववारं ) सब से वरण करने योग्य ( रयिं ) ऐश्वर्य ( समिन्व ) प्राप्त करा । ( अस्मे ) हमें ( विश्वानि द्रविणानि ) सब प्रकार के धन ( धेहि ) प्रदान कर ।

**अ॒स्माक॑मग्ने अध्व॒रं जु॑षस्व॒ सह॑सः सूनो त्रिषधस्थ ह॒व्यम् ।**
**व॒यं दे॒वेषु॑ सु॒कृत॑ः स्याम॒ शर्म॑णा नस्त्रि॒वरू॑थेन पाहि ॥ ८ ॥**

भा०—हे ( अग्ने ) तेजस्विन् ! नायक ! तू ( अस्माकं ) हमारे बीच ( अध्वरं ) हिंसा से रहित पालक पद को ( जुषस्व ) प्रेम से स्वीकार कर । हे ( सहसः सूनो ) शत्रु-पराजयकारी सैन्य-बल के सञ्चालक ! हे ( त्रि-सधस्थ ) जल, स्थल पर्वत तीनों स्थानों पर स्थित वा प्रजा, भृत्य और स्वजन तीनों के साथ निष्पक्षपात होकर रहने वाले ! तू ( अस्माकं-हव्यं जुषस्व ) हमारे ऐश्वर्य को प्राप्त कर । ( वयं देवेषु ) हम विद्वानों के बीच ( सुकृतः स्याम ) उत्तम कर्म करने वाले हों और तू ( त्रिवरूथेन

शर्मणा ) तीनों तापों, गर्मी, सर्दी, वर्षा तीनों के निवारक गृह, वा शत्रु-नाशक तीनों प्रकार के सैन्य से ( नः पाहि ) हमारी रक्षा कर।

**विश्वा॑नि नो दु॒र्गहा॑ जातवेदः॒ सिन्धुं॒ न ना॒वा दु॑रि॒ताति॑ पर्षि।**
**अग्ने॑ अत्रि॒वन्नम॑सा गृणा॒नो॒३॒॑ऽस्माकं॑ बोध्यवि॒ता त॒नूना॑म् ॥ ९ ॥**

भा०—हे ( अत्रिवत् अग्ने ) इस राष्ट्र में विद्यमान प्रजाओं और ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! वा शत्रुओं को खा जाने, समाप्त कर देने वाले सैन्यों के स्वामिन् ! वा राष्ट्र के भोक्ता के तुल्य ! तेजस्विन् ! हे ( जातवेदः ) समस्त ऐश्वर्यों के प्राप्त करने हारे ! ( सिन्धुं नावा न ) बड़ी नदी वा समुद्र को नौका या जहाज के तुल्य तू ( नः ) हमें ( विश्वानि ) समस्त ( दुरिता अति पर्षि ) दुखदायी संकटों वा पापों से पार कर। तू (नमसा गृणानः ) नमस्कार वचन से स्तुति किया जाता हुआ ( अस्माकं तनूनां ) हमारे शरीरों का ( अविता बोधि ) रक्षक होकर सदा सावधान रह।

**यस्त्वा॑ हृ॒दा की॒रिणा॒ मन्य॑मा॒नोऽम॑र्त्यं॒ मर्त्यो॒ जोह॑वीमि।**
**जात॑वेदो॒ यशो॑ अ॒स्मासु॑ धेहि प्र॒जाभि॑रग्ने अमृत॒त्वम॑श्याम् ॥ १० ॥**

भा०—( यः ) जो मैं ( मर्त्यः ) मरणधर्मा एवं शत्रुओं का मारने वाला साधारण पुरुष ( त्वा अमर्त्यं ) तुझ अमर्त्य अर्थात् असाधारण पुरुष को ( कीरिणा हृदा ) स्तुतिशील चित्त से ( मन्यमानः ) मान, आदर करता हुआ ( जोहवीमि ) पुकारता, प्रार्थना करता हूं वह तू हे ( जातवेदः ) उत्पन्न समस्त प्रजाजनों के जानने हारे वा ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! प्रभो ! तू ( अस्मासु ) हम में ( यशः धेहि ) अन्न और कीर्त्ति प्रदान कर। हे ( अग्ने ) नायक ! मैं राष्ट्रवासी प्रजाजन भी ( प्रजाभिः ) सन्तानों से ( अमृतत्वम् ) अमृत, अविनाशी स्वरूप को ( अश्याम् ) प्राप्त करूं सन्तति वा वंशपरम्परा रूप से मैं सदा स्थिर बना रहूं।

**यस्मै॒ त्वं सु॒कृते॑ जातवेद उ लो॒कम॑ग्ने कृ॒णवः॑ स्यो॒नम्।**
**अ॒श्विनं॒ स पु॒त्रिणं॑ वी॒रव॑न्तं॒ गोम॑न्तं र॒यिं न॑शते स्व॒स्ति ११।१९**

भा०—हे ( जातवेदः ) ऐश्वर्यों के उत्पन्न करने वाले ! हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक, राजन् ! ( त्वं ) तू ( अस्मै सुकृते ) जिस उत्तम कर्म करने वाले को ( स्योनं लोकं कृणवः ) सुखदायक लोक या स्थान प्रदान करता है ( सः ) वह ( अश्विनं ) उत्तम अश्व, ( पुत्रिणं ) पुत्र और ( गोमन्तं ) और गवादि समृद्धि ( वीरवन्तं ) वीर पुरुष से सम्पन्न ( रयिं ) ऐश्वर्य को ( स्वस्तिनशते ) सुखपूर्वक प्राप्त करता है । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

## [ ५ ]

वसुश्रुत आत्रेय ऋषिः ॥ आप्री देवता ॥ छन्दः—१, ५, ६, ७, ९, १० गायत्री । ३, ८ निचृद्गायत्री । ११ विराड्गायत्री । ४ पिपीलिकामध्या गायत्री २ आर्च्युष्णिक् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन ।
अग्नये जातवेदसे ॥ १ ॥

भा०—( सुसमिद्धाय ) खूब अच्छी प्रकार प्रदीप्त, तेजस्वी ( शोचिषे ) शुद्ध पवित्र करने वाले ( जातवेदसे ) धन, ज्ञानसम्पन्न और ऐश्वर्य के उत्पादक ( अग्नये ) अग्नि के सदृश तेजस्वी, अग्रणी विद्वान् वा विनीत पुरुष के लिये ( तीव्रं घृतं ) अग्नि को तीव्र करने वाले घृत के समान उसकी शक्ति और सामर्थ्य की वृद्धि करने वाले घृतयुक्त अन्न, तेज के दायक ज्ञान और प्रकाश को ( जुहोतन ) प्रदान करो ।

नराशंसः सुषूदतीमं यज्ञमदाभ्यः ।
कविर्हि मधुहस्त्यः ॥ २ ॥

भा०—( मधुहस्त्यः ) मधुर अन्नादि उपभोग्य, सुखदायी पदार्थों को अपने हाथ में वा वश करलेने में कुशल, (कविः) विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुष ( अदाभ्यः ) कभी पीड़ित नहीं होता । और वह (नराशंसः) सब मनुष्यों

के बीच सबसे प्रशंसायोग्य और उनका उपदेष्टा होकर ( इमं यज्ञम् ) इस परस्पर के देने लेने योग्य ज्ञानोपदेश को ( सु सूदति ) अच्छी प्रकार धारा के रूप से प्रवाहित करता है।

ईळितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम्।
सुखै रथेभिरूतये ॥ ३ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्रणी ! नायक ! तेजस्विन् ! राजन् ! प्रभो ! तू ( ईडितः ) स्तुति करने योग्य है। तू ( इह ) यहां इस लोक वा राष्ट्र में ( ऊतये ) रक्षा और उपभोग के लिये ( सुखैः रथेभिः ) सुखकारक रम्य पदार्थों वा रथ, यान आदि साधनों से ( चित्रं ) अद्भुत ( प्रियम् ) प्रिय ( इन्द्रं ) ऐश्वर्यवान् पुरुषों और नाना ऐश्वर्यों को ( आ वह ) विद्युत् वा अग्नि के तुल्य प्राप्त करा।

ऊर्णम्रदा वि प्रथस्वाभ्य१र्का अनूषत।
भवा नः शुभ्र सातये ॥ ४ ॥

भा०—हे ( ऊर्णम्रदाः ) ऊन के समान शरीरवत् राष्ट्र की रक्षा करने वाले वीर पुरुषों द्वारा वा राष्ट्र पर आच्छादन आवरण करने वाले अथवा ऊन के समान अतिमृदु, सुखकारी एवं स्वयं राष्ट्र का रक्षक होकर शत्रु वा दुष्टों का मानमर्दन करने वाले ! हे ( शुभ्र ) शुभ ऐश्वर्यों के दाता, अलंकृत, तेजस्विन्, शुद्धाचरणशील ! तुझ को ( ऊर्णम्रदाः अर्काः अभि-अनूषत ) ऊर्णवत् आच्छादक, रक्षक जनों द्वारा शत्रुनाशक और अज्ञान-नाशक, ( अर्काः ) अर्चना वा स्तुतिशील विद्वान् जन और सूर्यवत् वा किरणवत् प्रखर तेजस्वी नायक लोग तेरी सब ओर स्तुति करते वा उपदेश करते हैं। तू ( वि प्रथस्व ) विविध रूप से बढ़, फैल और ख्यातिमान् हो ( नः ) हमारे ( सातये ) उचित धनैश्वर्य विभाग के लिये ( भव ) नियुक्त हो।

देवीर्द्वारो वि श्रयध्वं सुप्रायणा नं ऊतयें ।
प्रप्र यज्ञं पृणीतन ॥ ५ ॥ २० ॥

भा०—हे ( देवीः ) विजय चाहने वाली, ऐश्वर्यों की कामना करने वाली ( द्वारः ) द्वारों के तुल्य दुष्टों और शत्रुओं का बाहर ही वारण कर देने वाली वीर सेनाओ ! आप लोग ( सु-प्रायणाः ) उत्तम उत्तम 'अयन' अर्थात् पदाधिकार वा स्व २ नियत स्थान और आगे की गति धारण करते हुए ( नः ऊतये ) हमारी रक्षा के लिये ( वि श्रयध्वम् ) विविध प्रकारों से राष्ट्र की सेवा करो । और (यज्ञं) दानशील, सत्संगयोग्य एवं पूज्य राजा वा राज्य-प्रबन्ध को ( प्र-प्र पृणीतन ) खूब पूर्ण, समृद्ध एवं प्रसन्न करो । अथवा, हे पुरुषो ! ( सु-प्रायणाः ) उत्तम गृहों से युक्त होकर आप लोग हमारे चिरकाल रक्षार्थ ही ( सु-प्रायणाः ) उत्तम गमनयोग्य, सुखजनक ( देवीः वि श्रयध्वम् ) उत्तम स्त्रियों को आश्रय दो, यज्ञ, गृहाश्रम को पूर्ण करो ।

सुप्रतीके वयोवृधा यह्वी ऋतस्यं मातरा ।
दोषामुषासमीमहे ॥ ६ ॥

भा०—हे ( सु-प्रतीके ) उत्तम ज्ञानयुक्त, ( वयोवृधा ) ज्ञान, आयु और बल के बढ़ाने वाले ( यह्वी ) बड़े, पूज्य ( ऋतस्य ) अन्न, ऐश्वर्य और सत्य ज्ञान के ( मातरा ) स्वयं जानने और औरों को उपदेश करने वा माता पिता के तुल्य अन्न देने वाले हो । हम लोग आप दोनों को ( तेषाम् उषासम् ) रात्रि और दिन के तुल्य सबको सुखदायक और प्रकाश-ज्ञानदाता जान करके ( ईमहे ) प्राप्त होते और ज्ञानादि की याचना करते हैं ।

वातस्य पत्मन्नीळिता दैव्या होतारा मनुषः ।
इमं नो यज्ञमा गंतम् ॥ ७ ॥

भा०—( दैव्या होतारा ) विद्वानों, ज्ञान, धनादि की कामना वाले शिष्यों और उत्तम गुणों से कुशल दानशील, धनी, ज्ञानी स्त्री पुरुषो वा आप दोनों ( वातस्य पत्मन् ) प्रवल वायु के मार्ग में स्थित मेघ विद्युत् के तुल्य वलवान्, और ज्ञानवान् पुरुष के योग्य मार्ग में जाते हुए (ईळिता) प्रशंसा के पात्र हो। आप लोग ( मनुषः ) मनुष्यों को और ( नः इमं यज्ञम् ) हमारे इस सत्संग को ( आगतम् ) प्राप्त होवो।

इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः।
बर्हिः सीदन्त्वस्त्रिधः ॥ ८ ॥

भा०—( इडा ) उत्तम स्तुतियोग्य विद्या, ( सरस्वती ) उत्तम ज्ञानमयी वाणी और ( मही ) वड़ी विशाल भूमि इन तीनों के समान ( इडा ) स्तुत्य, उत्तम इच्छा वाली, ( सरस्वती ) उत्तम ज्ञान वाली विदुषी और ( मही ) आदर योग्य, गुणों में पूज्य ( तिस्रः ) तीनों प्रकार की ( देवीः ) स्त्रियां, प्रजाएं वा सभाएं ( मयोभुवः ) सुख उत्पन्न करने वाली हों और वे ( अस्त्रिधः ) हिंसा आदि न करती हुईं ( बर्हिः ) वृद्धि युक्त आसन वा प्रजामय राष्ट्र पर ( सीदन्तु ) विराजें।

शिवस्त्वष्टरिहा गहि विभुः पोष उत त्मना।
यज्ञेयज्ञे न उदव ॥ ९ ॥

भा०—हे (त्वष्टः) सब दुःखों को काटने हारे! हे तेजस्विन्! हे शिल्पज्ञ! तू ( शिवः ) कल्याणकारी, ( विभुः ) व्यापक सामर्थ्य वाला ( उत ) और ( पोषः ) सर्वपोषक होकर ( इह आ गहि ) यहां आ और ( यज्ञे-यज्ञे ) प्रत्येक आदर-सत्संग योग्य व्यवहार में ( नः उत् अव ) हमारे बीच उत्तम पद पर स्थित होकर हमारी रक्षा कर।

यत्र वेत्थ वनस्पते देवानां गुह्या नामानि।
तत्र हव्यानि गामय ॥ १० ॥

भा०—हे ( वनस्पते ) वनों अर्थात् किरणों के पालक, सूर्य के तुल्य तेजस्विन्! वा महावृक्ष वट आदि के तुल्य आश्रित जनों के पालक! तू (यत्र) जहां भी ( देवानां ) विद्वान् उत्तम पुरुषों के ( गुह्या ) बुद्धि में स्थित, बुद्धिपूर्वक ( नामानि ) उत्तम बल वा रूपों, चिह्नों को ( वेत्थ ) जाने ( तत्र ) वहां ( हव्यानि ) देने वा लेने योग्य द्रव्यादि साधनों को ( गामय ) प्राप्त करा।

स्वाहाग्नये वरुणाय स्वाहेन्द्राय मरुद्भ्यः।
स्वाहा देवेभ्यो हविः ॥ ११ ॥ २१ ॥

भा०——( अग्नये हविः स्वाहा ) ज्ञानवान्, तेजस्वी, अग्रणी विद्वन् पुरुष के लिये अन्न उत्तम रीति से आदरपूर्वक वाणी से प्रदान करो। ( वरुणाय हविः स्वाहा ) दुःखों, कष्टों के वारक श्रेष्ठ पुरुष को अन्न उत्तम प्रकार से सुखदायक वाणी सहित सादर प्रदान करो। ( इन्द्राय हविः स्वाहा ) ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक पुरुष को उत्तम अन्न आदरपूर्वक प्रदान करो। ( मरुद्भ्यः ) शत्रुओं को मारने वाले वा वायु-वेग से जाने वाले ( देवेभ्यः ) ज्ञान, धन के इच्छुक वा दानशील विद्वान् मनुष्यों को ( हविः ) ग्रहण करने योग्य उत्तम पदार्थ, ज्ञान, धन, अन्न आदि सब उत्तम रीति से आदर व प्रेमपूर्वक ( स्वाहा ) प्रदान किया जावे।

## [ ६ ]

वसुश्रुत आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ८, ९ निचृत्पंक्तिः। २, ५ पंक्तिः। ७ विराट् पंक्तिः। ३, ४ स्वराड्बृहती। ६, १० भुरिग्बृहती ॥

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः। अस्तमर्वन्त आशवोस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ १ ॥

भा०—मैं ( तम् ) उसको ( अग्निं मन्ये ) 'अग्नि' मानता हूं, उसको

'अग्नि' अर्थात् अग्रणी और ज्ञानवान् पुरुष मानता हूं वा उस नायक वा विद्वान् को मैं मानता, अर्थात् आदरपूर्वक माननीय समझता हूं (यः वसुः) जो स्वयं 'वसु' अर्थात् २४ वर्ष तक न्यून से न्यून आचार्य के अधीन ब्रह्मचर्य पूर्वक वसे, वा अपने अधीन अन्यों को अन्तेवासी वा प्रजा रूप में राजावत् बसाने हारा है। ( यत् अस्तं ) जिसको गृहसा जानकर वा जिस के घर में ( धेनवः ) गौएं ( यन्ति) प्राप्त हों, ( यं अस्तं ) जिसको गृहसमान शरण जानकर या जिस के घर में, ( अर्वन्तः ) गतिमान् अश्व, वा विद्वान् जन, ( आशवः ) वेग से चलने वाले पदार्थ रथ आदि, और ( नित्यासः वाजिनः ) सदा ज्ञान और ऐश्वर्य से युक्त पुरुष ( यं अस्तं यन्ति ) जिसको शरण जानकर प्राप्त होते हैं। हे विद्वन्! हे नायक! तू ( स्तोतृभ्यः ) विद्योपदेष्टा पुरुषों को ( इषम् आ भर ) वृष्टि को सूर्य के तुल्य अन्न और कामना योग्य पदार्थ प्राप्त करा। हे नायक! तू विद्वानों के हितार्थ ( इषम् ) सेनादि का भी सञ्चालन कर।

**सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः।**
**समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर॥ २॥**

भा०—( यः वसुः ) जो स्वयं आचार्य के अधीन रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करता और जो विद्वान् अपने अधीन अन्यों को यम नियम से बसाता है, ( यम् धेनवः सम् आयन्ति ) जिसको प्रजागण गौओं के तुल्य समृद्ध और एकत्र होकर प्राप्त होते हैं ( यं रघुद्रुवः अर्वन्तः सम् ) जिसको वेग से जाने वाले अश्व और अश्वारोही गण एक साथ मिलकर प्राप्त होते हैं और ( सु-जातासः सूरयः ) उत्तम प्रकार से विद्या आदि शुभ गुणों में विख्यात विद्वान् भी मिलकर ( यं सम् आयन्ति ) जिसका सत्संग करते हैं (सः अग्निः) वह नायक, अग्रणी, ज्ञान का प्रकाशक मार्ग में अग्नि के तुल्य तेजस्वी पुरुष 'अग्नि' है। हे ऐसे नायक पुरुष! तू ( स्तोतृभ्यः ) विद्वान् पुरुषों को ( इषम् आ भर ) अन्नादि इच्छायोग्य पदार्थ प्राप्त करा। अथवा

हे मनुष्य ! तू ऐसे उपदेष्टा विद्वानों के लिये अन्नादि पदार्थ आदरपूर्वक ला, उनका सत्कार कर।

अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः।
अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्यमिषं स्तोतृभ्य आभर ॥ ३ ॥

भा०—( अग्निः हि ) वह वस्तुतः अग्रणी नायक होने योग्य है जो ( विश्व-चर्षणिः ) सब अधीन पुरुषों को अग्नि के समान ज्ञान-प्रकाश से यथार्थ तत्व का दर्शन करावे और उन पर निरीक्षण रक्खे, वही ( विशे ) अपने अधीन बसी प्रजाओं को (वाजिनं) बलवान्, ज्ञानवान् पुरुष (ददाति) प्रदान करता है। अर्थात् स्वयं उनको प्राप्त होकर उनकी बलवान् ज्ञानी पुरुष की आवश्यकता को पूर्ण करता, ( सः ) वह ( अग्निः ) विद्वान् नेता प्रसन्न होकर ( स्वाभुवं ) सब ओर से सुखपूर्वक आप से आप अनायास, उत्पन्न होने वाले ( वार्यम् ) वरण करने योग्य ऐश्वर्य को ( राये ) राष्ट्र के ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये ( याति ) प्राप्त करता है। हे विद्वन् नायक ! तू इस प्रकार सम्पन्न होकर ( स्तोतृभ्यः इषम् आ भर ) विद्वान् उपदेष्टा पुरुषों को अन्न आदि काम्य पदार्थ प्राप्त करा।

आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम्।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ४ ॥

भा०—हे ( देव ) देव ! दानशील ! सर्वार्थ-प्रकाशक ! हे ( अग्ने ) तेजस्विन् ! नेतः ! हम लोग ( ते ) तेरे ( द्युमन्तं ) दीप्ति युक्त ( अजरं ) न नाश होने वाले, सदा पूर्णज्ञान कोष या स्वरूप को ( आ इधीमहि ) हम आदरपूर्वक अधिक प्रदीप्त करें, सर्वत्र प्रचारित करें ( यत् ) क्योंकि ( ते ) तेरी ही ( पनीयसी ) सब से अधिक उत्तम उपदेश देने वाली ( सम्-इत् ) अग्नि में लगी समिधा के तुल्य अच्छी प्रकार अर्थों का प्रकाश करने वाली ( स्या ) वह वाणी ( ह ) निश्चय से ( द्यवि ) ज्ञान

प्रकाश करने के अवसर में (दीदयति) खूब प्रकाशित होती है। तू (स्तो-तृभ्यः) अध्येता जनों को (इषम् आ भर) उत्तम अन्न और इष्ट ज्ञान सब प्रकार से प्रेम आदर से प्राप्त करा।

**आ ते॑ अग्न ऋ॒चा ह॒विः शु॒क्रस्य॑ शोचिषस्पते। सुश्च॑न्द्र॒ दस्म॒ विश्प॑ते हव्य॒वाट् तुभ्यं॑ हूयत॒ इषं॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र ॥५॥२२॥**

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक! तेजस्वी विद्वन्! हे (शोचि-षः पते) तेज और प्रकाश, पवित्रकारक ज्ञान के पालक! विद्वन्! (ते) तेरे लिये (हविः) उत्तम ग्रहण करने योग्य अन्न आदि पदार्थ (ऋचा) उत्तम प्रशंसा, आदर वा ज्ञान की प्रकाशक वाणी से हवनाग्नि में मन्त्र से हवि के समान (आ) प्रदान किया जाता है! हे (सुश्चन्द्र) उत्तम सुवर्णादि और आल्हादक गुणों से युक्त! हे (दस्म) दुःख और अज्ञान के नाशक! हे (विश्-पते) प्रजाओं के पालक! हे (हव्य-वाट्) अन्नादि पदार्थों को स्वीकार करने हारे! (तुभ्यं हविः हूयते) तेरे हितार्थ अन्नादि प्रदान किया जाता है। हे विद्वन्! तू (स्तोतृभ्यः) विद्याध्येता जनों व स्तुतिकर्त्ता वा अध्यापकों के लिये (इषं) ज्ञान अन्नादि इच्छा योग्य पदार्थ (आभर) प्राप्त करा। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

**प्रो त्ये अ॒ग्नयो॒ऽग्निषु॒ विश्वं॑ पुष्यन्ति॒ वार्य॑म्। ते हि॑न्वि॒रे त इ॑न्वि॒रे त इ॑षण्यन्त्यानु॒षगिषं॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र ६**

भा०—जिस प्रकार (अग्नयः अग्निषु वार्यं पुष्यन्ति) ये सामान्य अग्नियें उन सूर्य आदि अग्नियों के आश्रय ही इस जगत् को पुष्ट करते हैं और जिस प्रकार ज्ञानी पुरुष अग्नि, विद्युत् आदि पदार्थों के आधार पर ही उत्तम ऐश्वर्य की वृद्धि करते हैं उसी प्रकार (त्ये) वे (अग्नयः) अग्रणी नेता लोग (अग्निषु) अपने अग्रनायक पूर्वगामी विद्वान् पुरुषों के आश्रय और उनके अधीन रहकर (विश्वं वार्यम्) समस्त वरणीय उत्तम

ज्ञान, धन की वृद्धि करते हैं। (ते) वे ही (हिन्विरे) औरों को प्रसन्न तृप्त और पुष्ट करते, और (ते इन्विरे) विद्याओं में आगे बढ़ते और (ते) वे ही (आनुषक्) सदा प्रकृति के अनुकूल, एवं एक दूसरे का विरोध न करके एक दूसरे के प्रति प्रेमपूर्वक रहकर (इषण्यन्ति) अन्नादि इच्छानुकूल पदार्थों की कामना करते हैं। हे विद्वन् ! तू (स्तोतृभ्यः) ऐसे विद्वानों को (इषम् आ भर) अन्न वा ज्ञान प्राप्त करा।

**तव॒ त्य अ॑ग्ने अ॒र्चयो॒ महि॑ व्राधन्त वा॒जिनः॑।**
**ये पत्व॑भिः श॒फानां॑ व्र॒जा भु॒रन्त॒ गोना॒मिषं॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र ७**

भा०—जिस प्रकार (अर्चयः वाजिनः व्राधन्त) अग्नि की ज्वालायें अन्न आदि चरु खाकर बढ़ती हैं और वे (गोनां व्रजा भुरन्त) रश्मियों के समूहों को पुष्ट करती, बढ़ाती हैं उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् ! विद्वन् ! और राजन् ! प्रभो ! (तव) तेरे (त्ये) वे (अर्चयः) अर्चना वा उपासना करने वाले (वाजिनः) ज्ञानवान् और ऐश्वर्यवान् लोग वा वेग से जाने वाले अश्वारोही गण, (शफानां पत्वभिः) समवेत शब्दों या वर्णों के बने पदों के अभ्यासों द्वारा (गोनां व्रजा भुरन्त) वेद-वाणियों के समूहों को प्राप्त करते हैं। वीर पुरुष (शफानां पत्वभिः) अश्वों के क़दमों के आगे बढ़ने से भूमियों के समूहों को जीतते वा पशु सम्पदाओं को जीतते हैं। वीरगण (शफानां) आक्रोश, आह्वान् वा ललकार वाले सैन्यों के आक्रमणों से भूमि समूहों का विजय करते हैं। (स्तोतृभ्यः इषम् आभर) हे विद्वन् ! राजन् ! तू उन अध्येता वा स्तुतिकर्त्ताओं को अन्न, ज्ञान, धनादि पदार्थ प्राप्त करा।

**नवा॑ नो अग्न॒ आ भ॑र स्तो॒तृभ्यः॑ सुक्षि॒तीरिषः॑।**
**ते स्या॑म॒ य आ॑नृ॒चुस्त्वादू॑तासो॒ दमे॑दम॒ इषं॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र ८**

भा०—जिस प्रकार अग्नि विद्वानों को (सुक्षितीः इषः) उत्तम भूमि में उत्पन्न अन्न प्रदान करता है, और विद्वान् लोग घर २ में उसी को

तापप्रद रूप से प्राप्त करके ज्वलित करते हैं उसी प्रकार हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! हे तेजस्विन् ! नायक ! तू (नः स्तोतृभ्यः) हमारे विद्वान् स्तुति-कर्त्ता पुरुषों को ( सुक्षितीः ) उत्तम निवास योग्य ( इषः ) इच्छानुकूल अन्नादि सामिग्री और उत्तम भूमियों में उत्पन्न अन्न और उत्तम निवास गृह वा भूमि की स्वामिनी प्रजाएं ( आ भर ) प्राप्त करा। ( ये ) जो ( त्वा-दूतासः ) तुझ को उपास्य, या प्रमुख बनाकर ( दमे-दमे ) प्रत्येक दमन या शासन के कार्य में या प्रतिगृह ( आनृचुः ) तेरी स्तुति और आदर करते हैं वे हम ( ते स्याम ) तेरे ही उपासक वा अनुगामी होकर रहें, तू उन ( स्तोतृभ्यः इषं आ भर ) उन स्तुतिशील पुरुषों को अन्नादि प्राप्त करा।

उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष आसनि।
उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥९॥

भा०—हे (सु-चन्द्र) शोभन, सुखकारी आह्लादक, स्वर्णादि सम्पत्ति-युक्त नायक ! जिस प्रकार होता ( आसनि ) अग्नि-मुख में ( उभे सर्पिषः दर्वी श्रीणीषे ) दो घी से पूर्ण चमस रखकर तपाता है उसी प्रकार तू ( सर्पिषः ) आगे बढ़ने वाले सैन्य बल की ( दर्वी ) शत्रुओं को विदारण करने वाली दो पलटनों को ( आसनि ) व्यूह के मुख में या शत्रुओं को उखाड़ देने के कार्य में ( श्रीणीषे ) खूब पका, अभ्यस्त कर, स्थापित कर वा सेवा में नियुक्त कर। (उतो) और हे ( शवसः पते ) बल, सैन्य के पालक सेनापते ! तू ( उक्थेषु ) उत्तम प्रशंसायोग्य पदों पर ( नः ) हमें ( उत् पुपूर्याः ) उत्तम रीति से पूर्ण कर। ( स्तोतृभ्यः इषम् आ भर ) विद्वानों और प्रशंसकों को अन्न आदि आजीविका प्रदान कर।

एवाँ अग्निमजुर्यमुर्गीर्भिर्यज्ञेभिरानुषक्।
दधदस्मे सुवीर्यमुत त्यदाश्वश्व्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१०॥२३

भा०—( एवां ) इस प्रकार विद्वान् लोग ही ( गीर्भिः ) उत्तम

वाणियों, ( यज्ञेभिः ) दान, मान, आदर सत्कारों से ( अग्निम् ) तेजस्वी अग्रणी, ज्ञानी, पुरुष को ( आनुषक् ) अपने अनुकूल करके (अजुः यमुः) प्राप्त करते और नियम में व्यवस्थित कर लेते हैं। वह ( अस्मे ) हमें ( सुवीर्यम् ) उत्तम बल (उत) और (त्यत्) वह (आशु-अश्व्यम्) शीघ्र वेग युक्त अश्व सैन्य वा बलवान् इन्द्रियों वाला तपोवल ब्रह्मचर्य (दधत्) धारण करावे। वह तू ( स्तोतृभ्यः ) अध्येताओं और स्तुति कर्त्ताओं को ( इषम् आ भर ) ज्ञान और अन्नादि प्राप्त करा। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

## [ ७ ]

इष आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ विराडनुष्टुप् । २ अनुष्टुप् । ३ भुरिगनुष्टुप् । ४, ५, ८, ६ निचृदनुष्टुप् । ६, ७ स्वराडुष्णिक् । निचृद्बृहती ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

**सखा॑यः॒ सं वः॑ स॒म्यञ्च॒मिषं॒ स्तोमं॑ चा॒ग्नये॑ ।**
**वर्षि॑ष्ठाय क्षिती॒नामू॒र्जो नप्त्रे॒ सह॑स्वते ॥ १ ॥**

भा०—हे ( सखायः ) एक ही समान नाम से पुकारे जाने योग्य मित्र गण ! ( नः क्षितीनाम् ) राष्ट्र में बसने वाले आप लोगों के बीच में ( अग्नये ) अग्रणी, ज्ञानवान् ( वर्षिष्ठाय ) सबसे बड़े बलवान्, सबको प्रबन्ध में बांधने वाले, (ऊर्जः नप्त्रे) बल पराक्रम युक्त सैन्य के प्रबन्धक ( सहस्वते ) शत्रु पराजयकारी सैन्य के स्वामी के पद के लिये आप लोग ( सम्यञ्चम् ) सम्यक् प्रकार से उत्तम ( इषं ) सबके प्रेरक ( स्तोमं ) स्तुति योग्य पुरुष को ( सम् जनयन्ति ) सब मिलकर संस्थापित करो।

**कुत्रा॑ चि॒द्यस्य॒ समृ॑तौ र॒ण्वा नरो॑ नृ॒षद॑ने ।**
**अर्ह॑न्तश्चि॒द्यमि॑न्ध॒ते सं॑ज॒नय॑न्ति ज॒न्तवः॑ ॥ २ ॥**

भा०—कैसे को नायक वा अग्रणी चुनें। ( नरः ) विद्वान् लोग (नृ-सदने) प्रमुख पुरुषों की बैठक या सभा में (यस्य सम्-ऋतौ) जिस को

प्राप्त करके, वा जिसके निष्पक्षपात सत्य ज्ञानयुक्त मति में रहकर ( कुत्र-चित् ) कहीं भी हों वा किसी भी कार्य में हे (रण्वाः) सुप्रसन्न ही रहते हों और वे (अर्हन्तः चित् ) पूजा योग्य, उत्तम लोग (यम् इन्धते) जिसको यज्ञाग्नि के तुल्य ही प्रज्वलित करते हैं, ( जन्तवः ) सब जने जिसको ( सं जनयन्ति ) मिलकर नायक वा प्रमुख बनाते हैं वही उत्तम पुरुष नायक वा प्रमुख 'दैशिक' होने योग्य है।

सं यदिषो वनामहे सं हव्या मानुषाणाम्।
उत द्युम्नस्य शवस ऋतस्य रश्मिमा ददे ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य अपने (शवसा) तेज से (ऋतस्य रश्मिम्) जल के ग्रहण करने वाले किरण को धारण करता है उससे प्राणी जन ( इषः हव्या ) अन्नादि खाद्य पदार्थ वा वृष्टियां प्राप्त करते हैं उसी प्रकार ( यत् ) जिस पुरुष से हम लोग ( इषः ) अन्न आदि इच्छा योग्य पदार्थ और सैन्यादि और ( मानुषाणां हव्या ) मनुष्यों के योग्य पदार्थ ( वनामहे ) प्राप्त करते हैं और ( यत् ) जो ( शवसा ) अपने बल पराक्रम से ( द्युम्नस्य ) ऐश्वर्य और ( ऋतस्य ) सत्य ज्ञान वा न्याय के ( रश्मिम् ) बागडोर को ( आददे ) संभालता है वही उत्तम 'अग्नि' अर्थात् अग्रणी, नायक है।

स स्मा कृणोति केतुमा नक्तं चिद्दूर आ सते।
पावको यद्वनस्पतीन्प्र स्मा मिनात्यजरः ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि ( अजरः पावकः वनस्पतीन् ) स्वयं अविनाशी होकर बड़े वृक्षों को जला देता है और ( सते नक्तं दूरे केतुम् आकृणोति ) दूर विद्यमान पुरुष के लिये भी रात को दूर तक प्रकाश कर देता है और जिस प्रकार सूर्य स्वयं ( अजरः ) कभी जीर्ण वा हीन तेज न होकर भी ( पावकः ) जल मलादि को पवित्र करने वाला होकर ( वनस्पतीन् प्र मिनाति) जलों और किरणों को वा पालक रश्मियों को दूर तक फेंकता

है, (सते) विद्यमान जगत् के उपकार के लिये (नक्त) रात्रिके अन्धकार को (दूरे कृणोति, केतुम् आ कृणोति) दूर करता और प्रकाश को सर्वत्र फैला देता है उसी प्रकार ( सः स्म ) वह नायक पुरुष भी ( पावकः ) राष्ट्र का शोधक, होकर स्वयं ( अजरः ) अविनाशी होकर भी ( वनस्पतीन् प्र मितानि ) भोग्य पदार्थों के पालक बड़े बड़े शत्रु राजाओं को भी वायुवत् प्रचण्ड होकर उखाड़ देता है। और ( सते ) प्राप्त हुए राष्ट्र के हित के लिये ( नक्तं चित् ) रात्रि को सूर्य वत् ( दूरे ) दूर करता और (केतुम्) अपना ज्ञापक झण्डा ( आ कृणुते ) सर्वत्र फैलाता है।

अ॒व स्म॒ यस्य॒ वेष॑णे॒ स्वेदं॑ प॒थिषु॒ जुह्व॑ति ।
अ॒भीम॑ह॒ स्वजे॑न्यं॒ भूमा॑ पृ॒ष्ठेव॑ रुरुहुः ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि वा सूर्य के (वेषणे) ताप के सेवने या व्यापने पर (पथिषु) मार्गों में चलने वाले लोग (स्वेदं जुह्वति) पसीना छोड़ते हैं और जिस प्रकार उनसे उत्पन्न ज्वाला वा किरणादि पिता की पीठ पर पुत्रों के तुल्य, उसके ही पृष्ठ पर स्थित रहते हैं उसी प्रकार ( यस्य वेषणे ) जिसके राज्य या प्रताप के फैलने, वा करने में लोग ( पथिषु ) उत्तम मार्गों में वा युद्ध मार्गों में ( स्वेदं ) अपना ऐहिक सर्वस्व तन, धन, (अव जुह्वति स्म) आहुति कर देते हैं और ( यस्य स्व-जेन्यं ) जिसका स्वयं उत्पन्न किया राष्ट्र वा स्वबाहु वीर्य से विजय किया ( भूम ) बहुत बड़ा राष्ट्र बहुतसी प्रजाएं उसके पुत्र के तुल्य होकर ( ईम् अह पृष्ठा इव ) उसके ही पीठों पर (आ रुरुहुः) चढ़ जाते, उसका ही आश्रय लेते हैं, वह अग्रणी नायक 'अग्नि' है। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

यं मर्त्यः॑ पुरु॒स्पृहं॑ वि॒दद्विश्व॑स्य॒ धाय॑से ।
प्र स्वाद॑नं पितू॒नामस्त॑ताति॑ चिदा॒यवे॑ ॥ ६ ॥

भा०—( चित् ) जिस प्रकार मनुष्य ( पितूनां स्वादनं अस्ततातिं ) अन्नों को स्वादु बना देने वाले और गृह के कल्याणकारी अग्नि को सबके

पोषणार्थ प्राप्त करता है उसी प्रकार ( पुरु-स्पृहम् ) सब मनुष्यों को प्रेम करने वाले, ( पितूनां ) उत्तम अन्नों के ( स्वादनं ) खिलाने वाले, ( आयवे चित् अस्ततातिं ) प्रत्येक शरणागत पुरुष की रक्षा के लिये गृह के तुल्य कल्याणकारी ( यं ) जिस पुरुष को ( मर्त्यः ) जन साधारण ( प्र विदत् ) अच्छी प्रकार प्राप्त करता और उच्चकोटि का जानता है वही प्रमुख नायक होने योग्य है ।

स हि ष्मा धन्वाक्षितं दाता न दात्या पशुः ।
हिरिश्मश्रुः शुचिदन्नृभुरनिभृष्टतविषिः ॥ ७ ॥

भा०—( न ) जिस प्रकार ( हिरि श्मश्रुः ) पीली किरण रूप मूंछ दाढ़ी वाला सूर्य, ( ऋभुः ) अति तेजस्वी होकर ( आ-क्षितं धन्व ) सर्वत्र फैले जल वा अन्तरिक्ष को ( आ दाति ) सब प्रकार वाष्प करके खण्डित करता वा व्याप लेता है, ( पशुः ) प्रकाश द्वारा दर्शाता है । उसी प्रकार ( सः ) वह राजा वा नायक ( दाता ) शत्रु बल का खण्डन और अपने ऐश्वर्य का दान करने वाला पुरुष ( पशुः न ) उत्तम द्रष्टा, विवेकी पुरुष के समान ( हि ) ही ( आ-क्षितं धन्व ) चारों ओर बसे भूमि प्रदेश को ( आ दाति ) सर्वत्र ग्रामों, क्षेत्रों में विभक्त करे, और प्रदान करे, बांट दे । और वह ( हिरि-श्मश्रुः ) तेजस्वी, चमकीले केश मूंछ दाढ़ी वाला ( शुचि-दन् ) शुद्ध स्वच्छ दांतों से सुशोभित ( ऋभुः ) सत्य ज्ञान से चमकने वाला, ( अनिभृष्ट-तविषिः ) शत्रु द्वारा अपीड़ित बलवान् सैन्य का स्वामी हो ।

शुचिः ष्म यस्मा अत्रिवत्प्र स्वधितीव रीयते ।
सुषूरसूत माता क्राणा यदानशे भगम् ॥ ८ ॥

भा०—( शुचिः स्वधितिः अत्रिवत् रीयते ) जिस प्रकार काष्ठों को खा जाने वाले अग्नि के लिये शुद्ध चमकती धार वाली कुल्हाड़ी चलती है, उसी प्रकार ( यस्मै ) जिसको ( अत्रिवत् ) भोक्ता के तुल्य स्वामी

वा त्रिविध एषणाओं से रहित त्यागी के समान निःस्वार्थ जान कर उसके लिये ( शुचिः ) शुद्ध चित्त वाली ( स्वधितिः ) स्वयं अपने को वा 'स्व' अर्थात् धन समृद्धि धारण करने वाली प्रजा शुद्ध पवित्र, सती साध्वी पत्नी के समान अनन्यभाव से ( प्र रीयते ) भली प्रकार से प्राप्त होती है और (यत्) जिसकी (माता) सबकी उत्पादक माता पृथिवी (सु-सूषीः) उत्तम जननी, माता के तुल्य उत्तम रीति से ऐश्वर्य देने और अभिषेक करने वाली होकर ( भगं क्राणा ) सब प्रकार के ऐश्वर्य उत्पन्न करती हुई ( आनशे ) जिसे प्राप्त होती है वही उत्तम नायक है।

आ यस्ते सर्पिरासुतेऽग्ने शमस्ति धायसे ।
ऐषु द्युम्नमुत श्रव आ चित्तं मर्त्येषु धाः ॥ ९ ॥

भा०—( सर्पिरासुते ) जिस प्रकार स्तुतिशील घी को अन्नवत् खाने वाला अग्नि है उसी प्रकार राजा वा नायक भी सर्पणशील अग्रयायी, अनुयायी जनों द्वारा 'आसुति' अर्थात् सब ओर से ऐश्वर्य और अभिषेक प्राप्त करने वाला वा घृतादि युक्त पदार्थों को भोजन करने वाला है। वैसे हे ( सर्पिः-आसुते) जनों से अभिषिक्त ! श्रेष्ठ अन्न के भोक्तः ! हे (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! नायक ! ( यः ) जो ( ते ) तेरे ( धायसे ) सब राष्ट्र को पोषण करने के लिये ( शम् अस्ति ) शान्तिदायक है तू उसको पालन कर। ( एषु द्युम्नम् आ धाः ) इन राष्ट्र के वासी जनों में धनैश्वर्य प्रदान कर। ( उत एषु मर्त्येषु ) इन मनुष्यों में ( श्रवः आ धाः ) अन्न, श्रवण योग्य ज्ञान धारण करा और (चित्तं आ धाः) ज्ञानयुक्त सहृदय चित्त धारण करा।

इति चिन्मन्युमध्रिजस्त्वादातमा पशुं ददे ।
आदग्ने अपृणतोऽत्रिः सासह्याद्दस्यूनिषः सासह्यान्नॄन् १०।२५

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! जो पुरुष ( अध्रिजः ) अधृष्य, असह्य होकर वा इन्द्रियों और राष्ट्र के उत्तम धारकों में प्रसिद्ध

होकर प्रदान किये ( मन्युम् ) ज्ञान और उग्र वल को ( पशुम् ) दर्शक प्रकाश वा दम्य पशु के तुल्य धारण करता है वह ( अत्रिः ) तीनों ऐषणा और तीनों दुःखों से रहित होकर ( अपृणतः ) पालन वा प्रसन्न न करने वाले, अपालक ( दस्यून् ) विनाशकारी वाह्य और भीतरी शत्रुओं को भी ( सासह्यात् ) वश कर लेता है और वही ( इषः ) अपनी इच्छाओं और कामनावान् प्रजाओं को भी (नृन्) नायक मनुष्यों के तुल्य ही (सासह्यात्) वश करता है, उनपर विजय पा लेता है। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

## [ ८ ]

इष आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ५ स्वराट् त्रिष्टुप् । २ भुरिक् त्रिष्टुप् । ३, ४, ७ निचृज्जगती । ६ विराड्जगती ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

**त्वाम॑ग्न ऋता॒यवः॒ समी॑धिरे प्र॒त्नं प्र॒त्नास॑ ऊ॒तये॑ सहस्कृत ।**
**पु॒रु॒श्च॒न्द्रं य॑ज॒तं वि॒श्वधा॑यसं॒ दमू॑नसं गृ॒हप॑तिं॒ वरे॑ण्यम् ॥ १ ॥**

भा०—जिस प्रकार ( ऋतायवः अग्निं समिन्धते ) तेज के वा अन्न और ऐश्वर्य के इच्छुक यज्ञाग्नि वा विद्युत्-अग्नि को प्रदीप्त करते हैं। हे ( अग्ने ) अग्नि के समान तेजस्विन् ! हे (सहस्कृत) बाधाओं को पराजित करने वाले, वल का सम्पादन करने हारे विद्वन् ! ( प्रत्नासः ) अति पुराने, सनातन से प्राप्त ( ऋतायवः ) सत्य ज्ञान से युक्त वेद, वेदज्ञ विद्वान् जन ( ऊतये ) ज्ञान और रक्षा के लिये ( पुरु-चन्द्रं ) वहुतों को चन्द्रवत् आह्लादक, वहुत सुवर्ण आदि के स्वामी, ( यजतं ) पूज्य, दानी ( विश्व-धायसं ) समस्त विश्व के पालक, सबके पोषक, ( दमूनसम् ) जितेन्द्रिय, मन को वश करने वाले, (गृहपतिम्) गृह के पालक, (वरेण्यम्) सबसे वरण करने योग्य, वा उत्तम मार्ग में ले जाने वाले ( त्वाम् ) तुझ को ( सम् ईधिरे ) अच्छी प्रकार प्रकाशित करें।

त्वाम॑ग्ने॒ अति॑थिं पू॒र्व्यं विशः॑ शो॒चिष्के॑शं गृ॒हप॑तिं॒ नि षे॑दिरे ।
बृ॒हत्के॑तुं पुरु॒रूपं॑ धन॒स्पृतं॑ सु॒शर्मा॑णं॒ स्वव॑सं जर॒द्विष॑म् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि तेजोमय होने से वा गीला न होने से अग्नि है, व्यापक होने से 'अतिथि' है। किरणों वा ज्वालाओं को केशों के समान धारण करने से 'शोचिष्केश' है, दीप वा चूल्हे की आग के रूप में गृह का पालक होने से 'गृहपति' है। बहुत प्रकाश होने वा बड़ी धूम-ध्वजा होने से 'बृहत्केतु' है, नाना रुचिकर रूप होने से 'पुरुरूप', ऐश्वर्य धन देने से 'धनस्पृत्', अच्छी प्रकार रोग जन्तुओं का नाशक होने से 'सुशर्मा' और देहों और जन्तुओं की आग्नेयास्त्रादि से रक्षा करने से 'सु-अवस्', सर्पादि के विष का नाशक होने से 'जरद्-विष' है और लोग उसी को स्थापित करते और आश्रय लेते हैं उसी प्रकार हे ( अग्ने ) विद्वन्! तेजस्विन्! ( विशः ) लोग जो तेरे अधीन तेरे आश्रय में प्रवेश करते हैं वे ( अतिथिम् ) अतिथि के तुल्य सर्वार्पण से सत्कार योग्य, ( पूर्व्यम् ) पूर्वाचार्यों से उपदिष्ट वा सबसे प्रथम अग्रसर, सबसे पूर्व भोजनादि सत्कार पाने योग्य, (शोचिः-केशं) तेजों किरणों को केशवत् धारण करने वाले वा गुह्यांगों में केश-लोमों को वीर्यस्खलनादि द्वारा अपवित्र न करने वाले, निष्ठ ब्रह्मचारी, (गृह-पतिम्) गृह के स्वामी, (बृहत्-केतुम्) बड़े ज्ञान वा ध्वजा वाले ( पुरु-रूपं ) जयों के बीच उत्तम रूपवान् (धन-स्पृहं) ऐश्वर्य की कामना करने वाले, (सु-शर्माणं) उत्तम सुख, गृह से युक्त (सु-अवसं) उत्तम रक्षक वा ज्ञानी ( जरद्विषं ) शत्रु रूप विष को शमन करने वाले, वा व्यापक विस्तृत ज्ञान में उपदेश करने वाले ( त्वाम् ) तुझको प्राप्त करके ( नि षेदिरे ) उत्तम आसन पर स्थापित करें और स्वयं भी नियम से व्यवस्थित हों। (२) सूर्य, विद्युत् मेघ द्वारा जल गिराने से 'जरद्विष' है वा वह भी विषापहारी हैं।

त्वाम॑ग्ने॒ मानु॑षीरीळते॒ विशो॑ होत्रा॒विदं॒ विवि॑चिं रत्न॒धात॑मम् ।
गुहा॒ सन्तं॑ सुभग वि॒श्वद॑र्शतं तुवि॒ष्व॒णसं॑ सु॒यजं॑ घृत॒श्रिय॑म् ॥३॥

भा०—यह अग्नि, आहुति लेने से होत्रावित्! पदार्थों को पृथक् २ विश्लिष्ट करने से 'विविचि' है, रत्नों का धारक, रम्य प्रकाश का पोषक होने से 'रत्नधा', घृत का पाक या सेवन करने से 'घृतश्री' है। उसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञानवन्! प्रतापवन्! विद्वन्! राजन्! (मानुषीः विशः) मनुष्य प्रजाएं (होत्रा विदं) उत्तम वेद वाणी जो गुरु द्वारा शिष्य के प्रति देने और शिष्य द्वारा गुरु से लेने योग्य होने से 'होत्रा' है उसको जानने वाले (विविचिम्) सत्-असत्, अर्थ-अनर्थ, धर्माधर्म का विवेक करने वाले, (रत्न-धातमम्) रमणीय गुणों और उत्तम रत्नों और राष्ट्र में, गृह में, नररत्न, पुत्ररत्न, स्त्री-रत्न आदि को उत्तम रीति से धारण वा पोषण करने हारे, (गुहा सन्तं) बुद्धि, वाणी में सुरक्षित, गृह में विद्यमान, (विश्व-दर्शतं) सबको देखनेवाले वा सब में दर्शनीय (तुवि-स्वनसं) बहुत अधिक उपदेशमय शब्दों को जानने वाले, (सु-यजं) उत्तम दानशील, सत्संगयोग्य, (घृत-श्रियम्) दीप्तिमय कान्ति शोभा से युक्त (त्वाम्) तुझ को ही हे (सुभग) ऐश्वर्य वाले! (ईडते) चाहते हैं।

त्वाम॑ग्ने ध॒र्णसिं॑ वि॒श्वधा॑ व॒यं गी॒र्भिर्गृ॒णन्तो॒ नम॒सोप॑ सेदिम।
स नो॑ जुषस्व समिधा॒नो अ॑ङ्गिरो दे॒वो मर्त॑स्य य॒शसा॑ सु॒दीति॑भिः॥४॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! तेजस्विन्! विद्वन्! राजन्! (वयं) हम लोग (धर्णसिं) अन्य सबको धारण करने वाले, (त्वाम्) तुझ को (गीर्भिः) वाणियों से (गृणन्तः) स्तुति करते हुए (नमसा) नमस्कार आदर वचन से (विश्व-धा) सब प्रकार से (उप सेदिम) प्राप्त हों। हे (अंगिरः) अंगों में रस वा बलवत् रोगों के समान पापों और दुष्टों को भस्म करनेहारे (सः) वह तू (देवः) प्रकाशमान, तेजस्वी, (मर्तस्य यशसा) मनुष्यों के उचित यश, अन्न और (सुदीतिभिः) उत्तम कान्तियों से (सम्-इधानः) खूब प्रदीप्त होकर अग्नि के समान (नः जुषस्व) हमें प्रेम कर।

त्वम॑ग्ने पुरु॒रूपो॑ वि॒शेवि॑शे॒ वयो॑ दधासि प्र॒त्नथा॑ पुरुष्टुत ।
पु॒रूण्यन्ना॒ सह॑सा॒ वि रा॑जसि॒ त्विषिः॒ सा ते॑ तित्विषा॒णस्य॒ नाधृषे॑ ॥५॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! हे तेजस्वी विद्वन् ! राजन् ! हे (पुरु-स्तुत ) बहुतों में प्रशंसित ! ( त्वम् ) तू ( पुरु-रूपः ) बहुतों के बीच रुचि-कर एवं रूपवान् दर्शनीय होकर ( विशे-विशे ) प्रत्येक प्रजा के हितार्थ उनको ( वयः ) दीर्घ जीवन और अन्न, बल आदि ( दधासि ) धारण कराता है । उनको ( पुरूणि अन्ना ) बहुत अन्न, खाद्य पदार्थ भी प्रदान करता है और जिस ( सहसा ) बल से तू ( वि राजसि ) सूर्यवत् प्रकाशित होता है, सो वह ( तित्विषाणस्य ) निरन्तर चमकने वाले ( ते ) तेरी ( त्विषिः ) तीक्ष्ण कान्ति ( न अधृषे ) कभी पराजित होने के लिये नहीं है ।

त्वाम॑ग्ने समिधा॒नं य॑विष्ठ्य दे॒वा दू॒तं च॑क्रिरे हव्य॒वाह॑नम् ।
उ॒रु॒ज्रय॑सं घृ॒तयो॑निमाहु॑तं त्वे॒षं चक्षु॑र्दधिरे चोद॒यन्म॑ति ॥ ६ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! तेजस्विन् ! विद्वन् ! राजन् ! हे ( यविष्ठय ) अति बलवन् ! (देवाः) विद्वान् लोग ( सम्-इधानं ) अच्छी प्रकार प्रदीप्त होने वाले, ( हव्य-वाहनं ) ग्राह्य गुणों के धारण करने वाले ( त्वां ) तुझ को ( दूतं ) दूत के समान अपना प्रमुख ( चक्रिरे ) बनाते हैं । और (उरुज्रयसं) अति वेगवान्, बलवान् (घृतयोनिम्) तेजस्वी पदपर स्थित, ( त्वेषं ) कान्तिमान्, ( आहुतं ) आदर पूर्वक स्वीकृत, ( त्वाम् ) तुझ को ही ( चोदयन्-मति ) बुद्धि और ज्ञान का प्रेरक (चक्षुः) आंख के समान यथार्थ ज्ञान का देने वाला, जान ( दधिरे ) धारण करते हैं, तुझे स्थापित करते हैं । ( २ ) अग्नि घृत से प्रज्वलित होने से 'घृतयोनि' है और विद्युत् जलाश्रित वा जलों को मिश्रण करने से घृतयोनि है ।

त्वामग्ने प्रदिव आहुतं घृतैः सुम्नायवः सुषमिधा समीधिरे। स वावृधान ओषधीभिरुक्षितोऽभि ज्रयांसि पार्थिवा वि तिष्ठसे ॥ ७ ॥ २६ ॥ ८ ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार ( घृतैः आहुतं सु-समिधा ) घृतों से आहुति प्राप्त अग्नि को उत्तम समिधा से प्रदीप्त करते हैं उसी प्रकार हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! तेजस्विन्! विद्वन्! राजन्! (प्र-दिवः) उत्तम ज्ञान प्रकाश, और व्यवहार के लिये ( घृतैः आ-हुतम् ) स्नेहों से सिक्त, ( त्वाम् ) तुझ को (सुम्नायवः) सुख चाहने वाले लोग (सु-समिधा) उत्तम दीप्ति से ( समीधिवरे ) खूब प्रकाशित करें। ( सः ) वह तू ( ओषधीभिः ) उत्तम यव, अन्न, सोम, सुगन्धयुक्त रोगनाशक ओषधियों से (उक्षितः) पालित पोषित होकर काष्ठों, चरुओं से बढ़े अग्नि के तुल्य ( वावृधानः ) बराबर बढ़ता हुआ, ( पार्थिवा ) पृथिवी के स्वामियों के योग्य ( ज्रयांसि ) वेग युक्त, बलशाली कर्मों को ( वि तिष्ठसे ) विविध प्रकार से कर। इति षड्विंशो वर्गः ॥ इत्यष्टमोऽध्यायः ॥

* इति तृतीयोऽष्टकः समाप्तः *

इति श्रीप्रतिष्ठितविद्यालंकार-मीमांसातीर्थ-श्री पं० जयदेवशर्मणा कृते ऋग्वेदालोकभाष्ये तृतीयोऽष्टकः समाप्तः ॥

——→ o ←——

## अथ चतुर्थोऽष्टकः ।

### अथ प्रथमोऽध्यायः

ओ३म् । त्वामग्ने हविष्मन्तो देवं मर्त्तास ईळते ।
मन्ये त्वा जातवेदसं स हव्या वक्ष्यानुषक् ॥ १ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् ! सर्वप्रकाशक विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! ( हविष्मन्तः ) उत्तम, अन्न धन, ज्ञान आदि दान देने योग्य पदार्थों के स्वामी (मर्त्तासः) लोग भी (त्वां देवं) तुझ सर्वप्रकाशक, सर्वदाता की ( ईडते ) स्तुति करते और तुझे चाहते हैं । ( जातवेदसं ) उत्तम ज्ञान, धन के स्वामी, और उत्पन्न चराचर के ज्ञाता, वा सब से विदित ( त्वा ) तुझ को ( मन्ये ) मैं भी जानूं और आदरपूर्वक मान करूं । ( सः ) वह तू ( हव्या ) लेने और देने योग्य अन्नों, धनों को ( आनुषक् वक्षि ) अपने अनुकूल करके, निरन्तर धारण कर और हमें वे पदार्थ निरन्तर (वक्षि) प्राप्त करा और ज्ञानमय ग्राह्य वचनों का उपदेश कर ।

अग्निर्होता दास्वतः क्षयस्य वृक्तबर्हिषः ।
सं यज्ञासश्चरन्ति यं सं वाजासः श्रवस्यवः ॥ २ ॥

भा०—( यं ) जिसको ( यज्ञासः ) समस्त उपासक और सत्संगी पुरुष (सं चरन्ति ) प्राप्त होते हैं और ( यं ) जिसको ( श्रवस्यवः ) अन्न, ज्ञान और यश की कामना करने वाले ( वाजासः ) बलवान्, ऐश्वर्यवान् और युद्धकुशल, वेगवान् अश्व सैन्यादि ( सं चरन्ति ) अच्छी प्रकार प्राप्त होकर उसके साथ विचरते हैं वह ( अग्निः ) अग्रणी नायक पुरुष ( वृक्त-बर्हिषः ) वृद्धिशील राष्ट्र प्रजाजन को नाना प्रकार से विभक्त करने वाले

( दास्वतः ) नाना ऐश्वर्यों के देने वाले वा नाना दासादि भृत्यों से सम्पन्न ( क्षयस्य ) निवास करने योग्य, सर्वाश्रय, शरण, गृह, वैभव आदि का ( होता ) देने वाला हो।

उत स्म यं शिशुं यथा नवं जनिष्टारणी।
धर्त्तारं मानुषीणां विशामग्निं स्वध्वरम् ॥ ३ ॥

भा०—( यथा ) जिस प्रकार ( अरणी ) दो अरणी नाम की लकड़ियां ( सु-अध्वरं नवं अग्निं जनिष्ट ) उत्तम यज्ञयोग्य स्तुत्य अग्नि को उत्पन्न करती हैं ( उत ) और जिस प्रकार (अरणी) परस्पर सुसंगत माता पिता ( नवं शिशुं जनिष्ट ) नये बालक को उत्पन्न करती हैं उसी प्रकार ( मानुषीणां ) मननशील मनुष्य ( विशां ) प्रजाओं के ( धर्त्तारं ) धारण करने वाले, ( नवं ) स्तुत्य ( यं ) जिस ( अग्निं ) अग्रणी ( सु-अध्वरम् ) उत्तम रीति से प्रजा को नाश न होने देने वाले, अहिंसक पालक राजा को भी (अरणी) परस्पर संगत राज-परिषद् और प्रजा-परिषद् मिलकर (जनिष्ट स्म ) उत्पन्न करे, प्रकट करे।

उत स्म दुर्गृभीयसे पुत्रो न ह्वार्याणाम्।
पुरू यो दग्धासि वनाग्ने पशुर्न यवसे ॥ ४ ॥

भा०—(ह्वार्याणाम् पुत्रः न) कुटिलगामी सर्पों का बच्चा जिस प्रकार ( दुर्गृभीयते ) बड़ी कठिनता से पकड़ में आता है, और जिस प्रकार अग्नि अति दाहक स्वभाव होने से कठिनता से पकड़ा जाता है और जिस प्रकार अग्नि ( वना दग्धा ) वनों को भस्म करता है, और जिस प्रकार ( यवसे पशुः न ) घास चारा खाने के लिये पशु उत्सुक होता है उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्रणी, अग्नि तुल्य तेजस्विन्! नायक! तू भी (ह्वार्याणाम्) कुटिल, वक्र गति से जाने वाले सैन्यों का (पुत्रः) बहुत बड़ा पालक होकर (दुर्-गृभीयसे ) शत्रुओं के हाथ बड़ी कठिनाई से आ। वे तुझे सहज ही वश नहीं कर सकें, ( यः ) जो तू ( वना इव ) जंगलों को अग्नि के तुल्य ही

( पुरु ) बहुत से शत्रुओं को ( दग्धा ) भस्मसात् करने वाला हो, और ( यवसे ) शत्रुओं को नाश करने के निमित्त तू ( पशुः ) उत्तम द्रष्टा, विवेकी होकर रह वा शत्रुओं को भी तृणों को पशु के तुल्य विवेकी होकर उपभोग कर ।

अध॑ स्म॒ यस्या॒र्चय॑ः स॒म्यक् सं॒ यन्ति॑ धू॒मिन॑ः ॥
यदी॒मह॑ त्रि॒तो दि॒व्युप॒ ध्माते॑व॒ धम॑ति॒ शिशी॑ते ध्मा॒तरी॑ यथा ॥५॥

भा०—जिस प्रकार ( धूमिनः अर्चयः सम्यक् सं यन्ति ) धूम वाले अग्नि की ज्वालाएं अच्छी प्रकार एक साथ ही उठती हैं उसी प्रकार ( यस्य ) जिस ( धूमिनः ) शत्रु को कंपा देने वाले सैन्य बल के स्वामी के ( अर्चयः ) ज्वालावत् तीक्ष्ण एवं आदर योग्य सैन्य जन ( सम्यक् ) अच्छी प्रकार व्यवस्थित होकर ( सं यन्ति ) एक साथ गति करते हैं ( यत् ) और ( यथा ) जिस प्रकार ( ध्मातरि सति ) धौंकने वाले के रहते हुए स्वयं अग्नि ( शिशीते ) तीक्ष्ण होता है और स्वयं ( ध्माता इव ) धौंकने वाला या उत्तेजक होकर ( धमति ) और अधिक भड़कता है उसी प्रकार ( यत् ) जो पुरुष ( ईम् ) सब प्रकार से ( त्रितः ) सब दुःखों से और सब विद्याओं के पार पहुंचा हुआ, सर्वोपरि विराजमान होकर (दिवि) आकाश में सूर्यवत् विद्या और विजयादि के कामना के निमित्त (ध्माता इव) शब्दसंयोगकारी गुरुवत् अर्थात् आज्ञापक वा उत्तेजक वा प्रेरक होकर ( धमति ) सबको उत्तेजित करे, जो ( ध्मातरि ) अन्य के उत्तेजक होने पर स्वयं भी ( शिशीते ) तीक्ष्ण, असह्य होता है वही उत्तम 'अग्नि' अर्थात् नायक होने योग्य है ।

तवा॒हम॑ग्न ऊ॒तिभि॑र्मि॒त्रस्य॑ च॒ प्रश॑स्तिभिः ।
द्वे॒षो॒युतो॒ न दु॑रि॒ता तु॒र्याम॒ मर्त्या॑नाम् ॥ ६ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक ! विद्वन् ! राजन् ! ( अहम् ) मैं ( तव ) तेरे ( ऊतिभिः ) रक्षा और ज्ञानयुक्त उपायों और ( मित्र-

स्व ) स्नेहवान् और मृत्यु से बचाने वाले तेरे ( प्र-शस्तिभिः ) उत्तम शासनों से युक्त होऊं। और हम सब ( मर्त्यानाम् ) मनुष्यों के ( द्वेषः-युतः ) द्वेषयुक्त शत्रुओं के समान ( दुरिता ) दुर्गम मार्गों और दुष्टाचरणों, पापादि कर्मों को तेरे (ऊतिभिः) रक्षा साधनों और उत्तम शासनों से ही ( तुर्याम ) पार करें।

तं नो॑ अग्ने अ॒भी नरो॑ र॒यिं स॑हस्व॒ आ भ॑र।
स क्षे॑पय॒त्स पो॑षय॒द्भुव॒द्वाज॑स्य सा॒तय॑ उ॒तैधि॑ पृ॒त्सु नो॑ वृ॒धे ७।१

भा०—हे ( सहस्वः ) बलशालिन् ( अग्ने ) अग्रणी! नायक! ( सः ) वह तू ( नः नरः ) हमारा नायक होकर ( नः ) हमें ( तम् रयिम् ) वह ऐश्वर्य (अभि आ भर) प्राप्त करा ( सः ) वह तू ( क्षेपयत् ) हमें सन्मार्ग से चला और शत्रुओं को उखाड़। ( सः पोषयत् ) हमें परिपुष्ट कर ( पृत्सु ) संग्रामों में ( नः ) हमारे ( वाजस्य सातये ) अन्नादि ऐश्वर्यादि, बल की प्राप्ति और ( नः वृधे ) हमारी वृद्धि के लिये ( एधि ) हो। इति प्रथमो वर्गः॥

## [ १० ]

गय आत्रेय ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ६ निचृदनुष्टुप्। ५ अनुष्टुप्। २, ३ भुरिगुष्णिक्। ४ स्वराड्बृहती। ७ निचृत् पंक्तिः॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

अग्न॒ ओजि॑ष्ठ॒मा भ॑र द्यु॒म्नम॒स्मभ्य॑मध्रिगो।
प्र नो॑ रा॒या परी॑णसा॒ रत्सि॒ वाजा॑य॒ पन्था॑म्॥ १॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्ने, अग्नि के तुल्य ज्ञानमार्ग के दिखाने वाले विद्वन्! हे ( अध्रिगो ) न धारण करने योग्य, असह्य बल पराक्रम वाले! तू ( अस्मभ्यम् ) हमारे लिये ( ओजिष्ठम् ) उत्तम बल पराक्रम युक्त ( द्युम्नम् ) ऐश्वर्य ( आ भर ) प्राप्त करा। और ( परीणसा ) बहुत अधिक ( राया ) ऐश्वर्य के साथ २ ( ( नः ) हमारे ( वाजाय ) बल

और ज्ञान की वृद्धि के उचित (पन्थाम्) मार्ग को भी (प्र रत्सि) अच्छी प्रकार बना।

त्वं नो अग्ने अद्भुत क्रत्वा दक्षस्य मंहना।
त्वे असुर्य॑मारुहत्क्राणा मित्रो न यज्ञियः॥ २॥

भा०—हे (अद्भुत) अभूत पूर्व, अपूर्व बलशालिन्! हे (अग्ने) नायक! विद्वन्! तू (क्रत्वा) ज्ञान और कर्म से और (दक्षस्य) चतुर पुरुष के (मंहना) दान और महान् सामर्थ्य से बड़ा हो। तू (यज्ञियः) आदर सत्कार के योग्य (मित्रः नः) सर्वस्नेही सखा के समान (असुर्यं) असुरों के नाशक बल का (क्राणा) सम्पादन करता हुआ पुरुष (त्वे) तेरे आश्रय पर (आ अरुहत्) आगे बढ़े।

त्वं नो अग्न एषां गयं पुष्टिं च वर्धय।
ये स्तोमेभिः प्र सूरयो नरो मघान्यानशुः॥ ३॥

भा०—हे (अग्ने) नायक! हे विद्वन्! हे प्रभो! (ये) जो (सूरयः) विद्वान् (नरः) नेता लोग (स्तोमेभिः) उत्तम स्तुति-वचनों और ज्ञानों से अपने (मघानि) उत्तम धनों को (प्र आनशुः) प्राप्त करते हैं उन (नः) हमारे (एषां) उन लोगों के (गयं पुष्टिं च) प्राण और पोषक और पुत्र, गृह आदि और पोषक, पशु आदि समृद्धि को (वर्धय) बढ़ा।

ये अग्ने चन्द्र ते गिरः शुम्भन्त्यश्वराधसः।
शुष्मेभिः शुष्मिणो नरो दिवश्चिद्येषां बृहत्सुकीर्तिर्बोधति त्मना ४

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे नायक! (चन्द्र) आह्लादक (ते) तुझे (अश्वराधसः) अश्वों को साधने वाले, उत्तम वीर पुरुष और (गिरः) उत्तम स्तुतियां और उत्तम स्तुतिकर्त्ता जन भी (शुम्भन्ति) सुशोभित करें और (शुष्मिणः नरः) वे बलवान् नायक लोग (शुष्मेभिः) अपने बलों से युक्त होकर (दिवः चित् ते) सूर्य के समान तेजस्वी तुझ

को सुशोभित करें ( येषां ) जिनकी ( बृहत् सुकीर्तिः ) बड़ी उत्तम कीर्त्ति ( त्मना बोधति ) आप से आप अपना बोध कराती है।

तव॒ त्ये अ॑ग्ने अ॒र्चयो॒ भ्राज॑न्तो यन्ति धृष्णु॒या।
परि॑ज्मानो॒ न वि॒द्युतः॑ स्वा॒नो रथो॒ न वा॑ज॒युः॥ ५॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्रणी पुरुष! ( तव ) तेरे ( त्ये ) वे ( धृष्णुया ) शत्रुओं का पराजय करने वाले ( भ्राजन्तः ) सूर्य के समान चमकने वाले वीर पुरुष ( अर्चयः ) तेरी पूजा करने वाले या स्वयं आदर सत्कार योग्य होकर ( यन्ति ) आगे बढ़ें। वे ( परि-ज्मानः ) चारों ओर की भूमि के स्वामी होकर ( वि-द्युतः ) विद्युतों के समान तेजस्वी हों और ( रथः नः ) वेगवान् रथ के समान ( स्वानः ) शब्द करते हुए और ( वाजयुः ) संग्राम की कामना करने हारे हों।

नू नो॑ अग्न ऊ॒तये॑ स॒बाध॑सश्च रा॒तये॑।
अ॒स्माका॑सश्च सू॒रयो॒ विश्वा॒ आशा॑स्तरी॒षणि॑॥ ६॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक! ( सबाधसः ) शत्रुपीड़क उपायों में कुशल, ( अस्माकासः ) हमारे वीर लोग ( नः ऊतये ) हमारी रक्षा ( रातये च ) और ऐश्वर्य दान के लिये हों। और ( सूरयः ) विद्वान् लोग भी ( विश्वाः आशाः ) सब दिशाओं और सब कामनाओं को ( तरीषणि ) पार करने में समर्थ हों।

त्वं नो॑ अग्ने अङ्गिरः स्तु॒तः स्तवा॑न॒ आ भ॑र। होत॑र्विभ्वा॒सहं॑ र॒यिं स्तो॒तृभ्यः॒ स्तव॑से च न उ॒तैधि॑ पृ॒त्सु नो॑ वृ॒धे॥ ७॥ २॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक! विद्वन्! हे ( अङ्गिरः ) प्राणप्रिय! तेजस्विन्! ( त्वं ) तू ( स्तुतः ) प्रशंसित और शिक्षित होकर और ( स्तवानः ) अन्यों को विद्या आदि का उपदेश करता हुआ ( नः ) हमें ( विभ्व-सहं ) बड़ों २ को पराजित करने वाले ( रयिम् )

ऐश्वर्य (आ भर) प्राप्त करा। और ( नः स्तोतृभ्यः ) हमारे बीच में स्तुति-कर्त्ता विद्वान् उपदेष्टाओं को भी ( स्तवसे ) उत्तम ज्ञानोपदेश करने के निमित्त ( रयिम् आ भर ) धन प्रदान कर और ( पृत्सु ) संग्रामों वा प्रजाओं के बीच में ( च ) भी ( नः वृधे ) हमारी बढ़ती के लिये ( एधि ) हो। इति द्वितीयो वर्गः॥

[ ११ ]

सुतम्भर आत्रेय ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ३, ५ निचृज्जगती। ४, ६ विराड्जगती॥ षडृचं सूक्तम्॥

**जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे। घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः शुचिः॥१॥**

भा०—जिस प्रकार ( अग्निः सुदक्षः ) आग अच्छी जलाने में समर्थ, ( जनस्य गोपाः ) मनुष्य का रक्षक, ( सु-विताय ) सुख से मार्ग गमन में सहायक ( घृत-प्रतीकः ) घृत से उज्ज्वल या तेज से प्रतीत होने वाला, ( दिवि-स्पृशा बृहता द्युमत् शुचिः ) प्रकाशप्रद बड़े तेज से चमकने वाला, पवित्रकारक होकर ( वि भाति ) चमकता है उसी प्रकार ( सु-दक्षः ) उत्तम क्रियाकुशल ( अग्निः ) तेजस्वी, अग्रणी पुरुष भी ( जनस्य गोपाः ) सर्व साधारण प्रजा जन का पालक, रक्षक ( जागृविः ) जागरणशील, सावधान ( अजनिष्ट ) हो। वह ( नव्यसे ) स्तुत्य पद प्राप्त करने और ( सुविताय ) सुख से मार्ग पर गमन करने के लिये सहायक हो। वह ( घृत-प्रतीकः ) तेज से युक्त मुख वाला ( दिवि-स्पृशा ) ज्ञानप्रकाश के आश्रय पर सूक्ष्मतत्व तक पहुंचने वाले ( बृहता ) बड़े भारी सामर्थ्य से, गगनस्पर्शी तेज से सूर्य के समान ( शुचिः ) स्वयं शुद्ध पवित्र चित्त होकर ( भरतेभ्यः ) अपने पालक पोषक मनुष्यों के हित के लिये ( वि भाति ) विविध प्रकार से विराजे।

यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समीधिरे ।
इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः ॥२॥

भा०—(नरः) विद्वान् लोग (त्रि-सधस्थे) एक साथ बैठने के तीनों स्थानों, सभा भवनों में (यज्ञस्य केतुम्) परस्पर के मिलने, सत्संग करने, सम्मति देने आदि व्यवस्था के (केतुम्) जानने और जनाने वाले (पुरः-हितम्) सब से आगे प्रधान पद पर स्थित (अग्निम्) अग्रणी, ज्ञानयुक्त, (प्रथमं) सर्वश्रेष्ठ और (इन्द्रेण) सूर्य, विद्युत् के तुल्य तेजस्वी, ऐश्वर्यवान् राजा और (देवैः) अन्य विद्वान् पुरुषों के साथ (स-रथम्) समान रथ में जाने वाले सर्वमान्य पुरुष को (सम्-ईधिरे) एक साथ मिलकर या अग्नि के तुल्य प्रदीप्त करें उसको उचित साधनों और (स्तुतियों द्वारा उत्साहित करें। (सः) वह (सु-क्रतुः) उत्तम कर्म कुशल, प्रज्ञावान् पुरुष (होता) अन्यों को वेतनादि देने और स्वयं पदादि के स्वीकार करने वाला होकर (बर्हिषि) वृद्धियुक्त प्रधान आसन या प्रजा जन के ऊपर (यजथाय) राष्ट्र में संगति या व्यवस्था करने के लिये (नि सीदत्) अध्यक्ष रूप से विराजे ।

असंमृष्टो जायसे मात्रोः शुचिर्मन्द्रः कविरुदतिष्ठो विवस्वतः।
घृतेन त्वावर्धयन्नग्न आहुत धूमस्ते केतुरभवद्दिवि श्रितः ॥३॥

भा०—(मात्रोः असं-मृष्टः) जिस प्रकार अग्नि अपने उत्पादक काष्ठों से विना स्पर्श किये ही उत्पन्न होता है वा बालक जिस प्रकार अपने माता पिता से प्रथम (असं-मृष्टः) अशुद्ध अर्थात् क्रान्तिरहित, वा असंस्कृत, संस्कार-रहित ही उत्पन्न होता है और बाद में मन्त्र, यज्ञादि द्वारा संस्कार किया जाता है उसी प्रकार हे (अग्नेः) अग्रणी, विद्वान् पुरुष आप भी (असं-मृष्टः) अशुद्ध, उपनयन आदि ब्राह्म संस्कारों से रहित ही (जायसे) उत्पन्न होते हैं और फिर (विवस्वतः) सूर्यवत् प्रकाशक, विविध वसु, ब्रह्मचारियों के स्वामी आचार्य से आप विद्या पढ़ कर (शुचिः) पवित्र,

आचारवान् ( मन्द्रः ) प्रशंसित एवं सुशिक्षित, (जायसे) उत्पन्न होते हो और ( उत् अति-ष्ठाः ) उत्तम पद पर स्थित होते हो। हे ( आहुत ) आदर पूर्वक सब ओर से आचार्य द्वारा गृहीत एवं आदृत ! जिस प्रकार यज्ञकर्त्ता लोग अग्नि को घी से बढ़ाते हैं उसी प्रकार विद्वान् लोग (त्वा) तुझ को ( घृतेन ) आसेचन वा प्रदान योग्य ज्ञानैश्वर्य से ( अवर्धयन् ) बढ़ावें और ( धूमः केतुः दिवि श्रितः ) जिस प्रकार अग्नि का धूम ध्वजा-वत् आकाश में रहता है उसी प्रकार ( ते ) तेरा ( धूमः ) पापाचारों और शत्रुओं को धुन देने, कंपा देने वाला ( केतुः ) ज्ञान ( दिवि श्रितः ) प्रकाश युक्त परमेश्वर या मन में स्थित होकर ( अभवत् ) रहे।

**अ॒ग्निर्नो॑ य॒ज्ञमुप॑ वेतु साधु॒याग्निं नरो॒ वि भ॑रन्ते गृ॒हेगृ॑हे ।**
**अ॒ग्निर्दू॒तो अ॑भवद्धव्य॒वाह॒नो॒३ग्निं वृ॑णा॒ना वृ॑णते क॒विक्र॑तुम् ॥४॥**

भा०—( साधुया ) सब कार्यों को साधने वाले, ( अग्निः ) ज्ञानी विद्वान् पुरुष ( नः यज्ञम् ) हमारे सुसंगत यज्ञ, राष्ट्र-व्यवस्था में, यज्ञ में अग्निवत् ही ( उप वेतु ) प्राप्त हो। ( नरः ) उत्तम नायक पुरुष ऐसे ( अग्निं ) अग्नि को यज्ञाग्निवत् ( गृहे गृहे वि भरन्ते ) प्रति गृह में रक्खें और उसका पालन पोषण किया करें। ( हव्य-वाहनः ) ग्राह्य खाद्य पदार्थों को प्राप्त करने वाला ( अग्निः ) ज्ञानी पुरुष अग्नि के तुल्य ही ( दूतः ) शत्रु-संतापक, लोकसेवक, उपदेशक और संदेशहारक ( अभवत् ) हो। ( वृणानाः ) वरण करने वाले जन भी ( कविक्रतुम् ) क्रान्तदर्शी दूरगामी बुद्धि वाले ( अग्निम् ) ज्ञानी, तेजस्वी नायक पुरुष को ही ( वृणते ) वरण करें, योग्य को ही नायक चुनें।

**तुभ्ये॒दम॑ग्ने॒ मधु॑मत्तमं॒ वच॒स्तुभ्यं॑ मनी॒षा इ॒यम॑स्तु॒ शं हृ॒दे ।**
**त्वां गिरः॒ सिन्धु॑मिवा॒वनी॑र्म॒हीरा पृ॑ण॒न्ति॒ शव॑सा व॒र्धय॑न्ति च ५**

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! हे विनीत स्वभाव ! हे अग्रणी नायक ! हे प्रभो ! ( इदम् ) यह ( मधुमत्-तमं वचः ) मधुरता से युक्त वचन

( तुभ्यम् इत् ) तेरे ही लिये है। ( इयम् मनीषा ) यह बुद्धि या ज्ञान वा मन की प्रेरणा भी ( तुभ्यं हृदे शम् अस्तु ) तेरे हृदय को शान्तिदायक हो। ( महीः अवनीः सिन्धुम् इव ) जिस प्रकार बड़ी भूमियां या नदियां अपने जलों से समुद्र को ही पूर्ण करती है। उसी प्रकार (गिरः) वाणियां भी ( त्वां आ पृणन्ति ) तुझ को पूर्ण बना रही हैं और ( शवसा ) ज्ञान और बल से ( त्वां वर्धयन्ति च ) तुझ को ही बढ़ा रही हैं। तेरे ज्ञान और महान् सामर्थ्य को बढ़ाती, प्रकट करती हैं।

**त्वाम॑ग्ने॒ अङ्गि॑रसो॒ गुहा॑ हि॒तमन्व॑विन्दञ्छिश्रिया॒णं वने॑वने।**
**स जा॑यसे म॒थ्यमा॑नः॒ सहो॑ म॒हत्त्वामा॑हुः॒ सह॑सस्पु॒त्रम॑ङ्गिरः॥६॥३**

भा०—( वने-वने शिश्रियाणं गुहा-हितम् अंगिरसः अनु अविन्दन् ) जिस प्रकार प्रत्येक काष्ठ में विद्यमान अग्नि को भी अग्नि जलाने में कुशल पुरुष अरणियों के बीच छिद्र रूप गुहा में ही उसको अनुकूल साधनों से प्राप्त करते हैं (सः मथ्यमानः जायते तं सहसः पुत्रम् आहुः) वह अग्नि मथा जाकर ही प्राप्त होता है, और उसको बल से उत्पन्न पुत्रवत् ही प्राप्त करते हैं उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! विद्वन्! आत्मन्! ( अंगि-रसः) ज्ञानी, तेजस्वी पुरुष वा प्राण विद्या के नेता लोग (वने-वने) प्रत्येक वन अर्थात् सेवने योग्य ऐश्वर्य धनादि वा उत्तम पद पर ( शिश्रियाणं ) आश्रय लेने वाले (गुहा हितम्) गुप्त, सुरक्षित स्थान में स्थित ( त्वाम् ) तुझ को ( अनु अविन्दन् ) तेरे अनुकूल होकर प्राप्त हों। ( सः ) वह तू ( मथ्यमानः ) अति स्पर्द्धा द्वारा मथित होकर खूब वाद-विवाद के अनन्तर ( जायसे ) प्रकट होता है। हे ( अङ्गिरः ) प्राणवत् प्रिय! हे अंगों में रस वा बलवत् राष्ट्र में प्रबल पुरुष! ( सहसः पुत्रम् ) बल, सैन्य को एक मात्र कष्टों से बचाने वाले ( त्वाम् ) तुझ को ही विद्वान् लोग ( महत्-सहः) बड़ा भारी बल ( आहुः ) बतलाया करते हैं। इति तृतीयो वर्गः॥

## [ १२ ]

सुतम्भर आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २ स्वराट् पंक्तिः । ३, ४, ५ त्रिष्टुप् । ६ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ षड्टचं सूक्तम् ॥

**प्राग्नये॑ बृह॒ते य॒ज्ञिया॑य ऋ॒तस्य॒ वृष्णे॒ असु॑राय॒ मन्म॑ ।**
**घृ॒तं न य॒ज्ञ आ॒स्ये॒३॒॑ सुपू॑तं॒ गिरं॑ भरे वृष॒भाय॑ प्रती॒चीम् ॥ १ ॥**

भा०—( ऋतस्य वृष्णे असुराय यज्ञे सुपूतं घृतं न ) जिस प्रकार जल वर्षाने वाले, सबको प्राणप्रद मेघ की वृद्धि के लिये उत्तम रीति से पवित्र घृत यज्ञ में प्रदान करूं उसी प्रकार मैं ( बृहते ) सबसे बड़े, ( यज्ञियाय ) यज्ञ, दान, सत्संग देववत् पूजा के योग्य ( ऋतस्य ) सत्य ज्ञान अन्न वा धन के ( वृष्णे ) वर्षण करने अर्थात् उदारता से निष्पक्षपात होकर प्रदान करने वाले, ( असुराय ) सबको जीवनवृत्ति देने वाले और प्राणों में या समीप बसने वाले अन्तेवासियों में विद्यादान करने वाले, ( वृषभाय ) सर्व-पुरुषोत्तम ( अग्नये ) ज्ञानवान् पुरुष राजा और आचार्य के (आस्ये ) मुख में विद्यमान ( प्रतीचीम् ) अपने सन्मुख स्थित अन्य पुरुष को प्राप्त होने वाली ( गिरं ) अपने वश वा आज्ञामय वाणी और ( मन्म ) मनन करने योग्य ज्ञान को ( भरे ) ग्रहण करूं और धारण करूं, विद्वानों से पवित्र ज्ञानोपदेश प्राप्त करूं ।

**ऋ॒तं चि॑कित्व ऋ॒तमिच्चि॑किद्धृ॒तस्य॒ धारा॒ अनु॑ तृन्धि पू॒र्वीः ।**
**नाहं या॒तुं सह॑सा॒ न द्व॒येन॑ ऋ॒तं स॑पाम्यरु॒षस्य॒ वृष्णः॑ ॥ २ ॥**

भा०—हे ( चिकित्वः ) ज्ञानवन् ! तू ( ऋतम्-ऋतम् इत् ) सत्य ही सत्य (चिकिद्धि) ज्ञान कर । और (पूर्वीः ऋतस्य धाराः) पूर्व एवं ज्ञान से पूर्ण और पूर्वाचार्यों की उपदिष्ट, सनातन से चली आई सत्य ज्ञान की वेद वाणियों को ( अनु तृन्धि ) प्रति दिन गुरु-उपदेश के अनुकूल रहकर

विच्छिन्न कर, उनको खोल २ कर उनका रहस्य प्राप्त कर (अहं) मैं (अरुपस्य) रोषरहित सौम्य (वृष्णः) बड़े मेघवत् ज्ञानवर्षक गुरु आचार्य के (ऋतम्) सत्योपदेश को (यातुं) प्राप्त करने को (सहसा) बलपूर्वक (न सपामि) नहीं समझ सकता। और (द्वयेन) दो प्रकार के झूठ सच मिले, दुरंगे, छलमय व्यवहार से ही (नपामि) ज्ञान को प्राप्त कर सकता हूं, प्रत्युत विनयपूर्वक गुरु का अनुवर्त्तन करके ही ज्ञान को प्राप्त करूं।

**कया॑ नो अग्न ऋ॒तय॑न्नृ॒तेन॒ भुवो॒ नवे॑दा उ॒चथ॑स्य॒ नव्यः॑।**
**वेदा॑ मे दे॒व ऋ॑तुपा ऋ॑तू॒नां नाहं पतिं॑ सनि॒तुर॒स्य रा॒यः॥ ३॥**

भा०—(भुवः नवेदाः ऋतेन कया ऋतयन्) भूमि को प्राप्त न करने वाला, भूमिरहित पुरुष केवल जल से भला किस प्रकार अन्न प्राप्त कर सकता है? इसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञानवन्! विद्वन्! आचार्य! आप (नव्यः) उत्तम २, नये २ ज्ञानों को प्राप्त करने वाले और नये २ शिष्यों के हितकारी होकर भी (भुवः न-वेदः) ज्ञान-बीजों को उत्पन्न करने योग्य शिष्य रूप भूमि को विना प्राप्त किये ही भला (कया) किस उपाय से (उचथस्य) उपदेश करने योग्य वेद के (ऋतेन) सत्य ज्ञान से (ऋतयन्) अन्यों को सत्य ज्ञानयुक्त कर सकते हो। आप (देवः) सब ज्ञानों के देने वाले सूर्य वा राजा के तुल्य तेजस्वी और (ऋतूनां) ऋतुओं के बीच स्थित सूर्यवत् समस्त सत्य ज्ञानों और प्राणों के (ऋतु-पाः) पालक हैं। आप (मे वेद) मुझे प्राप्त कीजिये, मुझ शिष्य को ज्ञानोपदेश प्रदान करने की उचित भूमि जानिये। (अहं) मैं शिष्य (अस्य रायः) इस ऐश्वर्य और (सनितुः) सुखपूर्वक सेवा करने वाले शिष्य के (पतिं) पालक गुरु को (न वेद) नहीं पाता हूं। (२) मैंने आप को पाया आप मुझे प्राप्त करें। हे राजन्! तू विना भूमि राज्य पाये किस युक्ति से केवल आज्ञावचन या विधान से शासन कर सकता है। तू समस्त (ऋतूनां) राजसभा के

सदस्यों का पति होकर मुझ प्रजा को प्राप्त कर। और मुझे ऐश्वर्य और सेवक जन का पालक नहीं मिलता।

**के ते॑ अग्ने रि॒पवे॒ बन्ध॑नासः के पा॒यवः॑ सनिषन्त द्यु॒मन्तः॑।**
**के धा॒सिम॑ग्ने॒ अनृ॑तस्य पान्ति॒ क आस॑तो॒ वच॑सः सन्ति गो॒पाः॥४**

भा०—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान तीक्ष्ण ! राजन् ! हे आचार्य ( ते रिपवे ) तेरे शत्रु के ( बन्धनासः के ) बांधने वाले कौन, वा क्या २ बन्धनोपाय हैं ? और (ते के पायवः ) तेरे कौन २ से रक्षाकारी वा क्या २ रक्षोपाय हैं। ( के द्युमन्तः सनिषन्त ) कौन २ तेजस्वी लोग तेरी सेवा करते हैं। हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक ! तेरे शासन में ( के ) कौन २ हैं जो ( अनृतस्य धासिम् पान्ति ) असत्य व्यवहार के धारण करने वाले को बचाते हैं। और (के) कौन ऐसे हैं जो ( असतः वचसः गोपाः ) असत्य वचन या आज्ञा का असत् पालन करते हैं। विद्वान् पुरुष भी, यें जानें उनके अज्ञान, मोह क्रोधादि में बांधने वाले कौन हैं कौन २ रक्षक गुरुजन उसे विद्या देते, कौन असत्य छल कपट को पालते और असत्-वचन या मिथ्योपदेश देते हैं। इसका विवेक करके मनुष्य सत्योपदेष्टा जनों को प्राप्त करे।

**सखा॑यस्ते॒ विषु॑णा अग्न ए॒ते शि॒वासः॒ सन्तो॒ अशि॑वा अभूवन्।**
**अधू॑र्षत स्व॒यमे॒ते वचो॑भिर्ऋजूय॒ते वृ॑जि॒नानि॑ ब्रु॒वन्तः॑॥ ५॥**

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् आचार्य ! हे तेजस्विन् राजन् ! ( ते एते ) तेरे ये ( विपुणाः ) विविध विद्याओं से सम्पन्न ( सखायः ) सखा, मित्र जन ( शिवासः ) सबके कल्याण करने वाले ( सन्तः ) सज्जन ही होते हैं। और जो ( अशिवाः ) कल्याणकारक नहीं हैं और ( ऋजूयते ) सरल धर्माचरण करने वाले पुरुष को ( वृजिनानि ) वर्जने योग्य पापाचारों वा असत् मार्गों का ( ब्रुवन्तः ) उपदेश करते रहते हैं ( एते ) वे सब ( स्वयम् ) आप से आप ( वचोभिः ) अपने ही वचनों से ( अधूर्षत ) नाश को प्राप्त हों।

यस्ते॑ अग्ने॒ नम॑सा य॒ज्ञमीट्ट॑ ऋ॒तं स पा॑त्यरु॒षस्य॒ वृष्णः॑ ।
तस्य॒ क्षयः॑ पृ॒थुरा सा॒धुरे॑तु प्र॒सस्रा॑णस्य॒ नहु॑षस्य॒ शेषः॑ ॥६॥४॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक ! राजन् ! हे ज्ञानवन् ! विद्वन् ! ( यः ) जो ( अरुषस्य ) तेजस्वी, अहिंसक, रोषरहित, प्रेमयुक्त ( वृष्णः ) मेघवत् ज्ञान ऐश्वर्य के देने वाले, उदार ( ते ) तेरे ( यज्ञम् ) सत्संग को ( नमसा ईट्टे ) आदर विनय से प्राप्त करता है ( सः ) वही ( ऋतम् ) धन और ज्ञान-समृद्धि को ( पाति ) पाता और रखता है । ( तस्य प्र-सस्राणस्य ) तेरी परिचर्या करते हुए उसका ( क्षयः पृथुः ) रहने का भी विशाल गृह और उस ( नहुषस्य ) पुरुष को ( शेषः साधुः ) पुत्र आदि भी उत्तम ( आ एतु ) प्राप्त होता है । इति चतुर्थो वर्गः ॥

## [ १३ ]

सुतम्भर आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५ निचृद् गायत्री । २, ६ गायत्री । ३ विराड्गायत्री ॥ षडर्चं सूक्तम् ॥

अर्च॑न्तस्त्वा हवाम॒हेऽर्च॑न्तः॒ समि॑धीमहि ।
अग्ने॒ अर्च॑न्त ऊ॒तये॑ ॥ १ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! हे राजन् ! हम लोग ( अर्चन्तः अर्चन्तः ) निरन्तर तेरी सेवा शुश्रूषा करते हुए, ( त्वा हवामहे ) तुझे स्वीकार करते हैं, तुझे अपनाते हैं और ( त्वा समिधीमहि ) यज्ञाग्निवत् तुझे हम अच्छी प्रकार प्रदीप्त करते हैं । (ऊतये) रक्षा और ज्ञान प्राप्त करने के लिये तेरा प्रकाश विस्तार करते, तुझे तेजस्वी बनाते, अपने हृदय में प्रज्वलित करते हैं ।

अ॒ग्नेः स्तोमं॑ मनामहे सि॒ध्रम॒द्य दि॑वि॒स्पृशः॑ ।
दे॒वस्य॑ द्रविण॒स्यवः॑ ॥ २ ॥

भा०—हम ( द्रविणस्यवः ) ऐश्वर्य और ज्ञान की कामना करने वाले होकर ( दिवि-स्पृशः ) आकाश में व्यापक, सूर्यवत् तेजस्वी और ज्ञान

प्रकाशमय प्रभु से सुखानन्द का अनुभव करने वाले, ( देवस्य ) ज्ञानप्रद सर्वप्रकाशक, तेजोमय, ( अग्नेः ) अग्निवत् तेजस्वी, पापशोधक, विद्वान् गुरु और राजा का ( सिध्रं ) सर्वकार्यसाधक एवं नित्य सिद्ध, ( स्तोमं ) स्तुति योग्य वचन और ज्ञानोपदेश का ( मनामहे ) मनन करें ।

अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा ।
स यक्षद्दैव्यं जनम् ॥ ३ ॥ ३ ॥

भा०—( यः ) जो ( अग्निः ) अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञान का प्रकाशक, और ( मानुषेषु ) मनुष्यों में ( होता ) सब ज्ञानों और ऐश्वर्यों का देने वाला है वह ( नः गिरः ) हमारी वाणियों को ( आ जुषत ) आदरपूर्वक प्रेम से स्वीकार करे । ( सः ) वह ( दैव्यं जनम् ) विद्वानों के हितकारी लोगों का भी ( यक्षत् ) आदर करता और उनको सुख, ज्ञान, ऐश्वर्यादि दान करे ।

त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः ।
त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥ ४ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान आगे रहकर सन्मार्ग पर ले चलने हारे नायक विद्वन् ! प्रभो ! ( त्वम् ) तू ( सप्रथाः असि ) प्रसिद्ध कीर्त्तिमान् और सब प्रकार से बड़ा है । तू ( जुष्टः ) सब से प्रेमपूर्वक आदर योग्य, ( होता ) सब सुखों का दाता, और ( वरेण्यः ) सब से श्रेष्ठ, वरने योग्य, वा श्रेष्ठ मार्ग में ले चलने हारा है । ( त्वया ) तुझ साक्षी द्वारा विद्वान् लोग ( यज्ञं ) यज्ञ, परस्पर संगति और दान-प्रतिदान ( वितन्वते ) नाना प्रकार से करते हैं ।

त्वामग्ने वाजसातमं विप्रा वर्धन्ति सुष्टुतम् ।
स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ ५ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्रणी ! नायक ! विद्वन् ! प्रभो ( विप्राः ) मेधावी विद्वान् लोग ( सु-स्तुतम् ) उत्तम स्तुति योग्य, ( वाज-सातमं )

ज्ञान, ऐश्वर्य बल आदि के दायक, विभाजकों में सर्वोत्तम ( त्वाम् ) तुझ को ही ( वर्धन्ति ) बढ़ाते हैं। ( सः ) वह तू ( नः ) हमें ( सुवीर्यम् ) उत्तम बल वीर्य ( रास्व ) प्रदान कर।

अग्ने॑ नेमिर॒राँ इ॑व दे॒वाँस्त्वं प॑रि॒भूर॑सि ।
आ राध॑श्चि॒त्रमृ॑ञ्जसे ॥ ६ ॥ ५ ॥

भा०—( नेमिः अरान् इव परिभूः ) परिधि जिस प्रकार चक्र के अरों से सब ओर से लगी रहती है उसी प्रकार हे (अग्ने) विद्वन्! राजन्! प्रभो! ( त्वं ) तू ( देवान् ) विद्या, धन आदि के इच्छुक जनों के ( परिभूः असिः ) ऊपर सब का रक्षक हो, तू ( चित्रम् राधः ) अद्भुत ऐश्वर्य ( आ ऋञ्जसे ) सब प्रकार से प्रदान करता है। इति पञ्चमो वर्गः॥

## ( १४ )

सुतम्भर आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५, ६ निचृद् गायत्री। २ विराडगायत्री। ३ गायत्री ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

**अ॒ग्निं स्तोमे॑न बोधय समिधा॒नो अम॑र्त्यम् ।**
**ह॒व्या दे॒वेषु॑ नो दधत् ॥ १ ॥**

भा०—जो ( नः ) हमारे ( हव्या ) ग्रहण करने और देने योग्य ज्ञान, अन्नादि नाना पदार्थों को ( देवेषु ) दिव्य पदार्थों और विद्वानों उन पदार्थों की कामना करने वालों में ( दधत् ) धारण करता, उनको देता है, उस ( अमर्त्यम् ) असाधारण ( अग्नि ) अग्रणी, तेजस्वी नायक वा विद्वान् वा शिष्य को ( स्तोमेन ) गुण-प्रशंसा और उत्तम उपदेश द्वारा ( समिधानः ) अग्नि के समान उज्ज्वल, प्रदीप्त करता हुआ ( बोधय ) ज्ञानवान कर। ( २ ) परमेश्वर हम कामनाशील पुरुषों को सब कुछ देता है, उस अमर ज्ञानी को स्तुति से हृदय में जागृत करके अपने को ज्ञानवान् करें।

तमध्वरेष्वीळते देवं मर्ता अमर्त्यम् ।
यजिष्ठं मानुषे जने ॥ २ ॥

भा०—(मानुषे जने) मनुष्यों में (यजिष्ठं) सब से बड़े दानी और पूज्य, सत्संग योग्य, (अमर्त्यं) मरणरहित (देवं) दानशील, तेजस्वी, सर्वप्रकाशक (तं) उसको (अध्वरेषु) हिंसादि से रहित, यज्ञ, प्रजा-पालनादि कार्यों में (मर्ताः) सर्व साधारण लोग (ईडते) चाहते और स्तुति करते हैं ।

तं हि शश्वन्त ईळते स्रुचा देवं घृतश्चुता ।
अग्निं हव्याय वोळ्हवे ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (शश्वन्तः) उत्तम स्तुतिशील जन (हव्याय-वोढवे) हव्य चरु आदि उत्तम पदार्थों को अपने में भस्म कर सर्वत्र फैला देने के लिये (घृत-श्चुता स्रुचा) घृत चुआ देने वाले स्रुचा नाम पात्र से (देवं ईडते) तेजोमय देदीप्यमान अग्नि को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (शश्वन्तः) नित्य जीव गण और विद्वान् लोग (घृत-श्चुता) तेज को देने वाले (स्रुचा) 'स्रुच' गतिशील प्राण के द्वारा (हव्याय वो-ढवे) खाद्य पदार्थ को अपने भीतर लेने के लिये) जाठराग्नि को, और (घृत-श्चुता स्रुता हव्याय वोढवे) तेज और जल के बरसने वाले सूर्य और मेघ द्वारा अन्न जल के प्राप्त कराने के लिये (तं) उस तेजोमय सूर्य की ही (ईडते) प्रशंसा करते उसको ही मुख्य कारण बतलाते हैं, और ज्ञान प्रकाश के देने वाली वाणी द्वारा 'हव्य' ग्राह्य ज्ञान प्रदान करने के लिये (तं) उस पूज्य आचार्य की अर्चना करें ।

अग्निर्जातो अरोचत घ्नन्दस्यूञ्ज्योतिषा तमः ।
अविन्दद्गा अपः स्वः ॥ ४ ॥

भा०—(अग्निः) आग जिस प्रकार (जातः) प्रकट होकर (अरो-चत) खूब प्रकाशित होता है और (ज्योतिषा तमः घ्नन्) प्रकाश से अन्ध-

कार को नाश करता हुआ, (गाः अपः स्वः अविन्दद् ) किरणों, जलों और प्रकाश को प्राप्त करता है इसी प्रकार ( अग्निः ) अग्रणी पुरुष ( जातः ) प्रसिद्ध होकर ( दस्यून् घ्नन् ) दुष्टों का नाश करता हुआ ( अरोचत ) सबको प्रिय लगे, ( गाः ) भूमियों को, ( अपः ) उत्तम कर्मों और प्रजाओं को और ( स्वः ) सुख ऐश्वर्यों को भी ( अविन्दत् ) प्राप्त करे ।

अग्निमीळेन्यं कविं घृतपृष्ठं सपर्यत ।
वेतु मे शृणवद्धवम् ॥ ५ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! और ( ईडेन्यं ) पूजनीय, ( घृत-पृष्ठं ) तेजस्वी वा जलवत् शीतल वचनों वाले, ( अग्नि ) ज्ञानी पुरुष की (सपर्यत ) पूजा करो । वह ( वेतु ) हमें प्राप्त हो और (मे हवं शृणवत् ) मेरे स्तुति वा प्रार्थनावचन को श्रवण करे ।

अग्निं घृतेन वावृधु स्तोमेभिर्विश्वचर्षणिम् ।
स्वाधीभिर्वचस्युभिः ॥ ६ ॥ ६ ॥ १ ॥

भा०—विद्वान लोग, ( घृतेन अग्निम् ) घी से अग्नि के तुल्य ( विश्वचर्षणिम् ) सब के द्रष्टा, सब के प्रकाशक और सब मनुष्यों के स्वामी की (स्तोमेभिः) स्तोत्रों, स्तुति वचनों तथा (स्वाधीभिः) उत्तम ध्यानाभ्यासों और ( वचस्युभिः ) उत्तम वचनों से (वावृधुः) बढ़ावें । इति षष्ठो वर्गः॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

## [ १५ ]

वरुण आङ्गिरस ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ५ स्वराट् पंक्तिः ॥ २, ४ त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

प्र वेधसे कवये वेद्याय गिरं भरे यशसे पूर्व्याय ।
घृतप्रसत्तो असुरः सुशेवो रायो धर्ता धरुणो वस्वो अग्निः॥१॥

भा०—मैं ( कवये ) क्रान्तदर्शी, दीर्घ ज्ञानवान् ( वेद्याय ) ज्ञान को धारण करने कराने में उत्तम ( पूर्व्याय ) पूर्व विद्वानों, हितैषी,

वा उनसे विद्या प्राप्त करने वाले, ( यशसे ) यशस्वी पुरुष की ( गिरं ) उपदेश वाणी को ( प्र भरे ) धारण करूं अथवा उसकी स्तुति वा उसका वर्णन करूं । ( घृत-प्रसत्तः ) अग्नि जिस प्रकार घृत से तीव्र होकर खूब काष्ठों को भस्म करता है, उसी प्रकार विद्वान् और राजा भी घृत अर्थात् अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय आदि जलों वा अभिषेचन योग्य जलों से उत्तम पद पर प्रतिष्ठित होता है, वह ( असुरः ) शत्रुओं को बलपूर्वक उखाड़ने वाला, ( सु-शेवः ) उत्तम सेवनीय, उत्तम सुखदाता, ( रायः धर्त्ता ) ऐश्वर्यों को धारण करने वाला, ( वस्वः ) अपने अधीन बसे भृत्य, शिष्यादि का ( धरुणः ) धारक, आश्रय और ( अग्निः ) अग्रणी और अग्निवत् प्रकाशक और तेजस्वी हो ।

ऋतेन ऋतं धरुणं धारयन्त यज्ञस्य शाके परमे व्योमन् ।
दिवो धर्मन्धरुणे सेदुषो नॄञ्जातैरजाताँ अभि ये ननक्षुः ॥ २ ॥

भा०—( ये ) जो लोग ( दिवः धरुणे ) सूर्य के धारण करने वाले वा ज्ञान के धारक ( धर्मन् ) धर्मस्वरूप परम पद में ( सेदुषः ) स्थिर होने वाले विद्वान् पुरुषों को और ( जातैः सह अजातान् नॄन् ) प्रसिद्ध पुरुषों के साथ अप्रसिद्ध पुरुषों को भी ( अभि ननक्षुः ) प्राप्त होते हैं वे ( यज्ञस्य ) परम पूज्य, संगति योग्य, ( परमे व्योमन् ) परम, सर्वोत्कृष्ट, विविध प्रकार से सब की रक्षा करने वाले, ( शाके ) शक्तिशाली पद पर स्थित होकर ( धरुणे ) सब के धारक आश्रय रूप ( ऋतं ) सत्य न्याय-मय तेज को ( ऋतेन ) सत्यमय वेद से ( धारयन्त ) धारण करें ।

अंहोयुवस्तन्वस्तन्वते वि वयो महद्दुष्टरं पूर्व्याय ।
स संवतो नवजातस्तुतुर्यात्सिहं न क्रुद्धमभितः परि ष्ठुः ॥ ३ ॥

भा०—( अंहः-युवः ) पापों को दूर करने वाले वीर पुरुष ( पूर्व्याय ) अपने पूर्व, मुख्य पद के योग्य पुरुष के हितार्थ ( तन्वः ) अपने शरीर के ( महत् ) बड़े भारी ( दुः-तरम् ) दुस्तर, अजेय ( वयः ) बल

को ( वि तन्वते ) विविध उपायों से प्राप्त करें। (सः) वह अग्रणी नायक पुरुष ( नव-जातः ) नया ही प्रसिद्ध, नवाभिषिक्त होकर ( संवतः ) समवाय बनाकर आने वाले शत्रुओं को ( तुतुर्यात् ) विनाश करे। अपने पक्ष के लोग ( सिंहं क्रुद्धं न ) क्रुद्ध सिंह के तुल्य पराक्रमी पुरुष के ( परि स्थुः ) चारों ओर खड़े रहें।

**मातेव यद्भरसे पप्रथानो जनंजनं धायसे चक्षसे च।**
**वयोवयो जरसे यद्दधानः परि त्मना विषुरूपो जिगासि ॥ ४ ॥**

भा०—जिस प्रकार जठर अग्नि, (माता इव धायसे चक्षसे च जनं जनं भरसे ) सब मनुष्यों को पालन पोषण करने और चक्षु द्वारा दिखाने के लिये होता और सब को पालता, पुष्ट करता है, वह ( वयः वयः जरसे) प्रत्येक अन्न को जीर्ण करता, ( त्मना विषुरूपः जिगाति ) स्वयं नाना रूप होकर देह में व्यापता है उसी प्रकार ( यत् ) जो तू विद्वान् नायक पुरुष ( पप्रथानः ) अति विस्तृत विख्यात होकर ( जनं जनं ) प्रत्येक राष्ट्रवासी पुरुष को ( माता-इव ) माता के तुल्य ( भरसे ) पालता है, और ( धायसे ) उनको तू धारण पोषण करने और ( चक्षसे च ) उनको देखने के लिये भी समर्थ होता है और जो तू ( दधानः ) प्रजा जन को धारण करता हुआ ( वयः वयः ) प्रत्येक प्रकार के बल और ज्ञान का ( जरसे ) उपदेश करता है, और ( त्मना ) स्वयं ( विपु-रूपः ) नाना रूप होकर ( परि जिगासि ) सब को प्राप्त करता और नाना प्रकार से उपदेश करता है।

**वाजो नु ते शवसस्पात्वन्तमुरुं दोघं धरुणं देव रायः।**
**पदं न तायुर्गुहा दधानो महो राये चितयन्नत्रिमस्पः ॥ ५ ॥ ७॥**

भा०—जिस प्रकार ( शवसः उरुं अन्तं ) बल की विशाल अग्नि या विद्युत् की परली सीमा को और ( रायः धरुणं ) ऐश्वर्य के धारक और ( दोघं ) सुखदायक रूप का ( वाजः पाति ) वेग पालन करता है या

विद्युत् अर्थात् तीव्र वेगवान् अग्नि के बल की पराकाष्ठा है, उसी प्रकार हे राजन् ( वाजः ) संग्राम और ऐश्वर्य ही ( ते ) तेरे ( शवसः ) बल पराक्रम और सैन्य बल के ( उरुम् ) बड़ी ( अन्तं ) चरम सीमा को (पातु) सुरक्षित रक्खे। इसी प्रकार हे (देव) दानशील राजन् ! (वाजः) बलवान् और ज्ञानी पुरुष ही ( ते रायः ) तेरे ऐश्वर्य के ( दीर्घं धरुणं ) सम्पूर्ण सुखदायक आश्रय की रक्षा करे। हे राजन् ! जिस प्रकार ( महः राये ) बड़े भारी धन को लेने के लिये ( तायुः न ) चोर गुफा या घर में पैर धरता है उसी प्रकार साहसी और सावधान होकर तू भी ( महः राये ) बड़े भारी ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये ( गुहा ) बुद्धि और रक्षार्थ गुहा गर्भ में ( पदं दधानः ) अपना मार्ग रखता हुआ, और स्वयं ( चितयन् ) स्वयं सब बातों को जानता हुआ ( अत्रिम् ) इस राष्ट्र में विद्यमान प्रजा जन को ( अस्पः ) प्रसन्न, खुश रख। अथवा ( अत्रिम् ) अपने राष्ट्र को खाने वाले नाशक शत्रु को ( अस्पः ) पार कर, सावधानी से शत्रुओं के बल को लांघ जा। इति सप्तमो वर्गः ॥

## [ १६ ]

पूरुरात्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४ भुरिगुष्णिक् । ५ बृहती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये।
यं मित्रं न प्रशस्तिभिर्मर्तासो दधिरे पुरः ॥ १ ॥

भा०—जैसे अग्नि को ( भानवे ) तेज या प्रकाश के लिये ( मर्त्तासः मित्रं न पुरः दधिरे ) मनुष्य मित्र तुल्य जान कर अपने आगे रखते हैं। उसी प्रकार ( यं ) जिस विद्वान् पुरुष को ( मर्त्तासः ) सब मनुष्य (मित्रं न) मित्र के तुल्य जानकर ( प्रशस्तिभिः ) उत्तम शासनों, अधिकारों सहित वा उत्तम स्तुति वचनों सहित ( पुरः दधिरे ) सब के आगे प्रमुख

पद पर स्थापित करते हैं, उस ( भानवे ) तेजोमय, सर्वप्रकाशक, ( अ-ग्नये ) सब के अग्रणी पुरुष के ( बृहद् वयः ) बड़े भारी ज्ञान और बल का ( अर्च ) आदर कर ।

स हि द्युभिर्जनानां होता दक्षस्य बाह्वोः ।
वि हव्यमग्निरानुषग्भगो न वारमृण्वति ॥ २ ॥

भा०—( अग्निः भगः न वारम् ऋण्वति ) सूर्य जिस प्रकार वरणी उत्तम जल वा प्रकाश को देता है उसी प्रकार ( सः अग्निः ) वह अग्रणी नायक पुरुष ( जनानां ) मनुष्यों की ( बाह्वोः ) बाहुओं में ( द-क्षस्य होता ) बल को देने और जनों के बाहुओं के बल को अपने अधीन रखने वाला होकर ( आनुषक् ) निरन्तर (भगः न भगः) सूर्यवत् ऐश्वर्यवान् होकर ( हव्यं वारम् ) ग्रहण करने योग्य वरणीय धनैश्वर्यवत् ज्ञान को ( वि ऋण्वति ) विविध प्रकार से देता, विभक्त करता है ।

अस्य स्तोमे मघोनः सख्ये वृद्धशोचिषः ।
विश्वा यस्मिन्तुविष्वणि समर्ये शुष्ममादधुः ॥ ३ ॥

भा०—( तुवि-ष्वणि ) बल पूर्वक बहुत ऐश्वर्यों के सेवन करने और बहुतों पर अपनी आज्ञा चलाने वाले ( यस्मिन् अर्ये ) जिस स्वामी में ( विश्वा ) सब प्रजाएं ( शुष्मम् आदधुः ) बल को धारण कराती हैं ( अस्य ) इस ( मघोनः ) धन-सम्पन्न ( वृद्ध-शोचिषः ) अति तेजस्वी पुरुष के ( स्तोमं ) शासन वा स्तुति कर्म में ( सख्ये ) मित्र भाव में रहें ।

अधा ह्यग्न एषां सुवीर्यस्य मंहना ।
तमिद्यह्वं न रोदसी परि श्रवो बभूवतुः ॥ ४ ॥

भा०—जो ( एषां ) इन वीर पुरुषों के ( सु-वीर्यस्य मंहना ) उत्तम वीर्य, पराक्रम के महान् सामर्थ्य से ही हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू भी बल-वान् हो । ( ( यह्वं न रोदसी ) महान् सूर्य पर, पृथिवी और आकाश-

वत् राजा और प्रजा वर्ग दोनों (तम् इत्) उस तुझ (यवं) महान् पर ही आश्रय लेकर (अवः परि बभूवतुः) अन्न और ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं।

नू न एहि वार्यमग्ने गृणान आ भर।
ये वयं ये च सूरयः स्वस्ति धामहे सचोतैधि पृत्सु नो वृधे ५।८

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! तू (नः एहि) हमें प्राप्त हो! तू (गृणानः) हमें उपदेश करता हुआ स्वयं स्तुति योग्य होकर (नः वार्यम् आभर) हमें उत्तम ज्ञान और धन प्रदान कर। और (ये वयं ये च सूरयः) जो हम और अन्य विद्वान् पुरुष हैं वे सब (सचा) मिल कर (स्वस्ति धामहे) सुख शान्ति, कल्याण को धारण करें और तू (पृत्सु) संग्रामों में (नः वृधे एधि) हमारी वृद्धि के लिये यत्नवान् हो। इत्यष्टमो वर्गः॥

## [ १७ ]

पूरुरात्रेय ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१ भुरिगुष्णिक्। २ अनुष्टुप्। ३ निचृदनुष्टुप्। ४ विराडनुष्टुप्। ५ भुरिग्बृहती॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

आ यज्ञैर्देव मर्त्य इत्था तव्यांसमूतये।
अग्निं कृते स्वध्वरे पूरुरीळीतावसे॥ १॥

भा०—हे (देव) तेजस्विन्! (मर्त्यः) मनुष्य लोग (ऊतये) रक्षा और (अवसे) विद्या ज्ञान के लिये (तव्यांसम् अग्निं) बलवान् और ज्ञानवान्, प्रमुख पुरुष का (सु-अध्वरे कृते) उत्तम हिंसारहित प्रजा पालनादि कर्म के निमित्त (यज्ञैः) उत्तम आदर सत्कारों द्वारा (ईडीत) मान आदर करें और उसे सदा चाहा करें।

अस्य हि स्वयशस्तर आसा विधर्मन्मन्यसे।
तं नाकं चित्रशोचिषं मन्द्रं परो मनीषया॥ २॥

भा०—हे (विधर्मन्) विशेष रूप से धर्म का अनुष्ठान करने हारे! तू (अस्य आसा) इसके आसन, मुख या शासन से (स्वयशस्तरः)

अपने आप अधिक यशस्वी होकर भी ( मन्यसे ) मान वा मनन कर। अथवा तू ( स्व-यश-स्तरः ) अपने यशोगान से तरा देने वाले इस प्रभु का तू मान वा मनन कर। तू ( तं ) उसको ( मनीषया ) अपनी बुद्धि से ( नाकं ) दुःखों से रहित, ( चित्र-शोचिषं ) अद्भुत कान्ति वाले ( मन्द्रं ) आनन्ददायक रूप को ( आसा मनीषया च परः ) मुख, वाणी और बुद्धि से भी परे विद्यमान उसको ( मन्यसे ) जान वा मनन कर।

अस्य वासा उं अर्चिषा य आयुक्त तुजा गिरा।
दिवो न यस्य रेतसा बृहच्छोचन्त्यर्चयः ॥ ३ ॥

भा०—( यः ) जो ( तुजः ) पालन करने में समर्थ और ( गिरा ) उपदेशप्रद वाणी से ( अयुक्त ) स्वयं युक्त होता और औरों को भी युक्त करता है, ( यस्य दिवः ) सूर्यवत् तेजस्वी जिसके ( रेतसा ) बल से ( बृहत् अर्चयः ) ज्वाला और किरणों के तुल्य तेजस्वी अर्चनीय अन्य शासक गण भी ( शोचन्ति ) प्रकाशित होते हैं ( अस्य ) उसके ( अर्चिषा ) ज्ञानमय आदरणीय प्रकाश से ( असौ उ वै ) वह शिष्य भी निश्चय से ( आ युक्त ) युक्त होता है।

अस्य क्रत्वा विचेतसो दस्मस्य वसु रथ आ।
अधा विश्वासु हव्योऽग्निर्विक्षु प्र शस्यते ॥ ४ ॥

भा०—( विचेतसः ) विशेष ज्ञानवान् ( दस्मस्य ) प्रजा के दुखों के नाशक ( अस्य ) उस राजा वा विद्वान् के ( क्रत्वा ) ज्ञान और कर्म, विद्या और पराक्रम से ( रथे वसु आ ) रथ आदि सैन्य बल और रमणीय वचन के द्वारा सब ओर से धन तथा समीपवासी शिष्य वा प्रजाजन आते हैं। ( अध ) और अनन्तर ( विश्वासु विक्षु ) समस्त प्रजाओं में ( हव्यः ) स्तुत्य और यज्ञ युद्धादिकुशल विद्वान् वा राजा ( प्र शस्यते ) प्रशंसा प्राप्त करता है, उत्तम पद पाता है।

नू न इद्धि वार्यमासा सचन्त सूरयः ।
ऊर्जो नपादभिष्टये पाहि शग्धि स्वस्तय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥५॥

भा०—( नः ) हमारे बीच ( सूरयः ) विद्वान् और तेजस्वी लोग ( आसा ) मुख द्वारा उपदेश करके और ( आसा ) उपवेशन तथा स्थिति प्राप्त करके ( वार्यम् ) उत्तम धन और ज्ञान को ( सचन्त ) प्राप्त करते हैं। हे विद्वन्! राजन्! तू ( ऊर्जः ) बल पराक्रम और बल वीर्य को ( न-पात् ) न गिरने देकर, नष्ट न होने देकर उसको ( अभीष्टये ) अपने इष्ट लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये ( पाहि ) उसकी रक्षा कर। ( स्वस्तये ) सुख, कल्याण की प्राप्ति के लिये ( शग्धि ) तू शक्तिशाली बन ( उत ) और ( पृत्सु ) संग्रामों और मनुष्यों के बीच में तू ( नः ) हमारे ( वृधे ) वृद्धि के लिये ( एधि ) समर्थ हो। इति नवमो वर्गः ॥

[ १८ ]

द्वितो मृक्तवाहा आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४ विराडनुष्टुप् । २ निचृदनुष्टुप् । ३ भुरिगुष्णिक् । ५ भुरिग्-बृहती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

प्रातरग्निः पुरुप्रियो विशः स्तवेतातिथिः ।
विश्वानि यो अमर्त्यो हव्या मर्तेषु रण्यति ॥ १ ॥

भा०—( यः ) जो ( मर्त्तेषु ) मरणधर्मा, सामान्य मनुष्यों में, ( अमर्त्यः ) अमर, चिरंजीव असाधारण भोक्ता होकर योग्य पदार्थों में आत्मा के तुल्य ( विश्वानि ) सब प्रकार के ( हव्या ) ऐश्वर्य ( रण्यति ) चाहता और भोगता है, वह ( अतिथिः ) शत्रु कुलों पर आक्रमण करने हारा ( पुरु-प्रियः ) बहुतों का प्रिय होकर ( विशः ) सब को बसाने वाला, राजा (प्रातः स्तवेत) सब से प्रथम अपनी प्रजाओं को उत्तम आज्ञा करे और वह भी ( प्रातः स्तवेत ) प्रातः स्मरण करने योग्य है। ( २ ) परमेश्वर सर्वप्रिय, अतिथिवत् आदरणीय है।

द्विताय मृक्तवाहसे स्वस्य दक्षस्य मंहना ।
इन्दुं स धत्त आनुषक्स्तोता चित्ते अमर्त्य ॥ २ ॥

भा०—हे ( अमर्त्य ) असाधारण पुरुष ! हे दीर्घजीविन् ! विद्वन् ! जो ( ते ) तेरे अधीन ( आनुषक् ) तेरे से निरन्तर सम्बद्ध शिष्य ( स्तोता-चित् ) विद्या का अभ्यास करता है, (सः इन्दुं धत्ते) वह तेरे प्रवाहित ज्ञान रस को ओषधि रस के तुल्य ही धारण करता है, ( स्वस्य दक्षस्य मंहना ) अपने दाहक बल के महान् सामर्थ्य से जिस प्रकार अग्नि ( इन्दुं ) प्रकाश को चाहता है उसी प्रकार ( द्विताय मृक्त-वाहसे ) दो जनों को प्राप्त, उपनीत, शुद्ध विद्या के ग्रहण करने वाले शिष्य के उपकारार्थ ( स्वस्य दक्षस्य मंहना ) अपने अज्ञानदाहक ज्ञान के महान् सामर्थ्य से ( सः ) वह आचार्य भी ( इन्दुं धत्ते ) अपने ज्ञान को धारण करावे । (२) इसी प्रकार जीव शुद्ध ज्ञान का धारक आचार्य और प्रभु की शरण में प्राप्त वा ज्ञान-कर्म में निष्ठ जीव 'मृक्तवाह' और 'द्वित' है, वह निरन्तर स्तुति करे। प्रभु, ऐश्वर्यमय परमेश्वर जीव का रक्षा करता है ।

तं वो दीर्घायुशोचिषं गिरा हुवे मघोनाम् ।
अरिष्टो येषां रथो व्यश्वदावन्नीयते ॥ ३ ॥

भा०—हे ( अश्वदावन् ) व्यापक विज्ञान आदि गुणों के दाता तीव्र अश्व, अश्व सैन्य व्यापक राष्ट्र के देने वाले राजन् ! प्रभो ! ( येषां ) जिन वीर पुरुषों का ( रथः ) रथ और देह ( अरिष्टः ) अपीड़ित, सुखपूर्वक ( वि ईयते ) विविध मार्गों में गति करता है, ( तेषाम् ) उन ( वः ) आप ( मघोनाम् ) ऐश्वर्यवान् पुरुषों के बीच में ( तम् ) उस ( दीर्घायु-शोचिषम् ) दीर्घायु से देदीप्यमान, वृद्ध तेजस्वी पुरुष को मैं प्रजाजन ( गिरा हुवे ) उत्तम वाणी से सत्कार करूं ।

चित्रा वा येषु दीधितिरासन्नुक्था पान्ति ये ।
स्तीर्णं बर्हिः स्वर्णरे श्रवांसि दधिरे परि ॥ ४ ॥

भा०—( येषु ) जिन में (चित्रा दीधितिः) आश्चर्यकारी धारण करने योग्य वाणी है। और ( ये ) जो ( आसन् ) मुख में ( उक्था पान्ति ) उत्तम २ वेद वचनों की रक्षा करते हैं और जो ( स्वर्णरे ) सूर्यवत् तेजस्वी नायक पुरुष के अधीन ( स्तीर्णम् बर्हिः ) विस्तृत राष्ट्र प्रजाजन को और (श्रवांसि दधिरे) नाना ऐश्वर्यों को धारण करते हैं, वा जो गुरु के अधीन बिछे ( बर्हिः ) आसन वा श्रवणीय विद्योपदेशों को ( दधिरे ) धारण करते हैं उनके गुरु वा नायक पुरुष का हम आदर करें।

**ये मे पञ्चाशतं ददुरश्वानां सधस्तुति।**
**द्युमदग्ने महि श्रवो बृहत्कृधि मघोनां नृवदमृत नृणाम् ॥५॥१०॥**

भा०—( ये ) जो ( मे ) मुझे ( सध-स्तुति ) एक साथ, एक समान वर्णन करने योग्य ( अश्वानां द्युमत् पञ्च-शतम् ) अश्ववत् वेगयुक्त रथादि पदार्थों के ५०० का दल ( ददुः ) प्रदान करते या अपने अधीन शासन करते हैं, हे ( अमृत ) दीर्घजीविन्! हे आयुष्मन्! हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक! राजन्! तू उन ( मघोनाम् ) उत्तम धनैश्वर्यसम्पन्न ( नृणां ) पुरुषों का ( महिः ) बड़ा ( बृहत् ) अति विशाल ( नृवत्) बहुत से नायकों और नृसैन्य से युक्त ( श्रवः ) अन्न आदि ऐश्वर्य वा प्रसिद्ध सैन्य ( कृधि ) बना। दशमो वर्गः ॥

## [ १९ ]

वव्रिरात्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ गायत्री। २ निचृद्-गायत्री। ३ अनुष्टुप्। ४ भुरिगुष्णिक्। ५ निचृत्पंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

**अभ्यवस्थाः प्र जायन्ते प्र वव्रेर्वव्रिश्चिकेत।**
**उपस्थे मातुर्वि चष्टे ॥ १ ॥**

भा०—( वव्रेः ) रूपवान् देह की ( अवस्थाः ) ज्यों २ अवस्थाएं अ भि प्र जायन्ते ) उत्तरोत्तर आती जाती हैं त्यों २ ( वव्रिः ) देहवान्

पुरुष वा गुरुरूप से स्वीकार करने वाला शिष्य ( वव्रेः ) शिष्य को अंगीकार करने वाले गुरुजन से ( प्र चिकेत ) उत्तम २ ज्ञान प्राप्त करता जाय। वह ( मातुः उपस्थे ) माता की गोद में बालक के समान उत्तरोत्तर ज्ञानदाता गुरु के समीप ही रहकर ( वि चष्टे ) विविध विद्याओं का दर्शन और पठन, कथोपकथन, अभ्यास आदि करे।

वव्रिरिति रूप नाम। अत्र तद्वतो ग्रहणम्।

जुहुरे वि चितयन्तोऽनिमिषं नृम्णं पान्ति।
आ दृळ्हां पुरं विविशुः ॥ २ ॥

भा०—जो ( चितयन्तः ) उत्तम ज्ञान सम्पादन करते हुए लोग ( वि जुहुरे ) विविध प्रकार से परस्पर लेते और देते रहते हैं और ( अनिमिषं ) रात दिन वा विना आंखें झपके, सावधान वा निश्छल रह कर (नृम्णं पान्ति) धनैश्वर्य और ज्ञान की रक्षा करते हैं वे ही (दृढां पुरं) दृढ़ नगरी में ( आ विविशुः ) प्रवेश करते हैं।

आ श्वैत्रेयस्य जन्तवो द्युमद्वर्धन्त कृष्टयः।
निष्कग्रीवो बृहदुक्थ एना मध्वा न वाजयुः ॥ ३ ॥

भा०—( श्वैत्रेयस्य ) अन्तरिक्ष में उत्पन्न मेघ के जल से जिस प्रकार ( कृष्टयः जन्तवः ) किसान लोग, प्रजाएं तथा नाना जन्तुगण ( द्युमत् वर्धन्त ) खूब अच्छी प्रकार बढ़ते हैं उसी प्रकार मेघ के तुल्य दानशील राजा वा गुरु की ( कृष्टयः ) प्रजाएं भी ( द्युमत् आ वर्धन्त ) खूब वृद्धि को प्राप्त होती हैं। और ( वाजयुः मघवानः ) जिस प्रकार अन्नाभिलाषी जन जल से अन्न समृद्धि प्राप्त करता और वृद्धि को प्राप्त करता, वह भी स्वयं ( निष्क-ग्रीवः ) सुवर्णादि के आभूषण गले में पहरे, ( बृहद्-उक्थः ) बहुत उत्तम वचन कहने वाला और ( वाजयुः ) ज्ञान, बल, ऐश्वर्य की कामना करने वाला वा उसका स्वामी होकर ( एना

मध्वा ) इस मधुर अन्न-सम्पदा और मधुर वचन और शत्रुनाशक बल से ( वर्धते ) बढ़ता है।

प्रियं दुग्धं न काम्यमजामि जाम्योः सचा।
घर्मो न वाजजठरोऽदब्धः शश्वतो दभः ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार बालक ( जाम्योः सचा ) उत्पन्न करने वाले माता पिता के बीच में स्थित ( प्रियं अजामि काम्यं ) प्रिय निर्दोष कामना करने योग्य ( दुग्धं न ) दुग्ध को प्राप्त करके बढ़ता है और जिस प्रकार ( जाम्योः सचा घर्मः न ) भूमि और आकाश दोनों के बीच में सेचनसमर्थ मेघ वा सूर्य ,(दुग्धं काम्यं प्राप्य वर्धते) उत्तम जल को पाकर बढ़ता है, और जिस प्रकार (वाज-जठरः) अन्न को पेट में पचाने वाला पुरुष बढ़ता है उसी प्रकार ( घर्मः न ) सूर्यवत् तेजस्वी, (वाज-जठरः ) ऐश्वर्य को अपने वश कर भोगने वाला, ( अ-दब्धः ) शत्रुओं से पीड़ित न होकर ( शश्वतः ) नित्य न्याय से स्थिर, ( दभः ) दुष्टों को दण्ड देने वाला होकर ( जाम्योः सचा ) बहिन-भाईवत् व भगिनीवत् विराजने वाली धर्मसभा, राजसभा वा प्रजासभा और राजसभा इन दोनों के ( सचा ) बीच समान भाव से मध्यस्थ होकर ( दुग्धं न ) दूध के तुल्य हर्षादि से प्राप्त ( काम्यं ) कामना करने योग्य ( प्रियं ) सर्व प्रिय (अजामि) निर्दोष निर्णय को प्राप्त करके निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होता है।

क्रीळन्नो रश्म आ भुवः सं भस्मना वायुना वेविदानः।
ता अस्य सन्धृषजो न तिग्माः सुसंशिता वक्ष्यो वक्षणेस्थाः ॥५॥११॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि ( भस्मना वायुना ) भस्म अर्थात् प्रकाश और वायु से ( सं वेविदानः ) अच्छी प्रकार आत्मलाभ करता हुआ, ( क्रीड़न् आभुवः ) खेलता सा है। ( वक्षणे स्थाः वक्ष्यः तिग्माः न ) उसके बीच में स्थित ज्वालाएं जिस प्रकार तीखी होती हैं उसी प्रकार हे ( रश्मे ) किरणवत् वा सूर्यवत् प्रकाशक तेजस्विन् ! हे रस्से के समान

दुष्टों के दमन, राज्य का प्रबन्ध करने हारे! तू भी ( भस्मना ) अति तेजस्वी ( वायुना ) ज्ञान युक्त वा वायुवत् वेगयुक्त सैन्य से ( सं-वेविदानः ) अच्छी प्रकार बल प्राप्त करके ( नः ) हमारे बीच ( क्रीड़न् ) आनन्द विनोद करता हुआ वा हमारे लिये युद्धक्रीड़ा करता हुआ ( आ भुवः ) आदरयुक्त हो। ( अस्य ) इस नायक के ( ताः ) वे नाना ( वक्षणे-स्थाः ) आज्ञा और राज्य भार को धारण करने के कार्य में स्थित ( वक्ष्यः ) सेनाएं ( सु-संशिताः ) अच्छी प्रकार तीक्ष्ण, ( तिग्माः ) तीखी ज्वालाओं के समान ही ( धृषजः ) शत्रुओं को धर्षण करने में समर्थ एवं प्रसिद्ध ( सन् ) हों। इत्येकादशो वर्गः ॥

## [ २० ]

प्रयस्वन्त आत्रय ऋषयः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३ विराडनुष्टुप् । २ निचृदनुष्टुप् । ४ पंक्तिः ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

**यमग्ने वाजसातम् त्वं चिन्मन्यसे रयिम् ।**
**तं नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥ १ ॥**

भा०—हे ( अग्ने ) विद्वन्! प्रमुख नायक! हे ( वाज-सातम ) ज्ञान और ऐश्वर्य को देने में सर्वश्रेष्ठ! ( त्वं ) तू ( यम् ) जिस ( रयिम् ) धन सम्पदा को ( मन्यसे चित् ) स्वयं उत्तम जानता है ( तं ) उस ( श्रवाय्यं ) श्रवण करने योग्य कीर्त्तिदायक ( युजम् ) हित में लगाने वाले, उत्तम फलप्रद, सहायकारी ऐश्वर्य और ज्ञान का ( नः ) हमें ( देवत्रा ) विद्वानों के बीच, वाह्य कामनायुक्त शिष्य जन को ( गीर्भिः पनय ) उत्तम वाणियों से उपदेश कर।

**ये अग्ने नेरयन्ति ते वृद्धा उग्रस्य शवसः ।**
**अप द्वेषो अप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिरे ॥ २ ॥**

भा०—हे ( अग्ने ) विद्वन्! हे नायक! ( ये ) जो ( वृद्धाः ) धन,

मान, ज्ञान आदि से सम्पन्न वा आयु, ज्ञान और बल आदि से वृद्ध सम्पन्न होकर भी (तें) तेरे (उग्रस्य शवसः) शत्रुभयकारी, उग्र बल को देख कर भी (न ईं ईरयन्ति) नहीं कांपते, विचलित नहीं होते (ते) वे (अन्य-व्रतस्य) शत्रुवत् द्वेष तुल्य काम करने वाले (द्वेषः) द्वेष और (ह्वरः) कौटिल्य को (अप सश्चिरे) दूर करते हैं।

होतारं त्वा वृणीमहेऽग्ने दक्षस्य साधनम्।
यज्ञेषु पूर्व्यं गिरा प्रयस्वन्तो हवामहे ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे नायक! अग्रणी, प्रमुख पुरुष! (दक्षस्य) बल और ज्ञान के (साधनम्) उत्पन्न करने और उसको वश करने वाले (होतारं) दानशील (त्वा) तुझ को दाहक बलप्रद अग्निवत् हम लोग (प्र-यस्वन्तः) प्रयत्नशील होकर (वृणीमहे) वरण करते हैं। और (पूर्व्यम्) पूर्व के विद्वान् गुरु जनों द्वारा शिक्षित एक पूर्व, सब से प्रथम आदर पाने योग्य, तुझ को हम (यज्ञेषु) यज्ञों, परस्पर के सत्संगों में (गिरा) वाणी द्वारा (हवामहे) आदर से बुलावें और स्तुति करें। (२) ज्ञानप्रद, सर्वैश्वर्यप्रद, सब से पूर्व विद्यमान प्रभु की हम वाणी से स्तुति करें, उसी को हम चाहें।

इत्था यथा त ऊतये सहसावन्दिवेदिवे। राय ऋताय सुक्रतो गोभिः ष्याम सधमादो वीरैः स्याम सधमादः ॥ ४ ॥ १२ ॥

भा०—हे (सहसावन्) शत्रु का पराजय करने वाले बल से सम्पन्न! विद्वन्! राजन्! (इत्था) ऐसी रीति से (दिवे दिवे) दिनों दिन तेरे (राये) ऐश्वर्य को बढ़ाने के लिये (ते ऋताय) तेरे धन और ज्ञान की वृद्धि और प्राप्ति करने के लिये, (तें ऊतये) तेरी रक्षा करने के लिये (यथा) जैसे भी हो हम यत्न करें और (गोभिः) उत्तम वाणियों और भूमियों सहित होकर हे (सु-क्रतो) उत्तम कर्मशील! (सध-मादः स्याम)

हम सब एक साथ हर्ष युक्त हों और ( वीरैः ) वीरों और पुत्रों सहित होकर (सध-मादः स्याम) एक साथ हर्षित होकर रहें। इति द्वादशो वर्गः॥

## [ २१ ]

सप्त आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ अनुष्टुप् । २ भुरिगुष्णिक् । ३ स्वराडुष्णिक् । ४ निचृद्बृहती ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

मनुष्वत्त्वा नि धीमहि मनुष्वत्समिधीमहि ।
अग्ने मनुष्वदङ्गिरो देवान्देवयते यज ॥ १ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्नि ! विद्युत् ! ( त्वा ) तुझ को हम ( मनुष्वत् ) मननशील पुरुष के तुल्य ( नि धीमहि ) अन्नादि में स्थापित करें, और ( मनुष्वत् ) मनुष्य के तुल्य ही जान कर ( सम् इधीमहि ) अच्छी प्रकार प्रदीप्त करे। हे ( अंगिरः ) प्राणवत् प्रिय और प्रीतियुक्त अंगों वाले अग्ने ! तू भी ( मनुष्वत् ) मननशील पुरुष के तुल्य ही ( देवयते ) प्रकाश आदि पदार्थों को चाहने वाले को ( देवान् ) किरण, प्रकाश आदि दिव्य पदार्थ (यज) दे, प्राप्त करा। (२) हे अग्रणी नायक, ( मनुष्वत् ) मनुष्यों के बल से युक्त बल को उत्तम पद पर स्थापित करें, तुझे अधिक बलवान् बनावें। तू ( देवयते) देवों के प्रिय प्रजा जन के हितार्थ ( देवान् ) विजयेच्छुक वीरों और व्यवहार कुशल पुरुषों को (यज) संगत कर, राष्ट्र रख और उनका सत्संग कर, उनका दान मान सत्कार कर।

त्वं हि मानुषे जने अग्ने सुप्रीत इध्यसे ।
स्रुचस्त्वा यन्त्यानुषक् सुजात सर्पिरासुते ॥ २ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् ! अग्रणी ! ( हि ) निश्चय से ( त्वं ) तू ( मानुषे जने ) मननशील मनुष्य पर ( सु-प्रीतः ) सुप्रसन्न होकर ( इध्यसे ) अग्निवान् ज्ञान प्रकाश से प्रकाशित होता है। हे ( सु-जात ) उत्तम पुत्रवत् सुखपूर्वक उत्तम गुणों से प्रसिद्ध जन !

( सर्पिआसुते ) द्रव रूप घृत से आदीप्त, अग्निवत् गुरु से शिष्य के प्रति प्राप्त होने वाले ज्ञान से प्रकाशित विद्वन् ! ( आनुषक् ) निरन्तर (सुच) प्राण और इह लोक भी ( त्वा यन्ति ) तुझे अनुकूल होकर प्राप्त होते हैं ।

**त्वां विश्वे सजोषसो देवासो दूतमक्रत ।**
**सपर्यन्तस्त्वा कवे यज्ञेषु देवं मीळते ॥ ३ ॥**

भा०—( विश्वे ) समस्त ( स-जोषसः ) समान रूप से प्रीति और सेवा करने वाले, (देवासः) विद्वान् जन, विद्याभिलाषी और विजयेच्छुक पुरुष ( त्वाम् ) तुझ को ( दूतम् ) दूतवत् संदेशहर ( अक्रत ) बनावें । और हे ( कवे ) क्रान्तदर्शिन् ! वे ( यज्ञेषु ) सत्संगों में ( सपर्यन्तः ) आदर सत्कार करते हुए ( देवं त्वां ) प्रकाशमान, विजिगीषु तेजस्वी तुझ को ( ईडते ) स्तुति करते और चाहते हैं ।

**देवं वो देवयज्ययाऽग्निमीळीत मर्त्यः । समिद्धः शुक्रदीदिह्यृतस्य योनिमासदः ससस्य योनिमासदः ॥ ४ ॥ १३ ॥**

भा०—हे विद्वान् लोगो ( वः ) आप लोगों के बीच ( देवं ) सब ज्ञान के प्रकाशक ( अग्निम् ) अग्रणी तेजस्वी पुरुष को ( मर्त्यः ) बल-प्रजाजन ( देव-यज्यया ) तेजस्वी राजा के योग्य सत्कार से ( ईडते ) आदर सत्कार करें और उसे चाहें । हे ( शुक्र ) तेजस्विन् ! तू (समिद्धः) खूब प्रदीप्त, तेजस्वी होकर ( दीदिहि ) प्रकाशित हो और ( ऋतस्य योनिम् ) सत्य, न्याय, ज्ञान-ऐश्वर्य के प्रधान पद को ( आ असदः ) प्राप्त हो, उस पर विराज और तू ( ससस्य ) प्रशंसायोग्य, शासक, प्रधान पुरुष के ( योनिम् ) आश्रय योग्य पद को ( आ असदः ) आदरपूर्वक प्राप्त हो । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[ २२ ]

आत्रय ऋषिः । अग्निर्देवता । १ विराडनुष्टुप् छन्दः २, ३ स्वराडुष्णिक् । ४ बृहती ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

प्र विश्वसामन्नत्रिवदर्चा पावकशोचिषे।
यो अध्वरेष्वीड्यो होता मन्द्रतमो विशि ॥ १ ॥

भा०—हे (विश्वसामन्) समस्त सामों, गायनों के जानने वाले, हे समस्त पुरुषों द्वारा किये साम अर्थात् प्रार्थना-वचनों के स्वीकार और सब के प्रति 'साम' अर्थात् प्रिय मधुर वचनों का प्रयोग करनेवाले विद्वन्! (यः) जो (अध्वरेषु) हिंसा प्रजापीड़नादि से रहित प्रजापालन या शासन आदि कार्यों में (ईड्यः) स्तुति योग्य (होता) ज्ञान, ऐश्वर्य देने वाले (विशि) प्रजा में (मन्द्र-तमः) अति आनन्दयुक्त एवं स्तुत्य है, उस (पावकशोचिषे) पापनिवारक, सर्वशोधक, ज्ञान-ज्योति के स्वामी, अग्निवत् तेजस्वी पुरुष का तू (अत्रिवत्) विद्यमान व्यक्ति के तुल्य ही (अर्च) आदर सत्कार कर अर्थात् परोक्ष में भी उसका आदर करे।

न्य१ग्निं जातवेदसं दधाता देवमृत्विजम्।
प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः ॥ २ ॥

भा०—(अद्य) आज, (देवव्यचस्तमः) प्रकाशमान् देव, सूर्य के प्रकाशवत् दूर २ तक व्यापक, (यज्ञः) सबका पूज्य पुरुष (आनुषक्) निरन्तर सबके अनुकूल होकर (प्र एतु) प्रधान पद को प्राप्त हो। हे विद्वान् लोगो! आप लोग (जातवेदसम्) प्रत्येक पदार्थ में व्यापक अग्नि के समान ही प्रत्येक तत्व को जाननेवाले, विद्वान् और ऐश्वर्यवान्, (देवम्) तेजस्वी (ऋत्विजम्) ऋतु २ में सूर्यवत् राजसभासदों में पूज्य, (अग्निं) अग्रणी पुरुष को (नि दधात) प्रतिष्ठित करो। (२) सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वैश्वर्यवान् होने से परमेश्वर 'जातवेदा' है। प्राणों में भी बल देने से 'ऋत्विक्', सब पृथिव्यादि दिव्य पदार्थों में व्यापक होने से 'देवव्यचस्तम' वही सर्वपूज्य 'यज्ञ' है, वह सबसे बड़ा है; उसकी प्रतिष्ठा, पूजा करो।

चिकित्विन्मनसं त्वा देवं मर्तास ऊतये ।
वरेण्यस्य तेऽवस इयानासो अमन्महि ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वन् ! राजन् ! नायक ! प्रभो ! ( वरेण्यस्य ) सबसे श्रेष्ठ, वरण करने योग्य, वा श्रेष्ठ मार्ग में ले जाने वाले, ( अवसः ) सर्व रक्षक, (ते ) तेरे शरण ( इयानासः ) आते हुए ( मर्त्तासः ) मनुष्य हम लोग ( ऊतये ) ज्ञान और रक्षा के लिये ( चिकित्विन्-मनसं ) विज्ञान युक्त विद्वानों के समान ज्ञान और मनन शक्ति वाले ( त्वा देवं ) तुझ तेजस्वी को हम ( अमन्महि ) मान आदर करते हैं ।

अग्ने चिकिद्ध्य१स्य न इदं वचः सहस्य ।
तं त्वा सुशिप्र दम्पते स्तोमैर्वर्धन्त्यत्रयो गीर्भिः शुम्भन्त्यत्रयः ४।१४

भा०—हे ( सहस्य ) शत्रुपराजयकारी सैन्य बल के बीच में सुयोग्य सेनापते ! (अग्ने) अग्निवत् प्रतापिन् ! अग्रणी नायक ! तू ( अस्य चिकिद्धि ) इस राष्ट्र के सम्बन्ध में उत्तम रीति से जान और ( नः ) हमारे (इदं वचः चिकिद्धि) इस राष्ट्र के सम्बन्ध में उत्तम रीति से जान। हे ( सुशिप्र ) उत्तम मुखनासिका वाले, हे सौम्य ! हे (दम्पते) स्त्री के पति के तुल्य पृथ्वी की प्रजा के स्वामिन् ! (अत्रयः) यहां, इस राष्ट्र के निवासी विद्वान् जन (तं त्वां) उस प्रसिद्ध तुझको ( स्तोमैः ) उत्तम स्तुत्य वचनों से ( वर्धन्ति ) बढ़ाते हैं और ( अत्रयः ) तीनों तापों तथा काम, क्रोध, लोभ तीनों से रहित लोग ( त्वा ) तुझे ( गीर्भिः ) वाणियों से ( शुम्भन्ति ) सुशोभित करते हैं । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

## ( २३ )

द्युम्नो विश्वचर्षणिर्ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृदनुष्टुप् । ३ विराडनुष्टुप् । ४ निचृत्पंक्तिः ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

अग्ने सहन्तमा भर द्युम्नस्य प्रासहा रयिं ।
विश्वा यश्चर्षणीरभ्या३सा वाजेषु सासहत् ॥ १ ॥

भा०—( यः ) जो ( विश्वाः ) समस्त ( चर्षणीः ) प्रजाओं का और शत्रुओं का कर्षण या पीड़न करने वाली सेनाओं को भी ( वाजेषु ) ऐश्वर्यों और संग्रामों के बल पर ( आसा ) अपने आज्ञाकारी मुख वा प्रमुख पद से ( अभि सासहत् ) सबके सन्मुख, सर्वोपरि विजयी होता है, वह तू हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक ! तेजस्विन् ! ( द्युम्नस्य ) यश वा ऐश्वर्य को ( सहन्तं ) जीतने वाले सैन्यगण और ( प्रासहा रयिं ) सर्वोत्कृष्ट ऐश्वर्य को ( आ भर ) प्राप्त कर और हमें प्राप्त करा ।

तमग्ने पृतनाषहं रयिं सहस्व आ भर ।

त्वं हि सत्यो अद्भुतो दाता वाजस्य गोमतः ॥ २ ॥

भा०—हे ( सहस्वः ) शत्रुविजयी बल, सैन्य के स्वामिन् ! (अग्ने) अग्रणी, तेजस्विन् ! नायक ! ( त्वं हि ) तू निश्चय से ( सत्यः ) सज्जनों के प्रति व्यवहारकुशल, सत्यशील, ( अद्भुतः ) आश्चर्यकारी, ( गोमतः ) भूमि और गौ आदि पशुओं से समृद्ध, ( वाजस्य ) ऐश्वर्य का ( दाता ) दान देने हारा है । तू (पृतना-सहं ) सेनाओं को वश करने वाले ( तं रयिं ) उस ऐश्वर्य को ( आ भर ) प्राप्त करा ।

विश्वे हि त्वा सजोषसो जनासो वृक्तबर्हिषः ।

होतारं सद्मसु प्रियं व्यन्ति वार्या पुरु ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन् ! हे अग्रणी नायक ! ( विश्वे ) समस्त ( स-जोषसः ) समान प्रीति एवं सेवा करने वाले ( वृक्त-बर्हिषः ) वृद्धिशील राष्ट्र का संविभाग करने में कुशल ( जनासः ) पुरुष ( होतारं ) दानशील, ( प्रियं ) सर्वप्रिय ( त्वां ) तुझको ( व्यन्ति ) प्राप्त होते और (सद्मसु) राजभवनों में ( पुरु ) बहुत प्रकार के ( वार्या ) उत्तम धनों को भी ( व्यन्ति ) प्राप्त करते, भोगते और सुरक्षित रखते हैं ।

स हि ष्मा विश्वचर्षणिरभिमाति सहो दधे ।
अग्न एषु क्षयेष्वा रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि ४॥१५

भा०—( सः विश्व-चर्षणिः ) वह सबका द्रष्टा होकर ( अभिमाति ) समस्त शत्रुओं को पराजय करने योग्य, एवं अभिमान योग्य ( सहः ) प्रबल सैन्य को ( दधे ) धारण करे। हे ( अग्ने ) तेजस्विन् ! नायक ! ( एषु क्षयेषु ) इन निवास योग्य भवनों में या पदों पर रहता हुआ तू हे ( शुक्र ) शुद्धाचरण वाले ! हे तेजोयुक्त ! तू ( नः ) हमारे ( रेवत् ) उत्तम धन से युक्त राष्ट्र को ( दीदिहि ) प्रकाशित कर और हे ( पावक ) पवित्रकारक, कण्टक-शोधन विधि से राज्य को निष्कण्टक करने हारे ! तू स्वयं हमें ( द्युमत् ) तेजोयुक्त ऐश्वर्य ( दीदिहि ) प्रदान कर। स्वयं यशस्वी होकर प्रकाशित हो। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

## ( २४ )

बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च गौपायना लौपायना वा ऋषयः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २ पूर्वार्द्धस्य साम्नी बृहत्युत्तरार्द्धस्य भुरिग्बृहती। ३, ४ पूर्वार्द्धस्योत्तरार्द्धस्य भुरिग्बृहती ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

**अग्ने॒ त्वं नो॒ अन्त॑म उ॒त त्रा॒ता शि॒वो भ॑वा वरू॒थ्यः॑।**
**वसु॑र॒ग्निर्वसु॑श्रवा॒ अच्छा॑ नक्षि द्यु॒मत्त॑मं र॒यिं दाः॑ ॥ १, २ ॥**

भा०—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान तेजस्विन् ! अग्रणी नायक ! हे ज्ञानवन् राजन् ! प्रभो ! विद्वन् ! ( त्वं ) तू ( नः ) हमारे ( अन्तमः ) सदा समीप रहने वाला, सबसे अन्त, चरम, सर्वोत्कृष्ट सीमा पर स्थित, परम प्रमाण, उत्तम सिद्ध वचनों को जानने और उपदेश करने वाला, ( उत ) और ( त्राता ) रक्षक और ( वरूथ्यः ) उत्तम गृहों में निवास करने वाला वा उत्तम सेनासंघों का हितैषी, व उत्तम रक्षा-साधनों से सम्पन्न ( भव ) हो। तू स्वयं ( वसुः ) प्रजाओं, लोकों को बसाने वाला, ( वसु-श्रवाः ) शिष्यों द्वारा गुरुवत् आदर से श्रवण करने योग्य, वा ऐश्वर्यों से यशस्वी, होकर तू ( अच्छ ) भली प्रकार ( उत्तमं रयिं नक्षि )

उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त कर और हमें भी ( दाः ) प्रदान कर । ( २ ) परमेश्वर वसे जीवों से श्रवण मनन करने योग्य एवं सर्वत्र व्यापक है । अतः 'वसु' और 'वसुश्रवाः' है ।

स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो अघायतः समस्मात् ।
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥३,४॥१६॥

भा०—हे ( शोचिष्ठ ) सबसे अधिक तेजस्विन् ! ( सः ) वह तू ( नः ) हमें ( बोधि ) ज्ञानवान् कर । ( नः हवम् ) हमारे वचन को ( श्रुधि ) श्रवण कर । ( नः ) हमें ( समस्मात् अघायतः ) सब प्रकार के पापाचार करने वाले दुष्ट जनों से ( उरुष्य ) बचा । हे ( दीदिवः ) सत्य के प्रकाशक ! ( नूनम् ) निश्चय से हम लोग ( सुम्नाय ) सुख प्राप्त करने और ( सखिभ्यः ) अपने मित्रजनों के हितार्थ ( त्वा ईमहे ) तुझ से प्रार्थना करते हैं । इति षोडशो वर्गः ॥

## ( २५ )

वसूयव आत्रेया ऋषयः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ८ निचृदनुष्टुप् । २,५,६,९ अनुष्टुप् । ३, ७ विराडनुष्टुप् । ४ भुरिगुष्णिक् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अच्छा वो अग्निमवसे देवं गासि स नो वसुः ।
रासत्पुत्र ऋषूणामृतावा पर्षति द्विषः ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् ! ( वः ) हमें ( अवसे ) रक्षा करने के लिये ( अग्निम् ) अग्रणी, अग्निवत् तेजस्वी ( देवं ) सर्वप्रकाशक, विजिगीषु, व्यवहारज्ञ पुरुष का ( अच्छ गासि ) अच्छी प्रकार उपदेश कर । ( सः ) वह ( नः ) हमारा ( वसुः ) बसाने वाला हो । वह ( ऋषूणाम् पुत्रः ) वेदार्थ द्रष्टा विद्वानों के बीच पुत्र के समान, विनयशील वा बहुतों का रक्षक होकर ( ऋतावा ) सत्य न्याय और धन का स्वामी होकर ( रासत् ) धन प्रदान करे । ( द्विषः ) और अप्रीतियुक्त शत्रु जनों

को पार करे, उन पर विजय लाभ करे। परमेश्वर वेदार्थ द्रष्टा, आत्मदर्शी बहुत से विद्वानों को सब दुःखों से बचाने वाला होने से उनका 'पुत्र' है। पुरु त्रायते इति पुत्रः। निरु० ॥

स हि सत्यो यं पूर्वे चिद्देवासश्चिद्यमीधिरे।
होतारं मन्द्रजिह्वमित्सुदीतिभिर्विभावसुम् ॥ २ ॥

भा०—( देवासः चित् ईधिरे सः सत्यः ) जिस प्रकार किरणगण सूर्य को अति प्रदीप्त करते हैं और वह सदा सत्य है इसी प्रकार ( पूर्वे देवासः ) पूर्व के तेजस्वी, विद्वान्गण और ( देवासः ) सूर्यादि लोक भी ( यम् ) जिसको ( ईधिरे ) बतलाते और प्रकाशित करते हैं ( सः हि सत्यः ) वह ही निश्चय से सत्यस्वरूप, सर्व सत् पदार्थों में व्यापक, उनका आश्रय, सत् पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ है। उस ( होतारम् ) सर्वदाता ( मन्द्र-जिह्वम् ) आनन्दप्रद वाणी के बोलने हारे, ( सु-दीतिभिः ) उत्तम दीप्तियों से युक्त ( विभाव-सुम् ) उत्तम कान्ति युक्त ऐश्वर्य के स्वामी को समस्त देव, विद्वान्, विजयेच्छुक धनार्थी और ज्ञानार्थीजन ( ईधिरे ) प्रकाशित करते हैं। उसका गुण वर्णन करते हैं।

स नो धीती वरिष्ठया श्रेष्ठया च सुमत्या।
अग्ने रायो दिदीहि नः सुवृक्तिभिर्वरेण्य ॥ ३ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानप्रकाशक ! प्रभो ! प्रतापिन् ! ( सः ) वह तू ( नः ) हमें ( वरिष्ठया ) सर्वोत्तम ( धीती ) धारणायुक्त शक्ति और ( श्रेष्ठया ) श्रेष्ठ ( सु-मत्या ) उत्तम ज्ञानयुक्त बुद्धि से और ( सुवृक्तिभिः) उत्तम पापादि के वर्जने योग्य दमनकारी शक्तियों से युक्त कर और हे (वरेण्य) सर्वश्रेष्ठ ! (नः रायः दीदिहि ) हमें नाना ऐश्वर्य प्रदान कर।

अग्निर्देवेषु राजत्यग्निर्मर्तेष्वाविशन्।
अग्निर्नो हव्यवाहनोऽग्निं धीभिः सपर्यत ॥ ४ ॥

भा०—( अग्निः ) तेजस्वी ज्ञानवान् पुरुष ही ( देवेषु ) प्रकाश-

युक्त सूर्यादि पदार्थों में अग्नि के तुल्य विद्वान्, तेजस्वी पुरुषों में (राजति) राजवत् प्रकाशित होता है। वह (अग्निः) अग्रणी नायक ही (मर्त्तेषु) मरणधर्मा जीवों के भीतर जाठर अग्नि के तुल्य उनके भीतर भी (आ-विशन्) आदर पूर्वक प्रवेश करता, उनमें बल सञ्चार करता है। वह (अग्निः) अग्रणी, सबके आगे विनयशील होकर (नः) हमारा (हव्य-वाहनः) यज्ञाग्नि वा मन्त्र में लगे अग्नि, विद्युत् आदि के तुल्य (हव्य-वाहनः) ग्रहण योग्य पदार्थों को वहन या धारण करने वाला है। हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग उस (अग्नि) अग्रणी, नायक, नर श्रेष्ठ की (धीभिः) उत्तम कर्मों और स्तुतियों से (सपर्यत) सेवा शुश्रूषा करो। (२) परमेश्वर सर्वत्र विराजता सबके हृदयों में व्यापक, सबको धारता है, उसका स्तुतियों से भजन पूजन करो।

अ॒ग्निस्तु॒विश्र॑वस्तमं तु॒विब्र॑ह्माणमुत्त॒मम्।
अ॒तूर्तं॑ श्राव॒यत्प॑तिं पु॒त्रं द॑दाति दा॒शुषे॑ ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—(अग्निः) विद्वान्, आचार्य एवं अग्रणी नायक वा परमेश्वर जन (दाशुषे) दानशील पुरुष को (तुविश्रवस्तमम्) बहुत प्रकार के अन्नों, श्रवण योग्य ज्ञानों से युक्त, और (तुवि-ब्रह्माणम्) बहुत से विद्वान् पुरुषों, धनों और वेद ज्ञानों से युक्त, (उत्तमं) उत्तम (अतूर्त्तं) अपीड़ित, दीर्घायु (श्रावयत्-पतिं) ज्ञानोपदेश श्रवण कराने वाले पालक से युक्त विद्वान् वा उपदेष्टाओं का पालक, (पुत्रं) उत्तम पुत्र (ददाति) प्रदान करता है। आचार्य और राजा दोनों प्रजाओं के पुत्रों को ज्ञानवान्, विद्वान्, दीर्घायु और रोगादि से अपीड़ित स्वस्थ बलवान् किया करें। इति सप्तदशो वर्गः॥

अ॒ग्निर्द॑दाति॒ सत्प॑तिं सा॒साह॒ यो यु॒धा नृभिः॑।
अ॒ग्निरत्यं॑ रघु॒ष्यदं॒ जेता॑रम॒प॑राजितम् ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (युधा) युद्ध में शत्रुओं पर प्रहार करने वाले सैन्य वा शस्त्र बल से और (नृभिः) वीर नायक पुरुषों सहित (स-

साह ) शत्रुओं को पराजित करता है ( अग्निः ) अग्रणी नायक राजा वा प्रभु, ऐसे ( सत्पतिम् ) सज्जनों का प्रतिपालक पुरुष ( ददाति ) प्रदान करे। वही ( अग्निः ) अग्र नायक राष्ट्र को ( रघु-स्यदं ) वेग से जाने वाला ( अत्यं ) सर्वातिशायी, वेगवान् अश्व सैन्य और ( अपराजितम् ) कभी न हारने वाला ( जेतारम् ) विजेता सेनापति दे।

यद्वाहिष्ठं तद॒ग्नये॑ बृ॒हद॑र्च विभावसो।
महि॑षीव त्वद्र॒यिस्त्वद्वाजा॒ उदी॑रते ॥ ७ ॥

भा०—( यद् ) जो भी ( वाहिष्ठम् ) सबसे अधिक उत्तरदायित्व को अपने कन्धों पर उठाने वाला पद है ( तत् ) वह सम्मान पद ( अग्नये ) अग्नि के तुल्य तेजस्वी नायक को प्रदान किया जाता है। इस लिये हे ( विभावसो ) विविध कान्तियों को अपने में ऐश्वर्यवत् धारण करने वाले तेजस्वी पुरुष! तू ( बृहद्-अर्च ) बड़ा भारी आदर सत्कार प्राप्त कर। ( महिषी इव ) रानी के तुल्य ही ( त्वत् ) तुझ से ( रयिः ) सुख देने वाला धनैश्वर्य ( उत् ईरते ) उत्पन्न होता, ( वाजाः ) समस्त बल सैन्यादि भी ( त्वत् ) तुझ से ही ( उत् ईरते ) उत्पन्न होते और तेरे ही उपभोग में आते हैं।

तव॑ द्यु॒मन्तो॑ अ॒र्चयो॒ ग्रावे॑वोच्यते बृ॒हत्।
उ॒तो ते॑ तन्य॒तुर्य॑था स्वा॒नो अ॑र्त॒ त्मना॑ दि॒वः ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वन्! राजन्! ( तव ) तेरे ( अर्चयः ) अग्नि वा सूर्य के से ज्वाला वा किरणें ( द्युमन्तः ) बहुत प्रकाश वाले हों। तेरा ( बृहत् ) बड़ा भारी यश, बल या स्वरूप ( ग्रावा इव ) मेघ वा पर्वत के समान विशाल एवं शस्त्रास्त्रबल, शिलावत् शत्रुओं को चकनाचूर करने वाला ( उच्यते ) कहा जाता है। ( उतो ) और ( यथा ) जिस प्रकार ( दिवः ) बिजली का ( तन्यतुः ) गर्जन हो उसका ( ते स्वानः ) तेरा महान् शब्द या घोष, आज्ञा-वचन आदि ( अर्त्त ) उत्पन्न हो।

एवाँ अग्निं वसूयवः सहसानं ववन्दिम ।
स नो विश्वा अति द्विषः पर्षन्नावेव सुक्रतुः ॥९॥१८॥

भा०—( वसूयवः ) धन की अभिलाषा करने वाले हम प्रजाजन ( सहसानं ) सबको पराजय करने वाले ( अग्निं ) अग्रणी नायक को ( एव ) अवश्य इस प्रकार ही ( ववन्दिम ) स्तुति करें। ( सः ) वह ( सु-क्रतुः ) उत्तम कार्यकुशल पुरुष ( नः ) हमें ( नावा इव ) नौका से नदी के तुल्य (द्विषः) शत्रुओं के (अति पर्षत्) पार करे। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

## ( २६ )

वसूयव आत्रेया ऋषयः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ९ गायत्री । २, ३, ४, ५, ६, ८ निचृद्गायत्री । ७ विराड्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया ।
आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! अग्रगण्य पद पर विराजमान आचार्य ! राजन् ! प्रभो ! हे ( पावक ) पाप को दूर कर तेजस्विता, ज्ञान और पुण्य आचार से पवित्र करने हारे ! आप ( रोचिषा ) सबको प्रिय लगने वाले तेज और ( मन्द्रया ) आनन्दप्रद, गंभीर, स्तुत्य ( जिह्वया ) वाणी से हे ( देव ) अर्थों के प्रकाशक गुरो ! हे तेजस्विन् ! विजिगीषो ! हे स्वयं प्रकाश प्रभो ! ( देवान् ) वीरों, विद्वान्, विद्याभिलाषी शिष्यों को ( वक्षि ) धारण करो और ( यक्षि च ) संगत करो मिलाओ और उनको ज्ञान और बल प्रदान करो। (२) अग्नि, विद्युत्, तेज, प्रकाशमयी ज्वाला से दिव्य पदार्थों, किरणों को धारता संगत करता और प्रकाश देता है।

तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् ।
देवाँ आ वीतये वह ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार ( घृतस्नुः चित्रभानुः ) घृत-स्रवण से युक्त अग्नि

अद्भुत, अधिक प्रकाश से युक्त होता है और ( वीतये देवान् आवहति ) प्रकाश के लिये किरणों को धारण करता है, उसी प्रकार सूर्य भी मेघ जल से वा प्रकाश से जगत् को पवित्र करता है वह प्रकाश और जगत्-रक्षा के लिये किरणों वा मेघ, वायु, विद्युतादि दिव्य पदार्थों को सर्वत्र धारता है उसी प्रकार हे ( घृतस्नो ) ज्ञान-जल से शिष्यादि के अन्तःकरणों को पवित्र करनेहारे ! हे (चित्रभानो) अद्भुत कान्ति, दीप्ति, विद्या-प्रकाशों से युक्त विद्वन् ! प्रभो ! (स्वः-दृशं) सुख वा ज्ञान-प्रकाश को स्वयं देखने और अन्यों को दर्शाने वाले ( तं त्वा ) उस तुझ को हम ( ईमहे ) प्रार्थना करते हैं। तू ( देवान् ) विद्याभिलाषी जनों को ( वीतये ) व्रत-रक्षा और ज्ञान द्वारा प्रकाशित करने के लिये ( आ वह ) सब प्रकार से धारण कर।

वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि।
अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥ ३ ॥

भा०—हे ( कवे ) क्रान्तदर्शिन् ! हे विद्वन् मेधाविन् ! ( अग्ने ) हे ज्ञानवन् ! अग्नि के तुल्य प्रकाश वाले ! ( अध्वरे ) इस हिंसारहित प्रजापालन वा अध्ययन-अध्यापनादि कार्य में ( बृहन्तं ) महान् शक्तिशाली ( वीतिहोत्रं ) रक्षा, कान्ति, दीप्ति के निमित्त ग्रहण करने योग्य वा दीप्ति और रक्षा का दान देने वाले ( द्युमन्तं ) तेजस्वी ( त्वा ) तुझ को हम अग्नि-वत् ही ( सम् इधीमहे ) अच्छी प्रकार प्रदीप्त करें, तुझे अधिक तेजस्वी, ख्यातिमान् और शक्तिशाली बनावें।

अग्ने विश्वेभिरा गहि देवेभिर्हव्यदातये।
होतारं त्वा वृणीमहे ॥ ४ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानयुक्त ! अग्निवत् तेजस्विन् ! ग्राह्य प्रकाश को देने के लिये किरणों सहित अग्नि वाले सूर्य के तुल्य आप भी ( हव्य-दातये ) उत्तम, देने और स्वीकार करने योग्य ज्ञान ऐश्वर्य के देने के लिये

( विश्वेभिः देवेभिः ) समस्त विद्या वा धन के अभिलाषी वा विद्वान् उत्तम जनों सहित ( आगहि ) आइये । ( होतारं त्वा ) दान देने हारे तुझ उदार पुरुष को हम ( वृणीमहे ) सर्वाश्रय रूप से स्वीकार करें ।

यज॑मानाय सुन्व॒त आग्ने॑ सु॒वीर्यं॑ वह ।
दे॒वैरा स॑त्सि ब॒र्हिषि॑ ॥ ५ ॥ १९ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्निवत् तेजस्विन् ! तू ( सुन्वते यजमानाय ) यज्ञ करने एवं ऐश्वर्य वा धन उत्पन्न करते हुए और संगति, मैत्री करने और कर आदि देने वाले प्रजाजन के हितार्थ तू ( सुवीर्य ) उत्तम बल पराक्रम को ( आ वह ) सब प्रकार से धारण कर और ( देवैः ) विद्वानों के साथ मिलकर ( बर्हिषि ) आसन एवं वृद्धिशील प्रजाजन वा इस लोक पर ( आ सत्सि ) आदरपूर्वक विराजमान हो । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

स॒मि॒धा॒नः स॑हस्र॒जि॒दग्ने॒ धर्मा॑णि पुष्यसि ।
दे॒वानां॑ दू॒त उ॒क्थ्यः॑ ॥ ६ ॥

भा०—( समिधानः अग्निः सहस्रजित् ) खूब प्रदीप्त अग्नि जिस प्रकार सहस्रों सैन्यों को जीतता, सहस्रों रोगों पर वश करता और ( देवानां दूतः ) प्रकाशों, किरणों सहित प्रतापयुक्त एवं दूतवत् संदेश को भी दूर देश तक पहुंचाने वाला है उसी प्रकार हे ( अग्ने ) अग्निवत् तेजस्विन् ! तू भी ( सम्-इधानः ) अच्छी प्रकार प्रदीप्त, तेजस्वी होकर (सहस्रजित् ) सहस्रों बलवान् शत्रुओं को जीतने वाला हो । तू (धर्माणि ) समस्त धर्मयुक्त कर्मों को ( पुष्यसि ) पुष्ट करता है । तू ( देवानां ) विद्वान् पुरुषों के बीच उनका ( उक्थ्यः ) स्तुति योग्य, उत्तम वचन कहने हारा ( दूतः ) संदेश-हर और प्रतापी हो ।

न्य१॒ग्निं जा॒तवे॑दसं होत्र॒वाहं॒ यवि॑ष्ठ्यम् ।
दधा॑ता दे॒वमृ॒त्विज॑म् ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! आप लोग, ( जात-वेदसम् ) ऐश्वर्य के

स्वामी, प्रत्येक पदार्थ के ज्ञाता, ( होत्र-वाहं ) उत्तम वाणी और आदर से दानयोग्य पदार्थों को धारण करने वाले ( यविष्ठयम् ) सब युवा पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ, ( ऋत्विजम् ) ऋतु में वा प्रत्येक राजकीय सभ्य से संगति करने हारे ( देवम् ) तेजस्वी ( अग्निम् ) अग्रणी पुरुष को ( नि दधात ) उच्च पद पर स्थापित करो।

प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः।
स्तृणीत बर्हिरासदे ॥ ८ ॥

भा०—( देव-व्यचस्तमः ) विद्वानों में विविधविद्याओं में सब से अधिक गति वाला, ( यज्ञः ) सत्संगति करने योग्य पुरुष ( आनुषग् ) निरन्तर ( प्र एतु ) आगे उत्तम पद पर आवे और हे विद्वान् जनो ! आप लोग (आसदे) उसके विराजने के लिये ( बर्हिः ) वृद्धियुक्त श्रेष्ठ आसन ( स्तृणीत ) बिछाओ।

एदं मरुतो अश्विना मित्रः सीदन्तु वरुणः।
देवासः सर्वया विशा ॥ ९ ॥ २० ॥

भा०—( मरुतः ) विद्वान् मनुष्य, वायुवत् बलवान् वीर पुरुष, ( अश्विना ) उत्तम स्त्री पुरुष वा अध्यापक और उपदेशक, ( मित्रः ) मित्र वर्ग और ( वरुणः ) दुष्टों के वारण करने वाले श्रेष्ठ जन ये सभी ( इदं ) इस उत्तम आसन को ( आ सीदन्तु ) आदर पूर्वक प्राप्त करें। और ( देवासः ) सभी उत्तम जन ( सर्वया विशा ) सब प्रकार की प्रजा सहित ( आ सीदन्तु ) आकर विराजें। इति विंशो वर्गः ॥

( २७ )

त्र्यरुणस्त्रैवृष्णस्त्रसदस्युश्च पौरुकुत्स्य अश्वमेधश्च भारतोऽग्निर्वा ऋषयः ॥ १—५ अग्निः। ६ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप्। २ विराट् त्रिष्टुप्। ४ निचृदनुष्टुप्। ५, ६ भुरिगुष्णिक् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

अनस्वन्ता सत्पतिर्मामहे मे गावा चेतिष्ठो असुरो मघोनः ।
त्रैवृष्णो अग्ने दशभिः सहस्रैर्वैश्वानर त्र्यरुणश्चिकेत ॥ १ ॥

भा०—( सत्पतिः ) सज्जनों का पालक, ( चेतिष्ठः ) सब से अधिक ज्ञानवान्, (असुरः) बलवान् शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ, ( मघोनः ) ऐश्वर्यवान् पुरुषों को ( चिकेत ) अच्छी प्रकार जाने । वह ( मे ) मुझ प्रजाजन के हितार्थ ( अनस्वन्ता गावा ) शकट आदि से युक्त दो बैलों को जिस प्रकार सारथी चलाता है उसी प्रकार वह मेरे उत्तम नायकों से युक्त राज्य को ( मामहे ) चलावे । वह ( त्रैवृष्णः ) शास्य, शासक जन और राजसभा इन तीनों में सूर्यवत् बलवान् प्रबन्धकर्त्ता और ( त्र्यरुणः ) आदि, मध्य, अन्त तीनों दशाओं में तेजस्वी होकर हे ( अग्ने ) अग्नि-वत् तेजस्विन् ! हे ( वैश्वानर ) समस्त नरों के हितकारिन् ! ( सहस्रैः दशभिः ) दस सहस्र किरणों से सूर्यवत् तेजस्वी होकर दस हजार सैन्य बलों सहित ( चिकेत ) सब पर शासन करे, राष्ट्र के पीड़ाकारियों का नाश करे । ( २ ) विद्वान् आचार्य ( दशभिः सहस्रैः ) वेद के दस सहस्र वेदवाणिमय मन्त्रों से शिष्यों को ज्ञानवान् करे । वह (अनस्वन्ता गावा ) शकट से युक्त बैलों के तुल्य कार्यनिर्वाहक यज्ञ वा गृहस्थ रूप भार से युक्त स्त्री पुरुष दोनों को ( मामहे ) ज्ञान प्रदान करे ।

यो मे शता च विंशतिं च गोनां हरी च युक्ता सुधुरा ददाति ।
वैश्वानर सुष्टुतो वावृधानोऽग्ने यच्छ त्र्यरुणाय शर्म ॥२॥

भा०—( यः ) जो पुरुष (मे) मुझे ( गोनां ) गौओं, वेद वाणियों वा भूमियों की (शता च विंशतिं च) बीसों सौ देता है और जो (सुधुरा) सुख से शकट को धारण करने वाले ( युक्ता ) जुते हुए ( हरी च ) और दूर तक ले जाने वाले अश्व, बैलों के जोड़े और उनके समान धुरन्धर स्त्री पुरुष मुझ राष्ट्र को प्रदान करता है, हे ( वैश्वानर अग्ने ) समस्त मनुष्यों के हितकारिन् नायक ! तू ( सु-स्तुतः ) उत्तम रीति से स्तुति

योग्य होकर ( वावृधानः ) निरन्तर बढ़ता हुआ उस ( त्र्यरुणाय ) तीनों कालों वा तीनों पदों पर शोभा देने वाले पुरुष को ( शर्म ) सुख वा उत्तम गृह आदि आश्रय ( यच्छ ) प्रदान कर। राजा ज्ञान वाणी के उपदेष्टा उत्तम युवा युवति को तैयार करने वाले आचार्य आदि को राज्य में अच्छा आश्रय दें। ऐसे गुरु दलपति 'त्र्यरुण' हैं। वे तीनों आश्रमों में सूर्यवत् ज्ञान से प्रकाशित होते हैं।

**एवा तें अग्ने सुमतिं चकानो नविष्ठाय नवमं त्रसदस्युः।**
**यो मे गिरस्तुविजातस्य पूर्वीर्युक्तेनाभि त्र्यरुणो गृणाति॥ ३॥**

भा०—हे ( अग्ने ) विद्वन्! ( यः ) जो ( ते सुमतिं ) तेरी उत्तम मति और ( नवमं ) नये उत्तम ज्ञान को ( चकानः ) चाहता हूं उस ( नविष्ठाय ) उस अति नवीन ( मे ) मुझ बालक को आप ( त्र्यरुणः ) तीनों में अरुण अर्थात् तीनों वेद विद्याओं, मन, वाणी और शरीर तीनों के तपों के पारंगत, वा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तीनों आश्रमों से उत्तीर्ण, इह लोक, अन्तरिक्ष और द्यौ तीनों प्रकाश से व्याप्त, तीनों से परे विद्यमान सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष ( तुविजातस्य ) बहुत से नायक पुरुषों वा प्रजाजनों में प्रसिद्ध यशस्वी गुरु की ( युक्तेन ) दत्तचित्त से ( पूर्वीः ) पूर्व विद्वानों से सेवित, वा उपदिष्ट ( गिरः ) वेदवाणियों का ( अभि गृणाति ) उपदेश करता है वह ( त्रसदस्युः ) दुष्ट भावों को भयभीत करने वाला, वा भयभीत शत्रुओं पर शस्त्र प्रहार करने वाले शूरवीर के तुल्य निर्भय होकर आ, हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! ( नविष्ठाय ) अति नवीन, एवं स्तुत्य शिष्य को (ते सुमतिं) तेरी अपनी शुभ मति और ज्ञान ( एव ) और ( नवमं ) नये से नया उपदेश ( चकानः ) प्रेम पूर्वक चाहता हुआ गुरु तुझे ( अभि गृणाति ) उपदेश करे। गुरु वा आचार्य के ज्ञानोपदेश से अन्तःशत्रु काम, क्रोधादि एवं कुशिक्षा, कुव्यसनादि परे भाग जाते हैं, दूर हो जाते हैं इससे वह 'त्रसदस्यु' है।

यो म इति प्रवोचत्यश्वमेधाय सूरये ।
ददद्दृचा सनिं यते ददन्मेधामृतायते ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वन् ! आचार्य ! ( यः ) जो ( अश्वमेधाय ) अश्व के समान बल युक्त जीवन तथा विद्यामार्ग पर चलने की दृढ़ बुद्धि से युक्त एवं पवित्र शरीर अथवा यज्ञ वा युद्ध के लिये सन्नद्ध अश्व के समान सदा सज्ज और ( सूरये ) विद्वान् पुरुष के लिये ( मे ) यह मेरा है ( इति ) इस प्रकार से ( प्रवोचति ) कहता है वह तू ( यते ) यत्नवान् शिष्य को ( ऋचा ) ऋग्वेद के मन्त्रगण से ( सनिं ददत् ) विभाग करने और सेवन करने योग्य उत्तम ज्ञान प्रदान करे । वह आप ( ऋतायते ) सत्य ज्ञान को चाहने वाले मुझे ( मेधाम् ददत् ) उत्तम बुद्धि प्रदान करे वह भी शिष्य को ( मे इति प्र-वोचति ) अपना कर ही ज्ञान का प्रवचन करे ।

यस्य मा परुषाः शतमुद्धर्षयन्त्युक्षणः ।
अश्वमेधस्य दानाः सोमा इव त्र्याशिरः ॥ ५ ॥

भा०—( उक्षणः ) विद्योपदेश करने और ज्ञान से सेचन करने वाले ( यस्य ) जिस गुरु के ( शतम् ) सैकड़ों ( परुषाः ) कठोर, एवं वास्तविक क्रोध से रहित, प्रेममय वचन ( मा उत् हर्षन्ति ) मुझको उत्साहित करते हैं उस ( अश्व-मेधस्य ) राष्ट्र पालक राजा के तुल्य गुरु के ( दानाः ) ज्ञान प्रदान करने वाले उपदेश भी ( त्र्याशिरः ) बालक, युवा, वृद्ध तीनों, द्वारा वा वसु, रुद्र, आदित्य तीनों से उपभोग करने योग्य, ( सोमाः इवः ) ऐश्वर्यों के तुल्य होते हैं । ( २ ) जिस नायक को सैकड़ों कठोर जीवी ( उक्षणः ) बलवान् पदाधिकारी उत्साहित करते उस (अश्व-मेधस्य ) राजा सेनापति या राष्ट्र के ( दानाः ) शत्रु नाशक वा पालक वीरजन भी ( सोमाः इव ) अभिषिक्त जनों के समान तीनों प्रकार के ऐश्वर्यों वा वर्णों के भोक्ता होते हैं ।

इन्द्राग्नी शतदाव्न्यश्वमेधे सुवीर्यम् ।
क्षत्रं धारयतं बृहद्दिवि सूर्यमिवाजरम् ॥ ६ ॥ २१ ॥

भा०—( इन्द्राग्नी ) विद्युत् वायु और अग्नि दोनों तत्व जिस प्रकार ( दिवि बृहत् सूर्यम् इव ) आकाश में बड़े भारी सूर्य को धारण करते हैं उसी प्रकार हे ( इन्द्राग्नी ) ऐश्वर्यवान् और तेजस्वी पुरुषो ! आप दोनों, ( शतदान्वि ) सैकड़ों ऐश्वर्य देने वाले ( अश्वमेधे ) अश्वमेध अर्थात् राष्ट्र में ( सुवीर्यम् ) बल युक्त, ( बृहत् ) बड़ा भारी ( सूर्यम् अजरम् ) तेज से युक्त अविनाशी, ( क्षत्रं ) सैन्य बल ( धारयतम् ) धारण करो । इत्येकविंशो वर्गः ॥

## ( २८ )

विश्ववारात्रेयी ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २, ४, ५, ६ विराट् त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत्प्रत्यङ्ङुषसमुर्विया वि भाति ।
एति प्राची विश्ववारा नमोभिर्देवाँ ईळाना हविषा घृताची ॥१॥

भा०—जिस प्रकार ( समिद्धः ) खूब देदीप्यमान ( अग्निः ) अग्नि वा अग्नि से युक्त सूर्य ( दिवि ) प्रकाश और आकाश में ( शोचिः ) दीप्ति कान्ति या प्रकाशमय विद्युत् को ( अश्रेत् ) धारण करता है और ( उषसम् प्रत्यङ् ) उषाकाल को प्राप्त होकर ( उर्विया वि भाति ) खूब प्रकाशित होता है उसी प्रकार ( अग्निः ) अग्रणी नायक, विद्वान् तेजस्वी युवा पुरुष ( दिवि समिद्धः ) ज्ञान-प्रकाश विद्या, एवं विजय कामना में खूब देदीप्त होकर ( शोचिः अश्रेत् ) प्रखर तेज को धारण करे । वह ( उषसम् प्रति-अङ् ) कामना से युक्त प्रजा को प्राप्त होकर ( उर्विया वि भाति ) खूब चमके, इसी प्रकार युवक विद्या एवं कामना वा कान्ति

से उत्तेजित होकर तेज को धारे और कामनायुक्त उसकी अभिलाषिणी स्त्री को प्राप्त कर सुशोभित हो। जिस प्रकार ( विश्व-वारा घृताची ) समस्त जनों से वरणीय, एवं समस्त विश्व के अन्धकारों को दूर करने वाली तेज से युक्त उषा ( देवान् ईडाना ) तेजोमय, प्रकाश किरणों को प्रस्तुत करती हुई ( प्राची एति ) आगे २ बढ़ती हुई या पूर्व दिशा में आती है, उसी प्रकार ( विश्व-वारा ) समस्त शत्रुओं और अनभीष्ट जनों का वरण या तिरस्कार करती हुई (घृताची) तेजस्विनी, या घृतादि स्नेहयुक्त पदार्थ को देह पर मले सुन्दर, सुशोभित होकर ( देवान् ईडाना ) विद्वानों की स्तुति करती हुई या अभीष्ट गुण युक्त प्रियजनों को और ( नमोभिः ) विनय सत्कारों से चाहती हुई, सत्कार करती हुई, ( हविषा ) उत्तम ऐश्वर्य सहित ( प्राची ) उत्तम पद को प्राप्त या आगे प्रस्तुत विदुषी स्त्री एवं राजा के प्रजाजन भी ( एति ) आगे आवे और अपने पालक पति का वरण करे। इस प्रकार प्रजाजन का नायकवरण और वरवर्णिनी स्त्री का पतिवरण दोनों समान रूप से सूर्य उषा, अग्नि उषा दृष्टान्त से वर्णित हैं।

**समिध्यमानो अमृतस्य राजसि हविष्कृण्वन्तं सचसे स्वस्तये।**
**विश्वं स धत्ते द्रविणं यमिन्वस्यातिथ्यमग्ने नि च धत्त इत्पुरः २**

भा०—( समिध्यमानः अमृतस्य राजसि ) जिस प्रकार सूर्य खूब प्रकाशित होता हुआ मेघोपयोगी 'अमृत' अर्थात् जल और उससे उत्पन्न अन्न में प्रकाशित होता है उसी प्रकार हे ( अग्ने ) विद्वान् पुरुष वा राजन्! ( समिध्यमानः ) तू खूब तेजस्वी होकर ( अमृतस्य ) उत्तम सत्कारोपयोगी जल, दीर्घायु वा ज्ञान से खूब प्रकाशित हो। तू ( स्व-स्तये ) सुख शान्ति के प्राप्त करने के लिये ( हविः कृण्वन्तम् ) अन्न आदि उत्पन्न करने और भोज्य द्रव्य सिद्ध करने वाले को ( सचसे ) आदरपूर्वक प्राप्त होता है। हे विद्वन्! राजन्! तू ( यम् ) जिसको प्राप्त होकर ( अतिथ्यम् ) आतिथ्य ( इन्वसि ) लाभ करता है ( सः )

वह मनुष्य ( विश्वं द्रविणं ) समस्त ऐश्वर्य ( धत्ते ) धारण करता है, और वही ( पुरः ) तेरे समक्ष आतिथ्य भोग्य (नि धत्ते च) पदार्थ आदि भी रखता है ।

अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि ॥३॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् विद्वन्, तेजस्विन् नायक ! तू ( महते सौभगाय ) बड़े भारी धनैश्वर्य को प्राप्त करने के लिये ( शर्ध ) शत्रुओं का पराजय कर, अथवा हे ( शर्ध ) बलवन् ! ( तव द्युम्नानि ) तेरे धनैश्वर्य ( उत्तमानि ) उत्तम और ( महते सौभगाय ) बड़े सौभाग्य, सुख समृद्धि की वृद्धि के लिये ( सन्तु ) हों । तू ( जास्पत्यं ) स्त्री और पुरुषों के पति पत्नी के सम्बन्ध को ( सुयमम् ) सुखपूर्वक बंधने योग्य, सुदृढ़ ( सं आकृणुष्व ) उत्तम रीति से संस्कारपूर्वक करा, ( शत्रूयताम् ) शत्रुवत् व्यवहार करने वाले के ( महांसि ) तेजः पराक्रमों, बड़े सैन्यों को ( अभि तिष्ठ ) पराजित कर ।

समिद्धस्य प्रमहसोऽग्ने वन्दे तव श्रियम् ।
वृषभो द्युम्नवाँ असि समध्वरेष्विध्यसे ॥ ४ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्निवत् तेजस्विन् ! ( प्र-महसः ) बड़े भारी तेजस्वी ( समिद्धस्य ) खूब देदीप्यमान ( तव ) तेरी ( श्रियम् ) शोभा या सम्पदा की मैं ( वन्दे ) प्रशंसा करता हूं । तू ( वृषभः ) बलवान्, प्रजा के प्रति सुखों को मेघवत् वर्षाने हारा और ( द्युम्नवान् असि ) तेज और ऐश्वर्य का स्वामी है । तू (अध्वरेषु) यज्ञों में अग्निवत् हिंसारहित प्रजापालन, न्यायशासन आदि कार्यों में ( इध्यसे ) खूब प्रकाशित, प्रसिद्ध तेजस्वी बन ।

समिद्धो अग्न आहुत देवान्यक्षि स्वध्वर ।
त्वं हि हव्यवाळसि ॥ ५ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) तेजस्विन् ! राजन् ! हे ( आहुत ) आदर पूर्वक स्वीकृत एवं कर आदि देने के पात्र रूप ! हे ( स्वध्वर ) उत्तम यज्ञ-शील ! हिंसादि रहित, न्याय से प्रजा पालनादि करनेवाले एवं उत्तम अहिंसक ! तू ( समिद्धः ) खूब प्रकाशित, तेजस्वी होकर भी ( देवान् यक्षि ) विद्वानों को दान दे, वीर कामनायुक्त पुरुषों को भृति दे और उनका सत्संग और आदर कर। क्योंकि ( त्वं ) तू ( हि ) निश्चय से ( हव्य-वाड् असि ) ग्राह्य और दान योग्य ऐश्वर्यों, अन्नादि पदार्थों को धारण करने और औरों को देने हारा है।

आ जुहोता दुवस्यताग्निं प्रयत्यध्वरे ।
वृणीध्वं हव्यवाहनम् ॥ ६ ॥ २२ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (अध्वरे प्रयति ) प्रयत्न से साध्य हिंसादि-रहित प्रजापालनादि यज्ञ में ( अग्निम् ) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष को ( आ जुहोत ) आदर पूर्वक बुलाओ। ( दुवस्यत ) उसका आदर सत्कार और सेवा शुश्रूषा करो। और ( हव्य-वाहनम् ) ग्राह्य और दान योग्य पदार्थों के धारण करने वाले को ही ( वृणीध्वम् ) उत्तमासन के लिये वरण करो। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

## [ २९ ]

गौरिवीतिः शाक्त्य ऋषिः ॥ १—८, ९—१५ इन्द्रः । ९ इन्द्र उशना वा देवता ॥ छन्दः—१ भुरिक् पंक्तिः । ८ स्वराट् पंक्तिः । २, ४, ७ त्रिष्टुप् । ३, ५, ६, ९, १०, ११ निचृत्त्रिष्टुप् । १२, १३, १४, १५ विराट् त्रिष्टुप् ।
पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

त्र्यर्यमा मनुषो देवताता त्री रोचना दिव्या धारयन्त ।
अर्चन्ति त्वा मरुतः पूतदक्षास्त्वमेषामृषिरिन्द्रासि धीरः ॥१॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! ( मनुषः ) मननशील जन ( अ-

र्यमा ) शत्रुओं को संयम वा बन्धन करने वाले ( त्री ) तीन् और (दिव्या) दिव्य गुणों से युक्त ( रोचना ) प्रकाश करने वाले ( त्री ) तीन साधनों को ( देवताता ) देवों, विद्वानों के उचित कार्यव्यवहार में ( धारयन्त ) धारण करें। अर्थात् दुष्टों को संयमन करने के लिये उनके पास तीन साधन, मन्त्रबल, सैन्यबल और ऐश्वर्यबल हों और ज्ञान-प्रकाश करने के लिये तीन वेदों के जानने वाले वा राजसभा, धर्मसभा, और विद्या-सभा तीन हों। वे ( मरुतः ) मनुष्य ( पूतदक्षाः ) पवित्र बल से युक्त होकर ( त्वा अर्चन्ति ) तेरी ही पूजा वा मान की वृद्धि करें। और ( त्वम् ) तू ( धीरः ) ज्ञान, बुद्धि वा कर्मकुशल, धैर्यवान् राष्ट्र शक्ति को धारण करने वाला होकर ( एषाम् ) इनको ( ऋषिः ) मन्त्रार्थ दिखाने वाला, इनका मार्ग सञ्चालक होकर (असि) रह। (२) शिष्यजन आचार्य के अधीन रहकर मन, वाणी, काम तीनों के संयम करने के बल धारण करें, तीन वेद वा तीन ज्ञानप्रकाशक वाणी, इन्द्रियों और मन, शब्द, अर्थ और उनमें सम्बन्ध का ज्ञान करें। वे गुरु की अर्चना करें वह उनका ऋषि हो। ( ३ ) सर्व द्रष्टा होने से परमेश्वर ऋषि, ऐश्वर्यवान् होने से 'इन्द्र' है और सर्वधारक होने से 'धीर' है। जीवगण मरण धर्मा होने से 'मरुत्' हैं। वे पवित्र ज्ञान-बल पाकर प्रभु की अर्चना करें, तीनों संयम बलों और तीन दिव्य ज्योतियों को अग्निवत्, विद्युत्, सूर्यवत् धारण करें।

अनु यदीं मरुतो मन्दसानमार्चन्निन्द्रं पपिवांसं सुतस्य।
आदत्त वज्रमभि यदहिं हन्नपो यह्वीरसृजत्सर्तवा उ ॥ २ ॥

भा०—( सुतस्य ) अभिषेक द्वारा प्राप्त राज्यैश्वर्य को ( पपिवांसं ) भोग वा पालन करने वाले ( मन्दसानं ) स्तुति योग्य एवं सुसन्तुष्ट ( इन्द्रं ) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता राजा का ( मरुतः ) विद्वान् लोग और बलवान् वीरजन ( यत् ) जब ( अनु आ अर्चन् ) निरन्तर उसके अनु-कूल होकर उसका आदर सत्कार करते हैं तब वह भी ( वज्रम् ) शत्रु

निवारक शस्त्र बल और वीर्य, पराक्रम को ( आ दत्त ) धारण करता है, ( यत् ) जब वह ( अहिं ) अभिमुख युद्धार्थ आये शत्रु और मेघ को विद्युत् वा सूर्यवत् ( अभिहन् ) मुकाबले पर मारता है, तब जिस प्रकार सूर्य वा विद्युत् ( यह्वीः अपः ) बड़ी २ जलधाराएं चला देते हैं उसी प्रकार वह बड़ी आप्त प्रजाओं, सेनाओं की ( यह्वीः ) बड़ी २ पंक्तियों को ( सर्त्तवा असृजत् ) सरण या आक्रमण करने के लिये प्रेरित करे अथवा ( अपः ) आप्त या प्राप्त प्रजाओं को ( यह्वीः ) अपने पुत्रों के तुल्य ( सर्त्तवा ) सन्मार्ग में चलने के लिये प्रेरण करे।

उत ब्रह्माणो मरुतो मे अस्येन्द्रः सोमस्य सुषुतस्य पेयाः।
तद्धि हव्यं मनुषे गा अविन्ददहन्नहिं पपिवाँ इन्द्रो अस्य ॥ ३ ॥

भा०—( उत ) और ( ब्रह्माणः मरुतः ) चारों वेद विद्याओं को जानने वाले विद्वान् और वायुवत् तीव्रवेग से शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ वीर पुरुष तथा हे इन्द्र ! तू ( इन्द्रः ) शत्रुहन्ता, ऐश्वर्यवान्, सूर्य वा विद्युत् के तुल्य प्रतापी, तेजस्वी राजा (मे) मेरे ( अस्य ) इस ( सु-सुतस्य ) उत्तम पुत्रवत् पालन करने योग्य एवं अभिषेकादि द्वारा संम्पादित ( सोमस्य ) ऐश्वर्य का ( पेयाः ) पालन और उपभोग कर। ( तत् ) वह राष्ट्र ही उस का ( हव्यम् ) ग्रहण करने योग्य कर आदि है। उसके निमित्त यह राजा ( मनुषे ) मनुष्यों के उपकारार्थ ( गाः ) नाना देश भूमियों को ( अविन्दत् ) प्राप्त करे और ( अहिं ) सामने आये बाधक शत्रु मेघ को सूर्य, वायु वा विद्युत्वत् ( अहन् ) प्रहार कर दण्ड दे और ( इन्द्रः ) वह शत्रुहन्ता राजा ही ( अस्य पपिवान् ) इस राष्ट्रैश्वर्य का उपभोग और पालन करने वाला हो।

आद्रोदसी वितरं वि ष्कभायत्संविव्यानश्चिद्भियसे मृगं कः।
जिगर्तिमिन्द्रो अपजर्गुराणः प्रति श्वसन्तमव दानवं हन् ॥४॥

भा०—राजा ( आत् ) अनन्तर, ( रोदसी ) पृथिवी और आकाश

दोनों को सूर्यवत् एक दूसरे को बलपूर्वक रोक रखने में समर्थ तुल्य बल स्वपक्ष और परपक्ष की दोनों सेनाओं को ( वितरम् ) विशेष रूप से अच्छी प्रकार ( वि स्कभायत् ) विविध उपायों से थामले। ( चित् मृगं भियसे कः ) जिस प्रकार सिंह मृग को भय देने के लिये गर्जना करता है उसी प्रकार वह राजा भी ( सं विव्यानः ) अच्छी प्रकार मिल कर आगे बढ़ता हुआ शत्रु को ( भियसे ) डराने के लिये उसको ( मृगं कः ) मृग के समान भीरु करे अथवा वह ( भियसे ) शत्रु को भयभीत करने के लिये अपने आप को ( मृगं कः ) सिंहवत् बना लेवे। इस प्रकार वह ( इन्द्रः ) शत्रुहन्ता राजा ( जिगर्त्तिम् ) अपने राष्ट्र को निगलने वाले शत्रु को ( अप जर्गुराणः ) दूर भगाता हुआ ( श्वसन्तं ) हांपते हुए, ( तं ) उस ( दानवं ) प्रजानाशक दुष्ट पुरुष वा शत्रुजन का ( प्रति अव हन् ) मुकाबला करे, सबके समक्ष नीचे गिरा कर दण्ड दे, मारे।

**अध क्रत्वा मघवन्तुभ्यं देवा अनु विश्वे अददुः सोमपेयम्।**
**यत्सूर्यस्य हरितः पतन्तीः पुरः सतीरुपरा एतशे कः ॥५॥२३॥**

भा०—हे ( मघवन् ) ऐश्वर्य के स्वामिन्! ( विश्वे ) समस्त ( देवाः ) विद्वान् जन और वीरजन, राष्ट्र के वासी मनुष्यगण ( तुभ्यम् ) तुझे ( क्रत्वा अनु ) कर्म के अनुसार ( सोम-पेयम्) राष्ट्रैश्वर्य का उपभोग योग्य अंश ( अददुः ) प्रदान करें। ( अध ) और ( यत् ) जब तू ( सूर्यस्य ) सूर्यवत् तेजस्वी तेरे ( पुरः ) आगे ( पतन्तीः ) चलने हारी, एवं ऐश्वर्य से समृद्ध होती हुई ( हरितः ) तीव्र वेग से जाने वाली सेनाओं, ( उपराः ) समीप में विद्यमान ( सतीः ) प्राप्त प्रजाओं को भी ( एतशे ) सूर्यवत् तेजस्वी, अश्ववत् बलवान् पुरुष के उपभोग के लिये या उसके अधीन ( कः ) करे। राजा विजित राष्ट्रों और आगे चलने वाली सेनाओं को उत्तम, योग्य, तेजस्वी पुरुष के अधीन करे। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

नव यद॑स्य नव॒तिं च॑ भो॒गान्त्सा॒कं वज्रे॑ण म॒घवा॑ वि॒वृश्च॑त् ।
अर्च॒न्तीन्द्रं॑ म॒रुतः॑ स॒धस्थे॒ त्रैष्टु॑भेन॒ वच॑सा बाधत॒ द्याम् ॥६॥

भा०—( मघवा ) उत्तम धन-सम्पदा का स्वामी ( अस्य ) इस प्रजाजन या राष्ट्र के ( नव नवतिं च भोगान् ) ९९ भोग योग्य, पालन करने योग्य और प्रजाओं का पालन करने वाले नगरों और नाना भोग्य पदार्थों को ( वज्रेण साकं ) अपने शस्त्रास्त्र बल के साथ २ उसके साहाय्य उसी प्रकार ( विवृश्चत् ) तैयार करावे जैसे विश्वकर्मा शिल्पी अपने बसौले से सेना के उपयोगी पदार्थों को बनाता है। ( मरुतः ) सब मनुष्य ( सधस्थे ) एक साथ बैठने के स्थान में ( इन्द्रं ) शत्रुघाती समृद्धिमान् पराक्रमी पुरुष की ( अर्चन्ति ) स्तुति करें और ( त्रैष्टुभेन वचसा ) तीनों मान्य परिषदों द्वारा प्रस्तुत प्रशंसित ( वचसा ) राजकीय शासन से ( द्यां ) पृथिवी का ( बाधत ) शासन करे ।

सखा॒ सख्ये॑ अपच॒त्तूय॑म॒ग्निर॒स्य क्रत्वा॑ महि॒षा त्री श॒तानि॑ ।
त्री सा॒कमिन्द्रो॒ मनु॑षः॒ सरां॑सि सु॒तं पि॑बद्वृत्र॒हत्या॑य॒ सोम॑म् ॥७॥

भा०—( अग्निः ) अग्नि के तुल्य तेजस्वी, ज्ञानवान् विद्वान् नायक पुरुष ( सखा ) मित्र होकर ( तूयम् ) अति शीघ्र ही ( अस्य क्रत्वा ) इस राजा या सेनापति की बुद्धि या कर्म के निमित्त या उसके अनुसार ( त्री शतानि महिषा ) तीन सौ बड़े २ बलवान् पुरुषों को ( अपचत् ) परिपक्व करे, कार्य में खूब सु-अभ्यस्त करे, उनको राज्य के कार्य में खूब सुदृढ़ करे। ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् राजा ( साकम् ) सबके साथ मिलकर ( मनुषः ) मननशील प्रजाजन के ( त्री सरांसि ) तीन 'सरस्' अर्थात् उत्तम ज्ञान वाली तीन परिषदों वा तीन प्रकार अभिसरण करने वाले सैन्यों को ( अपचत् ) परिपक्व करे और पालन करे। और इस प्रकार (वृत्र हत्याय) बढ़ते शत्रु जन वा अज्ञान को नाश करने के लिये प्रजाजन को ( सुतम् ) पुत्रवत् ( अपिबत् ) पालन करे और ( सोमं )

ऐश्वर्यमय राष्ट्र को ओषधि रस के समान गुणकारी रूप से ( अपिबत् ) पान या पालन उपभोग करे। तीन २ सौ जवानों को सधाने वाले गुरु या नायक 'अग्नि' हों। सृ गतौ, षद्लृ गतौ दोनों समानार्थक हैं। अतः सरस्, सदस् दोनों समानार्थक हैं।

त्री यच्छ॒ता म॑हि॒षाणा॒मघो॒ मास्त्री सरां॑सि म॒घवा॑ सो॒म्यापाः॑।
कारं॒ न विश्वे॑ अह्वन्त दे॒वा भर॒मिन्द्रा॑य॒ यदहिं॑ ज॒घान॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे राजन् ! ( यत् ) जो तू ( महिषाणां ) वड़े, वल, ऐश्वर्य स्वामी लोगों के ( त्री शता ) तीन सो जनों का स्वयं ( अघः ) अक्षत, अदण्डनीय और (माः) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने में समर्थ होकर (आपाः) पालन करता है और ( मघवा ) ऐश्वर्यवान् होकर ( त्री ) तीन (सोम्या) सोम, राष्ट्रैश्वर्य के हितैषी ( सरांसि ) उत्तमज्ञान वल सम्पन्न परिषदों को भी ( आपाः ) पालन करता है ( यद् ) जो ( इन्द्राय ) परमैश्वर्य युक्त पद को प्राप्त करने के लिये ( अहिं जघान ) मुकावले पर आये शत्रु को दण्डित करता है तब उसी करण ( विश्वे ) समस्त ( देवाः ) विद्वान् पुरुष ( भरम् ) सबके भरण पोषण करने वाले तुझको ( कारं न ) समर्थ कार्यकर्त्ता सा जानकर ( अह्वन्त ) आदर से वुलावें और स्तुति करें।

उ॒शना॒ यत्स॑ह॒स्यै॒३॒॑रया॑तं गृ॒हमि॑न्द्र जूजु॒वाने॑भि॒रश्वैः॑।
व॒न्वा॒नो अत्र॑ स॒रथं॑ ययाथ॒ कुत्से॑न दे॒वैरव॑नोर्ह॒ शुष्ण॑म् ॥ ९ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! राजन् ! तू ( उशनाः ) स्वयं ऐश्वर्य समृद्धि की कामना करता हुआ और सैन्य जन दोनों ( यत् ) जव ( जुजुवानेभिः ) वेगवान् ( अश्वैः ) घुड़सवारों सहित ( गृहम् अयातम् ) अपने घर को आते हो, तव तू ( अत्र ) इस राष्ट्र में (वन्वानः) ऐश्वर्य का भोग करता हुआ, ( सरथं ) रथ सैन्य के साथ ( ययाथ ) प्रयाण कर और ( कुत्सेन ) शस्त्र बल और ( देवैः ) विद्वानों और वीर

पुरुषों सहित ( शुष्णम् ) शत्रुशोषक सैन्य बल की ( अवनोः ) रक्षा कर और ( शुषाम् ) प्रजाशोषक दुष्ट जनो का ( अवनोः ) विनाश कर, दण्डित कर।

प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्यस्य कुत्सायान्यद्वरिवो यातवेऽकः।
अनासो दस्यूँरमृणो वधेन नि दुर्योण आवृणङ्मृध्रवाचः १०॥२४

भा०—हे राजन्! तू ( सूर्यस्य ) सूर्य समान तेजस्वी राजा के ( अन्यत् चक्रम् ) एक चक्र को ( कुत्साय ) वज्र, शस्त्रास्त्र बल के धारण के लिये ( प्र अवृहः ) खूब उन्नत कर, आगे बढ़ा और ( अन्यत् ) दूसरे सैन्यचक्र को ( वरिवः यातवे ) धनैश्वर्य के प्राप्त करने के लिये ( अकः ) तैयार कर। (अनासः) नाक मुख रहित, प्रमुख नायक रहित, (दस्यून्) दुष्ट पुरुषों को वा प्रत्यक्ष अपराध के कारण कुछ भी अपनी रक्षार्थ न कह सकने वाले दुष्ट पुरुषों को ( वधेन ) शस्त्र द्वारा वध करके (अमृणः) विनाश कर और (मृध्रवाचः) हिंस्र, पीड़ाकारी, मर्मवेधी वचन बोलने वालों को (दुर्योणे नि आवृणक्) कारागार में बन्द करके रख। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

स्तोमासस्त्वा गौरिवीतेरवर्धन्नरन्धयो वैदथिनाय पिप्रुम्।
आ त्वामृजिश्वा सख्याय चक्रे पचन्पक्तीरपिबः सोमम॑स्य ॥११॥

भा०—हे राजन्! ( गौरिवीतेः ) वाणी को प्रकाशित करने वाले वाग्मी जन के ( स्तोमासः ) उत्तम स्तुति वचन तथा उसके अधीन (स्तोमासः) प्रशंसित वीर समूह ( पिप्रुम् ) पालन और राष्ट्र को ऐश्वर्य से पूर्ण करने वाले ( त्वा ) तुझ को ( अवर्धन् ) सदा बढ़ावें। तू ( वैदथिनाय ) संग्राम, धन तथा ज्ञान को प्राप्त करने वाले जनों के उपकार के लिये (अरन्धयः) शत्रु का नाश कर। ( ऋजिश्वा ) सरल स्वभाव के कुत्ते के समान भोजनमात्र से प्रेमबद्ध होकर भृत्यजन ( त्वाम् ) तुझ को ( सख्याय आ चक्रे ) मित्र भाव के लिये स्वीकार करें। तू (पक्तीः) पकाने या परिपक्व, सु-अभ्यस्त करने योग्य नाना पदार्थों वा कार्यों को ( पचन् )

पकाता वा दृढ़ करता हुआ ( अस्य ) इस राष्ट्र के ( सोमम् ) ऐश्वर्य का ( अपिबः ) पालन और उपभोग कर ।

**नवग्वासः सुतसोमास इन्द्रं दशग्वासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।**
**गव्यं चिदूर्वमपिधानवन्तं तं चिन्नरः शशमाना अप व्रन् ॥१२॥**

भा०—( नवग्वासः ) विद्या के मार्ग में नये ही गमन करने वाले ( सुत-सोमासः ) पुत्रवत् सावित्री में उत्पन्न सौम्य शिष्य गण ( दश-ग्वासः ) दशों इन्द्रियों को विजय करके ( इन्द्रं ) अज्ञान के विदारण और तत्व के साक्षात् करने वाले गुरु को ( अर्कैः ) अर्चना करने योग्य शुश्रूषा, स्तुति वचन आदि उपायों से देववत् ( अभि अर्चन्ति ) सब प्रकार से आदर सत्कार करते हैं । ( चित् नरः अपिधानवन्तं गव्यम् ऊर्वम् यथा-अप व्रन् ) जिस प्रकार लोग ढकनेदार गोदुग्ध से पूर्ण बड़े पात्र को खोलते हैं और उसमें से अभीष्ट गोरस लेकर पान करते हैं उसी प्रकार ( शशमानाः नरः ) उसकी प्रशंसा स्तुति करने वाले वा निरन्तर उत्तम से उत्तम पद पर वेग से प्रसन्नता पूर्वक जाते हुऐ छात्र लोग ( अपि धान-वन्तं ) आच्छादन से युक्त ( ऊर्वम् ) अज्ञाननाशक ( गव्यं ) वेद वाणी के पात्र रूप ( तं ) उस आचार्य को भी ( अप व्रन् ) अपने प्रति खोलें, उसे प्रसन्न कर उसका ज्ञान प्राप्त करें । इसी प्रकार नव २ स्तुतिकर्त्ता, जिते-न्द्रिय लोग परमेश्वर की स्तुति करें। स्तुत्य, विघ्ननाशक मानों आवरण में छुपे गुह्य परमेश्वर को शमादि के अभ्यासी, उन्नतिशील भक्त जन अपने प्रति प्रकाशित करें अपने और उपास्य के बीच के आवरग को दूर करें । हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् । ( २ ) नव भूमिपति एवं दश ग्रामाधिपति राजा का आदर करें, उत्तम जन ही भूमि के महान् शत्रुहन्ता स्वामी को पर्दे के पीछे न रख कर अपने प्रति खोलें उसका विशेष परिचय प्राप्त करें ।

**कथो नु ते परि चराणि विद्वान्वीर्या मघवन्या चकर्थ ।**
**या चो नु नव्या कृणवः शविष्ठ प्रेदु ता ते विदथेषु ब्रवाम ॥१३॥**

भा०—हे ( मघवन् ) उत्तम, पूज्य, दानयोग्य ऐश्वर्य एवं ज्ञान से सम्पन्न प्रभो ! विद्वन् ! राजन् ! ( ते ) तेरी मैं ( कथो नु ) किस प्रकार ( परि चराणि ) सेवा करूं ! हे ( शविष्ठ ) सर्वशक्तिमन् ! तू ( विद्वान् ) ज्ञानवान् होकर ( या वीर्या चकर्थ ) जिन बलों, वा अधिकारों को प्राप्त करता है, ( या चो ) और जिन बलयुक्त कार्यों या शक्तियों को ( नु ) शीघ्र ही ( नव्या ) नये रूप से ( कृणवः ) प्राप्त करता है, ( ते ता ) तेरे उन अधिकारों और बलयुक्त कार्यों का हम लोग ( विदथेषु ) यज्ञ, संग्राम, और ज्ञानोपदेशादि के अवसरों में (प्र ब्रवाम) अच्छी प्रकार कहें, अन्यों को उपदेश करें । (२) परमेश्वर के जो महान् जगत् आदि कार्य उसने बनाये और जिनको वह बनाता ही जाता है उनकी हम सदा चर्चा किया करें ।

एता विश्वा चकृवाँ इन्द्र भूर्यपरीतो जनुषा वीर्येण ।
या चिन्नु वज्रिन्कृणवो दधृष्वान्न ते वर्ता तविष्या अस्ति तस्याः १४

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! तू ( अपरीतः ) बिना किसी से सहाय प्राप्त किये, किसी से बिना रुके, ( जनुषा वीर्येण ) जन्मसिद्ध स्वाभाविक, बल वा अधिकार से ( एता विश्वा भूरि ) ये समस्त बहुत से कार्यों को ( चकृवान् ) करता हुआ ( दधृष्वान् ) शत्रुओं का धर्षण वा पराजय करता हुआ, (या चित् नु) और जिन २ कार्यों को भी तू (कृणवः) करे ( ते अस्याः तविष्याः ) तेरी इस बड़ी शक्ति या बलवती सेना का दूसरा ( दधृष्वान् वर्त्ता च नास्ति ) पराजयकारी और वशकारी भी नहीं है । तू ही सब से मुख्य प्रबल विजेता होकर रह । ( २ ) परमेश्वर जन्म से रहित होकर अपने बल से समस्त विश्वों को बनाता जा रहा है । वह सर्व शक्तिशाली होने से वज्री है । उसकी बड़ी शक्ति का धारक, और वारक दूसरा इस जगत् में नहीं है । वह अद्वितीय है ।

इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म ।
वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् १५।२९॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! राजन्! हे ( शविष्ठ ) अति बलशालिन्! ( या ) जिन ( नव्या ) अति उत्तम स्तुत्य, ( ब्रह्म ) धनों, ऐश्वर्यों को हम (अकर्म) उत्पन्न करें और (या क्रियमाणा) जो किये जारहे हैं उन सब को तू ( जुषस्व ) प्रेम से स्वीकार कर। मैं ( अपाः ) उत्तम काम करने हारा ( धीरः ) बुद्धिमान् होकर ( वसूयुः ) सब को बसाने वाले तेरी कामना करता हुआ, और धन का स्वामी होकर ( सुकृता ) उत्तम रीति से बनाये ( भद्रा ) सुखकारी ( वस्त्रा इव ) वस्त्रों के समान वा ( रथेन ) रथ के समान रमणीय ( अतक्षम् ) बनाऊं। प्रजा जन नाना शिल्प आदि बनावें, ऐश्वर्यवान् राजा उपभोग करे, प्रजा समृद्ध हो। ( २ ) परमेश्वर की हम सब स्तुति करें। वह उन्हें स्वीकार करे। ये उस सब में बसे आत्मा का अभिलाषी सदाचारी होकर उत्तम कर्मों को वस्त्र वा रथवत् सावधानी से किया करूं। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

## [ ३० ]

बभ्रुरात्रेय ऋषिः ॥ इन्द्र ऋणञ्चयश्च देवता ॥ छन्दः—१, ५, ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप्। १० विराट् त्रिष्टुप्। ७, ११, १२ त्रिष्टुप्। ६, १३ पंक्तिः। १४ स्वराट् पंक्तिः। १५ भुरिक् पंक्तिः॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

क्व॒स्य वी॒रः को अ॑पश्य॒दिन्द्रं॑ सु॒खर॑थ॒मीय॑मानं॒ हरि॑भ्याम्।
यो रा॒या व॒ज्री सु॒तसो॑ममि॒च्छन्तदोको॒ गन्ता॑ पुरुहू॒त ऊ॒ती ॥१॥

भा०—( स्यः वीरः ) वह विविध प्रकार से गति या सञ्चालन उत्पन्न करने वाला विद्युत् तत्व (क्व) कहां विद्यमान है? ( हरिभ्याम् ईयमानम् ) गति करने वाले दो तत्वों से प्रकट होने वाले ( सुख-रथम् ) सुखकारी रथ को चलाने वा सुख से आकाश [ ईथर ] में वेग से जाने वाले ( इन्द्रं कः अपश्यत् ) 'इन्द्र' विद्युत् को कौन देखता है? ( यः ) जो विद्युत् तत्व ( वज्री ) अति बलवान् होकर ( राया ) अपने ऐश्वर्य से

( सुत-सोमम् ) रसादि साधन करने वाले को चाहता हुआ ( पुरुहूतः ) नाना प्रकार से वर्णित या प्राप्त किया जाकर (ऊती) अपने वेग से ( तत्-ओकः गंता ) उन २ नाना स्थानों को प्राप्त होता है। ( २ ) राजा के पक्ष में—( स्यः वीरः क्व ) वह वीर कहां हैं ? ( हरिभ्याम् ईयमानं सुख-रथम् इन्द्रं कः अपश्यत् ) घोड़ों से लेजाये जाते हुए सुखप्रद रथ पर सवार उस ऐश्वर्यवान् पुरुष को कौन देखता है ? अर्थात् कौन ऐसा ऐश्वर्य, मान पाता है? [उत्तर] वही पुरुष इस राजोचित सुख को प्राप्त करता है ( यः ) जो ( वज्री ) बलवान् शस्त्र बल का स्वामी होकर ( राया ) ऐश्वर्य से ( सुत-सोमम् ) ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले राष्ट्र के प्रजा जन को पुत्र-शिष्यवत् ( इच्छन् ) चाहता हुआ ( पुरुहूतः ) बहुत सी प्रजाओं से आदर पूर्वक बुलाया जाकर ( ऊती ) रक्षा सामर्थ्य, या शक्ति से युक्त हो कर ( तत् ओकः गन्ता ) इस परम, उत्तम पद को प्राप्त करता है। ( ३ ) आत्मा इन्द्र है, सुख पूर्वक इन्द्रियों में रमण करने से सुख-रथ है। प्राण अपान हरि हैं। ज्ञान से वज्री है। वह ज्ञान बल से उस परम पद को प्राप्त करता है।

**अवा॑चचक्षं प॒दम॑स्य स॒स्वरु॒ग्रं नि॑धा॒तुरन्वा॑यमि॒च्छन्।**
**अपृ॑च्छम॒न्याँ उ॒त ते म॑ आहु॒रिन्द्रं॒ नरो॑ बुबुधा॒ना अ॑शेम ॥ २ ॥**

भा०—मैं (अस्य) इस (निधातुः) समस्त संसार को नियम में धारण करने वाले और प्रकृति के भीतर बीज निधान करने या उत्पन्न करने वाले परमेश्वर का ( स-स्वः ) परम सुख युक्त तेजोमय और वाङ्मय (उग्रम् ) दुष्टों के लिये अति भयप्रद ( पदम् ) स्वरूप को मैं ( अव चचक्षम् ) निरन्तर विनयपूर्वक दर्शन करूं। और उसी को ( इच्छन् ) चाहता हुआ ( अनु आयम् ) निरन्तर प्राप्त होऊं। अथवा ( तस्य आयम् अनु इच्छन् ) उस प्रभु को प्राप्त करने की नित्य अभिलाषा करता हुआ ( अन्यान् अपृच्छम् ) मैं और विद्वानों से प्रश्न करूं। ( उत ) और ( ते ) वे ( मे-

आहुः ) मुझे उपदेश करे कि ( बुबुधानाः नरः ) ज्ञान करते हुए हम ज्ञानी, प्रबुद्ध लोग ही ( इन्द्रं अशेम ) 'इन्द्र' परमेश्वर को प्राप्त कर सकते हैं।

**प्र नु व॒यं सु॒ते या ते॑ कृ॒तानीन्द्र॒ ब्रवा॑म॒ यानि॑ नो॒ जुजो॑षः।**
**वेद॒दवि॑द्वाञ्छृ॒णव॑च्च वि॒द्वान्वह॑ते॒ऽयं म॒घवा॒ सर्व॑सेनः ॥ ३ ॥**

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! हे विद्वन् ! ( सुते ) पुत्रवत् पालनीय प्रजाजन एवं ऐश्वर्यों के प्राप्त होने पर ( या ते कृतानि ) तेरे हित के जो कर्त्तव्य हैं ( यानि ) जो कर्त्तव्य तुझे ( नः जुजोपः ) हमारे हितार्थ प्रेमपूर्वक करने चाहियें ( वयं ) हम उनको ( ते प्रब्रवाम नु ) तेरे लिये अवश्य कहें ! तुझे बतलावें। ( अविद्वान् ) ज्ञान से रहित पुरुष को चाहिये कि वह ( वेदद् ) ज्ञान प्राप्त करे और ( शृणवत् च ) वह सदा गुरु से उपदेश श्रवण किया करे। क्योंकि ( अयं ) यह पुरुप ( विद्वान् ) ज्ञानवान् होकर ही ( मघवा ) ऐश्वर्यवान् ( सर्वसेनः ) सब प्रकार की सेनाओं का स्वामी होता और ( वहते ) राष्ट्र आदि के कार्यों को अपने ऊपर उठाता है।

**स्थि॒रं मन॑श्चकृषे जा॒त इ॑न्द्र॒ वेषीदेको॑ यु॒धये॒ भूय॑सश्चित्।**
**अश्मा॑नं चि॒च्छव॑सा दिद्युतो॒ वि वि॒दो गवा॑मू॒र्वमु॒स्रिया॑णाम् ॥४॥**

भा०—हे ( इन्द्र ) विद्वन् ! हे शत्रुहन्तः ! ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! तू ( जातः ) विद्यासम्पन्न और ऐश्वर्यसमृद्धि से प्रसिद्ध होकर भी अपने ( मनः ) मन और ज्ञान को ( स्थिरं चक्रुषे ) स्थिर, निश्चित कर। क्योंकि एकाग्र चित्त होकर मनुष्य ( एकः ) अकेला भी ( भूयसः चित् ) बहुत से लोगों के भी मुकाबले पर ( वेषीत् ) जाने में समर्थ होता है। जिस प्रकार सूर्य ( शवसा अश्मानं दिद्युतः ) अपने तेजो बल से मेघ को चमका देता है उसी प्रकार हे राजन् ! विद्वन् ! तू भी ( शवसा ) अपने बाहु बल

वा सैन्यबल और ज्ञानबल से ( अश्मानं ) व्यापक सैन्य वा शस्त्र बल को ( विद्युतः ) प्रकाशित और प्रकम्पित कर और ( उस्त्रियाणाम् गवाम् ) सूर्य जिस प्रकार ऊपर निकलने वाली किरणों को लाभ करता है उसी प्रकार तू भी उन्नति पथ पर जाने वाली ( गवाम् ) भूमियों और उन्नति का ओर ले जाने वाली वेदवाणियों का लाभ और ज्ञान कर उनको अपने वश कर । उनका अभ्यास कर । ( २ ) परमेश्वर पक्ष में—जिस समय हे प्रभु तुम प्रकट होते हो तो उपासक का मन स्थिर कर देते हो । वह अकेला तब बहुत से बाधक कारणों का मुकाबला कर लेता है, आत्मा को प्रकाशित कर लेता और ऊर्ध्वगामी किरणों वा उच्च वेदमय ज्ञान वाणियों को प्राप्त करता है ।

परो यत्त्वं परम आजनिष्ठाः परावति श्रुत्यं नाम बिभ्रत् ।
अतश्चिदिन्द्रादभयन्त देवा विश्वा अपो अजयद्दासपत्नीः॥५।२६॥

भा०—हे इन्द्र ! ऐश्वर्यवन् ! विद्युत्वत् तेजस्विन् ! ( यत् ) जो ( त्वं ) तू ( परमः ) सब से उत्कृष्ट, अधिक शक्तिशाली होकर ( परः ) दूर तक भी ( आ अजनिष्ठाः ) आदर से सर्वत्र प्रसिद्ध होता है, और ( परावति ) दूर देश में भी ( श्रुत्यं ) श्रवण करने योग्य ( नाम बिभ्रत् ) नाम को धारण करता है । ( अतः चित् ) इसीलिये ( इन्द्राद् ) विद्युत् के तुल्य अति तीव्र और बलवान् तुझ से ( देवाः ) सब विद्वान्, प्रजाजन, विजिगीषु वा धनार्थी लोग भी ( अभयन्त ) भय करते हैं और वह राजा ( विश्वाः दासपत्नीः ) समस्त नाशकारी शत्रुजनों, भृत्यजनों को अपना पति बनाने वाली, उसके अधीन स्थित सेनाओं और ( अपः ) आप्त प्रजाओं को ( अजयत् ) विजय करता है, तू सबसे उत्कृष्ट पद पर विराजता है । ( २ ) विद्युत् परम स्थान मेघ में उत्पन्न होता, दूर से गर्जन रूप में श्रवण द्वारा जाना जाता है, सब प्रकाश उससे न्यून होकर उससे

दब जाते हैं, वह जल देने वाले मेघों को पालक बनाने वाली जल धाराओं पर विजय पाता है । इति षड्विंशो वर्गः ॥

तुभ्येदेते मरुतः सुशेवा अर्चन्त्यर्कं सुन्वन्त्यन्धः ।
अहिमोहानमप आशयानं प्र मायाभिर्मायिनं सक्षदिन्द्रः ॥ ६ ॥

भा०—हे राजन्! जिस प्रकार (सुशेवाः मरुतः अर्चन्ति अन्धः सुन्वन्ति) उत्तम सुखकारी वायु चलते हैं और अन्न को भूमि पर उत्पन्न करते हैं और (इन्द्रः अपः आशयानम् ओहानम् अहिम् मायाभिः सक्षत्) विद्युत् वा सूर्य अन्तरिक्ष या सूक्ष्म जलों में विद्यमान गतिशील मेघ को अपनी शक्तियों से व्यापता है उसी प्रकार हे राजन्! हे विद्वन्! (एते मरुतः) ये बलवान् वीर पुरुष, व्यापारीजन, और विद्वान् प्रजाजन, (सुशेवाः) उत्तम सुखसमृद्ध होकर (तुभ्य इत) तेरे लिये ही (अर्कं) अर्चनायोग्य सत्कारादि वचन (अर्चन्ति) कहते हैं और (अन्धः सुन्वन्ति) तेरे लिये ही भूमि में अन्न और उत्तम २ भोजन उत्पन्न करते और तैयार करते हैं। तू (इन्द्रः) विद्युत् के समान उग्र होकर (मायाभिः) अपनी हिंसाकारी शक्तियों से सम्पन्न होकर उनसे (अपः आशयानम्) आप्त प्रजाजनों के बीच गुप्त रूप से छुपे (ओहानम्) सत् कर्म पथ का त्याग करने वाले, (मायिनम्) कुटिल मायावी, (अहिम्) सर्पवत् हिंसक अभिमुख आये दुष्ट वा शत्रुजन को (प्रसक्षत्) बलात् नाश करे ।

वि षू मृधो जनुषा दानमिन्वन्नहन्गवा मघवन्त्सञ्चकानः ।
अत्रा दासस्य नमुचेः शिरो यदवर्तयो मनवे गातुमिच्छन् ॥७॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम ऐश्वर्य से युक्त! आप (सञ्चकानः) प्रजा से प्रशंसित एवं प्रजा की स्वयं कामना करता हुआ, (गवा दानम् इन्वन्) 'गौ' के तुल्य दुग्धवत् भूमि से करादि अन्न ऐश्वर्य दान को प्रजा से प्राप्त करता और (जनुषा) अपनी प्रसिद्धि वा स्वभाव से ही (मृधः)

संग्रामकारी शत्रुओं को ( सु ) सुखपूर्वक ( वि अहन् ) विविध उपायों से मारे। और ( यत् ) जो राजा ( मनवे ) मनुष्य प्रजा के हित के लिये ( गातुम् ) भूमि को ( इच्छन् ) चाहा करता है वह तभी ( अत्र ) इस राष्ट्र में ( न-मुचेः ) कभी विना दण्ड दिये न छोड़ने योग्य ( दासस्य ) प्रजा के विनाशकारी शत्रु या दुष्ट पुरुष का ( शिरः ) शिर ( अवर्त्तयः ) काट डालता है। अथवा—(मनवे गातुम् इच्छन् ) ज्ञानयुक्त प्रजाजन के लिये भूमि चाहने वाला राजा ( न-मुचेः ) अपना संग न छोड़ने वाले स्वामिभक्त ( दासस्य ) दास, भृत्यजन के ( शिरः अवर्त्तयः ) शिर को मुकुट पगड़ी आदि से सुशोभित करता है।

**युजं हि मामकृ॑था आदिदि॑न्द्र शिरो॑ दासस्य नमु॑चेर्मथायन्।**
**अश्मा॑नं चित्स्वर्यं१॑ वर्तमानं प्र चक्रियेव रोद॑सी मरुद्भ्यः॥ ८॥**

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः राजन्! सेनापते! (नमुचेः दासस्य शिरः मथायन्) जिस प्रकार जल न त्यागने वाले मेघ के शिर, अर्थात् उत्तम भाग को छिन्न भिन्न करता हुआ सूर्य ( मरुद्भ्यः प्रवर्त्तमानं स्वयं अश्मानम् चक्रिया इव रोदसी प्रवर्त्तयत्ति ) वायुओं के संघर्ष से उत्पन्न होने वाले अति शब्दकारी विद्युत् को दो चक्रों के बीच लगे धुरे के समान आकाश और भूमि के बीच घुमा देता है, उसी प्रकार हे ( इन्द्र ) राजन्! सेनापते! तू ( माम् युजं हि अकृथाः ) मुझको अपना सहायक बना ले। ( आत् ) अनन्तर ( नमुचेः ) जीता न छोड़ने योग्य ( दासस्य शिरः मथायन् ) नाशकारी शत्रु के शिर को कुचलता हुआ ( अश्मानं चित् ) विद्युत् के समान व्यापक ( स्वर्यं ) शत्रु को उपताप वा पीड़ा देने वाले और ( वर्त्तमानं ) आगे बढ़ते हुए सैन्यबल, आग्नेयास्त्रादि को (मरुद्भ्यः) अपने वीरों के हितार्थ ( प्र वर्त्तयः ) आगे बढ़ा और (रोदसी) एक दूसरे को रोकने वाली उभय पक्ष की सेनाओं को ( चक्रिया इव ) दो चक्रों के तुल्य चला।

स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नबला अस्य सेनाः ।
अन्तर्ह्यख्यदुभे अस्य धेने अथोप प्रैद्युधये दस्युमिन्द्रः ॥ ९ ॥

भा०—( दासः ) नाशकारी शत्रु जिन ( आयुधानि ) शस्त्र-बलों को ( चक्रे ) बनाता है वे ( स्त्रियः हि ) स्त्रियों के समान भीरु और निर्बल हैं। ( अस्य ) उसकी ( अबलाः ) बल रहित ( सेनाः ) सेनाएं (मा) मेरे प्रति ( किं करन् ) क्या कर सकती हैं ? ( अस्य ) इस शत्रु के ( उभे ) दोनों ( धेने ) पोषक सेनाओं को राजा ( अन्तः अख्यत् ) भीतर तक खूब अच्छी प्रकार देख ले। ( अथ ) और उसके बाद (इन्द्रः) बलवान् सेनापति या राजा ( युधये ) युद्ध करने के लिये ( दस्युम् प्रति ) दुष्ट शत्रु को लक्ष्य करके ( उप प्र ऐत् ) उसके प्रति प्रयाण करे।

समत्र गावोऽभितोऽनवन्तेहेह वत्सैर्वियुता यदासन् ।
सं ता इन्द्रो असृजदस्य शाकैर्यदीं सोमासः सुषुता अमन्दन् १०।२७

भा०—( यत् ) जो भूमि या राष्ट्र ( इह इह ) यहां यहां, अनेक स्थानों पर की अपने ( वत्सैः ) भीतर वसने वाले प्रजाजनों से, बछड़ों से गौवों के समान ( वियुताः आसन् ) वियुक्त हों, वे ( गावः ) भूमियां या रियासतें ( अभितः ) सब ओर से आकर (अत्र) इस राजा के अधीन ( सम् नवन्त ) एक साथ मिलकर रहें। ( अस्य ) इस राजा के (शाकैः) शक्तिशाली सैन्यों से सहायवान् होकर ( यत् ) जब (सु-सुताः सोमासः) उत्तम आदरपूर्वक अभिषिक्त, पुत्रवत् पालित अध्यक्षजन ( ईम् अमन्दन् ) उसको प्रार्थना करें तब वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पराक्रमी राजा ( ताः सम् असृजत् ) उन सबको मिलाकर एक बड़ी शक्ति बनाले। इति सप्तविंशो वर्गः॥

यदीं सोमा बभ्रुधूता अमन्दन्नरोरवीद्वृषभः सादनेषु ।
पुरन्दरः पपिवाँ इन्द्रो अस्य पुनर्गवामददादुस्त्रियाणाम् ॥ ११ ॥

भा०—( यत् ) जब ( सोमाः ) ऐश्वर्य युक्त अध्यक्ष जन ( बभ्रु-धूताः ) अपने भरण पोषण करने वाले स्वामी से प्रेरित एवं भययुक्त

होकर ( ईम् ) अपने प्रबल स्वामी की ( अमन्दन् ) स्तुति करते हैं तव वह ( वृषभः ) बलवान् धुरन्धर पुरुष ( सदनेषु ) नाना सभाओं के बीच या नाना अधिकारपदों पर ( अरोरवीत् ) आज्ञाएं प्रकट करे। ( अस्य ) इस राष्ट्र का ( पपिवान् ) पालनकर्त्ता और उपभोक्ता ( पुरन्दरः इन्द्रः ) शत्रु गणों से लड़ने में समर्थ बलवान् राजा ( उस्त्रियाणाम् गवाम् ) उत्तम २ फलोत्पादक भूमियों को ( पुनः अदात् ) वार २ प्रदान करे। उनको अध्यक्षों में विभक्त करे। अथवा वह उत्तम रूप से निकलने वाली उदात्त वाणियों वा आज्ञाओं को पुनः २ प्रदान करे।

भद्रमिदं रुशमा अग्ने अक्रन्गवां चत्वारि ददतः सहस्रा।
ऋणञ्चयस्य प्रयता मघानि प्रत्यग्रभीष्म नृतमस्य नृणाम् ॥१२॥

भा०—( गवां चत्वारि सहस्रा ददतः सूर्यस्य रुशमाः ) चार हज़ार किरणें देने वाले सूर्य के दीप्ति किरण जिस प्रकार (इदं भद्रम् अक्रन् ) यह सब कल्याणमय सुखदायक प्रकाश उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार हे ( अग्ने ) अग्निवत् तेजस्विन् ! नायक ! ( गवां चत्वारि सहस्रा ददतः ) चार हज़ार आज्ञा-वाणियों या अध्यक्षों को इतनी भूमियां प्रदान करते हुए राजा के अधीन अथवा ( ददतः ) दानशील राजा के ( गवां चत्वारि सहस्रा ) किरणों के तुल्य उसके चार सहस्र ( रुशमाः ) शत्रु हिंसक सैन्य ( इदं भद्रम् अक्रन् ) यह सुखकारी राज्यप्रबन्ध बनावें। और हम ( नृणां नृतमस्य ) नायकों में श्रेष्ठ नायक राजा के भृत्यजन ( ऋणञ्चयस्य ) धन संग्रही राजा के ( मघानि ) उत्तम धनों को ( प्रयता ) प्रयत्न करके उद्योग पूर्वक ( प्रति अग्रभीष्म ) स्वीकार करें।

सुपेशसं माव सृजन्त्यस्तं गवां सहस्रै रुशमासो अग्ने।
तीव्रा इन्द्रममन्दुः सुतासोऽक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाः ॥ १३ ॥

भा०—लोग ( गवां सहस्रैः ) हज़ारों गौवों से ( अस्तं ) घर को जिस प्रकार ( सुपेशसम् ) उत्तम धनधान्य युक्त, सुरूप, सुन्दर बना लेते

हैं उसी प्रकार हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक ! ( रुशमासः ) तेजस्वी वीर पुरुष ( गवां सहस्रैः ) सहस्रों भूमियों से ( मा ) मुझ राष्ट्र वासी प्रजा-जन को ( सुपेशसं ) उत्तम सुवर्णादि से सम्पन्न ( अव सृजन्ति ) करें। ( अक्तोः व्युष्टौ यथा सुतासः इन्द्रम् अममन्दुः ) रात्रि के अनन्तर प्रातः उषाकाल होने पर जिस प्रकार बच्चे पिता को प्रसन्न करते हैं उसी प्रकार ( परितक्म्यायाः व्युष्टौ ) सब तरफ़ आनन्द प्रसन्नता की वेला के आगमन पर ( तीव्राः ) तीव्र ( सुतासः ) अभिषिक्त वीर पुरुष भी ( इन्द्रम् अममन्दुः ) अपने राजा को प्रसन्न करें।

**औच्छुत्सा रात्री परितक्म्यायाँ ऋणञ्चये राजनि रुशमानाम्।**
**अत्यो न वाजी रघुरज्यमानो बभ्रुश्चत्वार्यसनत्सहस्रा ॥१४॥**

भा०—( रुशमानां ) शत्रुनाशकारी वीर पुरुषों को ( ऋणञ्चये राजनि ) धन संग्रही राजा के रहते हुए ( या ) जो प्रजा ( परितक्म्यायां ) सब प्रकार के आनन्द प्रमोदों से पूर्ण होती है ( सा ) वह ( रात्री ) रात्रि के समान सुखदायक होकर भी ( औच्छत् ) सूर्य से रात्रिवत् ही और अधिक प्रकाशित हो जाती है। ( वाजी अत्यः न ) वेगवान् अश्ववत् सूर्य के तुल्य ही वह राजा ऐश्वर्यवान् और सबको अति-क्रमण करके ( रघुः ) वेग से उन्नति-पथ पर जाने वाला ( बभ्रुः ) प्रजा का धारक पोषक और ( अज्यमानः ) स्वयं प्रकाशित होकर ( चत्वारि सहस्रा ) चारों सहस्रों भूमियों, ऐश्वर्यों या अध्यक्षों को सहस्रों किरणों को सूर्यवत् (असनत्) उपभोग करता है, उनपर अधिपति होकर रहता है।

**चतुःसहस्रं गव्यस्य पश्वः प्रत्यग्रभीष्म रुशमेष्वग्ने।**
**घर्मश्चित्तप्तः प्रवृजे य आसीदयस्मयस्तम्वादाम विप्राः ॥१५।२८॥**

भा०—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान तेजस्विन् ! हम प्रजाजन ( गव्यस्य अश्वः चतुः सहस्रं ) सबको दिखाने वाले प्रकाशक चार सहस्र

किरणों को हम प्रत्यक्ष ग्रहण करते हैं उसी प्रकार प्रजाजन हे ( अग्ने ) तेजस्विन् नायक! हे राजा ( गव्यस्य पश्वः चतुः सहस्रं ) चार हजार गवादि रूप पशु के तुल्य तेरे अधीन रहने वाले ( गव्यस्य पश्वः ) भूमि के हितकारी प्रजा के कार्यव्यवहारों को देखने वाले हैं हम उन से ( प्रति अग्रभीष्म ) प्रत्येक को स्वीकार करें। और ( यः ) जो ( अयस्मयः ) सुवर्णादि से सम्पन्न वा लोह के बने शस्त्रास्त्रों से सम्पन्न होकर ( धर्मः चित् ) तेजस्वी सूर्य के समान ( तप्तः ) तप कर ( प्रवृजे ) शत्रु को दूर भगा देने में ( आसीत् ) समर्थ हो हे ( विप्राः ) विद्वान् बुद्धिमान् पुरुषो ! हम ( तम् उ आदाम् ) उसको ही अपना नायक स्वीकार करें। इस सूक्त में 'सहस्र' शब्द अनेक वाचक है। चारों दिशाओं की अपेक्षा वे चार सहस्र कह दिये हैं अर्थात् चारों दिशाओं में विस्तृत हज़ारों। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

## [ ३१ ]

अवस्युरात्रेय ऋषिः ॥ १—८, १०—१३ इन्द्रः । ८ इन्द्रः कुत्सो वा । ८ इन्द्र उशना वा । ९ इन्द्रः कुत्सश्च देवते ॥ छन्दः—१, २, ५, ७, ९, ११ निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ४, ६, १० त्रिष्टुप् । १३ विराट्त्रिष्टुप् । ८, १२ स्वराट्पंक्तिः ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रो रथाय प्रवतं कृणोति यमध्यस्थान्मघवा वाजयन्तम् ।
यूथेव पश्वो व्युनोति गोपा अरिष्टो याति प्रथमः सिषासन् ॥१॥

भा०—( इन्द्रः ) सूर्यवत् तेजस्वी राजा वा सेनापति (मघवा) ऐश्वर्यवान् होकर ( यम् ) जिस भी ( वाजयन्तम् ) संग्राम करने वाले रथ सैन्य के प्रमुख पद पर रथवत् ( अधि अस्थात् ) अधिष्ठाता होकर विराजे वह सेनानायक सारथि के तुल्य ही उस ( रथाय ) रथ के सञ्चालन के लिये अपने को ( प्रवतं करोति ) सबसे अधिक योग्य बनावे और रथ सैन्य के लिये उत्तम कर्त्तव्य-पथ भी तैयार करे। क्योंकि वह ( गोपाः )

भूमिपति, किरणपति सूर्य के समान, वा गोपाल के समान ही ( पश्वः भूमा इव ) सैन्य समूहों को पशुओं के रेवड़ वा प्रकाश-किरण समूहों के तुल्य ही ( वि उनोति ) विविध दिशाओं में प्रेरित करता है। वह ( अरिष्टः) स्वयं शत्रु से न मारा जा कर (सिषासन्) सैन्यों को विभाग करना, धन प्राप्त करना चाहता हुआ, सबसे ( प्रथमः ) मुख्य होकर ( याति ) प्रयाण करता है।

**आ प्र द्र॑व हरिवो मा वि वे॑नः पिश॑ङ्गराते अ॒भि नः॑ सचस्व।**
**न॒हि त्वदि॑न्द्र॒ वस्यो॑ अ॒न्यदस्त्य॑मे॒नांश्चि॒ज्जनि॑वतश्चकर्थ ॥ २ ॥**

भा०—हे ( हरिवः ) अश्व सैन्यों के स्वामिन्! हे ( हरिवः ) मनुष्यों के राजन्! स्वामिन्! तू ( आ द्रव ) सब तरफ़ जा, ( प्र द्रव ) आगे बढ़। ( मा वि वेनः ) कभी विपरीत, धर्मविरुद्ध कामना मत कर। हे ( पिशङ्गराते ) सुवर्ण के दान देने और करादि में भी सुवर्ण एवं परिपक्व धान्य लेने हारे! तू ( नः अभि सचस्व ) हम से समवाय बनाकर रह। हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! ( तत् अन्यत् ) तुझ से दूसरा ( वस्यः ) श्रेष्ठ धनस्वामी भी ( नहि अस्ति ) नहीं है। आप ही ( अमेनान् चित् ) स्त्री रहित पुरुषों को भी ( जनिवतः ) उत्तम स्त्री युक्त ( चकर्थ ) करो। अर्थात् राजा अविवाहितों को विवाहित करने का प्रबन्ध करे। जिससे राष्ट्र की जन सम्पदा की वृद्धि हो।

**उद्यत्सह॒: सह॑स॒ आज॑निष्ट॒ देदि॑ष्ट॒ इन्द्र॑ इन्द्रि॒याणि॒ विश्वा॑।**
**प्राचो॑दयत्सु॒दुघा॑ व॒व्रे अ॒न्तर्वि ज्योति॑षा संववृ॒त्वत्तमो॑ऽवः ॥३॥**

भा०—( यत् ) जिस प्रकार ( सहसः उत् आ अजनिष्ट ) तेजस्वी सूर्य से उषा का तेज प्रकट होता है, और वह ( विश्वा इन्द्रियाणि देदिष्ट ) समस्त चक्षुओं को सब पदार्थ दिखाता है (सुदुघाः प्र अचोदयत्) प्रकाश से पूर्ण करने वाली किरणों को आगे बढ़ाता और उनको ही ( वव्रे अन्तः ) अपने भीतर धारण करता और ( ज्योतिषा संववृत्वत् तमः वि अवः )

अपने तेज से ही सबको ढक लेने वाले अन्धकार को दूर कर देता है उसी प्रकार ( यत् ) जो राजा ( सहसः ) अपने शत्रुपराजयकारी बल से स्वयं ( सहः ) शत्रु विजयी होकर ( उत् आ अर्जनिष्ट ) उदय को प्राप्त होता, उन्नत पद को प्राप्त करता है, वह ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान्, सूर्यवत् प्रतापी पुरुष ( विश्वा इन्द्रियाणि ) समस्त इन्द्रियों को आत्मा के समान, समस्त इन्द्रोचित, राजोचित ऐश्वर्यों को शत्रुहननकारी सैन्य बलों को भी ( देदिष्ट ) अपने वश करे। वह ( वव्रे अन्तः ) वरण करने वाले राष्ट्र के भीतर रहकर ( सुदुघाः ) गोष्ठ में स्थित दुधार गौओं के तुल्य राष्ट्र में विद्यमान सुसम्पन्न ऐश्वर्यप्रद प्रजाओं को ( प्र अचोदयत् ) अच्छी प्रकार शासन करे। और ( ज्योतिषा ) अपने तेज से ( संववृत्वत् तमः ) व्यापक शोक, खेदादि अज्ञान वा दुख को ( वि अवः ) दूर करे।

अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम्।
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥ ४ ॥

भा०—हे ( पुरुहूत ) बहुतसी प्रजाओं द्वारा आदर पूर्वक सेनापति या राजा रूप से स्वीकृत राजन्! ( अनवः ) मनुष्य ( ते अश्वाय ) तेरे अश्व के लिये रथसैन्य ( तक्षन् ) तैयार करें। ( त्वष्टा ) उत्तम शिल्पी ( ते द्युमन्तं ) तेरे लिये तेजस्वी ( वज्रं तक्षत् ) शस्त्र तैयार करे। इस प्रकार ( इन्द्रं महयन्तः ब्रह्माणः ) ऐश्वर्ययुक्त शत्रुहन्ता पुरुष को वेदज्ञ विद्वान् धनी पुरुष ( अर्कैः महयन्तः ) अर्चना योग्य उत्तम स्तुति-वचनों और उत्तम अन्नों से सत्कार करते हुए ( अहये हन्तवा ) अभिमुख खड़े शत्रु के मारने के लिये ( अवर्धयन् ) बढ़ावें, उसे अधिक शक्तिशाली करें। वाग्मी लोग उसे वचनों से और सम्पन्न पुरुष राशन आदि खाद्य सामग्री से उसे पुष्ट करें।

वृष्णे यत्ते वृषणो अर्कमर्चानिन्द्र ग्रावाणो अदितिः सजोषाः।
अनश्वासो ये पवयोऽरथा इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यून् ५।२९

भा०—( यत् ) जो ( वृषणः ) शत्रु पर शस्त्रास्त्रों की वर्षा करने वाले बलवान् वीर पुरुष हे ( इन्द्र ) शत्रुहन्तः ! सेनापते ! ( वृष्णे ते ) तुझ बलवान् सेनापति के ( अर्कम् ) स्तुति योग्य पद को ( अर्चान् ) आदर करते हैं और ( ये ग्रावाणः ) जो स्तुतिकर्त्ता वा शस्त्रधारी क्षत्रिय लोग और ( यत् सजोषाः अदितिः ) जो समान प्रीति वाली अदीन, अपने मनोभाव प्रकट करने में स्वतन्त्र भूमिवासी प्रजा है और ( ये ) जो ( पवयः ) चक्रधारायें या वेगवान् सैन्य हैं ( अनश्वासः ) अश्वों से रहित, ( अरथाः ) रथों से रहित रहकर भी ( इन्द्रेषिताः ) अपने तेजस्वी सेनापति से प्रेरित, सञ्चालित होकर ( दस्यून् अभि अवर्त्तन्त ) दुष्ट शत्रुओं तक पहुंचें। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

**प्र ते पूर्वाणि करणानि वोचं प्र नूतना मघवन्या चकर्थ ।**
**शक्तीवो यद्विभरा रोदसी उभे जयन्नपो मनवे दानुचित्राः ॥ ६ ॥**

भा०—हे ( मघवन् ) उत्तम ऐश्वर्य के स्वामिन् ! हे ( शक्तीवः ) शक्तिशालिन् ! ( यः ) जो तू ( उभे रोदसी ) अन्तरिक्ष और भूमि दोनों को जिस प्रकार धारण करता है उसी प्रकार ( उभे रोदसी ) एक दूसरे को रोक रखने वाली राजशक्ति और प्रजाशक्ति दोनों को ( वि भर ) विविध उपायों से धारण, पालन करता है, ( मनवे ) मनुष्यों के हितार्थ ( दानुचित्राः अपः जयन् ) दान योग्य पदार्थों से अद्भुत रूप से समृद्ध ( अपः ) आप्त प्रजाओं को भी धारण करता है इसलिये मैं विद्वान् जन ( ते ) तेरे ( पूर्वाणि ) पूर्व के पुरुषाओं से स्वीकृत ( करणानि ) कर्त्तव्य और ( या नूतना चकर्थ ) जो तू नये २ कार्य करे उन सबका मैं (प्र प्र वोचं) अच्छी प्रकार उपदेश करूं।

**तदिन्नु ते करणं दस्म विप्राहिं यद्घ्नन्नोजो अत्रामिमीथाः ।**
**शुष्णस्य चित्परि माया अगृभ्णाः प्रपित्वं यन्नप दस्यूँरसेधः ॥ ७ ॥**

भा०—हे ( विप्र ) विविध ऐश्वर्यों वा उपायों से राष्ट्र को पूर्ण करने

वाले ! विद्वन् ! राजन् ! ( यत् ) जो तू ( अहिम् ) सन्मुख आये वा सूर्यवत् कुटिल दुष्ट पुरुष को ( घ्नन् ) मारता हुआ ( अत्र ) उस राष्ट्र में ( ओजः ) अपना पराक्रम बल ( अमिमीथः ) तैयार करता है, ( शुष्णस्य चित् ) शत्रु के शोषण या संताप करने वाले बल के समान ही (मायाः) शत्रु नाशकारी शक्तियों और बुद्धियों को भी ( परि अगृभ्णाः ) सब प्रकार से धारण करता है, और ( प्रपित्वं ) प्राप्य उद्देश्य को आगे ( यन् ) प्राप्त करता हुआ ( दस्यून् अप असेधः ) नाशकारी दुष्टों को दूर करता है, हे ( दस्म ) शत्रुनाशक राजन् ! ( तत् इत् ) यह ही (ते करणं ) तेरा प्रधान कर्त्तव्य है ।

**त्वम॒पो यद॑वे तु॒र्वशा॒यार॑मयः सु॒दुघाः॑ पा॒र इ॑न्द्र ।**
**उ॒ग्रम॑यातु॒मव॑हो ह॒ कुत्सं॒ सं ह॒ यद्वा॑मु॒शनार॑न्त दे॒वाः ॥ ८ ॥**

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! ( त्वम् पारः ) तू प्रजा का उत्तम पालक और संकटों से तारक होकर ( यादवे ) यत्नशील और ( तुर्वशाय ) शत्रु हिंसक एवं धर्मार्थ काम मोक्ष चारों की कामना करने वाले प्रजाजन की समृद्धि के लिये ( सुदघाः ) उत्तम अन्नादि देने वाली जलधारा और ज्ञान दोहन करने वाले आप्त जनों को ( अरमयः ) खूब प्रसन्न स्वच्छ रख उनको जगह २ लेजा । तू ( अयातम् ) शत्रुओं से न प्राप्त होने योग्य ( उग्रम् ) अति प्रबल ( कुत्सम् आवहः ) शत्रुओं के अंगों को काटने में समर्थ तीक्ष्ण शस्त्र बल को धारण कर । और ( उशनाः देवाः ) कामना युक्त विजयार्थी मनुष्य ( ह ) भी ( वां ह ) सैन्य बल और उसके प्रति तुम दोनों को ( सम् अरन्त ) सदा सुप्रसन्न रक्खें ।

**इन्द्रा॑कुत्सा॒ वह॑माना॒ रथे॒ना वा॒मत्या॒ अपि॒ कर्णे॑ वहन्तु ।**
**निः षी॑म॒द्भ्यो धम॑थो॒ निः ष॒धस्था॑न्म॒घोनो॑ हृ॒दो व॑रथ॒स्तमां॑सि ॥ ९ ॥**

भा०—हे ( इन्द्राकुत्सा ) ऐश्वर्यवन् सेनापते ! हे कुत्स ! शत्रु का नाश करने वाले क्षत्रबल ! अथवा हे वेदों के उपदेष्टः ! (रथेन वहमाना)

रथ से जाते हुए ( वाम् ) आप दोनों को ( अत्याः अपि ) अश्व गण भी ( कर्णे वहन्तु ) अपने कान पर धारण करें। आप की आज्ञाएं कान लगा कर सुनें। आप दोनों ( सीम् ) सब ओर से ( अह्रयः ) प्राप्त प्रजाजनों के हित के लिये ही ( निर्धमथः ) उनके बीच से दुष्ट पुरुष को निकाल बाहर करो और ( सधस्थात् ) साथ रहने वाले ( मघोनः हृदः ) ऐश्वर्य सम्पन्न राष्ट्र के मध्य भाग से भी ( तमांसि निर्वरथः ) सब प्रकार के अन्धकारों को दूर करो।

**वातस्य युक्तान्त्सुयुजश्चिदश्वान्कविश्चिदेषो अजगन्नवस्युः।**
**विश्वे ते अत्र मरुतः सखाय इन्द्र ब्रह्माणि तविषीमवर्धन्॥१०॥३०॥**

भा०—( कविः चित् ) जिस प्रकार विद्वान् पुरुष ( अवस्युः वातस्य सुयुजः युक्तान् अश्वान् ) गमन करने की इच्छा वाला होकर वायु के बल से सुख से जुड़ने वाले, जुते अश्वों वा आशुगामी यन्त्रों को ( अजगन् ) प्राप्त करता और चलाता है। उस समय सब वायु ही उसके मित्र सहायक होते हैं। उसी प्रकार ( अवस्युः ) प्रजा की रक्षा करने की इच्छा वाला, रक्षक ( एषः ) वह राजा ( कविः ) क्रान्तदर्शी होकर ( सुयुजः ) उत्तम मनोयोग देने वाले, ( वातस्य ) वायुवद् बलवान् पुरुष के अधीन ( युक्तान् ) नियुक्त पुरुषों को ( अजगन् ) प्राप्त करे, ( अत्र ) इस राज्य कार्य में ( ते विश्वे मरुतः ) वे सब मनुष्य हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! ( सखायः ) मित्र होकर ( ते ब्रह्माणि तविषीम् अवर्धन् ) तेरे धनों, ज्ञानों और बलवती सेना की भी वृद्धि करें। इति त्रिंशो वर्गः॥

**सूरश्चिद्रथं परितक्म्यायां पूर्वं करदुपरं जूजुवांसम्।**
**भरच्चक्रमेतशः सं रिणाति पुरो दधत्सनिष्यति क्रतुं नः॥११॥**

भा०—( सूरः चित् ) जिस प्रकार कोई विद्वान् ( परितक्म्यायां ) चारों तरफ़ कठिनाई से जाने योग्य भूमि में ( उपरं जूजुवांसं रथं पूर्वं

करत् ) मेघ तक वेग से जाने वाले रथ का निर्माण करता है, उसमें ( एतशः चक्रम् ) अश्व के समान उसके स्थानापन्न एक चक्र (Fly wheel) ही उस रथ को ( भरत् ) गति देता है। वह ( सं रिणाति ) अच्छी प्रकार चलता है और ( पुरः क्रतुं दधत् ) रथ के अगले भाग में क्रियोत्पादक यन्त्र वा ऐञ्जिन बनाता है। उसी प्रकार ( सूरः ) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष ( परितक्म्यायाम् ) सब तरफ़ से आपत्ति युक्त संग्रामादि वेला में ( पूर्वम् ) सबसे पहले ( उपरं जूजुवांसं ) मेघ तक वेग से जाने वाले ( रथं ) रथ सैन्य ( करत् ) तैयार करे। स्वयं ( एतशः ) अश्व के तुल्य अग्रगामी होकर ( चक्रं भरत् ) सैन्य चक्र को धारण करे। ( सः क्रतुं दधत् पुरः सं रिणाति ) वह प्रज्ञा को धारण करके आगे रहकर चले, ( नः सनिष्यति ) वह हम प्रजाजनों को विभक्त करे। अध्यात्म में—सुख दुःख देने वाली प्रकृति 'परितक्म्या' है, उससे उपराम, मृत्यु को प्राप्त होने वाला रथ देह है उसे प्रभु बनाता है। एतश, आत्मा है। पहले वह कर्म करता है। अनन्तर उसी का फल भोगता है।

**आयं जना अभिचक्षे जगामेन्द्रः सखायं सुतसोममिच्छन्।**
**वदन्ग्रावाव वेदिं भ्रियाते यस्य जीरमध्वर्यवश्चरन्ति ॥ १२ ॥**

भा०—हे ( जनाः ) प्रजाजनो ! ( अयम् इन्द्रः ) यह ऐश्वर्यवान्, राजा और विद्वान् ( सखायं ) अपने मित्र ( सुत-सोमम् ) पुत्रवत् प्रिय, राष्ट्र को ( इच्छन् ) हृदय से चाहता ( अभिचक्षे ) उसको देखने और उपदेश करने के लिये ( आ जगाम ) सब ओर जाया करे। ( ग्रावा ) ज्ञान का उपदेश करने वाला विद्वान् और शिला के समान दुष्टों का मुख मर्दन करने वाला क्षत्रिय (वदन् ) उपदेश करता हुआ और आज्ञा प्रदान करता हुआ, ( वेदिं ) प्राप्त भूमि को ( भ्रियाते ) पालन करें ( यस्य ) जिसकी ( जीरं ) प्रेरणा को समस्त ( अध्वर्यवः ) अपनी हिंसा वा नाश न चाहने वाले प्रजा जन सदा ( चरन्ति ) आचरण करें, मानें।

ये चाकनन्त चाकनन्त नू ते मर्ता अमृत मो ते अंह आरन् ।
वावन्धि यज्यूँरुत तेषु धेह्योजो जनेषु येषु ते स्याम ॥१३॥३१॥

भा०—हे राजन् ! ( ये मर्त्ताः ) जो मनुष्य ( ते ) तुझे (चाकनन्त) चाहते हैं (ते) वे तुझे (चाकनन्त नु) सदा चाहते ही रहें । हे ( अमृत ) दीर्घायो ! हे चिरंजीव ! आयुष्मन् ! (ते) वे लोग (ते अंहः) तेरे पाप को ( मो आरन् ) प्राप्त न हों । ( उत ) और तू ( यज्यून् ) उत्तम यज्ञ-शील, दानशील, सत्संगी पुरुषों का ( वावन्धि ) सेवन कर उनका सत्संग कर । ( उत ) और तू ( तेषु ओजः धेहि ) उनमें अपना तेज, बल पराक्रम (धेहि) स्थापित कर ( येषु जनेषु ) जिन लोगों में रहते हुए हम ( ते स्याम ) तेरे ही होकर रहें । इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

## [ ३२ ]

गातुरात्रेय ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७, ९, ११ त्रिष्टुप् । २, ३, ४, १०, १२ निचृत्त्रिष्टुप् । ५, ८ स्वराट् पंक्तिः । भुरिक् पंक्तिः ॥

द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

अदर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान्बद्बधानाँ अरम्णाः ।
महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः सृजो वि धारा अव दानवं हन् ॥१॥

भा०—हे ( इन्द्र ) सूर्यवत् तेजस्विन् राजन् ! जिस प्रकार सूर्य ( उत्सम् अदर्दः ) ऊपर आकाश में स्थित मेघ को छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार तू ( उत्सं ) उत्तम रीति से बहने वाले झरने, कूप आदि राष्ट्र में ( अदर्दः ) खना, जिस प्रकार सूर्य ( खानि वि असृजः ) मेघस्थ अन्तरिक्ष छिद्रों को बनाता और उनमें प्रवेश करता है उसी प्रकार तू (खानि) अपनी इन्द्रियों को ( वि असृजः ) विविध मार्गों में प्रेरित कर । (बद्बधानान् अर्णवान् अरम्णाः) सूर्य जिस प्रकार सुप्रबद्ध वा बार २ ताड़ित जलमय मेघों वा पर्वतों को ताड़ता वा, नदी तडागादि को सुभूषित करता है इसी प्रकार ( त्वम् ) तू भी ( अर्णवान् ) जल से युक्त नदी, जल या सागरों,

और धनादि पतियों को ( बद्बधानान् ) खूब सुप्रबद्ध कर ( अरम्णाः ) उनको प्रसन्न कर। जिस प्रकार सूर्य ( महान्तं पर्वतं वि वः ) बड़े भारी जगत्-पालक मेघ को विच्छिन्न करता है उसी प्रकार तू भी बड़े भारी पालक पुरुष को ( वि वः ) विविध उपायों से प्रसिद्ध कर। जिस प्रकार विद्युत् वा सूर्य ( धाराः विसृज ) जलधाराओं को प्रकट करता है उसी प्रकार तू आज्ञा वा उपदेश वाणियों को और राष्ट्र में जलधाराओं को विविध प्रकार से बना। ( दानवं अव हन् ) जिस प्रकार सूर्य या विद्युत् जलदाता मेघ को प्रहार कर नीचे गिराता, बरसाता है उसी प्रकार राजा तेजस्वी होकर ( दानवं ) राजनियमों और धर्म मर्यादाओं को भङ्ग करने वाले दुष्ट जन को (अवहन्) नीचे गिरा कर दण्ड दे, ऐसे व्यक्ति को पदच्युत और समाज च्युत करे और पीड़न भी करे।

**त्वमुत्साँ ऋतुभिर्बद्बधानाँ अरंह ऊधः पर्वतस्य वज्रिन्।**
**अहिं चिदुग्र प्रयुतं शयानं जघन्वाँ इन्द्र तविषीमधत्थाः॥ २॥**

भा०—( बद्धधानान् उत्सान् ) जिस प्रकार खेतिहर बंधे हुए, पक्के कुओं को ( ऋतुभिः ) ऋतुओं के अनुसार ( अरंहत् ) चलाता है वा सूर्य या विद्युत् जिस प्रकार ( ऋतुभिः बद्धधानान् उत्सान् अरंहत् ) ऋतु ग्रीष्मादि या अनावृष्टि आदि के कारण बंधे या रुके हुए उत्स अर्थात् जल-धारा नद नदियों या मेघस्थ जलधाराओं को चलाता है और ( पर्वतस्य ऊधः शयानं अहिम् जघन्वान् तविषीम् धत्ते ) मेघ था पर्वत के जलधारक भाग को और आकाश में निश्चल स्थित मेघ को जिस प्रकार प्रहार करता हुआ सूर्य या विद्युत् बलवती शक्ति को धारण करता है उसी प्रकार हे (वज्रिन्) बलवन्! शस्त्रास्त्र बल के स्वामिन्! राजान्! सेनापते! (त्वम्) हे तू ( ऋतुभिः ) राजसभा के विद्वान् सदस्यों से मिलकर उनकी अनुमति से ( बद्बधानान् उत्सान् ) बंधे हुए कूप, तड़ाग और बहते झरने और बंधों आदि जल स्थानों को ( अरंहः ) चला, उनमें नहरें या यन्त्रादि

लगाकर उनको चालू कर वा ( ऋतुभिः ) उनको गमनशील यन्त्रों में चालित कर। हे ( वज्रिन् ) वज्रवत् लौहादि के यन्त्रों, शस्त्रों व अस्त्रों के स्वामिन् ! तू ( तविषीम् ) अति बलवती, गज-पर्वतभेदिनी शक्ति को भी धारण कर। और ( पर्वतस्य ऊधः ) पर्वत के जलाधार स्थान को और ( अयुतं ) लाखों करोड़ों मन ( शयानं ) गंभीर प्रसुप्त ( अहिं ) जल को ( जघन्वान् ) सुरंगादि से भेद कर उसको गति देता हुआ, नदी नहर, नल आदि द्वारा चला, उनको प्राप्त कर। इसी प्रकार हे राजन् ! तू ( तविषीम् अधत्थाः ) बलवती सेना को धारण कर, उसकी पालना कर, इस कारण तू ( ऋतुभिः ) सदस्यों से भी मिलकर ( बद्बधानान् उत्सान् अरंहः) नियम में बंधे हुए उत्तम पुरुषों को सन्मार्ग में चला। तू (पर्वतस्य ऊधः ) पर्वतवत् जल के पालक, शत्रु शासक के जलवत् जीवन या अन्न के धारक स्थान और ( अहिं अयुतं शयानं ) संमुख आये लाखों की फौज सहित पड़े शत्रु को ( जघन्वान् ) मारने वाला हो।

त्यस्य॑ चि॒न्मह॒तो निर्मृ॒गस्य॒ वध॑र्जघान तवि॒षीभि॒रिन्द्र॑: ।
य एक॒ इद॑प्र॒तिर्मन्य॑मान॒ आद॒स्माद॒न्यो अ॑जनिष्ट॒ तव्या॑न् ॥३॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रु पद को तोड़ने हारा पुरुष (त्यस्य) उस ( महतः ) महान् ( मृगस्य चित् ) सिंहवत् पराक्रमी पुरुष के भी ( वधः ) शस्त्र बल को अपनी ( तविषीभिः ) प्रबल सेनाओं से (जघान) मार गिरावे। ( यः ) जो ( एकः ) अकेला ( अन्यः ) शत्रु भी (अप्रतिः) अपने को अद्वितीय ( मन्यमानः ) मान रहा है ( आत् ) अनन्तर ( अस्मात् अन्यः ) उससे भिन्न दूसरा राजा ( तव्यान् ) अधिक बलवान् रूप में ( अजनिष्ट ) प्रकट हो।

त्यं चि॑दे॒षां स्व॒धया॒ मद॑न्तं मि॒हो नपा॑तं सु॒वृधं॑ तमो॒गाम् ।
वृष॑प्रभर्मा दान॒वस्य॒ भामं॒ वज्रे॑ण व॒ज्री नि ज॑घान॒ शुष्ण॑म् ॥४॥

भा०—( एषा ) इन लोकों व प्रजाओं के बीच ( स्वधया मदन्तं ) जल और अन्न से हर्षित करने वाले, (मिहः नपातम्) वृष्टि को न गिरने देने वाले, (तमोगां) अन्धकार रूप नीलता को प्राप्त मेघ को जिस प्रकार सूर्य ( वज्रेण ) विद्युत् द्वारा ( नि जघान ) ताड़ित करता है ( चित् ) उसी प्रकार ( एषां ) इन वीर प्रजावर्गों के बीच ( त्यं ) उस (स्वधया मदन्तं) अपने सैन्यवर्ग को अन्न से तृप्त करते और स्वयं अपने धन की धारणा शक्ति से ( मदन्तं ) हर्षित होते हुए और ( मिहः न पातम् ) ऐश्वर्य की वृष्टि न करने वाले ( तमो-गाम् ) अज्ञानान्धकार को प्राप्त ( सु-वृधं ) खूब बढ़ने वाले, ( दानवस्य भामं ) दुष्ट पुरुष के क्रोध वा क्रुद्ध सैन्य और (शुष्णम्) प्रजा के प्राण पोषक बल को ( वज्री ) शस्त्रास्त्र बल से सम्पन्न राजा ( वृष-प्र-भर्मा सन् ) बलवान्, प्रबन्धकर्त्ता और शस्त्रवर्षी चतुर वीर पुरुषों का भरण पोषण कर्त्ता होकर (नि जघान) बराबर नाश करता रहे।

त्यं चिदस्य क्रतुभिर्निषत्तममर्मणो विददिदस्य मर्म।
यदीं सुक्षत्र प्रभृता मदस्य युयुत्सन्तं तमसि हर्म्ये धाः ॥ ५ ॥

भा०—हे ( सु-क्षत्र ) उत्तम वीर्य वा बल से सम्पन्न राजन्! ( त्वं ) तू ( क्रतुभिः ) अपनी प्रज्ञा या बुद्धियों से, ( अमर्षणः ) निर्बल मर्म स्थानों से रहित ( अस्य ) इस सन्मुख उपस्थित शत्रुजन के (नि-सत्तम् ) निश्चित रूप से विदित ( त्यं मर्म ) उस मर्म को ( विदत् ) जान ले ( यत् ) जिससे (मदस्य प्रभृता) मद के अधिक बढ़ जाने से ( युयुत्सन्तं ) युद्ध की इच्छा करते हुए उसको तू ( तमसि हर्म्ये ) अन्धकारवत् कष्टदायी और उसके बल, पद के हरने वाले कारागार या बड़े प्रासाद में भी उसे ( धाः ) वन्दी कर रख। अथवा युद्ध करना चाहते हुए को भी तू ( मदस्य प्रभृता ) तृप्तिकारक अन्न के बल पर ( तमसि हर्म्ये धाः ) रात्रिवत् सुखदायी प्रासाद में ही पड़े रहने दे। वह विलास में फंसा रहे तू उसके मर्म अपने हाथ में लिये रह।

त्यं चिदित्था कत्पयं शयानमसूर्ये तमसि वावृधानम् ।
तं चिन्मन्दानो वृषभः सुतस्योच्चैरिन्द्रो अपगूर्या जघान ॥६॥३२॥

भा०—जिस प्रकार विद्युत् (कत्पयं असूर्ये तमसि शयानं वावृधानं) सुखकारी जल वाले, अंधकार में विद्यमान और फैलते हुए मेघ को ताड़ता (इत्था चित्) इसी प्रकार (कत्पयम्) सुख पूर्वक जलान्न का सेवन करने वाले वा संख्या में कई एक (असूर्ये तमसि) सूर्यरहित, छाया-च्छादित अन्धकार में पड़े और (वावृधानम्) बराबर बढ़ते हुए (त्यम्) उस शत्रुजन को भी (सुतस्य मन्दानः) अभिषेक में प्राप्त ऐश्वर्य के कारण तृप्त और प्रसन्न होकर (इन्द्रः) शत्रुहन्ता सेनापति, (उच्चैः अपगूर्य) शस्त्रास्त्र बल उद्यत करके खूब सावधानी से (जघान) नाश करे। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

उद्यदिन्द्रो महते दानवाय वधर्यमिष्ट सहो अप्रतीतम् ।
यदीं वज्रस्य प्रभृतौ ददाभ विश्वस्य जन्तोरधमं चकार ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (दानवाय महते वज्रम् उद् यमिष्ट) जलादि देने वाले मेघ को छिन्न भिन्न करने के लिये बल रूप प्रताप को सर्वोपरि धारण करता है उसी प्रकार (यत्) जो (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (महते दानवाय) बड़े भारी दानशील प्रजाजन के पालन और प्रजा नाशक दुष्ट पुरुषों के नाश करने के लिये (सहः) शत्रु पराजयकारी (अप्रतीतम्) अन्यों से अज्ञात, और अन्यों से प्रतीकार न करने योग्य भारी सैन्य बल को (उद्-यमिष्ट) सदा तैयार रखता है, और जो (वज्रस्य प्रभृतौ) 'वज्र' अर्थात् शत्रुवारक शस्त्रबल के प्रहार करते ही शत्रु को (ददाभ) नाश कर डालता है, वह अवश्य अपने शत्रु को (विश्वस्य जन्तोः) समस्त प्राणियों के (अधमं चकार) नीचे गिरा देता है।

त्यं चिदर्णं मधुपं शयानमसिन्वं वव्रं मह्याददुग्रः ।
अपादमत्रं महता वधेन नि दुर्योण आवृणङ्मृध्रवाचम् ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य, विद्युत् वा प्रबल वायु ( अर्णं ) जलमय ( मधुपं ) जल वा अन्न के पालक, ( शयानं ) निश्चेष्ट, ( असिन्वम् ) अवद्ध, ( वव्रम् ) व्यापक, ( अत्रं ) निरन्तर गतिशील ( मृध्र-वाचम् ) हिंसाकरी विद्युन्मय वाणी से युक्त मेघ को ( महता वधेन ) बड़े विद्युन्मय आघात से ( आदद् ) सब प्रकार से खण्डित करता है, ( चित् ) उसी प्रकार ( उग्रः ) बलवान्, प्रचण्ड राजा ( त्यं ) उस ( अर्णं ) जलवत् गंभीर वा धन के स्वामी, (मधुपं) 'मधु' अर्थात् अन्न, जल, राष्ट्र के उपभोक्ता वा सैन्यबल के पालक ( असिन्वं ) शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ वा असि अर्थात् शस्त्र बल में स्तुति योग्य, ( वव्रं ) सब से वरणीय परन्तु ( शयानं ) लोकहित में उदासीन बलवान्, अचेत ( अत्रं ) अपनी प्रजा के भक्षक ( अपादम् ) पैररहित, भागने में असमर्थ, लाचार ( मृध्रवाचं ) हिंसक, दुःखद वाणी बोलने वाले, कटुभाषी दुष्ट पुरुष को ( दुर्योणे ) दुःखदायी स्थान में बन्द करके ( महता वधेन ) बड़े भारी शस्त्र या दण्ड से ( आवृणक् ) दण्डित करे।

को अस्य शुष्मं तविषीं वरात एको धना भरते अप्रतीतः।
इमे चिदस्य ज्रयसो नु देवी इन्द्रस्यौजसो भियसा जिहाते ॥९॥

भा०—( कः ) कौन ( अस्य ) इस प्रबल राजा के ( शुष्मं ) शत्रु-शोषक बल, सुखसमृद्धि और ( तविषीं ) बलवती सेना को ( वराते ) अपने वश कर सकता वा उसका वारण कर सकता है। वह ( एकः ) अकेला ही ( अप्रतीतः ) अप्रत्यक्ष रूप से वा अद्वितीय रूप से सर्वोपरि होकर ( धना भरते ) सब धन समृद्धियों को प्राप्त कर धारण करता है। ( इमे देवी ) ये दोनों यश, धन वा विजय की चाहने वाली सेना ( अस्य ) इस ( ज्रयसः ) वेगवान्, विजयी ( इन्द्रस्य ) राजा के ( ओजसः ) बल पराक्रम के ( भियसा ) भय से ( जिहाते ) सत्पक्ष पर चलती हैं।

न्यस्मै देवी स्वधितिर्जिहीत इन्द्राय गातुरुशतीव येमे ।
सं यदोजो युवते विश्वमाभिरनु स्वधाव्ने क्षितयो नमन्त ॥१०॥

भा०—( युवते इन्द्राय, स्वधाव्ने उशती इव येमे ) जिस प्रकार युवा ऐश्वर्य युक्त, अन्नादि समृद्धि, धनैश्वर्य और अपने शरीर को धारण पालन करने के सामर्थ्य से युक्त पुरुष के लिये कामना करती हुई स्त्री उससे विवाह कर लेती है, उसी प्रकार ( अस्मै ) इस ( इन्द्राय ) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता, ( युवते ) युवावस्थापन्न, वा ( युवते ) सत्य असत्य का विवेक करने वाले ( स्वधाव्ने ) अन्न और ऐश्वर्य के स्वामी इस राजा के लिये ( स्वधितिः देवी ) अपने 'स्व' को धारण करने वाली शस्त्र शक्ति, और ( गातुः ) गमन करने योग्य भूमि, दोनों ( नि जिहीते ) विनीत होकर प्राप्त होतीं और ( येमे ) उसको स्वस्वाभिभाव सम्बन्ध से बांध लेती अर्थात् उसे अपना स्वामी बना लेती हैं और आप उसकी पत्नी के समान भोग्य होकर उसके अधीन रहती हैं। ( यत् ) जब उसका ( ओजः ) बल पराक्रम ( आभिः ) इन प्रजाओं के साथ ( सं येमे ) उनको अच्छी प्रकार बांध लेता है तब ( अनु ) उसके अनुकुल होकर ( क्षितयः सं नवन्त ) समस्त भूमि निवासी मनुष्य उसके आगे झुकते हैं।

एकं नु त्वा सत्पतिं पाञ्चजन्यं जातं शृणोमि यशसं जनेषु ।
तं मे जगृभ्र आशसो नविष्ठं दोषावस्तोर्हवमानास इन्द्रम् ॥११॥

भा०—मैं ( त्वा एकं नु ) तुझ अकेले को ही ( सत्पतिं ) सज्जनों का पालक, ( पाञ्चजन्यं ) पांचों जन, ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, और शासक वर्ग अर्थात् निषाद इन पाचों के हितकारी ( जनेषु जातम् ) सब मनुष्यों में प्रसिद्ध, ( यशसं ) यशस्वी, ( शृणोमि ) सुनता हूं। ( मे ) मुझ प्रजा के ( नविष्ठं इन्द्रम् ) अतिस्तुत्य, सदा नवीन, अति रमणीय ऐश्वर्ययुक्त स्वामी को ( आशसः ) आदरपूर्वक स्तुति करने वाले और नाना कामनाओं से युक्त लोग ( हवमानासः ) आदरपूर्वक अपना प्रभु

स्वीकार करते हुए ( दोषा वस्तोः ) दिन और रात ( तं जगृभ्रे ) उसको पकड़े रहें, उसको अपना आश्रय बनाये रहें और अपनाये रहें। इसी प्रकार स्त्री भी चाहा करे कि मैं अपने पति को सर्व हितकारी, प्रसिद्ध, यशस्वी होता हुआ सुनूं। वह सदा ऐश्वर्यवान् स्तुतियोग्य रहे, उत्तम विद्वान् जन सदा उसको आश्रय किये रहें।

एवा हि त्वामृतुथा यातयन्तं मघा विप्रेभ्यो ददतं शृणोमि।
किं ते ब्रह्माणो गृहते सखायो ये त्वाया निदधुः काममिन्द्र ॥१२॥
३३ ॥ १ ॥ २ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् राजन्! ( एव हि ) इस प्रकार ही मैं सदा ( ऋतुथा ) सत्य ज्ञान के अनुसार वा उचित ऋतुओं के अनुसार ( यातयन्तम् ) सूर्यवत् समस्त प्रजा जनों को यत्न उद्योग करते कराते हुए और ( विप्रेभ्यः ) विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुषों को ( मघा ददतं ) नाना धन प्रदान करते हुए ( शृणोमि ) श्रवण करूं। हे राजन्! ( ये ) जो ( त्वाया ) तेरे आश्रय ही अपना ( कामम् ) समस्त अभिलषित ( निदधुः ) रखते हैं, तुझ पर ही भरोसा किये हैं वे वस्तुतः ( ते सखायः ) तेरे मित्र हैं। वे ( ब्रह्माणः ) बड़े वेदज्ञ विद्वान् जन ( ते किं गृहते ) तेरा ले भी क्या लेते हैं! वे तेरे अधीन त्यागवृत्ति से रहकर अन्न वस्त्र पर ही जीवन व्यतीत करते हैं। इसी प्रकार स्त्री भी अपने पति को ( ऋतुथा यातयन्तं ) ऋतु पर सन्तानोत्पत्ति करने वाला, दानशील सुने, उत्तम गृहस्थ के विद्वान् पुरुष हितैषी होते हैं वे गृहस्थों पर आश्रित रह कर अन्न वस्त्रादि लेकर भी कुछ नहीं लेते। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥ इति पञ्चमे मण्डले द्वितीयोऽनुवाकः ॥

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

# अथ द्वितीयोऽध्यायः । तृतीयोऽनुवाकः

## [ ३३ ]

संवरणः प्राजापत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ७, पंक्तिः । ३ निचृत्पंक्तिः । ४, १० भुरिक्पंक्तिः । ५, ६ स्वराट्पंक्तिः । ८ त्रिष्टुप् । ९ निचृत्त्रिष्टुप् । दशर्चं सूक्तम् ॥

**महि॑ म॒हे त॒वसे॑ दीध्ये॒ नॄनिन्द्रा॑ये॒त्था त॒वसे॒ अत॑व्यान् ।**
**यो अ॑स्मै सुम॒तिं वाज॑सातौ स्तु॒तो जने॑ सम॒र्य॑श्चि॒केत॑ ॥ १ ॥**

भा०—( यः ) जो राजा ( वाजसातौ ) ऐश्वर्य लाभ और संग्राम विजय के लिये ( स्तुतः समर्यः ) प्रस्तुत होकर मरने वा मारने वाले वीर पुरुषों सहित ( अस्मै जने ) इस राष्ट्र के वासी जनों के ऊपर शासक होकर ( सुमतिं चिकेत ) उत्तम बुद्धि, सन्मति जानता और अन्यों को तदनुसार चलाने में समर्थ है ( इत्था ) ऐसे ( तवसे इन्द्राय ) बलवान् ऐश्वर्यवान् पुरुष के अधीन ( अतव्यान् नॄन् ) निर्बल पुरुषों को भी मैं ( महे तवसे ) बड़ा भारी बल सम्पादन करने के लिये ( महि दीध्ये ) पर्याप्त शक्तिशाली जानता, मानता हूं । उत्तम चतुर, ज्ञानी नायक के अधीन निर्बल जन भी पर्याप्त सबल होकर बड़ा भारी कार्य करने में समर्थ होते हैं । अथवा जो ( तवसे इन्द्राय अतव्यान् समर्यः स्तुतः वाजसातौ सुमतिं चिकेत अस्मै महे तवसे महि नॄन् दीध्ये) बड़े बल और ऐश्वर्य पद के लिये यत्नवान् होकर बहुत से मर्दों के सहित संग्राम करने की मति जानता है उसके बड़े बलसैन्य के लिये भी बड़े २ नायकों को आवश्यक जानता हूं ।

**स त्वं न॑ इन्द्र धियसा॒नो अ॒र्कैर्हरी॑णां वृषन्योक्त्र॑मश्रेः ।**
**या इ॒त्था म॑घव॒न्ननु॒ जोषं॒ वक्षो॑ अ॒भि प्रार्यः सक्षि॒ जना॑न् ॥ २ ॥**

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! ( सः ) वह ( त्वं ) तू (धियसानः)

राज्य कार्यों की चिन्ता करता तू ( अर्कैः ) अर्चना योग्य, उत्तम साधनों से (हरीणां योक्त्रम्) अश्वों के जोड़ने को सारथी के समान समस्त (हरीणां) राज्य कार्यों के सञ्चालक अध्यक्ष मनुष्यों को (योक्त्रम् अश्वेः) योजन, परस्पर संयोग वा उनको नियुक्त वा आश्रय देकर, उत्तम पुरुषों को उत्तम पदों पर नियुक्त कर। हे ( वृषन् ) राज्य प्रबन्ध करने हारे बलवान् राजन्! हे ( मघवन् ) उत्तम ऐश्वर्य के स्वामिन्! ( इत्था ) इस प्रकार से तू (यां:) जिन प्रजाओं का भार ( अनुजोषं ) प्रतिदिन प्रेमपूर्वक ( वक्षः ) अपने ऊपर लेता उन ( जनान् अभि ) मनुष्यों के प्रति तू ( अर्यः ) स्वामिवत् ( प्र सक्षि ) खूब सुदृढ़ समवाय युक्त होकर रह।

न ते त इन्द्राभ्य१स्मदृष्वायुक्तासो अब्रह्मता यदसन्।
तिष्ठा रथमधि तं वज्रहस्ता रश्मिं देव यमसे स्वश्वः ॥ ३ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! हे ( ऋष्व ) महापुरुष! ( यत् ) जो ( अयुक्तासः ) तेरे साथ योग न करें और जो (न ते) तेरे भी होकर न रहें। और जो ( अब्रह्मता ) धन हीनता है, वह ( ते अस्मद् ) तेरे प्रजा रूप हम लोगों से ( अभि ) परे रहें हे ( वज्रहस्त ) शक्ति और बल को अपने वश या हाथ में रखने वाले! तू ( रथम् अधि तिष्ठ ) जिस रथ पर आरूढ़ हो ( तं ) उसके ( रश्मिं ) रासों को ( स्वश्वः ) उत्तम अश्वारोही के तुल्य ( यमसे ) नियन्त्रण में रख। रथ के समान ही राज्य की बागडोर को अच्छी प्रकार सम्भाल।

पुरू यत्त इन्द्र सन्त्युक्था गवे चकर्थोर्वरासु युध्यन्।
ततक्षे सूर्याय चिदोकसि स्वे वृषा समत्सु दासस्य नाम चित् ४

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! ( यत् ) जो ( ते ) तेरे ( उक्था ) उत्तम प्रशंसनीय कार्य हैं जिनको तू ( गवे ) गवादि पशु और भूमि की उन्नति के लिये ( उर्वरासु युध्यन् चकर्थ ) उपजाऊ भूमियों के निमित्त युद्ध करता हुआ करे, तब तू ( वृषा ) मेघवत् वर्षणशील होकर (सूर्याय)

सूर्यवत् तेजस्वी पद के योग्य ( स्वे ओकसि ) अपने पद पर रहकर (समत्सु ) संग्रामों में ( दासस्य चित् नाम ततक्षे ) जल देने वाले मेघ के तुल्य उदार दाता और राष्ट्र के सेवक रूप से नाम या ख्याति को उत्पन्न कर।

**व॒यं ते त॑ इन्द्र॒ ये च॒ नर॒: शर्धो॑ जज्ञा॒ना या॒ताश्च॒ रथा॑: ।**
**आस्मा॒ञ्जग॑म्यादहिशुष्म॒ सत्वा॒ भगो॒ न हव्य॑: प्रभृ॒थेषु॒ चारु॑: ॥५॥१॥**

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् राजन् ! ( ये च ) और जो ( नरः ) नायक लोग ( ते शर्धः जज्ञानाः ) तेरे बल को पैदा करने वाले और जो ( याताः च रथाः ) प्राप्त वा प्रयाणशील रथ हैं और ( ते वयं ) वे हम ही तेरे हों। हे ( अहिशुष्म ) अग्रगामी या सर्वतो मुख जाने वाले बल के स्वामिन् ! ( भगः न हव्यः ) ऐश्वर्यवान् तुझ स्वामी के तुल्य स्तुत्य ( प्रभृथेषु चारुः ) उत्तम रीति से भरण करने योग्य परिजनों में सबसे श्रेष्ठ, ( हव्यः ) स्तुति योग्य ( सत्वा ) बलवान्; सात्विक पुरुष ( अस्मान् आ जगम्यात् ) हमें प्राप्त हो। इति प्रथमो वर्गः ॥

**प॒पृ॒क्षेण्य॑मिन्द्र॒ त्वे ह्योजो॑ नृ॒म्णानि॑ च नृ॒तमा॑नो॒ अम॑र्तः ।**
**स न॒ एनीं॑ वसवानो र॒यिं दा॒: प्रार्यः॑ स्तु॒षे तु॑विम॒घस्य॒ दान॑म् ॥६॥**

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! ( त्वे हि ) तेरे अधीन रहने वाला, ( ओजः ) बल पराक्रम ( पपृक्षेण्यम् ) सदा सबके प्रश्न का विषय बना रहे, और ( त्वे नृम्णानि च ) तेरे अधीन नाना प्रकार के ऐश्वर्य भी ( पपृक्षेण्यानि ) प्रश्न योग्य एवं प्रजाओं के पोषक होकर रहें। वे अपार हों। ( त्वे नृतमानः ) तेरे अधीन नाचता हुआ, अर्थात् तेरे इशारे पर चलता हुआ मनुष्य भी ( अमर्त्तः ) साधारण मनुष्य से भिन्न होकर रहे। ( सः ) वह तू ( एनीं वसवानः ) श्वेत शुक्लवर्णा, गौर, सदाचारिणी और प्राप्त होने योग्य मन्तव्या स्त्रीवत् उपभोग्य प्रजा को प्राप्त कर ( वसवानः ) उसे बसाता हुआ और उसमें वसुपति के समान रहता

हुआ, तू ( नः ) हमें ( रयिं दाः ) धनैश्वर्य प्रदान कर। और प्रजागण ( तुवि-मघस्य ) बहुत धनाढ्य ( अर्यः ) तुझ स्वामी के ( दानम् ) दान की ( प्र स्तुपे ) खूब स्तुति करूं। और तू ( अर्यः सन् तुवि-मघस्य दानं प्र स्तुपे) स्वामी होकर बहुत धन समृद्ध राष्ट्र की अच्छी प्रकार स्तुति कर।

**एवा न इन्द्रोतिभिरव पाहि गृणतः शूर कारून्।**
**उत त्वचं ददतो वाजसातौ पिप्रीहि मध्वः सुषुतस्य चारोः ॥७॥**

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ( एव ) इस प्रकार तू ( नः ) हमें ( अव ) रक्षा कर। ( गृणतः ) उपदेश करने वाले विद्वानों और ( कारून् ) क्रियाकुशल शिल्पियों को हे ( शूर ) शूरवीर तू ( पाहि ) पालन कर। हे राजन् ( उत ) और ( त्वचं ) अपने शरीर की ( वाजसातौ ददतः ) संग्राम और अन्नोत्पादन, कृषि आदि के कार्य में लगाने वाले पुरुषों को ( चारोः ) उत्तम, गमनशील ( सुसुतस्य ) उत्तम रीति से तैयार किये ( मध्वः ) अन्न और जल से ( पिप्रीहि ) पूर्ण कर। शूरवीरों को उत्तम शशन और कृषकों को बहता जल देकर सन्तुष्ट कर।

**उत त्ये मा पौरुकुत्स्यस्य सूरेस्त्रसदस्योर्हिरणिनो रराणाः।**
**वहन्तु मा दश श्येतासो अस्य गैरिक्षितस्य क्रतुभिर्नु सश्चे ॥८॥**

भा०—( उत ) और ( पौरुकुत्स्यस्य ) बहुत सी सैन्य समुदाय वा शस्त्रधर सैनिकों के अध्यक्ष ( सूरेः ) विद्वान् ( त्रसदस्योः ) भय त्रस्त शत्रु को उखाड़ फेंकने वाले वा दस्युओं को भयभीत करने वाले ( हिरणिनः ) सुवर्णादि ऐश्वर्य के स्वामी के ( रराणाः ) अति चपल, क्रीड़ा से चलने वाले ( त्ये ) वे ( श्येतासः ) श्वेत, शुक्लवर्ण दशों अश्व-सैन्य ( मा वहन्तु ) मुझ राष्ट्र के कार्य-भार को धारण करें। और (अस्य) इस (गैरिक्षितस्य) पर्वतादि दुर्ग के निवासी वा वाणी आज्ञा आदि या वेद या परस्पर की स्थिर शर्त्तों की मर्यादा में रहने वाले ( अस्य ) इस राजा

के ( क्रतुभिः ) उत्तम कर्मों और ज्ञानों से मैं ( नु ) अवश्य शीघ्र ही ( सश्चे ) उत्तम रूप से प्रवन्ध युक्त हो जाऊं।

उत त्ये मा मारुताश्वस्य शोणाः क्रत्वामघासो विदथस्य रातौ।
सहस्रा मे च्यवतानो ददान आनूकमर्यो वपुषे नार्चत् ॥ ९ ॥

भा०—( उत ) और (मारुत-अश्वस्य) वायु वेग से जाने वाले अश्वों के स्वामी ( विदथस्य ) नाना ऐश्वर्य वा राज्यासन प्राप्त करने वाले राजा के ( रातौ ) दान में ( त्ये ) वे ( शोणाः ) लाल वर्ण के वा अति गति शील, ( क्रत्वा मघासः ) कार्य और बुद्धि से उत्तम धन प्राप्त करने वाले भृत्य जन और ( सहस्रा च्यवतानः ) हज़ारों ऐश्वर्यों का दान करने वाला राजा और ( ददानः ) आभरण देने वाला ( अर्यः ) स्वामी ये सभी (मा) मुझे ( वपुषे आनूकं न मे ) मेरे राष्ट्रमय शरीर को देह को-अनुरूप आभूषण के तुल्य ( अर्चत् ) सुशोभित करते हैं।

उत त्ये मा ध्वन्यस्य जुष्टा लक्ष्मण्यस्य सुरुचो यतानाः।
मह्ना रायः संवरणस्य ऋषेर्व्रजं न गावः प्रयता अपि ग्मन् १०।२

भा०—( गावः व्रजं न ) गौएं जिस प्रकार गोशाला को प्राप्त होती हैं और ( ऋषेः संवरणस्य प्रयताः गावः व्रजं न ) मन्त्रार्थद्रष्टा गुरु की प्रदान की वाणियां जिस प्रकार समीप आये शिष्य को प्राप्त होती हैं उसी प्रकार ( ध्वन्यस्य ) उत्तम ध्वनि करने वाले, ठीक खरी आवाज़ देने वाले ( लक्ष्मण्यस्य ) राज-मुद्रा चिह्न से अंकित ( रायः मह्ना ) धनैश्वर्य के महान् सामर्थ्य से ( संवरणस्य ) मिल कर वरण किये गये राजा और वरण करने वाले प्रजाजन की ( सुरुचः ) उत्तम रुचि कर, सबको रुचने वाली मनोहर ( यतानाः ) यत्नशील ( गावः ) भूमियां और आज्ञावाणियां या धाराएं ( प्रयताः ) सुप्रबद्ध और अच्छी प्रकार नियत रूप होकर ( व्रजं अपि ग्मन् ) मार्ग और संसार को प्राप्त करें। अर्थात् भूमियों में मार्ग हों, आज्ञाओं का प्रसार हो।

## [ ३४ ]

संवरणः प्राजापत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप् । ६, ६ त्रिष्टुप् । २, ४, ५ निचृज्जगती । ३, ७ जगती । ८ विराड्जगती ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

**अजातशत्रुमजरा स्वर्वत्यनु स्वधामिता दस्ममीयते ।**
**सुनोतन पचत ब्रह्मवाहसे पुरुष्टुताय प्रतरं दधातन ॥ १ ॥**

भा०—( अजरा ) जीर्ण न होने वाली, (स्वर्वती) सुख साधनों से समृद्ध, ( स्वधा ) स्वयं अपने को धारण करने वाली, अपने में धन को धारने वाली, राष्ट्रवासिनी प्रजा जरारहित युवति स्त्री के समान ही ( अजात-शत्रुम् ) शत्रुरहित, अप्रतिद्वन्द्वी ( दस्मम् ) विघ्नों के विनाशक पुरुष को ( ईयते ) प्राप्त होती है । हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग ( पुरु-स्तुताय ) बहुतों से प्रशंसित ( ब्रह्म-वाहसे ) धन और ज्ञान को धारण करने वाले, विद्वान् और सम्पन्न पुरुष के आदरार्थ ( सुनोतन ) उत्तम ऐश्वर्यादि उत्पन्न करो, ( पचत ) उत्तम भोजन का पाक बनाओ और ( प्रतरं ) खूब अच्छी प्रकार दुःख संकटादि से तरने और दूर जाने के साधन नाव, रथादि (दधातन) अपने पास रक्खो और बनाओ । ( २ ) गृहस्थ पक्ष में—पति को सुख देने वाली स्त्री 'स्वर्वती' गर्भ धारण में समर्थ 'स्वधा' जरारहित युवति 'अजरा' है वह दर्शनीय सुन्दर पुरुष को प्राप्त हो । ज्ञानी वीर्यवान् पुरुष 'ब्रह्म-वाहस्' है उसके बलवृद्ध्यर्थ उत्तम स्नानाभिषेक और उत्तम भोजन पाक हो, उसी को ( प्रतरं ) संसार-सागर के तरण का साधन स्त्री प्रदान करो ।

**आ यः सोमेन जठरमपिप्रतामन्दत मघवा मध्वो अन्धसः ।**
**यदीं मृगाय हन्तवे महावधः सहस्रभृष्टिमुशना वधं यमत् ॥२॥**

भा०—( यः ) जो राजा ( सोमेन ) ऐश्वर्य वा अन्न से उदर के

तुल्य ( जठरम् ) अपने राष्ट्र के भीतरी भाग को (आ अपिप्रत ) सब ओर से भर लेता है। वह ( मघवा ) उत्तम ऐश्वर्यवान् होकर ( मध्वः ) मधुर ( अन्धसः ) अन्नादि से ( अमन्दत ) खूब तृप्ति और आनन्द लाभ करे। और ( यत् ) जो ( ईम् ) सब ओर केवल ( हन्तवे मृगाय महावधः ) हननशील हिंसक सिंह के पेट भरने के लिये अन्य जीवों के भारी वध के सदृश शत्रु राजा वा स्वयं हिंसाव्यसनी राजा की सन्तुष्टि के लिये भारी जनसंहार हो तो ऐसे ( सहस्रभृष्टिम् ) हजारों जनों और जीवों को आग से भून देने वाले ( वधं ) हत्याकाण्ड संग्रामादि को, (उशनाः) समस्त प्राणियों को सुखी चाहने वाला, उनका प्यारा दयार्द्र हृदय राजा वा तेजस्वी विद्वान् अवश्य ( यमत् ) रोक दे। ऐसे जनसंहार न होने दे ( २ ) इसी प्रकार यदि धनाढ्य लोग अपना पेट अन्नों के रसों और वनस्पतियों से पूर्ण कर लेते हैं वे जीवन का अधिक सुख पाते हैं, यह जो मृग को मारने के लिये भारी शिकार, वध की आयोजना होती है इस मांस के कारवार में सहस्रों जीव अग्नि पर भुन जाते हैं ऐसे हत्याकाण्ड को जीवों के प्रति दयाशील राजा आवश्य रोक दे।

**यो अ॑स्मै घ्रं॒स उ॒त वा॒ य ऊध॑नि॒ सोमं॑ सु॒नोति॒ भव॑ति द्यु॒माँ अह॑। अपा॑प श॒क्रस्त॑त॒नुष्टि॑मूहति त॒नूशु॑भ्रं म॒घवा॒ यः क॑वास॒खः ॥ ३ ॥**

भा०—( यः ) जो ( घ्रंसे ) दिन के समय ( उत वा ) अथवा ( यः ऊधनि ) रात्रि या प्रातः समय में अर्थात् दिन रात ( अस्मै ) इस राष्ट्र की वृद्धि के लिये ( सोमं सुनोति ) देह में औषध, जल या पुष्टिकर वीर्य के समान ऐश्वर्य को उत्पन्न करता, उसकी सेवन या वृद्धि करता है वह ( अह ) निश्चय से ( द्युमान् ) तेजस्वी ( भवति ) हो जाता है। ( यः ) जो पुरुष ( कवासखः ) विद्वान् पुरुषों का मित्र ( मघवा ) ऐश्वर्यवान् और ( शक्रः ) शक्तिशाली होकर ( तनूशुभ्रं ) देह में वा राष्ट्र

में शोभाजनक (ततनुष्टिम्) शक्ति की (ऊहति) वृद्धि करता है वह (अ-अप) सब रोगों और शत्रुओं को सदा दूर भगा देता है। अथवा (मघवा शक्रः) शक्तिमान् ईश्वर (ततनुष्टिम् अप ऊहति) विस्तृत शक्ति और कामना वाले तथा (तनुशुभ्रं) देह को सजाने वाले अभिमानी को (यः कवासखः) जो कुत्सित मित्रों वाला, कुसङ्गी है उसको भी (अप ऊहति) नष्ट कर देता है।

यस्यावधीत्पितरं यस्य मातरं यस्य शक्रो भ्रातरं नात ईषते।
वेतीद्वस्य प्रयता यतङ्करो न किल्बिषादीषते वस्व आकरः॥४॥

भा०—(शक्रः) शक्तिशाली राजा (यस्य पितरम्) जिसके पिता को, (यस्य मातरं) जिसकी माता को वा (यस्य भ्रातरं) जिसके भाई को भी (अवधीत्) मारे या दण्ड दे और वह (अतः न ईयते) उससे भय न खावे वह (यतङ्करः) सदा उसे बांधने हारा वा यत्नशील रहकर (यस्य प्रयता इत् उ वेति) उसको अच्छी प्रकार संयमन या वश करने की कामना करता रहे। वह (वस्वः आकरः) ऐश्वर्य को सब ओर से संग्रह करने में कुशल होकर (किल्विषात्) पाप या पापी पुरुष से (न ईषते) कभी भय न खावे, प्रत्युत सदा उसको नाश करने में लगा रहे।

न पञ्चभिर्दशभिर्वष्ट्यारभं नासुन्वता सचते पुष्यता चन।
जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनिरा देवयुं भजति गोमति व्रजे॥५॥

भा०—जो पुरुष अपने (पञ्चभिः) पाचों इन्द्रियों से और (दशभिः) दशों प्राणों से भी युक्त होकर (आरभं) कार्य करने का उद्योग (न वष्टि) नहीं करना चाहता उस (असुन्वता) निरुद्योगी, कुछ भी धन अन्नादि पैदा न करने वाले, निकम्मे और (पुष्यता चन) केवल मोटे ताजे पुरुष से भी (न सचते) विद्वान् पुरुष मैत्रीभाव नहीं करता। ऐसे व्यक्ति को तो (धुनिः) शत्रुओं को कँपा देने में समर्थ पुरुष (जिनाति वा) अवश्य तिरस्कार करे (वा) अथवा (हन्ति इत्) ऐसे पुरुष

को अवश्य दण्ड दे। ( गोमति व्रजे ) वाणियों से युक्त सबसे आदरपूर्वक प्राप्तव्य गुरु तथा रश्मियुक्त सूर्यवत् तेजस्वी और पृथिवी के स्वामी तथा शत्रु पर चढ़ने वाले सेनापति के अधीन रहने वाले ( देवयुम् ) शुभ गुण तथा विद्वानों और राजा की कामना करने वाले प्रिय पुरुष को ( भजति ) राजा आदर पूर्वक रक्खे।

वि॒त्व॑क्ष॒णः सम॑ृतौ च॒क्रमा॑स॒जोऽसु॑न्वतो॒ विषु॑णः सुन्व॒तो वृ॒धः।
इन्द्रो॒ विश्व॑स्य दमि॒ता वि॒भीष॑णो यथाव॒शं न॑यति॒ दास॒मार्य॑ः॥६॥

भा०—( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् ( आर्यः ) स्वामी, (सम्-ऋतौ) संग्राम में तथा एकत्र होने के स्थान सभा आदि में ( वित्वक्षणः ) विद्युत्वत् विविध प्रकार से शत्रुओं को छेदन भेदन करने हारा ( वि-त्वक्-सनः ) विविध या विशेष वस्त्रादि आवरणों को पहनने हारा वा सभादि में विविध विद्याओं के रहस्य खोलकर बतलाने हारा हो। सूर्य जिस प्रकार ( चक्र-मासजः ) संवत्सर चक्र वा मास २ में प्रकट होता है उसी प्रकार राजा भी, ( चक्रम्-आसजः ) राज-चक्र वा सैन्यचक्र के मुख स्थान पर प्रकट हो वा सैन्यादि चक्र को अति स्नेह करने वाला, तत्सम्बन्धी कार्यों में तन्मय हो। वह ( असुन्वतः ) निकम्मे, अपुरुषार्थी पुरुष का ( वि-पुणः ) विरोधी और ( सुन्वतः ) ऐश्वर्य-उत्पादक पुरुषार्थी पुरुष का ( वृधः ) बढ़ाने वाला हो। वह ( विभीषणः ) विशेष रूप से भीषण होकर भी ( विश्वस्य दमिता ) समस्त राज्य का दमन करने हारा होकर ( दासम् ) सेवक जन, भृत्य तथा प्रजानाशक शत्रुजन को भी ( यथावशं ) यथाशक्ति (नयति) सन्मार्ग पर चलावे।

समीं॑ प॒णेर॑जति॒ भोज॑नं मु॒षे वि दा॒शुषे॑ भजति सू॒नरं॒ वसु॑। दु॒र्गे
च॒न ध्रि॑यते॒ विश्व॒ आ पु॒रु जनो॒ यो अ॑स्य॒ तवि॑षी॒मचु॑क्रुधत्॥७॥

भा०—राजा ( पणेः ) स्तुति करने योग्य और व्यवहारकुशल

पुरुष के ( भोजनं ) भोजन और पालन को ( सम् अजति ) प्राप्त कराता है। और ( मुषे ) चोर के लिये ( वि ) उससे विपरीत दण्ड करता है, उसको भोजन और शरीर-रक्षा के विपरीत भूखों मारता और शस्त्रास्त्र से भी दण्डित करता है। और ( दाशुषे ) दानशील, आत्मसमर्पक प्रजा के हितार्थ ( सूनरं ) उत्तम नायकों से युक्त ( वसु ) वसने योग्य राष्ट्र और ऐश्वर्य को ( वि भजति ) यथायोग्य रूप से विभक्त करता, पात्रानुरूप दान करता है। और ( यः ) जो ( अस्य ) इस राजा की (तविषी) बलवती शक्ति को ( अचुक्रुधत् ) क्रोधित कर दे वह ( पुरु जनः ) बहुत से लोग भी ( विश्वे ) सब ( दुर्गे चन आध्रियते ) दुर्ग के बीच क़ैद कर रख दिये जाते हैं।

**सं यज्जनौ सुधनौ विश्वशर्धसाववेदिन्द्रो मघवा गोषु शुभ्रिषु।**
**युजं ह्यन्यमकृत प्रवेपन्युदीं गव्यं सृजते सत्वभिर्धुनिः ॥ ८ ॥**

भा०—( यत् ) जो ( जनौ ) दो मनुष्य, दो जनपदवासी नायक ( सुधनौ ) खूब धन से समृद्ध और ( विश्व-शर्धसौ ) सब प्रकार के शस्त्रास्त्र बलों से सुदृढ़ हो जायँ तो ( मघवा इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् राजा ( शुभ्रिषु ) नाना रत्न और शोभादायी दृश्यों से सम्पन्न ( गोषु ) भूमियों की रक्षा के निमित्त उन दोनों को ( सम् अवेत् ) परस्पर मिलाकर सन्धि पूर्वक रक्खे, उत्तम राज्य की भूमियों का संहार उनके परस्पर युद्ध से न होने दे। ( अन्यम् ) अपने से भिन्न शत्रु को भी ( युजम् अकृत ) अपना सहायक बनाले। यदि वह सामपूर्वक सहयोग न करे तो जिस प्रकार ( प्रवेपनी धुनिः सत्वभिः गव्यं ईं उत्सृजते ) वेग से चलने वाली नदी वेगों से चलकर भूमि के हितकर जल प्रदान करती है उसी प्रकार बलवान् राजा भी ( धुनिः ) शत्रु को कंपा देने में समर्थ होकर ( प्र-वेपनी ) खूब कंपा देने वाली सैन्य शक्ति के द्वारा ( ईं ) उसको प्रहार कर

( सत्वभिः ) अपने बलवान् वीरों से ( गव्यम् ) भूमि से प्राप्त समस्त धन ( उत्सृजते ) उससे छीन ले।

**सहस्रसामाग्निवेशिं गृणीषे शत्रिमग्न उपमां केतुमर्यः।**
**तस्मा आपः संयतः पीपयन्त तस्मिन्क्षत्रममवत्त्वेषमस्तु ॥९॥४॥**

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! सेनापते वा विद्वन् ! जो (अर्यः) स्वयं स्वामी होकर भी ( सहस्रसाम् ) सहस्रों सुखों के देने वाले ( आग्निवेशिम् ) अग्नि के अधीन निवासिनी प्रजाओं के हितार्थ ( शत्रिम् ) दुःखों के नाशकारी ( उपमां ) दृष्टान्त स्वरूप, आदर्श, ( केतुम् ) ज्ञान का (गृणीषे) उपदेश करे तो (तस्मै) उसको (संयतः) सुप्रबद्ध जल-धाराओं के सदृश आप्त प्रजाजन ( पीपयन्त ) खूब समृद्ध करती हैं और (तस्मिन्) उसके अधीन ( क्षत्रम् ) बलशाली क्षत्रसैन्य बल ( अमवत् ) सहायक वा गृह के समान सुख देने वाला और ( त्वेषम् ) तेज के तुल्य प्रतापी ( अस्तु ) हो। इति चतुर्थो वर्गः ॥

## [ ३५ ]

प्रभूवसुराङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ निचृदनुष्टुप् । ३ भुरिगनुष्टुप् । ७ अनुष्टुप् । २ भुरिगुष्णिक् । ४, ५, ६ स्वराडुष्णिक् । ८ भुरिग्बृहती ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

**यस्ते साधिष्ठोऽवस इन्द्र क्रतुष्टमा भर।**
**अस्मभ्यं चर्षणीसहं सस्निं वाजेषु दुष्टरम् ॥ १ ॥**

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! अज्ञाननाशक राजन् ! गुरो ! ( यः ) जो ( ते ) तेरा ( साधिष्ठः ) अति उत्तम, कार्य साधक, (क्रतुः) कर्मकौशल और ज्ञान है ( तम् ) उस ( चर्षणीसहं ) सब मनुष्यों को जीतने वाले ( सस्निं ) अतिपवित्र और अन्यों को पवित्र, पापरहित करने वाले ( वाजेषु ) संग्रामादि में ( दुस्तरम् ) अपार सामर्थ्य को

(अस्मभ्यम् आ भर) हमें प्राप्त करावे और हमारे लिये उसको धारण कर और प्रयोग कर ।

यदिन्द्र ते चतस्रो यच्छूर सन्ति तिस्रः ।
यद्वा पञ्च क्षितीनामवस्तत्सु न आ भर ॥ २ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! ( यत् ) जो ( ते ) तेरी (चतस्रः) साम, दान, भेद, और दण्ड ये चार वृत्तियां और ( शूर यत् तिस्रः सन्ति) हे शूरवीर पुरुष ! जो तेरी तीन सभाएं वा दण्ड, धन और मन्त्र ये तीन शक्तियां हैं ( यद् वा ) और जो ( क्षितीनाम् अवः ) प्रजाओं के रक्षणार्थ पांच सहायक, साधन, उपाय और देश और काल की अनुकूलतायें हैं ( तत् ) उन सबको ( नः ) हमारे लिये तू ( सु आ भर ) सब प्रकार से प्राप्त करा । अथवा—( क्षितीनां चतस्रः तिस्रः पञ्च वा तत् नः आभर ) प्रजाओं के बीच चार वर्ण अथवा आन्वीक्षिकी, त्रयी वार्ता और दण्डनीति ये चार विद्याएं तीन महासभाएं और पांच विभाग व पञ्चाङ्ग सिद्धि हैं उनको हमारे लिये स्थिर कर ।

आ तेऽवो वरेण्यं वृषन्तमस्य हूमहे ।
वृषजूतिर्हि जज्ञिष आभूभिरिन्द्र तुर्वणिः ॥ ३ ॥

भा०—हे ( वृषन् ) बलवन् ! मेघवत् प्रजापक्ष सुख समृद्धि की वर्षा करने हारे ! हे उत्तम प्रबन्धक ! हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः राजन् ! तू ( आभूमिः ) चारों ओर विद्यमान भूमियों से और चारों ओर स्थित वीर वा उत्तम शक्तिशाली सहायकों से युक्त होकर ( वृष-जूतिः ) मेघों के आगमन वा बैलों को उत्तम रीति से जोतने वाला और बलवान् पुरुषों को वेग से युद्धादि में भेजने वाला और ( तुर्वणिः ) वेगवान् वीर पुरुषों को धनादि देने हारा भी ( जज्ञिषे ) हो । ( वृषन्तमस्य ते ) सर्वोत्तम बलवान् सुप्रबन्धक तेरे ( वरेण्यं ) वरण योग्य, उत्तम ( अवः ) रक्षा कार्य को हम ( हूमहे ) प्राप्त करें, चाहें ।

वृषा ह्यसि राधसे जज्ञिषे वृष्णि ते शवः ।
स्वक्षत्रं ते धृषन्मनः सत्राहमिन्द्र पौंस्यम् ॥ ४ ॥

भा०—हे राजन्! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! बलवन्! तू (वृषा हि असि) सूर्य या मेघ के तुल्य प्रजापर सुखों को वर्षा करने हारा हो। तू (राधसे) धन सम्पदा की वृद्धि के लिये (जज्ञिषे) सदा कटिबद्ध रह। (ते शवः वृष्णि) तेरा बल सुखों की वर्षा करनेवाला वा प्रजा का प्रबन्धक हो। (ते मनः) तेरा मन (स्व-क्षत्रं) स्वयं बलसम्पन्न, और (धृषत्) शत्रुओं को तुच्छ समझने वाला प्रगल्भ हो और (ते पौंस्यम्) तेरा पौरुष (सत्राहम्) सत्य के बल पर वा शत्रु संघ को भी नाश करने वाला हो।

त्वं तमिन्द्र मर्त्यममित्रयन्तमद्रिवः ।
सर्वरथा शतक्रतो नि याहि शवसस्पत ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) सूर्यवत् तेजस्विन्! हे (अद्रिवः) अभेद्य कवच और शस्त्रबल के स्वामिन्! हे (शतक्रतो) सैकड़ों प्रज्ञाओं वाले हे (शवसः पते) सैन्यादि बल के स्वामिन्! (त्वं) तू (तम्) उस (अमित्रयन्तम्) शत्रु के तुल्य आचरण वाले (मर्त्यः) मारने योग्य जन को लक्ष्य करके (सर्वरथा नियाहि) समस्त रथ सैन्य सहित प्रयाण कर। इति पञ्चमो वर्गः ॥

त्वामिद्वृत्रहन्तम जनासो वृक्तबर्हिषः ।
उग्र पूर्वीषु पूर्व्यं हवन्ते वाजसातये ॥ ६ ॥

भा०—(वृत्रहन्तम) हे बढ़ते शत्रु को मारने में सब से अधिक समर्थ! हे (उग्र) भीषण! (वृक्त-बर्हिषः जनासः) इस लोक या भूमि को परस्पर विभक्त और सेवन करने वाले लोग (पूर्वीषु पूर्व्यम्) पूर्व विद्यमान प्रजाओं में भी सर्व प्रथम सत्कार योग्य (त्वाम् इत्) तुझ को ही (वाजसातये) ऐश्वर्य को विभक्त करने और संग्राम विजय के लिये (हवन्ते) आदरपूर्वक बुलाते हैं।

अस्माकमिन्द्र दुष्टरं पुरोयावानमाजिषु ।
सयावानं धनेधने वाजयन्तमवा रथम् ॥ ७ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! तू ( अस्माकम् ) हमारे ( दुस्तरं ) बड़ी कठिनता से पराजित होने वाले, सुदृढ़, ( आजिषु ) संग्रामों में ( पुरोयावानम् ) आगे २ चलने वाले ( धने धने ) प्रत्येक धन लाभ के अवसर या प्रत्येक संग्राम में ( स-यावानं ) अन्य रथों के साथ समान वेग से जाने वाले ( वाजयन्तम् ) संग्राम करते हुए ( रथं ) रथ, या रथारोही की ( अव ) रक्षा का उपाय कर । अग्रगामी पंक्तिबद्ध रथसैन्य की दायें बायें और पीछे के आक्रमण से भी रक्षा कर और रथ को भी तीनों ओर से सुरक्षित कर ।

अस्माकमिन्द्रेहि नो रथमवा पुरन्ध्या ।
वयं शविष्ठ वार्यं दिवि श्रवो दधीमहि दिवि स्तोमं मनामहे ८।६

भा०—हे ( इन्द्र ) तेजस्विन् राजन् ! तू ( अस्माकम् ) हमारे ( रथम् ) रथ के समान रमण करने योग्य राष्ट्र को ( पुरं-ध्या ) पुर को धारण करने वाली नीति से ( अव ) रक्षा कर और ( आ इहि ) हमें आ, प्राप्त हो । हे ( शविष्ठ ) अति बलवन् ! ( वयम् ) हम लोग ( दिवि ) इस पृथिवी पर ( वार्यं ) धारण करने योग्य, सर्वोत्तम ( श्रवः ) धन, ज्ञान और यश ( दधीमहि ) प्राप्त करें । और ( दिवि ) उत्तम शासन, उत्तम व्यवहार और उत्तम मनोकामना में रहकर ( स्तोमं ) उत्तम स्तुति अध्ययन, शास्त्र आदि का ( मनामहे ) मनन करें । इति षष्ठो वर्गः ॥

[ ३६ ]

प्रभूवसुरांगिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ६ त्रिष्टुप् । ३ जगती ॥ षड्डृचं सूक्तम् ॥

स आ गमदिन्द्रो यो वसूनां चिकेतद्दातुं दामनो रयीणाम् ।
धन्वचरो न वंसगस्तृषाणश्चकमानः पिबतु दुग्धमंशुम् ॥ १ ॥

भा०—( यः ) जो पुरुष ( वसूनां ) राष्ट्र में वसे प्रजा जनों, में ( रयीणां दामनः ) ऐश्वर्यों के देने वाली प्रजाओं को ( चिकेतत् ) जाने और जो ( वसूनां दातुं चिकेतत् ) ऐश्वर्यों को स्वयं देना भी जानता है ( सः ) वह ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता राजा ( आ गमत् ) आवे, हमें प्राप्त हो । ( धन्वचरः तृषाणः वंसगः चकमानः यथा जलं पिबति ) जिस प्रकार मरुभूमि में विचरने वाला पियासा वैल जल चाहता हुआ, जलपान करता है उसी प्रकार राजा भी ( धन्व-चरः ) धनुप के बल पर विचरण करता हुआ ( वंस-गः ) सत्यासत्य विवेकी पुरुषों के बीच स्थित एवं उत्तम आचारवान् ( तृषाणः ) पिपासितवत् ( चकमानः ) अर्थ की कामना करता हुआ ( दुग्धम् ) प्रजा से प्राप्त ( अंशुम् ) अपने भाग को ( पिबतु ) गौ के वत्स के समान ही स्वल्प मात्रा में उपभोग करे और पूर्णसमृद्ध व्यापक राष्ट्र का पालन करे ।

आ ते हनू हरिवः शूर शिप्रे रुहत्सोमो न पर्वतस्य पृष्ठे ।
अनु त्वा राजन्नर्वतो न हिन्वन् गीर्भिर्मदेम पुरुहूत विश्वे ॥२॥

भा०—हे ( हरिवः ) मनुष्यों और अश्व सैन्यों के स्वामिन् ! (शूर) शूरवीर ! जिस प्रकार ( हनू ) मुख पर लगे मुख नासिका वा दोनों जबाड़े ( शिप्रे ) सुन्दर प्रतीत हों उसी प्रकार ( ते हनू ) तेरी हननकारिणी सेनाएं दायें बायें ( शिप्रे ) मुख पर लगी नासिकाओं वा जबाड़ों के तुल्य अग्रगामी और दृढ़ हों । ( सोमः न ) सोमलता जिस प्रकार ( पर्वतस्य पृष्ठे ) पर्वत के पीठ पर ही ( रुहत् ) उत्पन्न होता और बड़ा होता है उसी प्रकार ( पर्वतस्य पृष्ठे ) पालक शासक वा पर्व पर्व से युक्त सैन्यबल वा शस्त्रबल के ही ऊपर ( सोमः ) ऐश्वर्य भी ( रुहत् ) उत्पन्न होता और बढ़ता है । ( अर्वतः न हिन्वन् ) अश्वों को चलाने वाला

सारथि जिस प्रकार अश्वों के पीछे २ रहकर उसको सन्मार्ग पर चलाता है उसी प्रकार ( त्वा अनु ) तेरे पीछे रहकर हे ( पुरु-हूत ) बहुतों से प्रशंसित, वा प्रधान पद पर प्रस्तुत राजन् ! ( विश्वे ) हम सब ( गीर्भिः ) उत्तम वाणियों से ( मदेम ) आनन्द लाभ करें वा तेरी स्तुति करें।

**चक्रं न वृत्तं पुरुहूत वेपते मनो भिया मे अमतेरिदद्रिवः।**
**रथादधि त्वा जरिता सदावृध कुविन्नु स्तोषन्मघवन्पुरूवसुः॥३॥**

भा०—हे ( अद्रिवः ) मेघों से युक्त सूर्य के समान तेजस्विन् ! शस्त्रास्त्र बल के स्वामिन् ! हे ( पुरुहूत ) बहुतों से प्रशंसित एवं स्वीकृत ! ( रथाद् वृत्तं चक्रं न ) रथ से पृथक् हुए चक्र के समान ( मे अमतेः ) मुझ ज्ञानरहित प्रजाजन का ( मनः ) मन ( भिया वेपते ) भय से कांपता है। हे ( सदा-वृध ) प्रजा के सदा बढ़ानेहारे ! हे ( मघवन् ) उत्तम धन के स्वामिन् ! ( कुवत् जरिता ) बड़े २ स्तुतिकर्त्ता और (पुरु-वसुः ) बहुत से धनों से सम्पन्न, या बहुत से वासियों से सम्पन्न राष्ट्र ( त्वा ) तुझको ( अधि स्तोषन् ) अपने ऊपर अध्यक्ष होने के लिये प्रस्ताव करें।

**एष ग्रावेव जरिता त इन्द्रेयर्ति वाचं बृहदाशुषाणः।**
**प्र सव्येन मघवन्यंसि रायः प्र दक्षिणिद्धरिवो मा वि वेनः॥४॥**

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! ( एषः ) यह ( ग्रावा इव ) शिला के समान शत्रु को कुचल देने वाले क्षात्रवर्ग के समान ही ( जरिता ) उत्तम उपदेष्टा विद्वान् भी ( बृहद् आशुषाणः ) बड़े भारी ज्ञान ऐश्वर्य को प्राप्त करता हुआ, ( ते वाचं ) तेरे हितकारी वाणी को ( इयर्त्ति ) प्राप्त हो और तुझे उपदेश करे। हे ( मघवन् ) ऐश्वर्य के स्वामिन् ! तू भी ( बृहद् आशुपाणः ) बड़ा राष्ट्र प्राप्त करता हुआ ( सव्येन ) बायें से ( रायः प्रयंसि ) ऐश्वर्य को अच्छी प्रकार सुरक्षित करता है तो ( दक्षिणित् ) दायें से भी ( प्र यंसि ) अच्छी प्रकार दान किया कर। हे

( हरिवः ) मनुष्यों के स्वामिन् ! तू ( मा वि वेनः ) इससे विपरीत आचरण की कभी कामना न कर । राजा की दो बाहुएं हैं क्षत्रियगण और ब्राह्मण वर्ग । वह एक के बल पर राष्ट्र की रक्षा, प्रबन्ध करता, तथा एक के द्वारा उसका सदुपभोग करता है ।

**वृषा॑ त्वा॒ वृष॑णं वर्धतु॒ द्यौर्वृषा॒ वृष॑भ्यां वहसे॒ हरि॑भ्याम् ।**
**स नो॒ वृषा॒ वृष॑रथः सुशिप्र॒ वृष॑क्रतो॒ वृषा॑ वज्रि॒न्भरे॑ धाः ॥५॥**

भा०—( वृषा द्यौः ) राज्यप्रबन्ध में कुशल सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष ( वृषणं त्वा वर्धतु ) बलवान् तुझको बढ़ावे । तू ( वृषभ्यां हरिभ्यां ) बलवान् अश्वों से ( वहसे ) धारण किया जाय ! हे ( सुशिप्र ) उत्तम मुख नासिका वाले ! हे सुमुख ! ( सः ) वह तू भी ( वृषा ) उत्तम प्रबन्धकर्त्ता और ( वृषरथः ) बलवान् अश्वों से युक्त रथ वाला हो । हे ( वृषक्रतो ) बलवान् पुरुषों के तुल्य वीरता के कर्म करने वाले ! हे ( वज्रिन् ) वीर्यवन् शस्त्र बल के स्वामिन् ! तू ( वृषा ) बलवान् होकर ही ( भरे ) संग्राम में पालन पोषण में ( नः धाः ) हमें परिपुष्ट कर ।

**यो रोहि॑तौ वा॒जिनौ॑ वा॒जिनी॑वान्त्रि॒भिः श॒तैः सच॑माना॒वदि॑ष्ट ।**
**यूने॒ सम॑स्मै क्षि॒तयो॑ नमन्तां श्रु॒तर॑थाय मरुतो दुवो॒या ॥६॥७॥**

भा०—( यः ) जो ( वाजिनीवान् ) संग्रामकारिणी सेना का स्वामी होकर (त्रिभिः शतैः) तीन सौ जवानों, सैन्य दलों के साथ ( सचमानौ ) समवाय बना कर रहने वाले ( रोहितौ वाजिनौ ) सूर्यवत् तेजस्वी बलवान् दो अध्यक्षों को ( आदिष्ट ) आज्ञा देता है ( अस्मै यूने ) उस युवा, ( श्रुतरथा ) प्रसिद्ध महारथी के आदर के लिये ( क्षितयः ) सामान्य प्रजाजन और ( मरुतः ) वायुवत् तीव्र वेग से जाने वाले और शत्रु को मारने वाले वीरगण भी ( दुवोया ) उसकी सेवा परिचर्या करते हुए ( सं नमन्ताम् ) अच्छी प्रकार आदरपूर्वक झुकें । इति सप्तमो वर्गः ॥

[ ३७ ]

अत्रिर्ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ निचृत्पंक्तिः । २ विराट्त्रिष्टुप् । ३, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

सं भानुना यतते सूर्यस्याजुह्वानो घृतपृष्ठः स्वञ्चाः ।
तस्मा अमृध्रा उषसो व्युच्छान्य इन्द्राय सुनवामेत्याह ॥ १ ॥

भा०—( यः ) जो कोई ( इति आह ) ऐसा कह देता है कि हम ( इन्द्राय ) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता महाराज के लिये ही ( सुनवाम ) समस्त ऐश्वर्य उत्पन्न करते हैं ( तस्मै ) उसके लिये ( उषसः ) शत्रु को दग्ध कर देने वाली सेनायें भी ( अमृध्राः ) अहिंसक होकर ( वि उच्छान् ) विविध रूपों में प्रकट होती हैं । वह राजा ( सूर्यस्य ) सूर्य के प्रखर तेज से युक्त होकर ( सं यतते ) यत्न करता है, वह संग्राम और शत्रु-विजय किया करे और वह (घृत-पृष्ठः) घृत को प्राप्त करके अति उज्ज्वल होने वाले अग्नि और मेघमय जल को स्पर्श करने वाली विद्युत् के तुल्य तेजस्वी ( सु-अञ्चाः ) उत्तम रीति से पूजनीय होकर ( आजुह्वानः ) शत्रुओं को आह्वान करता, ललकारता हुआ ( सं यतते ) युद्धादि उद्योग किया करे ।

समिद्धाग्निर्वनवत्स्तीर्णबर्हिर्युक्तग्रावा सुतसोमो जराते ।
ग्रावाणो यस्येषिरं वदन्त्ययदध्वर्युर्हविषाव सिन्धुम् ॥ २ ॥

भा०—( यस्य ) जिसके ( इषिरम् ) इच्छानुकूल, अभिलषित कार्य को ( ग्रावाणः) विद्वान् उपदेष्टा और शत्रुओं को कुचल डालने वाले शस्त्र-धर वीर सैन्यबल ( वदन्ति ) बतलाते और ( यस्य ) जिसके ( सिन्धुं ) समुद्र के समान विस्तृत, प्रबल वेग से जाने वाले वा सुप्रबद्ध सैन्य वा प्रजा के सागर को ( अध्वर्युः ) राष्ट्र को मरने से बचाने में कुशल नायक ( हविषा ) अन्न वृत्ति या कर संग्रहादि उपायों से ( अव अयत् ) अपने

अधीन नियम में रखता है वह राजा ( समिद्धाग्निः ) अग्नि के समान अति देदीप्त होकर ( स्तीर्णं बर्हिः ) वृद्धिशील राष्ट्र को विस्तृत करके (युक्त-ग्रावा ) अपने देश में उत्तम विद्वानों और प्रबल पुरुषों को नियुक्त तथा ( सुतसोमः ) ऐश्वर्य को प्राप्त करके अथवा ( सुतसोमः ) पुत्रवत् राज्य को पालता हुआ ( जराते ) शासन करे ।

वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति य ईं वहाते महिषीमिषिराम् ।
आस्य श्रवस्याद्रथ आ च घोषात्पुरू सहस्रा परि वर्तयाते ॥३॥

भा०—( यः ) जो पुरुष ( ईम् ) इस ( इषिराम् ) इच्छा से युक्त स्त्री को (महिषीम्) अपनी रानी वा अति सौभाग्यवती जानकर (वहाते) उससे विवाह करता है उसी पुरुष को जिस प्रकार ( इयं वधूः ) वह नव-वधू भी (पतिम् इच्छन्ती) अपना पति चाहती हुई (एति) उसे प्राप्त होती है । इसी प्रकार ( यः ) जो वीर पुरुष ( इषिराम् ) इष्ट ऐश्वर्य देनेवाली वा इच्छावती ( महिषीम् ) बड़े भारी ऐश्वर्य को देने और सेवने वाली इस भूमि का भार (वहाते) अपने कन्धों पर उठाता है वह वधूवत् उसको (पतिम् इच्छन्ती ) अपना पति, पालक, स्वामी बनाना चाहती हुई उसे ही प्राप्त होती है । वह राष्ट्र प्रजा ( अस्य ) इस राजा का ( आ श्रवस्यात् ) यश चाहे । ( आघोषात् च ) प्रजा उसकी घोषणा भी सर्वत्र करे । और ( सहस्रा पुरू ) सहस्रों प्रजाजन (परि) उसके अधीन (वर्त्तयाते) रहें ।

न स राजा व्यथते यस्मिन्निन्द्रस्तीव्रं सोमं पिबति गोसखायम् ।
आ सत्वनैरजति हन्ति वृत्रं क्षेति क्षितीः सुभगो नाम पुष्यन् ॥४॥

भा०—( सः ) वह ( राजा ) राजा ( न व्यथते ) भय या पीड़ा को कभी प्राप्त नहीं होता ( यस्मिन् ) जिसके शासन करते हुए (इन्द्रः) सूर्य और विद्युत् ( तीव्रं ) अति तीक्ष्ण होकर ( गो-सखायं ) भूमि के मित्र भूत वा किरणों के साथ मित्रवत् वाष्प होकर ऊपर जाने वाले

( सोमं ) जल को ( पिबति ) पान करता है। और ( यस्मिन् ) जिसके अधीन ( इन्द्रः ) शत्रुहन्ता सेनापति और ऐश्वर्यवान् सम्पन्न भूमिपति लोग भी ( गो-सखायं ) वाणी या वचन के अनुसार वा भूमिवासी प्रजा के मित्रवत् उपकारक ( सोमं पिबति ) राष्ट्र का पालन करता है। और जिस राज्य में ( इन्द्रः ) विद्युत् ( वृत्रं ) मेघ को ( सत्वनैः ) बलवत् प्रहारों से ( अजति ) कंपाता, ( हन्ति ) ताड़ित करता और ( क्षितीः क्षेति ) मनुष्यों को देवमातृक भूमियों में बसाता है और उसके तुल्य ही राजा स्वयं भी ( वृत्रं ) बढ़ते हुए शत्रु को ( सत्वनैः ) प्रबल वीरों से ( अजति ) उखाड़ता और ( हन्ति ) दण्डित करता है, ( क्षितीः क्षेति ) अपनी भूमियों और प्रजाओं को बसाता है। वह स्वयं राजा भी विद्युत्वत् ही ( सुभगः ) उत्तम सौभाग्यशाली ऐश्वर्यवान् होकर ( नाम पुष्यन् ) अपने नाम को पुष्ट करता, प्रसिद्धि पाता और राष्ट्र को भी पुष्ट करता है।

**पुष्या॒त्क्षेमे॑ अ॒भि योगे॑ भवात्यु॒भे वृतौ॑ सं॒यती॒ सं ज॑याति ।**
**प्रि॒यः सूर्ये॑ प्रि॒यो अ॒ग्ना भ॑वाति॒ य इन्द्रा॑य सु॒तसो॑मो॒ ददा॑शत् ५।८**

भा०—( यः ) जो राजा ( सुत-सोमः ) ऐश्वर्य प्राप्त करके भी ( इन्द्राय ) ऐश्वर्ययुक्त पद की वृद्धि के लिये ( ददाशत् ) अपने ऐश्वर्य का दान वा त्याग करता है वह राजा ( क्षेमे ) प्रजा के रक्षण कार्य में (पुष्यात्) पुष्ट होता है, और (योगे) अलब्ध राज्य को प्राप्त करने के लिये शत्रुओं को ( अभि भवाति ) तिरस्कृत करता है, ( वृतौ ) शत्रु के वारण करने के निमित्त ( संयती उभे ) स्व और पर दोनों सम्मिलित सेनाओं को भी ( सं जयाति ) जीत लेता है। वह (सूर्ये प्रियः) सूर्य के समान तेजस्वी पदपर स्थित होकर भी सब का प्रिय होता है और ( अग्नौ प्रियः भवाति ) अग्निवत् तेजस्वी और अग्रणी नायक पद पर रह कर भी सर्व-प्रिय होता है। इत्यष्टमो वर्गः ॥

## [ ३८ ]

अत्रिर्ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ अनुष्टुप् । २, ३, ४ निचृदनुष्टुप् । ५ विराडनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

**उरोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।**
**अधा नो विश्वचर्षणे द्युम्ना सुक्षत्र मंहय ॥ १ ॥**

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! ( ते ) तेरे ( उरोः राधसः ) बहुत भारी ऐश्वर्य का यह ( विभ्वी रातिः ) बड़ा भारी दान है । हे (शतक्रतो) अनेक उत्तम प्रज्ञा और कर्म करने हारे ! हे ( विश्वचर्षणे ) सब मनुष्यों के स्वामिन् ! वा हे सब देखने योग्य न्याय व्यवहार को देखने हारे ! हे ( सु-क्षत्र ) उत्तम बल और ऐश्वर्य के स्वामिन् ! ( अध ) और तू (नः) हमें ( द्युम्ना ) अनेक धन ( मंहय ) प्रदान कर ।

**यदीमिन्द्र श्रवाय्यमिषं शविष्ठ दधिषे ।**
**पप्रथे दीर्घश्रुत्तमं हिरण्यवर्ण दुष्टरम् ॥ २ ॥**

भा०—हे ( हिरण्यवर्ण ) सुवर्ण को वरण करने हारे ऐश्वर्याभिलाषिन् ! हे (शविष्ठ) अति बलशालिन् ! ( यद् ) जो पुरुष ( श्रवाय्यं ) श्रवण योग्य कीर्त्तिजनक ( इषं ) अन्न या बल को (दधिषे) धारण करता है उस ( दीर्घश्रुत्तमम् ) दीर्घ काल तक उत्तम ज्ञान के श्रवण करने वाले बहुश्रुत और ( दुस्तरम् ) शत्रुओं से अपराजित पुरुष को ( पप्रथे ) और भी विस्तृत प्रसिद्ध कर वा जो यशोजनक अन्नबल आदि की वृद्धि करे उस बहुश्रुत पुरुष का तू पालन कर ।

**शुष्मासो ये ते अद्रिवो मेहना केतसापः ।**
**उभा देवावभिष्टये दिवश्च ग्मश्च राजथः ॥ ३ ॥**

भा०—हे ( अद्रिवः ) शस्त्रबल के मेघवद् उन्नत पर्वतयुक्त भूमि के और अद्रिवद् अभेद्य दुर्गादि के स्वामिन् ! ( यं ते ) जो तेरे

(शुष्मासः) शत्रु का शोषण करनेवाले सैन्यगण सूर्य की रश्मियों के तुल्य हैं वे (मेंहना) शत्रु पर शर वर्षा करने के सामर्थ्य से युक्त होकर भी (केतसापः) संकेत मात्र से संघ बनाने में कुशल और संकेत पर चलने हारे हों। (उभौ देवौ) दोनों तेजस्वी (दिवः) दिनवत् राजसभा का प्रकाशक आकाश, सूर्य और (ग्मः) भूमि का प्रकाशक राजा तू दोनों ही (अभिष्टये) अभीष्ट सुख प्राप्त करने के लिये और चारों तरफ़ जलवत् ऐश्वर्य प्रदान करने के लिये, (राजथः) प्रकाशित होते हो।

उतो नो अस्य कस्य चिद्दक्षस्य तव वृत्रहन्।
अस्मभ्यं नृम्णमा भरास्मभ्यं नृमणस्यसे ॥ ४ ॥

भा०—(उतो) और हे (वृत्र-हन्) वर्धमान, नगरोपरोधी शत्रु को दण्ड देने में समर्थ राजन्! (तव) तेरे (अस्य) इस (कस्य चित्) किसी (दक्षस्य) शत्रुदाहक सामर्थ्य का ही यह (नः) हमारा उत्तम राष्ट्र परिणाम है। तू (अस्मभ्यम्) हमारे लाभ के लिये ही (नृमणस्यसे) धन की अभिलाषा करता है। तू (अस्मभ्यम्) हमारे लिये ही (नृम्णम् आ भर) ऐश्वर्य को प्राप्त किया कर।

नू त आभिरभिष्टिभिस्तव शर्मञ्छतक्रतो।
इन्द्र स्याम सुगोपाः शूर स्याम सुगोपाः ॥ ५ ॥ ९ ॥

भा०—हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्म और बुद्धियों के स्वामिन्! तेरी (आभिः) इन (अभिष्टिभिः) उत्तम अभिलाषाओं के साथ २ (तव-शर्मन्) तेरे सुखकारक, गृह के तुल्य सुख-शान्तिदायक राज्य में रहकर हम लोग हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (सुगोपाः स्याम) इन्द्रियों गौओं के उत्तम पालक, जितेन्द्रिय और पशुसम्पन्न हों। हे (शूर) शूरवीर हम लोग (सुगोपाः स्याम) उत्तम भूमि वाले और गृहपत्नी प्रजा आदि के पालक भी हों। इति नवमो वर्गः ॥

# [ ३९ ]

अत्रिर्ऋषिः॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराडनुष्टुप् । २, ३ निचृदनुष्टुप् । ४ स्वराडुष्णिक् । ५ बृहती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

यदिन्द्र चित्र मेहनास्ति त्वादातमद्रिवः ।
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥ १ ॥

भा०—हे ( अद्रिवः ) सूर्यवत् अभेद्य एवं मेघों के समान उदार पुरुषों और दृढ़ सैनिकों के स्वामिन् ! हे ( चित्र ) पूज्य ! अद्भुत गुण कर्म स्वभाव ! हे ( विदद्-वसो ) प्राप्त धन के स्वामिन् ! हे प्राप्त करने और ज्ञान करने वालों को बसाने और उनमें बसने वाले वा उनके धनों और प्राणों के स्वामिन् ! ( मेहना ) जिस प्रकार सूर्य वृष्टि लाता है उसी प्रकार हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! ( यद् ) जो ( मेहना ) उत्तम दान देने वा वृष्टि-वत उदारता से देने योग्य धन वा ज्ञान है वह ( त्वादातम् ) सब तेरे ही द्वारा देने योग्य है । उन सबका माता तू है (नः) हमें (तत्) वह (राधः) धनैश्वर्य तू ( उभया-हस्ति ) दोनों हाथों से ( आ भर ) प्राप्त करा अर्थात् तू उदारता पूर्वक दोनों हाथों से और हम आदरपूर्वक दोनों हाथों से लें । देने लेने दोनों कार्यों में दोनों हाथों का व्यापार हो ।

यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर ।
विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावने ॥ २ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! प्रभो ! तू ( यत् ) जो (वरेण्यम्) सर्वश्रेष्ठ और उत्तम मार्ग में लेजाने वाला (द्युक्षं) अन्न और धन (मन्यसे) मानता वा जानता हो ( तत् ) वह तू ( आ भर ) लेआ । ( अकूपारस्य तस्य ) जिसका परिणाम बुरा नहीं हो ऐसे वा समुद्रवत् अपार उस धनैश्वर्य को भी ( वयम् ) हम लोग ( ते दावने ) तुझ दाता का ( विद्याम ) जानते हैं ।

यत्ते॑ दि॒त्सु प्र॒राध्यं॒ मनो॒ अस्ति॑ श्रु॒तं बृ॒हत् ।
तेन॑ दृ॒ळ्हा चि॑दद्रिव॒ आ वाजं॑ दर्षि सा॒तये॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे ( अद्रिवः ) सूर्यवत् मेघ तुल्य शस्त्रधरों वा दानशीलों के स्वामिन् ! ( यत् ) जो ( ते ) तेरा ( दित्सु ) दान करने का इच्छुक ( प्र-राध्यं ) अति स्तुत्य एवं कार्यसाधक ( श्रुतं ) विख्यात और बहुश्रुत ( बृहत् ) बहुत बड़ा ( मनः अस्ति ) मन और ज्ञान है, ( तेन ) उससे तू ( दृढा चित् ) दृढ़ से दृढ़ दुर्गों को (आदर्षि) तोड़ सकता है और (सातये ) सत्यासत्य, वा धर्माधर्म के विवेक के लिये ( दृढा चित् आ दर्षि ) दृढ़ संग्रामों को भी जीतता है।

मंहि॑ष्ठं वो म॒घोनां॒ राजा॑नं चर्षणी॒नाम् ।
इन्द्र॒मुप॒ प्रश॑स्तये पू॒र्वीभि॑र्जुजुषे॒ गिरः॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् प्रजाजनो ! (मघोनां वः) उत्तम ऐश्वर्य से सम्पन्न आप ( चर्षणीनां ) ज्ञानवान् पुरुषों के बीच (मंहिष्ठं) अति दानशील और ( राजानम् ) अति तेजस्वी राजा (इन्द्रं) शत्रुहन्ता पुरुष को (प्रशस्तये) अच्छी प्रकार शासन करने और उसको उपदेश करने के लिये ( गिरः ) उत्तम उपदेष्टा वाग्मी लोग ( पूर्वीभिः ) पूर्व की वेद वाणियों द्वारा (उपजुजुषे ) प्रेमपूर्वक उपदेश करें और उसको ज्ञान का सेवन करावें। (२) परमेश्वर की उपासना के लिये वाणीविद् जन पूर्व गुरुओं द्वारा दृष्ट और उपदिष्ट प्राचीन वेद वाणियों से स्तुति करें।

अस्मा॑ इत्काव्यं॒ वच॑ उ॒क्थमिन्द्रा॑य॒ शंस्य॑म्
तस्मा॑ उ॒ ब्रह्म॑वाहसे॒ गिरो॑ वर्धन्त्यत्र॑यो॒ गिरः॑ शुम्भ॒न्त्यत्र॑यः ॥५॥१०॥

भा०—( अस्मै इत् इन्द्राय ) उस ही महान् ऐश्वर्यवान्, सूर्यवत् तेजस्वी के लिये ( काव्यं वचः ) कवियों का उत्तम वचन (शंस्यं ) कहने योग्य होता है। (अत्रयः ) इस राष्ट्र में रहने वा त्रिविधि दुखों से रहित

( गिरः ) उपदेष्टा और उत्तम वेदवाणियें भी ( तस्मै उ ब्रह्मवाहसे ) उसी धनैश्वर्य और बृहत् राष्ट्र के धारण करने वाले की शक्तियों को ( व-र्धन्ति ) बढ़ाते हैं और ( अत्रयः गिरः ) तीनों प्रकार के दोषों से रहित वाणियां भी उसको ही ( शुम्भन्ति ) सुशोभित करती हैं। ( २ ) विशाल जगत् के धारक प्रभु की महिमा को ही समस्त वाणियें और वाग्मी जन बढ़ाते और सुशोभित करते हैं। उसी को लक्ष्य करके ही यह सब वाणियों का वाग्-विलास है। इति दशमो वर्गः ॥

## [ ४० ]

अत्रिर्ऋषिः ॥ १—४ इन्द्रः । ५ सूर्यः । ६—९ अत्रिर्देवता ॥ छन्दः- १ निचृदुष्णिक् । २, ३ उष्णिक् । ९ स्वराडुष्णिक् । ४ त्रिष्टुप् । ५, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप् । ७ भुरिक् पंक्तिः ॥

आ याह्यद्रिभिः सुतं सोमं सोमपते पिब ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ १ ॥

भा०—हे ( सोमपते ) समस्त ऐश्वर्य के पालक! हे ( वृषन् ) उत्तम प्रबन्धकर्त्तः! हे ( वृत्रहन्तम ) अति अधिक शत्रुओं के मारने हारे, हे विघ्ननाशक! ( वृषभिः अद्रिभिः ) वर्षणशील मेघों से जिस प्रकार सूर्य उत्पन्न जगत् को पालन करता है उसी प्रकार तू भी हे राजन्! ( वृषभिः अद्रिभिः ) उत्तम प्रबन्धक और दृढ़ शस्त्रधर पुरुषों सहित ( सुतं सोमं ) पुत्रवत् राष्ट्र को वा अभिषेक द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य को ( आ याहि ) प्राप्त कर और ( पिब ) उसका पालन और उपभोग कर।

वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ २ ॥

भा०—( ग्रावा वृषा ) पत्थर या शिला जिस प्रकार अपने नीचे आये पदार्थों को कुचल देता है उसी प्रकार शत्रुओं को कुचलने वाला

शस्त्रबल, वा (ग्रावा) अधीन शिष्यों वा भृत्यों को उपदेश वा आज्ञा देने वाला नायक पुरुष (वृषा) मेघ के समान शस्त्रवर्षी, ज्ञानवर्षी, और प्रबन्धकर्त्ता हो। (मदः) प्रजाओं का दमन करने वाला पुरुष भी (वृषा) बलवान् हो। (सोमः वृषा) अभिषेक योग्य पुरुष भी बलवान् हो (अयं सुतः) यह ऐसा पुरुष अभिषेक किया जावे! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (वृत्रहन्तम) शत्रुओं के उत्तम नाशक। हे (वृषन्) बलवन्! तू इन बलवान् पुरुषों से राष्ट्र का पालन और उपभोग कर।

वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ ३ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) बल, वीर्य और शस्त्रबल के स्वामिन्! (चित्राभिः ऊतिभिः) अद्भुत रक्षण शक्तियों से युक्त (त्वा) तुझ (वृषणं) बलवान् पुरुष को ही (हुवे) मैं प्रजाजन स्वीकार करूं। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (वृषन्) बलवन्! हे (वृत्रहन्तम) उत्तम शत्रुदलनकारिन्! तू (वृषभिः) बलवान् पुरुषों सहित (वृषा) स्वयं बलवान् रहकर (सोमं पिब) राष्ट्रैश्वर्य का पालन और उपभोग कर।

ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट्छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ्माध्यन्दिने सवने मत्सदिन्द्रः ॥४॥

भा०—(ऋजीषी) धर्म मार्ग में सदा स्वयं रहने की इच्छा करने और औरों को चलाने हारा, (वज्री) शत्रुवारक सैन्यबल का स्वामी, (वृषभः) मेघवत् सुखों की वर्षा करने वाला, बलवान्, हृष्ट पुष्ट, (तुराषाट्) वेग से आने वाले, हिंसक शत्रुओं को पराजित करने वाला (वृत्रहा) बढ़ते और काटते, छेदते दुष्ट पुरुषों वा शत्रुओं को दण्ड देने हारा, (सोमपावा) ऐश्वर्यों का पालक और उनका ओषधि, अन्न आदिवत् उपभोक्ता

( इन्द्रः ) सूर्यवत्, शत्रुहन्ता, तेजस्वी (राजा) राजा ( शुष्मी ) बड़े भारी बल का स्वामी होकर, ( युक्त्वा ) समाहित, एकाग्र चित्त होकर वा अपने अधीन भृत्यों को रथ में अश्वों के समान नियुक्त कर। ( हरिभ्याम् ) अश्वों सहित वा दो उत्तम पुरुषों से सहायवान् होकर ( अर्वाङ् उप यासत् ) सन्मुख आवे। और ( माध्यन्दिने सवने ) दिन के मध्यकाल दोपहर में तपते सूर्य के समान अति प्रतापयुक्त दशा में अभिषेक हो जाने पर वह ( मत्सत् ) खूब प्रसन्न हो और औरों को भी हर्षित करे।

**यत्वा॑ सूर्य॒ स्व॑र्भा॒नुस्तम॒सावि॑ध्यदासु॒रः ।**
**अक्षे॑त्रवि॒द्यथा॑ मु॒ग्धो भुव॑नान्यदीधयुः ॥ ५ ॥ ११ ॥**

भा०—( स्वर्भानुः ) 'स्वः', सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होने वाला (आसुरः) स्वयं अप्रकाशित पिण्ड, अन्यों से प्रकाशित होने वाला चन्द्रादि आकाशीय पिण्ड जब ( तमसा ) अपने अन्धकारमय भाग से ( अविध्यत् ) वेध करता है, अर्थात् दोनों एक रेखा में आ जाते हैं तब ( भुवनानि ) समस्त अन्य नक्षत्र आदि लोक भी ( अदीधयुः ) ऐसे चमकते दिखाई देते हैं ( यथा ) जिससे ( अक्षेत्रवित् ) क्षेत्र मापन की विद्या रेखागणित वा ज्यामिति को न जानने हारा पुरुष ( मुग्धः ) मोह में पड़ जाता है कि यह क्या बात हुई, वह यह नहीं जानता कि चन्द्र ही सूर्य के आगे आ गया है, बड़े सूर्य को भी चन्द्र का बिम्ब आच्छादित कर लेता है। उसी प्रकार जब ( आसुरः ) कोई बलवान् पुरुष हे ( सूर्य ) सूर्यवत् तेजस्वी राजन्! ( स्वः-भानुः ) प्रकाश वा प्रताप से प्रतापी होकर ( त्वा तमसा अविध्यत् ) तुझे कष्टदायी बल से ताड़े तब ( भुवनानि ) सामान्य लोक भी ऐसे ( अदीधयुः ) आश्चर्यचकित हो जाते हैं ( यथा ) कि ( अक्षेत्रवित् ) क्षेत्र, अर्थात् निवास योग्य भूमि को प्राप्त न करने वाला जन प्रायः ( मुग्धः ) मोहयुक्त हो जाता है। ऐसे आक्रमणकारी को भी तू दबा कर अनाश्रित जनों को आश्रय दे। इत्येकादशो वर्गः ॥

स्वर्भानोरध यदिन्द्र माया अवो दिवो वर्त्तमाना अवाहन्।
गूळ्हं सूर्यं तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणाविन्ददत्रिः ॥ ६ ॥

भा०—( स्वर्भानोः ) सूर्य के प्रकाशित, स्वयम् अप्रकाश चन्द्र आदि पिण्ड की ( दिवः ) सूर्य से ( अवः ) उरे या नीचे की ओर ही ( वर्त्तमानाः ) रह जाने वाली ( मायाः ) अन्धकार की रेखाओं को सूर्य ( अव अहन् ) नीचे की ओर ही प्रेरित करता है। ( अप व्रतेन ) स्वतः क्रिया शून्य, ( तमसा ) अन्धकार से ( सूर्यं गूढं ) छुपे हुए सूर्य को ( अत्रिः ) इस भूलोक का वासी जन ( तुरीयेण ब्रह्मणा ) तीनों लोकों से परे विद्यमान 'ब्रह्म' अर्थात् विशाल तेज से ही उसको ( अविन्दत् ) देख रहा होता है। ठीक उसी प्रकार हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! सूर्यवत् तेजस्विन्! ( अध यत् ) जब ( दिवः अवः वर्त्तमानाः ) सूर्यवत् तेजस्वी विजिगीषु तेरे से परे दूर २ रहने वाली ( स्वः भानोः ) प्रतापी शत्रु की ( मायाः ) अद्भुत मायाओं और चालों को भी तू ( अव अहन् ) मार गिराता है तब ( अपव्रतेन तमसा गूढं सूर्यं ) क्रियाकौशल से रहित खेदादि से आच्छादित ।तुझ सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को भी ( अत्रिः ) इस राष्ट्र का वासी जन ( तुरीयेण ) सर्वातिशायी ( ब्रह्मणा ) बड़े भारी बल और ऐश्वर्य से ही ( अविन्दत् ) प्राप्त करता है।

मा मामिमं तव सन्तमत्र इरस्या द्रुग्धो भियसा नि गारीत्।
त्वं मित्रो असि सत्यराधास्तौ मेहावतं वरुणश्च राजा ॥ ७ ॥

भा०—हे राजन्! ( अत्र ) इस राष्ट्र में ( सन्तं ) विद्यमान ( इमं मां तव ) इस तेरी प्रजा रूप मुझ को ( द्रुग्धः ) द्रोही शत्रु ( इरस्या ) अन्न की इच्छा से, अन्न समृद्धि के लोभ से वशीभूत होकर भी (भियसा) तेरे भय से भयभीत रहकर ( मा नि गारीत् ) मत निगल जावे। ( त्वं मित्रः असि ) तू ही हमारा मित्र अर्थात् हमें मरण से बचाने वाला है। तू ही ( सत्य-राधाः ) सत्य, न्याय का धनी है। तू ( राजा ) राजा और

( वरुणः च ) शत्रु को वारण करने हारा सेनापति ( तौ ) वे आप दोनों ही ( इह ) इस राष्ट्र में ( मे ) मेरी ( अवतं ) रक्षा करें।

ग्राव्णो ब्रह्मा युयुजानः सपर्यन् कीरिणा देवान्नमसोपशिक्षन् ।
अत्रिः सूर्यस्य दिवि चक्षुराधात्स्वर्भानोरप माया अघुक्षत् ॥८॥

भा०—( युयुजानः ) नाना प्रकार के योग अर्थात् सन्धि आदि उपाय करने वाला ( ब्रह्मा ) बड़े भारी राष्ट्र और धन का स्वामी, ( कीरिणा ) शत्रु पर फेंके जाने वाले शस्त्र बल से युक्त होकर ( ग्राव्णः ) शिलावत् शत्रुमर्दन करने वाले प्रबल दृढ़ ( देवान् ) विजयेच्छुक पुरुषों को (सपर्यन् ) आदर सत्कार करता हुआ और उनको ( नमसा ) अन्न से, विनय से ( उप शिक्षन् ) शिक्षित करता हुआ, ( अत्रिः ) इस राष्ट्र का भोक्ता राजा वा प्रजा जन ( सूर्यस्य दिवि ) सूर्य के प्रकाशवत् तेजस्वी राजा के न्याय प्रकाश में ( चक्षुः ) यथार्थ दर्शन करने वाला विवेक ( अदधात् ) धारण करे और वह राजा और प्रजाजन भी ( स्वर्भानोः मायाः ) प्रताप से चमकने वाले शत्रु की मायाओं को ( अप अघुक्षत् ) दूर करे। इसी प्रकार ( युयुजानः ब्रह्मा ) समाहित एवं अन्यों के प्रज्ञानों और संदेहों का समाधान करने वाला वेदज्ञ विद्वान् ( कीरिणा ) उदारता से वाणी द्वारा वितरण योग्य वचन द्वारा ( देवान् ग्राव्णः सपर्यन् ) विद्या के अभिलाषी और ज्ञान के पिपासु जनों को आदरपूर्वक देता हुआ ( नमसा ) दण्ड सहित ( उप शिक्षन् ) उनको शिक्षा देता हुआ, स्वयं ( अत्रिः ) त्रिविध तापों और मन, वाक् काय के त्रिविध दोषों से रहित होकर ( सूर्यस्य दिवि ) सूर्यवत् सबको प्रकाश, वेद वा प्रभु के दिये वेद-ज्ञान-प्रकाश में (चक्षुः आधात्) शिष्यों के ज्ञान चक्षुओं को स्थिर कर देता है। और ( स्वर्भानोः ) केवल सुख की प्रतीति कराने वाले राग, मोह की ( मायाः ) मायाओं, प्रवचनों खोटी बुद्धि, वासनाओं को ( अव-जुघुक्षुत ) दूर करे।

यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः ।
अत्रयस्तमन्वविन्दन्नह्य१न्ये अशक्नुवन् ॥ ९ ॥ १२ ॥

भा०—( यं सूर्यं ) जिस सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को (स्वर्भानुः) सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित, चन्द्र वा मेघ के समान परोपजीवी ( आसुरः ) बलवान् शत्रु ( तमसः ) अन्धकारवत् अन्यों के आंख मूंद कर पाप या छल से ( अविध्यत् ) प्रहार करे तो (अत्रयः) उसी स्थान के लोग (तम्) उस तेजस्वी राजा को ( अनु अविन्दन् ) पुनः अपनावें और ( अन्ये ) दूसरे लोग ( नहि अशक्नुवन् ) उसे नहीं अपना सकते । उसकी पूर्व प्रजाएं ही उसको बलवान् शत्रु से बचा और पुनः स्थापित भी कर सकती हैं । इति द्वादशो वर्गः ॥

## [ ४१ ]

अत्रिर्ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ छन्दः—१, २, ६, १५, १८ त्रिष्टुप् । ४, १३ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ७, ८, १४, १९ पंक्तिः । ५, ९, १०, ११, १२ भुरिक् पंक्तिः । २० याजुषी पंक्तिः । १६ जगती । १७ निचृज्जगती ॥
विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

को नु वां मित्रावरुणावृतायन्दिवो वा महः पार्थिवस्य वा दे ।
ऋतस्य वा सदसि त्रासीथां नो यज्ञायते वा पशुषो न वाजान् ॥१

भा०—हे ( मित्रावरुणौ ) मित्र, सबको स्नेह दृष्टि से देखने हारे, सबके हितैषी ! हे वरुण, शत्रु के वारण करने हारे श्रेष्ठ पुरुष ! ( कः नु ) कौनसा है जो ( वां ) आप दोनों को ( ऋतायन् ) सत्य, न्याय, बल और धन को प्राप्त करने का इच्छुक होकर प्राप्त होता है आप दोनों इस बात का सदा ध्यान रक्खो और आप ( महतः दिवः ) बड़े तेजस्वी, राजा ( वा ) और ( पार्थिवस्य ) पृथिवी निवासी प्रजावर्ग के ( वा ) और ( ऋतस्य वा सदसि ) ज्ञान वा सत्य न्याय के भवन में स्थित होकर

( दे ) प्रकाशित होकर ( यज्ञायते ) परस्पर सत्संग चाहने वाले राष्ट्र के हितार्थ ( नः ) हमें और हमारे ( वाजान् ) ऐश्वर्यों को भी ( पशुपः न ) पशुओं के समान ही ( त्रासीथाम् ) रक्षा किया करो। अर्थात् प्रत्येक रक्षार्थी और न्यायार्थी के लिये राजा के न्याय और पुलिस का विभाग न्यायरक्षा के लिये सदा सन्नद्ध रहना चाहिये।

ते नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतो जुषन्त।
नमोभिर्वा ये दधते सुवृक्तिं स्तोमं रुद्राय मीळ्हुषे सजोषाः ॥२॥

भा०—( मित्रः ) सर्वप्रिय, सर्वस्नेही, न्यायाधीश, ( वरुणः ) सर्वश्रेष्ठ, दुष्टवारक दण्डाध्यक्ष, ( अर्यमा ) न्यायकारी, शत्रुनियन्ता, ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् , ( ऋभुक्षाः ) बड़ा विद्वान् पुरुष ( आयुः ) प्राणाचार्य, और ( मरुतः ) उत्तम वैश्यजन वा प्रजावर्ग, वायुवद् बली वीरजन सभी ( ते ) वे ( नः जुषन्त ) हम प्रजाजनों को प्रेमपूर्वक चाहें। ( ये ) जो ( मीढुषे ) वर्षणकारी ( रुद्राय ) दुष्टों को रुलाने वाले सेनापति के हितार्थ ( सजोषाः ) समान रूप से सेवा करने वाले होकर (स्तोमं दधते ) उत्तम स्तुति वा संघबल को धारण करते और जो उसके हितार्थ ही ( नमोभिः ) शत्रु को नमाने वाले साधनों सहित ( सु-वृक्तिं ) शत्रु को वर्जने की उत्तम शक्ति को भी ( दधते ) धारण करते हैं ( ते ) वे वीर पुरुष भी ( नः जुषन्त ) हमसे प्रेम करें। वे भी प्रजा के द्वेषी न हों।

आ वां येष्ठाश्विना हुवध्यै वातस्य पत्मन्रथ्यस्य पुष्टौ।
उत वा दिवो असुराय मन्म प्रान्धांसीव यज्यवे भरध्वम् ॥ ३ ॥

भा०—हे ( अश्विनौ ) स्त्री और पुरुषो ! पति और पत्नी ! ( वां ) आप दोनों को मैं ( येष्ठौ ) अति नियम में रहने वाले होने के लिये ( आहुवध्यै ) उपदेश करता हूं। आप दोनों ( वातस्य पत्मन् ) वायु अर्थात् प्राण के निरन्तर चलने और ( रथ्यस्य पुष्टौ ) रथ के योग्य अश्व

के समान आत्मा को पुष्ट करने में ( उत वा ) और ( दिवः असुराय ) ज्ञान प्रकाश को जीवनवत् देने वाले ( यज्यवे ) दानशील पुरुष के ( मन्म ) मनन करने योग्य उत्तम ज्ञान और ( अन्धांसि ) अन्न ( प्र भरध्वम् ) प्राप्त करो । स्त्री पुरुष लोग अपने जीवन, आत्मा के पोषणार्थ ज्ञान और अन्न संग्रह किया करें ।

प्र स॒क्षणो॑ दि॒व्यः कण्व॑होता त्रि॒तो दि॒वः स॒जोषा॒ वातो॑ अ॒ग्निः ।
पू॒षा भगः॑ प्रभृ॒थे वि॒श्वभो॑जा आ॒जिं न ज॑ग्मुरा॒श्व॑श्वतमाः ॥ ४ ॥

भा०—(आशु-अश्वतमाः प्रभृते आजिं न) जिस प्रकार अति वेगवान् अश्वारोही लोग शत्रु पर प्रहार करने के लिये संग्राम में वेग से जाते हैं उसी प्रकार ( प्र-भृथे ) राज्य को अच्छी प्रकार भरण पोषण वा पालन के कार्य में भी ( सक्षणः ) अति सहनशील, शत्रुपराजयकारी, सावधान, समवायवान् ( दिव्यः ) तेजस्वी ( कण्व-होता ) विद्वान् पुरुषों को देने वाला, वा विद्वानों से उपदेश किया गया, ( त्रितः ) मन, वाणी और देह तीनों में स्थिर, तीनों विद्याओं में निष्णात, शत्रु, मित्र, उदासीन तीनों में प्रसिद्ध, ( दिवः सजोषाः ) विजय कामना को चाहने वाला, ( वातः ) वायुवद् बलशाली, ( अग्निः ) अग्निवत् तेजस्वी और ( पूषा ) सर्वपोषक ( भगः ) ऐश्वर्य सम्पन्न ये सब प्रकार के पुरुष ( विश्व-भोजाः ) समस्त राष्ट्र के पालन करने हारे लोग ( आशु-अश्वतमाः ) अति वेगयुक्त अश्वों पर चढ़कर ( प्र जग्मुः ) जाया करें । युद्धवत् ही राष्ट्र के कार्यों में सब लोग वेग से ही जाया आया करें, विलम्ब न किया करें ।

प्र वो॑ र॒यिं यु॒क्ताश्वं॑ भरध्वं रा॒य एषेऽव॑से दधीत॒ धीः ।
सु॒शेव॒ एवै॑रौशि॒जस्य॒ होता॒ ये व॒ एवा॑ मरुतस्तु॒राणा॑म् ॥५॥१२॥

भा०—हे ( मरुतः ) विद्वान् और वीर पुरुषो ! आप लोग ( वः ) अपने लिये ( युक्ताश्वं ) अश्व जोड़ कर ले जाने योग्य ( रयिम् ) प्रचुर

धन को ( प्र भरध्वम् ) खूब प्राप्त करो । आप लोग ( रायः ) ऐश्वर्य को ( एषे अवसे ) प्राप्त करने और उसकी रक्षा करने के लिये ( धीः दधीत ) नाना उपाय, तदवीर करो और बहुत से यत्न करो । ( ये ) जो ( वः ) आप लोगों में से ( तुराणां ) अति शीघ्रगामी रथों और शत्रुहिंसक वीर पुरुषों के ( एवाः ) गमन साधन रथ आदि से युक्त हैं वे और जो ( औशिजस्य ) 'उशिक्' अर्थात् कामना करने वाले ऐश्वर्यों के इच्छुक पुरुष की कामना के योग्य उत्तम धन का ( सुशेवः होता ) उत्तम सुख समृद्धि से युक्त दानशील पुरुष ( एवैः ) नाना रथादि साधनों से ( रयिं भरन्तु ) अपने ऐश्वर्य को प्राप्त किया करें । और ( धीः दधतु ) नाना उपाय और उद्योग किया करें । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

**प्र वो वायुं रथयुजं कृणुध्वं प्र देवं विप्रं पनितारमर्कैः ।**
**इषुध्यवं ऋतसापः पुरन्धीर्वस्वीर्नो अत्र पत्नीरा धिये धुः ॥६॥**

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग ( वः ) अपने लिये ( रथयुजं ) रथ में जुड़ने वाले अश्व के स्थान पर ( वायुं ) वायु तुल्य वेगवान् साधन को ( प्र कृणुध्वम् ) अच्छी प्रकार लगाओ । ( अर्कैः ) उत्तम अर्चना करने योग्य पदार्थों और मन्त्रों से ( पनितारम् ) स्तुति, उपदेश और व्यवहार करने वाले ( विप्रं ) विद्वान् और विविध धनपूरक और ( देवं ) ज्ञान के दाता और ऐश्वर्य के इच्छुक पुरुष का (प्र कुरुत ) आदर करो । ( अत्र ) इस राष्ट्र में ( इषुध्यवः ) नाना ऐश्वर्यों को चाहने वाली, नाना देशों को जाने वाली और वाण आदि अस्त्रों से युद्ध करने वाली ( ऋतसापः ) धन और ज्ञान का सञ्चय करने वाली ( पुरन्धीः ) राष्ट्र को धारण करने वाली प्रजाओं, सेनाओं और ( वस्वीः ) घर को बसाने वाली ( पत्नीः ) पत्नियों, विवाहित स्त्रियों के तुल्य ( वस्वीः पत्नीः ) ऐश्वर्य युक्त, राष्ट्र में बसी, राष्ट्र-पालक शक्तियों, सेनाओं को भी ( धिये ) उत्तम कर्म यज्ञादि सम्पादन के लिये (आ धुः) आदर पूर्वक धारण करो ।

उप॑ व॒ एषे॒ वन्द्ये॑भिः शू॒षैः प्र य॒ह्वी दि॒वश्चि॒तय॑द्भिर॒र्कैः ।
उ॒षासा॒नक्ता॑ वि॒दुषी॑व॒ विश्व॒मा हा॑ वहतो॒ मर्त्या॑य य॒ज्ञम् ॥ ७ ॥

भा०—( उषासानक्ता ) दिन और रात्रि के तुल्य प्रकट, कामना युक्त और अप्रकट कामना वा लज्जाभाव से युक्त होकर रहने वाले स्त्री और पुरुष दोनों मिलकर ( विदुषी इव ) विद्वान् स्त्री पुरुषों के तुल्य ही ( मर्त्याय ) मनुष्य मात्र के उत्पन्न करने और परोपकार करने के लिये ( विश्वम् यज्ञम् ) समस्त प्रकार के यज्ञ अर्थात् पञ्चयज्ञ महायज्ञ और परस्पर के सत्संग और आदर सत्कार आदि कर्म ( आवहतः ) धारण किया करें । वे दोनों ( दिवः ) ज्ञान, प्रकाश और कामना के ( चितयद्भिः ) बतलाने वाले ( अर्कैः ) उत्तम वचनों से ( यह्वी ) महान् होकर ( प्रवहतः ) आगे बढ़ें और ( वन्द्येभिः ) स्तुति योग्य ( शूषैः ) सुखों और बलों से युक्त हों । हे स्त्री पुरुषो ! ( वः उप एषे) मैं ऐसे आप दोनों को प्राप्त होऊं । अपने राष्ट्र में चाहूं ।

अ॒भि वो॑ अर्चे पो॒ष्याव॑तो॒ नॄन्वास्तो॒ष्पतिं॒ त्वष्टा॑रं॒ ररा॑णः ।
धन्या॑ स॒जोषा॑ धि॒षणा॒ नमो॑भि॒र्वन॒स्पतीँ॒रोष॑धी रा॒य एषे॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! मैं (रराणः) सदा दानशील होकर ( वः ) आप लोगों में से ( पोष्यावतः नॄन् ) अपने अधीन पोष्य, स्त्री पुत्र भृत्य परिजन, याचक अतिथि आदि के स्वामी उत्तम पुरुषों का ( अभि अर्चे ) आदर करूं । और ( त्वष्टारं ) तेजस्वी और शिल्पकार, ( वास्तोष्पतिम् ) गृह, निवासस्थान आदि के पालक पुरुष का ( अभि अर्चे ) आदर करूं और मैं ( रायः एषे ) ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के लिये ( धन्यः ) धन सम्पदा को बढ़ाने वाला, ( सजोषः ) समान प्रीतियुक्त, ( धिषणा = अधि-सना ) उत्तम प्रज्ञाओं और अधिष्ठात्री होकर अन्न आदि देने वाली तथा रानी बन कर भोग करने वाली स्त्रियों, प्रजाओं और ( वनस्पतीः ) ऐश्वर्यों की पालक, वट आदि के समान सर्वाश्रय दात्री, ( ओषधीः )

ओषधियों और ताप, तेज को धारण करने वाली सेनाओं को भी ( नमोभिः ) अन्नों, आदर सत्कारों और शस्त्रादि अधिकार प्रदानों द्वारा ( अभि अर्चे ) सदा आदर करूं।

तुजे नस्तने पर्वताः सन्तु स्वैतवो ये वसवो न वीराः।

पनित आप्त्यो यजतः सदा नो वर्धान्नः शंसं नर्यो अभिष्टौ॥९॥

भा०—जिस प्रकार ( पर्वताः तुजे तने स्वैतवः वसवः ) विस्तृत राष्ट्र में पर्वत अर्थात् पालन करने, धन देने वाले और प्रजाओं को वसाने वाले होते हैं और जिस प्रकार मेघ प्रजा के पालन में स्वयं आने वाले होकर प्रजा को बसाने हारे होते हैं उसी प्रकार ( पर्वताः ) पालनकारी साधनों से युक्त बड़े लोग भी ( तने ) विस्तृत राष्ट्र में रह कर ( नः तुजे ) हमें ऐश्वर्य देने, पालने में ( स्वैतवः ) स्वयं आगे आने वाले, अग्रसर और धन प्राप्त करने वा कराने वाले और ( वसवः ) स्वयं बसने और प्रजाओं को बसाने वाले ( वीराः न ) वीर पुरुषों के समान सदा उत्साही हों। ( पनितः ) प्रशंसनीय, व्यवहारकुशल, ( आप्त्यः ) आप्त पुरुषों का हितकारी, ( यजतः ) दानशील, सब के साथ प्रेम सौहार्द से वर्त्तने वाला, ( नर्यः ) मनुष्यों का हितकारी पुरुष ( नः अभिष्टौ ) हमारे अभीष्ट कार्य में ( नः ) हमारे ( शंसं ) स्तुत्य ज्ञान और ऐश्वर्य को ( वर्धात् ) बढ़ावे।

वृष्णो अस्तोषि भूम्यस्य गर्भं त्रितो नपातमपां सुवृक्ति।

गृणीते अग्निरेतरी न शूषैः शोचिष्केशो नि रिणाति वना॥१०॥१४॥

भा०—मैं ( वृष्णः ) बरसने वाले ( भूम्यस्य ) भूमि के हितकारी मेघ के ( गर्भः ) मध्य भाग में रहने वाले और ( अपां नपातम् ) जलों को न गिरने देने वाले वा उनसे उत्पन्न ( सुवृक्ति ) और उनको उत्तम रीति से विभक्त करने वाले वैद्युत अग्नि को लक्ष्य कर ( अस्तोषि ) उपदेश करता हूं कि वह ( अग्निः ) तेजयुक्त अग्नि ( एतरि शूषैः न ) रथ पर

चढ़े सेनापति के तुल्य बल युक्त प्रहारों से (गृणीते) शब्द करता है। और वह (शोचिष्केशः) दीप्तियुक्त केशों के समान ज्वालाओं से युक्त तेजस्वी, भौम अग्निवत् (वना नि रिणाति) वनों के समान जलों में व्यापता है उसी प्रकार मैं (वृष्णः) अति बलशाली (भूम्यस्य) भूमि पर स्थित राष्ट्र के (गर्भं) ग्रहण या वश करने वाले (अपां नपातम्) आप्त प्रजाजनों को नीचे न गिरने देने वाले उनको पुत्रवत् प्रिय, (सुवृक्ति) उत्तम धन वा न्याय के विभाजक का मैं (अस्तोषि) गुण वर्णन करता हूं। वह (त्रितः) तीनों उत्तम, मध्यम और अधम, और विजगीषु और उदासीन तीनों प्रकार के लोगों से ऊपर रहकर (अग्निः) सब का अग्रणी होकर (शूषैः) सुखकारी वचनों और शत्रुशोषक बलों से (गृणीते) सब पर शासन करता है वह (शोचिष्केशः) सूर्य या अग्नि के तुल्य तेजोयुक्त केशवत् दीप्तियों से युक्त होकर (वना) शत्रु के सैन्यों को वनों के अग्निवत् (नि रिणाति) दग्ध कर देता है। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

**कथा महे रुद्रियाय ब्रवाम कद्राये चिकितुषे भगाय ।**
**आप ओषधीरुत नोऽवन्तु द्यौर्वना गिरयो वृक्षकेशाः ॥ ११ ॥**

भा०—हम लोग (महे) बड़े, माननीय, (रुद्रियाय) शत्रुओं को रोकने में समर्थ राजा के पुत्र के तुल्य, प्रिय सैन्यों और विद्याओं का उपदेष्टा आचार्य के पुत्र वा उससे विद्या प्राप्त करने वाले विद्वान् और (चिकितुषे भगाय) ज्ञान से युक्त सेवने योग्य सत् पुरुष की (राये) उत्तम ऐश्वर्य की प्राप्ति और वृद्धि के लिये (कथा) किस प्रकार से और (कत्) किस २ अवसर में (ब्रवाम) उससे प्रार्थना निवेदन आदि करें। यह हम सदा जानें। और (आपः) जल और आप्त पुरुष (ओषधीः) सोमलता आदि ओषधियां और प्रतापिनी सेनाएं (द्यौः) सूर्य और तेजस्वी पुरुष (वना) वन, सूर्य की किरणों और ऐश्वर्य और (वृक्षकेशाः गिरयः) वृक्षों को केशवत् धारण करण करने वाले पर्वत और वृक्षों के केश वा जटा

के तुल्य लम्बी जटा केश धारण करने वाले जटिल जन, (गिरयः) वृद्ध उपदेष्टा जन अथवा ( वृक्षकेशाः ) वृक्षवत् काटने योग्य केशों का अन्त कर देने वाले ज्ञान वृद्ध गुरुजन ( नः अवन्तु ) हमारी रक्षा करें ।

शृणोतु न ऊर्जां पतिर्गिरः स नभस्तरीयाँ इषिरः परिज्मा ।
शृण्वन्त्वापः पुरो न शुभ्राः परि स्रुचो बबृहाणस्याद्रेः ॥ १२ ॥

भा०—( ऊर्जांपतिः ) अन्नों और बलों का स्वामी ( नः ) हमारी ( गिरः ) वाणियों को ( शृणोतु ) सुने। और अपनी वाणियें और आज्ञाएं हमें सुनावे। ( सः ) वह ( नभः ) राष्ट्र का प्रबन्ध करने वाला, ( तरीयान् ) सबसे अधिक बलवान् ( इषिरः ) सब से प्राप्त करने योग्य, अग्रगामी, ( परिज्मा ) चारों तरफ की भूमियों का अध्यक्ष हो। ( पुरः न ) उत्तम नगरियों के तुल्य ( शुभ्राः ) दीप्तियुक्त ( आपः ) आप्त जन भी ( अद्रेः परिस्रुचः आपः न ) मेघ से बहने वाली जल-धाराओं के तुल्य स्वयं ( बबृहाणस्य ) सदा वृद्धिशील, ( अद्रेः ) अभेद्य, एवं मेघवत् उदार, शस्त्र बल के स्वामी के ( परि स्रुचः ) अधीन, उसकी आज्ञा में चलने वाली सेनाएं वा लोक वा ( आपः ) आप्त प्रजाएं भी ( शृण्वन्तु ) शासक राजा की उत्तम आज्ञाएं सुनें।

विदा चिन्नु महान्तो ये व एवा ब्रवाम दस्मा वार्यं दधानाः ।
वयश्चन सुभ्व आव यन्ति क्षुभा मर्तमनुयतं वधस्नैः ॥१३॥

भा०—हे ( महान्तः ) बड़े, पूज्य पुरुषो ! ( ये ) जो ( वः ) आप लोगों में से ( एवाः ) ज्ञानवान् ( दस्माः ) शत्रुओं और अज्ञानों का नाश करने वाले और ( वार्यं ) वरण करने योग्य, उत्तम ज्ञान वा ऐश्वर्य धारण करने वाले और ( वयः चन दधानाः ) बल, अन्न को भी धारण करते हैं वे ( सुभ्वः ) उत्तम भूमि के स्वामी वा उत्तम सामर्थ्यवान् होकर ( वधस्नैः ) शस्त्रों सहित ( अनुयतं ) अपने अनुकूल रहकर यत्न करने वाले

( मर्त्तं ) शत्रुमारक युवा मनुष्य को ( क्षुभा ) शोभा या उत्साह पूर्वक संचालन की रीति से ( आ अव यन्ति ) अपने अधीन रख कर चलाते हैं। उनको ही हम ( ब्रवाम ) प्रजागण अपना दुःख सुख कहें और वे ( विद चित् ) स्वयं प्रजा के सुख दुःखों को भी जानें।

आ दैव्यानि पार्थिवानि जन्मापश्चाच्छा सुमखाय वोचम्।
वर्धन्तां द्यावो गिरश्चन्द्राग्रा उदा वर्धन्तामभिषाता अर्णाः॥१४॥

भा०—मैं विद्वान् पुरुष ( सुमखाय ) उत्तम यज्ञशील पुरुष को उन्नति के लिये ( दैव्यानि ) देव अर्थात् राजा, विद्वानों तथा सूर्य आदि तेजोमय पदार्थों के और ( पार्थिवानि ) पृथिवी के स्वामियों और पृथिवीस्थ महान् २ पदार्थों के ( जन्म ) उत्पन्न होने और ( अपः च ) उनके कर्म और उपभोगों का ( अच्छ ) भली प्रकार ( आवोचं ) सर्वत्र उपदेश करूं। ( उदा अभिषाताः ) जल से पूरित ( अर्णाः ) जलमय मेघों, जलाशयों समुद्रों के तुल्य ही ( द्यावः ) अति प्रकाशयुक्त, ज्ञान वाली ( चन्द्राग्राः ) चन्द्रवत् आह्लादकारी नायकादि से युक्त ( गिरः ) वाणियें ( वर्धन्ताम् ) खूब बढ़ें।

पदेपदे मे जरिमा नि धायि वरूत्री वा शक्रा या पायुभिश्च।
सिषक्तु माता मही रसा नः स्मत्सूरिभिर्ऋजुहस्त ऋजुवनिः ११।१५

भा०—( मे ) मेरे ( पदे-पदे ) प्रत्येक प्राप्त करने योग्य, और जाने योग्य स्थान में ( वरूत्री ) शत्रुओं का वरण करने वाली ( शक्रा ) शक्तिशालिनी, ( जरिमा ) शत्रुओं का नाश करने वाली सेना ( या ) जो ( पायुभिः च ) उत्तम रक्षकों और रक्षासाधनों से युक्त हो ( निधायि ) स्थापित हो। और ( माता ) माता के समान सबको उत्पन्न और पालन करने वाली ( मही ) भूमि ( रसा ) जल और रसवान् पदार्थों से पूर्ण होकर ( नः ) हमें ( सिषक्तु ) सुख दे। और वह ( सूरिभिः ) उत्तम

विद्वानों से ही ( ऋजु-हस्ता ) सरल, धार्मिक, सिद्धहस्त हाथों वा कार्यकर्त्ताओं वाली और ( ऋजु-वनिः ) सरल, धर्मयुक्त पुरुषों को नाना पदार्थ देने वाली हो। ( २ ) इसी प्रकार हमारी वाणी पद पद पर पवित्र कार्यों से उत्तम शक्तिशालिनी हो, वह माता के समान, ज्ञानप्रद, सरस, धर्म से अधर्म का नाश करने वाली, धर्म का विवेक करने वाली हो। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

**कथा दाशेम नमसा सुदानूनेवया मरुतो अच्छोक्तौ प्रश्रवसो मरुतो अच्छोक्तौ। मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धादस्माकं भूदुपमातिवनिः ॥ १६ ॥**

भा०—जो ( मरुतः ) विद्वान् पुरुष ( अच्छोक्तौ ) अभिमुख उपस्थित शुश्रूषु जनों के प्रति उपदेश करने में ( प्र-श्रवसः ) उत्तम श्रवण योग्य ज्ञान से सम्पन्न हैं वे ( मरुतः प्र-श्रवसः ) उत्तम अन्नोत्पादक जलप्रद वायुओं के तुल्य होते हैं। उन ( मरुतः ) विद्वान् ( सुदानून् ) उत्तम ज्ञान देने वाले मेघवत् उदार पुरुषों के ( अच्छोक्तौ ) उनके अच्छे उपदेश के निमित्त ( नमसा ) आदरपूर्वक हम ( कथा ) किस प्रकार ( दाशेम ) देवें, यह बात हमें अच्छी प्रकार जाननी चाहिये। जिस प्रकार ( बुध्न्यः अहिः ) अन्तरिक्ष में स्थित मेघ अपने प्रबल विद्युत् आघात से प्रजाओं का नाश कर सकता है उसी प्रकार ( बुध्न्यः ) ज्ञान मार्ग में ले जाने वाला ( अहिः ) संमुखस्थ विद्वान् भी ( नः ) हमें ( रिषे ) हिंसा या विनाश के लिये ( मा धात् ) न दे। प्रत्युत वह ( अस्माकं ) हमारे ( उपमाति-वनिः ) ज्ञान देने वाला ही ( भूत् ) हो।

**इति चिन्नु प्रजायै पशुमत्यै देवासो वनते मर्त्यो व आ देवासो वनते मर्त्यो वः। अत्रा शिवां तन्वो धासिमस्या जरां चिन्मे निर्ऋतिर्जग्रसीत ॥ १७ ॥**

भा०—हे ( देवासः ) विद्वान् पुरुषो ! हे ( देवासः ) दानशील,

सूर्य की किरणों के समान तेजस्वी पुरुषो ! ( मर्त्यः ) मनुष्य ( चित् नु ) जिस प्रकार ( पशुमत्यै प्रजायै ) पशु आदि से समृद्ध, प्रजा की वृद्धि के लिये भी ( वः ) आप लोगों की ( शिवां ) कल्याणकारिणी ( जरां ) वाणी को ( आ वनते ) आदर से सेवन करे उसी प्रकार ( मर्त्यः ) मनुष्य ( वः ) आप लोगों की ( धासिम् ) धारण-पालनकारिणी शक्ति को भी ( आ वनते ) आदर से सेवन करे उसी प्रकार ( मर्त्यः ) मनुष्य ( वः ) आप लोगों की ( धासिम् ) धारण पालनकारिणी शक्ति को भी ( आ-वनते) सब प्रकार से प्राप्त करे । (अत्र) इस राष्ट्र वा लोक में (निर्ऋतिः) रोगादि कष्ट ही प्रायः ( अस्याः तन्वः ) इस देह के ( धासिम् ) पुष्टि और ( जरां चित् ) दीर्घकालिक जरावस्था को भी ( जग्रसीत ) ग्रस लेती है इसलिये हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग उस रोगादि कष्ट को सदा दूर किया करो ।

**तां वो॑ देवाः सु॒म॒तिमू॒र्जय॑न्ती॒मिष॑मश्याम वसवः॒ शसा॒ गोः ।**
**सा नः॑ सु॒दानु॑र्मृ॒ळय॑न्ती दे॒वी प्रति॒ द्रव॑न्ती सुवि॒ताय॑ गम्याः ॥१८॥**

भा०—हे ( देवाः ) विद्वान् पुरुषो ! हे ( वसवः ) राष्ट्र में बसे प्रजाजनों वा प्रजाओं को बसाने वाले अधिकारी पुरुषो ! वा किरणों के तुल्य तेजस्वी विद्वान् पुरुषो ! हम ( गोः शसा ) वाणी के अनुशासन और पृथ्वी के शासन द्वारा ( ऊर्जयन्तीम् ) बल पराक्रम को बढ़ाने वाली (इषम् ) अन्न और प्रेरणा को और (सुमतिम्) उत्तम प्रज्ञा को (अश्याम) प्राप्त करें, उसका सदुपभोग करें । (सा) वह ( देवी ) सुख देने वाली, ( सुदानुः ) उत्तम दानशील प्रज्ञा विदुषी के तुल्य ही ( द्रवन्ती ) प्रत्येक को प्राप्त होती हुई ( सुविताय ) सुख प्राप्त कराने के लिये (प्रति गम्याः) प्रत्येक को प्राप्त हो ।

**अ॒भि न॒ इळा॑ यू॒थस्य॑ मा॒ता स्मन्न॒दीभि॑रु॒र्वशी॑ वा गृणातु ।**
**उ॒र्वशी॑ वा बृहद्दि॒वा गृ॑णा॒नाभ्यू॒र्ण्वा॒ना प्र॑भृ॒थस्या॒योः ॥ १९ ॥**

भा०—( इडा ) यह भूमि और स्तुति योग्य, उपदेश वाणी (नः) हमारे ( यूथस्य ) पशु आदि समूह और हमारे शिष्यादि समूह की (माता स्मत् ) उत्तम ज्ञानदात्री, और उत्पादक माता के समान ही है। जिस प्रकार भूमि ( नदीभिः ) जल पूर्ण नदियों से ( उर्वशी ) बहुतों से कामना करने योग्य, सुन्दर होती है उसी प्रकार वाणी भी ( नदीभिः ) उपदेशप्रद वाणियों से ( उर्वशी ) बहुतों को वश करने वाली होती है। वह सदा ( गृणातु ) शब्दकारिणी विद्युत् के तुल्य सदा उपदेश करे। ( वा ) उसी प्रकार ( बृहद्-दिवा ) अधिक ज्ञान प्रकाश से युक्त (उर्वशी) बहुत सी प्रजाओं को वश करने वाली ( गृणाना ) ज्ञान का उपदेश करती हुई माता के समान ही वाणी ( प्र-भृथस्य आयोः ) अच्छी प्रकार धारण किये हुए बालक के तुल्य शिष्य आदि को ( अभि ऊर्णुवाना ) वस्त्रादि से आच्छादित करती हुई ही ( गृणातु ) ज्ञान का उपदेश किया करती है इस प्रकार सावित्री वेदवाणी उत्तम माता के तुल्य ही है।

सिषक्तु न ऊर्जव्यस्य पुष्टेः ॥ २० ॥ १६ ॥

भा०—( ऊर्जव्यस्य ) अन्न और बल पराक्रम से प्रकाशित और ( पुष्टेः ) पोषण करने वाले राजा के अधीन हमारा राष्ट्र ( सिषक्तु ) खूब बल और संगठन, समवाय को प्राप्त करे। इति षोडशो वर्गः ॥

## [ ४२ ]

अत्रिर्ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ४, ६, ११, १२, १५, १६, १८ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ५, ७, ८, ९, १३, १४ त्रिष्टुप् । १७ याजुषी पंक्तिः । १० भुरिक् पंक्तिः ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

**प्र शन्तमा वरुणं दीधिती गीर्मित्रं भगमदितिं नूनमश्याः ।**
**पृषद्योनिः पञ्चहोता शृणोत्वतूर्तपन्था असुरो मयोभुः ॥ १ ॥**

भा०—हे विद्वन् ! ( शन्तमा ) अति शान्तिकारक ( दीधिती

उत्तम ज्ञान का प्रकाश करती हुई ( गीः ) वाणी ( वरुणं ) श्रेष्ठ (मित्रं) सबके स्नेही ( भगम् ) सेवा योग्य, ऐश्वर्यवान् और ( अदितिम् ) अखण्डित व्रत और शासन के पालक पुरुष को प्राप्त होती है तू भी उसको ( नूनम् अश्याः ) अवश्य प्राप्त कर। वह वाणी, ( पृषद् योनिः ) मेघ के तुल्य सुख-वर्षणकारी अन्तरात्मा में उत्पन्न होती और ( पञ्चहोता ) पांचों प्राणों द्वारा गृहीत ज्ञान को अपने में लेने हारी है। उसको ऐसा पुरुष ( शृणोतु ) सुने जिसका ( अतूर्तपन्थाः ) ज्ञान-मार्ग विनष्ट न हुआ हो, जो ( असुरः ) बलवान् और प्राणों के सुख में रमण करता हो और ( मयोभुः ) सब सुखों का आश्रय स्थान हो। ( २ ) राष्ट्र में अहिंसित मार्ग वाला, बलवान्, सुखप्रद राजा प्रजा की ऐसे वाणी को सुने जो ( पृषद्-योनिः ) परिषद् या 'जूरी' से उत्पन्न हो और पांच व्यक्ति, पञ्च जन उसको स्वीकार करें।

प्रति॑ मे॒ स्तोम॒मदि॑तिर्जगृभ्यात्सू॒नुं न मा॒ता हृद्यं॑ सु॒शेव॑म्।
ब्रह्म॑ प्रि॒यं दे॒वहि॑तं॒ यदस्त्य॒हं मि॒त्रे वरु॑णे॒ यन्म॑यो॒भु ॥ २ ॥

भा०—( अदितिः ) अखण्ड शासन करने वाली परिषत् और दीनतारहित प्रजावर्ग ( मे ) मेरे ( स्तोमम् ) बलवीर्य, वचन, अधिकार और जन समूह को ( प्रति जगृभ्यात् ) ऐसे स्वीकार करे जैसे ( हृद्यं ) हृदयहारी ( सुशेवं ) उत्तम सुखजनक (सूनुं माता न) पुत्र को माता स्वीकार करती है। ( यत् मयोभु ) जो सुखजनक ( ब्रह्म ) धन, बल वा ज्ञान ( देवहितं ) विद्वानों के हितकारी और ( प्रियम् ) अति प्रिय ( अस्ति ) है उसको ( अहं ) मैं ( मित्रे ) सर्वस्नेही और ( वरुणे ) सर्व दुःखवारक, श्रेष्ठ नायक स्वामी के अधीन रहकर प्राप्त करूं।

उदी॑रय क॒वित॑मं कवी॒नामु॒नत्तै॑नम॒भि मध्वा॑ घृ॒तेन॑।
स नो॒ वसू॑नि॒ प्रय॑ता हि॒तानि॑ च॒न्द्राणि॑ दे॒वः स॑वि॒ता सु॑वाति ॥३॥

भा०—हे राष्ट्रवासी जनो! ( कवीनाम् ) दूरदर्शी विद्वान् पुरुषों

में से ( कवितमं ) सबसे उत्तम विद्वान् को ( उत्-ईरय ) सबसे उत्तम पद प्राप्त करने की प्रेरणा करो। ( एनम् ) उसको ( मध्वा घृतेन ) मधुर शोभाजनक ज्ञान वा जल से ( अभि-उनत्त ) अभिषेक करो। ( सः ) वह ( देवः ) सूर्यवत् तेजस्वी, ज्ञान का प्रकाशक और धनों का दाता और ( सविता ) सब ऐश्वर्यों का उत्पादक होकर ( नः ) हमें (हितानि) हितकारी ( प्रयता ) प्रयत्न से प्राप्त करने योग्य ( चन्द्राणि ) आह्लाद-जनक सुवर्ण आदि धन ( वसूनि ) और बसने योग्य नाना पदार्थ भी ( सुवाति ) प्रदान करे।

**समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सं सूरिभिर्हरिवः सं स्वस्ति।**
**सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमत्या यज्ञियानाम् ॥४॥**

भा०—हे ( हरिवः ) उत्तम मनुष्यों के स्वामिन्! हे अश्वादि सैन्य के स्वामिन्! हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! तू ( नः ) हमें ( मनसा ) उत्तम मन और ( गोभिः ) उत्तम वाणियों, भूमियों और इन्द्रियों से ( यत् देवहितं अस्ति ) जो विद्वानों वा हम कामनाशील पुरुषों को हितकारक है या विद्वानों में स्थित ज्ञानादि है उसे ( सं नेषि ) प्राप्त करा। ( नः ) हमें ( सूरिभिः ) विद्वानों से हितकारी ज्ञान ( सं नेषि ) प्राप्त करा। हमें ( स्वस्ति ) सुखदायक प्रकार से ( देव-हितंयद् यद् अस्ति ) जो भी दिव्य पदार्थों में ग्राह्य तत्व हो वह ( सं नेषि ) अच्छी प्रकार प्राप्त करा। हमें तू ( ब्रह्मणा ) वेद ज्ञान और धन से भी जो ( देवहितं अस्ति ) दान-शील पुरुषों के योग्य हो वह प्राप्त करा। और ( यज्ञियानां ) पूजा सत्कार के योग्य ( देवानां सुमत्या ) विद्वान् पुरुषों की उत्तम बुद्धि द्वारा भी हमें ( देव-हितं ) विद्वानों में विद्यमान ज्ञान ( सं नेषि ) प्राप्त करा।

**देवो भगः सविता रायो अंश इन्द्रो वृत्रस्य संजितो धनानाम्।**
**ऋभुक्षा वाज उत वा पुरन्धिरवन्तु नो अमृतासस्तुरासः ५।१७॥**

भा०—( देवः ) दानशील, ज्ञान और धन का देने वाला, (भगः)

सेवने योग्य ऐश्वर्यवान् , ( सविता ) पदार्थों और जीवों का उत्पादक वा सन्मार्ग में चलाने हारा, ( अंशः ) धनों का न्यायोचित विभाग करने वाला, (वृत्रस्य) बढ़ते हुए शत्रु के विद्यमान राष्ट्र के (धनानां) ऐश्वर्यों का (संजितः) विजय करने वाला (इन्द्रः) शत्रुहन्ता (ऋभुक्षा) महान् शक्तिशाली (वाजः) ज्ञानवान् बलवान् ऐश्वर्यवान्, (उतवा) और ( पुरन्धिः ) पुर को धारण करने वाला पुराध्यक्ष, वा पूर्वसंचित विद्याओं वा सम्पदाओं को धारने वाला वा स्त्रीवत् गृहतुल्य राष्ट्र का धारक ये सब ( अमृतासः ) अविनाशी, दीर्घजीवी और ( तुरासः ) अति शीघ्रकारी, अप्रमादी होकर ( नः अवन्तु ) हम प्रजा जनों की रक्षा करें । इति सप्तदशो वर्गः ॥

**म॒रुत्व॑तो॒ अप्र॑तीतस्य जि॒ष्णोरजू॑र्यतः॒ प्र ब्र॑वामा कृ॒तानि॑ ।**
**न ते॒ पूर्वे॑ मघव॒न्नाप॑रासो॒ न वी॒र्यं१ नूत॑नः॒ कश्च॒नाप॑ ॥ ६ ॥**

भा०—हे ( मघवन् ) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त ! ( मरुत्वतः ) उत्तम, बलवान्, शत्रुनाशक पुरुषों के स्वामी, ( अप्रततीस्य ) अप्रतीयमान सामर्थ्य वाले, ( जिष्णोः ) विजयशील, ( अजूर्यतः ) कभी निर्बल वा क्षीण न होने वाले, ( ते ) तेरे वा तुझ ऐसे ( कृतानि ) कर्त्तव्यों का ( प्रब्रवाम ) उत्तम उपदेश करें कि ( न पूर्वे ) न पहले के और ( न अवरासः) न तेरे पीछे आने वाले लोग और ( न नूतनः कश्चन ) न कोई नया ही पुरुष ( ते वीर्यम् आप ) तेरा बल प्राप्त कर सके ।

**उप॑ स्तुहि प्रथ॒मं र॑त्न॒धेयं॒ बृह॒स्पतिं॑ सनि॒तारं॒ धना॑नाम् ।**
**यः शंस॑ते स्तुव॒ते शम्भ॑विष्ठः पुरू॒वसु॑रा॒गम॒ज्जोहु॑वानम् ॥ ७ ॥**

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! तू ( प्रथमम् ) सबसे श्रेष्ठ, ( रत्नधेयं ) रमणीय, मनोहर गुणों को धारण करने वाले, ( बृहस्पतिम् ) बड़े भारी ज्ञान, वेद वाणी वा बड़े राष्ट्र के पालक और ( धनानां सनितारम् ) धनों का न्यायपूर्वक पात्रापात्र विवेक सहित देने और विभाग करने वाले

उस ( जोहुवानम् ) आदरपूर्वक बुलाने योग्य उसको ( उप स्तुहि ) सब के समक्ष प्रस्तुत कर (यः) जो (शंसते स्तुवते) प्रशंसा और स्तुति प्रार्थना करने वाले को ( शंभविष्ठः ) सबसे अधिक शान्ति सुख देने वाला और ( पुरुवसु ) बहुत से ऐश्वर्यों वा बसे प्रजा जनों का स्वामी होकर हमें ( आगमत् ) प्राप्त होता है। ऐसे व्यक्ति को प्रस्ताव और समर्थन करके अग्रणी पद पर नियुक्त करना चाहिये।

**तवोतिभिः सचमाना अरिष्टा बृहस्पते मघवानः सुवीराः।**
**ये अश्वदा उत वा सन्ति गोदा ये वस्त्रदाः सुभगास्तेषु रायः॥८॥**

भा०—हे ( बृहस्पते ) बड़े राष्ट्र और वेदज्ञान के पालक ! स्वामिन् ! ( ये ) जो ( तव ऊतिभिः ) तेरे रक्षोपायों से ( सचमानाः ) सुसम्बद्ध होकर ( मघवानः ) ऐश्वर्यवान्, (सुवीराः) स्वयं उत्तम वीर और उत्तम पुत्रों और वीरों के स्वामी हो जाते हैं और ( ये ) जो ( अश्वदाः ) घोड़े के पालक वा दाता ( उत वा ) और ( ये ) जो ( गोदाः ) गौओं और भूमियों के पालक और दाता हैं वे ( सुभगाः ) उत्तम ऐश्वर्यवान् होते हैं और ( तेषु रायः ) उनमें सब ऐश्वर्य विराजते हैं।

**विसर्माणं कृणुहि वित्तमेषां ये भुञ्जते अपृणन्तो न उक्थैः।**
**अपव्रतान्प्रसवे वावृधानान्ब्रह्मद्विषः सूर्याद्यावयस्व॥ ९॥**

भा०—हे राजन् ! ( ये ) जो लोग ( नः ) हमारे ( उक्थैः ) उत्तम वचनों से प्रेरित होकर भी ( नः अपृणन्तः ) हमें सम्पदाओं से नहीं पूर्ण करते हुए स्वयं ही ( भुञ्जते ) भोग करते रहते हैं ( एषां ) उनके ( वित्तम् ) धन को तू ( वि-सर्माणम् ) विनाशशील ( कृणुहि ) कर। ( प्र-सवे ) तेरे शासन या उत्तम ऐश्वर्य में रहकर भी (अपव्रतान् ) उत्तम कर्मों से रहित ( वावृधानान् ) बढ़ते हुए, ( ब्रह्म-द्विषः ) धन वा वेद ज्ञान से द्वेष करने वाले मूर्खों, शत्रुओं को ( सूर्यात् ) सूर्य के प्रकाश से ( यवयस्व ) पृथक् कर, उनको कारागारादि में डाल।

य ओहते रक्षसो देववीतावचक्रेभिस्तं मरुतो नि यात। यो वः शमीं शशमानस्य निन्दात्तुच्छ्यान्कामान्करते सिष्विदानः॥१०॥१८

भा०—हे ( मरुतः ) विद्वान् बलवान् पुरुषो ! ( यः ) जो पुरुष ( देववीतौ ) विद्वान्, उत्तम पुरुषों के रक्षा के कार्य में ( रक्षसः ) विघ्न करने वाले दुष्ट पुरुषों को ( ओहते ) लगावें, और ( यः ) जो ( शशमानस्य ) प्रशंसनीय पुरुष के ( शमीं ) उत्तम कर्म की ( निन्दात् ) निन्दा करे और जो ( सिष्विदानः ) स्नेहवश वा व्यर्थ क्लेश आदि सहकर भी ( तुच्छान् कामान् कुरुते ) क्षुद्र पुरुषों की सी अभिलाषाएं करें ऐसे निन्दित क्षुद्र बुद्धि पुरुष को आप लोग ( अचक्रेभिः ) चक्र अर्थात् राज्य-चक्र वा सैन्य-चक्रों से रहित, अधिकारशून्य पदों, वचनों से ( नि यात ) नीचे गिराओ, दण्डित करो।

तमु ष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा यो विश्वस्य क्षयति भेषजस्य। यक्ष्वामहे सौमनसाय रुद्रं नमोभिर्देवमसुरं दुवस्य॥ ११॥

भा०—( यः ) जो ( स्विषुः ) उत्तम बाणों वाला उत्तम इच्छावान् ( सुधन्वा ) उत्तम धनुष का स्वामी और उत्तम जल वाला, है जो ( विश्वस्य भेषजस्य ) सब प्रकार के औषध का ( क्षयति ) स्वामी है, उस ( रुद्रं ) दुष्टों को रुलाने वाले और रोगों को दूर करनेवाले, ( देवम् ) विजिगीषु, विद्वान्, ज्ञानवान् दानशील, ( असुरं ) बलवान् और प्राण-प्रद पुरुष को ( महे सौमनसाय ) बड़े भारी सुख, शान्ति युक्त चित्त बनाये रखने के लिये ( यक्ष्व ) आदर करो और उसकी ( नमोभिः ) आदर सत्कारों, अन्नों और शस्त्रों सहित ( दुवस्य ) परिचर्या कर। उत्तम धनुर्धर और बाणवान् पुरुष दुष्टों को रुलाने से रुद्र है, वैद्य रोग दूर करने से रुद्र ( रुग्-द्र ) है। वैद्य की इच्छा और जल सदा उत्तम, स्वच्छ, रोग-रहित हों, वह विद्वान् और प्राणों में बल देने वाला हो। धनुर्धारी, के

बाण, धनुष उत्तम हों, सब कष्टहर ऐश्वर्य का स्वामी, विजिगीषु बलवान् हो।

**दमूनसो अपसो ये सुहस्ता वृष्णः पत्नीर्नद्यो विभ्वतष्टाः।**
**सरस्वती बृहद्दिवोत राका दशस्यन्तीर्वरिवस्यन्तु शुभ्राः॥१२॥**

भा०—( ये ) जो ( दमूनसः ) दानशील, मन को दमन करने वाले ( अपसः ) उत्तम कर्मकुशल ( सु-हस्ताः ) उत्तम सिद्धहस्त पुरुष और ( वृष्णः ) बलवान् पुरुष की ( पत्नीः ) स्त्रियों के तुल्य ( नद्यः ) नदियें, जिनको ( विभ्वतष्टाः ) अधिक शक्तिशाली शिल्पियों ने बनाया है। ( बृहद्-दिवा ) बड़ी दीप्ति से युक्त ( सरस्वती ) वाणी के तुल्य अति वेगवती विद्युत् ( उत ) और ( राका ) सुख देने वाली स्त्री, ये सब ( शुभ्राः ) शुभ्रवर्ण सुशोभित और ( दशस्यन्तीः ) इष्ट कामनाओं को देने वाली होकर ( वरिवस्यन्तु ) हमें सम्पन्न करें और हम उनका सेवन करें, उनको प्राप्त कर सुख लाभ करें।

**प्र सू महे सुशरणाय मेधां गिरं भरे नव्यसीं जायमानाम्।**
**य आहना दुहितुर्वक्षणासु रूपा मिनानो अकृणोदिदं नः॥१३॥**

भा०—जिस प्रकार ( आहनाः ) अभिगन्ता पुरुष ( दुहितुः वक्षणासु रूपा मिनानः ) कामना पूर्ण करने हारी स्त्री की नाड़ियों में उत्तम पुत्रादि को उत्पन्न करता हुआ (इदं अकृणोत्) ये सब गृहस्थादि करता है उसी प्रकार ( यः ) जो इन्द्र विद्युत्वत् बलशाली, ( आहनाः ) आघात करने हारा शिल्पी, वा राजा, ( दुहितुः वक्षणासु ) सब प्रकार के जल अन्न आदि रस देने वाली भूमि के ऊपर बहती नदियों के आधार पर ( रूपा मिमानः ) नाना रुचिकर पदार्थों को उत्पन्न करता हुआ ( नः इदं ( अकृणोत् ) हमारे लिये यह सब कुछ करता है। उस ( सु-शरणाय ) उत्तम प्रजा के शरण देने वाले ( महे ) उत्तम राजा की ( जायमानां )

प्रकट हुई ( नव्यसीं ) अति नव्य, उत्तम, ( मेधां ) बुद्धि और ( गिरं ) वाणी को ( प्र सु भरे ) अच्छे प्रकार से पुष्ट करूं। उसके निमित्त उत्तम वाणी का प्रयोग करूं। ( २ ) वह सुखशरण, प्रभु है जो सर्वत्र व्यापक होने से 'आहना' है। सकल दोग्ध्री प्रकृति के भीतर से वह नाना रूप रच कर इस जगत् को उत्पन्न करता है, उस प्रभु के ज्ञान के लिये मैं उत्तम बुद्धि और स्तुति करूं।

प्र सुष्टुतिः स्तनयन्तं रुवन्तमिळस्पतिं जरितर्नूनमश्याः।
यो अब्दिमाँ उदनिमाँ इयर्ति प्र विद्युता रोदसी उक्षमाणः॥१४॥

भा०—हे ( जरितः ) स्तुतिकर्त्तः! तू ( सु-स्तुतिः ) उत्तम स्तुतिकर्त्ता होकर ( स्तनयन्तं ) मेघवत् गर्जनाशील, ( रुवन्तम् ) उत्तम उपदेश देते हुए, (इडस्पतिं) भूमि और वाणी की पालना करने वाले, उस विद्वान् को ( प्र अश्याः ) आदरपूर्वक प्राप्त हो ( यः ) जो ( अब्दिमान् ) मेघ के तुल्य ही जलवत् ज्ञानों और कर्मों का उपदेश देने वाला, ( उदनिमान् ) जल के तुल्य ही उत्तम पद पर ले जाने वाले कर्म से युक्त होकर (विद्युता) विद्युत्वत् दीप्ति या तेज से युक्त होकर ( उक्षमाणः ) शिष्यों को ज्ञान जल से स्नान कराता हुआ ( रोदसी इयर्त्ति ) आकाश और भूमिवत् राजा प्रजा वर्गों को समान रूप से प्राप्त होता है।

एष स्तोमो मारुतं शर्धो अच्छा रुद्रस्य सूनूँर्युवन्यूँरुदश्याः।
कामो राये हवते मा स्वस्त्युप स्तुहि पृषदश्वाँ अयासः॥१५॥

भा०—( एषः स्तोमः ) यह स्तुति योग्य, उत्तम बल वा अधिकार ( मारुतं शर्धः ) और यह वायु वेग से आक्रमण करने वाला सैन्य बल ( रुद्रस्य ) दुष्टों को रुलाने और शत्रु को रोकने वाले प्रबल सेनानायक के ( युवन्यून् ) जवानों के दलपतियों और ( सूनून् ) सैन्यों के सञ्चालक नायकों को ( अच्छ ) भली प्रकार ( उत् अश्याः ) उत्तम रीति से

प्राप्त हो। ( स्वस्ति ) सुख, कल्याणकारक ( मा ) मुझे ( राये ) धन प्राप्त करने का ( कामः ) उत्तम संकल्प ( हवते ) प्राप्त हो ! हे विद्वन् ! तू (अयासः) जाने वाले ( पृषद्-अश्वान् ) वाण वर्षी, बलवान् अश्वारोहियों, हृष्ट पुष्ट अश्वों से युक्त रथों का ( उपस्तुहि ) स्तुति उपदेश कर। प्रजा वर्ग को जब धन-समृद्धि की अभिलाषा हो तब अधिकार उत्तम नायकों को प्राप्त हों और विद्वान् लोग उत्तम वेगवान् रथादि का उपदेश करें जिससे व्यापार की तीव्र वृद्धि हो।

**प्रैष स्तोमः पृथिवीमन्तरिक्षं वनस्पतींरोषधी राये अश्याः।**
**देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ॥१६॥**

भा०—( एषः स्तोमः ) यह अधिकार सूचक वचन ( राये ) ऐश्वर्य को बढ़ाने के लिये (पृथिवीम्, अन्तरिक्षम्, वनस्पतीः, ओषधीः प्र अश्याः) पृथिवी, अन्तरिक्ष, वनस्पतियों और ओषधियों को भी अच्छी प्रकार व्यापे, वे भी अधिकार में हों, राजा उनसे कर संग्रह कर राष्ट्र की सम्पत्ति बढ़ा सके। ( देवः-देवः ) प्रत्येक करप्रद पुरुष, ( मह्यं ) मुझ राजा के लिये ( सुहवः ) सुखपूर्वक उत्तम कर देने वाला ( भूतु ) हो, अर्थात् कर वसूली में राजा को कठिनाई न पड़े। ( पृथिवी माता ) पृथिवी या उसमें रहने वाली जनता माता के समान हितकारिणी होकर ( नः ) हमें ( दुर्मतौ ) दुष्ट संकल्प में ( मा धात् ) न रक्खें, अर्थात् प्रजा के अप-व्यवहार राजा को कठोर और अत्याचारी न बना देवें।

**उरौ देवा अनिबाधे स्याम ॥ १७ ॥**

भा०—हे ( देवाः ) विद्वान् वा विजिगीषु, धनेच्छुक, एवं दानशील पुरुषो ! हम सभी लोग ( उरौ ) बहुत बड़े ( अनिबाधे ) सर्वथा पीड़ा और बाधारहित, सर्वतः सुखी एवं कलहहीन, निर्विघ्न, भद्र राष्ट्र में ( स्याम ) रहें।

समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम।
आ नो रयिं वहतमोत वीरानाविश्वान्यमृता सौभगानि १८।१९।

भा०—हम लोग ( अश्विनोः ) विद्वान् स्त्री पुरुष, अध्यापक उपदेशक वा रथी और सारथि इनके ( नूतनेन ) नये, ( मयोभुवा ) सुखकारी ( अवसा ) रक्षण, और ( सु-प्रणीती ) उत्तम, सुखकर नीति से ( गमेम ) जीवनमार्ग तय करें। वे दोनों मिलकर ( नः ) हमें ( रयिम् आ वहतम् ) उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करावें, वे ( वीरान् ) वीरों को ( विश्वानि ) समस्त प्रकार के ( अमृतानि सौभगानि ) अविनश्वर उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करावें। एकोनविंशो वर्गः ॥

## [ ४३ ]

अत्रिर्ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ३, ६, ८, ९, १७ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४, ५, १०, ११, १२, १५ त्रिष्टुप् । ७, १३ विराट् त्रिष्टुप् । १४ भुरिक्पंक्तिः । १६ याजुषी पंक्तिः ॥ सप्तदशर्चं सूक्तम् ॥

आ धेनवः पयसा तूर्ण्यर्था अमर्धन्तीरुप नो यन्तु मध्वा।
महो राये बृहतीः सप्त विप्रो मयोभुवो जरिता जोहवीति ॥१॥

भा०—( मध्वा पयसा ) मधुर दुग्ध से पूर्ण ( धेनवः ) गौएं, तथा ( मध्वा पयसा ) मधुर जल से युक्त ( तूर्ण्यर्थाः ) अतिशीघ्र गमन करने वाले जल, यानादि से युक्त नदियें, और ( मध्वा पयसा ) मधुर आनन्दजनक ज्ञान से युक्त, शीघ्र ही समझ में आने वाले अर्थों से युक्त वाणियां और ( मध्वा ) मधुर अन्न से समृद्ध ( अमर्धन्तीः ) अहिंसक प्रजाएं ( नः उप आयन्तु ) हमें प्राप्त हों। ( जरिता ) विद्वान् उपदेष्टा, (विप्रः) विद्वान् पुरुष ( महे राये ) बड़े ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये ( सप्त ) सात प्रकार की ( मयोभुवः ) सुखजनक, ( बृहतीः ) बड़ी आदरणीय वाणियों,

भूमियों, पशुओं और सात प्रकार की प्रजाओं वा प्रकृतियों का ( जोहवीति ) उपदेश करे। षडङ्गयुक्त वेदवाणी सप्त वाणी हैं।

**आ सुष्टुती नमसा वर्तयध्यै द्यावा वाजाय पृथिवी अमृध्रे।**
**पिता माता मधुवचाः सुहस्ता भरेभरे नो यशसावविष्टाम् ॥२॥**

भा०—मैं ( अमृध्रे ) अहिंसक, ( सु-स्तुती ) उत्तम स्तुति योग्य ( द्यावा ) ज्ञानप्रकाश से युक्त ( पृथिवी ) भूमि के समान आश्रयप्रद, ( मधुवचाः ) मधुर वचन बोलने वाली ( सु-हस्ता ) सुखकारी हाथों वाले पिता और माता दोनों को ( नमसा ) आदर सत्कार से ( वर्त्तयध्यै ) वर्त्ताव किया करूं और वे दोनों ( पिता माता ) पिता और माता ( नः ) हमें ( भरे-भरे ) प्रत्येक भरण पोषण के कार्य में ( यशसा ) यश से और अन्न से ( अविष्टाम् ) हमारी रक्षा करें। इसी प्रकार माता पिता के तुल्य राजा और राजसभा दोनों प्रत्येक युद्ध-यशोजनक कार्य से राष्ट्र की रक्षा करें।

**अध्वर्यवश्चकृवांसो मधूनि प्र वायवे भरत चारु शुक्रम्।**
**होतेव नः प्रथमः पाह्यस्य देव मध्वो ररिमा ते मदाय ॥ ३ ॥**

भा०—जिस प्रकार सूर्य के किरण ( मधूनि चकृवांसः ) जलों को उत्पन्न करते हुए प्रथम ( वायवे चारु शुक्रम् भरन्ति ) वायु के लिये ही सञ्चरणशील सूक्ष्म जल हर लेते हैं उसी प्रकार हे ( अध्वर्यवः ) अपनी मृत्यु न चाहने वाले जीवनाकांक्षी लोगो! ( मधूनि चकृवांसः ) उत्तम अन्न और जलों को उत्पन्न करते हुए ( चारुशुक्रम् ) उत्तम आप लोग शुद्ध, कान्तिकृत् अन्न रस को (वायवे) वायु तुल्य बलशाली, एवं ज्ञानवान् राजा वा विद्वान् के उपभोग के लिये (प्र भरत) आदरपूर्वक लाया करो हे ( देव ) राजन्! हे विद्वन्! सूर्यवत् तेजस्विन्! तू ( प्रथमः ) सर्वश्रेष्ठ होकर ( नः ) हमें ( होता इव ) दाता के समान ( पाहि ) पालन कर। और हम ( ते मदाय ) तेरी तृप्ति के लिये ( अस्य मध्वः ) इस अन्न का अंश ( ररिम ) देते हैं।

दश क्षिपो युञ्जते बाहू अद्रिं सोमस्य या शमितारा सुहस्ता ।
मध्वो रसं सुगभस्तिर्गिरिष्ठां चनिश्चदद्दुदुहे शुक्रमंशुः ॥ ४ ॥

भा०—जैसे दो ( शमितारा ) शान्तिपूर्वक कार्य करने वाले ( सु-हस्ता ) उत्तम हाथों से युक्त ( बाहू ) बाहुएं ( अद्रिं ) शिलाखण्ड को या दृढ़ शस्त्र को पकड़ते हैं, और जिस प्रकार ( दश क्षिपः अद्रिं युञ्जते ) दसों अंगुलियां शिलाखण्ड या शस्त्र का प्रयोग करती हैं, उसी प्रकार ( यौ ) जो दो अधिकारी ( बाहू ) शत्रुओं को पीड़ा देने हारे हों वे और ( सोमस्य ) ऐश्वर्य को ( शमितारौ ) शान्ति से सम्पादन करने वाले, ( सु-हस्ता ) उत्तम कुशल हाथोंवाले, सिद्धहस्त होकर ( अद्रिं ) पर्व-वान् दृढ़ सैन्य बल का प्रयोग करें । और ( दश क्षिपः ) दसों शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाली सेनाएं भी ( युञ्जते ) उनका सहयोग करें । जिस प्रकार ( सु-गभस्तिः ) उत्तम किरणों से युक्त सूर्य ( गिरि-ष्ठां मध्वः रसं दुदुहे ) मेघ में स्थित भूमि या जल के रस को प्रदान करता है उसी प्रकार ( अंशुः ) सूर्यवत् भागग्राही ( सु-गभस्तिः ) उत्तम बाहुशाली पुरुष ( गिरि-ष्ठां ) पर्वत वा मेघ में स्थित (मध्वः) मधुर अर्थात् पृथ्वी के ( रसं ) रस अर्थात् सारभूत ( चनिश्चदद् ) आह्लादकारी रत्न सुव-र्णादि ( शुक्रम् ) शुद्ध कान्तिमान् पदार्थ को ( दुदुहे ) प्राप्त करे ।

असावि ते जुजुषाणाय सोमः क्रत्वे दक्षाय बृहते मदाय ।
हरी रथे सुधुरा योगे अर्वागिन्द्र प्रिया कृणुहि हूयमानः ॥५॥२०॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! ( क्रत्वे ) ज्ञान और कर्म सामर्थ्य और ( दक्षाय ) बल बढ़ाने के लिये, और ( बृहते मदाय ) तेरे बड़े धन वृद्धि, आनन्द सुख और सन्तोष के लिये ( ते जुजुषा-णाय ) प्रेम से सेवन करने वाले तेरे लिये ( सोमः ) यह सब ऐश्वर्य रस, अन्नादि के तुल्य ही ( असावि ) उत्पन्न किया जाता है । तू ( योगे रथे ) जोड़ने योग्य दृढ़ रथ में ( सुधुरा ) उत्तम धारणशील, दृढ़

( हरी ) दो अश्वों को लगाकर ( हूयमानः ) अन्यों से स्पर्द्धा करता हुआ, ( अर्वाक् ) हमें प्राप्त हो और ( प्रिया कृणुहि ) हमारे लिये प्रिय हित कार्य कर। इति विंशो वर्गः ॥

आ नो॑ म॒हीम॒रम॑तिं स॒जोषा॒ ग्नां दे॒वीं नम॑सा रा॒तह॑व्याम्।
मधो॒र्मदा॑य बृह॒तीमृ॑त॒ज्ञामाग्ने॑ वह प॒थिभि॑र्देव॒यानैः॑ ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी, ज्ञानवन्! विद्वन्! (ग्नां देवीं) गमन योग्य उत्तम स्त्री के तुल्य ही ( नः ) हमारी, ( महीं ) आदरणीय (अरमतिम्) अति आनन्ददायक, अति ज्ञानयुक्त, विषयों में न रमण करने वाली (ग्नां) ज्ञान को प्राप्त करने वाली, ( नमसा ) आप, विनयपूर्वक (रातहव्याम्) दान योग्य अन्न आदि प्रदान करने वाली ( बृहतीं ) बड़ी, ( ऋतज्ञाम् ) सत्य ज्ञान बतलाने वाली, वाणी को तू ( सजोषाः ) समान प्रीति युक्त होकर ( मधोः मदाय ) अन्नवत् वेदमय ज्ञान से तृप्त होने के लिये ( देवयानैः पथिभिः ) विद्वानों से गमन करने योग्य मार्गों से ( आवह ) प्राप्त कर। और उसी प्रकार अन्यों को भी प्राप्त करा। इसी प्रकार अग्रणी राजा ( ग्नां ) प्रयाण करने वाली विजयेच्छुक सेना को सर्व साधन सम्पन्न कर, बड़ी सेना को राजोचित प्रयाण मार्गों से ऐश्वर्य से तृप्त होने के लिये आगे बढ़ावे।

अ॒ञ्जन्ति॒ यं प्र॒थय॑न्तो॒ न विप्रा॑ व॒पाव॑न्तं॒ नाग्निना॒ तप॑न्तः।
पि॒तुर्न पु॒त्र उ॒पसि॒ प्रेष्ठ॒ आ घ॒र्मो अ॒ग्निमृ॒तय॑न्नसादि ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार किरण गण ( वपावन्तं सूर्यं अञ्जन्ति ) बीजोत्पादक शक्ति से युक्त सूर्य को प्रकट कर और ( अग्निना तपन्तः ) अग्नि द्वारा तपाते हैं ( न ) उसी प्रकार ( विप्राः ) विद्वान् बुद्धिमान् पुरुष ( यं ) जिस ( वपावन्तं ) अन्नवत् शत्रु का नाश करने की शक्ति और सन्तानपरम्परा, या पुत्रवत् प्रजा और उत्तम सेना पैदा करने की आर्थिक शक्ति से युक्त पुरुष को ( प्रथयन्तः ) प्रसिद्ध करते हुए, ( अञ्जन्ति )

खूब प्रकाशित करते हैं। और जिसको उत्तम पात्र के तुल्य दृढ़ करने के लिये ( अग्निना तपन्तः ) अग्निवत् तेजस्वी नायक पुरुष या पद द्वारा तपाते, दृढ़ करते, और अधिक तेजस्वी बनाते हुए ( अञ्जन्ति ) और अधिक प्रकाशित करते हैं वह ( घर्मः ) दीप्तिमान् सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (पितुः उपसि पुत्रः न प्रेष्ठः ) पिता के समीप पुत्र के तुल्य अतिप्रिय होकर ( अग्निम् ऋतयन् ) अग्रणी नायक पद को सत्य न्याय द्वारा प्राप्त करता हुआ ( आ असादि ) आगे बढ़ता है। ( २ ) लोक में ( वपावन्तं ) सन्तानोत्पादक शक्ति से युक्त पुरुष को अग्नि से तपाते, यज्ञ कराते वा आचार्याधीन ब्रह्मचर्य पालन कराते हैं। वह पिता के पुत्रवत् अति प्रिय होकर अग्नि की यज्ञ में स्थापना करता है। अर्थात् विवाहित होकर बसाता है। विद्वान् गण उसको आंजते, समावर्त्तनादि द्वारा सुसज्जित करते हैं।

अच्छा मही बृहती शन्तमा गीर्दूतो न गन्त्वश्विना हुवध्यै।
मयोभुवा सरथा यातमर्वाग्गन्तं निधिं धुरमाणिर्न नाभिम् ॥८॥

भा०—( दूतः नः ) उत्तम संदेशहर दूत के समान ( मही बृहती ) पूज्य, उत्तम वेदमयी ( शन्तमा गीः ) अति शान्तिकरी वाणी ( अश्विना हुवध्यै ) उत्तम स्त्री पुरुषों को ज्ञान देने और परस्पर को बुलाने आदि कार्य के लिये ( गन्तु ) प्राप्त हो। वे दोनों विद्वान् स्त्री पुरुष सदा ( सरथा ) एक समान रथ में विराजते हुए रथी सारथि के तुल्य ( मयोभुवा) सुख प्राप्त करते हुए (यातं) आगे जीवन-पथ पर बढ़ें। ( अर्वाग् ) विनीत होकर ( आणिः धुरं नाभिम् न ) कीला जिस प्रकार भार धारक नाभि को प्राप्त होता है उसी प्रकार वे दोनों ( निधिम् गन्तम् ) निधि, मूल 'आधार' ऐश्वर्यमय सर्वोत्तम, सर्वाश्रय गृहस्थ आश्रम को प्राप्त हों।

प्र तव्यसो नमउक्तिं तुरस्याहं पूष्ण उत वायोरदिक्षि।
या राधसा चोदितारा मतीनां या वाजस्य द्रविणोदा उत त्मन् ।९।

भा०—( अहम् ) मैं ( तव्यस्य ) बलवान् ( तुरस्य ) अति शीघ्र-कारी, ( पूष्णः ) पुष्टिकारक, सर्वपोषक और ( वायोः ) वायु के समान अति बलवान् प्राणप्रद पुरुषों के लिये ( नमः उक्तिं अदिक्षि ) आदर सत्कार, अधिकारसूचक उत्तम वचन का प्रयोग करूं। ( या ) जो दोनों ( राधसा ) धन के द्वारा ( मतीनां ) मननशील, ज्ञानवान् पुरुषों को ( चोदितारा ) शुभ कार्य और उन्नति के मार्ग पर उत्साहित करने वाले, ( उत ) और ( त्मन् ) अपने राष्ट्र कार्य में ( वाजस्य ) अन्न संग्राम और ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये भी (द्रविणो-दौ) धन प्रदान करने वाले हों।

**आ नामभिर्मरुतो वक्षि विश्वाना रूपेभिर्जातवेदो हुवानः।**
**यज्ञं गिरो जरितुः सुष्टुतिं च विश्वे गन्त मरुतो विश्व ऊती १०।२१**

भा०—हे ( जातवेदः ) नाना धन ऐश्वर्यों के कारण प्रसिद्ध ऐश्वर्य-वन्! हे वेदमय ज्ञान के द्वारा प्रसिद्ध विद्वन्! आचार्य! तू (विश्वान् मरुतः) समस्त वीर, बलवान् पुरुषों और शिष्यों को ( नामभिः आ वक्षि ) उत्तम नाना नामों से धारण कर। उनको उत्तम २ नाम, पद और अधिकार देकर स्थापित कर। और उनको ( रूपेभिः आहुवानः नाना रुचिकर पदार्थों या रूपों, पोशाकों से अपनाता और अपने अधीन रखता हुआ, ( आ वक्षि ) आदरपूर्वक धारण कर, अपने अधीन रख। हे ( मरुतः ) राष्ट्र के प्राणस्वरूप, वीरपुरुषो! आप लोग ( विश्वे ) सभी ( ऊती ) राष्ट्र की रक्षा के लिये हों। आप (विश्वे) सब लोग ( जरितुः ) उपदेष्टा और आज्ञापक पुरुष की ( गिरः यज्ञं गन्तं ) वाणी के सहयोग को प्राप्त होओ और ( सुस्तुतिं च गन्तं ) उत्तम स्तुति और उपदेश को प्राप्त करो॥ विद्यार्थी जन वायुवत् सदा जागरणशील, सावधान होने से 'मरुत्' हैं॥ वायुवत् तीव्र वा शत्रुमारक होने से सैनिक 'मरुत्' हैं। वायु वेग से समुद्रों में जाने से वैश्यगण व यानादि 'मरुत्' हैं। उनको उनका प्रमुख व्यक्ति नामों से संकेत करे, रक्खे, नाना पदार्थों से पूर्ण करे, वे उसकी आज्ञा पालें।

आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा सरस्वती यजता गन्तु यज्ञम्।
हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु ॥११॥

भा०—( बृहतः पर्वतात् सरस्वती ) बड़े भारी पर्वत से जिस प्रकार वेगवती जल भरी नदी आती है उसी प्रकार ( बृहतः दिवः ) बड़े भारी तेजस्वी और ज्ञानप्रकाशक विद्वान् से ( यजता सरस्वती ) दान देने और सत्संग से प्राप्त करने योग्य वाणी (नः यज्ञम्) हमारे सत्संङ्ग वा आत्मा को ( आ गन्तु ) प्राप्त हो। हमें ज्ञानदायक वाणी मिले। और ( घृताची ) घृत, जल, तेज आदि धारण करने वाली, ( जुजुषाणा देवी ) प्रेम करने वाली स्त्री ( नः हवम् ) हमारे यज्ञ को प्राप्त हो, वह ( उशती ) उत्तम कामना से युक्त होकर प्रेमपूर्वक ( नः ) हमारी ( शग्मां वाचं श्रृणोतु ) सुखप्रद वाणी को सुने।

आ वेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तं बृहस्पतिं सदने सादयध्वम्।
साद्योनिं दम आ दीदिवांसं हिरण्यवर्णमरुषं सपेम ॥ १२ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग (वेधसं) विद्वान्, उत्तम कर्म करने में कुशल, ( नील-पृष्ठं ) श्याम रूप मेघ के समान प्रचुर द्रव्य दान करने वाले, वा ( नील-पृष्ठं ) अपनी पीठ पर अन्यों को आश्रय देने वाले ( बृहन्तं ) बड़े ( बृहस्पतिम् ) वेदवाणी और बड़े राष्ट्र के पालक पुरुष को ( सदने ) उत्तम गृह वा उत्तम पद पर ( सादयध्वम् ) स्थापित करो। इसी प्रकार (दमे ) दण्डाधिकार के पद पर भी ( साद्-योनिम् ) सभाभवन में न्यायासन पर विराजने वाले ( दीदिवांसं ) तेजस्वी और सत्य न्याय निर्णय देने वाले, ( हिरण्य-वर्णम् ) सुवर्णवत् शुद्ध, निष्कपट हित और रुचिकर वर्णों वा अक्षरों, पदों का प्रयोग करने वाले वा तेजस्वी, ( अरुषम् ) रोष, क्रोध से रहित शान्त स्वभाव, पुरुष को हम ( सपेम ) प्राप्त कर अपने को संगठित कर एकत्र होकर रहें। न्यायशील राजा को पाकर प्रजा संगठित होकर रहे।

आ धर्णसिर्बृहद्दिवो रराणो विश्वेभिर्गन्त्वोमभिर्हुवानः।
ग्ना वसान ओषधीरमृध्रस्त्रिधातुशृङ्गो वृषभो वयोधाः॥ १३॥

भा०—( धर्णसिः ) राष्ट्र के कार्य-भार को धारण करने वाला, ( बृहद्दिवः ) बड़े भारी तेज को सूर्यवत् धारण करने और देने वाला, ( रराणः ) दानशील, ( वृषभः ) धार्मिक ( त्रिधातु-शृङ्गः ) तीनों धातुओं के से बड़े सींगों से सुशोभित बड़े वृषभ के सदृश सुदृढ़, तीनों धातुओं की वाणों की किरणों से सुशोभित, एवं तीन धातु ताम्र, लोह, सुवर्ण आदि के बने हिंसाकारक शस्त्रास्त्रों से युक्त ( वयोधाः ) बल, दीर्घ आयु और ज्ञान को धारण करने वाला, ( अमृध्रः ) प्रजाओं की हिंसा न करने वाला, अहिंसक, दयालु पुरुष ( आहुवानः ) आदर पूर्वक बुलाया जाकर वा आमन्त्रित होकर ( ग्नाः ) गमनशील जंगम प्रजाओं और ( ओषधीः ) अन्न, लता, वृक्ष आदि स्थावर प्रजाओं को भी ( वसानः ) बसाता हुआ, उनकी भली प्रकार अपने राष्ट्र में रक्षा करता हुआ, एवं ( ग्नाः ) गमन करने योग्य भूमियों, प्रजाओं और स्त्रियों की एवं ( ओषधीः ) कान्ति, तेज और शत्रुदाहक सामर्थ्य को धारण करने वाली सेनाओं को भी बसाता हुआ, ( ओमभिः ) रक्षा साधनों सहित ( आ गन्तु ) हमें प्राप्त हो।

मातुष्पदे परमे शुक्र आयोर्विपन्यवो रास्पिरासो अग्मन्।
सुशेव्यं नमसा रातहव्याः शिशुं मृजन्त्यायवो न वासे॥ १४॥

भा०—( विपन्यवः ) विविध विद्याओं का उपदेश करने वाले गुरु विद्वान् और व्यवहार कुशल और ( रास्पिरासः ) धनैश्वर्य को पूर्ण करने वाले वैश्यजन ( नमसा ) आदर विनय से और राजा के नवाने वाले प्रबल तेज से बाधित होकर ( रातहव्याः ) ज्ञान और धन आदि देकर ( सुशेव्यम् ) सुख से सेवने योग्य, सुखप्रद, प्रधान पुरुष को ( वासे ) वसने योग्य राष्ट्र में ( वासे आयवः शिशुं न ) घर में ज्ञानी लोग जिस प्रकार बालक को स्वच्छ रखकर सजाते और स्वच्छ रखते हैं उसी प्रकार

( आयवः ) सभी मनुष्य ( शिशुं ) उस प्रशंसनीय एवं शासनकुशल पुरुष को ( मृजन्ति ) अभिषेक करावें । और ( मातुः परमे पदे ) माता के सर्वोच्च पद गृह में जिसमें विद्यमान बालक को देखने, आशीर्वाद आदि देने जिस प्रकार लोग घर पर आते हैं । उसी प्रकार ( मातुः परमे पदे ) माता, पिता के सदृश, सर्वोत्कृष्ट परम पद पर स्थित अथवा माता, पृथिवी के परम सर्वोच्च पद राज सिंहासन पर स्थित ( शुक्रे ) अति तेजस्वी, शुद्ध वेश वा कर्त्तव्य में विराजने वाले ( आयोः ) दीर्घायु पुरुष को ( आ अग्मन् ) प्राप्त हों ।

बृहद्वयो॑ बृह॒ते तुभ्य॑मग्ने धिया॒जुरो॑ मिथु॒नासः॑ सचन्त ।
दे॒वोदे॑वः सु॒हवो॑ भूतु मह्यं॒ मा नो॑ मा॒ता पृ॑थि॒वी दु॑र्म॒तौ धा॑त् ॥१५॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्नि के तुल्य प्रकाशवान्, स्वयंप्रकाशक तेजस्विन् प्रभो ! राजन् ! ( तुभ्यम् बृहते ) तेरे महान् ( बृहत् वयः ) बड़े भारी बल, ज्ञान और दीप्ति को ( धियाजुराः ) बुद्धि और कर्म, ज्ञान और अनुभव में वृद्ध हुए ( मिथुनासः ) स्त्री और पुरुष जन ( सचन्त ) एक साथ मिलकर बैठें । तू ( देवः-देवः ) सदा दानशील और सर्वप्रकाशक होकर ( मह्यं ) मेरे लिये ( सु-हवः ) उत्तम पूज्य दानी और स्तुतियोग्य ( भूतु ) हो ( माता पृथिवी ) माता पृथिवी, पृथिवी तुल्य विशाल हृदय से युक्त होकर एवं मातृसदृश सर्वाश्रय आचार्यादि भी ( दुर्मतौ ) दुःखदायी बुरी मति में ( नः ) हमें ( मा धात् ) न रहने दें । हमें बुरी सीख और उलटी अकल न दें ।

उ॒रौ दे॑वा अनिबा॒धे स्या॑म ॥ १६ ॥

भा०—हे (देवाः ) विद्वान्, व्यवहारकुशल एवं दानी, विजयी, वीर पुरुषो ! हम लोग ( उरौ ) बड़े, विशाल ( अनिबाधे ) बाधा, पीड़ा, कष्टादि से सर्वथा रहित राष्ट्र में ( स्याम ) रहें ।

समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि १७॥२२

भा०—हम लोग ( अश्विनोः ) अश्वयुक्त सारथि और रथी इनके ( नूतनेन ) सदा नवीन, सदा तैयार, शुद्ध ( अवसा ) रक्षा करने वाले बल सैन्यादि से और ( मयोभुवा ) सुखोत्पादक ऐश्वर्य से युक्त होकर ( सुप्र-णीतौ ) उत्तम सुखकारक धर्मानुकूल नीति में ही ( सं-गमेम ) अच्छी प्रकार सत्संगी होकर चलें। हे उत्तम स्त्री पुरुषो! आप दोनों ( नः ) हमारे लिये ( रयिम् आ वहतम् ) ऐश्वर्य धारण करो और ( वीरान् आ वहतम् ) वीर, बलवान् पुत्र धारण करो और ( विश्वानि ) सब प्रकार के ( अमृता ) अविनाशी दीर्घ जीवनप्रद ( सौभगानि ) सुखप्रद ऐश्वर्य, सुख-सौभाग्य भी ( आ वहतम् ) सब प्रकार से प्राप्त करो। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

## [ ४४ ]

अवत्सारः काश्यप अन्ये च सदापृणबाहुवृक्तादयो दृष्टलिंगा ऋषयः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, १३ विराड्जगती। २, ३, ४, ५, ६ निचृज्जगती। ८, ९, १२ जगती। ७ भुरिक् त्रिष्टुप्। १०, ११ स्वराट् त्रिष्टुप्। १४ विराट् त्रिष्टुप्। १५ त्रिष्टुप् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदं स्वर्विदम् ।
प्रतीचीनं वृजनं दोहसे गिराशुं जयन्तमनु यासु वर्धसे ॥ १ ॥

भा०—हे राजन्! ( यासु ) जिन प्रजाओं के बीच रहकर ( अनु वर्धसे ) तू प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होता रहता है, और ( यासु ) जिनके बीच में से तू ( प्रतीचीनम् ) शत्रु के प्रति निर्भयता से जाने वाले, ( आशुं ) शीघ्रगामी ( जयन्तम् ) विजय प्राप्त करने वाले,

( वृजनं ) शत्रु के वारक बल, सैन्य को भी ( गिरा ) अपनी वाणी के बल से ( दोहसे ) दोहता है, सार रूप से प्राप्त करता है, ( तम् ) उस ( प्रत्नथा ) अति उत्तम, दृढ़ पुरातन के समान (पूर्वथा) पूर्ववत् (विश्वथा) सर्वस्व के तुल्य ( ज्येष्ठतातिं ) सर्वश्रेष्ठ ( बर्हिषदम् ) वृद्धिशील राष्ट्र में विद्यमान, ( स्वर्विदम् ) सुख के प्राप्त करने और कराने वाले ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र की तू सदा ( दोहसे वर्धसे ) दोहन किया कर और बढ़ाया कर। इसी प्रकार राष्ट्र का प्रजाजन भी ऐसे वृद्धिकर राजा को बढ़ाया करे।

श्रिये सुदृशीरुपरस्य याः स्वर्विरोचमानः ककुभामचोदते।
सुगोपा असि न दभाय सुक्रतो परो मायाभिर्ऋत आस नाम ते २

भा०—( विरोचमानः स्वः ककुभाम् मध्ये यथा सुदृशीः उपरस्य-श्रिये करोति तथा ) तेजस्वी सूर्य जिस प्रकार दिशाओं के बीच विशेष तेज से चमकता हुआ, उत्तम रीति से दिखाने वाली दीप्तियों को मेघ की शोभा उत्पन्न करने के लिये ही धारण करता है इसी प्रकार हे राजन्! तू भी ( अचोदते ) प्रेरणा न करने वाले, स्वयं शासित होने वाले राष्ट्र की ( श्रिये ) लक्ष्मी वृद्धि के लिये, तू ( स्वः ) शत्रु संतापक होकर ( ककु-भाम् ) दिशाओं के बीच ( विरोचमानः ) विविध प्रकारों से सबके चित्तों को अच्छा लगता हुआ ( याः ) जिन ( उपरस्य ) मेघवत् दानशील विदुषी एवं ( सुदृशीः ) उत्तम रीति से देखने और अन्यों को उत्तम ज्ञान दिखाने वाली आप्त प्रजाओं को ( श्रिये ) अपनी शोभा और आश्रय के लिये धारण करता है तू उन द्वारा ही ( सुगोपाः असि ) राष्ट्र का उत्तम पालक हो, हे ( सु-क्रतो ) उत्तम ज्ञान और कर्मकुशल राजन्! तु ( मा-याभिः ) अपनी प्रजाओं, बुद्धियों से ( परः ) सर्वोत्कृष्ट होकर भी ( न दभाय) राष्ट्र के नाश करने के लिये न हो। प्रत्युत (ते नाम) तेरा नाम, यश और नमाने वाला बल (ऋते) सत्य ज्ञान और न्याय के आश्रय पर ही ( आस ) स्थिर हो। इत्येकविंशो वर्गः ॥

अत्यं हविः सचते सच्च धातु चारिष्टगातुः स होता सहोभरिः ।
प्रसर्स्राणो अनु बर्हिर्वृषा शिशुर्मध्ये युवाजरो विस्रुहा हितः ॥३॥

भा०—जो ( बर्हिः अनु प्रसर्स्राणः ) वृद्धिशील राष्ट्र वा प्रजा जन के अनुकूल रहकर और उत्कृष्ट पद की ओर बढ़ता रहता है जो स्वयं ( वृषा ) बलवान् होकर भी ( शिशुः ) बालकवत् ( मध्ये ) प्रजा जनों के बीच सब से रक्षा करने योग्य, सब से प्रशंसनीय, सब का शासक, ( युवा ) शत्रु मित्र का भेद करने वाला, ( अजरः ) अविनाशी (वि-स्रुहा) रोगवत् त्रिविध शत्रुओं का नाशक होकर ( हितः ) ओषधिवत् सब का हितकारी होता है ( सः ) वह ( सहोभरिः ) बल, सैन्य द्वारा राष्ट्र का पालक ( होता ) दानशील, और ( अरिष्ट-गातुः ) भूमि वासी प्रजाजनों को विना पीड़ा दिये ही अविघ्न मार्ग से जाता हुआ ( अत्यं ) सब से अधिक, उत्तम (सत् च) स्थायी, और ( धातु च ) पुष्टिकारक ( हविः ) अन्न कर आदि ( सचते ) प्राप्त करता है । शिशुः—शेतेः शंसतेर्वा ।

प्र व एते सुयुजो यामन्निष्टये नीचीरमुष्मै यम्य ऋतावृधः ।
सुयन्तुभिः सर्वशासैरभीशुभिः क्रिविर्नामानि प्रवणे मुषायति ॥४॥

भा०—जिस प्रकार ( सु-युजः ) रथ में जुते उत्तम अश्व ( यम्यः ) नियन्ता सारथी के वश होकर ( यमन् ) मार्ग में चलते हुए ( नीची-अमुष्यै ऋतावृधः) नीचे अर्थात् विनय से चलते हुए भी उसका सुख बढ़ाते हैं उसी प्रकार ( एते ) ये ( वः ) आप लोगों में से जो लोग ( सुयुजः ) उत्तम पदों पर नियुक्त होकर नायक का सहयोग करते हुए ( ऋतावृधः ) राष्ट्र के धन, सत्य न्याय की वृद्धि करते हुए, ( इष्टये ) इष्ट सुख प्राप्त करने के लिये ( यस्य नीचीः ) जिस नायक के अधीन रहकर ( अमुष्यै ) उस अमुक नायक के हित के लिये होते हैं वह ( क्रिविः ) सर्वकर्त्ता पुरुष ही सूर्य के समान ( अभीशुभिः ) किरणों के तुल्य अपने ( सुमन्तुभिः )

उत्तम और ( सर्व-शासैः ) सब शासकों से ( प्रवणे नामानि ) नियन्ता नीचे भूमियों में स्थित जलवत् उत्तम ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र में विद्यमान रहकर नाना पदार्थों को कर रूप में ( मुषायति ) अदृश्य रूप से ग्रहण करे ।

सञ्जर्भुराणस्तरुभिः सुतेगृभं वयाकिनं चित्तगर्भासु सुस्वरुः ।
धारवाकेष्वृजुगाथ शोभसे वर्धस्व पत्नीरभि जीवो अध्वरे ॥५॥

भा०—हे ( ऋजुगाथ ) ऋजु, सरल, सत्य धर्म का उपदेश करने वाले विद्वान्, धर्म नीति में प्रजा को लेजाने हारे राजन् ! तू ( सु-स्वरुः ) उत्तम तेजस्वी और उत्तम उपदेष्टा होकर ( चित्त-गर्भासु ) प्रेमयुक्त चित्त को ग्रहण करने वाली प्रजाओं के बीच में ( वयाकिनं ) अल्प बल वाले ( सुते-गृभम् ) अपने पुत्रवत् ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र में गर्भवत् सावधानी से पालन करने योग्य जन को ( तरुभिः ) वृक्षों के तुल्य स्थिर मूल वाले, शत्रु नाशक वीर पुरुषों से ( संजर्भुराणः ) पालन करता हुआ, तू ( धार-वाकेषु ) राष्ट्र धारक उपदेष्टा पुरुषों के बीच ( शोभसे ) शोभा को प्राप्त करता है, तू ( अध्वरे ) राष्ट्र को नाश न होने देने के कार्य में सदा ( जीवः ) प्राण स्वरूप होकर ( पत्नीः ) राष्ट्र के पालन करने वाली शक्तियों तथा गृह में स्थित स्त्रियों के तुल्य प्रजाओं को भी ( अभि वर्धस्व ) सब प्रकार से बढ़ा, पालन कर ।

यादृगेव ददृशे तादृगुच्यते सं छायया दधिरे सिध्रयाप्स्वा ।
महीमस्मभ्यमुरुषामुरु ज्रयो बृहत्सुवीरमनपच्युतं सहः ॥ ६ ॥

भा०—( यादृग् एव ) जैसा ही ( ददृशे ) साक्षात् किया जाता है ( तादृग् उच्यते ) वैसा ही यहां वर्णन किया जाता है । वह यह कि जिस प्रकार वृक्ष ( अप्सु छायया दधिरे ) जलों पर पोषित होकर अपनी छाया से सब जनों को अपने नीचे सुख देते हैं उसी प्रकार शासक लोग भी ( अप्सु ) आप्त अधीन प्रजाओं के ऊपर रहकर भी ( सिध्रया ) मंगलकारिणी, सुखप्रद ( छायया ) अपनी छत्रछाया से ( अस्मभ्यं ) हमारी इस ( उरुषाम् महीम् ) बहुत सुख समृद्धि देने वाली भूमि को (दधिरे)

पालन करें और वे ( ऋथः ) वेगवान् रहकर ( बृहत् ) बहुत बड़े ( सु-वीरम् ) उत्तम वीरों से युक्त ( अनप-च्युतम् ) कभी संग्राम में न भागने वाले ( सहः ) शत्रुविजयी बल को भी ( दधिरे ) धारण करें।

**वेत्यग्रुर्जनिवान्वा अति स्पृधः समर्यता मनसा सूर्यः कविः।**
**घ्रंसं रक्षन्तं परि विश्वतो गयमस्माकं शर्म वनवत्स्वावसुः ॥७॥**

भा०—( सूर्यः ) सूर्य के समान तेजस्वी ( कविः ) अति दूरदर्शी ( अग्रुः ) अग्रणी, नायक ( जनिवान् ) उत्तम जन्म वा प्रतिष्ठा को प्राप्त करके ( समर्यता मनसा ) युद्ध करने की इच्छा से युक्त चित्त से ( स्पृधः अति वेति ) अपने सब स्पर्धालु शत्रुओं से बढ़जावे। वह ( स्व-वसुः ) अपनों में रहने और अपनों को बसाने हारा होकर ( रक्षन्तं ) रक्षा करते हुए, ( घ्रंसं ) अति देदीप्यमान तेजस्वी पुरुष को ( वनवत् ) प्राप्त करे और ( अस्माकं ) हमारे ( गयं ) गृह, और ( शर्म ) सुख को ( वन-वत् ) प्रदान करे।

**ज्यायाँसमस्य यतुनस्य केतुन ऋषिस्वरं चरति यासु नाम ते।**
**यादृश्मिन्धायि तमपस्यया विदद्य उ स्वयं वहते सो अरं करत् ॥८॥**

भा०—( यासु ते नाम ) जिन सेनाओं में तेरा यश वा दमनकारी शासन प्रतिष्ठित हो और ( यादृश्मिन् धायि ) जिस प्रकार के राजा के अधीन वह तेरा (नाम) शत्रुको नमाने वाला बल ( धायि ) परिपुष्ट होता और स्थिर रहता है, ( तम् ) उस राजा का ( अपस्यया ) उत्तम कर्म या सेवा के द्वारा वह प्रजा जन ( विदत् ) प्राप्त करे, क्योंकि ( यः उ ) जो प्रजावर्ग भी ( स्वयं वहते ) स्वयं समस्त कार्य भार को धारण करता है ( स अरं करत् ) वह ही बहुत ऐश्वर्य वा सुख उत्पन्न करता है। वह प्रजावर्ग ऐसे पुरुष के अधीन रहकर ही ( अस्य ) इस ( यतुनस्य ) यत्न-शील पुरुष के ( केतुना ) ज्ञान के द्वारा ( ज्यायांसं ) अति श्रेष्ठ ( ऋषि-स्वरं चरति ) द्रष्टा विद्वान् पुरुषों के उपदिष्ट ज्ञान को भी प्राप्त कराता है।

**समुद्रमासामव तस्थे अग्रिमा न रिष्यति सवनं यस्मिन्नायता।**
**अत्रा न हार्दि क्रवणस्य रेजते यत्रा मतिर्विद्यते पूतबन्धनी ॥९॥**

भा०—( यस्मिन् ) जिस राष्ट्र में या जिस नायक के अधीन रहकर ( आयता ) अति विस्तृत राज्य के क्षेत्र और विस्तृत भूमि वा वाणी ( सवनं ) ऐश्वर्य वा और भक्ति भाव को ( न रिष्यति ) नाश नहीं होने देती और ( अग्रिमा ) श्रेष्ठ, सर्वप्रथम, उत्तम वाणी ( आसाम् ) उन प्रजाओं के बीच ( समुद्रम् ) समुद्र वा अन्तरिक्ष के तुल्य गंभीर और सर्वोपरि छायाकारी पुरुष को ( अव तस्थे ) प्राप्त हो ( अत्र ) उसके विषय में ( क्रवणस्य ) कर्म कुशल पुरुष के भी ( हार्दि न रेजते ) हृदय के भाव विचलित नहीं होते ( यत्र ) और जिसके विषय में ( पूतबन्धनी ) पवित्र गुणों से गुथी (मतिः) बुद्धि ( विद्यते ) सदा बनी रहती है वही उत्तम पद को प्राप्त होने योग्य है।

**स हि क्षत्रस्य मनसस्य चित्तिभिरेवावदस्य यजतस्य सध्रेः।**
**अवत्सारस्य स्पृणवाम रण्वभिः शविष्ठं वाजं विदुषा चिदर्ध्यम् ॥ १० ॥ २४ ॥**

भा०—(सः हि) वह ही नायक होने योग्य है। जो (क्षत्रस्य) वीर्यवान्, प्रजा को नाश होने से बचाने वाले, ( मनसस्य ) उत्तम चित्तवान् एवं मननशील, ( एव-वदस्य ) आगे जाने योग्य मार्ग का उपदेश करने वाले ( यजतस्य ) दानशील, सत्संगी, पूज्य ( सध्रेः ) सदा साथ देने वाले, ( अवत्सारस्य ) राष्ट्र की रक्षा करने वालों के बीच में स्वयं सारवान्, बलशाली वा उन पालक पुरुषों के बने उत्तम सैन्य बल के स्वयं भी नायक के ( शविष्ठं ) अति बलशाली ( विदुषा चित् अर्ध्यम् ) विद्वान् पुरुषों से भी समृद्ध, ( वाजं ) बल, ज्ञान और ऐश्वर्य को ( चित्तिभिः ) उत्तम सञ्चित समृद्धियों, ज्ञानों और ( रण्वभिः ) रमणीय विचारों और उत्त धनों, भवनों और कर्मों से ( स्पृणवाम ) और भी समृद्ध करें।

श्येन आसामदितिः कक्ष्यो३मदो विश्ववारस्य यजतस्य मायिनः।
संमन्यमन्यमर्थयन्त्येतवे विदुर्विषाणं परिपानमन्ति ते ॥ ११ ॥

भा०—( आसाम् ) इन समस्त प्रजाओं और सेनाओं के बीच में जो (श्येनः) वाज के समान शत्रु पर आक्रमण करने वाला वा उत्तम चाल, आचरणवान् और गमन करने हारा ( अदितिः ) माता पिता के तुल्य प्रजा का पालक, पुत्र के समान बड़ों का सेवक और अखण्ड शासनकारी, अविचल, अखण्डित व्रत और प्रकृति वाला, ( कक्ष्यः ) उत्तम कसे कसाये अश्व के समान उत्तम पेटियों से सुशोभित, ( मदः ) सबका आनन्द करने वाला है उस ( मायिनः ) बुद्धिमान्, ( यजतस्य ) पूजनीय, सत्संगयोग्य, दानशील एवं ( विश्व-वारस्य ) सब शत्रुओं के वारण करने वाले और सबसे वरण करने योग्य पुरुष के ( अन्ति ) समीप रहकर (ते) वे अन्य लोग भी ( वि-सानं ) विशेष रूप से भोगने योग्य पद और (परि-पानं ) सबकी रक्षा करने वाले पद को ( विदुः ) प्राप्त करते और ( अन्यम्-अन्यम् ) और और भी अधिकार को (सम्-एतवे) प्राप्त करने के लिये ( अर्थयन्ति ) उससे याचना किया करते हैं।

सदापृणो यजतो वि द्विषो वधीद्बाहुवृक्तः श्रुतवित्तर्यो वः सचा।
उभा स वरा प्रत्येति भाति च यदीं गणं भजते सुप्रयावभिः॥१२॥

भा०—वह राजा ( सदा-पृणः ) सदा प्रजा को तृप्त और पूर्ण करने वाला, ( यजतः ) दानशील और सत्संगति उत्पन्न करने योग्य, ( बाहु-वृक्तः ) बाहुबल से शत्रुबल का छेदन भेदन करने में कुशल, ( श्रुत-वित् ) गुरु से उपदिष्ट ज्ञान को जानने वाला, वेदज्ञ होकर ( वः ) आप लोगों के बीच में ( सचा ) सबके साथ मिलकर ( तर्यः ) सबको कष्टों, से पार उतारने में समर्थ एवं शत्रु नाशक है वही ( द्विषः ) अप्रीति-कारक पदार्थों और नाशक शत्रुजनों को ( वि वधीत् ) विविध प्रकार से दण्डित करे। ( सः ) वह ( उभा वरा ) दोनों प्रकार के वरण करने

योग्य ऐहिक और पारमार्थिक सुखों को ( प्रति एति ) प्राप्त हो और जाने। ( भाति च ) और स्वयं सूर्यवत् चमके। ( यद् ) और वह ही ( ईम् गणं ) इस प्रजा या सैन्यगण को (सु-प्र-यावभिः) उत्तम प्रयाणकारी वीर पुरुषों के साहाय्य से (भजते) सेवन करे।

**सुतम्भरो यजमानस्य सत्पतिर्विश्वासामूधः स धियामुदञ्चनः। भरद्धेनू रसवच्छिश्रिये पयोऽनुब्रुवाणो अध्येति न स्वपन् ॥१३॥**

भा०—जो पुरुष ( धेनुः ) गौ के समान ( रसवत् पयः ) रस से युक्त पुष्टिकारक दुग्धवत् अन्न को ( शिश्रिये ) धारण करता है और जो ( न स्वपन् ) आलस्य, प्रमाद न करता हुआ, ( अनु-ब्रुवाणः ) प्रतिदिन प्रवचन और पाठ करता हुआ (अधि-एति) अध्ययन और स्मरण करता है वही ( सुतं-भरः ) प्रजा को पुत्र के समान भरण पोषण करने में समर्थ ( यजमानस्य ) दानशील प्रजा का ( सत्-पतिः ) उत्तम पालक, और ( विश्वासाम् धियाम् ) समस्त ज्ञानों और कर्मों का ( ऊधः ) उत्तम धारक, और ( उत्-अञ्चनः ) ज्ञानों का पात्रवत् उत्तम रीति से प्राप्त करने और उत्तम पद को प्राप्त करने हारा होता है।

**यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति। यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥१४॥**

भा०—( यः ) जो ( जागार ) जागता रहता है ( तम् ऋचः कामयन्ते ) ऋग्वेद के मन्त्रगण वा उत्तम स्तुति अर्चना सत्कार आदि भी उसको ही चाहते हैं। ( यः जागार ) जो जो अविद्या निद्रा से जाग जाता है ( तम् उ ) उसको ही ( सामानि ) सामवेद के नाना गायन भेद, वा सबके समान व्यवहार ( यन्ति ) प्राप्त होते हैं। ( यः जागार ) जो जागा रहता है, जो सावधान रहता है ( तम् ) उसको ही ( अयं सोमः ) यह सोम, ओषधिगण और ऐश्वर्य पुत्रवत् प्रजागण ( आह ) कहता है कि ( अहम् ) मैं (तव सख्ये) तेरे मित्र भाव में ही (नि-ओकाः अस्मि ) अपना निश्चित निवास बना कर रहता हूं।

**अ॒ग्निर्जा॑गार॒ तमृचः॑ कामयन्ते॒ऽग्निर्जा॑गार॒ तमु॒ सामा॑नि यन्ति ।**
**अ॒ग्निर्जा॑गार॒ तम॒यं सोम॑ आह॒ तवा॒हम॑स्मि स॒ख्ये न्योकाः १५।२५।२**

भा०—( अग्निः ) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष ही ( जागार ) सदा सावधान रहता है, ( ऋचः ) ऋग्वेद के मन्त्रगण और समस्त स्तुति आदर आदि ( तम् कामयन्ते ) उसको ही चाहते हैं। ( अग्निः जागार ) अग्नि के समान ज्ञान का प्रकाशक पुरुष ही सदा जागृत, सावधान रहता है। ( तम् उ ) उसको ही ( सामानि यन्ति ) सामवेद के गायन और सबके समान व्यवहार, उत्तम वचन प्राप्त होते हैं। ( अग्निः ) अग्नि, के तुल्य तेजस्वी और विद्वान् पुरुष ( जागार ) सदा सावधान रहता है ( तम् अयम् सोमः आह ) उसको ही यह ऐश्वर्य और ओषधिगण पुत्र व प्रजागण, कहता है कि ( अहम् तव सख्ये ) मैं तेरे मैत्रीभाव में ( नि-ओकाः ) नियत स्थान बना कर रहता हूं। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

## [ ४५ ]

सदापृण आत्रेय ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २ पंक्तिः । ५, ९, ११ भुरिक् पंक्तिः । ८, १० स्वराड् पंक्तिः । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

**वि॒दा दि॒वो वि॒ष्यन्नद्रि॑मु॒क्थैरा॑य॒त्या उ॒षसो॑ अ॒र्चिनो॑ गुः ।**
**अपा॑वृत व्र॒जिनी॒रुत्स्व॑र्गा॒द्वि दुरो॒ मानु॑षीर्दे॒व आ॑वः ॥ १ ॥**

भा०—जिस प्रकार ( दिवः अद्रिम् ) सूर्य के प्रकाश मेघ को छिन्न भिन्न करते हैं उसी प्रकार ( विदाः ) ज्ञानवान् और ( दिवः ) उत्तम कामनावान् पुरुष ( उक्थैः ) उत्तम वेदविहित वचनों और कर्मों से ( अद्रिम् ) मेघवत् आचरण करने वाले वा अभेद्य अज्ञान को (वि स्यन्) विविध उपायों से नाश करें। ( आयत्याः उषसः ) बाद में आने वाली प्रभात वेलाओं के समान ही ( अर्चिनः ) उत्तम वेद मन्त्रों के द्रष्टा जन,

( उद्-गुः ) उदय को प्राप्त हों, वे ( व्रजिनीः ) वर्त्तन योग्य क्रियाओं और गमन करने योग्य पद्धतियों को ( उत् अप आवृत ) दूर करें और प्रकट करें। ( स्वः उत् गात् ) सूर्य के समान तेजस्वी, उपदेष्टा पुरुष उत्तम मार्ग में जायें, आयुदय को प्राप्त हों, वह ( देवः ) सूर्य वा मेघवत् दानशील, तेजस्वी और ज्ञान का प्रकाशक होकर ( दुरः मानुषीः ) गृह के द्वारों के तुल्य मननशील प्रजाओं को ( विः आवः ) विविध प्रकार से आवरण करें, उनके मन को अपनी ओर अधिक खींचे।

**वि सूर्यो॑ अ॒मतिं॒ न श्रियं॑ सा॒दोर्वाद्गवां॑ मा॒ता जा॒न॒ती गा॑त्।**
**धन्व॑र्णसो न॒द्य१॒: खादो॑अर्णाः स्थू॒णेव॑ सुमि॒ता दृंह॑त॒ द्यौः ॥२॥**

भा०—विद्वान् पुरुष और राजा को चाहिये कि ( सूर्यः अमतिं न ) रूप अर्थात् तेज को जिस प्रकार सूर्य सर्वत्र विभक्त कर देता है उसी प्रकार वह ( श्रियं वि सात् ) ऐश्वर्य को सर्वत्र प्रजाओं में विभक्त करे और विद्वान् ( अमतिं वि सात् ) अज्ञान को विविध उपायों से अन्धकारवत् नाश करे। वह ( माता ) विदुषी माता के तुल्य दयालु होकर स्वयं ( गवां माता ) नाना किरणों, नाना वाणियों, वा भूमियों के उत्पादक सूर्यवत् निर्माता और ज्ञाता होकर ( ऊर्वात् ) बड़े भारी आकाशवत् ऊंचे रहकर भी सबको ( गात् ) प्राप्त हो। जिस प्रकार ( नद्यः ) नदियां ( धन्वर्णसः ) गति युक्त जल से पूर्ण होकर ( खादः-अर्णाः ) खाने पीने योग्य जल वाली होती हैं उसी प्रकार ( नद्यः ) समृद्ध, प्रजाएं और उपदेष्टा जन (धन्व-अर्णसः) स्थान २ पर उत्तम ज्ञानवान् और (खादः-अर्णाः) भक्षण योग्य अन्न जलों से समृद्ध हों। और ( द्यौः ) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष भी प्रजाओं को चाहता हुआ ( समिता स्थूणा इव ) घर में उत्तम रीति से लगी आधार-बल्ली या स्तम्भ के समान ( दृंहत ) दृढ़ हो और राष्ट्र प्रजा को धारण करने में समर्थ हो।

**अ॒स्मा उ॒क्थाय॒ पर्व॑तस्य॒ गर्भो॑ म॒हीनां॑ ज॒नुषे॑ पू॒र्व्याय॑।**
**वि पर्व॑तो॒ जिही॑त॒ साध॑त॒ द्यौरा॒विवा॑सन्तो दसयन्त॒ भूम॑ ॥३॥**

भा०—( गर्भः जनुषे ) जिस प्रकार गर्भ उत्पन्न होने के लिये ही ( विजिहीत ) विशेष रूप से गति करता है उसी प्रकार ( पर्वतस्य ) मेघ के तुल्य पर्व अर्थात् पालन आदि साधनों से युक्त पिता तुल्य आचार्य के (गर्भः) शिष्य ज्ञानग्राहक (पूर्व्याय) पूर्व के विद्वानों द्वारा उपदिष्ट (उक्थाय) प्रशंसनीय, वेदमय ( अस्मै ) इस, उत्तम ( जनुषे ) जन्म लाभ करने के लिये ( महीनां ) माता के तुल्य आदरणीय गुरु जनों के बीच (वि जिहीत) विशेष रूप से जावे । (द्यौः) सूर्यवत् तेजस्वी एवं विद्या की कामना करता हुआ वह स्वयं ( पर्वतः ) मेघ वा पर्वत के समान, ही दृढ़ और बलवान् होकर ( वि जिहीत ) विविध स्थानों पर जावे और (वि साधत) विविध विद्याओं और शक्तियों की साधना करे । इसी प्रकार ( महीनां गर्भः ) इन भूमियों का रक्षक राजा भी ( अस्मै उक्थस्य पर्वतस्य पूर्व्याय जनुषे ) इस प्रशंसनीय पर्व युक्त सैन्यबल के उत्तम लाभ के लिये स्वयं ( पर्वतः सन् वि जिहीत वि साधत ) मेघवत् पालक होकर विविध देशों में जाये और उनको विशेष रूप से साधे, वश करे, इस प्रकार हम लोग ( आ विवासन्तः ) गुरुओं की सेवा शुश्रूषा करते हुए ( भूम दसयन्त ) अज्ञान दुःख आदि का सदा नाश करते रहें ।

सूक्तैर्भिर्वो वचोभिर्देवजुष्टैरिन्द्रा न्व१ग्नी अवसे हुवध्यै ।
उक्थेभिर्हि ष्मा कवयः सुयज्ञा आविवासन्तो मरुतो यजन्ति ॥४॥

भा०—हे ( इन्द्र-अग्नी ) ऐश्वर्यवान् विद्युत् और अग्नि के तुल्य तेजस्वी और ज्ञान प्रकाश करनेहारे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! ( अवसे ) रक्षा और ज्ञान लाभ करने के लिये (देव-जुष्टैः) विद्वानों से सेवित (उक्थेभिः) वेदमय उत्तम ( सूक्तेभिः वचोभिः ) सूक्तों और वचनों से (हुवध्यै) ज्ञान प्राप्त करने के लिये ( सु-यज्ञाः ) उत्तम सत्संग योग्य ( कवयः ) विद्वान् और ( मरुतः ) सामान्य लोग भी ( आ विवासन्तः ) एक दूसरे की सेवा शुश्रूषा तथा विविध विद्याओं का प्रकाश करते हुए ( यजन्ति स्म ) ज्ञान दें, लें और सत्संग किया करें ।

एतो न्व१द्य सुध्यो३भवाम प्र दुच्छुना मिनवामा वरीयः ।
आरे द्वेषांसि सनुतर्दधामायाम प्राञ्चो यजमानमच्छ ॥५॥२६॥

भा०—(एतो) आओ, हम सब लोग (नु अद्य) शीघ्र ही सब (सु-ध्यः) उत्तम ज्ञानवान् और कर्म करने वाले और राष्ट्र को उत्तम रीति से धारण करनेवाले ( भवाम ) बनें। और ( दुच्छुनाः ) जो दुखदायी लोग हैं, उनको ( वरीयः ) खूब अच्छी प्रकार ( अभि भवाम ) नाश करें। अथवा हम लोग ही ( दुच्छुनाः सन्तः ) दुष्ट, बिगड़े कटखने कुत्तों के समान निर्भय होकर ( वरीयः ) अच्छी प्रकार शत्रुओं को ( प्र मिनवाम ) आगे बढ़कर नाश करें। इस प्रकार ( सनुतः ) सदा हम ( द्वेषांसि ) अप्रीति कर शत्रुओं को ( आरे दधाम ) दूर करें और ( प्राञ्चः ) आगे बढ़कर ( यजमानम् ) ज्ञान और धन को देने वाले सत्संगतिशील पुरुष को ( अच्छ अयाम ) प्राप्त हों। षड्विंशो वर्गः ॥

एता धियं कृणवामा सखायोऽप या माताँ ऋणुत व्रजं गोः ।
यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय यया वणिग्वङ्कुरापा पुरीषम् ॥६॥

भा०—हे ( सखायः ) मित्र जनो ! आप लोग ( आ इत ) आइये और हम लोग ( धियं ) ऐसी बुद्धि और कर्म ( कृणवाम ) करें ( या ) जो ( माता ) माता के तुल्य ( गो-व्रजं ) ज्ञानमय किरण और वेद वाणी के समूह को ( अप ऋणुत ) खोल २ कर स्पष्ट करें। उसके अभिप्राय को सबके सामने खोलकर रक्खें। ( यया ) जिससे ( मनुः ) मननशील पुरुष (विशि-शिप्रं) प्रजा में विद्यमान ज्ञानी तेजस्वी, सुमुख, सौम्यपुरुष को (जिगाय) जीतता अर्थात् अपने वश करता उसके मन को हरता है और (यया) जिस से ( वङ्कुः वणिग् ) धन की कामना करने वाला, वैश्य जन ( पुरीषम् आप ) ऐश्वर्य को प्राप्त करता है।

अनूनोदत्र हस्तयतो अद्रिरार्चन्येन दश मासो नवग्वाः ।
ऋतं यती सरमा गा अविन्दद्विश्वानि सत्याङ्गिराश्चकार ॥ ७ ॥

भा०—( अत्र ) इस यज्ञ, अध्ययनाध्यापन एवं शास्त्र जो अनुशासन काल में ( अद्रिः ) मेघवत् निष्पक्षपात होकर विद्वान् पुरुष ( हस्तयतः ) हाथ पैर आदि को वश करने वाले जितेन्द्रिय हो कर ( अनूनोत् ) अन्यों को ऐसा उपदेश करे ( येन ) जिस से ( दशमासः ) दस महीने तक ( नवग्वाः ) नवीन मार्ग पर गमन करने वाले भी ( आ अर्चन् ) अच्छी प्रकार ज्ञान प्राप्त करें। ( ऋतं यती सरमा ) सत्य ज्ञान को प्राप्त करने में यत्नशील बुद्धि ( गाः ) वाणियों को ( अविन्दत ) प्राप्त करे। और ( अङ्गिराः ) ज्ञानवान् पुरुष ( विश्वानि सत्याः ) सब सत्य ज्ञानों को ( चकार ) प्रकट करे।

**विश्वे॑ अ॒स्या व्यु॒षि माहि॑नायाः॒ सं यद्गोभि॒रङ्गि॑रसो॒ नव॑न्त।**
**उत्स॑ आसां पर॒मे स॒धस्थ॑ ऋ॒तस्य॑ प॒था स॒रमा॑ विद॒द्गाः ॥८॥**

भा०—( यत् ) जो ( विश्वे अंगिरसः ) समस्त विद्वान् लोग ( व्युषि ) प्रभात वेला में वायुएं जिस प्रकार सूर्य की किरणों के साथ संगत होते हैं उसी प्रकार ( अस्याः ) ( इस महिनायाः ) अति उत्तम तेजस्विनी परमेश्वरी शक्ति के ( वि-उषि ) विशेष प्रकट होने पर ( गोभिः ) वेदवाणियों से ( सं नवन्त ) उसकी अच्छी प्रकार स्तुति करते हैं ( आसां ) उन वाणियों का ( उत्सः ) उत्तम स्रोत ( सधस्थे ) परम स्थान में है। ( सरमा ) उत्तम ज्ञान को देने वाली बुद्धि ( ऋतस्य पथा ) जहां सत्य ज्ञान रूप प्रकाशमय वेदोपदिष्ट मार्ग से चल कर ( गाः विदत् ) वेद वाणियों को भली प्रकार जानें।

**आ सूर्यो॑ यातु स॒प्ताश्वः॒ क्षेत्रं॒ यद॑स्योर्वि॒या दी॑र्घया॒थे।**
**र॒घुः श्ये॒नः प॑तय॒दन्धो॒ अच्छा॒ युवा॑ क॒विर्दी॑दय॒द्गोषु॒ गच्छ॑न् ॥९॥**

भा०—( सूर्य ) के समान तेजस्वी पुरुष ( सप्त-अश्वः ) वेगवान् अश्वों से युक्त होकर ( क्षेत्रम् ) उस रणक्षेत्र को ( आ यातु ) प्राप्त करे ( यत् ) जो ( अस्य ) इसके ( दीर्घ-याथे उर्विया ) लम्बे प्रयाण करने के

लिये भी बहुत बड़ा है। वह (रघुः) वेगवान् (श्येनः) उत्तम गतिशील, सदाचारी वा बाज के समान (युवा) बलवान् (कविः) विद्वान् के तुल्य दीर्घदर्शी होकर (गोषु गच्छन्) अपनी भूमियों में गमन करता हुआ भी (अन्धः अच्छ पतयत्) राष्ट्र-धारक ऐश्वर्य का स्वामी बने और (दीदयत्) अच्छी प्रकार चमके अध्यात्म में सात प्राणों से युक्त आत्मा 'सूर्य ससाश्व' है। यह आत्मा क्षेत्र है। परमानन्द अन्धस् है। विद्वान् वेदवाणियों में विचरे।

**आ सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णोऽयुक्त यद्धरितो वीतपृष्ठाः।**
**उद्ना न नावमनयन्त धीरा आशृण्वतीरापो अर्वागतिष्ठन्॥१०॥**

भा०—(सूर्यः) सूर्य जिस प्रकार (शुक्रम् अर्वा अरुहत्) अतिदीप्त वा सूक्ष्म जल को ऊपर उठाता है और (वीतपृष्ठाः हरितः अयुक्त) कान्ति युक्त रूप वाली जल हरने वाली मेघमालाओं, वायुओं वा किरणों का योग करता है तब (आपः अर्वाग् अतिष्ठन्) जलधाराएं भी मेघ से नीचे आ जाती हैं उसी प्रकार जब (सूर्यः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (शुक्रम् अर्णः आ अरुहत्) शुद्ध कान्तियुक्त ऐश्वर्य को आदरपूर्वक प्राप्त कर सिंहासन पर विराजता है और (वीतपृष्ठाः) कान्तियुक्त चमकीली पीठ वाले (हरितः यत् अयुक्त) किरणों के समान घोड़ों को जब रथ में जोड़ता है, तब (धीराः) बुद्धिमान् पुरुष (उद्ना नावं न) जल-मार्ग में से नौका के समान (उद्ना) उत्तम मार्ग से उस राजा को (अनयन्त) ले चलें। और (आश्रृण्वतीः आपः) राजा की आज्ञाओं को आदर से श्रवण करने वाली अन्य प्रजाएं उसके (अर्वाक्-अतिष्ठन्) अधीन होकर रहें।

**धियं वो अप्सु दधिषे स्वर्षां ययातरन्दश मासो नवग्वाः।**
**अया धिया स्याम देवगोपा अया धिया तुतुर्यामात्यंहः॥११॥२७॥**

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! मैं (वः) आप लोगों की प्रदान की (स्वर्षाम्) सुखप्रद (धियं) उस बुद्धि वा कर्म को (दधिषे) धारण

करूं ( यया ) जिससे ( नवग्वाः ) नवीन, उत्तम गति वाले, सदाचारी जन ( दश-मासः ) दस महीनों को ( अतरन् ) व्यतीत करते हैं। हम लोग ( अया धिया ) उसी धारणावती बुद्धि से ( देवगोपाः स्याम ) विद्वानों, व्यवहारज्ञों विजिगीपुओं, शुभ उत्तम गुणों और इन्द्रियों के पालक ( स्याम ) हों और ( अया धिया ) इसी बुद्धि या कर्म से हम ( अंहः अति तुतुर्याम ) पाप कर्म और उसके दुष्फल को अतिक्रमण कर उसका नाश करें। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

# [ ४६ ]

अतिर्क्षत्र आत्रेय ऋषिः ॥ १—६ विश्वेदेवाः। ७, ८ देवपत्न्यो देवताः ॥ छन्दः—१ भुरिग्जगती। ३, ५, ६ निचृज्जगती। ४, ७ जगती। २, ८ निचृत्पंक्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

**हयो न विद्वाँ अयुजि स्वयं धुरि तां वहामि प्रतरणीमवस्युवम्। नास्या वश्मि विमुचं नावृतं पुनर्विद्वान्पथः पुरएत ऋजु नेषति ॥१॥**

**भा०**—गृहस्थ के कर्त्तव्यों का उपदेश। जिस प्रकार ( धुरि हयः न अवस्युम् प्रतरणीम् वहति ) अश्वा धुर में लगकर गतिशील गाड़ी को ढो ले जाता है उसी प्रकार मैं भी (हयः) गमन करने वाला प्रेरक कर्त्ता ( विद्वान् ) और ज्ञानवान् और धनवान् होकर ( अयुजि धुरि ) जिसका अभी किसी के साथ संयोग न हुआ हो और गृहस्थ को धारण करने में समर्थ हो ऐसी स्त्री को प्राप्त करने की ( वश्मि ) कामना करूं और ( प्रतरणीम् ) नौका के समान संसार मार्ग से तरा देने वाली ( अवस्युवम् ) सन्तानादि की रक्षा करने में कुशल वा (स्वयं) अपने आप पति से (अवस्युं) अपनी रक्षा या पालन, प्रीति, तृप्ति, वचन, श्रवण, अर्थयाचन, आलिंगन, वृद्धि, ताड़ना और भागग्रहण की कामना करनेवाली उस स्त्री को ( वहामि ) विवाह द्वारा धारणा करूं, उसका पालन पोषणादि का भार

अपने पर लूं। (अस्याः) उसको (पुनः) फिर (विमुचं न वश्मि) त्याग करने की कभी इच्छा भी न करूं। और पुनः (आवृतं न वश्मि) उसका अपने सन्मुख रहते २ अन्य से वरण, वा उस द्वारा अपने से अतिरिक्त अन्य पुरुष को वरण करना अथवा (न आवृतं) उससे कोई व्यवहार छुपा हुआ (न वश्मि) न करना चाहूं (पुरः एता) आगे २ चलने वाला (विद्वान्) ज्ञानवान् पुरुष वा स्त्री ऐश्वर्य का लाभ करने वाला वोढा पुरुष ही (पथः) समस्त मार्गों को (ऋजु) सरलता से धर्मपूर्वक (नेषति) ले जाने में समर्थ है।

**अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्धः प्र यन्त मारुतोत विष्णो।**
**उभा नासत्या रुद्रो अध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ॥२॥**

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्, विद्वन्! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे शत्रुहन्तः! हे (वरुण) श्रेष्ठ पुरुष, हे उत्तम पद के लिये वरने योग्य और प्रजा के कष्टों को वारण करने वाले! हे (मित्र) स्नेही! हे प्रजा को मरण से बचाने वाले, प्रजा के प्राण, जीवन, धनादि के पालक! हे (देवाः) विद्वान् व्यवहारकुशल, विजिगीषु पुरुषो! हे (मारुत) वायु वेग से युक्त वीरगण! हे विद्वान् पुरुष जनो! हे (विष्णो) व्यापक, सर्वप्रिय पुरुष! आप सब लोग (शर्धः प्र यन्त) बल प्राप्त करो। और (नासत्या) कभी परस्पर असत्याचरण न करने वाले स्त्री पुरुष वा गुरु शिष्य! (रुद्रः) दुष्टों का रुलाने वाला सेनापति विद्याओं का उपदेशक गुरु (अध) और (पूषा) प्रजापोषक, (भगः) ऐश्वर्यवान् (सरस्वती) उत्तम ज्ञानवाली विदुषी स्त्री ये सब भी (ग्नाः जुषन्त) उत्तम गमन योग्य वाणियों, भूमियों तथा गमनयोग्य पद्धतियों का प्रेमपूर्वक सेवन एवं प्रयोग करें।

**इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिं स्वः पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वताँ अपः।**
**हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु शंसं सवितारमूतये ॥३॥**

भा०—मैं ( इन्द्राग्नी ) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, अग्निवत् तेजस्वी वा ज्ञानी पुरुषों को, विद्युत् और अग्नि को, ( मित्रावरुणा ) स्नेहवान् व श्रेष्ठ, पुरुषों को, देह में प्राण और अपान को, ( अदितिम् ) अखण्ड शासनकर्त्ता राजा, पृथिवी, माता, पिता पुत्र को ( स्वः ) तेजस्वी, सूर्य और उपदेष्टा वा सुखजनक पुरुष को ( पृथिवीं द्यां ) पृथिवी, और आकाश और उनके तुल्य माता वा पिता को ( मरुतः ) विद्वानों, वीर पुरुषों और नाना प्राणगण वा वायुगण को ( पर्वतान् ) मेघों वा पहाड़ों तथा पालन शक्ति से युक्त नायकों और ( अपः ) जलों और आप्त पुरुषों को, ( विष्णुं ) व्यापक शक्तिशाली सम्राट्, और व्यापक आकाश को, ( पूषणं ) सर्व पोषक वायु तथा पोषक पुरुष को, ( ब्रह्मणः पतिम् ) बड़े धन, बड़े राष्ट्र और वेदज्ञान के पालक को ( नृशंसं ) सेवा करने योग्य उपदेष्टा एवं प्रशंसनीय ऐश्वर्यवान् पुरुष को और ( सवितारम् ) उत्पादक पिता को ( ऊतये ) रक्षा, ज्ञानप्राप्ति और व्यवहार, तृप्ति आदि नाना प्रयोजनों के लिये ( हुवे ) प्राप्त करूं।

**उत नो विष्णुरुत वातो अस्रिधो द्रविणोदा उत सोमो मयस्करत् ।**
**उत ऋभव उत राये नो अश्विनोत त्वष्टोत विभ्वानु मंसते ॥४॥**

भा०—( उत ) और ( नः ) हमें ( विष्णुः ) व्यापक शक्ति वाला राजा और विद्याओं का वेत्ता विद्वान्, ( उत ) और ( वातः ) वायुवत् पराक्रमी, ( अस्रिधः ) अहिंसक (द्रविणोः-दाः) धनदाता, ( उत ) और ( सोमः ) उत्तम ओषधिगण, और ऐश्वर्य, व पुत्र शिष्य आदि ( नः ) हमें ( मयः करत् ) सुख प्रदान करें। ( उत ) और ( ऋभवः ) सत्य न्याय आचरण से प्रकाशित होने वाले, अति तेजस्वी पुरुष ( उत अश्विना ) और विद्वान् स्त्री पुरुष ( उत ) और ( त्वष्टा ) तेजस्वी, एवं शिल्पकर्त्ता ( उत ) और ( विभ्वा ) अन्यविशोध सामर्थ्यवान् पुरुष ये सभी ( नः ) हमें ( राये ) ऐश्वर्य लाभ के लिये (अनु मंसते ) अनुमति दिया करें, वे उत्तम उपाय तथा सम्मतियां सुझाते रहा करें।